

भारतीय इतिहास की रूप-रेखा

[प्रागैतिहासिक काल से मुक्त-सफ़रान काल तक]



रतिभानु सिंह 'नाहर' एम० ए०

[इतिहास के मूल, प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक
इतिहास, पुरुषों की कहानी आदि के इतिहास]



कि ता व म ह ल, इ ला हा चा द
धम्बई दिल्ली कलकत्ता भोपाल हैदराबाद

प्रमोद—किताब महल, ५६-८, बीरो रोड, इलाहाबाद ।
मुद्रक—महापौर प्रसाद, मेम प्रेस, जवरा, प्रयाग ।

दो शब्द

पाठकों तथा उच्च क्रमाओं के विद्यार्थियों के लिए ऐतिहासिक पुस्तकों का अभाव नहीं है किन्तु वर्तमान समय में इतिहास के अध्यापन के लिए जो परिवर्तन आवश्यक प्रमाणित हुए हैं उनकी पूर्ति के लिए सबसे नये ढंग से लिखी गई पुस्तक की कमी दिखो यापा का एक बहुत बड़ा अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक उसी अभाव की पूर्ति का एक प्रयास मात्र है।

‘भारतीय इतिहास’ की यह पुस्तक पंजाब यूनिवर्सिटी के हामर सेनेयरों तथा इन्टरमीडिएट के विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी प्रमाणित हो सकेगी।

—लेखक-ग्रुप

विषय-सूची

अध्याय

विषय

- १ भारत भूमि और उसकी विभाषा
- २ भारतीय इतिहास के भाग तथा स्थापना
- ३ सिन्धु घाटी की सभ्यता
- ४ भारतीय भाषाओं का मूल
- ५ ऋग्वेदिक काल की सभ्यता
- ६ ब्राह्मण की वैदिक संस्कृति तथा सभ्यता
- ७ महाकाव्य काल
- ८ जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म
- ९ मुद्रकालीन भारत
- १० मौर्य साम्राज्य का उदय
- ११ बिदेसी आक्रमण
- १२ मौर्य काल
- १३ अशोक
- १४ मौर्यकालीन सभ्यता एवं संस्कृति
- १५ शुंग काल तथा साम्राज्य
- १६ भारत पर बिदेसी आतियों का घात
- १७ कुषाण काल
- १८ गुप्त बंध
- १९ गुप्तकालीन सभ्यता एवं संस्कृति
- २० चानेरवर का वर्द्धन बंध
- २१ बृहत्तर भारत
- २२ राजपूत काल
- २३ इतिहास के राजकुल
- २४ पूर्व गम्भकासीन भारत की सभ्यता
- २५ इस्लाम धर्म का उदय तथा प्रसार
- २६ भारत पर तुर्कों का आक्रमण
- २७ भारत में तुर्की राज्य की स्थापना
- २८ इस्लामी तुर्कों का राज्यकाल
- २९ दिल्ली तुर्क तथा साम्राज्य प्रसार
- ३० फराउना तुर्क तथा राज्य प्रसार
- ३१ तैमूर का आक्रमण तथा सत्तगतता
- ३२ तैमूर तथा लोदी बंध
- ३३ बहमनी तथा विजयनगर राज्य
- ३४ देहली सत्तगत का सांस्कृतिक इति

अध्याय १

भारत भूमि और उसके निवासी

इतिहास और भूगोल के दृष्टिकोण से मानव समूहों को मानव समी विद्वान् मानते हैं। इनसे हमें मानव की विभिन्न कृतियों का ज्ञान प्राप्त होता है। मानव की कृतियाँ उसके भौतिक वातावरण की प्रतिक्रिया स्वरूप ही उत्पन्न होती हैं। प्राकृतिक परिस्थिति अनुसार ही किसी देश के निवासियों का रहन-सहन, विचार-व्यवहार सामाजिक संयोजन, राजनीतिक संयोजन का विकास होता है। भारतवर्ष के इतिहास पर भी यही कीर्तिक परिस्थिति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

भौगोलिक परिस्थिति

भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत एक विशिष्ट देश है। यहाँ हर प्रकार का जलवायु तथा भूभाग मिलता है। एशिया के दक्षिण में स्थित यह एक महान् देश है। यहाँ यदि हम महाद्वीप भी कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस विशाल देश का कुल क्षेत्रफल १८ लाख वर्गमील है और यूरोप से कुछ का भाग बड़ा देश है। उत्तर से दक्षिण तक यह २००० मील और पूर्व से पश्चिम २५०० मील फैला है। इस देश को हम प्राकृतिक दृष्टिकोण से तीन भागों में बाँट सकते हैं। वे नाम इस प्रकार हैं— (१) उत्तर की पर्वतमाला (२) उत्तर का समतल मैदान (३) दक्षिण का पठार।

(१) उत्तर की पर्वतमाला—भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वतमाला फैला है जो भारत की विजय से शुरू करती है। इस पर्वतमाला में पृथ्वी के सबसे ऊँचे पर्वत-शिखर स्थित हैं। मुख्य शिखर इस प्रकार हैं। पीर पैंथाल (एवरेस्ट) शिखर, पीर पैंथाल, नागापर्वत तथा गन्दाकी। हिमालय पर्वत के पश्चिम में पीर पठार से दक्षिण-पश्चिम की ओर हिमालय पर्वत फैला है जिसके दक्षिण में भारत, अफगानिस्तान आदि देशों में भारत का ही एक बंगला। हिमालय के दक्षिण की ओर सफरकोट, मुलेमान तथा किरावर पर्वत हैं जो भारत की दक्षिणी पठार से शुरू करते हैं।

हिमालय की पूर्वी शाखाएँ पठकोई नामापहाड़ी आसी पारो जैयन्ती तथा सुदाई पर्वत कहलें जाते हैं परन्तु पारो वन तथा गहरे घाटों के कारण मनुष्य के आवागमन में बाधा पड़ती है। इस प्रदेश की कठिनाइयों को द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों में बाधकों में भी मान लिया है और इसे पार करने में कितना ही बलवान् तथा धैर्यवान् हो चुके हैं।

यद्यपि हिमालय पर्वत तथा इनकी पूर्वी और पश्चिमी शाखाएँ भारत के उत्तर की सीमा-रेखा पड़ी हैं परन्तु पश्चिमी शाखा में कुछ एनी बाधियाँ हैं जो मनुष्य के आवागमन को सम्पूर्ण रूप से रोकने में असमर्थ सिद्ध हुई हैं। इन बाधियों में पार, मोमक, बरेम, बोलन, गोरी आदि प्रमुख हैं। ये बाधियाँ भारत के एक

से प्रवेश-द्वार है और इन्हीं में से होकर आर्य मूलानी ईरानी कुशाण हूण पठ तथा मंगोल आदि जातियों ने भारत पर आक्रमण किये हैं।

हिमालय पर्वत की गोथ में काश्मीर की बाटी खेसम के आसपास भारत अनुपम सुन्दर अंग है। इस देश की प्राकृतिक सुन्दरता से ही प्रभावित सम्राट् महर्षीर ने इसे पृथ्वी पर स्वर्ग कहा था। काश्मीर के पश्चात् नैऋत्य समतल बाटी भी अपना प्रतीक भारत के इतिहास तथा विश्व के इतिहास के लिये जोड़ गया है। इसी देश के सम्राट्ओं के शास्य कुल में महात्मा जन्म हुआ था जिन्होंने माने वाली मानव जाति को शान्ति तथा प्रेम का संकेत दिया।

हिमालय पर्वत केवल एक सशत प्रहरी का ही कार्य नहीं करता वरन् बर्फ़ जड़ी तथा अरब सागर से उठी हुई मेघ-राशि को रोक कर भारत के उच्च भाग में जलनर्पा भी करता है। इसके धर्म हिमवत गिरि-शिखरों से ही उत्तर की नदियाँ अपना जल ग्रहण करती हैं। इस प्रकार हिमालय पर्वत भारत को ष भी करता है। जिस गिरि-श्रेणिका से भारत भूमि को इतना लाभ हो उस गल में बितने भी कार्य रहे जायें बड़े हैं।

(२) उत्तर के समतल मैदान—दिरंग की सबसे उत्तर समतल भूमि एक भारत के उत्तर का समतल मैदान भी एक है। यह मैदान सिन्ध, गंगा तथा पुन नदियों की सम्मिश्रित बाटी है। यह तीनों नदियाँ हिमालय पर्वत से नि कारण धर्म जल से परिपूर्ण रहती हैं और सिन्धु के काम में अत्यन्त सहा नदियों की कार्य हुई मिट्टी की सतह बहुत ही उपजाऊ है। यही कारण है कि का यह भाग इतिहास में सोने की धिक्का के नाम से प्रसिद्ध है। या एक विमुक्तकार है जो पुरुष में संकीर्ण होता जाता गया है। इसका परिणाम सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा सींचा जाता है। आर्य इस प्रदेश आर्य और इसे मज्जिमिन्ध के नाम से सम्बोधित किया। अजन्मिन्ध का मज्जिमिन्ध ने भाग नहीं बड़े थे।

गंगा और यमुना की उत्तर भूमि को आर्यवर्त के नाम से सम्बोधित है। भारत में राज्यसत्ता का विकास इसी भूभाग में हुआ था। नदियाँ गंगा में भीनी जाऊ से बढ़ती हैं और ये नदियाँ यातायात के जल-मार्ग सुन्दरता से हैं। इन नदियों के किनारे प्राचीन काल में व्यापारिक केन्द्र तथा मूल्य-मूल्य बन गये और ये नगर अपने राज्य के राजधानी भी बन गये। पालिपुत्र व साम्राज्य की प्रथम राजधानी है गंगा के किनारे ही बना हुआ है। काशी पवित्र स्थान तथा विद्या का केन्द्र रहा है प्रमाण गंगा और यमुना के संलग्न व राजनैतिक तथा धार्मिक केन्द्र रहा है।

समुद्र तथा दिल्ली यमुना पर पूर्ण मध्य काल में ही अपना महत्त्व बढ़ा है। दिल्ली के पास इन्द्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर महाभारत काल से नि उत्तर के इन मैदान में ही कुशाण तथा पानीपत और तराई का उगहन व यद्धांग है जहाँ भारत के ऐतिहासिक प्रवाह की मेढ़ने वाले भयानक युद्ध भारत का सबसे समृद्धता भी भाग है का कारण इसी भाग पर मदैव आक्रमण है। मगध राजनैतिक जातिवा राज्यों का उत्थान और पठन भीड़ जैन तथा बौद्ध का जन्म तथा प्रचार, माहिष्य धर्म काय्य तथा कला इत्यादि का उत्थान के इसी भाग में हुआ।

उत्तरी मैदान को पश्चिमी भाग का प्रदेश यद्यपि स्वास्थ्यकर है परन्तु भूमि ऊँ होते हुए भी शोषा को उपरपृति के क्रिये काफी परिश्रम करना पड़ता रहा और साहसी तो ये प्रकृति से संघर्ष करते रहने के कारण ही बन गये। परन्तु पश्चिम से सदा आक्रमण होते रहने के कारण ये कभी भी शान्तिपूर्वक नहीं रहे यह भूभाग भारत का अप्रति प्रकृति-सा सदा ही संचल रहा है। यद्यपि यहीं पर गाँदी की सम्पत्ता का विकास हुआ था परन्तु जायों के जाने के पश्चात् से तात्क तथा राजनैतिक संघर्ष-मुक्त के कारण यहाँ सांस्कृतिक वृद्धि अधिक न हो

उत्तरी मैदान के दक्षिण-पश्चिम से राजपूताना का मस्स्थल है जो दो भागों में भी की पहाड़ी द्वारा विभाजित है। पूर्वी भाग कुछ उपजाऊ है और यहाँ के जों को दिल्ली के सगढों से सबै संघर्ष करना पड़ा। पश्चिमी भाग अधिक मरु-है। यहाँ के लोग स्वाभाविक ही और और कठिनाइयों का सामना करने में त हो जाते हैं।

उत्तरी मैदान के पूर्वी भाग में बंगाल तथा आसाम स्थित है। प्रकृति ने इन को अत्यन्त समृद्धिवासी बनाया है। यद्यपि यहाँवाले अधिक स्वास्थ्यकर नहीं हैं शारीरिक दुर्बलता को यहाँ के निवासी मानसिक शक्ति से सदा ही पूरा करते रहे आक्रमणकारियों से दूर होने के कारण यहाँ के निवासी युद्ध-कला से अधिक परिचित थे। कोई भी आक्रमणकारी इस देश को जीतने के पश्चात् यहाँ के शासनपर विहित हुए बिना न रह सका। तथा अपने की भारत के अन्य भागों से पुष्कल ने जमा। यही कारण है कि यहाँ सर्वदा स्वतंत्र राज्यों की स्थापना होती है।

(१) दक्षिण के पठार—आर्यावर्त के दक्षिण के देश को दक्षिण का पठार विभज्य कहते हैं। यह भूभाग सिन्ध, सत्युजा तथा अमरकंटक पर्वतमाला द्वारा शर् से विभाजित है। दक्षिण के पठार में दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। उत्तर का भाग का प्रोटेसर परमात्माचरण ने सिन्धु मेखका कहा है। इस प्रदेश बेल्संड, बबेलसंड तथा मारुवा के प्रदेश जाते हैं जो सबै अपनी स्वतंत्रता में स्थापित करते रहे हैं। ताप्ती नदी के दक्षिण पठार को हम वास्तविक दक्षिण कह सकते हैं। इस पठार की मूलका आधुनिक मैसूर राज्य तक फैली है। तथा सत्युजा पर्वत ने इस भूभाग को उत्तरपथ से इस प्रकार पुष्कल कर रखा उत्तर की बटनारों का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। भूमि पर्वतीय होने के यहाँ के निवासी परिश्रमी तथा परिश्रम की मर्चा को समझते रहे हैं।

दक्षिणी पठार के दोनों किनारों पर समुद्र है और इस पठार के पश्चिम तथा में पहाड़ियाँ हैं जो एकाएक समुद्र की तरफ ढलान से समतल हो जाती हैं। नी किनारे की समतल भूमि चौड़ाई से कम है और पहाड़ियाँ कुछ सीमा अधिक ही पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश के बँक में महाराष्ट्र का देश स्थित है।

पूर्वी किनारा चौड़ाई में अधिक है। नदियाँ भी इसी हैं कि पठार का इनके साथ सम्बन्ध रह सकता है। इसी देश में तामिसनाड टेक्निना द्वारा समुद्र इत्यादि हैं।

यद्यपि समुद्र का किनारा अधिक कटा नहीं है परन्तु इसका व्यवसाय है कि पुष्कर तथा सुसहित बनरबाह बन सकते हैं।

पश्चिमी किनारे पर सोरठ (सूरत), पोरबन्दर, बम्बई तथा गोवा मु
पूर्वी किनारे पर बिद्यासायनम मसुकीपटनम प्राचीन काल से ही भारतवर्ष के हैं।

भौगोलिक परिस्थिति का भारतवर्ष के इतिहास पर प्रभाव।

ऊपर हम भारतवर्ष के प्राकृतिक विभाग का अध्ययन कर चुके हैं और
यहाँ पर उनके प्रभाव का संकेत भी करते आये हैं।

राजनैतिक दृष्टिकोण से भारतवर्ष के इतिहास में साम्राज्य का उदय
और पतन नए साम्राज्य का बनना तथा उसका विनाश एक नियम-सा प्रतीत होता
यहाँ राजनैतिक क्षेत्र में कभी सांख्यिक विचारधारा की सामृद्धि नहीं हुई। इस प्रा
के प्रसंगों का उत्तर हम भारतवर्ष की भौगोलिक परिस्थिति के आधार पर यहाँ के इति
का अध्ययन करने से प्राप्त कर सकते हैं।

आर्यावर्त की समस्त भूमि में नदियों के बीच राज्य का संमेलन सरल था
यही कारण था कि यहाँ कई राज्य बन जाते थे। सब ऊँच भूमि के कारण समृद्धि
भी हो जाते थे। जन की प्रचुरता से विकासप्रिय हो जाते। अपने आपको
सिद्ध करने के लिये पड़ोसी राज्य पर आक्रमण भी करते। परन्तु जब कभी
सक्तिशाली व्यक्ति राज्य पर बैठता तो अपनी महत्वाकांक्षा को साम्राज्य रूप में परि
कर राज्य को चरम सिद्धर पर पहुँचा देता। इस विचार रीति में सर्वत्र सुगम
यातायात करना सम्भव न था जिसके कारण राज्य के दूरदर्शी प्रांतीय शासक
केन्द्र के दुर्बलता से काम उठाकर स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करते
और समय-समय पर सफलतापूर्वक भी होते थे। परन्तु केन्द्र में फिर नए व्यक्ति
प्राबुध्वाँव से इन प्रांतों को केन्द्र के अधीन होना पड़ता। इस प्रकार आर्यावर्त
बन बैतन तथा समृद्धि ने सदा से ही यहाँ के राज्य को अधिक सक्तिशाली
रखा। दूरदर्शी राज्यों को अपने बल की कमी के कारण ही आर्यावर्त के साम
का भय बनना पड़ा।

उत्तर का मैदान समतल तथा उपजाऊ होने के कारण कृषि-महान रीति हो
प्रधान का अपनी भूमि से अधिक प्रेम होगा स्वाभाविक ही है। कृषि कार्य के लिए
में शान्ति रहना भी आवश्यक होता है। अतः किसान सदा एक सक्तिशाली भावना
नाश देता रहा है। निर्विक शासक की जब कभी बसबाग व्यक्ति ने हुंदा कर शासन
बापझोर को रौंदाया किसान ने नए राजा का स्वागत किया। यहाँ के शासक भी नि
के इस मानसिक प्रतिक्रिया से परिचित थे और किसान के भूमि पर अधिकार
मान करने थे। किसान के अधिकार के कारण भारत में सामन्तशाही प्रथा (Feo
dalism) कभी भी न आ सकी। राजा के कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यक
किसान को कभी भी नहीं पड़ी। जहाँ यूरोप के मुल्कासन के लिये सामन्त सड़ते रहे
में किसान राजा के इन सक्तिधर्मों को समझ करन में सहायता देते रहे।

समृद्धिवादी देश में शासक के बहुतायत के कारण यहाँ के निवासियों का
समय बच रहता। ऐसे समय में लोग आनन्द-मग्न में बिताते। आनन्द-मग्न से त
संस्कृति में वृद्धि हुई। जब लोगों को मेहनत करने की आवश्यकता न पड़ती थी।
ऐसे लोग प्राकृतिक शक्तों को समझने में उमझते लगे। प्रकृति की मोद में
मातावरण के कारण इन्हें प्रकृति की बिपदाओं का बोध होने लगा। यहाँ
है कि आर्यों की यही धारणा आ भारत में आई जहाँ वेद उपनिषद् ऐसे प्रसंगों की

जिस समय विश्व खो रहा था भारत आध्यात्मिक विचार के सोपान पर क्रमशः चला जा रहा था।

आधुनिक दृष्टिकोण से भी भारतवर्ष के इतिहास पर यहाँ के भौगोलिक परि-
का काफ़ी प्रभाव पड़ा है। आर्यावर्त के समस्त भूमि के बारे में हम अभी बता-
ते हैं कि यह भूभाग जन-साध्य से परिपूर्ण था। समस्त होने के कारण आशान-
भी काफी सम्भव था। आधुनिक की आवश्यकता समाज ने स्वीकार की थी,
आधुनिक संस्कृति भी बनने लगे थे। देश अथवा देश का पालन-पोषण करने लगा।
बहुतायत होने के कारण यहाँ के निवासी अन्य देशों में उद्योग-पट्टि के लिये नहीं बर-
का संशय लेकर जाते थे। भारत का विदेशी साम्राज्य न होने का प्रमुख कारण
है। यहाँ समुद्र का किनारा दूर होने के कारण यहाँ नीचस्ति की आवश्यकता
ने अनुभव नहीं हुआ। व्यापार के लिये देश के भित्त-भित्त प्राप्त ही पर्याप्त थे।
इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष के इतिहास पर यहाँ के भौगोलिक
स्थिति का पूर्ण रूप से प्रभाव पड़ा है।

भारतवर्ष की भौतिक एकता

भारतवर्ष के विभिन्न प्रकार के जलवायु, प्राकृतिक अवस्था आधुनिक विचारधारा
आधुनिकों को देख कर बहुत सख्त उत्पन्न होता है कि क्या भारतवर्ष एक देश
क राष्ट्र है। इसमें तो कोई संदेह नहीं भारत भूमि हिमालय से लेकर कुमायूँ भू-
तक किनारे ही प्रकार के प्राकृतिक रूप उपस्थित करती है। परन्तु भौगोलिक
कोष से यह भिन्नता एक देश में होना उस देश की महानता का प्रतीक है।
यह ने भारत की स्वाभाविक सीमा बनाकर उसे एक देश बना रखा है। भारत
उत्तरी हिमालय पर्वतमाला ने भारतवर्ष को एशिया के अन्य देशों से अलग कर
दि एकता को बहुत दृढ़ कर दिया है। प्राचीन आधुनिक दोनों में भी भारतवर्ष का
एक देश के रूप में हुआ है।

राजनैतिक दृष्टिकोण से भी भारतवर्ष एक देश रहा है। इसमें संदेह नहीं कि
तीनों प्रांत सदा अपने को केंद्र से स्वतंत्र करने का प्रयत्न करते रहे हैं। परन्तु ऐसा
स केवल यहाँ के अधिकारियों का ही होता था बाकी जनता का। जनता सदा
भारत को एक देश समझती आई है। आज भी देश के राजनीतिक नेता अपनी स्वार्थ-
के लिये निर्बीज जनता में संयुक्तही वीरता करने पर भी अपनी स्वार्थसिद्धि में
स सफल नहीं हो पाये हैं। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में समय-समय पर ऐसे
दि हुए हैं जो भारत में एक राज्य स्थापित करने में सफल रहे हैं। सम्राट अशोक
राज्य सारे भारत में फैला हुआ था। मुसलमान काल में भी सारे भारतवर्ष पर एकछत्र
प्राप्त रहा है। अतः हम देखते हैं कि भारत की राजनैतिक एकता की भावना
आधुनिक विचारधारा नहीं है बल्कि यह भारत में प्राचीन काल या युग-युग स
आ रही है।

भारतवर्ष की भौतिक एकता की सबसे बड़ी शक्ति यहाँ की संस्कृति में निहित है।
हम मानेंगे कि भारत-वासी के विचार, आदर, आदरों के प्रति आदर, आदरों के प्रति आदर
ही निहित है। देश के लोहार जैसे विचारों इस प्रकार होनी पक्क़ी प्रभाव
मानों में पाये जाते हैं। यहाँ तक कि इस्लाम धर्म की अपनाते पर भी यहाँ के
ही अपनी पुरानी बातों की सर्वथा भूल नहीं पाये और भारत में इस्लाम का
ही कुछ और बन गया विचार-धर्म की प्रभाव, धर्मियों का समाज में स्थान आदि

ऐसी भावनाएँ सारे देश में एक-सी ही मिलती हैं। इस प्रकार हम कहते हैं कि भारत की विचारधारा में एकता है।

कुछ विदेशी विद्वान भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न जम्मों में भिन्नता ही देखते हैं। परन्तु इन जम्मों के मूल में जो एकता है उसे वे मूल जाते हैं। देश के प्रत्येक भाग में वेद पीठा महाश्रम्यों का समान आदर है। बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म भी धार्मिक विचारधारा की अद्विष्टता को दूर करने का प्रयास माने हैं। भारत में धार्मिक सहिष्णुता मशहूर रही है और इस विचारधारा का समान आदर होता रहा है। यही कारण है कि अनेक मत पाये जाते हैं। परन्तु सब उस एक परमब्रह्म परमात्मा को ही आधार मानते हैं। भारतवर्ष के तीर्थ स्थान सबक लिए एक समान हैं। और ये तीर्थ स्थानांशारे भारत में फैले हैं। उनका विस्तार हिमालय पर्वत से कुमायी अमरीप तक है जैसे कैलाश कदाजान बडीलाज कायी प्रयाग जयलापपुरी डारकाजान रामेश्वरम् कन्या कुमायी कामाया देवी इत्यादि इत्यादि।

इस प्रकार हम कहते हैं कि भारत के मौलिक एकता की विशेषता यह है कि यहाँ भिन्नता में एकता पाई जाती है। भारत निम्नोह एक देश का और एक राष्ट्र भी। अपनी अज्ञानता के कारण ही हम इसमें समझ करते हैं।

भारत के निवासि

आज भारतवर्ष में जो लोग रहते हैं उनके आकार, धारीक गठन रंग इत्यादि को देखन में हमें अनुभव होता है कि लोग एक मूबस के नहीं हैं। मूबस (Races) की इज्जिका से भारत में इतने अधिक racial elements मिलते हैं कि इन रंग को यदि हम जातियों का अनायवपर नहें तो अतिगयोक्ति नहीं होगी। इस प्राचीन देश में समय-समय पर लोग आए और बस बसे। फिर यहाँ के लोगों से कुछ मिल गये इस प्रकार यह कम भारत में बढ़ाकर चलता आ रहा है। यहाँ के निवासियों का जार जर्मों में वर्गीकरण किया जा सकता है। परन्तु इनमें भिन्नता अवरप है। य वर्ग इस प्रकार है

(१) इन्डो-आर्यन—भारत के उत्तर में पाये जाते हैं। जर में लम्ब तथा इनका रंग कुछ माफ होता है।

(२) ड्रविड—ये लोग भारत के दक्षिण के उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों में पाये जाते हैं। इनका रंग कुछ मोवला तथा कद कुछ कम होगा है।

(३) आरिहुक—इन जर्मों में नीलमिरि के टीठा कोल नीलवाट तथा संधान आदि गिने जाते हैं।

(४) मंगोल—इन जर्मों के लोग आनाम उत्तर-पूर्व बंगाल तथा हिमालय की गगई में पाये जाते हैं। इनका चेहरा कुछ चरटा रंग पीला और आँखें छोटी हानी हैं।

मदन

1 Discuss the physical features of India How have they influenced the course of its history ? (1947 52 53)

(भारतवर्ष की भौगोलिक विशेषताओं का विवेचन कीजिये। उनका भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा ?)

2. "Geography is the foundation of all historical knowledge" Illustrate the truth of this statement with regard to the political, cultural and economic conditions existing in India prior to 1826. (1953, 54)

(“भूगोल ऐतिहासिक ज्ञान का आधार है।” १५२६ से पूर्व भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक अवस्थाओं की व्याख्या करते हुए इस कथन की सत्यता पर विचार कीजिये।)

3. "India offers unity in diversity" Discuss.

(‘भारत के विपरीत में ही एकता मिलती है’ व्याख्या कीजिये।)

अध्याय २

भारतीय इतिहास के स्रोत तथा साधन

(प्राचीन काल से १५२६ ई० तक)

प्रत्येक देश का अपना-अपना इतिहास होता है। इसी इतिहास पर उसे गर्व होता है। पूर्वजों द्वारा किए गए महान कार्यों पर किने गए न होना किन्तु इस बहुत पुराने समय में राजनीतिक सामाजिक आर्थिक तथा आधिपत्य क्षेत्र में इन पूर्वजों ने किन्तु उपनिष्ठा कर भी की यह कैसे जाना जाय ? हम अपने देश का इतिहास भी किन साधनों द्वारा जान सकते हैं। इतिहास मानव की विषय विविध घटनाओं का ही ब्रह्मण नाम है। और इन घटनाओं का ज्ञान मानव की कृतियों द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इन कृतियों को हम उनके साहित्य तथा निजीय कार्य के रूप में प्राप्त करते हैं। साहित्य में एक अंग देना भी जो ऐतिहासिक घटनाओं को निविष्ट कर लेता है। ऐसे साहित्य को आजकल इतिहास कहते हैं।

विदेशी विद्वानों का यह कहना है कि हमारे पूर्वजों को इतिहास लिखना नहीं आता था क्योंकि भारतीय भाषाओं में प्राचीन काल का अपना कोई इतिहास उस समय नहीं लिखा था। यूरोप के वे विद्वान् यह बताते हैं कि हमारे पूर्वजों को इतिहास से प्रेम ही नहीं था इसीलिए वेर उनिहस केरार करार जैसे महान् घन्नों की रचना करने वाले हमारे पूर्वजों ने आरतवर्ष का कोई इतिहास नहीं लिखा। किन्तु यह बात अक्षर्य नय नहीं है। हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि हमारे पूर्वजों ने काकर हेरोडोटस की भाँति यूनान का कोई इतिहास (काकर हेरोडोटस का ग्रन्थ 'हिस्ट्रीज') नहीं लिखा और न उन्होंने किसी की भाँति रोम का इतिहास 'एनल' ही लिखा। पर हमने यह नहीं समझना चाहिए कि उन्हे इतिहास लिखना नहीं आता था अथवा इतिहास रचना में उनकी रुचि नहीं थी। जब तक यह है कि प्राचीन भारतीय भाषों में अथ विनया की भाँति इतिहास रचना में भी उनकी रुचि न थी। ही एक बात अक्षर्य है कि उनकी इतिहास की परिभाषा कुछ भ्रमर्य थी और उनी आचार पर उन्होंने इतिहास लिखा। न इतिहास की किन कृष्टि में वेगने वे उमका एक उदाहरण देना आक्षर्यक है—

पुरातमिनिद्वन्मात्राविकाराहृण्यं पर्यवर्तमानं शास्त्रवेतिहासः

अर्थात् पुरातम इतिद्वन् मात्राविकारा उदाहरण पर्यवर्तमान और अवेगाम्य ही प्राचीन भाषा का इतिहास-आर्य्य था। उनकी इन परिभाषा की ध्यान में रखन हुए प्राचीन भाषा का साहित्य देखने पर यह मान्य होया कि प्राचीन भाषा में इनका अधिक इतिहास लिखा कि उनका नमरन और किसी उदाहरण न नहीं लिखा। एक बात अक्षर्य है पुरातम इतिद्वन् मात्राविकारा उदाहरण आदि की निषर्द्ध पचा देने के कारण प्राचीन भाषा द्वारा लिखा गया 'इतिहास' आर्य के पर्यायिण अर्थ में इतिहास नहीं पर न्या वेरुष्टि उनमें पूर्व ऐतिहासिक घटनाओं के माध-आय कुछ अर्थ ऐतिहासिक का माना

निक घटनाएँ भी जोड़ दी गई हैं। इन इतिहासों में एक कमी और भी है वह यह कि इनमें तथ्यों का कोई ध्यान नहीं रखा गया है। जिस प्रकार एक कहानी कहने वाला कहता है—'बहुत दिनों की बात है कि किसी वेष में एक बहुत ही प्रतापी राजा राज्य करता था। अथवा 'किसी समय में एक राजा या' आदि-आदि कमभग इसी प्रकार हमारे प्राचीन साहित्यकारों ने अपना इतिहास लिखा है। तथ्यों के नाम पर कुछ किया तो बार मुँहों (सत्यम जेठा हापर तथा बलियम) में पूरा कास बाँट दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ अनैतिहासिक या कार्यात्मक घटनाओं का बाहुल्य और तथ्यों का अभाव इन दो कारणों से ही प्राचीन भाषों द्वारा लिखा गया इतिहास आज के विपुल ज्ञान में इतिहास बने जहाँ पर इसमें संदेह नहीं कि भाषों के साहित्य में ऐतिहासिक सामग्रियाँ इतनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं कि कोई व्यक्ति जीवन पर्यन्त इनका अनुसंधान करता रह सकता है।

मानव के प्राचीन काल की इतिहासों जो उनके निर्माण-कार्य के रूप में वे समय के प्रवाह के साथ-साथ टूट गए जब स्थापित हो गये वा मूक्य में दब गये। ऐसे ही मकानों मृदाओं सामग्रियों तथा अभिलेखों के अध्ययन के लिये पुरातत्व विभाग (Archaeological Department) की स्थापना की गई। इस पुरातत्व विभाग के कर्मचारियों से हमें पता चलता है कि प्राचीन काल के सामग्रियों का ध्यान रखना तथा उनसे संबंधित घटनाओं या राज्य-विस्तार का भी पता चलता है। इन इतिहास जानने का दूसरा साधन पुरातात्विक सामग्री कहें जा सकते हैं।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इतिहास जानने के दो साधन हैं—

१ साहित्यिक तथा

२ पुरातात्विक

नीचे इन साधनों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इन साधनों का अध्ययन इतिहास जानने की दृष्टि से बहुत ही आवश्यक है क्योंकि बार-बार हम माने इनका उल्लेख करेंगे और यदि विद्यार्थियों ने इन साधनों का सम्यक अध्ययन नहीं कर लिया तो माने कठिनाई पड़ेगी।

साहित्यिक सामग्री

साहित्यिक सामग्री से अभिप्राय लिखित ग्रन्थों से है जो कई प्रकार के हैं—

(१) कुछ ग्रन्थ विस्तृत नाविक हैं और (२) कुछ दृष्टिकोणपरक या लौकिक हैं। नाविक ग्रन्थ भी दो प्रकार के हैं—(क) कुछ ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं और (ख) कुछ अथर्ववेद (जैन तथा बौद्ध ग्रन्थ) इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में भी फिर कई भेद कर दिये गये हैं।

अगर नाविक साहित्य न पढ़ें और उपमहर्षों का उल्लेख किया गया है। यहाँ दृष्टिकोणपरक या लौकिक साहित्य के भेदों को भी जान लेना चाहिए। दृष्टिकोणपरक साहित्य के कुछ पाँच भेद हैं—

(क) ऐतिहासिक (ख) अर्ध ऐतिहासिक (ग) विदेशी विवरण (घ) जीवनियाँ तथा (ङ) कल्पना प्रधान एवं मल्ल साहित्य (विपुल साहित्य)।

नीचे के चित्र से साहित्यिक सामग्री के भेदों-उपभेदों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त

भारतीय इतिहास के स्रोत तथा साधन

(प्राचीन काल से १५२६ ई० तक)

प्रत्येक देश का अपना-अपना इतिहास होता है। इसी इतिहास पर उसे सर्व खूब है। पूर्वजों द्वारा किए गए महान कार्यों पर किन्ने सर्व न होगा किन्तु इस बहुत पुराने समय में राजनीतिक सामाजिक आर्थिक तथा आर्थिक क्षेत्र में इन पूर्वजों ने कितनी उपलब्धि कर ली थी यह कैसे जाना जाय ? हम अपने देश का इतिहास भी किस साधनों द्वारा जान सकते हैं। इतिहास मानव की विषय निश्चित घटनाओं का ही दूसरा नाम है। और इन घटनाओं का ज्ञान मानव की इच्छाओं द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इन इच्छाओं को हम उनके माहिल्य तथा निषेध कार्य के रूप में प्राप्त करते हैं। साहित्य में एक अर्थ ऐसा भी है जो ऐतिहासिक घटनाओं को निषेध कर लेता है। ऐसे साहित्य को आश्रित इतिहास कहते हैं।

विदेशी विद्वानों का यह कहना है कि हमारे पूर्वजों को इतिहास सिखना नहीं आता था अर्थात् भारतीय भाषा में प्राचीन काल का अपना कोई इतिहास उस समय नहीं लिखा था। यूरोप के ये विद्वान् यह बताते हैं कि हमारे पूर्वजों को इतिहास से प्रेम ही नहीं था इन्होंने केवल उपनिषद् वेदांग आदि जैसे महान् ग्रन्थों की रचना करने वाले हमारे पूर्वजों ने आरम्भिक काल कोई इतिहास नहीं लिखा। किन्तु यह बात अक्षरशः सत्य नहीं है। हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि हमारे पूर्वजों ने कादर हेरोडोटस की भाँति यूनान का कोई इतिहास (कादर हेरोडोटस का ग्रन्थ 'हिस्ट्रीज') नहीं लिखा और न उन्होंने लिबी की भाँति रोम का इतिहास 'एक्स' ही लिखा। पर हमने यह नहीं समझना चाहिए कि उन्हें इतिहास लिखना नहीं आता था अथवा इतिहास रचना में उनकी रुचि नहीं थी। यथार्थ यह है कि प्राचीन भारतीय भाषा में जगत् विद्या की भाँति इतिहास रचना में भी रुचि थी। यमान लिये ली थी। हाँ एक बात अक्षरशः है कि उनकी इतिहास की परिभाषा कुछ दूसरी थी और उसी आधार पर उन्हीं इतिहास लिखा। वे इतिहास को जिस दृष्टि से देखते थे उसका एक उदाहरण देना आवश्यक है—

पुराणमिन्दुलभाष्यायिकीराष्ट्रणं धर्मशास्त्रार्थं शास्त्रं च इतिहासः

अर्थात् पुराण इतिहास आख्यायिका उदाहरण धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र ही प्राचीन भाषा का इतिहास-शास्त्र था। उनकी इस परिभाषा का ध्यान में रखते हुए प्राचीन भाषा का माहिल्य देखने पर यह मान्य होया कि प्राचीन भाषा में इनका अर्थ इतिहास लिखा कि उनका अर्थ और विभिन्न वेदांगों में नहीं लिखा। एक बात अक्षरशः है पुराण इतिहास आख्यायिका उदाहरण आदि की निम्नलिखित बातें के कारण प्राचीन भाषा द्वारा लिखा गया 'इतिहास' आज के वैज्ञानिक अर्थ में इतिहास नहीं रह गया क्योंकि उनमें पूर्व ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ कुछ अन्य अनैतिहासिक बातें

निक बटनाएँ भी जोड़ दी गई हैं। इन इतिहासों में एक कमी और भी है यह यह कि इनमें विषयों का कोई ध्यान नहीं रखा गया है। जिस प्रकार एक कहानी कहने वाला कहता है—'बहुत दिनों की बात है कि किसी देश में एक बहुत ही प्रतापी राजा राज्य करता था। मरना किसी समय में एक राजा था' आदि-आदि समान इसी प्रकार हमारे प्राचीन साहित्यकारों ने अपना इतिहास लिखा है। विषय के नाम पर कुछ किया तो बार-बार युगों (सप्तयुग तथा द्वापर तथा कलियुग) में पूरा कास बँट गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ अतिव्यापक या कास्मनिक बटनाओं का बाहुल्य और विषय का अभाव इन वाक्यों से ही प्राचीन आर्यों द्वारा लिखा गया इतिहास आज के विद्वत् जगत् में इतिहास बने न हो पर इसमें समझ नहीं कि आर्यों के साहित्य में ऐतिहासिक सामग्रियाँ इतनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं कि कोई व्यक्ति जोबन संपन्न इनका अनुसंधान करता रह सकता है।

मानव के प्राचीन कास की कृतियाँ जो उनके निर्माण-कार्य के रूप में वे समय के प्रवाह के साथ-साथ दूट गये एक स्थायित्व ही बचे या भूकम्प में बच गये। ऐसे ही मरनी मृताओं सामग्रियों तथा अभिलेखों के अध्ययन के लिये पुरातत्व विभाग (Archaeological Department) की स्थापना की गई। इस पुरातत्व विभाग के जुराइसों से हमें बरती के नीचे दबी सम्पत्ता का तथा प्राचीनता के सम्राटों का धामनकास तथा उनसे संबंधित बटनाओं या राज्य-विस्तार का भी पता चलता है। अब इतिहास जानने का इनका साधन पुरातात्विक सामग्री बने जा सकते हैं।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इतिहास जानने के दो साधन हैं—

१ साहित्यिक तथा

२ पुरातात्विक

नीचे इन साधनों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इन साधनों का अध्ययन इतिहास जानने की दृष्टि से बहुत ही लाभदायक है क्योंकि बार-बार हम जाने इनका उत्सव करने और यदि विद्यार्थियों ने इन साधनों का सम्यक् अध्ययन नहीं कर लिया तो जाने कठिनाई पड़ेगी।

साहित्यिक सामग्री

साहित्यिक सामग्री में अग्निप्राय लिखित ग्रन्थों से ही जो कई प्रकार के हैं—

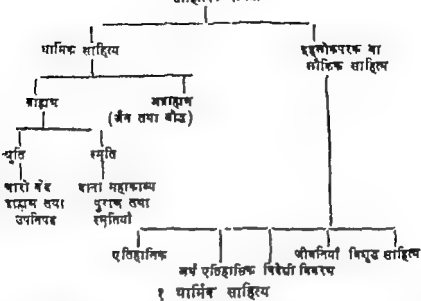
(१) कुछ ग्रन्थ विस्तृत बार्मिक हैं और (२) कुछ इहलोकपरक या लौकिक हैं। बार्मिक ग्रन्थ भी दो प्रकार के हैं—(क) कुछ ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं और (ख) कुछ अथर्ववेद (जैन तथा बौद्ध ग्रन्थ) इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों के भी फिर कई भेद कर दिये गये हैं।

ऊपर बार्मिक साहित्य के भेदों और उपभेदों का उत्सव किया गया है। यहाँ इहलोकपरक या लौकिक साहित्य के भेदों को भी जान लेना चाहिए। इहलोकपरक साहित्य को कुछ पाँच भेद हैं—

(क) ऐतिहासिक (ख) अर्थ ऐतिहासिक (ग) विदेशी विवरण (घ) जीवनियाँ तथा (ङ) कल्पना प्रधान एवं गल्प साहित्य (विद्वत् साहित्य)।

नीचे के चित्र से साहित्यिक सामग्री के भेदों-उपभेदों का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त हो जायगा।

साहित्यिक गाम्भी



शास्त्र का

वेद—आर्यों ने सबसे पहले जिन जम्हों की रचना की वे क्रमशः 'ऋग्वेद', 'सामवेद', 'यजुर्वेद' तथा 'अथर्ववेद' हैं। इन चारों वेदों में प्राचीनतम वेद 'ऋग्वेद' है तो इनमें आर्यों के भारत में प्रसार, अन्तर्गत से उनका संबंध आदि के विषय में पूरा पूरा विवरण प्राप्त होता है। वेदों के अन्तर्गत में आर्यों के प्राचीन धर्म के विषय में हम विस्तृत ही नहीं जान पाते।

शास्त्र—चारों वेदों की जो मध्य टीकाएँ हुई उन्हें शास्त्र कहा जाता है। ये वैदिक जम्हों का पूरा-पूरा बोध कराते हैं। प्राचीन शास्त्रों में 'ऐतरेय', 'पञ्चविंश', 'तन्त्र', 'तैत्तिरीय' आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। 'ऐतरेय' शास्त्र में हमें प्राचीन अभिहित राजाओं के नामों तथा साम्प्रदायिक आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार 'तन्त्र' शास्त्र भारत इतिहास पर महत्त्वपूर्ण साक्ष्य तथा वैदिक आदि और प्राचीन वेदों का पक्ष तथा विवेक पर कुछ प्रकाश डालता है। मुद्रित आदि राजा परीक्षण तथा उनके आदि आदि के भारतीय इतिहास का ज्ञान शास्त्र द्वारा बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

उपनिषद्—उपनिषद् जम्हों में परीक्षण उनके कुछ अन्तर्गत तथा आदि के राजाओं के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। यह तो यह है कि शास्त्रों और उपनिषद् के अभिहित अध्ययन में ही हमें परीक्षण सत्तर विभिन्नतर के इतिहास की कुछ जानकारी प्राप्त होती है। उपनिषद् में भारतीय दर्शन का भी रूप हो जाता है।

वेदान्त—वेदान्त में वैदिक अध्ययन के निमित्त विभिन्न विचारों की जानकारी का ज्ञान हुआ जो वेदान्त का नाम से विख्यात है। ये वेदान्त का अन्तर्गत इस प्रकार विख्यात है।

शिक्षाकल्पो व्याकरण मरुतं छन्दो ज्योतिषम्

अर्थात् विज्ञा (Phonetics) कस्य (Ritual) व्याकरण (Grammar), रसत (Etymology) छन्द शास्त्र (Metric) तथा ज्योतिष (Astronomy) शंग की छ शास्त्राओं से ही वैदिक पाठों को सरल एवं सुबाध बनाया गया। भाषे स्वर इन विषयों के पठन-पाठन में कुछ परिवर्तन हुए और इन प्रकार वैदिक पाठों में अन्तर्गत ही उनका पुनरुद्भव एवं स्थापित हो गया। इन्हीं वर्गों के पाठ्य ग्रन्थों के य में सुबो का निर्माण हुआ। ये चार प्रकार के हैं—धीन सूत्र जो महामन्त्रों से सम्बन्धित हैं पृथक् सूत्र जो बृहत्संस्कारों पर प्रकाश डालने हैं धर्म-सूत्र जो धर्म या नियमों का बोध कराते हैं तथा सूक्त सूत्र जो हवन-हुण्ड की वेदों की गण अर्थात् यज्ञ सम्बन्धी विभिन्न विधानों पर प्रकाश डालता हैं। इन सूत्रों से प्राचीन भारतीय ज्ञानों का गमिक और सामाजिक जीवन बनी भाषि जाना जा सकता है। भारतीयों की सामिक वस्त्रा का पूर्ण परिचय कराने वाला यदि कोई साधन है तो वह है वेदांग।

दो महाकाव्य—हमारे आदि महाकाव्य रामायण तथा महाभारत प्राचीन भारतीय इतिहास पर काफी प्रकाश डालते हैं। महाकवि वाल्मीकि ने मर्यादापुरवोत्तम राम की जीवनी लिखकर हमें उत्कामीन भारतीय जीवन का दशन कराया है। दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता के प्रसार का भी सूक्ष्म परिचय हमें उक्त ग्रन्थ से मिलता है। रामायण वहाँ एक ओर सामिक ग्रन्थ है वहाँ दूरी ओर वह एक साधिव राजवत्त का इतिहास भी है।

रामायण के अतिरिक्त हमारे पास बहुत महाकाव्य भी हैं महाभारत। महा भारत के रचयिता व्यास मुनि बताते जाते हैं किन्तु इस महाकाव्य के दो संस्करण हुए—जब भारत तथा महाभारत। जब हम वर्तमान महाभारत पर दृष्टि डालते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि यह प्राचीन इतिहास साक्षात्कारों कथाओं तथा उपदेशों का संग्रह है। इन सारी कथाओं का सम्बन्ध अत्यन्त तथा अत्यन्त रूप में इतिहास से जोड़ा जा सकता है। उपदेशों की भाषा के वैदिक और सामाजिक जादृष्ट रूप में स्वीकार किया जा सकता है। महाभारत में विषुव राजनीतिक घटनाएँ भी मिलती हैं जिन पर काफी विरवास किया जा सकता है। हाँ एक कठिनाई अवश्य पड़ती है वह यह कि महाभारत का रचयिता किसी भी घटना की विधि नहीं बता है।

ऊपर बताए गए दोनों महाकाव्यों में विरोध महाभारत में हमारे इतिहास की इतना अधिक प्रकाशित किया गया है कि कुछ इतिहासकारों ने तो इसे आदि इतिहास तक की संज्ञा दे दी है। इससे यह मान्य होता है कि दोनों महाकाव्य का महत्त्व इतिहास जानने के साधन के रूप में बहुत है किन्तु यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि विधियों के अभाव के साथ-साथ इन दोनों महाकाव्यों में एक सबसे बड़ी कमी यह है कि इनमें प्रविष्टाओं का बाहुल्य है अर्थात् अनेक अध्यायों में अनेक स्मक मूक सैनिक के लिखे हुए न होकर बार के जोड़े हुए हैं। इस कमी के कारण दोनों महाकाव्यों का ऐतिहासिक महत्त्व कुछ घट जाता है।

पुराण—ज्यों ने भारत में साहित्य प्रगति की वह अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। उनकी इन साहित्यिक प्रगति की महत्ता में अनिश्चित करने वाले ग्रन्थ पुराण हैं जिनकी रचना ज्यों ने पतामिष्यों में की। पुराणों की संख्या १८ है। इन पुराणों ही में पहले-पहल इतिहास की प्रगति मिलती है क्योंकि कुछ पुराणों में 'ब्रह्मानुचरित' (प्राचीन राजकुलों की इतिवृत्ति) है जिससे हमें बहुत कुछ एतिहा

२ इहलोकपरक साहित्य

ऊपर हमने धार्मिक साहित्य का पूरा विवरण प्रस्तुत किया है। अब इहलोकपरक या सौक्य साहित्य पर विचार किया जायगा। आपको याद होगा कि अम्बयन की मुद्रिका के लिए इहलोकपरक साहित्य को पाँच विभागों में बाँट दिया गया है। यहाँ उन पर एक-एक प्रकाश डाला जायगा।

ऐतिहासिक ग्रन्थ

ऐतिहासिक ग्रन्थों से हमारा अभिप्राय उन ग्रन्थों से है जो हमारे देश की राज नीतिक, सामाजिक धार्मिक आर्थिक आदि परिस्थितियों पर प्रकाश डालती हैं क्योंकि इन्हीं विषयों को इतिहास का विषय कहा जाता है। हमारी इस परिभाषा में जिनने भी ग्रन्थ आर्देन उनका संक्षिप्त विवरण ही यहाँ दिया जा सकता है।

राजतरंगिणी—काश्मीर के भुवमिन्द्र विज्ञान् कश्यप द्वारा १२वीं सताब्दी में लिखा गया यह ग्रन्थ भारत का पहला ऐतिहासिक विद्युत ग्रन्थ है। कश्यप का दृष्टिकोण पूर्णतया ऐतिहासिक है। उसने काश्मीर का इतिहास आदि काल से लेकर अपने समय तक का लिखा है। इस ग्रन्थ से हमें काश्मीर का पूरा-पूरा इतिहास मिल जाता है।

काश्मीर के अन्य इतिहास—काश्मीर में कश्यप ने विधिकमानुसार इतिहास लिखने की जो परम्परा बनाई उसका अनुसरण अनक काश्मीरी विद्वानों ने किया। इनमें जीन राज बीबर राजबट्ट आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

गुजराती इतिहासकार—विभिन्न प्रकार काश्मीर के विद्वान् अपने नरसों का गुजगान कर रहे थे उसी प्रकार गुजरात के विद्वान् भी अपने शौरों के गुजगान में उत्कीर्ण थे। इनकी रचनाएँ आवृत्तिपूर्ण अवश्य हैं किन्तु वे विद्युत ऐतिहासिक हैं। गुजरात के इतिहासकारों में 'रासभासा और 'जीर्तिक्कीमुदी का रचयिता सोम'वर, 'सुद्धत-संकीर्तन' का रचयिता अरिचिह्न 'प्रबन्ध कीव' का लेखक राजबेबर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिनने गुजराती इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ना है।

अर्धशास्त्र—आधुनिक अथवा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्रत्येक भारतीय परिचित होगा। यह ग्रन्थ आज की अर्थशास्त्र की तरह जन-अभ्युत्थान का अध्ययन तथा करना बल्लू यह राजनीति शास्त्र का ग्रन्थ है। आर्य मारनोव शासन-व्यवस्था का जो रूप कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चित्रित किया गया है उसका अनुसरण न केवल मौर्य सम्राटों ने ही किया बल्कि बाद आने वाले भारतीय राजाओं ने भी उनी सामन-व्यवस्था को अपनाया। भारतीय राजनीति-शास्त्र का यह पहला ग्रन्थ माना जा सकता है। उपर्युक्त ग्रन्थों एक-एक प्रकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थों एक-एक प्रकारों का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। कामन्दकीय नीतिसार, शुक्रनीतिसार, बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र इन्हीं प्रधान के ग्रन्थ हैं जिनमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र की भाँति ही राजा प्रजा के पारस्परिक सम्बन्धों राजा के अधिकार-कर्तव्य आदि पर प्रकाश डाला गया है।

भारतवर्ष में इस्लाम के प्रावृत्ति होने के पश्चात् घटनाओं का विवरण हमें उस समय के खगर्कों से प्राप्त होता है। इनमें निम्नलिखित पुस्तकें प्रमुख हैं

अकनामा—कूटी द्वारा लिखित इस ग्रन्थ से हमें सिन्ध पर अरबवालों के आक्रमण तथा उसके बाद की घटनाओं का पता चलता है।

तारीख-ए-सामीनी—अली की लिखी यह पुस्तक

तारीख-उस-मुब्तगीन—बैहाकी की लिखी हुई थी। एही पुस्तकें हैं जिनके आधार पर हम महमूद गजनवी के भारत-आक्रमण तथातरीन भारत की राजनैतिक अवस्था तथा गजनी बग के इतिहास का पता लगाते हैं।

तबकात-ए-नातीरी—इस विज्ञान पुस्तक के रचयिता काजी मिनहाज-उस-सीरान थे। काजी मिनहाज बलबन के राज्य-काल के आरम्भ तक रहे और वे अपनी पुस्तक मुल्तान नातिरहीन महमूद की उत्पत्ति किया है। यह एक प्रकार का विश्व-इतिहास है। भारत में दासवंश के काल की अनेक घटनाओं में इन्होंने भाग लिया था। अतः इनका वर्णन आधों देखा बृहत्तम है और एक प्रमुख आधार भी है।

तारीख-ए-फीरोजशाही—इस पुस्तक के रचयिता जियाउद्दीन बर्नी हैं जिन्होंने मुल्तान फिरोजशाह तुगलक के राज्यकाल में इसकी रचना की थी तथा मुल्तान की उत्पत्ति कर उन्हीं के नाम पर पुस्तक को आधारित किया है। तबकात-ए-नातीरी का वर्णन यही समाय होता है यह पुस्तक कटीब-कटीब नहीं से आरम्भ होती है और फीरोजशाह तुगलक के राज्यकाल के आरम्भ के कुछ साल के बाद समाप्त होता है। अतः हमें इस पुस्तक से इस्फाटी तुर्क पक्षी तुर्क तथा कछठना तुर्कों के राज्यकाल का पर्याप्त विवरण मिलता है।

सबाइत-उल-कठहू—इस पुस्तक के रचयिता कवि अमीर खुसरो थे। सीमाय से इन्हें अच्छी भाषा मिली थी और जीवन पर्वत से साहित्य की सेवा करते रहे। इनकी अनेक रचनाओं में से यह एक मात्र है। इस पुस्तक में कवि ने जलानुद्दीन तिल्ली के विजयों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है।

तारीख-ए-फीरोजशाही—बर्नी की पुस्तक के नाम पर ही बहुधा दूसरी पुस्तकें हैं जिसे रचयिता अन्त मोरान अफीक थे। यह फीरोज शाह तुगलक के राज्य-काल में से तथा धानन-अकाल से सम्बन्ध रखते थे। इनके पूर्वजों का फीरोजशाह से बलिष्ठ सम्बन्ध था। फीरोजशाह के राज्यकाल का विस्तार विवरण हमें इसी पुस्तक से प्राप्त होता है।

इन पुस्तकों के अनिश्चित और भी अनेक पुस्तकें हैं जिनके आधार पर हम तुर्कों का भारत के धानन-काल के बारे में पता लगते हैं।

सैन्य बग का विवरण हमें तारीख-ए-मुबारकशाही से मिलता है। मोदी बग का विवरण अकाल-ए-अकालि तथा तारीख-ए-बादवी से मिलता है।

अध-ऐतिहासिक

ये सब विषय दृष्टिकोण पूर्वतया ऐतिहासिक नहीं हैं पर व्याकरण विमूर्त मार्गिक आदि को ध्यान में रखकर लिखे जाने पर भी जो कुछ-कुछ इतिहास-सम्बन्धी घटनाओं का आधार केवल बण्डे हैं अथवा जिनमें ऐतिहासिक दृष्टि से लिखे रहते हैं उनसे अर्थ ऐतिहासिक बन्धों की गता दी गई है। इन ग्रन्थों में कुछ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—बैद मार्गिक की अष्टाध्यायी, ग्येनसिद्धा काव्यिक वा महाभाष्य भाष्यविधि विज्ञानशास्त्र आदि। नीचे इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

वाचिक का अष्टाध्यायी—यह व्याकरण ग्रन्थ मोर्य पूर्व तथा मोर्य कालीन अवस्था पर बहुत प्रभाव डालता है। भाषा के अध्ययन की दृष्टि से ही इसका अद्वितीय स्थान है।

पद्म संहिता—यह पुराण का एक अंग है। इस ग्रन्थ से हमें भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्व का बोध होता है। यह बतला है अथवा राजावती के लगभग आरम्भ कर बरनो का आक्रमण।

नास्तिकान्निमित्त—महाकवि काकीदास के इस प्रथम नाटक द्वारा युंग काकीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति का संक्षिप्त परिचय मिलता है। राजकुलों के नास्तिक जीवन पर इस नाटक से काफी प्रकाश पड़ता है।

मुद्रा राक्षस—विपाकवत् द्वारा लिखित यह नाटक अपने डंग का विस्तृत झेला है। चाणक्य और मन्त्रों के मंत्री राक्षस के शीर्षक का विस्तृत चित्रण उक्त नाटक में किया गया है जिसे मौर्यकाल की कूटनीति पर इस नाटक से काफी प्रकाश पड़ता है। चन्द्रगुप्त मौर्य को मन्त्रों के विनाश के पश्चात् भी अपनी स्थिति सुवृद्ध करने में क्षिती कठिनाई का सामना करना पड़ा था। इसका पूर्वजान हमें मुद्रा राक्षस से ही होता है।

विदेशी विवरण

हमारे देश का इतिहास भारतीयों के जन्मों में झलकता ही है, साथ ही कुछ विदेशियों ने भी भारत के विषय में थोड़ा बहुत लिखा। उनके लेखों से हमारे इतिहास पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। उन विदेशियों के नाम आप पहले से जानते या रहे हैं—मेगस्थनीज, जेनसांग फाह्यान, अलबरूनी आदि। इनके पहले भी कुछ विदेशी यात्रियों ने हमारे देश की यात्रा की थी और उन्होंने इसके सम्बन्ध में लिखा। जिन विदेशी यात्रियों के यात्री भारतवर्ष आये उनमें यूनानी रोमन चीनी तिब्बती मुसलमान आदि विषय प्रसिद्ध हैं।

यूनानी—यूनानी विवरणों को सुविधानुसार तीन विभागों में विभाजित कर दिया गया है—(१) सिकन्दर पूर्व (२) सिकन्दर काकीन तथा (३) सिकन्दर के बाद। सिकन्दर पूर्व के लेखकों में इन्द्रावतात (जरी एटासी ई० पू०) हेरोडोटस हेरोडोटस तथा टैसियस के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। हेरोडोटस और टैसियस ने भारतीय लेखकों के आधार पर भारत का चित्रण किया है।

सिकन्दर काकीन लेखकों में जो सिकन्दर के साथ भारतवर्ष आये थे अरिस्टी बल्लत निवारसक भारत भूमेनीत आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके लेखों से उत्कामीन भारतीय इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

सिकन्दर के बाद यूनानी लेखकों में मेगस्थनीज पिथी सातमी डाइमेकत डाइयोडोरस प्लुटार्क एरिमान कर्टियस अस्टिन स्ट्रेबो आदिका नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। चन्द्रगुप्त के दरबार में मेगस्थनीज के निवास का विवरण आपको प्राप्त होगा। सीरिया का राजकुल डाइमेकस भी बिहुसर के दरबार में आया था। इन लेखकों में कर्टियस अस्टिन और स्ट्रेबो का नाम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इन लेखों में चाहे जितनी भी अत्युक्ति हो चाहे जितना भी अतिरञ्जन हो इनका अपना ऐतिहासिक महत्व भी है।

चीनी—चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हो जाने के पश्चात् अनेक मार्ग बौद्ध धर्म सम्मन्धी विशेष ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त भारतवर्ष आये। चीनी इतिहासकारों में भारतवर्ष के सम्बन्ध में लिखने वाला पहला व्यक्ति शुभाशीन है जिसने प्रथम शताब्दी ई० पू० में इतिहास की एक पुस्तक लिखी। उत्तरचाव फाह्यान जेनसांग और इत्सिंग का नाम आता है जिन्होंने भारतीय इतिहास पर काफी प्रकाश डाला। इनके सम्बन्ध में यथास्थान हम विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

विष्णुती—विष्णुती सिक्कों में लामावायनाथ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके चर्चों का नाम है 'कम्पूर' तथा 'तम्पूर'।

बरब—बरब इतिहासकारों में लल्लुमान अम्बसूरी जम्बितासूरी अम्बजंदी हुतन इम्बसूरीया अम्बमिरोती के नाम विशेष उल्लेखनीय है। किन्तु अम्बकनी ही वह पड़वा मुक्तमान इतिहासकार है जिसने भारतीय इतिहास के अध्ययन में अपना समय समर्पित। इनके अतिरिक्त अम्बूर रज्जाक इम्बवतूया तथा माकोपोमो की देन भारतीय इतिहास के सिक्कों को सर्वत्र मान्यता ही पड़ेगी।

जीवनियाँ

अपने-अपने आश्रयस्थानों या ग्राम सभ्यताओं की जीवनियाँ मिलाने की परम्परा भी हमारे देश में प्राचीन काल से रही है। अथवा वक्ताओं राजाओं की जीवनियाँ लिखी गई हैं जिनके अध्ययन से हमें उन राजाओं के साथ-साथ उनके समकालीन नरेशों का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इनमें से कुछ प्रसिद्ध जीवनियाँ पर नीचे संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा।

हर्ष चरित्र—हर्षचरित्र जिनकी रचना बाणभट्ट ने लगभग ६२० ई० में की थी जीवनियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। हर्ष के बरबार में रहकर बाण ने हर्ष की जीवन कथाओं तथा वानेश्वर का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। हर्ष के प्रारम्भिक जीवन तथा उनकी जिनगी का पूर्ण विवरण हमें बाण भट्ट के हस्त से ही मिलता है।

रामचरित्र—लोकप्रियता की दृष्टि से रामचरित्र की रचना की थी। ज्ञाने अथवा बलि में इसकी विलक्षण दर्शन-शीली रचना है कि एक बार तो मनुष्य रामायण बर्णन की कथा मातृमयी होती है तथा दूसरी ओर बर्णन के रामायण का बर्णन स्पष्ट रूप से होता है। पाल बरा के इतिहास पर यह पुस्तक पर्याप्त प्रकाश डालती है।

कुछ अन्य जीवनियाँ—बल भी चरित्र (सिंहक अथवा भट्ट) कृतुमान विजय (सि० ब्यासक) बुद्धीराज चरित्र (सि० बाणभट्ट) बुद्धार वासचरित्र (सि० जय सिंह) आदि अनेक जीवनियाँ रचनीय इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। नवतुलु माकचरित्र विष्णुदेव देव चरित्र ओजप्रकाश हम्मीर काव्य आदि इसी श्रेणी की जीवनियाँ हैं जिनमें अनेक राजाधिराजों के इतिहास पर खोजा बहुत प्रकाश पड़ता है। यहाँ यह बताना देना आवश्यक है कि इन जीवनियाँ में लक्ष्मी-श्रीयो बर्णन मिल जा तो ज्ञानार्थ और वास्तविक चरित्रों का अभाव नहीं है। ये पुस्तकें अतिरिक्त भी अत्युत्तम हैं किन्तु भी इनका स्वाधीन इतिहासिक मान्य है।

विशुद्ध साहित्य

विशुद्ध साहित्य में हमारा अभिप्राय उन ग्रन्थों से है जो पूर्णतया साहित्यिक रचना में निर्मित हैं अर्थात् जिसमें उद्देश्य पूर्णतया साहित्यिक मूल्य रहा है। इन साहित्यिक ग्रन्थों में हमें वास्तविक अर्थों का ज्ञान प्राप्त होता है। एक ग्रन्थ में हमें ज्ञान तथा आनन्द दोनों प्राप्त हो सकते हैं। अथवा हमें ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इन ग्रन्थों में अतिरिक्त ज्ञान और साहित्य की प्रतिष्ठा का अध्ययन करने का भी साहित्यिक इतिहास की दृष्टि से आवश्यक है।

पुरातात्विक सामग्री

पुरातात्विक सामग्री को भी सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया है (१) अभिलेख (२) प्राचीन स्मारक तथा (३) मुद्राएँ। अभिलेखों के भी दो प्रकार हैं—(अ) बर्षीय अभिलेख (ब) विदेशीय अभिलेख। इसी प्रकार प्राचीन स्मारक भी देशीय और विदेशीय दो प्रकार के हैं। भारतीय मुद्राएँ और अन्धकारमय मुद्राओं नाम से मुद्राओं को भी दो उपविभागों में बाँटा गया है। यहाँ हम इन पुरातात्विक सामग्रियों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

पत्थर की छिटाओं जबकि ताँबे की छिटाओं की दृष्टि से देखें तो अभिलेख कहा जाता है। इन अभिलेखों का ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व होता है। इसमें जो कुछ लिखा होता है उस पर काफी विश्वास किया जा सकता है। ये ठोस हैं इरीरिण्ड अभिलेख हैं। इसमें प्रसिद्धियों की भाँट का बहुत कम रहती है। इन्हीं सब कारकों से इतिहास जानने के साधनों में अभिलेखों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

अधोक के पहले के अभिलेख नहीं मिलते हैं किन्तु उसके पश्चात् अभिलेखों की भरमार हो जाती है और ये अभिलेख भारतीय इतिहास के बहुत बड़े अंग का प्रकाशित करने लगते हैं।

अधोक कालीन अभिलेख—अधोक ने जैसा कि हम आगे देखेंगे अपने साम्राज्य में और अन्य स्थाव्यों पर भी अपने सेना स्थापित किये। इन अभिलेखों से हमें मौर्यकालीन भारत की पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का ज्ञान भले न हो पर इतना तो ज्ञान पड़ता कि इन्हीं अभिलेखों से हमें भारतीय इतिहास के एक अमर सम्राट् अधोक महान् के सम्पूर्ण जीवन का ज्ञान होता है। देश में समाज बर्ग और राजनीति की नया गति-विधि भी इस पर भी आधिक प्रमाण अधोककालीन अभिलेखों से पड़ता है।

अधोक के पश्चात् के अभिलेख—युक्त काल के पहले के अवश्य अभिलेख प्राप्त हुए। इनकी संख्या १५०० तक बढ़ाई जाती है। पर इन सब में हरिषेण की प्रमाण प्रशस्ति भोज की ग्वास्मिर की प्रशस्ति सेनबन्धी राजा विजय सेन की प्रशस्तिमयी एट्रोस अभिलेख हारपी गुंका का अभिलेख आदि विशेष चरित्रमयी हैं। हम आगे देखेंगे कि समुद्रगुप्त तथा भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग युक्तकाल के इतिहास के अध्ययन में प्रयास प्रशस्ति किन्तु भी कामप्रद होती है और इससे हमें किन्तु भी सूचनाएँ मिलती हैं। इसी प्रकार ग्वास्मिर की प्रशस्ति के अभाव में प्रतिहारों का इतिहास अन्धकारमय रह जाता। विजयसेन की प्रशस्तिमयी, ऐट्रोस अभिलेख तथा हारपी गुंका का अभिलेख कमल सेन बन्धीय गरीशों पालकय गरीश पुस्तकेचिन द्वितीय तथा चरित्रमयी राजाओं के इतिहास की पर्याप्त सामग्री प्रदान करते हैं।

इन अभिलेखों की मापा नई प्रकार की है जिसके आधार पर हम मापा सम्बन्धी जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं और यह मापन कर सकते हैं कि किस समय किस मापा को साम्याधन प्राप्त या और उस मापा की प्रमुख सीधी क्या थी। प्रशस्तिमयी में बंध टास्मिना हैरे की परम्परा से हमें बहुत ज्ञान होता है क्योंकि इसका आधार पर राजकुलों की बंधावली बात की जा सकती है। पश्चिमी भारत में उत्तरी भारत की अपेक्षा अधिक अभिलेख प्राप्त गये हैं किन्तु ये अपेक्षाकृत कम प्राचीन हैं।

विदेशीय अभिलेख—ऊपर देशीय सामग्रियों का उल्लेख किया गया है। उन देशीय अभिलेखा के अतिरिक्त कुछ विदेशीय अभिलेख भी हैं जिनमें भारतीय इतिहास पर कुछ-कुछ प्रकाश पड़ जाता है। एशिया माइनर सोयजकोई के सेब वैरिक हबनाओ का उल्लेख करते हैं किंग पर हमें थापों के एकमल का बोध होता है। इसी पर पसिबोक्त तथा तबसिस्तम (ईरान) के अभिलेखा से प्राचीन भारत के तथा ईरान के पारम्परिक सम्बन्ध का बोध होता है।

प्राचीन स्मारक—प्राचीन स्मारक से हमारा मतलब उन वस्तुओं से है जो चित्र कला मन्दिरनिर्माण कला संघोष कला या मूर्त्य कला या इसी प्रकार की अन्य कलाया एवं शिल्पो से सम्बन्धित हैं। प्राचीन समय में मनुष्य ने कला के विभिन्न क्षेत्रों में काफी उन्नति कर ली थी। उसने बड़े-बड़े मन्दिर सुम्बर-सुम्बर मूर्तियाँ और अन्य कलाओं में सम्बन्धित बसंतीय वस्तुओं का निर्माण किया था किन्तु कला से बढ़कर कला है जिसने इन्हें गूढ़ कर दिया। ये वस्तुएँ अपनी दृष्टी-सूची अवस्था में आज भी मस्ती के लीचे बसी हैं और लुहाई करने वालों के अवक परिश्रम के पश्चात् वे प्रकाश में आती हैं। इन्हें देखकर हमें प्राचीन इतिहास और प्राचीन गौरव की स्मृति आ जाती है। इसलिये इन्हें प्राचीन स्मारक कहा जाता है। अर्धक्य स्थानों पर खुदाई करने पर खनन राज प्रानाद चैत्य सार्वजनिक ह्राक विहार मठ आदि के अङ्गहूय प्राप्त होते हैं जिनसे बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्रियाँ सहज की जाती हैं। जैसा कि प्रारम्भ में ही बतलाया गया है इनके दो भेद हैं—देशीय तथा विदेशीय। इन पर पुनः-पुनः प्रकाश डाला जायगा।

देशीय—हमारे देश में मोहनजोदड़ो हड़प्पा लखिसिहा मथुरा कोलम छान नाव कसिवा पाटलिपुत्र नासम्बा राजमिरि छाँची मरुत लक्ष्मन्धर अगरी बनवासी पतरकल धिलख बुर्ग टाककर आदि स्थानों में जो खुदाइयाँ हुई हैं उनमें हमारे इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ा है। जैसा कि आप जानते हैं मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में तो सिन्धु सम्प्रदाय से हमारा क्या-क्या परिचय कराया है। इतिहास के अनेकों अङ्गमन्देश्वर बनवासी पतरकल धिलख बुर्ग आदि की खुदाइयों ने जो सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं उनसे भारत का धार्मिक इतिहास बहुत कुछ सामाहित होता है। मस्ती के ऊपर पाये जाने वाले प्राचीन स्मारकों का भी अमान नहीं। अर्धक्य मन्दिर स्तूप मूक्याँ विहार, मठ सार्वजनिक भवन आदि सम्पूर्ण भारत में इधर-उधर बिखरे पड़े हैं जो समसामयिक धार्मिक प्रवृत्तियों कला सम्प्रदायों की स्थिति का साक्ष्य प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ छारनाथ का पत्थरका स्तम्भ मस्तक उभ प्राचीन काल की लक्ष्मी का उत्कृष्टतम उदाहरण है। अजन्ता तथा ऐलोरा की मूक्याँ की गणना भी महत्त्वपूर्ण प्राचीन स्मारकों में की जाती है किन्तु देखकर हम प्राचीन भारत की निरक्षरता का बोध करते हैं। छिड़ों की मस्ती में पाये जाने वाले हिरण्यमयिरी बीड विहारों पाटलिपुत्रों आदि से हम अपने प्राचीन इतिहास का आधिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। जब भी हमें किसी काल के सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन करना पड़ता है तो हमें प्राचीन स्मारकों का महत्त्व पड़ता है क्योंकि इनमें न केवल कला की प्रगति का बोध होता है प्रत्युत राष्ट्रीय धार्मिक अरथा पर भी साध-साध पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

विदेशीय—भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी कुछ ऐसे प्राचीन स्मारक प्राप्त जिनसे भारतीय इतिहास पर आधिक प्रभाव पड़ता है। आगर में बीडा मठार । मथिरा बीरोबीरलवा बनवासी के देवालय मंकीरवाड तथा मंकीरवा

आदि ऐसे ही स्मारक हैं जिनसे भारतीयों का औपनिवेशिक प्रसार एवं उनकी कला का बोध होता है। बाबा में मुकुमभ नामक स्थान के भग्नावशेषों में भक्त ब्रह्म पञ्च और निधुल आदि विशेष उत्कृष्टनीय हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण धर्म बाबा तक फैल चुका था। मत्स्या में भी सुन-मै-नगु में एक देवता तथा कुछ पापाम मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें यह बात होती है कि यहाँ के रहने वाले हिन्दू मत्स्यासन्धी धर्म और यन्त्रियों में छिप गयेस पार्वती मन्दी आदि की मूर्तियों से यह प्रकट होता है कि वहाँ इनकी पूजा बड़े भूम से होती थी। मत्स्या में कानों पर्वत पर एक बड़ा हुआ वैष्णव मन्दिर और बिष्णु की मूर्ति प्राप्त हुई है जो हमारे मत का समर्थन करती है। बोनियों में भी मुकुमभ नामक स्थान में एक स्वर्ण बिष्णु मूर्ति मिली है। इसी प्रकार अन्य द्वीपों में भी गौतम बुद्ध या ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुई जिससे यह भी अनुमान लगा सकते हैं कि भारतीय संस्कृति का प्रसार कहीं तक हो सका था।

मुद्राएँ

मुद्राएँ हमारे इतिहास की अनेक मूर्तियों को प्रकट करती हैं। कुछ बाकी सिक्कों को छोड़कर मुद्राएँ राजकीय होती हैं जिन पर काफ़ी विश्वास किया जा सकता है। अब इन मुद्राओं से हम अपने देश के इतिहास के अध्ययन में काफ़ी सहायता लेते हैं। मुद्राएँ राजाओं की बंस परम्परा भासन काज की चिह्नियों और प्राप्ति स्थान के आधार साम्राज्य विस्तार की ओर संकेत करती हैं। इन मुद्राओं से उत्कालीन आधिक अवस्था का भी बोधा बहुत अनुमान लगाया जा सकता है। इन विषयों के अतिरिक्त मुद्राओं का एक बहुत बड़ा महत्त्व यह है कि वे अपने सम्राट् के धर्म तथा उनकी व्यक्तित्व की का ज्ञान कराती हैं। मुद्राओं पर उत्कीर्ण चिह्नों से हमें यह बात होती है कि बहुत राजा अमरु धर्म का अनुयायी था। यहाँ कुछ विशेष मुद्राओं द्वारा प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख करके विषय को और स्पष्ट बनाया जायगा।

अत्यन्त प्राचीन काल की मुद्राएँ—प्राचीन कालीन मनुष्यों ने मुद्रा कला में विषय उन्नति नहीं की थी अब वे अपनी मुद्राओं पर केवल कुछ चिह्न या मूर्ति चित्र बना लेते थे। यही कारण है कि इनसे कोई राजनीतिक सूचना तो नहीं मिलती है पर ये प्राचीन मोहरें उस समय की आर्थिक अवस्था का ज्ञान अवश्य कराती हैं।

यूनानी मुद्राएँ—हमारे देश के पश्चिमोत्तर भाग में यूनानियों ने लगभग २०० वर्ष तक राज्य किया था। इनका इतिहास बहुत कुछ इसी मुद्राओं से जाना जाता है। इन यूनानी सम्राटों की संख्या १० से भी अधिक है और इन सबकी अपनी अपनी मुद्राएँ हैं। यदि ये मुद्राएँ नहीं प्राप्त हुई होती तो इन यूनानी शासकों के विषय में हमारा ज्ञान निताम्य भ्रम होता।

सीसियन तथा पार्थियन मुद्राएँ—भारत में सीस साम्राज्य के पतन के पश्चात् विदेशीय सीसियन तथा पार्थियन का आधिपत्य स्थापित हुआ। इनका इतिहास ज्ञान का बहुत बड़ा साधन मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्य ही है क्योंकि इनके विषय में ऐतिहासिक सामग्रियों का अभाव है।

भारतीय सम्राटों की मुद्राएँ—जैसे ही सभी भारतीय सम्राटों के इतिहास की जानकारी के लिए उनकी मुद्राओं की पुष्ट होती है किन्तु ऐसे भी सम्राट् हैं जिनका इतिहास प्रभावशाली मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्य पर आधारित है। उदाहरणार्थ पाण्ड्या नामक

पीपेव आदि विषय राजाजी का इतिहास जानने के लिये हमें उनकी मुद्राओं की ही सहायता लेनी पड़ती है। इसी प्रकार सातवाहनकुल के राजाओं का इतिहास भी मुद्राओं द्वारा प्रकाशित है। गुप्तकाल के इतिहास की कुछ सुविधियाँ भी उस काल की मुद्राओं से मुकुटाने का प्रयास किया गया है।

प्रश्न

1. Critically examine the sources of Indian History for your period. (Sept. 1952)

अपने समय तक के लिये भारतवर्ष की ऐतिहासिक सामग्री का विश्लेषण कीजिए।

2. Briefly state and examine the nature of the sources of Indian History prior to 1526 (Apr 1953).

१५२६ ई० से पूर्व भारतवर्ष की ऐतिहासिक सामग्री का संक्षिप्त रूप में विश्लेषण कीजिए।

3. Give an account of the principal sources of information for reconstructing the History of India before 1000 A.D (Sept 1958).

१००० ई० से पूर्व के भारतवर्ष के इतिहास के सहायक मुख्य-मुख्य स्रोतों पर प्रकाश डालिए।

4. What is the importance of literary and archaeological evidences as source material for the study of History?

इतिहास जानने के साधनों में साहित्यिक और पुरातात्विक साधनों का क्या महत्व है?

5. Write an essay on the archaeological evidences as source material of History

इतिहास जानने की पुरातात्विक सामग्री पर एक निबन्ध लिखिए।

6. Discuss the importance of Puranas and Epics as sources of Indian History

भारतीय इतिहास के साधनों में पुराण तथा महाकाव्यों के महत्व पर व्याख्या कीजिए।

सिन्धु घाटी की सभ्यता

आज से करीब ४० वर्ष पहले भारतवर्ष के इतिहास में सिन्धुघाटी की सभ्यता का कोई स्थान नहीं था। इतिहासकारों को इस सभ्यता का कोई ज्ञान नहीं था। इस सभ्यता का ज्ञान हमें किस प्रकार हुआ यह इतिहास भी बड़ा रोचक है। आज से हजारों वर्ष पूर्व की यह सभ्यता बग़ी के नीचे अपने अन्धकारघोप छोड़कर बिखीन हो गई थी किन्तु पुरातत्त्ववेत्ताओं के उत्साह, धैर्य तथा परिश्रम के फलस्वरूप आज हमें बग़ी के नीचे बनी हुई इस सभ्यता का ज्ञान प्राप्त हो सका है।

सिन्धु सभ्यता का प्रसार और समय

सिन्धु सभ्यता के अन्धकारघोप मोहनजोदड़ो हड़प्पा, सुकरबड़ो अम्बरसा कराची कलाठ (बलूचिस्तान) स्पड़ आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। अतः यहाँ तक इसका प्रसार फैलाने में कोई आपत्ति नहीं। इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण सिन्धु तथा पंजाब में यह सभ्यता प्रचलित थी। इस सभ्यता का प्रसार किस कारणवश सम्पूर्ण भारत में या कम से कम उत्तर भारत में नहीं हो सका इसका स्पष्ट ज्ञान हमें नहीं प्राप्त है। डा. बी.जि. ने तो इस सभ्यता का प्रसार राजपूताना काठियावाड़ पंजाब तथा उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त तक बतलाया है। डा० गार्डन चाहते हैं कि इस सभ्यता को ही सुमेरियन सभ्यता की बग़ीची या उत्प्रेरिका बतलाते हैं। सर जॉन मार्शल का मत है कि सिन्धु-सभ्यता योरोप तथा एशिया दोनों महाद्वीपों में फैली हुई थी और इसमें बलूच-कराच की घाटी हेक्मन्द की घाटी और सिन्धु की घाटी सम्मिलित थी।

मूल और प्रसार की माँति ही सिन्धु-सभ्यता के काल का प्रश्न भी अत्यन्त बटित है। प्राप्त सप्तस्तरीय अन्धकारघोषों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इस सभ्यता का काल इस प्रकार अनुमानित किया है कि इन स्तरों में तीन युग परापूर्वकालीन हैं तीन मध्य कालीन हैं तथा एक प्राचीन हैं और यदि प्रत्येक स्तर का समय ५०० वर्ष का भी माना जाय तो इस हिसाब से इस सभ्यता का प्रसार काल १२५० ई० पू० से २७५० ई० पू० तक हो सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी समान मुहरें सिन्धु तथा एलम और मेसोपोटेमिया में प्राप्त हुईं जिनके आधार पर भी इस सभ्यता को २८०० ई० पू० का कह सकते हैं यद्यपि सिन्धु के समान वे मुहरें परापूर्वकालीन हैं। मुहरों के अतिरिक्त वास्तु-कला सम्बन्धी यहाँ कुछ अन्य अन्धकारघोष भी ऐसे प्राप्त हुए हैं जो मेसोपोटेमिया के समान हैं। अतः इस सभ्यता को यदि मेसोपोटेमिया से प्राचीन नहीं तो सम कालीन अवश्य मान सकते हैं। बग़ीच के निकट प्राचीन एरानम में जलनन् द्वारा प्राप्त अन्य वस्तुओं के साथ जो २५०० ई० पू० की प्रमाणित हो चुकी है कुछ भारतीय वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं जिससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि सिन्धु सभ्यता इसके पूर्व की है।

सिन्धु सभ्यता के निर्माता

अब तक इसके निर्माताओं के विषय में कई मत प्रचलित हैं। अस्मिया के अवशेषों तथा प्रतिमा-मस्तकों के वैज्ञानिक अध्ययन से ऐसा परिणतित होता है कि सिन्धु-सभ्यता के निर्माता एक जाति के नहीं थे बल्कि कई जातियों के सम्मिश्रण से इस सभ्यता का निर्माण हुआ था। इन मिश्रित जातियों में प्रागस्त्रायाद (Proto-Australoid) मेडिटरेनियन अल्पाइन तथा मंगोल विधेय सम्मेलनीय हैं। प्रागस्त्रायाद लोग निश्चय ही भारत के किसी भाग से ही यहाँ आये होंगे और मंगोल तथा अल्पाइन में कम-से-कम पूर्वी तथा पश्चिमी एशिया से स्वाभाविक रूप से यहाँ बस गये होंगे। कुछ विद्वान् इन्हीं को इस सभ्यता का निर्माता मानते हैं और कुछ भारतीय भाषी को ही इसका धर्म देते हैं। सुमेरियन तथा उनकी अन्य जातियों की भी इस सभ्यता का निर्माता मानने के लिये अनेक इतिहासकार तैयार हैं। अनुमान यह है कि इन्हीं ही (चाहे वे उस अनादि काल में जिस रूप-रंग के रहे हों) भारत के किसी भाग से या पश्चिम की ओर से स्वाभाविक रूप से यहाँ बस गये और कुछ अन्य जातियों (सम्भवतः प्रागस्त्रायाद जाति) के सम्मिश्रण से इस सभ्यता के निर्माण में तत्सम हो गये।

सुदाइयों के मिश्र-मिश्र स्थान

सिन्धु सभ्यता का विवरण हमें निम्नलिखित स्थानिक सुदाइयों में प्राप्त होते हैं —

(१) मोहनजोदड़ो (२) हड़प्पा (३) अम्बाळा (४) करीबी (५) झुकरदड़ो (६) कलाश (बलूचिस्तान) (७) कम्हड़।

उपरोक्त सुदाइयों में सभ्यता के वास्तविक रूप को समझने का श्रेय मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की सुदाइयों को ही दिया जा सकता है क्योंकि वे ही सिन्धु सभ्यता के केन्द्र थे और अधिकतर मन्त्रावशेष (कम से कम सभी महत्वपूर्ण मन्त्रावशेष या प्राचीन स्मारक) वहीं प्राप्त हुए हैं। अब हम दोनों स्थानों की मौखिक स्थिति तथा उनकी सुदाइयों का नक्षिप्त विवरण नीचे दिया जायगा।

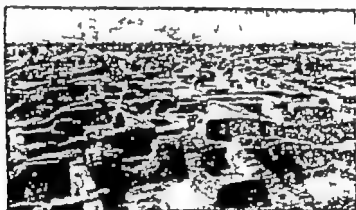
मोहनजोदड़ो—मोहनजोदड़ो का शाब्दिक अर्थ 'घरों की डेरी' है। यह सिन्ध के सरकारी जिले में सिन्धु तथा गर नहर के मध्य स्थित है। सर्वप्रथम १९२२ ई. में 'आर्कियाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया' के पश्चिमी सुबिड के अध्यक्ष श्री रायलन्दास बनर्जी को यहाँ एक बौद्ध समाधि प्राप्त हुई थी। इस भाषा से कि यहाँ बौद्ध धर्म सम्बन्धी कुछ सामग्रियाँ प्राप्त होंगी बनर्जी ने उत्खनन-कार्य आरम्भ करवाया। पर यहाँ बौद्ध सामग्रियों का अवशेष न मिलकर एक पूरी सभ्यता का अवशेष प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् पानी को खूनी हुई साथ लहो एक सुदाई हुई। इन सुदाइयों में इतनी प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई कि लिखित विवरण के अभाव में भी (यद्यपि उस विवरण का अभाव न होता हुए भी लिखित सामग्री का अपठनीय होना एक प्रकार का अनाद-सा ही है) हम उस प्राचीन सभ्यता की रूप-रेखा अंकित कर पाते हैं।

हड़प्पा—यह मोहनजोदड़ो जिले में एक स्थान है। यहाँ सर्वप्रथम १९२२ ई. में बपाराम साहनी ने उत्खनन-कार्य आरम्भ किया था और कुछ मन्त्रावशेष प्राप्त किये किन्तु तत्पश्चात् आर्कियाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के डाइरेक्टर जनरल सर जॉन मार्शल के निरीक्षण में यहाँ पर्याप्त उत्खनन-कार्य हुआ जिससे भरती में छिपी हुई सभ्यता का परिचय प्राप्त हुआ।

सिन्धु सम्पत्ता का अध्ययन करने के लिये हमें प्राप्य भग्नावशेषों को ही पुरस्कृत-पूजक विचारधारा रखना होगा क्योंकि ये ही उस सम्पत्ता के मूल इतिहास हैं।

भग्नावशेष

भवन—कच्चे-पक्के छोटे-बड़े हर प्रकार के भवनों के भग्नावशेष उत्खनन-प्राप्त हुए हैं। यहाँ मकान भीकोर बनाये जाते थे। बीच में एक अग्निकोठ था और उसके चारों ओर छोटे-बड़े कमरे होते थे। यहाँ के मकानों में दरवाज छिड़कियाँ लालचर, पानी रखने का स्थान बाह्य के अतिरिक्त कुड़ाखान एवं बस निहालने वाली छानियाँ भी बनी होती थी। लकड़ी और ईंटों से मकान की छतें पड़ी होती थीं। मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा के मकानों की एक विशेषता यह भी कि किसी भी मकान का दरवाजा या कोई छिड़की प्रमुख राजमार्ग की ओर नहीं खुलती थी। दो कमरे वाले मकानों से लेकर बड़े-बड़े राजमहलों के समूह विद्यालय भवनों के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें एक बहुत ही विशाल भवन है, कुछ बहुत बड़े-बड़े ह्रास भी हैं जो सार्वजनिक भवन पाठशाला या मन्दिर हो सकते हैं। एक ९० वर्ग फीट वाला ह्रास भी प्राप्त हुआ है। पक्की ईंटें भी निम्न-निम्न आकार की प्राप्त हुई हैं। इनमें कुछ २०॥ इंच लम्बी १०॥ इंच चौड़ी तथा १॥ इंच मोटी होती थी।



चित्र १—मोहनजोदड़ो के नगर

स्नानागार—मोहनजोदड़ो में जब तक खिलने भवनों के अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमें सर्वोत्तम एवं सर्वाच्छु एक स्नानागार है। इसका विवरण इस प्रकार है—

(१) चारों ओर बरामदे जिनके पीछे बैलरियाँ हैं तथा चारों ओर कमरे हैं।
(२) एक कुण्ड जिसकी लम्बाई १० फीट चौड़ाई २१ फीट तथा गहराई ८ फीट है और दोनों ओर बस की सतह की झूठी हुई छिड़कियाँ हैं। (३) कुर्च है जिससे आवश्यकता पड़ने पर स्नानागार से कुण्ड को मरा जाता था। (४) मजान् स्नानागार की कुछ लम्बाई १८० फीट चौड़ाई १०८ फीट है तथा इसकी बाहरी दीवारों की मोटाई ८ फीट है। प्रकाशम के प्रक की सुरक्षा तथा उसकी नीच को सुदृढ़ रखने के अभिप्राय से यहाँ के राजगीरों ने विशुद्ध चालूय से काम लिया है। अस्नानागार की बरस से भरने या निस्त करने के लिए जो व्यवस्था की गई है वह निश्चय ही काफी असाधारण है। एक ९ फीट से भी अधिक ऊँची प्रकाशिका पाई गई है जिससे पानी निहाला जाता रहा होगा।

नगर—नगरों के भग्नावशेषों के आधार पर ही पुरातत्त्ववेत्ताओं ने ऐतद् अनुमान किया है कि निश्चय ही सिन्धु घाटी की सभ्यता नगर-सभ्यता की वैदिक सभ्यता की भाँति यह धार्मिक-सभ्यता नहीं थी। उत्खनन द्वारा उस प्राचीन विषय मय का जो ध्वंसावशेष प्राप्त हुआ है उसे देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि नगर-निर्माण एक निश्चित योजना (Plan) द्वारा होता था। यहाँ की सड़कों काफी चौड़ी हैं जिनसे छोटी-छोटी साधारण और गलियाँ कूटी हैं। यहाँ की सड़कों के बीराहे और तीन मुहानियाँ भी प्राप्त हुई हैं। सम्पूर्ण नगर में मोरियों का जाल बिछा था।

नगरों की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था। सड़कों के किनारे कूड़ा फेंकने के बहुत बड़े-बड़े बर्तन प्राप्त हुए हैं जिससे ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यहाँ म्युनिसिपल बोर्ड—सी कोई संस्था अवश्य रही होगी जो नगर की सफाई करती थी।

वातु एवं तत्सम्बन्धी साधनियाँ—जो कुछ भग्नावशेषों के रूप में प्राप्त हुआ है उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सिन्धु घाटी के निवासियों ने चीना, चाँदी, टिन, ताँबा, काँसा, सीसा आदि का प्रयोग जान लिया था पर वे लोहे का प्रयोग नहीं जानते थे या या कहें कि वहाँ लोहे का अभाव था। सोने का प्रयोग आधुनिक युग की भाँति ही आभूषण में होता था। कुछ कीमती पत्थरों के आभूषण भी बनाये जाते थे।

सूत कपड़न के बर्तन—मोहेनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त भग्नावशेषों में सूत कपड़न के बर्तनों का बहुतायत से बरों में पाया जाना भी इस बात का प्रमाण है कि उन दिनों सूत कपड़न साधारण कार्य का और प्रत्येक व्यक्ति इस कार्य को करता था। सूत प्राप्त करने के लिये इनके पास ऊन तथा कई शीशों प्रचलन प्राप्त थे। एक खनन-कर्म से छिपटा हुआ सूती कपड़े का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है।

सायाजिक अवस्था

जीवन—समय सही प्राचीन सभ्यताओं के निवासियों का मुख्य व्यवसाय हाथि रहा है क्योंकि मनुष्य प्रकृति के अधिक निकट है और अपनी प्रारम्भिक अवस्था में उसे जो कुछ कम या अधिक जान प्राप्त हो सका वह प्रकृति-सम्बन्धी ही था। सिन्धु घाटी के निवासियों ने भी इस क्षेत्र में काफी उपति कर ली थी। सीमाव्यवस्था वहाँ तक का बाहुल्य था जत मिचरई सम्बन्धी किसी कठिनाई का सामना इन्हें नहीं करना पड़ता था। उत्खनन द्वारा गेहूँ तथा जौ के बाने प्राप्त हुए हैं। ये साकाहाटी तथा मासाहाटी दोनों ये दूध के प्रयोग से भी में परिचित थे।

बतन—सूत कपड़न के बर्तनों तथा सूती कपड़े के एक टुकड़े की प्राप्ति का उत्प्रेम ऊपर किया गया है जिससे स्पष्ट है सूती ऊनी वस्त्रों प्रकार के बर्तनों का प्रयोग करते थे। उनके वस्त्र सम्बन्धी ज्ञान के लिए सीमाव्यवस्था एक पुष्प की मूर्ति प्राप्त हुई है जो—ताम्र की है। वे सूती का या इसी से मिलते-जुलते किसी वस्त्र का प्रयोग करते रहे होंगे। रेशमों के वस्त्र जिन थे। रेशमों घर पर एक विशेष वस्त्र पहनती थीं जो पीछे की ओर पक-मा उठा रहता था।

आभूषण—सिन्धु घाटी के स्त्री-पुरुषों की आभूषणों में विशेष प्रेम था। बनी एवं निर्बन सभी समान रूप से हम और आकर्षक थे। कुछ आभूषण ऐसे थे जो स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे। इन आभूषणों में हार, भुजबन्ध, कमर और मुद्रिका प्रमुख हैं। रेशमों के आभूषणों में गहनी करवनी वाली आदि अधिक प्रचलित थी। ऐसा कि सिन्धु घाटी में बसाया गया है सीना चाँदी कीमती पत्थर आदि अनेक आभूषण

और स्त्रियों से ये परिचित थे। अतः नदी तीरों के आसपास सोना चाँदी मणियों एवं बजाहिरातों के होते थे और निर्बलों के आसपास सुकम हड्डियों तथा पत्थर मिट्टियों के होते थे।

बिलास संवन्धी अन्य सामग्रियाँ—पुंगार की ओर स्त्रियों की विशेष अभिरुचि थी। हाथी दाँत की कपियों तथा पोतल के आबूने का प्रयोग वे करती थीं। मुक्त तथा मोष्ठ रत्न के लिए भी एक विशेष प्रकार के पथार का प्रयोग करती थीं।

आमोद-अमोद—जीवन में आमोद प्रमोद का महत्त्व उस प्राचीन काल में भी कम न था। प्राचीन काल का प्रिय खेल घुतरंज यहाँ के निवासियों का प्रिय खेल था। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि उनके मनोरंजन का एक अन्य साधन बाजट भी था। पशियों को पालकर ये उन्हें खड़ाते थे। मुर्गों की लड़ाई का इन्हें विशेष शौक था। कुछ ऐसी मुर्गें प्राप्त हुई हैं जिन पर लुखी बीया आदि के बिज उत्प्रेषित हैं। इससे यह परिच्छिन्न होता है कि नृत्य एवं संगीत से भी इन्हें प्यार था। कवि की एक मूर्तकी की मूर्ति भी इस सत्य की प्रमाणित करती है।

उत्खनन द्वारा अस्त्रस्त्र सिन्धुने प्राप्त हुए हैं जिनमें सुनमूने छोटीसी गाड़ियाँ जिनमें बैल जुटे रहते थे और जिन पर चिड़ियाँ बैठाई जाती थी आदि प्रधान हैं। ये सारे सिन्धुने बहुत ही मिट्टी के होते थे। नर-नारियों एवं पशु-पक्षियों की आकृतियाँ भी मिट्टी की बनाई जाती थी।

रत्न-सूत के कुछ अन्य डंभ—मन्त्रों एवं नयनों का वर्णन करते समय हमने बताया है कि इनके भवन हवादार एवं स्वच्छ होते थे। मन्त्रों की सादगी से कुछ ऐसा भी आभासित होता है कि वे अपने मन्त्रों को कुछ ऐसी वस्तुओं से सजाते रहे होंगे जो सीधे-नयन रही होंगी। पर अलंकार से परे रत्ना इनके लिए सम्मन्य जान नहीं पड़ता। ये छोटी-छोटी-मूँके रहते थे। कभी की सहायता से ये अपने बालों को पीछे की ओर फेरते थे।

तील के बटखरे—उत्खनन द्वारा पर्याप्त मात्रा में बटखरे प्राप्त हुए हैं। छोटे बटखरे बिल्लीर स्टेटी पत्थर के हैं और वे प्रायः छपहके आकृति के हैं किन्तु बड़े बटखरे पील पेंडा के लोकीसे हैं। इतिहासकारों का ऐसा मत है कि ये बटखरे अपनी सुदृढ़ता में मेमोमोमियाँ तथा एलम के बटखरों से भी बड़ेकर हैं।

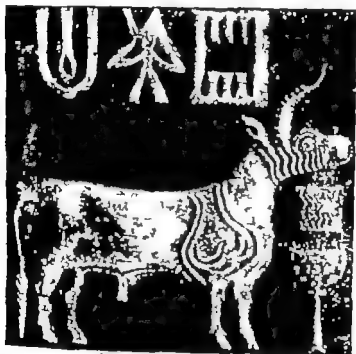
अग्नितम किया—ये तीन प्रकार से अपने घरों की अग्नितम किया करते थे—(१) या तो उनकी पूरी समाधि दे दी जाती थी। (२) या पहले घर को खुले स्थान में इसलिए छोड़ दिया जाता था कि वह पशु-पक्षियों का आहार बने और तत्पश्चात् सर्वशेष अस्थि-वर्षर को बरफना देते थे। (३) या पहले घर को बरफा देते थे और तब मरन को भाग्य में रखकर बरफना देते थे।

सामाजिक संरचना—यहाँ सम्पूर्ण समाज चार वर्गों में विभक्त था—(१) विद्वान् (२) योद्धा (३) व्यापारी तथा (४) समजीवी।

पुजारी उद्योगिता तथा बैद्य आदि की गणना विद्वान् वर्ग में की जाती थी। नैतिक कार्य करने वाले तथा जन रसकों की योद्धा वर्ग में रक्ता गया था। औद्योगिक कार्य करने वाले तथा पशियों का तृतीय वर्ग व्यापारियों का था। अनुष्ठानों में नर काम करने वाले लोकर तथा अन्य समजीवी थे। छोटे-छोटे घरेलू उद्योग-व्यवसायों में रत्न हुए व्यक्तियों को भी इसी वर्ग में रक्ता गया था।

बृक्ष-पूजा या प्रकृति-पूजा—बृक्ष-पूजा या प्रकृति-पूजा के प्रमाण स्पष्ट रूप से मिलते हैं। बृक्ष-पूजा दो रूपों में होती थी—(१) वृक्ष को उसके प्राकृतिक रूप में पूजना तथा (२) प्रतीकारमक रूप में अर्थात् उस वृक्ष में किसी देवता का निवास मानकर। पीपल की दो डालों के बीच में एक देवता का चित्र मोहेनजोदड़ो में प्राप्त हुआ है। इस देवता की आराधना में सात अग्न्य मूर्तियाँ चित्रित की गई हैं जो गारी चित्र हैं।

पशु-पूजा—सिन्धु सभ्यता के निवासी पशु-पूजा भी करते थे। उनकी पशु पूजा का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पशुओं की आकृतियाँ कुछ विशेष आकार प्रकार की बताते हैं। कुछ पशु बाघ मनुष्य और आधे पशु थे। आधा भैंसा और आधा बकरा आधा हाथी और आधा बैल या इसी प्रकार के अन्य मिश्रण से किसी पशु की आकृति का निर्माण करना यह सिद्ध करता है कि वे पशुओं में भी ऐसी अंश मानते थे और उनकी आराधना करते थे।



चित्र २—मोहेनजोदड़ो की कला

धार्मिक प्रथाएँ—इनकी धार्मिक प्रथाओं के विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त स्वल्प है। प्राचीन सभ्यताओं में धार्मिक अन्ध-विश्वासों का बहुतोना भाग अधिक प्रचार पाया होता है। सिन्धु-सभ्यता में भी हमें इस प्रकार के अन्ध-विश्वासों का पता चलता है। स्वर्ग-नरक के विषय में इनकी कोई कल्पना थी या नहीं यदि थी तो क्या थी इनका भी कोई ज्ञान हमें नहीं है। आग्निपाहारी होने के कारण इनकी धार्मिक प्रथाओं में से कुछ हिंसारमक भी रही होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है पर इसका भी कोई साम्य साक्ष्य नहीं है।

कला

कला के क्षेत्र में यहाँ के कलाकारों ने काफी उपति की थी। बुनिया के सि इसकी विभिन्न कलाओं का पुनर्-पुनर् वर्णन किया जायगा।

भवन-निर्माण-कला—इनके भवन यद्यपि स्वच्छ एवं सुशील होते थे पर इन कलात्मकता का अभाव था। विद्यास भवना एवं हमों को देखकर हम यह निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि वे इस कला में बस थे और मकानों को अधिक से अधिक उपयोगी बनाना चाहते थे। बृहत्-स्नानागार इनकी इस कला का शीर्षक है।

मूर्तिकला—वास्तव में यहाँ के कलाकार मूर्ति-कला में ही विशेष उपति कर सके थे। इनकी मूर्तियाँ अधिक कलात्मक एवं कल्पनापूर्ण हैं। यहाँ नर्तकी की एक मूर्ति प्राप्त हुई है। नर्तकी विमयी मुद्रा में नर्तन करने के लिए प्रस्तुत है। वह पैर ऊपर उठा कर पद-अक्षेप करती है।

मूर्त निर्माण-कला—इस क्षेत्र में तो यहाँ के मनुष्यों ने जाघातीय उपति की थी। मूर्तें विभिन्न प्रकार के पत्थरों हाथी दाँत बांसुओं तथा मिट्टी की बनाई जाती थी। इनके आकार भी विभिन्न हैं। अधिकतर मूर्तें मोलाकार हैं। मूर्तों की सुन्दरता उन पर उत्कीर्ण पशु-आकृतियों से और बढ़ जाती है।

अग्निकला—कुम्भकार-कला स्वर्ण-कला वर्तन बनाने की कला जाति पर पहले ही प्रबल प्रकाश डाला जा चुका है। चित्र-कला का स्वतन्त्र रूप चित्रन की नहीं मिलता पर इसके अनुमान लगाना कि वे चित्रकला से अनभिज्ञ थे सर्वसम्मत नहीं। वास्तव में चित्र-कला का प्रवर्तन बहुधा सीम-नरय वस्तुओं पर होता है जिनका इतने दिनों तक सुरक्षित रहना असम्भव ही है। मिट्टी के बर्तनों और पात्रों पर जो चित्र बने हैं वे इस बात के प्रमाण हैं कि वे चित्र-कला से परिचित रहे होंगे।

लेखन-कला—यहाँ के निवासी लिपना-पढ़ना अवगमन करते थे जैसा कि मूर्तों पर उत्कीर्ण लेखों से सात होता है पर कोई लेख-पत्र नहीं प्राप्त हुआ है। लगभग ५०० मूर्तें प्राप्त हुई हैं जिन पर कुछ लिखा है। इनकी लिपि विभात्मक प्रतीत होती है और प्रत्येक चित्र चिह्न का वस्तु विशेष के लिए बना है। ये दाहिने से बाईं की लिखाते थे पर कुछ मूर्तों में कुछ वक्रियों बायें से दायें की भी जल्दी हुई पाई गई हैं। दुर्भाग्यवश इनकी लिपि अब तक नहीं पढ़ी जा सकी है।

प्रश्न

1. Give a brief account of the Indus Valley Civilization and contrast it with the early civilization of the Aryans. (Sept. 1954)
सिन्धु घाटी सभ्यता का संक्षेप में वर्णन देते हुए इस सभ्यता का आर्यों के आरम्भिक सभ्यता से भिन्नता प्रदर्शित करें।

2. Give a brief account of the important features of the Indus Valley Civilization. When did it flourish and what were the causes of its disappearance? (1948)
सिन्धु प्रदेश की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उसके फूलने तथा समाप्त होने के कारणों का वर्णन कीजिये।

3. Write a critical note on Indus Valley Civilization. (Sept. 1957).
सिन्धु घाटी की सभ्यता पर संक्षेप में टीका टिप्पणी करें।

अध्याय ४

भारतीय आर्यों का मूल

आर्य जाति

आर्यों के आदि देश के विषय में खोज करने वाले जन्मेपकों का अभाव नहीं है और न तरसम्बन्धी सिद्धान्तों का ही अभाव है। मैक्समूलर नेन्के याइजर पी० माइस्स वासर्गमावर तिरुक् आदि अनेक प्रकाशित विद्वानों एवं महारथियों ने इस क्षेत्र में जन्मेपथ किया है और इस प्रकार अपने पाणिन्य द्वारा आर्यों के इस अज्ञात आदि निवास-स्थान को बताने का प्रयास किया है। अपने जन्मेपथ तथा आचार इन विद्वानों ने भाषा-विज्ञान जाति-विषयक विवेचनार्थ तथा पुरातात्विक उपकरण रक्ता है। आर्यों के आदि निवास-स्थान का जो वर्गीकरण किया गया है उससे यह बात होना है कि विद्वान् आर्यों का आदि देश योरोप में ही बताते हैं कुछ लोग मध्य-एशिया को बहु स्थान घोषित करते हैं कुछ विद्वानों के मतानुसार बहु भूमि आर्कटिक प्रदेश में किसी भी और कुछ इतिहासकार भारत को ही आर्यों को मूल भूमि प्रस्तावित करते हैं। इन समस्त मतों पर उपर्युक्त प्रकाश डाला जायगा।

आदि देश योरोप—इस मत का प्रथम प्रचारक हम फोरोस के एक सौदागर किस्मिन्सैटेटी को कह सकते हैं। इसने यह घोषित किया कि भारत की संस्कृत भाषा तथा योरोप की अन्य भाषाओं में कुछ साम्य है। उस सौदागर के विचारों का समर्थन सर्वप्रथम बंवास के प्रधान म्यामाबीस सर बिस्मिथ जोन्स ने किया। इन्होंने पितृ मातृ आदि शब्दों के साम्य को योरोप की अन्य भाषाओं में दिखवाया। पर यह साम्य अधिक से अधिक केवल यह सिद्ध करता है कि उपरोक्त भाषा-भाषी कभी कभी एक स्थान पर रहे होंगे। कुछ आलोचकों का कहना है कि भाषा का साम्य केवल इतना ही हो सकता है कि उसके भाषा-भाषी एक ही जाति के हों। किसी एक स्थान पर जो विभिन्न धानियाँ रह सकती हैं और उनमें भाषा-सम्बन्धी साम्य ही सकता है। भाषा-सम्बन्धी साम्य न आचार पर योरोप को आर्यों का आदि देश मानने वालों का यह तर्क है कि भारतीय (इन्डो-यूरो-पियन) भाषाएँ काफी अधिक संख्या में योग्य के सीमित क्षेत्रों में ही पाई जाती हैं। योरोप के बाहर या बहुत दूर इनका प्रयोग नाममात्र को ही है और केवल लगभग रूप में वहाँ इनके मुहावरे बिखरे-से हैं।

योरोप के विभिन्न भाषों की आर्यों का मूल बताने वालों ने तर्कों का विस्तृत वर्णन भी किया जायगा।

हंगरी का मैदान इतिहासी रूप तथा जर्मनी आदि को यह विवादास्पद भूमि विद्वानों द्वारा घोषित किया गया है। हंगरी के मैदान के समर्थक डा० पी० याइस्स हैं। इन्होंने प्रसिद्ध पुस्तक (Cambridge History of India, Vol I) में लिखा है—

उनकी भाषा में हमें बात हाता है कि किन-किन पद्यों एवं वृत्ता का उन्हें ज्ञान था। उन भाषाओं के साम्य से जिन्हें वे जोखते थे हम ऐसा अनुमान करते हैं कि

वे लोग पचास समय तक एक स्थान पर एक साथ रहे हुाने त्रिमय कई पीढ़ियों तक वे अपने विशेष गुणों में विकास लाते रहे। यह क्षेत्र भिरि भूखण्ड अथवा जल द्वारा अन्य स्थानों से पृथक् कर दिया गया होगा। इन भाषाओं के अध्ययन से हमें यह ज्ञान प्राप्त नहीं मिलता कि यह लोग किसी द्वीप पर रहते रहे होंगे। यह भी सम्भारतमक है कि समुद्र के लिए उन्हें किसी शब्द का ज्ञान भी था। अतः यह सम्भव नहीं कि वह स्थान समुद्र से परितोष्ठित हो। इसकी भाषाओं के अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता है कि उन्हें किन-किन गुणों का ज्ञान था। ये गुण शीतोष्ण कटिबन्ध में उत्पन्न होते हैं। अतः जर्मों का भाषा ऐसा शीतोष्ण कटिबन्ध में रहा होना। वह पर्वतमालाओं से भी घिरा रहा होगा। यह बहुत निम्नपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि किन जगहों का उन्हें ज्ञान था। यह बहुत सम्भव है कि जर्म लोग स्वामी रूप से एक स्थान पर निवास करते थे। जिन पशुओं का उन्हें ज्ञान था वे बक गाय भेड़ कुत्ता सुअर हिरन इत्यादि थे। गधे जल्दतर तथा हाथी से वे अपरिचित थे। जंगली पशुओं में उन्हें मैडिया तथा जानू का ज्ञान था किन्तु जानू अथवा सिंह से वे अपरिचित थे। अतः तथा विश्व को भी वे जानते थे। वे लोग साधारण निस्पष्ट नहीं तथा भी का प्रयोग करते थे। योरोप में कोई ऐसा एक क्षेत्र प्रदेष्ट नहीं है जहाँ ये सारी बात प्राप्त हो। केवल हंगरी का मैदान ही ऐसा एक क्षेत्र है। इसके पूर्व में कारपेथियन पर्वत माला है। दक्षिण में बास्केन पर्वत में आस्ट्रियन कारपेथियन से मिल जाती है। यह क्षेत्र बड़ा उजाड़ है तथा इस मैदान में बाघाओं को पीने पाय जाते हैं। वहाँ घान के मैदान भी हैं जहाँ पीने वाले जा सकते हैं। पर्वतों की उपरमकाओं में जेडों के लिए काफी सुविधाएँ हैं। सुअर भी यहाँ मिलते हैं। इसी प्रकार प्राचीन जर्मों के ज्ञान गुण भी यहाँ पाये जाते हैं। अतः यही क्षेत्र जर्मों का आदि देश रहा होगा।

कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि जर्मों का आदि देश जर्मनी या जर्मनी प्रदेश में नहीं था। इन विद्वानों में पेन्का अश्विन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पेन्का महीयन में स्वीडनेरिया की जर्मों का आदि देश निश्चित किया है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने आदि सम्भवों विषयवाची का आधार किया है। पुरातात्विक धातुओं के आधार पर पेन्का के समर्थकों ने जर्मों का आदि देश पश्चिमी वास्टिक समुद्र बतलाया है। इन समर्थकों का कहना है कि पूर्व पापाय मुस सपाय हो जाने के पश्चात् जो गुन बारम्भ होता है उस युग के मनुष्यों की निमित्त अनेकानेक बस्तुएँ यहाँ प्राप्त हुई हैं। जर्मनायका के आधार पर मध्य जर्मनी की भी जर्मों का आदि देश माना गया है। यहाँ जो पाय प्राप्त हुए हैं उनके ज्योमितीय रेखा चित्र ठीक इन्डोयूरोपीय जात पड़ते हैं।

जर्मों की आदि देश की समस्या मुख्यतः गुलजाते हुए विद्वानों ने योरोप के दक्षिण के भाग की जर्मों का मूल बतलाया है। निश्चय ही यहाँ की भूमि उपजाऊ है यह शीतोष्ण कटिबन्ध में पड़ता है और इस सम्बन्ध में उन्होंने यह भी एक उपस्थित किया है कि योरोप का दक्षिणी भाग ही उन स्थानों के निकट है जहाँ निमित्त योरोपीय जर्मों की साधारण प्रसाधारण निवास करती है। इतना ही नहीं एशिया की अथवा योरोप में जर्मों की संख्या अधिक है अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि योरोप के दक्षिणी मैदान में ही जर्मों का आदि देश है। स्थानान्तरण की सम्भावित सुविधाओं को ध्यान रखते हुए इस मत के समर्थकों का कथन है कि यहाँ बड़े-बड़े महान योरोप सम्मूह तथा पर्वत-मालाएँ नहीं हैं। अतः यहाँ से पूर्व की ओर स्थानान्तरण

वरत है। अपने मत की पुष्टि में इन्होंने दूसरा प्रमाण यह दिया है कि पर्यटन ग्न पश्चिम से पूर्व को हुए हैं पूर्व से पश्चिम की पर्यटन नहीं हुए हैं।

आदि देश मध्य एशिया—यह मत भी काफी भाव्यता पा चुका है। प्रो. मैक्स-मूलर इस मत के प्रचारक हैं। अपने मत के समर्थन में इन विद्वानों ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि आर्य भाषा की सम्मता एवं संस्कृति का बोध हमें वेद तथा अवेस्ता से होता है। वेद भारतीयों (भारतीय भाषों) का तथा अवेस्ता ईरानियों का आदि भाषिक ग्रन्थ है। ईरान तथा भारत के समीप ही कोई मूल-भाषा भाषों का आदि देश रहा होगा क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त साम्य है। एक सेखर का तो यहाँ तक कथन है कि केवल एकमात्र शब्द या वाक्य जण्ड ही नहीं बल्कि एक सम्पूर्ण पद्यांश को शब्दावली परिवर्तित किए बिना ही भारतीय भाषा से ईरानी भाषा में कामा जा सकता है। इतना निकट साम्य यह निश्चयपूर्वक सिद्ध करता है कि वेदों विभिन्न देश के मिश्रासी कभी बहुत दिनों तक एक ही स्थान पर रहे होंगे और तब कामान्तर में कुछ करणोंवत् स्थानान्तरण कर गए होंगे। भारत तथा ईरान के बीच ही कहीं इनका आदि देश बताकर इन विद्वानों ने भाषों के स्थानान्तरण के विषय में यह कहा है कि यहाँ से भाषों के तीन बन्ध बने। एक पत्था भारत को दूसरा ईरान को तथा तीसरा योरोप को बना। इन विद्वानों ने भी भाषों की परिचित वस्तुओं तथा उनके ग्रन्थों के आधार पर अनुमानित वक्रवायु से मुक्त भूमि की भाषों का मूल सिद्ध करने का प्रयास किया है। उन्हें मध्य एशिया ही ऐसा स्थान प्रतीत होता है जहाँ ये सारी वस्तुएँ हैं। उनका तर्क इस प्रकार है—कपि-धर्म तथा पशु-भक्षण भाषों का प्रमुख व्यवसाय था। इन दोनों भाषों के लिए लम्बे-बीड़े मैदानों की आवश्यकता है। अपने बर्ष की पचना आर्य हिम से करते थे। इसका अर्थ यह है कि वे किसी शीत प्रवास वृत्त में रहते थे। विन्तु बाद में वे ही आर्य बर्ष की गणना सरल से करने लगे जिससे यह परलक्षित होता है कि वे भोज पश्चिम की ओर बढ़ गये जहाँ अपेक्षाकृत कम ठंडक पड़ती है। नावा का प्रयोग वे जानते थे। इसका यह अर्थ है कि वह मान झीलों तथा नदियों से मुक्त रहा होगा। वे घोड़ों से भी परिचित थे। उसका प्रयोग वे सवारी में करते थे। पीपल के पेड़ वे थे परिचित थे किन्तु आम तथा बरमर से वे अपरिचित थे। इन सारी वस्तुओं की प्राप्ति मध्य एशिया में ही सम्भव है। अतः यही देश भाषों का आदि देश रहा होगा। यहाँ से स्थानान्तरण करके एक हिमादि भाषियाँ भी भारत आईं थी। इतना ही नहीं इन विद्वानों ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यहाँ से भारत ईरान तथा योरोप को जाना सरल है।

पामीर प्रवेश या रूसी तुर्किस्तान की भाषों का आदि देश मानने वालों का यह कथन है कि मध्य एशिया में बोनाजकुई में कुछ सम्मिश्र-भाषा के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों में वैदिह देवताओं—इन्द्र वरुण मित्र आदि के रूपान्तरित नाम प्राप्त हुए हैं। पामीर प्लेटो के आसपास भाषों का आदि देश मानने के कुछ प्रमाण इस मत के समर्थकों ने इस प्रकार दिये हैं।

योरोपीय भाषाभाषा में हिट्टाइट प्राचीनतम भाषा है। लगभग १९० ई० पू० में कैपेडोनिया के रहने वाले हिट्टी भाषा-भाषी थे। योरोप का ऐसा विचार है कि हिट्टाइट भाषी न लगभग १९५० ई० पू० में कैपेडोनिया पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था और करीब-करीब इसा समय इण्डो-ईरानी भाषा भी पामीर प्रवेश या तुर्किस्तान में पहुँच चुके थे। इसने यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भाषों का आदि देश कपेडोनिया तथा मध्य एशिया से समान दूरी पर ही स्थित रहा होगा। भारत तथा पश्चिमी योरोप भाषों का आदि देश नहीं ही सकता है। किन्तु यहाँ हमें यह नहीं भूल जाना

चाहिए कि जायों का आदि देश काफी दूर-भरा या और जायों का वि-कृति-कार्य करती थी। इसी आधार पर डा० पी० गार्डन ने कहा है कि इसका उदाहरण लखनऊ प्रदेश जैसा कि पामीर प्रदेश है जायों का आदि देश क्यापि नहीं हो सकता।

उपरोक्त विवरण से हमें प्राप्त होता है कि डा० पी० गार्डन ने आदि विद्वानों ने एशिया में ही जायों का आदि देश ढूँढ़ने का प्रयास किया है। किन्तु इन विद्वानों के आकाशको का यह कथन है कि जब हम जानते हैं कि जायों के आदि देश में बरु का बाहुल्य था और उनकी मातृ-भूमि निरान्त ज़र्रा भी तो मध्य एशिया जैसे अल्प जल वाले तथा कम ज़र्रा भूमि की किस प्रकार जायों का आदि देश मान सकते हैं। यही नहीं यदि जायों का आदि देश मध्य एशिया में नहीं था तो फिर अपनी मातृ-भूमि में ही जायों को इतनी कम संख्या में क्यों रह गये और भारतीय जायों के आदि प्रत्यक्ष देश में मध्य एशिया का कोई संकेत क्यों नहीं है? मध्य एशिया को जायों का आदि देश मानने वालों ने उसकी प्राकृतिक तथा के अभाव-सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर दिया है कि मध्य एशिया का यह भौतिक परिवर्तन जायों के स्थानान्तरण के पर्याप्त हुआ।

भारत में जायों का आदि देश—वेद के आधार पर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने उत्तरी ध्रुव को जायों का आदि देश बताया है। उनका कहना है कि वेद में ऐसे उल्लेख आते हैं जो उत्तरी ध्रुव को जायों का आदि देश मानने में सहायक होते हैं। उदाहरणार्थ वेदों से हमें पता चलता है कि जायों की वह बात थी कि एक छत्र दिन और एक छत्री रात का एक वर्ष होता है तथा कई दिनों का प्रातःकाल होता है। 'कई दिनों का प्रातःकाल' यह स्पष्ट बतलाता है कि वहाँ अति अधिक सुपारपात होता रहा होगा। प्रारम्भ में उत्तरी ध्रुव प्रदेश सुपारपात था। एक सुपारपात का वर्षत हमें वेद-सा प्रामाणिक ईरानी जन्म अवेस्ता से मिलता है और इसी सुपारपात के कारण ईरानी जायों की अपनी जन्म-भूमि से स्थानान्तरण करना पड़ा था। समान ८००० ई० पू० तक जायों यही उत्तरी ध्रुव प्रदेश में रहे और उत्पन्न हुए उन्होंने वहाँ से स्थानान्तरण किया और ९००० ई० पू० के लगभग उनकी एक घाटा मध्य एशिया में आकर बस गई थी। इस प्रकार तिलक जी ने मध्य एशिया के विद्वानों का ज़ानू पोछते हुए अपने एक नये मत का प्रतिपादन किया है। पर इनका मत अधिकतर विद्वानों को अस्वीकार है।

भारत जायों का आदि देश—कुछ विद्वान् प्राचीन जायों का आदि देश भारत मध्य एशिया आदि न मानकर भारत की ही बात करते हैं। प्याम रहे कि भारत की आदि देश बताने वाले अधिकतर विद्वान् भारतीय हैं और यह कहना अनिश्चित न होगा कि यहाँ उन विद्वानों के तर्क के पीछे आत्ममोह की एक हल्की पृष्ठभूमि है। फिर भी इनका तर्क बहुत कुछ बुद्धिपूर्वक एवं सम्मति आत होता है। इन विद्वानों में श्री अविनाश बाल दास श्री मंगलनाथ झा श्री डी० ए० निवेदी तथा डा० ए० सी० कल्ला का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वेद में 'सप्तसिन्धवः' का पुष्पमान यत्र-तत्र किया गया है। अतः यही भूमि जायों का आदि देश रही होगी। पुराण तथा ईरानियों के प्राकृतिक प्रश्नों के सम्मिलित अध्ययन से भी यह पता चलता है कि कोई संशय (पुराणों का देवासुर संघर्ष) की पर्वतों के बीच हुआ। इस मुख में पुराणों के अनुसार देवताओं ने अमुरों को पराजित किया। अवेस्ता में भी इसी प्रकार का विवरण है।

1. State the various theories of the early home of the Aryans. (1954)

१. आर्यों के आदि देश के सम्बन्ध में जो मत प्रचलित हैं उनका व्याख्या कीजिये।

2. Do you think that the Aryans were original inhabitants of India?

२. क्या आर्य भारत के आदि निवासी थे?

3. Discuss and criticise the arguments of those who maintain that Europe was the original home of the Aryans.

३. आर्यों की आदि भूमि यूरोप बताने वालों के तर्कों का उल्लेख करते हुए उनका खण्डन या समर्थन कीजिये।

4. What do you know about the original home of Aryans? Discuss the various theories regarding the original home of the Aryans. (1951).

४. आर्यों की आदि भूमि के विषय में आप क्या जानते हैं—तथा उनके निवास स्थान के विषय में दिने कबे विभिन्न-विभिन्न मतों का वर्णन करते हुए अपने विचार प्रकट कीजिये।

अध्याय ५

आर्यवैदिक काल की सभ्यता

आर्यवेद से ऐसा ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम भारतीय आर्य अफगानिस्तान तथा पंजाब में बसे थे। अफगानिस्तान में बसने का प्रमाण यह है कि कामुक स्वात कुर्रम तथा यामल का उल्लेख आर्यवेद में किया गया है। पंजाब की पाँच नदियों का उल्लेख आर्यवेद के मन्त्रों में बार-बार किया गया है। विवस्ता (सकम्) अस्तिनी (वेनास) पर्वपी (रावी) बिपाशा (ब्यास) और रात्रा (रातन) सिन्धु तथा सरस्वती का भी उल्लेख आया है। पंजाब में इनक मिवास करने का एक दूसरा प्रमाण यह है कि घमना का प्रबोध तीन बार और गवा का केवल एक बार किया गया है। इसी प्रकार बसा के पूर्व की नदियों का उल्लेख आर्यवेद में नहीं किया गया है। आघाओं में बाबल का भी उल्लेख नहीं है क्योंकि यह पूर्व में उत्पन्न हुआ है। इसी तरह बानवरी में बाप का उल्लेख नहीं है क्योंकि यह भी पूर्व का वस्तु है। अतः ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि आर्य प्रारम्भ में पंजाब में बसे थे और तब वहाँ से उन्होंने भारत के घंघु गार्गी का आर्य-करण किया। इस आर्य-करण में आर्यों को जनायों से और संघर्ष करना पड़ा। इसका वर्णन आर्यवेद में स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। जनार्ब अपेक्षाकृत कम थे यह हमें प्रबोधि मालूम होता है। अतः इनके रज-सम्बन्धी अस्म-सस्म दुर्वल एवं अपरिपुष्ट थे। इनको रज-विद्या एवं सैनिक संयुक्त का भी बोध नहीं था। सम्य आर्यों को इनसे पराजित करने में कठिनाईयाँ अवश्य पड़ीं पर पीरे-पीरे है। इन पर विजय पाते गए और इसी वृत्ति से अपना प्रसार भी वृत्ति की ओर करते गए। सर्वप्रथम सरस्वती तथा बसवती नदियों के मध्य पर अपना आधिपत्य स्थापित करके आर्यों ने इसका नामकरण ब्रह्मावर्त किया। आघा है कि ब्रह्मावर्त में ही आर्यवेद के पर्वान्त ब्रह्मों की रचना की गई होगी। ब्रह्मावर्त पर अपना अधिकार स्थापित कर लेने के पश्चात् उनका रज प्रमाण आगे की दुआ और उन्होंने जनायों की भूमि को छीन कर इसका नाम ब्रह्मवि रक्खा। ब्रह्मवि की स्थापना के पश्चात् आर्यों ने मध्य अरब की स्थापना की और अब सम्पूर्ण भारत पर इनका अधिकार हो गया तो इसका नामकरण उन्होंने आर्यावर्त किया।

आर्यवेद—आर्यवेद में कुछ बातें मन्त्रक हैं। इन वृत्तों मन्त्रकों में कुछ १ १८ मंत्र हैं। प्रथम ९ मन्त्रक प्राचीनतम हैं और वृत्तों मन्त्रकों की रचना बाद में हुई।

आर्यवेद की तिथि—मैक्समूलर महीषव न वैदिक एवं ग्रीक संस्कृत की तुलना की मापा के अन्तर्गत के आधार पर करके यह सिद्ध किया है कि आर्यवेद की रचना १२ ००-१००० ई० पू० के लगभग हुई थी। मुन्निख अर्मेन विद्वान् जैकोबी ने ओलिवियान के प्रमाणों के आधार पर आर्यवेद का समय लगभग ४०० ई० पू० माना है। इसी प्रकार श्री वात्स्यवासर ने भी ज्योतिष के आधार पर यह समय ८००० ई० पू० बताया है। विन्टरनिस्स के मतानुसार यह तिथि २५०० ई० पू० तक होती है। इन समस्त प्रमाणों के आधार पर इसका दो विस्तारपूर्वक कहा जा सकता है कि आर्यवेद की रचना १५ ०० ई० पू० से १२०० ई० पू० के भीतर या सम्भवतः इससे भी पहले हुई होगी।

एरध्वेद में वर्णित अनार्य—श्रृंगेय में अनार्यों की जो रूप-रेखा दी गई है उस पर भी एक विहंगम दृष्टि बाध लेना आवश्यक है। सम्पूर्ण श्रृंगेय में इन अनार्यों की मर्त्यता की मर्द है। इन्हें बाम वस्त्र या जमुर कहा गया है। पिछाच तथा राभसों का उल्लेख भी श्रृंगेय में आया है।



चित्र ३—वैदिक भारत

पर अनार्यों को इमें पूर्वतया असम्य नहीं मान लेना चाहिए। श्रृंगेय पर ध्यान देने से यह सात होता है कि उन्होंने अपने के स्थान मकान बनाये थे जिन्हें आर्यों ने जला दिये। दावों और वस्त्रों के अपने नगर थे जिनके विनाश की प्रार्थना आर्यों ने बार-बार इन्द्र से की है। इसी प्रकार युद्ध के लिए वे सेनाएँ भी रखते थे और किसी का निर्माण करके उनमें अपना कब्जा रखते थे।

आर्यों-अनार्यों का संघर्ष पर्याप्त समय तक चलता रहा। अन्त में आर्यों ने वस्त्र या दास जाति वाली (अनार्यों) की बुरी तरह पराजित कर दिया। युद्ध में काम करने के पश्चात् बहुत अधिक संख्या में वस्त्र या दास जाति बच गई। इन से वे लोगों की विषय होकर या तो आर्यों से कहीं बहुत दूर जंगल-गिरि-कन्दराओं की छरण लेनी पड़ी या तो उनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। फलतः इस वस्त्र या दास जाति के इतने अधिक लोग पुछाम बनाये गए कि दास शब्द का अर्थ ही गुलाम हो गया। इनने नेताओं का बच कर लिया गया होगा।

आर्यों की सामाजिक व्यवस्था

आर्य-अनार्य-संघर्ष आर्य-आर्य-संघर्ष आदि के पश्चात् आर्यों के समाज की जो रूप-रेखा तैयार हुई वास्तव में यही उनकी विद्यमान सामाजिक व्यवस्था थी। इसके पूर्व भी सामाजिक व्यवस्था आर्यों ने निमित्त की थी वह अब तक काफी परिवर्तित हो चुकी थी। प्रारम्भ में केवल आर्यों का ही समाज में हाथ था पर कालान्तर में अनार्यों की भी इसमें स्थान दिया गया।

आर्य बर्ने—यद्यपि आधुनिक काल में सम्पूर्ण आर्य वर्ण एक वा. उभयें ज्ञान पान पोटी-बेटी का निकटतम सम्बन्ध था उनमें जन्म-व्यवसाय की पूर्ण स्वतन्त्रता थी जैसा कि एक श्रुति स्वयं कहता है कि 'मेरा पिता वीर है मेरी माता पितृसहायरी है, मैं कर्मिता करता हूँ' यद्यपि सामाजिक विकास के सिद्धान्त में ही कुछ ऐसे मूल तत्त्व होते हैं जो समाज के वर्गीकरण के कारण बनते हैं।

'विराट पुत्रप' द्वारा चार वर्गों की उत्पत्ति का विवरण हमें पुरापुराण (आग्नेय के दसवें मण्डल) से प्राप्त होता है। जायों की धार्मिक वधा के सम्बन्ध में जन्मे पुराणों में पढ़ने से ज्ञात होता कि इनके धार्मिक इत्यद्वयमें अतिशय थे कि उनके लिए बहुत अधिक योग्य की आवश्यकता थी। वैदिक यंत्रों के स्पष्टीकरण के लिए भी कुछ विद्वानों की आवश्यकता थी। अस्तु एक पुरोहित वर्ग बनने लगा जो ब्राह्मण कहलगा। यद्यपि इन्हें वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी किन्तु वे अन्य वर्गों से कथार्थ सेना बहुतमा हेतु समझते थे और सवर्गीय वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में इन्हें विशेष सुविधा थी पड़ती थी। जब ब्राह्मण वर्ण की वधा पर भी बौद्ध विचार किमा आगया। आग्नेय की कुछ आधुनिकों से यह ज्ञात होता है कि उन्हें समाज में कांठी आकर भिन्नता या और उनका पर कांठी जैसा था। पुरोहितों को दान रूप सिक्के आमुपच वस्त्र रथ आदि देने का भी उत्तेजक किमा गया है। ब्राह्मणों के पुरोहित रूप के अतिरिक्त उनके और रूप का भी हमें बोध होता है। विष्णुमित्र तथा बलिष्ठ आदि श्रुतियों ने जन्म शस्त्र ग्रहण किमा था।

अब हम जायों के दूसरे महत्वपूर्ण वर्ग पर प्रकाश डालेंगे। जिस प्रकार धार्मिक आवश्यकताओं ने जायों में ब्राह्मण वर्ण की जन्म दिया उसी प्रकार सैनिक आवश्यकताओं ने क्षत्रिय वर्ण का उदय किमा। सैनिक शिक्षा की व्यवस्था भी मुचाव रूप से सैनिक पिता के पुत्र को ही मिल सकती थी। क्षत्रिय होना इतना महान् सम्पदा जाता था कि कुछ आर्य वर्ग बाहे भी क्षत्रिय होने का दावा करते थे।

हम दो प्रमुख वर्गों के अतिरिक्त कुछ अन्य वर्ग भी थे जिनके विषय में हमें आग्नेय संकेत मात्र करता है। आग्नेय के प्रथम भी मण्डल (जिनका रचना-काल दसवें मण्डल के पूर्व माना जाता है) हमें अन्य किसी वर्ग का बोध नहीं कराते। इनसे हमें केवल इतना ज्ञात होता है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के परभाव से वे आर्य जनता की 'विष्ट' कहा जान लगा। जैसा कि बताया था चुका है आग्नेय के प्रथम भी मण्डल प्राचीनतम है और फिर उनके बाद दसवें मण्डल की रचना हुई। इसी दसवें मण्डल से हमें यह ज्ञात होता है कि विराट पुत्रप से चार जातियों का जन्म हुआ। ज्ञान रहे कि ये चार जातियाँ नहीं हैं जो उत्तर वैदिक काल महाकाव्य काल आदि से लेकर आज तक हिन्दू समाज में बनी हैं। इस प्रकार जातियों (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रों) की इस वैसी उत्पत्ति का उत्तेजक आग्नेय के इस मण्डल (पुराण पुराण) से प्राप्त होता है जो अपेक्षाकृत बाद का है। यहाँ यह भी स्मरण रहे कि आग्नेय में कहीं भी वैश्य छन्द नहीं आया है। वैश्यों का कार्य-कर्म बहुत थिक्थि था। ब्राह्मणों के पुत्रा-प्राठ तथा क्षत्रियों के सैनिक कार्य में तय जाने के परभाव अब यहाँ एक ऐसा वर्ग बन्म गया जिस पर समाज की धार्मिक व्यवस्था आकारित थी। शूद्रों को तो 'चरण' से उत्पन्न होने के कारण चरण-रोमा से पुर्वत न की बल-उत्पादन तथा वितरण का कार्य वैश्यों पर आ गया। जायों का उप-वर्ग इन्हीं शूद्रों में से एक था। ये जनायें ने और या तो वृद्ध के जन्मी ने या अन्य प्रकार से आत्मसमर्पण किमे हुए व्यक्ति थे।

पारिवारिक जीवन—आर्य कुटुम्ब पितृ-सत्तात्मक था पर सात ही नारी सम्मानपुक्त थी। पिता या पितामह ही कुटुम्ब का प्रभान होता था जिसे गृहपति कहते थे। गृहपति की प्रभानता घर के अन्य व्यक्ति मानते थे। गृहपति से औरता तथा चशरता की आमा की जाती थी। गृहपति की पत्नी का भी कुटुम्ब के अन्य सदस्यों पर उही प्रकार अधिकार था। अपनी सौम्य एवं मृदु सन्तान की गृहपति वहाँ एक और पूर्ण रक्षा एवं परामर्श-पौषण करता था वही नाकायक एवं सम्पत् सम्भाल की बड़ी कठोर धर्म भी देता था। गृहपति का पद संशयमुक्त था और पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र (सम्भवतः ज्येष्ठ-पुत्र) गृहपति बनता था। पिता की सम्पत्ति का उचित उत्तराधिकारी पुत्र ही होता था—सुभी नहीं। एक ही कुटुम्ब में पिता-माता कई पुत्र, बहुतों प्रवीण आदि रहते रहे होते।

समाज और नारी—आर्यों का सामाजिक संयोजन ही कुछ इस प्रकार का था जो विभूततात्मक होता हुए भी नारी को ऊँचा स्थान देने के लिए बहुधा धास्य करता था। पर्व प्रथा का वही नाम न था। तत्कालीन विद्या पद्धतियों के अनुसार नारियों को भी शिक्षित किया जाता था। उनके विधुपी होने के उदाहरण ऋग्वेद में उचित उनकी रचनाय है। विद्या के क्षेत्र में वे पुरुषों से किसी प्रकार पीछे न थीं। रक्षेत्र में भी वे कम पीछे नहीं दिखता थी।

इस सम्बन्ध में हमें वैवाहिक प्रथाओं पर भी विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि नारियों की रक्षा की उन्नता का हलता अधिकतर इसी पर आधारित होती है। आर्य आहु केवल एक आहु करना था। धात्री तब ही आने के पश्चात् बड़ी भूमि में वैवाहिक-प्रथाय पूर्ण की जाती थी। घर-नगर के लोग सब-सब कर बन्धु के घर जाते थे वही उनका पूर्ण स्वागत होता था। पुरोहित कुछ समय एवं मूर्धन्य में घर-बन्धु का पालन गृहण करता था और उत्पत्त्यात् घर-बन्धु मणि की परिक्रमा करते थे। पाणिग्रहण के पश्चात् बहुत ही विराट उत्सव होता था।

ऋग्वेद में अनेक आहु का भी वर्णन प्राप्त होता है और राजा-महाराजा या सम्मानित पुरोहित कभी-कभी अनेक आहु कर लेते थे।

ऋग्वेद में कुछ ऐसे मन्त्र भी हैं जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि उस काल में विषवा विवाह भी प्रचलित था। अपने मृत पति के साथ सहस्रम्भ का अधिकार उन्हें मन्त्र या परम्परा उन्हें इसके विषे धास्य नहीं किया जाता था।

दैनिक जीवन—दैनिक जीवन के अन्तर्गत हम आर्यों की वेश-भूषा उनके रहन-सहन काल-मात्र आभार-प्रसोद का अध्ययन करेंगे।

आर्य तीन प्रकार का वस्त्र धारण करते थे। पहला 'मीपी' (जो नीचे की ओर की थी) दूसरा 'वाच' और तीसरा 'अभिवाच' था। ऊनी तथा सुती दोनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग में भली भाँति जानते थे। वनवान होने के काम के रंगीन वस्त्र धारण करते थे। उत्सवों पर वे विशेष वस्त्र धारण करते थे। ऐसे अवसरों पर वे 'सुमहरे वामपुत्र' भी पहनते थे। वामपुत्रों में कुम्भक हार, वंगव वलय वगैरे आदि मुख्य थे। नारियाँ उदात्त भूषण आदि से पूर्णतया परिचित ही नहीं थी वरन् वे उसमें कम भी थीं। मन्त्रमन्त्रों को कभी से संभारती थी और तैल (सम्भवतः सुगन्धित तैल) से उन्हें बनाती थी। कुछ पुरुष भी बड़े-बड़े बाक रखते थे और उन्हें संभारते थे। धाड़ी रखने की प्रथा भी प्रचलित थी।

भाषों के भोजन में दूध का महत्वपूर्ण स्थान था। दही तथा घृत का भी बड़े भोज्य प्रतीति उपयोग करते थे। 'शीर पक्वम्-भोजनम्' (दूध में पका हुआ भोजन) का भी प्रयोग ये किया करते थे और एक प्रकार का पनीर भी पीते थे। वे रोटियाँ और चावल भी के साथ खाते थे। माँसाहारी भी थे और सम्भवतः बलि में मारे गये पशुओं के बकरों का मांस खाते थे। गाय का दुग्धाले 'अन्नम्' घोषित कर दिया था। जल उसका बंध नहीं किया जाता था। इनका सबसे महुर वेद्य पदान् 'सोम' का सोमरस था।

भाषों के आभोग-प्रभाव पर भी ऋग्वेद से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। रब-दीड बुड़-दीड नृत्य तथा सर्पित उनके आभोग-प्रभाव के प्रमुख साधन थे। जुवा भेलने की प्रथा भी प्रचलित थी। पुष्य तथा स्निग्धा दोनों नृत्य करने थे। बाघ वनों का भी सुन्दर प्रयोग ये मछी-माँछि मानते थे।

आर्यिक व्यवस्था

जैसा कि अग्य सभी आर्यिक नृत्य देशों में इषि बुड़-उद्योग-अन्न तथा छोटे-बड़े पैमाने पर व्यवसाय जीवनवापन के साधन रहे हैं उसी प्रकार भारत में भी मनुष्यों का उद्यम इषि पशु-पालन घरेलू-उद्योग-अन्न तथा व्यापार था।

पशु-पालन—भाषों की आर्थिक व्यवस्था का मूलधार पशु-पालन था। सब्जियाँ तथा बीजों से हल खेती का काम किया जाता था। वे अन्धाधर तथा साधारण होने तथा अन्न सामान होने के लिए पानी बीचने के काम में भी लाये जाते थे। इनके अन्न पालन पशुओं का उत्तेजक हथियार ऋग्वेद से प्राप्त होता है जिनमें बड़े बकरी गड़का तथा कुछ प्रमुख हैं। घोषण को वे 'घारे कम्पायो का बौड़' मानते थे। घोड़े का महत्व भी उन चित्तों काही था। वे रब-उद्योग के काम में लाये जाते थे।

हवि—पशु-पालन के पशुवाप इषि का ही स्थान जाता है। इषि को ऋग्वेद में काफी महत्व प्रदान किया गया है। कुछ इतिहासकारों का ऐसा मत है कि इषि भाषों का प्राचीनतम पशु था। बीजों द्वारा हल खेती जाता था। उस समय आधुनिक की माँछि केवल दो बीजों से हल नहीं खेती जाता था अपितु ६ ८ या ११ १२ बीजों तक को हल बीचने के काम में लाया जाता था। वे 'अन्न' तथा 'पाण्य' की खेती करते थे। मछी-माँछि बुतार्-बुतार् करके तथा साथ साथ खेती की उर्वरता बढ़ाकर और सिंचाई के समुचित साधन एकत्रित करके ऋग्वेदिक काल के मनुष्य काफी अच्छी उत्पत्ति देवार करते थे।

आखेट—ऐसा बात होता है कि आखेट केवल निम्न वर्ग के लोग करते रहे थे। कम से कम आहार के लिए या बौं कड़िए कि जीवनयापन के लिए तो केवल जन्म वर्ग के लोग ही आखेट करने रहे होंगे। मनुष्य-बाल जाल फँसा आदि इनके—आखेट सम्बन्धी हविधार थे। घर को गड़के म गिराकर उसे पकड़ने की प्रथा थी।

गृह-उद्योग या वस्तुकार—बुड़ या तगध' की उन दिनों काफी पुष्ट थी रब तथा गारियाँ बनाता था। वह लकड़ी पर सुन्दर मककाभी भी करता था। इसके र कर्मकार या लहार का स्थान दिया गया है। 'हिरण्यकार' या गुनार 'हिरण्य' से रूपम बनाता था। ऋग्वेद से हमें यह भी बात होती है कि सिन्धु जैसी नदियों से प्राप्त किया जाता था। कर्मकार भी विभिन्न वस्तुएँ बनाता था। कठार्-बुतार् कार्य में भी ये पूर्ण रहा थे। बिगार् का काम बहुधा सिन्धु ही करती थी।

व्यापार—इस प्राचीन युग में भारतीय जायों ने इस क्षेत्र में जो उत्पत्ति की वह उनके सीमित साधनों को देखते हुए पर्याप्त थी। देखीय तथा अंतर्वर्तीय दोनों व्यापारों में ये लोग सज्ज हुए थे। उपरोक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऋग्वैदिक काल में आर्थिक विपन्नता न थी और लोग सुखमय जीवन बिताते थे।

धार्मिक अवस्था

ऋग्वैदिक काल भारतीय जायों का वह प्रभात काल है जब उन्होंने आध्यात्म जगत् में प्रथम पदार्पण किया था। पर इस प्रारम्भिक काल में ही उन्होंने इतनी उत्पत्ति कर ली थी कि उनकी मान्यताएँ, उनकी व्यवस्थाएँ आज तक भकाटप है। निश्चय ही आध्यात्मिक क्षेत्र की इस महती उत्पत्ति के पीछे धर्माभिव्यक्ति की शिक्षा और मोक्षता है जिसके योग से जायों ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया। शिक्षा के अभाव में किसी भी विकसित धार्मिक अवस्था का होना असम्भव है। अतः हम सर्वप्रथम ऋग्वैदिक कालीन शिक्षा पर प्रकाश डालकर उसका आवश्यक समझते हैं।

शिक्षा—अपनी विभिन्न क्षेत्रों में अविष्ट जाती को सर्वोच्च रत्न के लिए शिक्षा की आवश्यकता प्रत्येक समान को पड़ती है। उस प्राचीन काल में भी सम्प्रदाय एवं संस्कृति की रक्षा के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य था। विभिन्न प्राचीन सभ्य देशों से समयमय भिन्न शिक्षा-प्रणालि भारत में प्रचलित थी। वहाँ प्रत्येक ब्राह्मण का घर ही पाठशाला तथा प्रत्येक ब्राह्मण शिक्षक था। ऋग्वेद में कहीं भी लिखने का उल्लेख नहीं किया गया है। वेद के मंत्र रटे जाते थे। ऋग्वेद में हमें कुछ ऐसा सूक्त भी प्राप्त होता है जिससे पाठशाला की-सी कोई संस्था थी। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि क्योंकि एक स्थान पर यह बताया गया है कि विद्यार्थी ब्राह्मणों की भाँति पढ़ते थे।

देवता—ऋग्वैदिक काल की धार्मिक अवस्था का अध्ययन उनके देवताओं से आरम्भ करना ही अधिक सुगम होता। अतः हम पहले उन पर ही प्रकाश डालेंगे। ऋग्वेद में कुल ३३ देवता माने गये हैं। इनमें सबसे व्यंष्ट इन्द्र अग्नि तथा सूर्य हैं। इन्द्र के लिए २५० अग्नि के लिए २ तथा सूर्य के लिए १० से अधिक मंत्र रचे गये हैं। धीरे धीरे और पूरबी की बलवाता-पिता कहा गया है और ९ मंत्रों में इनका गुणगान है। इसी प्रकार सूर्य के देवता 'वसव' तथा परशोक के देवता 'वज्र' का भी उल्लेख तीन तीन मंत्रों में किया गया है। प्राचीन सभी सभ्य देशों में सूर्य-देव-पद पाता रहा है। भारत में भी इनको देवता प्राप्त हुआ और सम्भवतः अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा स्थान दिया गया था। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य देवता भी अधिक महत्वपूर्ण थे। इनमें धीरे धीरे पुत्र तथा प्रभात की पुत्री देवी ऊषा प्रसिद्ध हैं जिनके लिए अनेक सुन्दर मंत्रों की रचना हुई थी। वज्र का नाम भी इन देवताओं में जिससे उल्लेखनीय है। आगे चलकर ये सिद्ध होकर कप बाराह कर लेते हैं। यक्ष स्रग् के पुत्र माने गये हैं जो अत्यन्त अर्थकर और भववासे थे। वायु और वात भी वज्र की भाँति जीवन-वर्धन देवता थे।

उपरोक्त विवरण से हमें ऋग्वैदिक काल के मनुष्यों की धार्मिक स्थिति का बोध हो जाता है और हम विवरण से यह सात होता है कि इनके धर्म में बहुदेववाद और प्रकृति-उपासना का समन्वय था।

आगे जाति ने प्रकृति के भिन्न-भिन्न विभागों का अवलोकन किया तथा यह अनुभव किया कि कोई व्यक्ति इनका संवाहन करती है। उन्होंने इस व्यक्ति को पूजने की इच्छा से प्रकृति की भिन्न-भिन्न वस्तुओं का नाम रखकर पूजना शुरू कर दिया तथा वह व्यक्ति को इन प्राकृतिक शक्तियों का संवाहन करती थी देवता कहने लगे।

उदाहरण स्वल्प पानी के देवता को इन्द्र वायु के देवता को वरुण तथा आय के देवता को अग्नि देवता का नाम दिया। परन्तु कुछ समय के पश्चात् आयों ने यह अनुभव किया कि कोई एक शक्ति ऐसी है जो इन सब देवताओं अपरिचित प्राकृतिक वस्तुओं का संवाहन करती है तथा वह शक्ति संसार में सबसे महान है। आयों ने इस शक्ति का नाम ब्रह्म रखकर पूजना शुरू कर दिया। इस प्रकार आयों को संसार में एक शक्ति को मानने लगे तथा उनके धर्म में बहुदेववाद को छोड़कर एक परमेश्वर का प्रवेश हुआ। इस प्रकार आयों महान शक्ति ब्रह्म को पूजने लगे।

अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए लोग शार्पनाएँ करते थे और दूध घृत सोमरस तथा अन्य प्राचाद्य चढाते थे। यज्ञों की भी प्रधानता रही जो प्रत्येक घर में होता था।

नैतिक आदर्श—श्रद्धादि काशीन आयों के नैतिक आदर्श पर भी दृष्टि पात कर ऐसा आवश्यक है। श्रद्धा में नैतिक आदर्शों पर काफी और दिया गया है। नैतिक आदर्शों की महानता पर ही किसी धर्म की उत्तमता माप्य हो सकती है। कोण धर्म ही धर्म में सब कुछ कहा। नैतिक आदर्श मानव-मानव के निकटतम सम्बन्धों को सुन्दरतम बनाने में सहायक होते हैं। प्राचीन आयों में अतिवि-सत्कार का बहुत बड़ा महत्व था। प्राचीन भारतीय सम्बन्ध के पीपक भारतीय आयों में आज भी इसका काफी महत्व है।

राजनैतिक अवस्था

श्रद्धादि काश की राजनीतिक व्यवस्था को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न सिद्धि आयों में विभक्त कर सकते हैं —

- (१) कुटुम्ब (गृह या कुल)
- (२) ग्राम
- (३) विषय
- (४) जन तथा
- (५) राष्ट्र।

गोत्रे इन पर पूर्व-पूर्वक प्रकाश डाला जायगा।

कुटुम्ब—श्रद्धादि काश की सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करते समय यह बताया गया है कि उसका औद्योगिक जीवन काफी सुसंरक्षित था। कुटुम्ब शासन की भी सुन्दरतम इकाई था। गरी कुटुम्ब का बड़ा-बड़ा गृहपति होता था। प्रत्येक औद्योगिक संस्था का समाधान इसी के हाथ में रहता था। कुटुम्ब बहुधा बड़े-बड़े होते थे।

ग्राम—कई कुटुम्बों का एक जगह बस जाना तथा इस प्रकार उस स्थान और आबादी का बड़ा जाना राजनीतिक क्षेत्र में कुछ नहीं आवश्यकताओं का कारण बन गया था। प्रत्येक कुटुम्ब की व्यवस्था के लिए ही कुटुम्ब विषय का गृहपति पर्याप्त था किन्तु अनेक कुटुम्बों की सम्मिलित व्यवस्था के निरीक्षण के लिए किसी अन्य पराधिकारी एवं एक दूसरे संगठन की आवश्यकता थी। अतः कुटुम्बों के इस विरोध की ग्राम कहा जाने लगा और ग्राम के अधिकारी को 'ग्रामणी' कहते थे। ग्रामणी की निर्वाचन-प्रणति क्या थी इस विषय पर कोई प्रकाश श्रद्धादि से नहीं पड़ता। अतः यह कहा कठिन है कि वह राजा द्वारा निर्वाचित होता था या उसका पर-संयन्त्रण था। पर इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसका पर काफी ऊँचा था और ग्राम-शासन-व्यवस्था का

कर्मचार 'ग्रामणी' होता था। अतएव में कही-कहा 'व्यपति' जाया है पर मह सम्भवत 'ग्रामणी' हो का पर्यायवाची है।

विध—विध' के सम्बन्ध में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अतएव का विध कोई स्थानीय तहसील (Sub-division) परमना या कोई वर्ग विधायक था। अतएव से यह सात होता है कि 'विध' कोई वर्ग विधायक था। विध का प्रमाण 'विपति' होता था।

जन—कई 'विध' मिलकर 'जन' बनते थे। 'जन' का प्रमाण पौर कहलाता था। अतएव में प्रसिद्ध 'पञ्चजन' का उल्लेख किया गया है। ये पञ्चजन फल गुग्गु, मधु, अनुस तथा ब्रह्मू थे। प्रायः राजा ही जन का प्रमाण अर्थात् 'गोप' होता था। राज्य—देश के लिए 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे सभ्यतम सरकार होने का अनुमान किया जाता है।

राजा—अतएव-काल के राजनीतिक विचारों का अध्ययन कर लेन के पश्चात् उनको धासन-व्यवस्था का अध्ययन करना सुगम है। राजा जो धासन-व्यवस्था का कर्मचार होता है हवाटी विवेचना का प्रमुख विषय होता।

प्रारम्भ में हम राजा की उत्पत्ति पर प्रकाश डालेंगे। राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐतरेय ब्राह्मण की कथा इस प्रकार है—

एक बार देवताओं और मनुष्यों का युद्ध हुआ। युद्ध में मनुष्यों की विजय हुई और देवताओं की पराजय। देवताओं ने कहा कि हम लोग 'भराजयता' अर्थात् राजा न बनने का कारण पराजित हुए हैं। हम लोगों को अपना राजा बनाना चाहिए। इस प्रस्ताव को सबने स्वीकार किया।

तत्पश्चात् ब्राह्मण की कथा इस प्रकार है

एक बार देवों और मनुष्यों में युद्ध हुआ। प्रजापति ने अपने श्रेष्ठ पुत्र इन्द्र को इसलिए जिना दिया कि कहा, मनुष्य उसे मार न डालें। उन्हीं कथानु के पुत्र प्रजापति ने अपने पुत्र विरोचन को इसलिए जिना दिया कि कहे देव उसे मार न डालें। किन्तु देव प्रजापति के पास जाकर कहा "राजा के बिना युद्ध करना असम्भव है"। तत्पश्चात् देव करके उन्होंने इन्द्र से राजा होने की प्रार्थना की।

राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हमें इसी अनुमान का सहारा लेना पड़ता कि मनुष्यों के सर्वप्रथम के लिए यह एक आवश्यकता थी।

राजा के उच्च स्थान का बोध हमें अतएव की आचार्यों से होता है। पुरुषों का राजा मनुष्यत्व कहता है "देवता मनुष्य के कार्यों में सम्मिलित करते हैं। मैं राजा बन हूँ देवता मुझे वह शक्तिपूर्ण देते हैं जिससे मनुष्यों का नाश होता है। मैं इन्द्र हूँ मैं बन हूँ।" राजा की आज्ञा सर्वमाय्य थी और जो लोग राजा की आज्ञा को नहीं मानते वे उनके साथ बल का प्रयोग किया जाता था। राजा ग्यायापीथ के पद से ग्याय करना था दीवानों और औजराटी दोनों प्रकार के सामन्तों का रक्षण करता था और औजराटी के मुकदमों में वह एक विस्तृत विधान-संहिता का उपयोग करता था। राजा 'भरन्त्य' था और प्रजा को अपराधों पर दण्ड देता था इस कार्य में वह युष्मत्तरों से भी काम लेता था। जहाँ वह अपराधियों का दण्ड देता था वहाँ वह हीन-मुषियों की सहायता भी करता था। राजा लोगों को उपहार भी दिया करते थे। एक स्थल पर

यह कहा गया है कि जो राजा राजा बहाने वाले बाहुन की सहायता करता है उसकी राजा देवता करते हैं।

शासन-अवस्था पर प्रकाश डालने के पूर्व ज्यूवैर ने दो सम्मेलन 'राज्य' तथा 'सम्राट' पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। राज्य का प्रयोग ज्यूवैर में बार-बार किया गया है। इसका प्रयोग दो अर्थों में किया गया है—(१) वर्गीकरण। (२) राजा। ऐसा ज्ञात होता है कि राजा न बार और वर्गीकरण (राज्य) करते थे जो राजा की प्रभुता को स्वीकार करते थे और साथ ही वे कुछ विषयों में स्वतंत्र रूप से भी शासन करते थे। इसी प्रकार सम्राट राज्य का भी प्रयोग किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि कई राज बड़े राजा की प्रभुता स्वीकार कर लेते थे और तब उसे सम्राट कहा जाता था। पर इस सम्मेलन में कुछ अधिक प्रामाणिक ढंग से नहीं कहा जा सकता क्योंकि तत्कालीन शासकों का सर्वसाधारण है।

राजा के मंत्री—शासन-कार्य चाहे विधान भी शारीरिक रूप में ही उसमें राजा के अतिरिक्त कुछ अन्य कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। ज्यूवैरिक काल में भी राजा की सुचारु शासन-व्यवस्था के लिए कुछ सहायकों की आवश्यकता पड़ती थी। पुरोहित इनमें प्रथम थे। पुरोहित का प्रभाव राजा पर अधिक रहता था। ज्यूवैर में जिन 'पुरोहित' कहा जाता था। पुरोहित राजा का अग्रिम मित्र एवं प्रवर्धक 'राष्ट्रमित्र' तथा 'सहायक' होता था। अष्टमित्र विधायक और पुरोहितों का उल्लेख ज्यूवैर में किया गया है। पुरोहित का प्रमुख कार्य राज-परिवार के वारिस ज्यूवैर में राजा के साथ रह-रख में बैठे थे जहाँ वे अपने मंत्रों द्वारा राजा की क्षति एवं सुरक्षा की रक्षा करने की प्रार्थना करते थे।

पुरोहितों के बाद सेनापति का पद आता है। यह भी राज्य का प्रमुख अधिकारी था। सेनापति सेनाध्यक्ष होता था। इसकी नियुक्ति सम्भवतः राजा स्वयं करता था। कुछ अन्य पदाधिकारियों का भी उल्लेख ज्यूवैर में किया गया है जिनमें 'राज्य' का स्वयं प्रमुख है। ग्रामपति के सम्मेलन में प्रकाश डाला जा चुका है। ग्राम-शासक का सम्पूर्ण भार इसी पर था। उपस्थित तथा अन्य नामक पदाधिकारियों का भी उल्लेख किया गया है। कुछ समाचार-वाहक दूत तथा राजा के प्रवक्ता का भी वर्णन प्राप्त होता है जो अपने कार्य में काफी कुछ एवं बुद्धिमान तथा राजव्यवस्था में दक्ष प्रकार विभिन्न राज-पदाधिकारियों से युक्त राजा शासन करता था।

समा-समिति—राजपदाधिकारियों के पश्चात् हमें उन संस्थाओं पर विचार कर लेना आवश्यक है जो स्वयं राजा तक के निर्वाचन का अधिकार रखती थीं तथा प्रजा का प्रतिनिधित्व करती थीं। ये संस्थाएँ समा या समिति हैं। ज्यूवैर के अनेक स्तंभों पर समा का उल्लेख किया गया है। समा की मूर्ति समिति का भी ज्यूवैर में यद्यपि उल्लेख नहीं है कि यह समिति के प्रधान का शासन ग्रहण करता था। समिति में राजा के प्रमुख का संकेत हमें कुछ अन्य मंत्रों से भी प्राप्त होता है।

समा और समिति एक ही संस्था है या दो अलग-अलग संस्थाएँ हैं और यदि अलग-अलग हैं तो उनका कर्तव्य और अधिकार क्या था इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। समा और समिति चाहे ही संस्थाएँ हों या एक पर इनका राजनीति में अधिक महत्व प्राप्त पड़ता है। समा में उच्चगुणीय (मुखाय) तथा वर्गीयों का एकत्रित

श्रीमती समिति में स्वयं राजा तक का भाग समा यह प्रमाणित करता है कि राज्य के मूल मामलों (बाह्य से प्राप्त से सम्बन्धित हों या सम्पूर्ण 'राष्ट्र' से) सम्स्याओं आदिपर विचार विमर्श इन्हीं संस्थानों में होता था। यं निश्चय ही राजा को निरंकुश होन में बचानी रही होगी।

स्वाम-व्यवस्था—यह प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग है और इसके पूर्व वर्षों या वर्ष सम्म भागों का बोझ-बाका वा जिनके न्याय का माप-बैज या 'बुन का बयसा बुन' (यद्यपि अपने विलुप्त वर्ष में तो यह आज भी लागू है पर प्रागैतिहासिक युग में इसका प्रयोग सीमित वर्ष में होता था अर्थात् यदि किसी व्यक्ति ने किसी की नाक काट ली तो उसकी भा नाक काट की जाती थी)। इस माप-बैज की जाप श्रृंगीरक भागों पर निश्चय है। पड़ी होगी पर इन्होंने अपने शैक्षिक विकास के कारण कुछ सुधार ला दिया। यह सुधार वा नीति का मुख्य निर्धारित करना। मनुष्य को 'घर बाय' कहा गया है। अर्थात् एक मनुष्य का मूल्य १० पायें हैं। इसी प्रकार 'बीरवेय' घर भी आया है। इनसे यह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि मनुष्यों के जीवन का मूल्य पहल ही निर्धारित कर दिया गया था और जो व्यक्ति उन्हें जान से मार डालता वा उसका उस मृत मनुष्य के सम्बन्धी वा उत्तराधिकारी को निश्चित बन देता पड़ता था। इसी से प्रभावित होकर वर्गसूत्रों में एक कर्म और जाति बढ़कर यही तक निश्चित कर दिया गया कि मनुष्य व्यक्ति की हत्या पर इतनी और अणुष की हत्या पर उतनी सार्य देनी होगी।

श्रृंगीर में देवताओं तथा बन्दीपुत्र का उल्लेख दिया गया है। सम्भवत कुछ अपराधों पर जलजाल की भी सजा थी। शीर्ष व्यास की कथा के आधार पर कुछ मर्षों तक यह अनुमान किया जा सकता है कि अपराध साबित करने के लिए पानी और वायु की परीक्षाओं का भी प्रचलन था। 'मम्ममसी' घर भी कई स्थानों पर आया है जिससे यह अनुमान व्यापक जाता है कि कुछ सवर्णों का निवारण वंश बीज में पड़कर कर दिया करते थे। अपराधों के विषय में हमें ज्ञात होता है कि बोरी (अधिकतर पद्यों की बोरी) जुमा करती थी पर और अन्न वस्त्र वस्त्र आदि भी चुरा के जाते थे और पता लगने पर उनकी दुर्वर्ति की जाती थी।

बुद्ध-प्रवासी—बुद्ध बहुधा आत्माराम या विजयों के लिए तथा कभी-कभी मृत के लिए होते थे।

सेना में पैदल तथा रथ का अधिक महत्व था। रथों में दो तीन वा चार साहसी घोड़े लगाये थे। श्रृंगीर में वर्णित अस्त्र-सस्त्र निम्नलिखित थे—

(१) मनुष्य-बाण (२) कण्ठ (३) हस्तगन तथा (४) अन्य अस्त्र-सस्त्र जैसे बलि (तकमार) पाषाण बर्छा आदि।

श्रृंगीरक काल की समस्त परिस्थितियों का अध्ययन करने के पदचात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी अत्यन्त विरास एवं सर्वोत्तम सभ्यता के लिए जिन मूल मूल तत्वों की आवश्यकता पड़ती है वे सारे तत्व श्रृंगीरक कालीन सभ्यता में विद्यमान हैं कुछ तो इतनी विकसित अवस्था में हैं कि उनमें कोई भी विकास या परिवर्तन हम आज तक नहीं कर सके।

प्रश्न

1. Describe the social structure and political organisation of the Indo-Aryans as gathered from the Rig Veda (1958)

ऋग्वेद काव्य की भाषा वाचि के सामाजिक तथा राजनैतिक संरचना पर
वर्णन कीजिए ।

2. From Nature to Nature's God sum up the religious beliefs of the Rig Vedic Aryans. Examine this statement in the light of Vedic Literature (1963)

सिद्ध कीजिये की भावों के ऋग्वेद कालीन धर्म में प्रकृति से प्रकृति देवता
का प्रवर्णन हुआ ।

3. Give a brief account of the economic, religious and political life of the Rig Vedic Aryans (1932)

अध्याय ६

वाक् की वैदिक संस्कृति तथा सभ्यता

जिस 'ऋग्वैदिक काल' की सम्प्रदाय का वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है वह आर्यों के भारत प्रवेश से लेकर ऋग्वेद की रचना तथा उसके पश्चात् तक की सम्प्रदाय है। परन्तु कुछ काल और बाद कुछ अन्य ऐसे धार्मिक ग्रन्थों की रचना हो जाती है जिसके कारण हम इस गरीब काल को ऋग्वैदिक काल से पृथक् कर लेते हैं। यद्यपि सम्प्रदाय के भूतभूत तत्व मिश्र नहीं हैं परन्तु कुछ ऐसे परिवर्तन अवश्य हो जाते हैं जिनके कारण दोनों सम्प्रदायों का अध्ययन एक साथ सम्भव नहीं होता। इस काल बहुत से धार्मिक ग्रन्थ रहे यों और उन्हीं के आधार पर हम इस काल के सम्प्रदाय के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

(अ) वैदिक साहित्य

'वेद' शब्द संस्कृत के 'विद्' वातु से बना है। इसका अर्थ होता है ज्ञान इस शब्द का प्रयोग उस काल के ऐसे ग्रन्थों के लिये होता है जो परम्परा से बची आ रही थी और जिस पवित्र माना जाता था। ये शब्द 'वृत्ति' या ईश्वरीय देन माने जाते हैं।

वैदिक साहित्य का विभाजन चार प्रकारों में किया गया है। ये इस प्रकार हैं (१) मन्त्र या संहिता, (२) ब्राह्मण (३) आरण्यक तथा (४) उपनिषद्।

१ मन्त्र या संहिता—संहिता चार हैं। ऋग्वेद, साम, यजुस् तथा अथर्व। इनमें प्रथम तीन अविनाशमय माने जाते हैं।

ऋग्वेद संहिता (ऋग्वेद) सबसे प्राचीन तथा पवित्र माना जाता है। इनके मंत्र 'होत्री' द्वारा यज्ञ इत्यादि में पाठ किये जाते थे यद्यपि इसके मंत्रों का वर्णन आर्यों के आदि काल के बारे में काफी मात्रा में है तथापि हमें मानना पड़ेगा कि इसका सम्पूर्ण संकलन एक ही समय में नहीं हुआ।

सामवेद मंत्रों की पुस्तक है और ये मन्त्र सोम यज्ञ के समय पुरोहितों के एक निष्ठ धेमी जिन्हें 'उद्गात्री' कहते थे उच्चारित किये जाते थे। इसमें केवल ७५ मन्त्र मौखिक हैं और शेष ऋग्वेद से किये गये हैं।

यजुर्वेद में न केवल ऋग्वेद से ही मन्त्र किये गये हैं परन्तु ऐसे मन्त्र भी जोड़े गये हैं जिन्हें हम यज्ञ की प्रार्थना का मन्त्र भी कह सकते हैं। यज्ञ के ऐसे पुरोहित जो यज्ञ के परिचर्यी कार्य करते थे इन्हें पाठ करते थे। इन पाठकों को 'अध्वर्यू' कहते थे। यजुर्वेद के दो भाग हैं। कृष्ण यजुर्वेद तथा श्वेत यजुर्वेद।

अथर्ववेद—उपरोक्त तीन वेदों के कुछ समय पश्चात् अथर्ववेद को भी संहिता शब्द का स्थान प्राप्त हुआ। इसके अधिकतर मन्त्र राजसूय यज्ञ ध्याति को यज्ञ में रखने के लिये रचे गये। इसके ऐसे मन्त्र जो वैद्यताओं की स्तुति में किये गये हैं आर्यगण सुन्दर हैं।

(२) ब्राह्मण—आर्यों के भारत में विस्तार के पश्चात् वेदों की व्याख्या की आवश्यकता का अनुमान करके ये ग्रन्थ रचे गये। इन मंत्रों का अर्थ समझने तथा मनन

करने में मैं अत्यन्त सहायक हूँ। आर्यों के कर्मकाण्ड तथा यज्ञ विधि का उन्मूलन इसी से प्राप्त होता है। कुछ मुख्य 'ब्राह्मण' निम्नलिखित हैं—

ऐतरेय ब्रीह्यसूक्त की टीका ब्रीह्यनी सतपथ तथा शौनवी।

(३) आरण्यक—ये ब्राह्मण जन्म के ही नाम हैं। परन्तु इनमें बैठठाने आध्यात्मिक विषयों का मनन और यज्ञ में सामाजिक बहुत पक्षों से दृष्ट, छांटिपण आकाशरत्न में करते हैं। भाषा तथा शैली में इनका ब्राह्मण ग्रन्थों से सामंजस्य है। आध्यात्मिक विषयों पर विवेचन होने के कारण इन ग्रन्थों से हमें आर्यों के आध्यात्मिक विकास का पता चलता है।

(४) उपनिषद्—उपनिषद् आरण्यक का ही एक अंग है। परन्तु इनमें जीव, सृष्टि और ईश्वर के विषय में चिन्तन तथा विचार प्रस्तुत किये गये हैं। उपनिषद् हमें बतलाते हैं कि ब्रह्म एक है तथा सर्वव्यापी और सर्व अन्तर्हामी है। विश्व की उत्पत्ति स्थिति तथा नाश ब्रह्म के इच्छानुसार ही होता है। कर्म माया मुक्ति आदि पर इन ग्रन्थों में जो प्रकाश डाला है वह आज भी अध्ययन तथा विचार करने योग्य है। आज विश्व हिन्दू विचारों की महत्ता उपनिषद् के वास्तविकता के दृष्ट पर ही मानता है। उपनिषदों में ईश केन कठ, मातृवत्पुत्र वैशिष्ट्य ऐतरेय आदौष्य बहुवारण्यक मुख्य माने जाते हैं। 'सृष्टि' ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे ग्रन्थ भी हैं जिन्हें हम प्राचीन तथा आदरणीय मानते हैं। इन्हें 'स्मृति' कहते हैं। स्मृति साहित्य में वेदांग, उपवेद तथा दर्शन माने जाते हैं।

वेदांग छ. हैं—(१) शिक्षा (२) कर्म (३) व्याकरण (४) निष्कृत (५) छन्द तथा (६) ज्योतिष वेदांग हैं। इनमें कर्म अधिक महत्वपूर्ण है। इसी कर्म का बृहस्पति नाम आर्यों का बरेलू जीवन का वर्णन करता है।

अथर्व—छोटे वेद हैं। आधुनिक औपनिषद् विज्ञान है। अथर्व में यज्ञकला अथर्व वेद में समीप कहा तथा सिम्पलेक्स में सिम्पलता का वर्णन किया गया है।

दर्शन में आध्यात्मिक विषयों की विचारवादा प्रकट की गई है। छ. दर्शन इस प्रकार हैं—(१) कठिक का छान्दस दर्शन (२) पार्श्वकिक का यौग दर्शन (३) यौतम का स्याव दर्शन (४) कलाव का वैज्ञानिक दर्शन (५) वैमिनी का पूर्व-मीमांसा दर्शन तथा (६) व्यास का उत्तर मीमांसा दर्शन।

(ब) साम्यता

राजनीतिक अवस्था

आर्यों के विभिन्न वर्गों का उन्मूलन करते हुए भारत में उनके द्वारा विभिन्न अ-आर्यों पर राजनीतिक तथा स्थापित करने का विवरण आरम्भ में ही दिया जा चुका है। इस विवरण से हमें आज ही पता है कि अब उनका राजनीतिक विकास समय पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था और इनमें आवश्यकतानुसार प्रगति हो चुकी थी। यहाँ उनके राजनीतिक संरचना पर विस्तारपूर्ण प्रकाश डाला जायगा और उत्कृष्ट विभिन्न राज नीतिक संस्थाओं के विषयों का उन्मूलन किया जायगा। सर्वप्रथम हम संस्कारों पर प्रकाश डालेंगे।

संय-सहित—आर्यों ने जब पूर्व तथा दक्षिण की ओर प्रसार किया तो उन्हें काफी विस्तृत साम्राज्य स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ। पर यातायात की अनुविधा तथा प्राकृतिक बाधाओं के कारण उन्हें इसमें कठिनाई पड़ी। अतः उन्हें विचार

साम्राज्य के अमीन छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना करनी पड़ी। कुछ राज्यों में 'अधिराज' अथवा प्रभु का प्रयोग किया गया है जिससे यह परिलक्षित होता है कि एक बड़े राजा के अधीन कुछ अन्य राजा भी राज्य करते थे। 'राजाधिराज' 'एकराट' आदि शब्दों से पट्टपत्ता प्राप्त होता है कि कुछ बहुत बड़े-बड़े राजा थे जिनके अधीन अनेक छोटे-छोटे राजा भी थे। उत्तरी भारत में अत्यन्त छोटे-छोटे राजाओं के होने का प्रमाण मिला है।

राजा—राजा या सम्राट का पद बहुधा वंशगत होता था पर इसके लिए प्रजा की अनुमति आवश्यक थी। अथर्ववेद में प्रजा के नियमन का उल्लेख विस्तृत रूप से मिलता है।

राज्याभिषेक—राजा की महत्ता का उचित प्रमाण हमें उसके अभिषेक संबंधी उत्सव से प्राप्त हो जाता है। राज्याभिषेक के अवसर पर राजपुत्र वज्र का उपयोग किया जाता था। अभिषेक के समय राजा अपने वस्त्र धूम करता था कि यदि वह किसी प्रकार का अत्याचार प्रजा पर करे तो उसका सारा पुण्य उसका लोक और परलोक तथा उसकी सत्ता ही नष्ट हो जायें।

इस युग में राजा का निर्वाचन अधिकारित प्रजा पर आधारित था उसके ऊपर अर्पित उत्तरदायित्व भी तब विद्यमान था जबसे जाते थे अपने मंत्रियों पर बहुपुत्र उत्सव से प्राप्त हो जाता था। राज्याभिषेक के अवसर पर राजपुत्र वज्र का उपयोग किया जाता था। अभिषेक के समय राजा अपने वस्त्र धूम करता था कि यदि वह किसी प्रकार का अत्याचार प्रजा पर करे तो उसका सारा पुण्य उसका लोक और परलोक तथा उसकी सत्ता ही नष्ट हो जायें।

राज्याधिकारी—राज-कार्य में राजा के अतिरिक्त अन्य लोगों की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः अनेक राज्याधिकारी राजा के चारों ओर घिरे रहते थे। इन राज्याधिकारियों को 'रत्नि' कहते थे। ध्यान रहे कि 'रत्नि' सम्भवतः उष्णकोटि के ही अधिकारी थे। इनके अतिरिक्त अन्य साधारण अधिकारी भी रहे होंगे। 'रत्नि' के अतिरिक्त और भी राज्य के अधिकारी थे। और या रत्नि का उल्लेख अथर्ववेद में किया गया है। पंचविध शासन में आठ औरों का उल्लेख किया गया है—

- (१) राजा का भ्राता (२) राज-पुत्र (३) राज-पुरोहित (४) राजमहिषी (५) सूत्र (६) धामधी (७) सत्र (रत्नक) (८) संघीय (कोषाध्यक्ष)। तैत्तिरीय ब्रह्मण्ड तथा तैत्तिरीय शास्त्र में कुछ अन्य और भी विधान मिलते हैं—

- (१) राजपुत्र (२) सेनापति (३) मातृवृक्ष (४) अन्तर्धान आदि। मातृवृक्ष राज्याधिकारियों का भी उल्लेख किया गया है—(१) राजा (बड़ई) (२) स्वकार तथा सभा-समिति—राजा की निर्दोषता पर रोक लगाने के लिए सभा और समिति थी। सभा सम्भवतः कुछ पुरे हुए मन्त्रियों की एक छोटी-सी संस्था थी और सभा-सम्बन्धी कार्यों की देख-रेख करती थी पर समिति एक बड़ी और जनसाधारण की संस्था थी।

समिति का महत्त्व हमें इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि राजा एक स्थान पर नहीं रहता है कि प्रजापति की पुनियाँ सभा और समिति मुझ पर कृपा करें। इसी प्रकार सभा भी इसी अधिक महत्त्वपूर्ण थी कि प्रजापति (ईश्वर) स्वयं

इसके बिना काम नहीं कर सकता था। सभा में बाब-विवाद के पश्चात् राज्य की समस्याओं को सुझाया जाता था।

समिति की महत्ता पर ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है। इसके अधिकारी भी काफी थे। यह सम्भवतः मूढ-धर्मि, धार्मिक-धर्मि आदि विषयक मामलों को देखती थी। बहुमत द्वारा ही सभा और समितियों का काम होता था।

शासन-प्रबन्ध—राज्याधिकारियों का उत्प्रेषण करते समय हमने बताया था कि शासन-प्रबन्ध को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अधिकारी थे। उनका एक-एक विभाग भी रहा होगा। सेनागी सेना का प्रबन्ध करता था। अथर्व वेद से यह ज्ञात होता है कि दूत या ग्रहित जासूसी करते थे। इसी प्रकार ग्रामपति भी दैनिक अधिकारी था।

न्याय को देख-रेख सभा के अतिरिक्त राजा स्वयं करता था। सैनिकीय संहिता से ग्रामपतिन ग्रीक का न्यायाधीश ज्ञात पड़ता है।

पंचायत द्वारा भी घटकों का बन्ध किया जाता था। अपराधों के विषय में हमें अधिक कुछ ज्ञान नहीं पर राजद्वीप मिश्रण ही जारी अपराध माना जाता था जिसके लिए बाध्य एक को प्राय-दण्ड दिया जा सकता था।

ब्राह्म के साधनों में मुक्ति तथा व्यापार कर प्रमुख थे। जमीनों से कर लेने का उत्प्रेषण कुछ स्वामी पर किया गया है।

आर्थिक व्यवस्था

कृषि—आर्थिक क्षेत्र में आसानीत उन्नति होना स्वाभाविक था क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए कृषि एवं व्यवसाय में प्रवृत्ति जाना अनिवार्य था। अब भी कृषि ही आर्थिक व्यवस्था का मूलधार थी। कृषि में अब काफी संप्रति ही पई थी। काठक संहिता में २४ बीघों वाले एक एक उत्प्रेषण किया गया है। उत्प्रेषण बाध्य में कृषि कापी कृताई, बुवाई, फटाई-बीवाई आदि का उत्प्रेषण आया है—बी (घन) जल (वीह), मेह (वोडन) ठिक आदि की खेती की जाती थी।

अन्य-व्यवसाय—कृषि के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यवसायों द्वारा भी लोग अपनी जीविका का उपार्जन करते थे। इनमें से कुछ का उत्प्रेषण राजसूने की संहिता में किया गया है। जैसे मछुआ धारणी व्यापार, बीवर-स्वर्णकार, मणिकार, रस्सी बँटने वाला, टोकरा बनने वाला, मोपी, मुहार, कुम्भकार, गार्ह, रंगरान, बुकाहे, कटिक आदि। ये सब कर (व्यवसाय) तथा मोपुरी आदि बनाने वालों का उत्प्रेषण भी उत्प्रेषण बाध्य में किया गया है। नाव बनाने वालों की कृशकता का बोध होने राजसूने की संहिता में मिलता है। पतवारों की बाध से होता है। यह नाव समुद्र में पछाई जाती थी। जलों की समुद्र-बाधा का उत्प्रेषण भी हमें इस युग के साहित्य में मिलता है।

बनिकी एवं व्यापारियों का कोई संगठन रहा होगा जो सम्भवतः 'सेठि' की अभीमता में था। 'सेठि' शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थानों में किया गया है।

उपहार दिया भी किया जाता था जिसे बड़ा करने में लोग प्रवृत्त थे। अथर्व वेद में कहा गया है कि अन्न न चुकाना एक पाप है जिसके लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

बाणों का प्रयोग अब काफी बढ़ता जा रहा था। राजसूने की संहिता में सेना (हिरण्य), गौतम (अथर्व) सोहा (स्याम) तथा (लोह) सीता आदि का उत्प्रेषण किया

क्या है। सोने का आभूषण आदि में काष्ठी प्रयोग होता था और इससे 'कर्मयोग' तथा व्यासके श्रमायें आते थे। अष्टम्य शतमान कृपास आदि निर्धारित भार के स्वर्ग-कर्मों से मुक्तियों का ही बोध हो सकता है।

पशु-युग में भी बलिबुद्धि होती थी रही थी और अब लोग हाथी भी पालन रखते थे। उपरोक्त विवरण से यह सात होता है कि उत्तर वैदिक काल में लोगों ने विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में काष्ठी उपयुक्त कर ली थी।

बौद्धिक तथा धार्मिक अवस्था

उत्तर वैदिक काल की बौद्धिक उपलब्धि के परिचायक न केवल वे महान् ग्रन्थ हैं जिनका उत्कृष्ट परिष्कार के बिलकुल प्रारम्भ में किया गया है वरन् इनके अतिरिक्त भी बहुत से महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई जिन्हें केवल बौद्धिक विकास के आधार पर ही सूचित किया जा सकता था। नीचे तत्कालीन विज्ञान-पद्धति तथा साहित्यिक प्रगति पर सूक्ष्म-सूक्ष्म प्रकाश डाला जायगा।

विज्ञान—आवैदिक काल में बाहुरों से वास्तवों की उपमा लेकर हमने पाठशाळाओं की कल्पना की थी किन्तु उत्तर वैदिक काल में कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं पाठशाळाओं के प्रमाण ही हमें प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम 'उपनिषद्' संस्कार होता है और तभी 'आचार्य विद्यापीठ'—'ब्रह्मचारी' का एक दूसरे जीवन में प्रवेश कराया है ('द्विज' बनाया है जिसका अर्थ दूसरा जन्म होता है)। 'धर्म' और 'तप' करना उसके लिए आवश्यक था। गुरु अपने शिष्य की हर प्रकार से सत्य-यथ पर जाने का प्रयास करिता था क्योंकि वह उसके पापों का उत्तरदायी था (शिष्यापापम् पुरोसि)। शिष्य भी अपने गुरु को दूसरा मन्वान् मानता था और वह उसके श्रेष्ठों पर ही चलता था।

विज्ञान के विषयों पर प्रकाश डाल देना भी आवश्यक है। छान्दोग्य उपनिषद् में नारद तथा सतगुमार का जो वार्तालाप दिया गया है उससे सात होता है कि उन दिनों विभिन्न प्रकार के विषय पढ़ाये जाते थे जिनमें देव-विद्या ब्रह्म विद्या मृत-विद्या साध विद्या मसन-विद्या वैद्यजन-विद्या कर्म धात्र राक्षी तर्कशास्त्र आदि प्रमुख थे। इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् से भी इतिहास उपनिषद्, अनुश्रव्याख्यान् व्याख्यान् आदि की शिक्षा का बोध होता है।

धर्म—विज्ञान की प्रगति का अध्ययन कर लेने के बाद हमें विद्यारपीन काल की धार्मिक स्थिति पर विचार करना चाहिये क्योंकि इस युग की धार्मिक स्थिति के मूल में विज्ञान का भी बहुत बड़ा हाथ रहा और उसके ज्ञान के परभाव ही हम उक्त काल की धार्मिकता को मसी-मति समझ सकते हैं।

धर्म—प्रारम्भिक उत्तर वैदिक काल में धार्मिक क्षेत्र में महान् परिवर्तन हुआ। यह ब्राह्मणों तथा मत्तों के महत्त्व की वृद्धि है। अब तक केवल सात पुरोहित धर्म में भाग लेते थे किन्तु उत्तर वैदिक काल में इनकी संख्या १० हो गई—होतृ तथा उसके तीन सहायक उरगातृ तथा उसके तीन सहायक अध्वर्यु तथा उसके तीन सहायक ब्राह्मण तथा उसके तीन सहकारी। इन १६ पुरोहितों का प्रमाण तबहरी अतिवृत्त उपस्थित था। यत्नों की संख्याओं में भी वृद्धि हो गई थी। अब बहुत से ऐसे भी यज्ञ थे जो यत्नों चले रहते थे। यत्नों की प्रमाणता ने जीवन के घटिकीन को अब पूर्वतरा परिवर्तित कर दिया था। अब ब्राह्मणों का अध्यापन करण करना आवश्यक हो गया था।

तप—तप की महिमा का गुणगान ऋग्वेद के सबसे मंडल व ही प्रारम्भ हो जाता है। इसके पूर्व भी मन्त्रों में तप का माहात्म्य नहीं बताया गया है। अतः और

सत्य की उत्पत्ति तब से हुई है, तब ही भावी जीवन का झूठा है, तब से अमीरिका धर्मियों प्राप्त होती है। वेबसा तब करते हैं और तब-अन से देवताओं ने स्वर्ग जीवा है। प्रजापति ने सृष्टि रचना के लिए तब किया था। तब ब्रह्म तब तथा ब्रह्म आदि आचार पर ही बिम्ब स्थिर है आदि का उत्पन्न होने वैदिक साहित्य में बिलम्ब-मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया कि देवताओं ने तब के द्वारा देवता प्राप्त किया था। इसी प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म ने अपने पुत्र से कहा है "तब से ब्रह्मा को बागों क्योंकि तब ही ब्रह्मा है। मैत्रायणी उपनिषद् में तो यहाँ तक कहा है कि तब के बिना तो ज्ञान प्राप्त ही नहीं हो सकता है। पर इसी काल में कुछ ऐसे भी विद्वान् थे जिन्होंने तब के महत्त्व को नहीं स्वीकार किया है।

वार्धनिकता—इस मन्त्र तथा तब के काल में ही ब्रह्म ही वार्धनिकता का जो बोधवाचा आरम्भ हुआ वह सम्पूर्ण कार्य जगत को अपने में समाविष्ट कर लेने की प्रवृत्ति था। इस वार्धनिकता के मूल में तत्त्व-ज्ञान की नींव थी जिसमें ज्ञान-विषया की शक्ति लोक-परलोक के वास्तविक मार्ग की प्राप्ति थी। यद्यपि मन्त्र तथा तब के समर्थकों ने इन प्रश्नों का केवल एक उत्तर बहुत प्रबलपूर्वक यह है दिया कि तब ही वह तब दिनों तब को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इसी स्वतन्त्रता ने वार्धनिकता को अपने मन्त्रों के प्रतिपादन में सक्षमता प्रदान की। आर्या परमारमा इत्येक वरलोक स्वर्ग-नरक मोक्ष मार्ग की जो स्पष्ट एवं उचित व्याख्या तत्कालीन वार्धनिकों ने की उसके आधा तो यह भी कि तत्कालीन समाज पूर्वतया परिवर्तित हो जाता वार्धनिकता (तब) विस्मयों को दृष्टि कर देती पर पुनर्मिलन इन वार्धनिकों में सर्वथा न था अमी-अमी तो ने एक दूसरे का और-दर-अन कर देते थे और तब क्या छाया है क्या नहीं क्या उचित है क्या अनुचित यह समस्या लोगों के सम्मुख उपस्थित हो जाती थी जिसका समाधान उनकी बुभानुसार या आत्मस्वकृतानुसार न होने पर उन्हें पुन बुभानुकरण ही करना पड़ता था जिसका प्रतिफल था यमों और तर्कों में जीवन क्या होता।

व्यक्तज्ञान की प्राप्ति—वार्धनिकता की उत्पत्ति का अर्थ उपनिषदों को दिया जाता है किन्तु उपनिषदों में भी किसी एक मन्त्र का प्रतिपादन नहीं किया गया है।

अस्मा-ब्रह्म—उपनिषदों ने आत्मा को ही जीवन का मुक्तत्व माना है। अन्तर और अन्तर है। जगत् में जिसकी आत्माएँ हैं वे सब एक ही ब्रह्म की कपाकर हैं। ब्रह्म अतारि अन्तर और अकारण है। ब्रह्म अनुचित है। इसे किसी ने निर्मित नहीं किया है। सृष्टि की उत्पत्ति के मन्त्र से ब्रह्म है। ब्रह्म ही मूल्य और सब अस्तित्व है। ब्रह्म की वागना जीवन का अर्थ है। ब्रह्म का वागने वाला सत्ता को कुछ समझना नहीं कि यह है भी। किन्तु ब्रह्म को वागने का मार्ग भी सरल नहीं है। इसके लिए वेद का पठन-पाठन, विद्या या ज्ञान-प्राप्ति ही आवश्यक नहीं है। अतः सदाचार, धर्म की पाछन आदि भी अनिवार्य हैं। आचार की शुद्धता से ही ब्रह्म में प्राप्ति या लक्ष्य है और सभी आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। किन्तु उपनिषदों में ही अस्पष्ट उपरोक्त मन्त्र का प्रतिपादन इस प्रकार उपस्थित किया गया है कि केवल सदाचार से ही ब्रह्म या आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। मन्त्र वाग आदि की आलोचना करते हुए हममें बताया गया है कि परमेस्वर की भक्ति परमेस्वर को आत्मसमर्पण आदि से ही ब्रह्म की समझा जा सकता है। अहंकार और मन्त्र के रहने हुए यह सब असम्भव है। ब्रह्म की उपनिषदों में यह भी कहा गया है कि जीव ब्रह्म और आत्मा एक ही है। मन्त्र द्वारा ब्रह्म को जाना जा सकता है।

मोक्ष और पुनर्जन्म—ये दोनों विपरीत स्थितियाँ हैं। उपनिषदों के अनुसार मोक्ष पाने के पश्चात् आत्मा का अन्त नहीं होता। वह उस महान् सागर (परमात्मा) में विलीन हो जाती है। उसका अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। इसके विपरीत यदि मनुष्यों का कर्म (इस जन्म का कर्म) पवित्र नहीं है तो उन्हें पुनः अपने कर्मानुसार जन्म लेना पड़ेगा। देवता मनुष्य जन्तु वनस्पति सबकी आत्मा कर्म के कठोर नियम के अधीन है। प्रत्येक अधिकाया आकाशा या किया का प्रभाव—जन्मा या ब्रह्मा आत्मा पर पड़ता है वह प्रभाव एक जीवन तक परिमित नहीं है। मरने के बाद फिर कर्मानुसार जन्म होता है और कर्म का फल भोगना पड़ता है। इस दूसरे जीवन के कर्मों का फल तीसरे जीवन में होता है और इस प्रकार चक्र चलाता रहता है।

देवता—ऋग्वैदिक कालीन देवता—अब भी मुख्य वे यद्यपि इनमें कुछ का महत्त्व बढ़ा था—छा या और कुछ का बढ़ता था रहा था। प्रजापति जो प्रारम्भ में वैश्वदेव में विविष्ट स्थान रखता था अब उसकी महत्ता घट गई और अब वह तथा विष्णु को प्रभावता दी जाती थी। ऋग्वेद में वह कोई विशेष स्थान नहीं प्राप्त था किन्तु उत्तर वैदिक काल में इसकी महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई। इसी प्रकार विष्णु जो सूर्यदेव के पाँच स्वरों में से एक रूप माना जाता था अब स्वतन्त्र महत्त्वपूर्ण देवता हो गया। वह का विष्णु अब विश्व हो गया और वह सर्वव्यापी देवता माना जाने लगा।

सामाजिक-संरचना

समाज और पारि—ऋग्वैदिक काल के आर्यों ने अपने समाज में पारियों को भी महत्त्व दिया था उससे हम मनी भाँति परिचित हैं किन्तु उत्तर वैदिक काल में उनकी दशा धीरे-धीरे निम्नी हो रही थी। भार्ये-भार्य-सम्मिश्रण का अब समाज के नेताओं को बहुत बुरा लगा। अब उन्होंने वैवाहिक नियमों को कठोर बनाने का प्रयास किया था। यद्यपि वे इसमें पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाये वे क्योंकि उत्तर वैदिक काल में ऐसे व्याहृति के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं किन्तु उनके प्रयासों का तो प्रभाव समाज पर पड़ा ही हुआ। नियमों में यहाँ प्रथा न थी पर अब वे पुण्य-वर्ष से धीरे-धीरे दूर रहने लगी थी जिसका उत्काशीन अनुभाव तो यह पड़ा कि उन्हें पुण्यों के सम्पर्क से प्राप्त होने वाले लाभ से वंचित रहना पड़ा और समाज के भाग का भी जोर हो गया। अज्ञानता एवं अविद्या ने इनकी स्थिति को और भी दुर्बल बना दिया।

उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में जहाँ हमें नियमों की हीनता के उदाहरण अथि काविक प्राप्त होते हैं वहीं उनकी महानता के भी झुटकर उल्लेख मिलते हैं। नियमों के विपुली होने के प्रभाव हमें ऐतरेय ब्राह्मण तथा कौटिलीय ब्राह्मण से प्राप्त होते हैं। नियमों की शिक्षा का प्रभाव चाहे छोटे पैमाने पर ही क्यों न रहा हो पर था अवरण क्योंकि उपनिषदों में विविध पारियों के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। कुछ स्वर्ण पर तो स्त्री-सिक्तों का भी उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार कुछ वीर्यपानाओं के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जो अपने पतियों के साथ सामरिक कार्यों में हाथ बटाती थीं।

विवाह-प्रथा—विवाह-प्रथा में अब तक विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया था और बहू-देव की भी प्रथा थी पर कभी-कभी राजा-रक्षसुर को द्रव्य देता था। संनोत विवाह की मनाही अभी सम्पूर्ण रूपों में नहीं हुई थी।

बहु विवाह की भी प्रथा अब दिनों काशी प्रचलित थी। वैवाहिकी संहिता में मनु की दस पतियों का उल्लेख है।

विवाह-विवाह तो ऋग्वैदिक काल में प्रचलित था ही उत्तर वैदिक काल में भी इसका प्रभाव मिलता है।

कौटुम्बिक जीवन—कौटुम्बिक जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आ पाया था। जब भी प्रमाण का बही आबर था। माता के आबर का भी प्रमाण होने पर प्रसूत में प्राप्त होता है। कौटुम्बिक जीवन में यथा-कथा कटुता आ जाने का उल्लेख भी किया गया है। इसलिए अर्धवेद में कौटुम्बिक धार्मिक के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं। बहुधा बहुबो संघर्ष हो जाया करते थे सम्भवतः इसीलिए कुछ स्त्रियाँ समुदाय से मायके माय जाती थी। इस प्रकार सम्मिश्रित कुटुम्ब अब भी बच रहा था और इनमें स्वामाधिक प्रेम व होय विद्यमान थे।

गृहस्थ जीवन तथा उसके भूलाचार—गृहस्थ जीवन का पूर्ण विवरण गृहस्थ से प्राप्त होता है। जन्म काल में जन्म से मृत्यु तक के सारे नियमों तथा सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्यों का उल्लेख है। प्रसंगत व्यक्ति तथा राज्य के सम्बन्ध में भी उल्लेख कर दिया गया है पर वह सूक्ष्म रूप में ही क्योंकि यह धर्मसूत्र का विषय है। गृहस्थ में धर्म-संस्कारों का उल्लेख किया गया है जिनमें कुछ प्रमुख संस्कार निम्नलिखित हैं—

- (१) गर्भावस्था संस्कार, (२) पतन संस्कार, (३) जन्म संस्कार (४) नाम करण संस्कार, (५) निष्क्रमण संस्कार (छीर गृह से विष्णु की बाहर जाने का संस्कार) (६) अन्नप्राशन संस्कार, (जन्म की अन्न शिलागा) (७) ब्रह्मकर्म संस्कार (बाठ काटना) (८) उपनयन संस्कार (बहुपारी की सीधा) (९) समावर्तन संस्कार (मुक्त-मुक्त से छोटना) (१०) विवाह संस्कार (११) पञ्च यज्ञ-यज्ञ संस्कार (१२) अन्वेषण संस्कार (अन्तिम किया)।

इन संस्कारों में ही भार्य का सम्पूर्ण जीवन बीता हुआ था। प्रत्येक भार्य को इनसे होकर ही अपनी जीवन-सीला समाप्त करनी होती थी। ऊपर विवाह संस्कार का उल्लेख किया गया है। विवाह की अब तक विभिन्न प्रकारों प्रचलित हो गई थी। उत्तर वैदिक काल में प्रेयी-प्रमिकाओं के प्रेयासाय का विवरण हमें प्राप्त हो चुका है। सूत्रकाल तक भात-भाते हममें आरक्ष्यजनक अनिष्ट परिणामित होती है। पञ्च महायज्ञ में से—

- (१) ब्रह्म यज्ञ (२) देव यज्ञ (३) पितृ यज्ञ (४) मनुष्य यज्ञ और (५) पृथु यज्ञ।

उपरोक्त यज्ञों के अतिरिक्त सात पाक यज्ञों का भी उल्लेख किया गया है। इन यज्ञों के अन्त्योक्त का एकमात्र उद्देश्य था मनुष्य की शक्तियों में लपाना अपने देवों, पूर्वजों तथा स्वर्ग परितोक्त अतिथियों आदि के प्रति कर्तव्य-पावन निवेदन जीवन सुलभ हो सके।

सम्पूर्ण गृहस्थ जीवन का भूलाचार यही कर्तव्य-पालन ही था। इनसे ध्युत होने वाला व्यक्ति भार्य-य में हीन समझा जाता रहा होगा।

आश्रम—गृह सूत्र के विषय में लिखते हुए बताया गया था कि यह ग्रन्थ आश्रम धर्म पर पूर्ण प्रकाश डालता है। आश्रम का महत्त्व किताब अधिक बड़ गया था इसका प्रमाण हमें गृह सूत्र से प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य मार्गस्थ बालप्रस्थ तथा संन्यास आदि आश्रमों का विवरण किया गया था। ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्रह्म के पाठ रहकर विद्या-ध्यान करना पड़ता था। तत्पश्चात् कर छीटकर गृहस्थ जीवन नियमानुसार व्यतीत करना पड़ता था। अग्नि यज्ञ देव यज्ञ तथा पितृ यज्ञ से अतिरिक्त होने के लिए सप्त प्रयास करना पड़ता था। अग्नि यज्ञ से मुख होने के लिए स्वाध्याय देव यज्ञ के लिए ब्रह्म

बाद की वैदिक संस्कृति तथा सम्प्रदाय

तथा पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए सन्तानोत्पत्ति करने का विधान था। अति उत्तरावस्था जीवन का प्रमुख अंग था। पंच महामयों का उत्प्रेक्ष्य किया जा चुका है।

गृहस्थ जीवन समाप्त कर लेने के पश्चात् तृतीय आयम का आरम्भ होता था। प्रथम दो से बहुत कठिन है। सम्भवतः प्रतीय उत्पन्न हो जाने के पश्चात् वानप्रस्थ ग्रहण किया जाता था। वानप्रस्थ आयम के अन्तर्गत (१) वस्तु-स्नान (२) स्वाध्याय (३) वर्षा-काल में एक स्थान पर निवास (४) मिलाटन (केवल स्नेहपूर्वक ही हुई मित्रा का ग्रहण) (५) कीर्ति-वारण (६) पुण्य-यज्ञ न तोड़ना (७) एक ग्राम में एक रात से अधिक निवास न करना (वर्षा ऋतु का छोड़कर) (८) स्वजीवन के लिए बीज न मल्ट करना अपितु पका हुआ अन्न बाँटने का विधान था।

संन्यास आयम इससे भी कठिन है। अब वन में केवल वन की सामग्रियों को कम से कम खाकर जीवन बिताना पड़ता था। मित्रा मीन के लिए गाँवों में भी जान की अनुमति नहीं दी गई थी। चमड़ा या छाल आदि से तन डिकना पड़ता था। पटाव बढ़ा लेनी पड़ती थी। आपत्तिकाओं से मोच-भक्षण तक की अनुमति दी गई है पर बहु स्वयं आनन्द नहीं कर सकता था। माया-मोह के बन्धन यहाँ समाप्त हो जाते हैं।

वर्षाकरण या वर्ष-व्यवस्था—ब्राह्मण सभिय तथा वैश्य में तीनों वर्ग अब पूर्ववत् वर्ग बन चुके थे। वर्षा अब इनमें परम्परा का पुट आता था। पुरोहित (सभियों) का पुत्र भी पुरोहित (ब्राह्मण) होता था। इनो प्रकार वासकों एवं मोक्षार्थी वैश्य पितृ के कवि पुत्र तथा पित्र-हारिण माता का उत्प्रेक्ष्य इस सम्प्रदाय में किया जा चुका है। दूधों का भी उत्प्रेक्ष्य उस काल में किया गया था। पर इनमें भी अब महान् परिवर्तन आ गया था।

जित प्रकार ऋग्वैदिक काल में अनाथों (जिन्हें अब छूह कहा जाने लगा था) या वस्तुओं के वर्ण होना का प्रमाण मिलता है। उसी प्रकार उत्तर वैदिक काल के साहित्य से भी यह बात होती है कि कुछ छूह कार्य बनाइय थे। अब हम ऋग्वैदिक काल के ब्राह्मण सभियों तथा उत्तर वैदिक काल के ब्राह्मण सभियों के अन्तर्गत को स्पष्ट करने के लिए उन पर पुनः-पुनः प्रकाश डालेंगे।

ब्राह्मण—ऋग्वैदिक काल से ही ब्राह्मणों ने पठन-पाठन का कार्य अपनाया था। पठन-पाठन का एक मात्र उद्देश्य वा वर्म में पारंगत होना। वर्म की प्रशानता उत्तर वैदिक काल में उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। अतः वर्म के एक मात्र अभिप्राय ब्राह्मणों की प्रशानता में भी वृद्धि होना स्वाभाविक था। ब्राह्मण अपने से नीचे किना भी वर्म की कृपा से सम्मान स्थापित कर सकते थे किन्तु व्यवहार में ऐसा बहुत कम होता था।

सभिय—सभियों की महानता में भी अब उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी। यदि ब्राह्मणों के महान् प्रमुख कारण वर्म का ही सभियों का राजनीतिक। अपने राज नीतिक महान् के कारण ही उनकी पर-वृद्धि होती गई। ब्राह्मणों की शक्ति कालान्तर में इनमें भी अनेक शाखाओं का जन्म हो गया।

वैश्य—वैश्य वर्ण का प्रयोग सबसे पहले पुष्यतृक में किया गया है। वैश्यों में अनेक उप-जातियाँ प्रीमातिधीन बन गई क्योंकि इन्होंने अनेक प्रकार के व्यवसायों को अपना लिया था।

पूछ—पुछों के विषय में प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है। पर इन बातों वषों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी लोग थे जो इस वर्ष-स्मरणा के बाहर थे। चाण्डाल पीसक व इस वर्ष-स्मरणा के बाहर व या इसके अन्तर्गत हैं व पर इनको किसी प्रकार का सामाजिक या राजनीतिक अधिकार नहीं प्राप्त था। वे अपन मासिक की सम्पत्ति में और शान्ति में या अन्य किसी रूप में भी बिधे जा सकते थे।

(स) वर्ष भेष मा जात-पाँठ

आधुनिक काल के वर्ष ने उत्तरार्धिक काल में वर्ष का रूप धारण कर लिया था यह तो हम सभी जान कर आते हैं। इस वर्ष का अंतिम जात-पाठ के रूप में परिवर्तन होने के पश्चात् प्रत्यक्ष यह उठता है कि इस वर्ष की उत्पत्ति कैसे हुई। इस वर्षीकरण का अन्त भारतवर्ष में इस प्रकार चला रहा है कि प्रारम्भ के बार वर्ष आनेकाल के लगभग १०० आधियों में बँट गया है। इस जाति के अन्तर्गत दो जातियाँ हैं।

इस भावि के उत्पत्ति के बारे में अतीव्य न होने के कारण निम्न-निम्न विचारों का विवेचन कर लेना ही समुचित होगा।

(१) बर्न या रंग—बर्न ध्वज का बर्न रंग है और इसी के आधार पर साम्य पार्टी ने अपने विचार प्रकट किये हैं कि जायों के सामाजिक जीवन में मिश्र-मिश्र वर्ग बनने वाले का एक-एक अपना बर्न बन गया। उनका मत है कि सबसे कम श्रेणी वर्ग से हम देखते हैं कि उन्होंने उत्पत्ति के विषय में न बताकर बर्न बन जाने के उपरान्त उनकी व्यवस्था पर विवेचन किया है। यह वह रंग का ठीक बर्न व्यवस्था का मूल नहीं हो सकता है।

(२) नीला—

(२) ईश्वरीय विवाह—जन्मेद के पुत्र्य सुकृत मन्त्र से कुछ जाति के उत्पत्ति का संकेत है और उसी के आधार पर कुछ लोगों ने वर्ण व्यवस्था को ईश्वरीय माना है। मन्त्र इस प्रकार है— "आद्यशोम्य मुखासीव बाहु राजस्य कृत् ऊरु तदस्य वक्ष ईशस्य पश्चात् बाहू अजामयत् ।" इस श्लोक का अर्थ निकलता कि आद्यशुक्ल ब्राह्म मुखा से उत्पन्न बाहु के वक्ष जंबा से तथा ऊरु वरु से पैदा हुए परन्तु वह श्लोक अमार्थक है। इसमें यदि हम व्यामूर्ख विचार करें तो सादा शिक शरीर का विवरण है। मुखा बाही होता है। बाहु के रूप अपनी रक्षा करते हैं। वक्ष उस तथा छवि होता है। पैरों पर ही हम चले रहते हैं। इस प्रकार सामाजिक संमेलन में चारों वर्गों की महत्ता तथा कर्तव्य को बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त यह मन्त्र जन्मेद के १ में जन्म में ही जो माया के आधार पर बाह में जोड़ा गया प्रमाणित हो चुका है।

नौकरी छोड़ें या बड़े का प्रसन्न होना एक बड़ी मुश्किल है।

अन सिद्धान्त—इन प्रकार हम देखते हैं कि वर्ण की उत्पत्ति बतौर रंग के आधार पर है और न ईश्वर या ईश्वी-सृष्टि है। हमका मान्यता धर्म विचारण है। आधुनिक काल में वर्ण के मतलबों के हर एक व्यक्ति को कहना पड़ता था। उपासना धारण होने के कारण विचार रूप से पुरोहित वर्ण की आवश्यकता नहीं पड़नी थी। परन्तु कुछ काल बाद भारत में कम जाने के कारण वर्ण अपने सामाजिक संयोजन में अब

विभाजन की आवश्यकता अनुभव करने लगे। बलशाली और समर्थ पुरुषों को राज्य संभालन की शिक्षा देकर समाज रक्षा का भार दिया गया और इनको क्षत्रिय कहकर सम्बोधित किया गया। वर्ग में कर्मकाण्ड की महत्ता का जाने से जटिलता आ गई थी। युग की विधि भी जटिल बन चुकी थी। इसलिए धार्मिक क्रियाओं का भार उस वर्ग को सौंपा गया जिसके मानसिक विकास का स्तर औरों से अधिक था। इस वर्ग को ब्राह्मण कहने लगे। व्यापार, उद्योग तथा सेना में लगे लोगों का भी धीरे-धीरे एक विशेष वर्ग बनाया गया जिसे वैश्य कहने लगे। रास और मित्र काम करने वालों का भी एक विश्व वर्ग बनाया गया। इस वर्ग में भारत के आबे आदि निवासी तथा विभिन्न लोग मिलकर आये। ने अपनी सेवा के लिये रक्त दिया था रक्त लिये गये। इस वर्ग को सूत्र कहा गया।

कालान्तर में भिन्न-भिन्न कार्य करनेवालों की अपनी एक-एक जाति बननी गई। धार्मिक जटिलता के आचार पर सामाजिक जटिलता की वृद्धि के साथ-साथ अस्पृश्यता की भावना भी आती गयी। भारत में इस्लाम के प्राकृमर्ष के पश्चात् हिन्दुओं ने अपने सामाजिक संरक्षण में कला-कृत को बढ़ा दिया और जातियों की भावना बढ़ती चली गई। पञ्चमैथिल सत्ता करने के साथ ही हिन्दुओं का आत्मविश्वास भी आता रहा। उनमें उत्तरता के स्थान पर संकीर्णता आती गई। अपने वर्ग को वे अब जाति के रूप में देखने लगे और हर एक वर्ग की एक-एक जाति बनती चली गयी। समाज का यह जाति विभाजन का क्रम चलता रहा। फलस्वरूप इसी जातियाँ बन गई।

वर्ग व्यवस्था का समाज पर प्रभाव

हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में वर्ग व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक काल में वर्ग व्यवस्था भारत की प्रगति के मार्ग में एक बड़ा बाधा बनकर खड़ी है परन्तु प्राचीन काल में समाज संगठन की यह एक प्रमुख आधार रही है। इस तरह हम देखते हैं कि वर्ग व्यवस्था में गुप्त तथा अश्वमेध दोनों ही हैं। अब हमें उनके गुप्त और अश्वमेध का पृथक् रूप से विश्लेषण कर लेना ही अनुचित होगा।

गुप्त—जिस समय भारत पर विदेशियों का आक्रमण हो रहा था जाति के कठोर नियमों के कारण हिन्दुओं ने अपने आपको विदेशियों से पृथक् रखा। इस प्रकार हिन्दुओं की संस्कृति की काफी भाषा में रक्षा हुई। विदेशियों पर इस संस्कृति का प्रभाव पड़ा और वे इसे अपनाकर हिन्दु समाज में अपना एक वर्ग बनाकर सम्मिलित हो गये।

वर्ग व्यवस्था अम विभाजन के आधार पर बनी होने के कारण हर एक वर्ग अपना-अपना कार्य नियमित रूप से करना अपना वर्ग समझता था। हर एक वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति बचपन से ही अपने घर के वर्गों को देखता और सीखता। काम सीखने के लिये उसे किसी और के यहाँ नहीं जाना पड़ता था। पिता के कार्य में हाथ बटाते बेटे ही वह निपुण हो जाता और इस प्रकार जवान होकर अपने वैदिक वर्गों की आरम्भ कर देता। इस प्रकार बंध परम्परा से उसकी योग्यता कुशलता तथा कार्यपटुता चली आती रही। फलस्वरूप भारतवर्ष में कला की सीखी तथा निपुणता सम्यता की एक विशेषता बन गई।

वर्ग व्यवस्था के कारण हर एक वर्ग अपना-अपना एक-एक संज्ञ बना लेता था और अपने सदस्यों की आर्थिक समस्याओं की देखरेख करता था। इनके अपने

नियम होते थे जिन्हें सबको मानना पड़ता था। इस प्रकार लोगों में कर्तव्य पालन करने तथा अनुशासन में रहने का अभ्यास हो जाता था।

अवपुत्र—वहाँ वर्ण व्यवस्था से इतना काम था वहीं वर्ण व्यवस्था से भारतीयों को हानियाँ भी काफी पहुँची हैं। हर एक वर्ण अपना वर्ण और अपना स्वार्थ प्रमुख समझता था। आपस में एक वर्ण दूसरे वर्ण से द्वेष करता तथा स्वार्थ व हितों की भावना रखता था। विपत्ति काल में उन्हें देश की विपत्ति का ध्यान न होकर अपने वर्ण का ही केवल ध्यान होता। इस प्रकार देश में राष्ट्रीयता की भावना न आ सकी। फलस्वरूप भारत विदेशी आक्रमणकारियों के आग तथा चर झुकावा ही रहा। वर्ण व्यवस्था धर्म पर आधारित होने के कारण जहाँ इससे काम ले नहीं सकते हानि भी काफी की। बहुधा योग्य व्यक्ति अपनी जाति के कारण दूसरे कार्य को नहीं कर सकता था। एक योग्य पिता का अप्रयोग्य पुत्र अपने पिता का घर बहूत अवसर कर लेता पर उसके कार्य को सुचारु रूप से चला नहीं पाता। फलस्वरूप देश की प्रगति में रुकावट पैदा हो जाती थी।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था भारतीयों की सम्पत्ति तथा संस्कृति की रक्षक तथा पोषक रही है। परन्तु आधुनिक काल में अब इसकी आवश्यकता नहीं रही है। आज के समाज की तो यह एक अभिघात मान बनकर रह गई है। यह भारत की प्रगति के मार्ग में बाधक है।

प्रश्न

1. What do you know of the origin of the Caste system? Discuss its effects on the social and economic development of Indian Society (1949-1957).
2. Give a brief account of the sacred literature of the Aryans. What is their importance (1953).
3. Give a brief account of Vedic Literature and point out its importance to the historians. (1954)

अध्याय ७

महाकाव्य काल

हिन्दुओं के दो धार्मिक महाकाव्य रामायण तथा महाभारत सारे देश में आदर-पूजक देने जाते हैं। मद्यपि इन दोनों ग्रन्थों का अध्ययन तथा मनन अभिन्नतर कोम धार्मिक दृष्टिकोण से ही करते हैं परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी ये ग्रन्थ कम महत्व-पूर्ण नहीं हैं। इनके आधार पर हम उत्तर वैदिक काल के बाद की भाषों की सम्पत्ता का विवरण पाते हैं। परन्तु जब का विषय है कि हम इन ग्रन्थों की रचना का मही समय जान भी नहीं बता सकते। हाँ इतना अवश्य है कि ये ग्रन्थ सम्भवतः उत्तर वैदिक काल के बाद तथा बौद्धधर्म के जन्म से पूर्व रचे गए हों। मद्यपि साधारणतः रामायण महाभारत से पहले की रचना मानो जाती है परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महाभारत में वर्णित सम्पत्ता रामायण में वर्णित सम्पत्ता से पहले की है। रामायण तथा महाभारत की कथा का विवरण तो विद्यार्थी स्कूल में ही जान लेते हैं। अतः हम यहाँ केवल उस काल की सम्पत्ता का ही उल्लेख करेंगे।

महाभारत में वर्णित सम्पत्ता

महाभारत काल में सामाजिक संघटन का आधार वर्णव्यवस्था ही थी परन्तु इस वर्ण व्यवस्था में अब राज्यों के विभक्त होने से सन्धियों का आधिपत्य अधिक था। ब्राह्मण राजाओं का अधिकार बन गया था। अब ब्राह्मण किसी भी व्यवस्था में राज्य नहीं कर सकता था। उदाहरण के लिए हमारे सामने श्रीमद्भाग्य तथा विपट का संघर्ष है। श्रीमद्भाग्य और विपट की सहायता से विपट को युद्ध में परास्त करने पर भी राज्य न कर सका। परन्तु वर्ण व्यवस्था में विभक्तता अवश्य जाती जा रही थी। अतः पूर्व में वर्णित कहते हैं 'जातियों का सम्मिश्रण इतना बढ़ा हो गया है कि जन्म नहीं खरिद ही सकता है।' कुछ राजाओं का युद्ध कन्याओं से व्याह्र करने का उल्लेख भी मिलता है। महाभारत में दुर्योधन का स्वान्तर्गत कुछ ऊँचा हो गया था और राजा के अभियेक के समय युद्ध भी लड़ाये जाते थे। युद्ध राजपर पर भी नियुक्त होता था। कर्म जो धूलपुत्र कहलाता था राजा बनाया गया।

महाभारत के विभिन्न पर्वों में हमें भाषों के सामाजिक अन्तुत्थन या समन्वय की प्रार्थना का बीच होता है। इस समन्वय के अन्तर्गत अन्तर्जातीय विवाह वर्णनियम का उल्लंघन करना आचार्य को प्रमानता देना आदि आता है। राजसमन्वयमान में यह स्वीकार किया गया है कि आचार्य के समय वर्ण के नियम ढीले हो सकते हैं।

समाज और नारी—वैदिक कालीन स्थितियों को अपने समाज में किताब ऊँचा स्थान प्राप्त था इन इतने अवगत हो चुके हैं। कमसे कम इस स्थिति में जो कमी आता नहीं उभरते हैं। हम पिछले अध्यायों में परिचित हो चुके हैं। महाभारत की भाषियों का स्थिति कुछ विविध-सी है। यही तो इन्हें बहुत अधिक सम्मान प्रविष्टा और स्वतन्त्रता दी गई है परन्तु इन्हें घर का बहारीयारी में बाँधने का प्रयास किया गया है। कुछ विचारकों ने इनकी प्रशंसा मुकुटकण्ठ से की है परन्तु कुछ ने इनका गुलाम निम्नस्तर किया

भारतीय इतिहास

है और इन्हें माया भूमि सपिनी गरल विचारविहीना बचसा दुस्परिचा कृतघ्ना भावि भी संज्ञा दी है।

उत्सव भावि में स्त्रियों के स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने का प्रमाण हमें सुप्रसन्न हरण की कथा से ज्ञात होता है। स्त्रियों की बहुता का प्रमाण हमें महाभारत में ज्ञात मिलता है। एक स्वर्ण पर कहा गया है "पत्नी ही घर है जिस घर में पत्नी नहीं वह घर नहीं है, चाहे बेटे-बेटे पोते-पोते कितने ही क्यों न हों। बर्न-बर्न और काम में वेष्ट में और परदेश में युक्त में युक्त में हर बात में पत्नी ही साथी है।

सूत्रकाल में विवाह की जाठ पड़तियाँ थीं। समय में सारी पड़तियाँ इस समय भी विद्यमान थीं। सामर्थ्य विवाह का प्रमाण सङ्कलित तथा दुष्प्रसन्न के सम्बन्ध से ज्ञात होता है। मात्री अपने पति पाण्डु के साथ अपनी जीवन-जीता भी समाप्त कर देती है। पर समयवशी के दूसरे स्वयंवर की बोधका का भी उत्प्रेक्ष्य मिलता है जिसे सुनकर नक्त के अतिरिक्त और किसी को कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

महाभारत के समय में सम्भवतः सर्वप्रथम निर्वीर्य की प्रथा का प्रचलन ज्ञात होता है। निर्वीर्य पति की मृत्यु के पश्चात् या विधवा बच्चा में उसके जीवित रहने पर भी उसकी आज्ञा से किया जाता था।

तत्कालीन समाज पर एक दृष्टि—माघ महान्न सप्ताह में जब अधिक बहू गया था। भाविपर्व तथा वसुपर्व से ज्ञात होता है कि राजा उत्तिदेव की बगधाका में निरव हो ह्वार पक्षुओं का वध किया जाता था तथा वह माघ सर्वसाधारण में निरविर कर दिया जाता था।

समाज में बर्ष का बही महत्त्व था। जब भी यज्ञों को प्रमाणता दी जाती थी। राजसूय यज्ञ अस्वमेध यज्ञ भावि का उत्प्रेक्ष्य बराबर मिलता है। हाँ देशी-देवताओं में कुछ नवीनता आ रही थी नवीनता इस अर्थ में कि कुछ प्राचीन वैदिक देवताओं की कम महत्त्व दिया जाने लगा और नवीन देवताओं के महत्त्व में वृद्धि कर दी गई। यह सूत्रकाल की परम्परा का ही अनुसरण था।

आयोद-मनोव युगवा आलेट बुना नृत्य-संघीत भावि अनेक वस्तुएँ इस समय के समाज में पाई जाती थी। साथ ही बीरता कलाप्रियता भावि भी सराहनीय मानी जाती थी। धर्म-धिया धारण-धिया से महत्त्वपूर्ण होती आ रही थी। धर्मियों के बड़े हुए प्रभुत्व का ही यह परिणाम रहा।

ईसों तथा विभिन्न सघोष वालों का अपना-अपना संघटन था जो अपनी उग्रता तथा रक्षा के लिए बनते थे। इन्हें सेनी कहते थे जिसका प्रमुख व्योच्छ या योधि कहलाता था।

राजनीतिक व्यवस्था

राजा—महाभारत में राजा और अधिराज की धम्म भाये हैं जिनसे वह भा निकलता है कि कुछ ठी बहूत बड़े-बड़े राजा थे जो सम्राट् या अधिराज कहलाते थे और कुछ उनके अधीन छोटे-छाट राजा थे। समापर्व में राजा तथा अधिराज का उत्प्रेक्ष्य है। इसी प्रकार अस्वमेधपर्व में भी अनेक राजाओं की अपनी प्रभुता स्वीकार कराकर अनेक मेघ यज्ञ करने वाले सम्राटों का अधिराजों का उत्प्रेक्ष्य है।

राजा का पद काफी ऊँचा माना जाता था। उसे देवता-मुख्य समझा जाता था। प्रभुता का वह ही उस पर काफ़ी उत्तरदायित्व भी लाया गया था। एक स्थल पर तो बहोतक

कहा गया है कि कुप्ट-राजा को जनता परबन्धुत करे बेसी थी या उसको ‘पागल कुप्टे की भाँति मार डाली थी’। राजा के कर्तव्य भी बहुत विस्तृत थे। धार्मिक पर्व में बर्णित उसके कुछ प्रमुख कर्तव्य इस प्रकार थे— (१) कुपि-भूमि तैयार कराना (२) सिंघाई की व्यवस्था कराना (३) कुपको को लुकायी देना (४) सङ्क-निर्माण (५) दाम बना (६) शान्ति-स्वायत्त (७) प्रजा के नैतिक उत्थान में सहायक होना आदि।

शासन-व्यवस्था—लुकायी शासन-व्यवस्था की भी रूप-रेखा महामारु से प्राप्त होती है उस आधार पर हम उसे पूर्ववर्ती काव्यों से उदात्त मान सकते हैं।

मन्त्रिपरिषद्—राजा की निरंकुशता पर मन्त्रिपरिषद् का उभा समाज का भारी बंधन था। मन्त्रिपरिषद् की अनुमति बिना राजा कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं करता था। बहुधा शासन कार्य में भी वह मन्त्रा सेता था। बार बाहुज आठ सत्रिय इसकीस नैस्य तीन सुद तथा एक सुत का एक सचिवालय होता था।

परिषद् के अतिरिक्त ‘समा’ का भी उल्लेख किया गया है जिसका प्रधान ‘समाप्यल’ होता था। समा व्याय सम्मन्धी मामलों की देखरेख करती थी।

ग्राम-शासन—शासन की न्यूनतम इकाई ग्राम को माना गया था। ग्राम का प्रधान अधिकारी ग्रामणी होता था। इसके ऊपर सप्तग्रामी बिच तथा सप्तग्रामी होते थे। ये क्रमशः १० २० तथा १०० ग्रामों के अधिकारी होते थे। इन सब ने ऊपर एक हजार ग्रामों का अधिकारी अधिकारी होता था। ग्राम का पूर्ण शासन इनके अर्जन था। ये ही कुपि-कर भी वसूल करके राजकोष में भजते थे। समापर्व में नारद ने मुनिठिर को पाँच में पाँच अधिकारी रखने की मन्त्रा दी है।

गणराज्य—महामारु में पाँच गणराज्यों का भी उल्लेख किया गया है। अन्धक बुद्धि यादव कुकुर तथा मीन के गण राज्यों ने अपना एक संगठन बना लिया था। कुप्य की इस संघ का ‘संघमुख’ बताया गया है।

राज्य पराधिकारी—शासन-प्रबन्ध को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए अनेक प्रकार के अधिकारी होते थे। समापर्व में १८ अधिकारियों का उल्लेख किया गया है। पुत्रराज का शासन-प्रबन्ध में काफी हाथ था। राजमहक कापगाद अरम्भ सीमावर्ती प्रवेश आदि के विभिन्न अधिकारियों का विवरण मिलता है। शान्तिपर्व में अनेक प्रकार के अधिकारों का उल्लेख किया गया है। इनमें खान नमक नहीं सेना सुलभ आदि के अधिकारी प्रमुख हैं। सेना में अनेक प्रकार के अधिकारी थे।

सेना-युद्ध के लिए सेना रखना आवश्यक था और साम्राज्य-निर्माण के लिए युद्ध आवश्यक था। सेना में पैदल अश्वारोही यमारोही रथी आदि सम्मिश्रित थे। सेना के अधिकारी अभिजात कुलीन व्यक्ति होते थे।

राज्य की आय—आय के प्रमुख साधन कुपि कर, भी उपज का ३ भाग किया जाता था तथा व्यापार-व्याजिक्य कर थे। भूमिना से भी अच्छी आमदनी हो जाती थी। शान्तिपर्व में बाहुज से कर न लेने की बात कही गई है।

रामायण की सामग्रियाँ तथा उनका ऐतिहासिक महत्व

यद्यपि रामायण-महामारु की सामग्रियों का अध्ययन विद्वानों ने एक साथ ही किया है क्योंकि ये दोनों समग्र एक ही काल का प्रतिनिधित्व करते हैं किन्तु विचारों की विविधता के कारण इनका अध्ययन पुनः-पुनः करना अधिक उपयुक्त है। समाज की अनेक साम्यताएँ रामायण में परिवर्तित हो गई हैं राजनीति का भी कसेदर कुछ

अंशों में बरका-सा है। कौटुम्बिक जीवन की एक नया महत्व प्रधान किया गया है। इन सब कार्यों से इसका पूरक सम्पन्न ही अधिक सुखम है।

सामाजिक जीवन

धर्मों के जीवन का भी विविध वास्तविक ने किया है उससे यह स्पष्ट होता है कि महापुरुष जो उसमें हेम दृष्टि से नही देखते थे। राजनीति में नही स्थान देकर इनका महत्व अधिक बढ़ा दिया गया था। अरुण्य में राम तथा निपाओं के व्यवहार से भी इस की दृष्टि हो जाती है कि उधारपित व्यक्ति धर्मों की सम्भावित करने में कोई अपराध की बात नहीं समझते थे।

नारियों की वधा में कुछ विकल हुआ था पर ध्यान रखना चाहिये कि रामायण में ही ऐसे पात्रों का विविध प्रत्येक क्षेत्र में किया गया है जिनमें से एक उत्तम तथा दूसरा अधम है। वही एक ओर राम का अपाध प्रस्तुत किया गया है वही दूसरी ओर रावण के पतित जीवन का भी विवरण है, वही तीता बीटी सीम्बुद्धि है वही बीबी बीटी रीस-कलह-अपवित्री नारियाँ भी हैं। राजकुमारियों को स्वयंवर-का अधिकार था पर स्वयंवर में पिता कुछ धर्म रख देता था जिससे उनकी स्वतंत्रता का अन्त हो जाता था। पतिव्रत धर्म का बहुत अधिक महत्व था। पति की सेवा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण सीता है।

बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी यह कहने की आवश्यकता नहीं। स्वयं राजा दशरथ इसके प्रमाण हैं। सीता के पारस्परिक सम्बन्ध भी अच्छे न थे उसी ती रावण के वन जाते समय कीचत्वा उनके कहती है कि अब उनकी सीते उनकी बगलैकना करेगी। अतः वे सीता के साथ नहीं रह पायीं।

अब सब प्रचार महावाण्य काल-ही ही थी।

राजनीतिक अवस्था

राजा का महत्व अब भी उसी प्रकार था। राजा अपनी प्रजा का पालन बहुत कष्ट सहकर भी करने की तैयार था। ब्राह्मणों का राजा पर अब अनेकाङ्क प्रभाव अधिक बढ़ गया था। शासन-प्रवण महाभारत-सा ही बनने की मिलता है। राजा अपनी प्रजा से बड़े-बड़े मामलों में राय कला था पर उसे मानना था न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर था। राजा का कर्तव्य बहुत विस्तृत था। उसे छपकों की सहायता अधिनि-सम्मान अलता का बौद्धिक विफल नारि करता बहुत था। उसकी सुरक्षा का पूर्ण भार उसी पर था। राजा की भी जगता बहुत ऊँची दृष्टि से देखती थी। अयोध्या काण्ड में तो वही एक कहा गया है कि वही राजा नहीं है वही न धर्म है न सुख है, न कृष्ण है और न व्याह है राजा ही सत्य है, राजा ही नीति है राजा ही मो है, राजा ही बाध है राजा ही सबका मत्ता करता है। राजपुत्रीहि राजा की शक्तियों का उपरैय करने की उसके पास रहता था। रामायण में १८ पदाधिकारियों का उल्लेख किया गया है—

- (१) भवि (२) दुरीहित (३) बुधराज (४) चमपति (सामान्य)
 (५) दारुण (६) अन्धबैरव (७) कागमादाविकारी (८) द्रव्यसंभव-कृत (९)
 कृत्याङ्गदेव्यु चार्पितान् विनिर्वाक (१०) प्रदेष्टा (ग्यामाशेष) (११) नमराप्य
 (१२) कापीनिर्वाक (१३) चर्माप्य (१४) समायप्य (१५) दण्डपाक (१६)
 कुपेपाक (१७) राष्ट्राप्य-पालक (१८) अद्वीपालक।

दोनों महाकाव्यों, रामायण एवं महाभारत की सामग्रियों के आधार पर जिस नम्यता एवं संस्कृति का निरूपण किया गया है वह लगभग छठी शताब्दी ई० पू० से लेकर चौथी शताब्दी ई० पू० तक के काल की है। सम्भवतः इसके पूर्व भी यह विषय जो बहती है किन्तु इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि चौथी शती ई० पू० के पश्चात् इसे नहीं रखा जा सकता।

प्रश्न

1 Briefly describe the social, economic political and intellectual life of the Aryans during the Epic Age. (1953)

2 Discuss the value of the Epics as source material for the history of the Aryans after the Later Vedic Age.

3. Discuss the salient features of the civilisation as revealed in the Epics.

जैन धर्म तथा बौद्धधर्म

नाम १—जैनधर्म

जैन अनुश्रुतियों के अनुसार जैन धर्म काफी पुराना है और महावीर के पूर्व भी २३ तीर्थंकर हो चुके थे। २४ तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार हैं—

- (१) ऋषभदेव (२) अमिताभ (३) समवताभ (४) अमिनन्दन नाभ
- (५) सुमतिनाभ (६) सुपभनाभ (७) सुपाश्व नाभ (८) वज्रप्रभु (९) पुण्ड्रक
- (१०) वीरकनाभ (११) धीरास नाभ (१२) वसुपथ (१३) विमल नाभ (१४)
- अनन्त नाभ (१५) वर्धनाभ (१६) सत्य नाभ (१७) कुम्भनाभ (१८) अरानाभ
- (१९) मल्लिकानाभ (२०) मुनिचक्र नाभ (२१) धूम्रिनाभ (२२) मेघिनाभ (२३)
- पार्ष्णनाभ तथा (२४) वर्धमान महावीर।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के सम्बन्ध में इनका कहना है कि वे एक राजा। और अपन पुत्र भारत के लिए सिंहासन रिक्त करके वे संन्यासी हो गये। वे इससे तीर्थंकर हो वास्तव में ऐतिहासिक व्यक्ति माने जाते हैं। इनकी तिथि अनुमानत ई ६००

पार्ष्णनाभ—बैठा कि ऊपर बताया गया है पार्ष्णनाभ ऐतिहासिक व्यक्ति माने जाते हैं। कल्पसूत्र के अनुसार वे इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रिय राजा अरबसेन के पुत्र थे। इनकी माता का नाम शामा तथा पत्नी का नाम प्रयागती था। इनके पिता बनारस के राजा थे। पार्ष्णनाभ ने बड़ी आत्ममग्न नामक उपन्यास में ३३ दिन तक उपवास करने के पश्चात् सत्यास ग्रहण कर लिया। ८३ दिनों तक यहन निम्ना के उपरास उन्हें ज्ञान (केवल ईश्वर) प्राप्त हुआ। पार्ष्णनाभ के साथ जाठ 'यक' तथा जाठ 'यकभार' थे। इनके नाम इस प्रकार थे—(१) सुम (२) आर्यवीर (३) वशिष्ठ (४) बह्मचारिण

(५) धीम्य (६) धीवर, (७) वीरमद तथा (८) मयस। इनके साथ अनेक भयन तथा संन्यासियों का भी उल्लेख मिलता है। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार पार्ष्णनाभ ने १०० वर्षों की आयु में सम्येय पर्वत पर निवृत्ति प्राप्त किया। पार्ष्णनाभ के प्रमुख चार सिद्धान्त थे—(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय तथा (४) अपरिग्रह।

महावीर

महावीर का जन्म कात्थप वींशीय क्षत्रिय विद्यार्थ के घर में हुआ। विद्यार्थ कुशपाय (बैधली) के एक सम्प्राप्त व्यक्ति थे। वे किसी अपने नाम के एक छोटे से कुल के प्रपाय में जिसका नाम आश्रित कुल था। विद्यार्थ की प्रसिद्धि एवं उनका स्थान अपने समय के कुल प्रपायों में इसलिये बढ़ा हो गया था कि उन्होंने प्रसिद्ध सिन्धुजी राजा के एक की बहन से अपना ब्याह किया था। महावीर का ब्याह बघोदा से हुआ था जिससे अनुग्गा या प्रियदर्शना नामक पुत्री भी उत्पन्न हुई।

तौल्य धर्म गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के पश्चात् आता-पिता के स्वर्गवास के उपरान्त अपने बड़े भ्राता मण्डिवर्धन से आत्मा लेकर वर्धमान में गृहत्याग किया। वर साठे समय उनके साम कसंख्य लोग बस जिन्हें वर्धमान ने साम्बहन में आकर लौटा दिया। बाद में वही एक ही कठिन उपरन्याय शारीरिक यंत्रणा के पश्चात् उन्हें भूमिका त्रास के निष्ठ रिपुपातिका मामक नदी के तट पर शाक के वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ और ४ दिनों या 'अष्ट' हुए।



चित्र ४—महावीर स्वामी

या बृद्ध से मिल जाने का भी उल्लेख मिलता है।

जैन तथा बौद्ध धर्म के उत्थान में योग देने वाला जो सबसे बड़ा कारण है वह उपासकों का सहयोग है। महावीर की धर्म-प्रचार करने में उनके कुछ प्रमुख शिष्यों ने काफी योग दिया। इनमें (१) आनन्द (२) कामदेव (३) बुद्धानिविद्या (४) सुरसेव, (५) वसुमित्र (६) कुण्डकोलिय (७) संशालपूज (८) महासमन, (९) मन्दिनीपिबा, (१०) वासुदीपिया आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

अपने अथक परिश्रम से अत्यन्त अनयासी बनाकर तथा कुछ ऐसे शिष्य तैयार करके जो जैन-धर्म को स्थायी बना सकें महावीर ने ५४६ ई. पू. में निर्वाण प्राप्त किया। इस तिथि को उनकी निधन तिथि मानकर तथा ७२ वर्ष उनकी जीवन-काल मानकर महावीर की जन्मतिथि ६१८ ई. पू. मानी गई है।

शिक्षाण

अज्ञान—आत्मा के सम्बन्ध में सत-निर्धारण ईश्वर में विश्वास या अविश्वास पर निर्भर है। जैन शिक्षाण में सृष्टि का कर्ता-वर्ता किसी अलौकिक व्यक्ति की कल्पना नहीं की गई। ईश्वर ने उनका कोई विश्वास नहीं है। वह संसार अनादि और अनन्त

महावीर धर्म प्रचारक के रूप में—
महावीर के जीवन की कठिनाइयों को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि उनमें जो कष्ट सहिष्णुता की यह सचमुच अनुपमेय थी। महावीर ने अपने ज्ञान का प्रचार हर प्रकार की वातनामें सहकर भी करने का निश्चय किया। प्रारम्भ में तो वे अकेले ही घूमा करते थे पर कुछ काळ पश्चात् उन्हें शोषाल नाम का एक सहयोगी भी मिल गया।

महावीर को धर्म-प्रचार करने में साधारण कठिनाइयों का ही सामना नहीं करना पड़ा। उस समय भारत में प्राचीन वैदिक धर्म के अनेक सम्प्रदाय तथा कुछ नवीन जायिक इत विद्यमान थे। इनमें बृद्ध ब्राह्मण्य नास्तिक या जायिक वेदान्तीय सांख्य अनुष्ठानीय, जायिक वैदिक तथा वेद सत प्रमाण है। इन समस्त धर्मों की प्रति-स्पर्धा में महावीर को अपना सत स्थापित करना था। महावीर के कुछ अनुयायियों

विगृह्यत वा। अब वस्त्रवापी जैनियों को श्वेताम्बर तथा प्राचीन संन्यासियों को जो अब भी गन्ध रहने व शिगम्वर कहा जाने लगा।

वस्त्रवापी की संगीति—पाटलिपुत्र के परशात् जैन वर्मानुयायियों की दूसरी बैठक मुजराठ में वस्त्रवापी नामक स्थान में हुई। यह काशी विनों परशात् लममव छोटी सती ई० पू० के आरम्भ में देवनिगधि या लमा-भमन के नेतृत्व में हुई थी। इस संगीति का उद्देश्य बिहारे हुए तथा अन्य नियमों को प्रामाणिक रूप से सिपिबद्ध करना था। श्वेताम्बरों की पहली बैठक में संकल्पित सिद्धान्तों की ही वह पुनरुत्पत्ति (सिपिबद्ध में) रही। अतः इसमें भी प्राचीनतम जैन साहित्य नहीं आ सका।

जैन धर्म का बोध—यह बताया जा चुका है कि अपने समय में महावीर ने जैन धर्म का विराट् राज्य पर अपना प्रभाव छोड़ा था गणराज्य में मस्त भिक्षुओं के अन्त में जैन होने का बोध होता है। पर जैन-धर्म का प्रसार-क्षेत्र केवल यहीं तक सीमित न था। उज्जैन तथा मयुरास्त्र विनों में जैन धर्म का क्षेत्र हो गया था। मयुरा म इसन अधिक अमिलेन प्राप्त हुए हैं कि उनमें उपरोक्त मत का समर्पन स्पष्टता ही जाता है। उज्जैन और जैन सन्त कालकाचार्य का सम्बन्ध तो एक बहुत ही रोचक कहा जाइकर जैन अनुसूतियों में दर्शाया गया है। जैन धर्म का मचारमारत में काशी हुआ और वास्तव में वह अपने प्रतिस्पर्धी बौद्ध धर्म की अपेक्षा भारत में अधिक सफल हो सका। आज भी भारत में इन धर्म के अनुयायी काशी सख्या में पाये जाते हैं। जैन-धर्म की इस सफलता के मस में हिन्दू धर्म से इसका साम्य ही है। इसमें कठिन तप ज्ञान मोक्ष आदि की उर्ध्व बतों बढाई गई हैं वे हिन्दुओं को मनीन या निश्चित नहीं करी और वे अपनी कर्मवाहिता को न त्यागत हुए भी इस मनीन धर्म का स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो सके। आज इमीलिय भारत के बड़े-बड़े नगरों में जैन मन्दिर, धर्मशास्त्र पाठशालाएँ आदि काशी हैं।

भाग २—बौद्ध धर्म

पीठम बुद्ध का संक्षिप्त जीवन चरित्र—मग-राज्यों का उत्प्रेक्ष करते हुए बताया गया था कि पीठम बुद्ध के पिता छोड़देन कपिलवस्तु के शाक्यों के मग राज्य के राजा की। इनकी माता का नाम मायादेवी था जो कोलिय मग राज्य की राजकुमारी थी।

पीठम की जन्म-तिथि का निश्चय उसकी मृत्यु तिथि के आधार पर इस प्रकार किया गया है—

मिहशी अनुसूतियों के अनुसार पीठम की निधन-तिथि ५४३ ई पू है। वे ८० वर्ष तक जीवित रहे। अतः जन्म-तिथि ६२३ ई० पू० हुई। पर इस सम्बन्ध में विद्वानों का मतभेद नहीं है और कुछ यह तिथि ५६६ ई पू० बताते हैं। महा परिनिर्वाण की तिथि ४८३ ई पू० भी मानी गई है।

बिज समग्र महाभाषा अपन मानके वैषम्य का रही थी उन्नी समय रास्ते में मज्झिमी में पीठम का जन्म हुआ। धुम्राय्यस्य जन्म के सात दिन बाद ही माता का निधन हो गया। बालक का पालन-पोषण उसकी विमाता महाप्रजापती पीठमी द्वारा ही स्या।

पीठम बुद्ध का वास्तव-जीवन विनाशिता की गोप में बीता। हर प्रकार के सुख-मोक्षों का ये उपभोग करते थे और मृत्यु-मौन्य का भी ज्ञान के उन्नी के

कई नाम बताये गये हैं। मज्झिम-निकाय की कथा काशी प्रचलित है जिसमें यह बताया गया है कि किस प्रकार जरा, रोग तथा मृत्यु आदि के कारण धृत्य का नष्ट भूमि देख कर गौतम जीवन के प्रति उदासीन हो गये थे।

जिस समय गौतम-वर छोड़ने का निश्चय कर चुके थे उसी समय उन्हें पुत्री रत्ति की सूचना मिली और गौतम के मुँह से निकला 'राहुल' (बंधन) जो बालक का नाम पड़ गया। पर वे सारे बन्धन गौतम को न बाँध सके और उन्होंने २९ वर्ष की अवस्था में वर छोड़ दिया।

ज्ञान की खोज में—साधय कौशिक मस्ती आदि के राश्वों की पार करते हुये वे अनुवेमेय नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ अपना समस्त आभरण उतार कर इन्होंने छत्रक की दे दिया और एक ही वस्त्र धारण कर लिया।

सब प्रथम गौतम बालार काष्ठाय नामक संन्यासी के पास गये। इनके ३०० शिष्य थे। इन्हीं शिष्यों के साथ बालार काष्ठाय से गौतम भी शिक्षा लेने लगे पर जिस प्रकाश की खोज में गौतम निकले वे वहाँ नहीं पहुँच सके। अतः वे और आगे बढ़े। इन्हें एक दूसरा धर्म-सिखक मिला। इस धर्माचार्य का नाम उरुह रामपुत्र था जिसके ७० शिष्य थे। यहाँ भी गौतम को निराश होना पड़ा। तत्पश्चात् गौतम मगध राज्याधीन जंबूका नामक स्थान पर गये। यहाँ उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। अन्न का विस्तृत हो त्याग कर दिया और केवल रस से प्राण-रक्षा करने लगे। कुछ ही दिनों में उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया। यहाँ इनके साथ इनके पाँच ब्राह्मण साथी भी थे। पर गौतम ने देखा कि इस कठिन तपस्या से भी कोई लाभ नहीं होने को अतः उन्होंने तपस्या भंग करके बाह्य ग्रहण किया जिस पर उनके ब्राह्मण साथियों ने उन्हें पेड़ कटकर उनका साथ छोड़ दिया। बुद्ध का ३५ वर्ष इसी प्रकार बीत गया। ३५ वें वर्ष में एक दिन जब वे एक पीपल के पेड़ के नीचे (जो नामे वृक्ष कहल जाय) बैठे थे तो उन्हें 'बुद्धत्व' प्राप्त हुआ। गौतम को जिस प्रकाश की खोज थी वह मिल गया। इस ज्ञान प्राप्ति के पूर्व अनेक कष्टों महावस्तु तथा बाधक आदि में निरुद्धि है।

धर्म-प्रचार—संसार के कुछ से जुक्त होकर ही महात्मा बुद्ध ने मोक्ष-विनाश की वृक्षगमा या और अब वे उस प्रकाश की जिससे उन्होंने जीवन के सत्य का स्वयं ज्ञान प्राप्त किया था संसार के प्राणी-प्राणी को बताया चाहते थे जिससे विषय का कल्याण हो सके। महात्मा गौतम बुद्ध की वे पुराने साथी स्मरण रहे। अतः सर्वप्रथम उन्होंने उनकी ही अपने ज्ञान की शिक्षा देने का विचार किया। वे पाँचों ब्राह्मण बनारस के निकट सारनाथ के श्वपितृवन मृगदाय में मिले जहाँ बुद्ध धर्मवान ने उन्हें अपना प्रथम उपदेश दिया। यह धर्म चक्रप्रवर्तन के नाम से विख्यात है।

तत्पश्चात् महात्मा गौतम बुद्ध के अनेक अनुयायी बनारस में मिले जिनमें यक्ष का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बुद्ध के अनुयायियों की संख्या अब लगभग १० तक पहुँच गई। इनकी प्रथम बौद्ध-संघ का भिक्षु कहा जा सकता है। बुद्ध ब्रह्मचर्य से पुनः उल्लास लीते। मार्ग में इनको १ अनुयायी मिले जिनमें मगध प्रजापति था। उल्लास में तो गौतम बुद्ध के पहुँचते ही एक धार्मिक-स्थिति सी जा गई और जटिल कस्त्र के ५०० शिष्य नहीं के ३०० शिष्य गया के २०० शिष्य अर्थात् कुल १००० बटिल सम्प्रदाय वाले अपने गुरुओं के साथ बौद्ध धर्माध्यायी हो गये। इनके साथ गौतम बुद्ध धनबुद्ध की बात पड़े जहाँ उनकी विभिन्नता से भेंट हुई। यही सारिपुत्र तथा मोक्षकायन नामक दो व्यक्ति मिले जिन्होंने महात्मा बुद्ध की धर्म-प्रचार में बड़ा योग दिया जिसके

कलकत्ता स्थित संजय तथा उनके २ • अनुयायी बीड़ हो गये। विभिन्न घस राज्यों का भ्रमण करते हुए बुद्ध भगवान् अपनी जन्म भूमि कपिलवस्तु आये। अब तक लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत में इनका प्रचार हो चुका था। कपिलवस्तु में उन्होंने धर्मोपदेष्टा किया। इनके उपदेश से इनका सीतेला भाई गन्ध तथा पुत्र राजकुल मित्र हो गये। गन्ध उठी माता का पुत्र था जिसने भीतम बड़ का पावन-पोषण किया था। जिस समय गन्ध मित्र हुआ उसी दिन उसका राज्याभिषेक तथा एक अत्यन्त स्वयंसी लड़की से व्याह्र होना निश्चित था। तत्पश्चात् जब भगवान् बुद्ध कपिलवस्तु से राजगृह कीट रहे थे तो मार्ग में अनुपम नामक स्थान पर उन्होंने शासन 'राजा' शक्ति को उसके सहचरों अनुसू जानकर उपाधि तथा वेशभूषा के साथ बीड़धर्म में वीक्षित किया और वे बीड़-धर्म के इतिहास में अपना प्रमुख हाथ रखते हैं। धर्म प्रचार के इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना राजगृह में हुई। बुद्ध भगवान् सीतावन (राजगृह) में रहे थे। यही उनसे प्रभावित होकर सुवात नामक एक व्यापारी ने बीड़-धर्म स्वीकार किया। हमें सुवात के नाम की महती कथा का बोध होता है। फिर इससे सात होता है कि सुवात ने बीड़ मित्रों के लिए चेत-राजकुमार के उपवन को लेने की इच्छा प्रकट की पर चेत ने जब उपवन का मूल्य बताया उसको पूर्वतया डक देने पर सोना। सुवात तैयार हो गया।

जब राजगृह कपिलवस्तु तथा आबस्ती तीनों स्थानों पर बीड़-संघ स्थापित हो चुके थे। यह महात्मा बुद्ध के कलकत्ता हो वर्ष के प्रवास का प्रतिफल था।

अब तक भगवान् बुद्ध ने केवल पुरुषों को ही भिक्षु बनाने की आज्ञा दी थी। पर धर्म प्रचार के पंचम वर्ष में एक ऐसी घटना घटी जिससे इतिहास होकर महात्मा बुद्ध ने नारियों को भी बीड़ संघ में सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी। भगवान् बुद्ध का भ्रमण चकता रहा और वे उत्तरी भारत के अनेक राज्यों में अपने उपदेश देते रहे। बीड़-धर्मों में इन मानकों का बहुत ही रोचक वर्णन मिलता है। अन्त में महात्मा पीतम बुद्ध आबस्ती में स्वामी रूप से रहने लगे। अब तक जानकर बुद्ध का वैयक्तिक सहायक के रूप में निर्वाचित हो चुका था। वेशभूषा को कभी बीड़ या बुद्ध भगवान् का विरोधी हो गया।

जवाहरान् पाटलि घाम में लिच्छवियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए निकल-बन्दी करना रहा था। वहाँ महात्मा पीतम बुद्ध भी आये थे और उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि यह बहुत ही उपतिथीक जगह होगी। यहाँ से वे वैशाखी गये वहाँ वेमुजा नामक गाँव में वे बीमार पड़े। यहाँ भी उन्होंने भविष्यवाणी की कि अब से तीसरे महीने के अन्त में उनका महा परिनिर्वाण होगा। यहाँ से बुद्ध अनेक धार्मिक से होते हुए पावा आये वहाँ चण्ड लहार का दिया हुआ अन्तिम भोजन किया। भोजन करने के बाद ही उन्हें छत्र-रीम हो गया। यह पेशित वही समयक सिद्ध हुई। पर महात्मा बुद्ध ने यहाँ रुकना उचित नहीं समझा और उन्होंने कुशीनारा को प्रस्थान कर दिया। कुशीनारा पहुँच कर बुद्ध को अपने अन्तिम क्षण का आभास हुआ और उन्होंने भिक्षुओं से कुछ प्रश्न करने को कहा पर सब मीन रहे। अन्त में उन्होंने जानकर को बुलाकर कहा कि अब मेरा अन्तिम क्षण है, तूम कुशीनारा के मस्कों को सूचित कर दो। यहाँ ८ वर्ष की अवस्था में महात्मा बुद्ध ने महा परिनिर्वाण प्राप्त किया।

बुद्ध के मूल सिद्धान्त

पीतम बुद्ध के सिद्धान्तों को समझने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि पीतम बुद्ध (१) ईश्वर में विश्वास नहीं रखते थे (२) आत्मा को नित्य नहीं मानते थे

कारवाणि आर्थ सहायिनी—गीतम बुद्ध ने चार आर्थ सहायों का निरूपण इस प्रकार किया—(१) दुःख (२) दुःख समुत्पत्ति (३) दुःखनिरोध तथा (४) दुःखनिर्गम।

(१) दुःख—दुःख ने कहा—“कर्म भी दुःख है बुद्धापा भी दुःख है मरत्य
मरण भी दुःख है निजता हैरानी दुःख है। अभिय से संयोग मित से
उपादान स्वयं दुःख है। पाप उपादान स्वयं कर्म वेदना संज्ञा संस्कार तथा
वेदान्त है।

(२) दुःख समुच्चय—दुःख का कारण समुच्चय है।

(३) दुःख निरोध—दुःख के मूल तत्त्वों को ही प्राप्य होते हैं। तृष्णा के मूल दो तत्त्वों को ही प्राप्य होते हैं। तृष्णा के कारण दुःख है। काम की तृष्णा जब उत्पन्न होती है तब काम उत्पन्न होता है इसी व्याख्या मयवान् दुःख ने इस प्रकार की है—
काम (प्रिय मोह) के लिये ही राजा राजाओं से लड़ते हैं। लक्ष्मि अक्षिणों से बाह्य
प्राप्तियों से पृथक् पृथक् लड़ते हैं। माता पुत्र से पुत्र माता से पिता पुत्र से पुत्र पिता से
माई माई से बहिन माई से माई बहिन से मित्र मित्र से लड़ते हैं। वे परस्पर कलह
विग्रह—विवाद करते हैं। एक दूसरे पर हार से लड़ते हैं। वे परस्पर कलह
करते हैं। वे मर भी चाहते हैं और मरण समान दुःख की भी प्राप्ति करते हैं।
(३) दुःख निरोध—दुःख के मूल तत्त्वों को ही प्राप्य होते हैं। तृष्णा के मूल दो तत्त्वों को ही प्राप्य होते हैं। तृष्णा के कारण दुःख है। काम की तृष्णा जब उत्पन्न होती है तब काम उत्पन्न होता है इसी व्याख्या मयवान् दुःख ने इस प्रकार की है—
काम (प्रिय मोह) के लिये ही राजा राजाओं से लड़ते हैं। लक्ष्मि अक्षिणों से बाह्य
प्राप्तियों से पृथक् पृथक् लड़ते हैं। माता पुत्र से पुत्र माता से पिता पुत्र से पुत्र पिता से
माई माई से बहिन माई से माई बहिन से मित्र मित्र से लड़ते हैं। वे परस्पर कलह
विग्रह—विवाद करते हैं। एक दूसरे पर हार से लड़ते हैं। वे परस्पर कलह
करते हैं। वे मर भी चाहते हैं और मरण समान दुःख की भी प्राप्ति करते हैं।

(४) बुद्ध भिक्षुसमाधी-मार्ग—बुद्ध भिक्षुसमाधी मार्ग का प्रथम उपदेश भयवान्
 न दीनों भवियों को त्याग नही सेवन कराया जाय।
 न बाधा नष्ट हो जाना (५) बुद्ध भिक्षुसमाधी मार्ग का प्रथम उपदेश भयवान्

मनवान् बुद्ध ने कहा "नित्यम् ? इन दो शक्तियों को. नही सेवन करना चाहिए।
(१) काम—युक्त में ही रहना चाहिए। (२) शरीर वाचना में धन्य जाना।
इन दोनों शक्तियों को त्याग (मन) मध्यम मार्ग साधित करने वाला है।
हने वाला जान कराने वाला साम्यक शक्ति सम्पन्न करने वाला है।
व्यवस्थित मार्ग है साम्यक शक्ति सम्पन्न करने वाला है।

(१) मध्यम मार्ग (२) शरीर वातना में रोग जाना।
 सामित होने बाबा है। वह (मध्यम मार्ग) यही आध
 उपरैकित कार्य अष्टांगिक मार्ग में प्रथम दो आध

कायिक बाह्य मानसिक भले-बुरे कर्मों के ठीक-ठीक ज्ञान को ही सम्यक् दृष्टि कहा गया है। कायिक बुरे कर्मों में हिंसा जोरी थीन (भूमिहार) आदि हैं और इनके विनाश भले कर्म हैं। इसी प्रकार बाह्य बुरे कर्मों में मिथ्या भाषण कुसुमी कर्मापण ब्रह्मवाच हैं तथा उनके विनाश भले कर्म हैं—मानसिक बुरे कर्मों में क्रोध प्रतियोगिता मूर्खता आदि हैं और इनके विनाश भले मानसिक कर्म हैं। अन्तरात्मा कार्यसत्यनिष्ठा का ठीक-ठीक बोध करना ही सम्यक् दृष्टि कहा जाता है। बुद्ध ने बताया कि सम्यक् संन्यास का धर्म है राग—प्रतिहिंसा—उद्द्वेग संन्यास। ये दोनों ज्ञान के अंगवस्त्र हैं।

धीस के अन्तर्गत सम्यक बचन सम्यक कर्म तथा सम्यक जीविका है। सम्यक बचन तथा सम्यक कर्मों के अन्तर्गत ऊपर बताये गये कामिक तथा वाचिक कर्म आते हैं। सम्यक जीविका से बुद्ध का अभिप्राय बुरे कर्मों से रहित जीविका से है। प्राणि हिंसा सम्बन्धी जीविका ही बुरी जीविका है। अंगुत्तरनिकाय पाँचवें के अनुसार हविवार का व्यापार, धान का व्यापार, मोस का व्यापार मद्य का व्यापार, शिप का व्यापार आदि ही बुरी जीविका है।

सम्यक समाधि के अन्तर्गत सम्यक प्रयत्न सम्यक स्मृति तथा समाधि है। सम्यक प्रयत्न का अर्थ है इन्द्रियों पर संयम करने का प्रयत्न बुरी भावनाओं के दमन तथा सुन्दर भावनाओं के उत्थारण का प्रयत्न उत्पन्न उत्तम भावनाओं को स्थापित देने का प्रयत्न करना। 'काय चित्तवेचना और मन के बर्तों की ठीक स्थितियों—उनके मस्तिष्क जग चिप्पसी आदि होन का सदा स्मरण रखना सम्यक स्मृति है। 'चित्त की एकाग्रता का समाधि कहते हैं।

अब तक जिस सिद्धान्तों पर कुछ प्रकाश डाला गया है वे महात्मा गौतम बुद्ध के साधारण विचार हैं अब हम उनके वाचनिक विचारों पर विचार करेंगे।

अनित्यवाद—'अनित्य बुद्ध अनात्म' बुद्ध भगवान् के सम्पूर्ण दर्शन का प्रतीक है। इसमें ही उनका सारा दर्शन आ जाता है। अनित्य उनके अविष्कार का स्रोत है।

प्रतीत्य समुत्पाद—एक वस्तु के विनाश के पश्चात् दूसरे की उत्पत्ति होती है। इसी नियम को भगवान् बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद कहा है।

अनात्मवाद—गौतम बुद्ध अनात्मवादी थे। शरीर के अष्ट हो जाग के पश्चात् आत्मा नाम की किसी स्थायी वस्तु में उनका विश्वास न था। उपनिषदों में आत्मवाद को जो बकासत की गई है भगवान् बुद्ध के मतानुसार वह असत्य है।

अनीतिकवाद—अनात्मवादी होते हुए भी भगवान् बुद्ध नीतिकवादी (अववादी) कदापि न थे। गौतम बुद्ध के विचार में नीतिकवाद उनके ब्रह्मचर्य और समाधि का उनी प्रकार विरोधी है जैसे आत्मवाद का विरोधी है अतः उन्होंने कहा—

वही जीव है वही शरीर है (दोनों एक हैं) ऐसा मत होने पर ब्रह्मचर्य बाध नहीं हो सकता। 'जीव वृक्ष है शरीर वृक्ष है ऐसा मत (वृष्टि) होने पर भी ब्रह्मचर्य बाध नहीं हो सकता।

अनोपश्रववाद—जब-जब भी भगवान् बुद्ध से ईश्वर के सम्बन्ध में पूछा जाता या पूछा या तो विस्मृत मौन हो जाते थे या कुछ परिहासमय वचनान्वयी में इसके विद्यमान होने में सन्देह प्रकट करते थे। उन्होंने एक स्थल पर यह बताया है कि यदि मानव को ही परवर्ती मानव ने भगवत् ईश्वर मान लिया।

विचार स्वातन्त्र्य—गौतम बुद्ध ने लोगों का अंधानुकरण के स्थान पर स्वयं उचित-अनुचित पर विचार करने की अनुमति दी। करापुत्र ग्राम के कलाओं ने भगवान् बुद्ध से एक बार यह कहा कि विभिन्न भगवत् अना-अपना मत बताते हैं। एसी अवस्था में "हमें सन्देह होता है—कौन सच कहता है, कौन झूठ। इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया—'कलाओं? तुम्हारा सन्देह ठीक है सन्देह के स्थान में ही तुम्हें अधिक उत्पन्न होता है। जब कलाओं तुम स्वयं हो जानों कि वे सर्व (काम या बात) अर्थात् अद्वैत विमो से अनिश्चित है यह जाने पहचान करने पर ही तुम के सिद्ध होने हैं वी कलाओं तुम उन्हें स्वीकार करो।

निर्वाण—निर्वाण का सांख्यिक अर्थ है मुक्तता। जीतम बुद्ध ने उस सम्बन्ध में कुछ अधिक कहना 'अध्याकृत' बताया है। तृष्णा के लीन हो जाने की अवस्था को ही बुद्ध ने निर्वाण कहा है। वास्तव के न रहने पर ही निर्वाण होता है।

बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के कारण

बौद्ध धर्म का इस देश में बहुत सौध काफी अधिक प्रचार हो गया था। महात्मा जीतम बुद्ध ने अपने जीवन-काल में ही अपने धर्म का लोगों में प्रचार होते देखा था। बौद्ध धर्म की सरलता के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे

(१) बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों की सरलता—बौद्ध धर्म के सिद्धान्त अत्यन्त सरल और सर्वसाधारण के सिद्ध बोधमय्य थे। बुद्ध ने सरल और स्पष्ट शब्दों में समझाया कि मानव जीवन दुःखमय है, अतएव बार-बार जन्म ग्रहण करना दुःख का कारण है। मनुष्य को अत्यन्तैरहित वासनाओं के ही कारण उसे पुन-पुन जन्म लेना पड़ता है। अतएव उसका कर्तव्य है कि वह उन वासनाओं का समुदायमूलन करे। इस धर्म के सिद्धे उसे मध्यम पथ का सेवन करना चाहिए। कर्मवाद के सिद्धान्त का बुद्ध ने प्रतिपादन किया और बड़े सरल शब्दों में समझाया। उन्होंने मनुष्य को स्वावच्छेदों होने का उपदेश दिया। उनके इन उपदेशों में कोई ऐसी बात नहीं है जिसको समझने में कठिनाई का अनुभव करना पड़े।

(२) यहाँ और पुरोहितों का कुप्रभाव—यह कहना अनुचित नहीं कि भारत में बौद्ध धर्म का उदय एक धार्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप हुआ था। यह धार्मिक क्रान्ति वैदिक धर्म कर्मकाण्डों और पुरोहितों के प्रभाव के विरुद्ध हुई थी। वेदा कि पिछले अध्यामों में बताया जा चुका है कि ऋग्वेद की प्रकृति-युवा कालान्तर में अनेक अटिल धार्मिक किशोरों के साथ संयुक्त हो गई। ऋग्वेदिक काल में भी यज्ञ किए जाते थे परन्तु उनको प्रधानता नहीं प्राप्त थी और यही कारण था कि समाज में अभी पुरोहित धर्म की छवि का संयोजन भी नहीं होने पाया था। परन्तु यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकी। उत्तरवैदिक काल में ही अनेक अटिल और सर्चसि यज्ञों के अनुष्ठान की व्यवस्था कर दी गई और ब्राह्मणों ने अपनी श्रेष्ठता बोलित करना प्रारम्भ कर दिया। सामारण लोग इन सर्चसि और अटिल यज्ञों को नहीं कर सकते थे। अतएव जब बुद्ध ने धार्मिक धर्म काण्ड का विरोध करते हुए ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देना शुरू किया तो अनेक लोग उनके उपदेशों से प्रभावित हो गए और उनका शिष्य बनना स्वीकार किया।

(३) बुद्ध का प्रभावशाली व्यक्तित्व—बौद्ध धर्म के प्रचार में महात्मा बुद्ध के बुद्धकीय व्यक्तित्व का बहुत बड़ा योगदान था। भारतीय जनता सर्वत्र से हो त्याग का बाहर करती रही है और और सबसे अधिक बहुमान उसने त्यागी व्यक्ति को ही दिया है। बुद्ध स्वयं एक राजकुमार थे। किन्तु उन्होंने राजकुमारों को शिवाग्रिह देकर लोक कल्याण के लिए अपना हाथ प्रयत्न कर दिया था। इस कारण से सभी लोग बुद्ध के व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाते थे। उनके समकालीन साधक उनके सम्पूर्ण जीवन त्याग कर बड़े ही जाने थे और हर प्रकार से उनका सम्मान करते थे। इसके अतिरिक्त बुद्ध में मानवीय गुणों की प्रचुरता थी वे कभी क्रुद्ध नहीं होते थे। यात्रियों मुनन पर भी अपना मानसिक संतुलन बनाये रखते थे। अपना प्रसंगा मुनकर कभी प्रमत्त नहीं होते थे उनके कुछ शत्रु ही होते थे। उनका हृदय बड़ा स्नेह और कष्टका का अक्षय स्रोत था जिसमें धृष्ट और द्वेष आदि बानुसुरी प्रवृत्तियों के सिद्धे कोई स्थान नहीं था। पापियों में प्रति भी उनके हृदय में अक्षय क्षमाशीलता थी। ब्राह्मणों नामक गणिका के भोजनान्धन को उन्होंने बिना किसी हिंसक के स्वीकार कर लिया था। उनकी दृष्टि में मनुष्य मनुष्य में कोई भेद

नहीं था। इन सब मुद्दों के कारण बुद्ध के व्यक्तित्व में बुद्धकीय मार्कपत्र का समावेश हो गया था।

(४) जाति प्रथा का विरोध और समानता की भावना—बुद्ध ने जाति प्रथा का विरोध किया और बतकाया कि जाति भेद अनावश्यक ही नहीं बरन् अस्वाभाविक भी है। उत्तर वैदिककालीन सामाजिक रचना में ब्राह्मणों और क्षत्रियों को निश्चय ही वैश्यों और द्यूतों की अपेक्षा ऊँचा स्थान प्राप्त था। उपर ब्राह्मणों और क्षत्रियों में भी सामाजिक श्रेष्ठता के प्रश्न पर काफी वाद-विवाद हुआ करता था। ब्राह्मण धर्म बचवा वैदिक धर्म जाति प्रथा के अस्तित्व का पोषण करते हुए ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को स्वीकार करता था। ऐसा होने पर वह स्वाभाविक ही था कि अन्य जातियों का सामाजिक स्तर निम्न अवस्था होन प्रतीत हो। फल यह हुआ कि ब्राह्मणों के अतिरिक्त सभी जाति वालों को निम्न बीड़ धर्म अधिक हितकर मान्नु पड़ा क्योंकि यह धर्म मानव-मानव की समानता के सिद्धान्तों का पोषक था।

(५) लोक भाषा प्रयोग—महात्मा बुद्ध ने कई भाषाओं पर अधिकार किया था और वे महान् विद्वान् थे। किन्तु उन्होंने विद्वानों और पण्डितों की भाषा में अपने उपदेश न देकर लोक भाषा में अपनी शिक्षाओं का प्रचार किया। यदि मोक्षामी जी ने अपने अमर महाकाव्य का रचना संस्कृत में की होती तो सर्वसाधारण में उसका इतना अधिक प्रचार नह। हो सकता था जितना कि आज है। इसी प्रकार यदि बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं का प्रचार साक भाषा में न किया होता तो उन्हें इतनी शीघ्र सफलता न प्राप्त हुई होती। वैसे ही उन्हें अपने जीवनकाल में पिकी थी। किसी बीड़ धर्म में इस बात का उल्लेख मिलता है कि एक बार बुद्ध के किसी ब्राह्मण शिष्य ने उनसे प्रश्न किया कि आप संस्कृत में अपने उपदेश क्यों नहीं देते। इस पर तत्काल ने उत्तर दिया “मैं बंदियों की भाषा द्वारा गरीबों तक पहुँचना चाहता हूँ।

(६) प्रचार जाँच की रीतिरक्ता—लोकभाषा के साथ-ही-साथ बुद्ध ने जिस प्रकार टीकी की अपभाषा बहु निराला सरल सुगोच और लोकव्यक्ति के अनुकूल थी। उन्होंने लोक कथाओं लोकोक्तिओं और मुहावरों का अपनी शिक्षाओं में प्रचुरता से प्रयोग किया। अपने विद्वानों की समझाने के लिए वे जिन उदाहरणों और उपायों का प्रयोग करते थे उनका सीधा सम्बन्ध मनुष्य के दैनिक जीवन से होता था। वे अपने उपदेशों में हास्य और व्यंग्य का भी उचित मात्रा में प्रुट किया करते थे जिससे उनमें रीतिरक्ता आ जाती थी। बुद्ध संसार के उन बीड़ ने व्यक्तियों में स वे जो गृह तत्त्वज्ञानी होने के साथ व्यावहारिक जीवन में भी निपुण थे। एक बार एक ब्राह्मण न कोष में आकर बुद्ध समक्षान् को मीकड़ी पाकियाँ सुनाई। बुद्ध चुपचाप पाकियाँ सुनते रहे। ब्राह्मण अन्त में निराश होकर चुप हो गया। अब उसका कोष खाली हो गया तो बुद्ध ने उसे अपने निकट बुलाया और कहा “ब्राह्मण तुम्हारे घर कभी कोई अतिथि आया होगा।” ब्राह्मण ने सका रात्मक उत्तर दिया। फिर बुद्ध ने पूछा कि उसने उसका उत्तर भी किया होया— इस पर उत्तर ही में ही था। फिर बुद्ध भगवान् ने पूछा कि यदि तुमने अतिथि के स्वागतार्थ जो भोजन बनाये उसको वह ग्रहण न करे तो भोजन किसका समझा जायगा। ब्राह्मण न उत्तर दिया “वह भोजन मेरा समझा जायगा और उसे मैं ग्रहण करूँगा।” बुद्ध ने कहा “यदि तुम्हारे द्वारा दी हुई पाकियाँ अस्वीकार की। अब उन्हे तुम अपने साथ वापस ले जाओ। इस पर वह ब्राह्मण बड़ा लज्जित हुआ। उसने तत्काल से क्षमा माँगी।

(७) मठों की स्थापना—महात्मा बुद्ध केवल एक महान् दार्शनिक और धर्म प्रचारक ही न थे बरन् उनमें संन्यास की भी पूर्ण क्षमता थी। उन्होंने यह भी भाँति समझ किया था कि सुव्यवस्थित संन्यास के अभाव में कोई भी धर्म अधिक दिनों तक टिक

नहीं सकता। अतएव उन्होंने अपने अनुयायियों को एक सुदृढ़ संवत्सर में वैश्व धर्म की स्थापना की। अतएव उन्होंने बौद्ध मिश्रणों के लिए संवत्सर-संरचना की।

(८) राज प्रभाव—यह पहले ही कहा जा चुका है कि बुद्ध का व्यक्तिगत बड़ा प्रभावशाली था और उनका प्रभाव सभी धर्म के लोगों पर था। उनके समकालीन गौतम उनको बड़े भाव और भक्ति की दृष्टि से देखते थे। विम्बिसार (मगध का राजा) तथा प्रसेनजित बुद्ध के अनुयायी थे। कुछ दिनों बाद उदयन भी बौद्ध-धर्म की शिक्षाओं से कुछ प्रभावित हो गया था। इसके अतिरिक्त वैशाली शाक्य मोरिय तथा बुद्ध के समय के पञ्चालों के शासकों पर भी उनका काफी प्रभाव था। अन्धकार मलानु के प्रसक्तों ने पत्नी की बाटी के एक सम्प्रदाय विनियोगों धर्म में परिवर्तन कर दिया। कनिष्क और हर्ष जैसे राजाओं का भी इस धर्म को प्रभाव प्राप्त था। सम्राट के मनो-मानी लोग भी बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षित हुए थे। उनके राज से मठों का धर्म बनता था जिसमें रहने वाले मिल उत्साह से अपने धर्म का प्रचार करते थे।

(९) प्रचारकों का उत्साह—महात्मा बुद्ध ने अपने अनुयायियों में उत्साह का संसार किया था। स्वयं उन्होंने के स्वाध्याय व्यक्तिगत से शिक्षा लेकर अनुयायी भी धर्म के प्रचारार्थ सर्व सुखों का त्याग करने को तैयार हो जाते थे। सब प्रकार की कठिनाई की अवहेलना करते हुए वे अपने गुरु और उपदेशक के विषयोपदेशों का प्रचार करने के लिए सुदूर-प्रान्तों की यात्रा करते थे और देश के बाहर भी जाते थे। बौद्ध मिश्रणों के बहस्य उत्साह के फलस्वरूप ही इसका प्रचार न केवल देश के प्रत्येक भू-भाग में ही अपितु संसार में जन्म कई देशों में भी हो गया।

बौद्ध धर्म की रीति

बौद्ध धर्म का उदय हमारी संस्कृति के लिए कई विषयों में बड़ा ही हितकर प्रभावित हुआ। भारतीय संस्कृति की ओद्योगिता में इस धर्म के कारण काफी अभिवृद्धि हुई और इस देश के लोगों को जीवन के प्रति अपने एक विशिष्ट दृष्टिकोण का विकास करने में काफी सहायता प्राप्त हुई। बौद्ध धर्म की रीतों का विवेचन हम अध्ययन की सुविधा के लिए कठिनाय सीपको के अन्तर्गत करेंगे।

(१) कला की उत्पत्ति—बौद्ध धर्म की सबसे प्रमुख रीति कला के क्षेत्र में है। यद्यपि भारतीय कला की परम्परा काफी प्राचीन है तथापि हमें हिन्दू कला की ओर कर माध्य में कला के जो नमूने प्राप्त होते हैं उनमें अधिकतर बौद्ध कला के ही नमूने हैं। मूर्ति कला और शिल्पकलाओं का जो बहस्य ही सम्भवतः बौद्ध धर्म के द्वारा हुआ। एक बात यह भी महत्वपूर्ण है कि बौद्ध कलाकारों ने बिन कलाकृतियों का निर्माण किया उनका धीन्य और सीप्य साधारण नहीं है। ईसा की छठी सताब्दी तक भारत की सबसे उत्तम कला बौद्ध कला है और अब से भीम तथा भाषान में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ तब से लेकर इस देश के किसी भी युग की सर्वश्रेष्ठ कला बौद्ध है, और लंका बर्मा तथा स्वाम की समस्त महती कला बौद्ध है। बोरबोहुर का स्तूप भी बौद्ध है और तिब्बत तथा नेपाल की धार्मिक कला भी उसी प्रकार बौद्ध कला है।

(२) साहित्य-सृजन में बौद्ध धर्म की रीति—केवल कला ही नहीं बल्कि साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण रीति है। बौद्ध मिश्रणों ने साहित्य धर्मों के प्रचरण पर भी ध्यान दिया। 'बुद्ध चरित' नामक महाकाव्य तथा 'सरिपुत्रप्रकरण' नामक नाटक बौद्धों की ही रीति है। संस्कृति के 'धर्म' भी मुख्यतः तथा 'दिग्दर्शन'

नामक ग्रन्थ जिसे भारत के प्राचीन इतिहास के विषय में काफ़ी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है बौद्ध ग्रन्थ है। यह एक उम्मेदनीय बात है कि बौद्ध साहित्यकारों ने संस्कृत भाषा में भी ग्रन्थों का प्रचलन किया वरन् उनके भाषि ग्रन्थ पामी में ही है। पामी के विस्तृत धार्मिक साहित्य का संक्षिप्त विवेचन यहाँ पर संभव नहीं। लेकिन इतना कहने में कोई हिचक नहीं कि बौद्धों के धार्मिक ग्रन्थों की उपयोगिता कदाचित् इसीलिए नहीं है कि उनके द्वारा हमें इस-धर्म के सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त होता है बल्कि उन्होंने प्राचीन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण जैसे कुछ कार्य में विद्वानों की काफ़ी सहायता की है। भारत कथाओं का महत्व इस दृष्टि से काफ़ी है। इन कथाओं का प्रभाव विद्वानों ने अरेबियन नाइट्स की कथाओं पर ज़ोरा है। 'चेरामाथा और चेरीमाथा' के नीचे बड़े धार्मिक और प्रभावोत्पादक है। 'अक्षितविस्तर और 'सङ्गमपुष्पिक' जैसे संस्कृत ग्रन्थ विस्तृत साहित्य की दृष्टि से भी काफ़ी महत्वपूर्ण हैं वरन् मुक्त उनकी रचना धार्मिक उद्देश्यों की प्रतिपादित के लिए की गई थी। 'भित्तिग्र पम्प्री' तथा 'महा वस्तु' नामक ग्रन्थों से भी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है। बौद्धों के सम्पूर्ण साहित्य को देखकर यह सरसतापूर्वक कहा जा सकता है कि यह प्रचुर और विद्याल है।

धर्म की उन्नति—बौद्ध धर्म के उदय के फलस्वरूप भारत में एक नवीन धार्मिक साहित्य का सुजन हुआ। शून्यवाद तथा माध्यमिक ब्रह्म के प्रतिपादक नागार्जुन का भारत के ही नहीं निमित्त विषय के दार्शनिकों में महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत ही अनेक दार्शनिक सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये। प्रतीयन-समुत्पाद शून्यवाद योधाचार सन्नित्तिकार सौवाणिक विज्ञानवाद और अनित्यवाद आदि कितनी ही दार्शनिक विचारवादाओं का प्रादुर्भाव हो गया। अर्धन बसुनिध और विज्ञान धर्म की प्रति आदि बौद्ध दार्शनिकों की दृष्टियों का अध्ययन बिना किसे हुए कोई भी व्यक्ति भारतीय दर्शन का आचार्य नहीं कहा जा सकता। बौद्धों के दार्शनिक विचारों का गण्य करने के लिए अग्य अनेक दार्शनिक उत्पन्न हुए जिनमें भगवान् संकराचार्य का नाम अग्रगण्य है।

(३) भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रचार—बौद्धों की भारतीय संस्कृति की यह एक बहुत बड़ी देन है कि उन्होंने भारतवासी धोमाओं के बाहर सुदूर देशों में इसको प्रसारित किया। संग्रह अछोक स समय में बौद्ध विभुओं के उत्पन्न पड़ोस के देशों में तथापि की सिंहाओं का प्रचार करन गये व। फिर उसके बाद कनिष्क के समय में महायान बौद्ध धर्म का प्रचार दक्षिणी-पूर्वी एशिया तथा सुदूर एशिया में हुआ। इन देशों में बौद्ध धर्म ने अपनी जड़ें बहुत गहरी जमा की। यहाँ के निवासियों के लिए भारत एक पवित्र देश हो गया—उन्होंने तथापि की सिंहाओं के साथ भारतीय संस्कृति के अनेक तत्वों की भी जड़ें किया। भारत का सुदूर पूर्वी एशिया के माथ पतिष्ठता का भी सम्बन्ध स्थापित हुआ बौद्ध धर्म और उसके उत्साह-सम्पन्न प्रचारकों को ही दिया जा सकता है।

(४) ब्राह्मण धर्म पर बौद्ध धर्म का प्रभाव—यह कहा जा चुका है कि बौद्ध धर्म का उदय उस धार्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप हुआ था जो वैदिक धर्म के अन्तर्गत ब्राह्मण धर्म के कर्मकाण्ड प्रधान पक्ष के विरुद्ध की गई थी। जब ब्राह्मणों ने अपने धर्म का प्रचार कम छोड़े और बौद्ध धर्म का प्रचलन छोड़े हुए देखा तो उन्होंने अपने धर्म में सुधार करने की ओर स्वाम किया। ब्राह्मण धर्म में बहिष्कार का महत्व बहुत अधिक गमना जाने लगा। यह ठीक है कि बहिष्कार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन आन्ध्र उप निगर में किया गया है तथापि उनका व्यापक प्रचार बौद्ध धर्म के द्वारा ही हुआ।

अध्याय ९

युद्धकालीन भारत

१ उत्तर भारत की राजनीतिक अवस्था

उत्तर भारत में आर्यकरण का कार्य बहुत ही तेज चल रहा था और जहाँ से सतासी ई० पू० तक आते-जाते यहाँ बनेक सन्निवासी आर्य-केन्द्र स्थापित हो चके थे वैसे कि हमने वर्म-युद्धों में या इसके भी पूर्व पाणिनी की अप्ठामापी में देखा था। उसमें २२ जनपदों का उल्लेख किया गया है जिनमें केकय, माँहार, कम्भोज, मद्र, अजन्ति, कुब, सात्व, कौसल, मारु, उत्तीगर, यौचेय, प्राग तथा मगध सम्मिलित थे। इनमें से कुछ तो प्राचीन से तथा कुछ का संकलन बाद में हुआ था। पांचाल विदेह अंय तथा वंग भी 'प्राच्य जनपद' के नाम से विख्यात थे। वर्मयुद्धों के समय में भी इस क्षेत्र में काफ़ी प्रवास हुआ था। महाकाव्यों के रचना-काल तक आते-जाते तो साम्राज्य की निर्माण की भावना इतनी प्रबल हो जाती है कि साम्राज्य के लिए ही कौरव-पाण्डवों का भीषण युद्ध होता है और उत्तर केकयी को प्रपञ्च रचना पड़ता है। पर जब तक जितनी सामग्रियाँ मिलती हैं वे उत्कालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अवस्थानों का ही मुखर रूप से परिचय कराने में सफल सिद्ध होती हैं। राजनीतिक विद्वान्तो एवं कुछ अर्थों में शासन-व्यवस्था पर भी बीछा बहुत है मने ही प्रकाश डालें पर राजनीतिक संघटनों का ठीक-ठीक उल्लेख करके उत्कालीन राजनीतिक अवस्था का बोध कराने में वे उतना सफल नहीं होतीं प्रत्युत यह कहना चाहिए कि इस दृष्टि-कोण से वे पूर्वतया असमर्थ सिद्ध होती हैं। वास्तव में प्रारम्भिक बौद्ध ग्रन्थों में ही हमें सर्वप्रथम राजनीतिक इतिहास की पृष्ठभूमि अधिक स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है। इन ग्रन्थों में 'अंगुत्तर निकाय' अधिक महत्वपूर्ण है पर 'महावस्तु' तथा 'मज्झिमेसुत्त' में भी जनपदों की शालिका बी गई है जिनमें कुछ विभिन्नता है। यहाँ हम अंगुत्तर निकाय में बी गई सूची के आधार पर १० महाजन पदों का संक्षिप्त विवरण देंगे।

महाजनपद

(१) अंय (२) मगध (३) काशी (४) कौसल (५) वज्जि (६) मल्ल (७) वेत्थि (८) वज्ज या वरुण (९) कुब (१०) पांचाल (११) मगध या मत्स्य (१२) मुर घेन (१३) अस्तक (१४) अजन्ति (१५) पाण्डार तथा (१६) कम्भोज आदि (१६) महाजनपद थे।

विद्वान्तों में उपरोक्त जनपदों की स्थिति इस प्रकार बताई है—

(१) अंय—अम्पा इस जनपद की राजधानी थी। यह मगध के अन्तर्गत आधुनिक भागलपुर के निकट था। प्रारम्भ में इस जनपद के राजाओं ने ब्रह्मराट के सम्राट से मगध के कुछ राजाओं को पराजित भी किया था किन्तु कालांतर में इनकी शक्ति शीघ्र ही गई और इन्हें मगध से पराजित होना पड़ा।

(२) मगध—आधुनिक पटना तथा गवा जिला इसमें सम्मिलित थे। इसकी

राजधानी गिरिधर थी। भगवान बुद्ध के पूर्व बृहद्रथ तथा अरास्य यहाँ के प्रतिष्ठित राजा हुए हैं।

(३) कासी—इसकी राजधानी वागपथी या बनारस थी। पार्श्वनाथ के निता अवसेन किये। समय यहाँ राज्य कर चुके थे।

(४) कोशल—आधुनिक अवध के अनेक भाग इसके अन्तर्गत थे। भावस्ती इसकी राजधानी थी। सहेत-महेत (गोंडा) में आज भी इसके मन्नाभसंघ प्राप्त होते हैं। कंस कभी यहाँ का शासक रहा जिसका संघर्ष बराबर काशी से होता रहा और अन्त में कंस ने काशी को अपने अधीन कर लिया।

(५) बज्जि—कई जातियों के संघटन स्वल्प बज्जि राज्य की उत्पत्ति हुई थी। बैसाजी इसकी राजधानी थी।

(६) मत्स्य—मत्स्यों की दो शाखाएँ थीं—एक की राजधानी कुशीनारा (देवरिया जिले में आधुनिक कसिया) तथा दूसरी की पावा (आधुनिक पड़रौना) थी।

(७) वेहि—आधुनिक बुधेश्वरगढ़ तथा उसके समीपवर्ती भूभाग इसमें सम्मिलित थे। शक्तिमती या सावित्री इसकी राजधानी थी।

(८) बंस या बत्त—अवन्ति के उत्तर-पूर्व समुद्र की तटवर्ती भूमि इसमें सम्मिलित थी। इसकी राजधानी कौशाम्बी (इलाहाबाद से १० मील दूर) थी।

(९) कुद—हिस्से की समीपवर्ती भूमि तथा मेरठ इस जनपद के अधीन था। इसकी राजधानी सम्भवतः हस्तिनापुर या इन्द्रप्रस्थ थी।

(१०) पंचाल—आधुनिक झेलमखण्ड इसके अन्तर्गत था। मत्स्यों की माँति इसकी भी थी। शाखाएँ थी पड़ोसी शाखा उत्तर पंचाल की राजधानी महिष्मथ तथा दूसरी शाखा दक्षिण पंचाल की राजधानी काम्पित्य थी।

(११) कच्छ या मत्स्य—यह जनपद आधुनिक जखपुर रियासत में स्थित था। निरट इसकी राजधानी थी।

(१२) सुरसेन—इसकी राजधानी मगध थी।

(१३) अस्सक—यह अवन्ति का एक समीपवर्ती राज्य था। प्रारम्भ में अस्सक भाषाबोली गरी के तट पर बसे हुए थे और पोटलि अथवा पीतल इनकी राजधानी थी।

(१४) अवन्ति—इसके अन्तर्गत आधुनिक माछवा था। उज्जैन इसकी राजधानी थी। ईहवों ने कभी यहाँ राज्य किया था। माहिस्मती इसकी राजधानी थी।

(१५) यम्बार—आधुनिक काश्मीर तथा लद्दाखि के प्रदेश इसके अन्तर्गत थे। लक्षिका इसकी राजधानी थी।

(१६) कम्बोज—यं याम्बारों के पड़ोसी थे। इनमें निरुद्ध सम्बन्ध भी रहा होता क्योंकि याम्बार-कम्बोज अनेक स्थलों पर साब-साथ उल्लिखित हैं। राजपुर तथा डारका इनके दो प्रमुख नगर थे।

गण राज्य

उपरोक्त १९ महाजनपदों के अतिरिक्त कुछ गण राज्यों का उल्लेख भी प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में किया गया है। ये गण-राज्य निम्नलिखित हैं —

- (१) कपिलवस्तु (कपिलवस्तु) के शासक
- (२) अस्तकप्य के कुली
- (३) केसपुत्त के कालाम
- (४) सुसमण्डिर के मम्म
- (५) रामवाम के कोलीय
- (६) पाषा के मल्ल
- (७) कुशीनारा के मल्ल
- (८) पिप्पलिवन के मोरिय
- (९) मिथिला के विरेह
- (१०) वैशाली के लिच्छवी तथा
- (११) वैशाली के नाग।

इन गण-राज्यों पर संक्षेप में नीचे प्रकाश डाला जायगा।

(१) कपिलवस्तु के शासक—महारमा पीतम बुद्ध का जन्म इसी कुल में हुआ था। यह स्वाभाविक है कि बौद्ध ग्रन्थों में इसका विस्तृत पर अतिरिक्त बयान मिले। शासक नैपाल की सीमा पर हिमालय की तराई में रहते थे। शासकों की राजधानी कपिलवस्तु थी। शासकों का गण राज्य काशी जंगल या और उन्होंने बनेक विद्यालय नगरों का निर्माण किया था। राजस डेविड के मतानुसार उक्त गण राज्य में १०० कुटुम्ब (स्वतन्त्र पाँच साज मनुष्य) थे।

शासकों का शासक-संरक्षण अत्यन्त सुन्दर था। इनकी संरक्षा-समा काशी विपद थी। इस समा द्वारा ही ग्याय तथा वसति की व्यवस्था की जाती थी। इसका प्रधान 'राजा' कहलाता था। महारमा बुद्ध के पिता बुद्धीशन भी इसके 'राजा' रह चुके थे। संभावना है ५ सदस्यों की समा होती थी। किसी विषय पर मतभेद न होने पर 'सलाहकारों' (बौटिष) द्वारा बहुमत किया जाता था जो सर्वसा मान्य था।

शासकों में विद्या एवं कला के प्रति विशेष अनुराग था। कपिलवस्तु उक्त समय शिक्षा एवं संस्कृति का केन्द्र माना जाता था। महारमा बुद्ध ने यही विभिन्न प्रकार की कलाओं का अध्ययन सफलतापूर्वक किया था जिसके फलस्वरूप ५० शासकों को प्रशिक्षित करने की पराजित करके ही वे मगधरा को ग्रहण कर पाय थे। शासकों को अपनी कला एवं संस्कृति परमार्थ का और उसे स्थापित देने तथा उसमें किसी प्रकार का सम्मिश्रण न होने देने का अभिप्राय से ही वे अपने इतर वर्गवासियों से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं स्थापित करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने कौशल नरेश प्रमेनजि के शासक कम्पा न देकर एक शानी से व्याह कर दिया।

(२) अस्तकप्य के कुली—कुली वैशालीय राज के निकट ही नहीं बसे थे। इनकी भूमि आधुनिक भागलपुर तथा मुजफ्फरनगर के बीच नहीं थी।

(३) केसपुत्त के कालाम—महारमा पीतम बुद्ध के गुरु आभारकालाम इसी कुल के थे। इनका सम्बन्ध सम्भवतः शासन में बजित पंचाल के राज्यों से है।

(४) सुसमण्डिर के मम्म—ये ऐनरेय ब्राह्मण के प्राचीन मम्म थे। इन के पी० वासुदेव के अनुसार इनकी भूमि में मिर्जापुर तथा उसका समीपवर्ती भू-भाग सम्मिलित था।

(५) रामायण के कोलीय—इनका निवास-स्थान प्रसिद्ध चाक्यों के पूर्व में था। दोनों पञ्चरात्र्यों के मध्य रोहिणी नदी थी। सिन्धु के लिए रोहिणी के जल के प्रश्न पर दोनों गण रात्र्यों में संघर्ष हो जाया करते थे। इसी पारस्परिक कलह की दान्ति के लिए ही सम्भवतः महात्मा बुद्ध के पिता शङ्कोर ने कोलियों की दो कल्याणों से व्याप्त किया था। महात्मा बुद्ध को भी इसी प्रकार के एक कलह को दान्त्य करना पड़ा था जिसका उल्लेख शासक में किया गया है।

(६) पाषा के मल्ल—ये बलिष्ठ लोग के अधिय थे। इनकी दो राज्याएँ थी। पहली राज्या पाषा के मल्ल सम्भवतः आधुनिक पड़रौना में बसे थे। मिथु का कनिष्ठम के इस मत के विरुद्ध कुछ इतिहासकार फजिलपुर को ही पाषा मानते हैं। पाषा में ही महात्मा महावीर ने पंचत्व प्राप्त किया था।

(७) कुशीनारा के मल्ल—यह मल्लों की दूसरी राज्या थी। आधुनिक कसिया ही कुशीनारा नाम से विख्यात था। यहीं महात्मा बुद्ध का परिनिर्वाण (परिनिर्वाण) हुआ था जिसका प्रमाण कसिया में प्राप्त महात्मा गौतम बुद्ध की परिनिर्वाण मुद्रा में छई हुई एक विधान मूर्ति है।

मल्लों को भी चाक्यों की भाँति भिक्षा एवं कसा से विशेष रुचि थी। सुदूर उत्तरदिशा में मल्लों के एक प्रमुख ने अपने पुत्र बन्धुल को विद्याभ्ययन के सिद्ध भेजा था। दर्शन के क्षेत्र में भी ये काफी जाये बढे थे और इनका एक नगर उर्वेत्कण्य तो दार्शनिक वाद-विवाद के लिए प्रसिद्ध था। धर्म ने प्रति भी इनकी विशेष रुचि थी। बौद्ध धर्म के उत्थान में मल्लों की प्रयत्नशीलता देन है। जनक्य आनन्द उपासि आदि के नाम एवं कार्य इन क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय हैं।

(८) पिप्पलिवन के मौरिय—महाबोध टीका से ज्ञात होता है कि मौरिय पहले राज्य के पर काकात्म्य में विद्वज्ज की भूला से ऊँचकर वे स्वानात्पत्य करके हिमात्म्य के पर्वतीय भाग में बसे जाये जहाँ उन्होंने पिप्पलिवन नगर का निर्माण किया। इन्होंने मौरिय की संज्ञा इतच्छिष्ट की गई थी कि इनकी नगरी सर्वदा मोरों के समूहों से सुंवरित रहती थी। मगध साम्राज्य का निर्माता चन्द्रगुप्त इन्होंने मौरिय (मौर्यों) का संघर्ष था।

(९) मिथिला के विरेह—मिथिला इसकी राजधानी थी। जाठक से ज्ञात होता है कि यह बहुत ही प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था और दूर-दूर के व्यापारी यहाँ व्यापार करने आते थे।

(१०) वैशाखी के लिच्छिवी—लिच्छिवी अधिय थे। इनके वैशाखी सम्भवतः के आचार पर ही हम इन्हे ज्ञानिय मानते हैं। महावीर के पिता निजार्ज ने इनको कम्बा से व्याप्त किया था। अज्ञिय होन के कारण ही महात्मा बुद्ध ने अस्माभयोप में वे अधिकारी हुए। वैशाखी इनकी राजधानी थी। महाबोध महाभग्न महापरिनिर्वाण सुप्त आदि से ज्ञात होता है कि महात्मा गौतम बुद्ध के काल में लिच्छिवियों ने आपाणीत उन्नति कर ली थी। इनके अनेक नगर-अवधिक सुनयित एवं समृद्धवाली थे। नगर में भारों ओर अनेक चैत्य विहार तथा राजप्रभास थे। राजप्रभास विभिन्न कुलीन सरदारों के थे।

लिच्छिवियों का राज्य अत्यन्त सुख्यस्थित था। मगध-राज्य में ७३०७ 'राजा अनेक उपराजा सेनापति तथा 'माण्ड्याचारिक' थे। मिथिला के विरेह, वैशाखी के लिच्छिवी तथा नाय का ही एक संघटन 'अट्टकुल' (अष्टकुल) के नाम से विख्यात था।

महापरिनिम्बान् धृत से ज्ञात होता है कि लिच्छिवियों का गण राज्य अनेक विधेयताओं से युक्त था। उनमें मर्याद सीहार्द बाबर, बड़ता बाबि की भावना बख्शी थी। इन वृत्तों के अतिरिक्त उनमें एक सर्वश्रेष्ठ गुण वा राष्ट्रीयता की प्रबल भावना। महारत्ना बुद्ध ने इनकी सहिष्णुता की काफी प्रशंसा की है। लिच्छिवियों पर बुद्ध तथा जैन के उपदेशों का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा और अनेक राजकुमारों ने भ्रातृत्व संघ में प्रसन्ननीय कार्य किये।

(११) वैजातीय के नाय—अष्टकुल का उत्प्रेषण पीछे किया गया है। इसके अन्तर्गत जाठ पण से विनमें निवेह जात्रिक लिच्छिवी तथा वज्जि सम्मिलित थे। उप मोग ऐस्माकु तथा कौरव अन्त बाग गण थे। जात्रिक कस्ब गौत के जन्म थे। धृव-वृत्ताय से ज्ञात होता है कि महावीर स्वामी का जन्म इसी कुल में हुआ था क्योंकि उक्त धम्म ने उन्हें 'सर्वोच्च विन' जात्रिपुत्र महावीर' कहा है। जात्रिकों का अपना पञ्च-राज्य वैजातीय कुलधम्म तथा वज्जि गाम से युक्त था और इसका केन्द्र कोस्सम् नामक स्थान में था।

संघ की बैठक—'संघाचार' या 'भारतम' में 'आसन्नपत्रापक' नामक अधिकारी 'अवसक निधीनम्' (चर्चा या कम्बल) पर लोबी के बैठने का प्रबन्ध करता था। संघों में एक निश्चित सदस्यों की उपस्थिति सामान्य थी। यह संख्या ५, १ २० वा इसमें भी अधिक थी। निश्चित संख्या से कम उपस्थिति होने पर (कोरम पूरा न होने पर) समा स्थगित करनी पड़ती थी अन्यथा उसकी कार्यवाही मान्य नहीं समझी जाती थी। कभी-कभी कोरम की पूर्ति स्थानापन्न व्यक्ति द्वारा कर ली जाती थी। जिसे 'पञ्च पुरक' कहते थे। संघ के प्रधान 'विनयचार' को कोरम के इतर समझा जाता था। इन कोरम में 'मिक्षुधियों' आजातीय व्यक्तियों तथा उस व्यक्ति को भी सम्मिलित किया जाता था जिसके विरुद्ध संघ की कार्यवाही होने को पड़ती थी। बुद्धकाल में संघ की कार्यवाही को मान्यता देने के लिए आवश्यक तर्कों का निरूपण किया गया है जिसके अनुसार कोई भी बैठक तब तक जायज नहीं मानी जाती थी जब तक (१) उसका कोरम पूर्ण न हो (२) केवल भोग्य व्यक्तियों से युक्त न हो (३) उसमें मत न माँगा जाय (४) विचाराधीन विषय पर संघ की अनुमति न ले ली जाय तथा (५) प्रस्ताव का पाठ तीन बार न किया जाय।

'जाप्ति' की 'स्वापना' में कार्यवाही आरम्भ होती थी और उत्पन्नात् इसकी बोधना (अनुस्मरणम्) की जाती थी। 'अनघ' (विपरीत वादी) निषेध थी। 'जाप्ति द्वितीय' या 'जाप्ति अनुर्बकम्' से ज्ञात होता है कि कभी-कभी दो बार और कभी बार-बार बार तक प्रस्ताव-पाठ होता था। महाबन्ध से यह पता चलता है कि जो प्रस्ताव के समर्थक थे उन्हें मीन रखने को कहा जाता था और जो इसके विरोधी थे वे बीकने थे। कभी-कभी बाध-विबाध इतना अधिक बढ़ जाता था कि 'कुरु' उत्पन्न होती थी। जब किसी प्रश्न पर किसी स्थान (आश्रम) का संघ मर्याद नहीं हो पाता था तो उसके समस्त सदस्य अपने निकटवर्ती किसी बड़े संघ में जाते थे और यहाँ भी मान्य निर्णय न होने पर समस्त ही प्रकार से कुछक एवं योग्य व्यक्तियों (सहस्रों) की चुनी हुई तथा (उदाहरण तथा) के सम्मुख रखी जाती थी। यदि उक्त संघ भी नम्रता नहीं करता पाती थी तो मामला सम्पूर्ण संघ के सम्मुख रख दिया जाता था जिनमें 'बोटि' द्वारा निर्णय लिया जाता था जिसे 'पञ्चभ्याधिकेन' कहते थे। पोलिग जाकिमर 'उन्ध' ('पलपाठ) बोध मोह, नव जात्रि से रहित होता था। 'सत्ताका' द्वारा जोर दिया जाता था 'सत्ताकापाहापक' ('पोलिग-जाकिमर') इन सत्ताकाओं को एकत्रित

कर लेता था। संघ की जो बैठकें होती थीं उनका केसा रखने लिए विधिपट होते थे। बार-बार ऐसे कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे।

गणतन्त्रों की विधान-निर्माणी समा का हमें कुछ स्पष्ट लाभ नहीं प्राप्त है। सम्भव केन्द्रीय समिति पर ही इसका उत्तरदायित्व था।

उपरोक्त विवरण से यह परिलक्षित होता है कि तत्कालीन भारत में संघ का महत्व बहुत अधिक था। इनकी बैठकों के इस विराट विवरण से हमें जनता की राज नीतिक जागरूकता का भी बोध होता है। आधुनिक युग में संघ-सरकार की समारोहों में जिन पद्धतियों का प्रचलन है उनमें लगभग सारी प्राचीन काल में प्रचलित थी। स्वयं महारामा बुद्ध भी यन्-राज्यों की इस व्यवस्था से काफी प्रभावित हुए थे और इन्हीं संघों के आधार पर पश्चात् कालीन बौद्ध संघों का संगठन हुआ था।

राजतन्त्रीय राज्य

१६ महाजनपदों तथा ११ यन्-राज्यों के अतिरिक्त चार विद्यालय राजतन्त्रीय राज्यों का भी बोध हमें बौद्ध ग्रन्थों से होता है। यहाँ हम उन चार प्रमुख राज्यों का वर्णन करने को उस समय समस्त उत्तरी भारत में प्रसिद्ध थे जिनकी शक्ति अपरिमित थी और जो साम्राज्यवाद की बलवती भावना से भौत-भौत थे। ये राज्य (१) वत्स (२) अवन्ति (३) मगध और (४) कोसल हैं।

वत्स—वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी जो इकाहाबाद से १८ मील दूर कोसम रोड की निकटवर्ती भूमि के पास या सम्भवतः उसी प्राय में थी। महारामा नीतम बुद्ध के काल में व्यापार में इसने आसानीय उद्यति कर ली थी। इसका व्यापारिक महत्त्व रखने का प्रमुख कारण यह था कि यह बिहिसा होते हुये उम्मीन जाने के व्यापारिक मार्ग में पड़ता था। बङ्ग-काल में उद्यमन यहाँ का शासक था। पर ये इतिहास के किन्तु निकट है यह नहीं कहा जा सकता। उद्यमन के सम्बन्ध में कबासरिस्तावर में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है पर वैसे कि श्री० नार० भण्डारकर का मत है इसका अधिकार्य अविश्वसनीय है।

उद्यमन की शक्ति के सम्बन्ध में बौद्ध ग्रन्थ बहुत उबार वृत्ति रखते हुए बताते हैं कि वह अरबन्त शक्तिशाली था और उसकी सेना सर्वथा सशस्त्र भीमाओं पर सवार रहती थी। कबासरिस्तावर तथा विवर्धिका से उद्यमन की विभिन्नियों का बोध होता है। इनके अनुसार उद्यमन ने कलिंग को हराया था। कोसल से भी उसकी घुमृता थी। उद्यमन के पुत्र का नाम बोधि था जो सुमुसारपिरि के मध्य नगर पर मुबराज के रूप में शासन करता था। पर इसके जाने यह नहीं आता होता कि उद्यमन के पश्चात् उसके पुत्र ने वत्स पर राज्य किया अथवा नहीं।

उद्यमन बौद्ध भिक्षु विग्गोळ बरहान द्वारा बौद्ध धर्म का समर्पक एवं उत्साह रखक बनाया गया था।

अवन्ति—अवन्ति राज्य के अन्तर्गत आधुनिक मध्य मालवा दिवार, मध्य प्रदेश तथा बरार के पड़ोसी देश सम्मिलित थे। बङ्ग काल में यहाँ का शासक प्रम्योत या प्रद्योत था। प्रद्योत की बौद्ध ग्रन्थों में कूर महत्वाकांक्षी एवं युद्धप्रिय के रूप में चित्रित किया गया है। उद्यमन को किसी प्रकार पराजित करके उसके राज्य की अल्पताय करने की ही कामना निरन्तर प्रद्योत के हृदय में जोर भावनी रही। प्रद्योत अपनी राजधानी उम्मीन से निरन्तर इस प्रकार का प्रयास करता रहा। वास्तव्यता

ब्रिसका हस्त उद्यमन ने कर लिया था इसकी रानी अंगारबती से उत्पन्न हुई थी। प्रद्योत न बोले से उद्यमन को बन्दी बना लिया था। उद्यमन ने भी इस छल का प्रत्युत्तर मनी मति दिया और उसकी पुत्री वासवदत्ता को ही राज्य मङ्गल से चुपके से निकाल ले गया।

प्रद्योत के दो पुत्र गोपाल तथा पालक थे। गोपाल ने अपने छोटे भाई पालक के लिए बड़ी छोड़ दी थी। सम्भवतः काकान्तर में प्रद्योत महाकाष्म्यामन के प्रभाव में बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। उत्तरचातु अवन्ति बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण केन्द्र हो गया।

मगध—इन चार प्राचीन नृपत्यों (वत्स अवन्ति मगध तथा कोसल) में मगध ही अत्यधिक सक्तिशाली प्रतीत होता है। मगध के दो प्रसिद्ध राजाओं—बिम्बिसार तथा अजातशत्रु का इतिहास ही प्राचीन मगध का इतिहास है। अतः हम इन पर कुछ प्रकाश डालेंगे। पुराणों के अनुसार मगध का सर्वप्रथम शाहूदय वंश का शासन रहा। उत्तरचातु ब्रम्हिलक ब्राह्मणों ने इसे वल्लभपूर्वक अपने अधीन कर लिया और बिम्बिसार ने इन्द्र गंगा नदी की ओर अया कर मगध पर अपना अधिकार स्थापित करके राज गृह को अपनी राजधानी बना लिया।

बिम्बिसार का शासन तथा उनकी विजयें—बिम्बिसार की राजधानी मिरिञ्च वी पर बाद में उसने इसे बदल दिया और राजगृह में नवीन राजधानी की स्थापना की। महामाण्ड के अनुसार विरिञ्च जरासन्ध की राजधानी थी। ब्रह्मोप ने राजगृह को 'बिम्बिसारपुरी' बताया है।

बिम्बिसार ने कौशाम्बी का राज्य स्थानीक द्वारा विजित अंग राज्य को अपने अधीन बनाकर अपने राज्य की सीमा काफी विस्तृत कर दी थी। उसने अंग की एक पुत्र प्राप्त बनाकर कुबिक को उसका पालन करना दिया। कुबिक बच्चा में चूकर अंग का शासन-कार समझा था। अंग के अस्तित्वजनेक बड़े-बड़े नगर थे जिनमें से अंग ब्रह्म व मनी बिम्बिसार की राज्य-सीमा के अन्तर्गत हो गये। इसके राज्य में ८०० मील सम्मिश्रित थे। इसका क्षेत्रफल लगभग ९० मील से भी अधिक था और जिस अजातशत्रु ने अपनी अंग विजयों द्वारा १५०० मील कर दिया। बिम्बिसार के राज्य में कुछ गण राज्य भी थे जिनके शासन 'राजकुमारों' ने हाथ में थे।

बिम्बिसार का सामन्तबहुत ही बढा था। वन-विज्ञान में किसी प्रकार की दया का स्थान न था। महामाण्ड 'सम्भाषण' 'बौद्धिक' 'सिनापति' आदि राज कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है।

बिम्बिसार का धर्म—जैन महात्म्यम्हियों का यह कहना है कि वह जैन था और महावीर स्वामी का अनुयायी था। बिम्बिसार बहुत ही बड़ों एवं आर्य के साथ महावीर स्वामी के पास गया था और पत्नियाँ भीतर तथा सम्बन्धियों के साथ जैन महात्म्यम्हियों हो गया। उसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थों में यह बात होता है कि बिम्बिसार पीछे से विरिञ्च में मिल चुका था और यद्यपि वे अभी बड़े नहीं हो पाये थे तथापि वह उनके बहुत प्रभावित हुआ। महामाण्ड कुछ से भी वह अपनी नई राजधानी राज गृह में मिल चुका था और उसने कुछ धर्म स्वीकार कर लिया।

मृत्यु—अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार का अन्त कुछ समयान्तर के निर्वाण के बाद वर्ष पूर्व अर्थात् ५५१ ई० पू० में कर दिया। सम्भवतः इसके पूर्व ही बिम्बिसार ने हस्ता पर मुक्त अजातशत्रु को तिहासन दे दिया था।

अजातशत्रु—बौद्ध ग्रन्थ विनय में हमें अजातशत्रु के बारे में काराम का बोध होता है। उन ग्रन्थ में यह बताया गया है कि महामाण्ड के विरोधी वेचन ने अजात-

सुत्र को मङ्गला कर बिम्बिसार के बिठठ कर दिया और उसने इस राजकुमार को इतना बरससाया की एक दिन बहु कुरा सेकर पिता की हत्या के लिए उसके अन्तपुर में पहुँच गया पर प्रहरीयो ने उसे पकड़ लिया। जब बिम्बिसार को पुत्र का यह कुकृत्य तथा उसका अन्तव्य ज्ञात हुआ तो उसने उसे न केवल क्षमा कर दिया वरन् अपना राज्य भी उसे दे दिया। पर अजातशत्रु को इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ और उसने पिता का वध अपने हाथों ही कर दिया। वेचवत्स ने उससे कहा था कि जीवन छोड़ दिनों का होता है और आसन-सूत्र उधक हाथों में काफी दिनों में आ सकता है। अतः राजकुमार! अपना पिता का वध करो और राजा बनो। अजातशत्रु ने स्वयं ही महात्मा पीठम बुद्ध के सम्मुख यह स्वीकार किया कि उसने अपने पिता का वध राज्य के लिए किया था।

अजातशत्रु की विजय—लगभग ५५१ ई० पू० में अजातशत्रु सिंहासनावृद्ध हुआ। उपर पति की अकस्मात् मृत्यु से प्रपीड़ित कोषक बेबी भी अधिक दिन तक वैश्य न स्वीकार कर सकी और उसका भी बेहाबसान हो गया। प्रसेनजित के पिता महाकोषक ने अपनी पुत्री कोषका बेबी का ब्याह अजातशत्रु के पिता बिम्बिसार से करन के पश्चात् ही काशी नगरी को रहेज रूप में दे दिया था। अब जो विष्णु परिस्थिति अजातशत्रु के सम्मुख उपस्थित होती है उसके मूल में यही रहेज में प्राप्त काशी नगरी है। अजातशत्रु पिता के राज्याधीन अन्य नगरो की भेष्टि काशी को भी अपने अधीन समझता था और इस प्रकार बहुत दिनों तक काशी नगरी से कर वसूल करता रहा। पर कोषक बेबी की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई प्रसेनजित यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता था कि पितृ-हन्ता अजातशत्रु का अधिकार काशी पर अब भी पूर्ववत् बना रहा। अतः उसने इसका विरोध किया और फलस्वरूप कोषक-मगध में संघर्ष छिड़ गया। प्रारम्भ में प्रसेनजित का पराजित हुकर आबस्ती मान जामा पड़ा पर बाद में यह अजातशत्रु की सम्पूर्ण सेना को उनके साथ बन्दी बनाने में सफल हो सका।

अन्त में दोनों में सन्धि हुई। यह है और प्रसेनजित ने अजातशत्रु को सना उसका राज्य भागि लौटा दिया। साथ ही अपनी पुत्री बाबिरा का ब्याह भी उससे कर दिया।

अजातशत्रु का दूसरा संघर्ष बैदाली के क्षिण्डियों से हुआ। हमें ज्ञात है कि अजातशत्रु वैदेही पुत्र था। अर्थात् उसकी माता वैदेही अर्थात् क्षिण्डि राजकुमारी थी। अब इन्हीं क्षिण्डियों (कश्मिरियों) से अजातशत्रु ने संघर्ष छेड़ दिया।

अजातशत्रु को इस द्वितीय संघाम में बहुत बड़ी शक्ति का सामना करना पड़ा था जिसमें अनक सम्मिश्रित शक्तियाँ थीं। केवल क्षिण्डि ही काफ़ी शक्तिशाली हो चुके थे। उनकी सामरिक शक्ति, सञ्चरितता नियमितता तथा कष्ट-सहिष्णुता की चर्चा स्वयं मनवान् बुद्ध ने की है और कहा है कि वे अजब और अचम है क्योंकि वे पण राज्य को सन्धिशाली बनाने के लिए सभी आवश्यक तत्वों का आश्रय करते हैं स्वतंत्र एवं परिपूर्ण समर्थ करते हैं मत् एवं नाति में एकता रखते हैं प्राचीन प्रथाओं रीति-रिवाजों एवं विषयों का आश्रय करते हैं बहो का आदर करते हैं नारियों तथा मायायियों का सम्मान करते हैं, आदि-आदि। निरर्थक हैं। अजातशत्रु क्षिण्डिविधों को पराजित करने में काफ़ी परेशान हो जाता और सम्भवतः अन्त में भी उसे विजय न मिलनी पर उस यह मूलमंत्र ज्ञात हुआ कि क्षिण्डिविधों के संघ में फूट उत्पन्न करके उनका नाश किया जा सकता है और अन्त में उनसे किया भी गया। उसने अपने राज्य की सीमा पर स्थित पाटलिपुत्र को जो बाध नककर पाटलिपुत्र हुआ बुद्ध का बनाम का निश्चय किया और यहाँ पर अत्यन्त शत्रुदुर्ग का निर्माण तेजी से किया गान

बनाने में योग दिया। किन्तु अपने अपमान का प्रतिकार केवल पिता से लेकर ही वह मीन रहने वाला न था। इस अपमान के मूस कारण शास्त्रों को भी वह मली-माँति ध्वासित कर देना चाहता था। अतः उसने इन पर आक्रमण कर दिया। अभिरवणी नदी पर विदुडन तथा शास्त्रों की मुठभेड़ हुई। कहा जाता है कि उसने शास्त्रों को पूर्वतया ध्वासित कर दिया पर अभिरवणी नदी में ऐसी बाढ़ आ गई कि उसमें विदुडन समस्त मेवा सहित बह गया।

अतः में मगध कोसल की बड़जी हुई ताकत में बिलीन होकर उसका एक विजित प्रदेश हो गया।

बुद्धकालीन भारत की इस राजनीतिक अवस्था के अवलोकन के पश्चात् यह बात होता है कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत में अनेक छोटे-छोटे पंचराज्य विद्यमान थे जिनमें आधुनिक प्रजातंत्र के अधिकांश तत्व विद्यमान थे। यद्यपि उन पंच-राज्यों में कुछ बुने हुए व्यक्तियों द्वारा ही शासन होता था तथापि बहुमत मान्य था। गण-राज्यों के शासक-शासक स्वतन्त्र राज्य भी उत्पन्न अवस्था में थे। मगध राज्य उत्तान के प्रथम खोपान पर पदार्पण कर रहा था। पंच-राज्यों को अपने में बिलीन करके तथा कुछ गुपतन राज्यों को भी पराजित करके वह धर्मिष्ठाली राज्य बनता था रहा था।

भाग २—बुद्धकालीन सम्प्रदाय एवं संस्कृति

सामाजिक अवस्था

पिछले परिच्छेद में हमने बुद्धकालीन भारत की राजनीतिक अवस्था का अन्वय मन किया था वहाँ हम तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का विवेचन करेंगे। पहले सामाजिक अवस्था पर ही विचार किया जायगा।

सामाजिक वर्गीकरण—कड़िवादी काठि-व्यवस्था के समर्थक एवं निर्माता ब्राह्मणों को बुनीटी बैठे हुए महारथा पीठम बुद्ध ने काठि-भेद एवं वर्ग-भेद का समुत्थान करने के लिए उत्तम प्रयास किया था जिसके प्रभाव में उनके अमर उपरैय मान भी विद्यमान हैं। किन्तु बड़ता के आगे बेतनता की यह विमपाटी उठनी प्रकाश युक्त एवं प्रभावोदाक नहीं सिद्ध हो सकी जिसकी जीवन के अन्त्य क्षेत्रों में इसमें अपना बाह्य विद्यमाना। समाज में असुखता का रोग पूर्ववत् बना रहा जिसका उदाहरण देवत केमू जातक में प्राप्त होता है। उक्त धर्म में यह शिक्षाया गया है कि एक ब्राह्मण किसी जातक के पास स्पर्श-मग से अभिभूत होकर भाग रहा है। इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण मार्तन जातक में प्राप्त होता है जिसमें यह शिक्षाया गया है कि किसी ब्राह्मण का घर नदी के बहाव की ओर (नीचे की ओर) केवल इसलिए करा दिया गया कि उसकी धातुन स्नान करते समय किसी ब्राह्मण की शिक्षा में उत्तम नहीं हो।

महारथा पीठम बुद्ध के पूर्व लगभग सम्पूर्ण भारत में ब्राह्मणों का प्रभुत्व स्थापित था। उनके वर्गीकरण समस्त देश में मान्य था किन्तु बौद्ध धर्म के उत्थान के पश्चात् सामाजिक परिस्थिति में परिवर्तन आ गया। उसी काल में राजनीतिक सत्ताधीनता में भी परिवर्तन आया जिसकी भारत में तो अब भी ब्राह्मणों का बड़ी दबदबा था और सम्पूर्ण जनता ब्राह्मणों के अधिकांश एवं ब्राह्मण-व्यवस्था को मानती थी। ब्राह्मणों के विरुद्ध बड़ने का साहस उनमें न था। इस प्रकार समाज में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था। उनके नीचे सनिय तथा अन्य लोग थे। किन्तु पूर्वी भारत में अवस्था कुछ भिन्न थी। यहाँ

धर्मियों का प्राधान्य था। व अपन को बाह्यजनों से किसी प्रकार भीचा समझने को प्रस्तुत न था। व स्वयं को बाह्यजनों के समकक्ष मानते थे और बाह्यजनों के समान ही वर्गीकृत होता तथा धर्म रखक समझते थे। यह बाह्यज-अभियंत्रण भी समाज की जाति-धर्म सम्बन्धी कुरूपता का अन्त नहीं कर सका और न ही इन दोनों की मता का ही समूह साथ हो सका कि समाज में जाति-धर्म का प्रभु ही समाप्त हो जाता।

नगर का स्थान—भारतियों को साधारणतया नगर की बहारी-बाड़ी में रहना पड़ता था। यह चातुर्य तथा संकीर्ण उनके मुख्य गुण माने जाते थे। लड़कियां का विवाह बहुधा माता पिता या अग्रिमार्गक ही निश्चित करते थे किन्तु किसी विशेष अवस्था में उन्हें अपना नर स्वयं चुनने का अधिकार था।

ग्राम तथा नगर संरक्षण

ग्राम संरक्षण—इन ग्रामों की आर्थिक व्यवस्था सरल थी। कोई भी व आधुनिक धर्मों में धनी नहीं बन सकता था पर साध ही यहाँ साधारण आवश्यकता की पूर्ति के साधन थे मुरली और स्वतंत्रता थी। न तो यहाँ वर्गीभार व भी निष्ठा थी।

ग्राम में अपराध बहुत कम होते थे। बहुत सरकार इन पर पूरा नियंत्रण रख थी। बकौती जैसे बड़े-बड़े अपराधों को रोकने के लिए सरकार सदैव तत्पर रहती जिससे शमीनों का जीवन शांतिमय था।

नगर—श्रीय प्रज्यों में बहुत कम नगरो (नियमों) का उत्प्रेष मिलता है। शीर्ष प्रज्यों में उत्प्रेषित कुछ प्रमुख नगर ये हैं—

मगध की राजधानी राजगृह (राजगृह) वस्त की कौशाम्बी कोसल की राजधानी सावली (आवस्ती) वज्जियों की वैशाली (वैशाली) मग की चम्पा सावली। कपिलवस्तु अवध की छेत्री (उज्जयिनी) वाराणसी अजोध्या (अजोध्या) मगध पौरव राजगिरा आदि। मगध की दूसरी राजधानी पाटलिपुत्र अभी केवल एक ग्राम पाटलिप्राय के नाम से विख्यात थी। उपरोक्त नगर भारी-भारी नदियों के तटी पर ही बन थे जहाँ से अन्तर्वर्तीय व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। शीघ्रनिकाम के अनुसार उस काल के छ प्रमुख नगर ये थे—

(१) चम्पा (२) राजगृह (३) सावली (४) साकेत (५) कौशाम्बी तथा (६) वाराणसी।

इन नगरों के दक्षिणतः जातकों में कुछ अन्य नगरों का भी उत्प्रेष किया गया है जिनमें लक्ष्मिना प्रमुख है। लक्ष्मिना प्राचीन भारत का सर्वप्रथम नगर था। इनका महत्त्व पिता की वृष्टि में ही बहुत बढ़ा था। लक्ष्मिना विश्वविद्यालय व ही पाणिनि बौद्ध कीदृश्य जैसे विद्वान् स्वातन्त्र्य निकले थे जिन्होंने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अभिवृद्धि में अक्षितीय योग दिया।

नगरों में बाजारों की पंचितया भी यहाँ बृहत्तम साधारण रूप में समी रहनी थी। बाजारों का पृथक्-पृथक् क्षेत्र रहा होगा यह भी सम्भव है।

नगरों में बरगादी पानी निकालन के लिए छानि-छाटी नालियाँ भी और बड़े-बड़े कुवों में बड़ी प्रणालिकाएँ यहाँ जिनसे पानी बाहर जाता था। नगर में नगरों अपने के लिए साधारण व्यवस्था थी।

भारिक अवस्था

इति-सम्बन्धो उद्योग-वन्धे तथा अन्य सहायक उद्योग-वन्धे—कुस जनवस्था का अधिकार भाग धर्मों में बसता था जिसका प्रमुख वेद्य इति वा किमु इति क मतिरिक्त मोक्ष तत्सम्बन्धी-उद्योग तथा सहायक उद्योग-वन्धे भी किया करते थे। आठक में कुस १८ प्रकार के उद्योग-वन्धो का उल्लेख किया गया है पर दुर्भाग्य से उनकी सूची प्राप्त नहीं है केवल चार प्रकार के उद्योगों का ही नामांकन किया गया है—जैसे बड़की लोहकार, नमकार तथा चित्रकार। डेविडस महोदय ने इन अठारह प्रकार के उद्योग-वन्धो की सूची (अनुमान से) इस प्रकार दी है—

- (१) बड़की, (२) लोहकार, (३) प्रस्तरकार, (४) कुसक (५) नमकार, (६) कुसकार (७) हाथी दाँत के कारीगर (८) रपरेज (९) बाँहरी (१०) मछुये (११) कमाई (१२) बहेलिया (१३) बागची (१४) माई (१५) यात्री (१६) नाविक (१७) टोकरो बनाना बाछ आनुमिक 'वरिकार' भी प्राचीन कर्मों में आब भी टोकरो बनाना का काम करते हैं तथा (१८) चित्रकार।

उपरोक्त चित्स्वियों में से कुछ ने अपनी योगियाँ स्थापित कर ली थी और कुछ अमण्डित रूप में ही काम करते थे। इनमें अधिकार प्राचीन कर्मों में निवास करते थे और इनक उनकी आय के प्रमुख साधन थे। उष्णछोटि के कृषाकार नगरो में रहते थे।

निवास या धर्म—चित्स्वियों के संघटन का निर्धारण ऊपर किया गया है। इन संघटनों की नियम अवस्था योषी कहा जाता था। समय-समय प्रमुख उद्योगों के कारीगरों ने अपनी धनियाँ बना ली थी। इन धंधियों में प्रशिक्षा प्राप्त करने वालों को 'अन्नेवासिक' कहते थे। अन्नेवासिक का धार्मिक अर्थ वहाँ के रहने वाले है। निवास का प्रमाण 'वेदिक' (वेदिक) कहा जाता था।

सेटिठ—कुस धर्मों में सेटिठ धर्म प्रमुख हुआ है जो संभवतः प्रमुख अवस्था प्रदान व्यापारी थे। यष्ट के अर्थ में ही सेटिठ का प्रयोग होता रहा होगा। आठको में महामण्डित तथा अनवेदित धर्म आये हैं जिनसे यह स्पष्ट निकलती है कि सेटिठ्यों में भी उनकी स्थिति के अनुसार छोटे-बड़े पद थे।

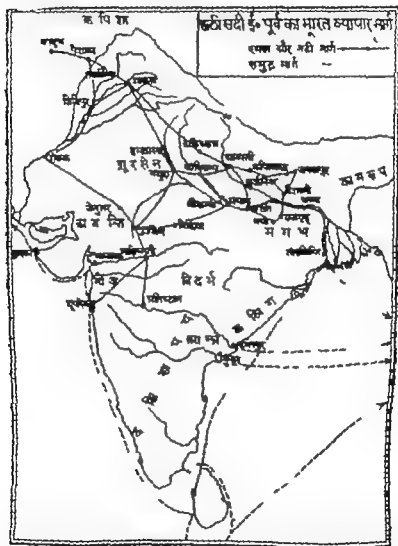
वाणिज्य और व्यापार—अन्नेवासीय तथा विदेशी दोनों व्यापार उद्योग अवस्था में थे। रैसम मकमल मूल्यवान वस्तु, अस्त्र शस्त्र पिन जरी के काम या नकदाशी कालीन औषधि हाथी-दाँत की वस्तुएँ, आभूषण आदि निर्यात की प्रमुख वस्तुएँ थीं। व्यापार के सम्बन्ध में डेविडस महोदय ने विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है जिससे ज्ञान होता है कि कारिका नमकर अवस्था नाम द्वारा व्यापारी दूर-दूर तक यात्रा करने में और हर देश में प्रवेश करते समय उन्हें लुभी देनी पड़ती थी।

—को, 'सुवर्णमुनि' की यात्रा को विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं से भरा। इन विवरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि अन्नेवासीय व्यापार के लिए यात्रायात्र की पूर्ण सुविधा न थी कारिकों द्वारा हीन बाते व्यापार को बाधुओं से छवि पहुँचाने की आसका बनी रहती थी तथापि ये दोनों व्यापार हुआ करते थे। माय की प्रवण धारिण का हो इनमें प्रमुख हाथ रहा होगा।

माया और साहित्य

बुद्धकालीन भारत की सामाजिक एवं धार्मिक अवस्थाओं पर विचार कर लेने के पश्चात् हम तत्कालीन भाषा और साहित्य की यथिविविधों पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे।

सैलान-कका का उदय और विकास—यहाँ हम भारत के उस इतिहास पर विचार कर रहे हैं। जो लगभग एक हजार साल से पूर्व से सम्प्रदा के क्षेत्र में जिस में अपना प्रमुख स्थान रखता था का वा रहा था जिसके प्रमुख सामिक प्रणों का निर्माण



चित्र ५

हो चुका था और उसकी शक्ति अनेक सामिक प्रणों पर धन बूझी थी। यह वह काल है जहाँ एक पक्ष पर भारत ने अनेक वीरिय विकास के अनेक महतीय उदाहरण

प्रस्तुत चित्रों से। पिछले परिच्छेदों में हमने ब्राह्मण ग्रन्थों के सम्बन्ध में पढ़ा था वे सारे ग्रन्थ अपनी विद्यारूपा तथा साहित्यिकता के लिए आज भी विख्यात हैं। किन्तु आश्चर्य यह है कि भारतीयों ने अब तक लिखना-पढ़ना नहीं सीखा था। वे सारे ग्रन्थ बिना लिखे-पढ़े ही रचे गये थे। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य प्रारम्भ में ऐसी ही से सजुते रहे और वे केवल ब्राह्मणों के मस्तिष्क पर उनकी जिज्ञा के बार-बार पिछोपण से लिखे गये थे। अनुमानतः साठवीं-आठवीं शताब्दी ई. पू. से पहले भारत में लेखन-कला का विकास नहीं हो सका था।

भाषा—संस्कृत भाषा के नाटकों के अध्ययन से हम इस सम्बन्ध में यह अनुमान लगा सकते हैं कि संस्कृत तो किसी प्रकार भी जनभाषा नहीं थी। संस्कृत नाटकों के उच्च कुलीन पात्र तो सदा संस्कृत में संभाषण करते हैं किन्तु साधारण पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि प्राकृत ही जनसाधारण की भाषा थी। वास्तव में साहित्यकारों की 'जनभाषा' में भी बनावट, कलात्मक और साहित्यिकता का पुट होता है। संस्कृत भाषा उच्चकुलीन ब्राह्मणों तथा विद्वानमंडली में प्राकृत साहित्यकारों की रचनाओं में तथा उसका विकृत रूप कुछ क्षेत्र के लोगों में और पाकी उत्तर प्रदेश के अधिकांश भाग में प्रचलित रही होगी।

साहित्य—पाकी ग्रन्थ—हिन्दू ग्रन्थों के सम्बन्ध में पहले ही विचार किया जा चुका है। जैन ग्रन्थों की रचना सम्भवतः इस काल में नहीं हो सकी थी यद्यपि जैनों अपने धार्मिक ग्रन्थों की प्राचीनता जोषित करते हैं। प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थ पाकी में हैं और उनकी रचना-स्थिति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। अनुमानतः इनकी रचना पाँचवीं शताब्दी ई. पू. से लेकर प्रथम शताब्दी ई. पू. के अंतिम चरण के बीच में हुई। कुछ पुरातात्विक प्रमाणों (मज्झिम-संघी आदि के अभिलेख) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यीमें तथा सगरमंथ के उत्थान के पूर्व धर्म और विनय की रचना हो रही थी। साहित्यिक साक्ष्य विभिन्नपक्षों से भी यह बात होता है कि तीनों पिटक तथा पाँचों निकाय उसके पूर्व विद्यमान थे। महावज्र तथा बुद्ध-वज्र की रचना अशोक के पूर्व हो चुकी होगी क्योंकि तृतीय बौद्ध संगीति के सम्बन्ध में ये मौन हैं। बस्सवज्ज में सुत्तविनय तथा पाँचों निकाय का उल्लेख किया गया है। बात ये ग्रन्थ और भी प्राचीन सिद्ध होते हैं। त्रिपिटक में से अन्तिम अविषम्मपिटक का उल्लेख नहीं है। अतः छठी शताब्दी ई. पू. के शीघ्र पश्चात् से लेकर १५० ई. पू. के बीच में विनयपिटक के पश्चात्त ताम तथा सुत्तपिटक के प्रथम चार निकायों की रचना हो चुकी थी।

छठी शताब्दी ई. पू. के कुछ प्रमुख धार्मिक सम्प्रदाय

पिछले पृष्ठों में हमने महावीर तथा बीतम बुद्ध के किय में प्रकाश डाला है। वास्तव में बौद्धिक कल्पित का इतिहास न तो उक्त दो धार्मिक नेताओं तक ही सीमित है और न इनसे ही इसकी इतिमी होती है। महावीर तथा गौतम के पूर्व तथा उनके समय में भी भारत में अनेक विचारकों के सम्प्रदाय विद्यमान थे। इन सम्प्रदायों की संख्या अतिरिचित रूप में बताई जाती है। पाकी ग्रन्थ 'जुलानस' में बताया गया है कि जिन समय जगबान् बुद्ध ने अपने मत का प्रचार प्रारम्भ किया उस समय देश में १२ विभिन्न सम्प्रदाय थे। जैन-ग्रन्थ 'सूत्रदर्शन' में तो यह संख्या १६१ बताई गई है। 'अनुत्तर

निकाय की शक्तिका जिसमें बस सम्प्रदायों का उत्कीर्ण किया गया है काशी प्रभावित है। शक्तिका इस प्रकार है—

(१) आजीविक (२) निगम (निर्गम) (३) मुण्डसावन (४) अटिस्क
(५) परिव्राजक (६) मागमिक (७) देवाधिक (८) अविच्छेदक (९) योतमक
तथा (१०) वैश्वामिक।

बौद्ध ग्रन्थों में अर्बुद सम्प्रदाय के प्रसिद्ध दत्ताओं के नाम दिये गये हैं और वे सिद्धकर (सम्प्रदायों के जन्मदाता) कहे गये हैं। बौद्ध-ग्रन्थों में इन धार्मिक नेताओं का विवरण प्रभावशालक रूप में दिया गया है।

य नेता संयोजन बद्ध के पहले थे क्योंकि स्वयं बौद्ध ग्रन्थों ने यह स्वीकार किया है कि उनकी तुलना में कुछ कम आयु के थे और धार्मिक जीवन में बड़ी बिकटता भरी थी। नौ बौद्ध धार्मिक नेताओं पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा।

(१) पुराण-कस्त्य—पुराण-कस्त्य किसी प्रकार के धूम-जलम कार्य की आवश्यकता में विश्वास नहीं करते थे। वे ब्रह्मण व और कहा जाता है कि अपने उनके लिए कोई महत्व नहीं रखती थी। वे ब्राह्मण व और कहा जाता है कि अपने ज्ञान की पूर्णता के कारण ही इनका 'पुराण' नाम पड़ा था।

(२) जन्मक शीलाक—इन्होंने कम और उसके प्रभाव बोधा का अध्ययन किया है। उनके मतानुसार बीरारी भाव योनियों में निरन्तर जन्म तथा मृत्यु के चक्र में पड़े रहने से मुक्ति तथा विज्ञान सभी अपने दुःखों से छटकारा पा लेंगे।

(३) अशित वैश्वामिक—इनका मत था कि मृत्यु के पश्चात् सब कुछ नष्ट हो जाता है और कर्म द्वारा किसी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति नहीं है।

(४) मनुष्य कथायन—इनका सिद्धान्त था 'स्तोत्रमिच्छि विनासी असतोनिधि सम्मार्थो बर्बात् जो कुछ है उसका विनाश नहीं किया जा सकता और जो नहीं है उसके (हानि की) सम्भावना नहीं।

(५) निगमनाथपुत्र—समस्त बन्धनों से मुक्त होन के कारण ही इन्हें निगम (निर्गम) कहा जाता था। य धर्म के संस्थापक थे।

(६) संक्षयवैश्वामिक—इन्होंने अनेक अटिस्क प्रश्नों का विभिन्न उत्तर दूना निकायों की मग्न के प्राधान्य निवासियों के लिए तर्क और चिन्तन का विषय बना दिया था जैसे 'क्या अच्छे और बुरे कर्मों का परिणाम होता है' के उत्तर में वे कहते हैं—

(१) परिणाम होता है (२) परिणाम नहीं होता है (३) परिणाम होता है और नहीं होता है (४) नहीं परिणाम होता है और नहीं होता है कि परिणाम होता है। मग्न के उक्त उत्तरों में बर्बाद की कितनी सम्भावना है वह स्पष्ट सम्भवतः के कुछ ही निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सके।

अध्याय १०

मगध साम्राज्य का उदय

पिछले अध्याय में हमने छठी शताब्दी ई० पू० की राजनीतिक अवस्था का वर्णन करत हुए मगध पर कुछ प्रकाश डाला था। चौथी शती ई० पू० तक मगध एक साम्राज्य राज्य के रूप में रहता है। बिम्बिसार तथा उसके पुत्र अजातशत्रु के समय में मगध के उत्थान का विवरण दिया जा चुका है। यहाँ अजातशत्रु के उत्तराधिकारियों पर प्रकाश डाला जायगा।

अजातशत्रु के उत्तराधिकारी—अजातशत्रु के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में विभिन्न अनुश्रुतियों या दण्डों में प्रतिपादित है। बीड़ माह्य अधिक प्रामाणिक है जिनके आधार पर अजातशत्रु के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

उदयमित्र या उदयिन—पुराणों के अनुसार अजातशत्रु के पश्चात् उसका पुत्र अर्धक मिहासनासक हुआ। पुराणों ने अर्धक का राज्य २५ वर्षों तक बताया है।

महाराज के आधार पर अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदयमित्र था। बीड़ प्रस्था ने इसे अजातशत्रु का पुत्र स्वीकार किया है। अश्वमेधराज की संभवतः उदयमित्र में पराजित किया था। जबन्ती तथा मगध की परम्परागत शत्रुता का यही स अन्त होता है और अब उत्तर में मगध राज्य के समान दूसरा कोई राज्य न था। एक अनुश्रुति के अनुसार उदयमित्र एक पक्षय्य द्वारा मार डाला गया था।

उदयमित्र के उत्तराधिकारी—इन्होंने ८ वर्षों तक राज्य किया था अर्थात् ४९५ ई० पू० तक राज्य किया था। बीड़ दण्डों के अनुसार मुष्क के पश्चात् नागनाथक राजा हुआ। इसने ३४ वर्षों तक ४७१ ई० पू० तक राज्य किया।

पुराणों में उदयिन के उत्तराधिकारी नन्दिबर्धन तथा महानन्दिन थे। धेन दण्डों के अनुसार उनका कोई उत्तराधिकारी ही नहीं था।

उदयमित्र, अनुश्रुति, मुष्क नामदासक यादिक का उल्लेख पुराण कह रहा करते हैं। पुराणों का अर्थ ही सम्भवतः नामदर्शक है। नामदर्शक के पश्चात् धेननाथ मिहासनासक हुआ। उसने १८ वर्षों तक (५२३ ई० पू० तक) राज्य किया। धेननाथ के सम्बन्ध में बहुत कुछ कि वह एक मंत्री था और प्रजा द्वारा राजा बनाया गया। मिहली अनुश्रुतियाँ भी सूचित करती हैं कि अजातशत्रु संभर नामदासक तक सभी राजे पित्रवृत्ता थे और इमोलिसे जनता ने बिबोह करके मंत्री धेननाथ को राजा बनाया। पुराणों में धेननाथ राजा का उल्लेख है जिसने अश्वमेध राज्य के प्रयोग को पराजित करके मगध में भिक्षा किया। इसका अब राजधानी पाणिमपुत्र से हटाकर पुन गृह्यज में कर ली और अपने पुत्र की बगारम का प्राप्तीय प्राप्त बना दिया।

धेननाथ के पश्चात् उसका पुत्र कासासोक मिहासनासक हुआ। कासासोक का दूसरा नाम काकवर्धन तथा काकवर्धन भी मिलता है।

कासासोक के पश्चात् उसके बस पुत्रों ने २२ वर्षों तक ४०३ ई० पू० तक सम्मिलित राज्य किया।

मगध वंश का उदय

कटिपस ने लिखा है कि 'अश्वमीज' का पिता नाई था जिसने किसी प्रकार अपनी का प्यार पा लिया अन्त में उसने राजा का बच कर दिया। राजा कासासोक के बस

के पश्चात् वह उसके १ पुत्रों का अभिभाषक बना और अन्त में उनका भी वध करके राजा बन बैठा। किन्तु 'अग्रमीन का पिता' से कटिघना क्या अभिप्राय है? महाबोधि वध में नन्दवंश ने संस्थापक का नाम उल्लेख बताया गया है। उल्लेख का पुत्र 'औष सौम्य' सम्भवतः यूनानी भाषा का अग्रमीन है। यूनानी लेखक नन्दवंश के संस्थापक को नाई बताते हैं।

कालासोक के १ पुत्रों में से एक का नाम नन्दिवर्धन भी था जिसे पुराणों ने नन्द का पूर्वज माना है पर इसका सम्बन्ध उपरोक्त घटना कर देती है।

श्री राजाकुमार मुक्तार्थ ने महाबोधिबोध द्वारा प्रस्तुत ९ नन्द शासकों के नाम इस प्रकार गिनार्ये हैं—उल्लेख पण्डित पण्डित भूतपाल राष्ट्रपाल बोधिधार्म शास सिद्धक ईश्वर तथा वन।

पुराणों के अनुसार प्रथम नन्द-शासक का नाम महापद्म या महापद्मपति तथा महाबोधिबोध के अनुसार उल्लेख था। पुराण इसे 'भुवनमोद्भव' बताते हैं।

महापद्म—पुराणों ने नन्दवंश के संस्थापक महापद्म की 'सर्वभूतार्थ' (समस्त श्रमियों का विनाशक) कहा है। उसे 'एकराट' की भी उपाधि प्रदान की है। इससे यह परिमलित होता है कि उसने वैशुनाथ राजाओं के समकालीन इन्द्राक्ष पांचाल काशी हहम कलिन अरमक मैलिह सुरसेन बीतिहोन आदि राजाओं को पराजित कर दिया था। "नबनन्द देहरा नामक नगर (पौषावरी लट परमान्दर) से वह बौध होता है कि बलिह में नन्दों की सत्ता स्थापित थी।

महापद्म उल्लेख के पश्चात् उसके आठ पुत्रों ने बारह बरों तक (पुराणों के अनुसार) राज्य किया। महाबोधिबोध द्वारा की गई ९ नन्दों की शालिका पिछले पृष्ठों में प्रस्तुत की गई है। इसमें अन्तिम वन ही सम्भवतः यूनानियों का अग्रमीन है।

नन्दों के सम्बन्ध में कुछ और अधिक प्रकाश जैन ग्रन्थ 'आवस्वक-सूत्र' से पड़ता है। प्रथमनन्द का मंत्री कम्पक था। इसी ने प्रथम नन्द को अन्तिम राजवंश के विनाश के लिए प्रोत्साहित किया था। नन्दों के शासन-काल में मंत्री का पद बंधा नुबत होता था। नन्द नन्द के मंत्री का नाम सक्ताल (Sakatal) था जिसने दो पुत्र स्वसुमन तथा धीपक थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् स्वसुमन को पद दिया गया पर उसने इसका त्याग कर दिया और जैन विज्ञ बन गया। वह धीपक पराजित हुआ।

नन्दवंश का अन्तिम शासक वननन्द सिकन्दर के आक्रमण के समय मगध पर राज्य करता था और तत्पश्चात् अश्वगुप्तमौर्य द्वारा उसका अन्त कर दिया गया जिससे मगध में ब्रह्म राजवंश प्रतिष्ठित हुआ।

नन्दों का महत्त्व राजनीतिक दृष्टिकोण से अधिक है। इन्होंने ही विभिन्न छोटे-छोटे दुर्गों में विभक्त भारत की राजनीतिक एकता के पथ पर अग्रसर किया जिससे भावी सम्राटों की एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित करने में पर्याप्त योग्य मिला। नन्दों ने सामरिक महत्त्व की उद्देश्य नहीं की जा सकती यद्यपि उनकी आर्थिक नीति सोपान पर आधारित थी। नन्दों के पतन तथा मौर्य वंश की स्थापना के इतिहास पर अनेक परिच्छेदों में विचार किया जायगा।

प्रश्न

- १ मगध साम्राज्य के उत्कर्ष का संक्षिप्त इतिहास लिखिये।
- २ अजातशत्रु के उत्तराधिकारियों के विषय में आप क्या जानते हैं?
- ३ नन्दवंश के विषय में आप क्या जानते हैं?
- ४ अजातशत्रु तथा विभिन्नतर के अजीन मगध राज्य का वर्णन कीजिये।

विदेशी आक्रमण

पारसीक अभियान

पिछले परिच्छेद में हमने भारत की राजनीतिक एकता के निर्माण का जीवन-काल देखा था। मगध साम्राज्य में देश के आन्तरिक भाग के अनेक राज्य सम्मिलित हो चुके थे। छठी-सातवीं ई. पू. के द्वितीय चरण में उत्तरापथ मगध देश तक विभिन्न राज्यों में विभक्त हो चुका था जिनमें कम्बोज, पाण्ड्य तथा मगध प्रमुख थे। पूर्व में तो उसी समय से मगध राज्य उत्कर्ष के पथ पर अग्रसर था और बाद में उसने महापद्म ने समस्त पूर्वी राज्यों को एक चुन में बाँध दिया किन्तु उत्तर या उत्तर-पश्चिम भारत में हम प्रकार कोई पराक्रमी सम्राट नहीं हुआ जो बुद्धिमान के मूल इस राजनीतिक अनेकता को विच्छिन्न करके देश के महत्त्वपूर्ण भाग की निरक्षेपता सामरिक दृष्टिकोण से अधिक महत्त्वपूर्ण भाग को, राजनीतिक एकता स्थापित करके संयुक्त बनाता। उनकी इस बुद्धिमानता का परिणाम तो उन्हें धीरे धीरे मुसलमान पड़ा और फारस साम्राज्यकारी अशकनी (Achaemenian) सम्राटों की सौंप तक दृष्टि हम पर पड़ी। इस की राजनीतिक विमूलकता ने उन्हें आक्रमण के लिये प्रेरित किया।

साहरस—अशकनी साम्राज्य के निर्माता साहरस ने ५५० से ५२९ ई. पू. अपने राज्य-काल के बीच बिड़ोसिया होकर कभी भारत पर आक्रमण किया था किन्तु इतिहासकार स्ट्रूबो के कथनानुसार उसे किसी प्रकार कबल साध आशमियों के साम्राज्य करके वापस लौट जाना पड़ा। अपनी पूर्वी विजयों में अपने ट्रेनजिक (Draugiana) सप्तगिरिया (Sattagydia) मार्गद्वारद्विष (पाण्ड्य) पर अधिकार स्थापित कर लिया था। य. जिसे ईरान और भारत की सीमा का नियंत्रण करते थे टोसिसक कथनानुसार साहरस की मृत्यु युद्ध में किसी भारतीय म. लड़ते समय लगी हुई घोट से हुई।

साहरस की मृत्यु (५२० ई. पू.) के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी केमिसस ने बाढ वर्षों तक शासन किया। किन्तु आन्तरिक बिड़ोहों में बड़ी तरह खड़े रहने के बाद उसे भारत की ओर ध्यान देने का विस्तृत ही समय नहीं मिला।

डेरियस—डेरियस (बाग या बागमन) अशकनी राजवंश का तृतीय सम्राट था। इतने ५२२ से ४८६ ई. पू. तक शासन किया। “उसने (डेरियस) ने यह कामने का ह्मक होकर कि मगर उत्पन्न करने में द्वितीय स्वान रत्न की शिखर नदी किन स्वान पर समुद्र से मिलती है—कैरिन्गडा की स्काईमिन्स के जलपान में मंगा। तबनुमार कैस्पेटिरन (Caspetyrus) तथा वीनटाइट नगर में चल कर ब (स्काईमिन्स) तथा उससे साकी नदी का बाह्य पर पूर्व दिया एवं सुवोन्स की ओर समुद्र को चले तक समुद्र में पश्चिम की ओर चलकर तीसरे महीन में ने उस स्थान पर पहुँचे जहाँ मिस्र के सम्राट न पूनीसिपन को लीरिया की जलवाया को रणना किया था। जब ने धाग यात्रा पूरी कर आये डेरियस ने भारतीयों को पराजित कर दिया तथा समुद्र का परिचय किया।”

अरसीज (समर्प) — डेरियस की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अरसीज (Xerxes-४६८-४६५ ई० पू०) सिंहासनाब्ध हुआ। उत्तराधिकार में प्राप्त भारतीय राज्य की इसने अपने अधीन बनाए रखा।

पारसीक-भारतीय सम्पर्क का प्रतिकार

इन दोनों जातियों का सम्पर्क बहुत पहले से चला आ रहा था जिसके सम्बन्ध में बताया जा चुका है। कुछ विद्वानों ने तो इन दोनों जातियों को एक ही माना है। और वे पारसीक एवं अबस्ता तथा हिन्दू एवं वेद दोनों धर्मों के ही मूल स्तम्भों को ही इसके प्रमाण में प्रस्तुत करते हैं।

यह तो प्रागैतिहासिक काल की बात रही। ऐतिहासिक काल में भी इनके पारस्परिक सम्पर्क का प्रमाण प्राप्त होता है जिसके विषय में परिच्छेद ४ प्रारम्भ में भी बताया जा चुका है। पारसी लेखकों ने भारत में 'अरमिक' (Aramic) इन की लेखक प्रजाती का प्रथम विद्या जिसका विकास अशोक-काल तथा उसके पश्चात् 'सरोष्ठी' लिपि के नाम से हुआ। यह अरसीलिपि की याति चाहिने से आई और को लिखा जाती थी। जैन-निर्माण-काल के अन्त में भी कुछ विद्वान पारसीक प्रभाव का अनुभव करते हैं और उनका ऐसा विचार है कि अशोक का पाटलिपुत्र का स्तम्भो बासा विद्यालय जैन उसके स्तम्भों एवं लिखाओं पर उत्कीर्ण अभिलेख तथा स्तम्भों का बहटा शीर्ष आदि में सारी संकेतों पारसीक देन हैं। इस मत में काफी सम्यता भी प्रकट होती है। अशोककालीन तत्त्व-कला का नमूना इसके पूर्व भारत में नहीं प्राप्त होता है और सम्भवतः अशोक के पूर्व तो स्तम्भ जडा करने की परिपाटी ही न थी।

कुछ विद्वान् भारतीय राजाओं के दरबारी जीवन पर भी इस सम्बन्ध का प्रभाव दिखाते हैं और उनका अनुभव है कि चन्द्रगुप्त का राज-दरबार में केस सिन्धु (फारस) के सम्राट की इसी प्रजा के आचार पर प्रभावित हुआ था। पारसीक आक्रमण और पारसीक सम्पर्क की स्मृति लगभग आगामी दो-तीन शताब्दी तक बनी रही इसका मान्य प्रमाण स्वयं अशोक अभिलेख हैं जिसमें राजा पारसीक लगानों की और भक्ति करता है—

"वेमाना पियो पिबद से राजा एवं जाह-बातीय समी नयपक्षमाधिय ॥"

उपर्युक्त साक्ष्यों ने आचार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पारसीक आक्रमण का प्रथम प्रभाव भारतवर्ष पर पड़ा। यह प्रभाव अपना तात्कालीन परिवाम भी दिखा सका और यदि हम यह विषयपूर्वक स्वीकार कर लेते हैं कि अधिकतर विद्वानों ने स्वीकार किया है कि अभिलेख उत्कीर्ण करना पारसीक देन है तो हमें अपने को पारसीक प्रभाव का वास्तव में अच्छी समझना चाहिये क्योंकि अभिलेखों के अभाव में हमारे इतिहास के अनेक अन्त विभिन्नतावित ही रह पत्र होने और कुछ इतिहासकारों की इतिहास लिखने के स्वयं पर 'इतिहास नक़्क़ा' पड़ता।

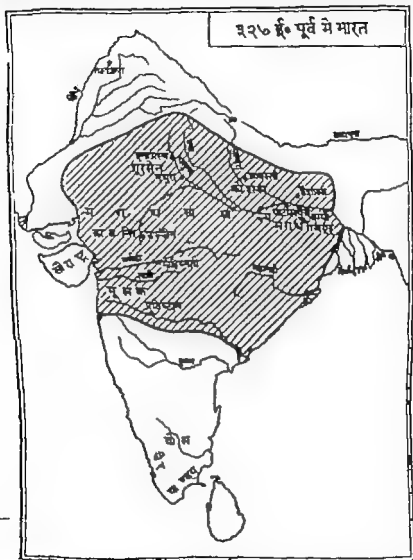
यूनानी आक्रमण

सिकन्दर का आक्रमण

आर्य-भूमि पर यह पहला आक्रमण था जिससे विदेशियों को काश्मीर में भारत पर धावा करने का रास्ता खुल गया। यद्यपि उसके आक्रमण का कोई विशेष प्रभाव

हमारे देश पर न पड़ा तथापि देश की राजनीतिक अवस्था परिवर्तिन हो गई। छोटे-छोटे राज्यों का अन्त हो गया और एक प्रभावशाली मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई। इसकी

३२७ ई० पूर्व में भारत



चित्र ६

एक और बात हम मुझा नहीं सकते—बहुशक्ति हमारे देश का इतिहास तभी सतिषि क्रम के अनुसार लिखा जाना जग्या। ऐसे महत्वपूर्ण आक्रमण का अध्ययन आवश्यक है।
 [२] आक्रमण के समय भारत की अवस्था—आक्रमण के पूर्व उत्तरी भारत अनेक राजतंत्रों एवं गणतंत्रों में विभक्त था जो परस्पर सन्ध करके थे। मेघस्थनीज

ने अनुसार उत्तरी भारत में ११८ राज्य थे जिसमें अस्सेलनीय भासब मुधिक कठ शिवि सौमति सूडक तथा अम्बलठ थे। तीन विषय प्रसिद्ध थे—(१) बाग्मी राज्य (२) अमिस्तार राज्य (३) पुष राज्य। उत्तर भारत का अधिक भाग मगध राज्य में सम्मिलित था। मगध भारत का शक्तिशाली राजा था। पश्चिमोत्तर प्रदेश के राज्यों में संगठन नहीं था। वे एक दूसरे को नीचा दिखाने की सोचा करते थे। इन्हीं सब परिस्थितियों ने सिक्खर के आक्रमण को सुगम बना दिया। कुछ स्वतंत्रता-प्रेमी राज्यों ने अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए सिक्खर का हिस सोल कर सामना किया पर कुछ विस्वासपातियों ने सिक्खर का ही साथ देकर देश-वर्षादी में हाथ बटाया।

भारत की ओर—अनन्तर ३३० ई० पू० में सिक्खर भारत के लिए रवाना हुआ। हिमालय पर्वत को अगस्त ३२९ ई० पू० में पार कर वह यवनी तथा काबुल हुआ हुआ तक्षशिला के राजा की ओर चला। अफगानिस्तान में इसका जोड़ा मान लिया। ई० पू० ३२७ में बाग्मी ने पुष-राज्य पोरस को नीचा दिखाने के लिये सिक्खर को भारत जाने का निषेध दिया। सिक्खर अब सुजबसर की जाने देता। वह उत्तर-पश्चिमी सीमाप्राप्ति के छोटे-छोटे राज्यों को बीछता हुआ निकसिया (बसाकाबाद) पहुँचा। यहाँ उसने अपनी सेना के दो भाग करके दो मार्गों से चढ़ने का आदेश दिया। एक भाग दो श्रेणियों की अभ्यसता में भारत की ओर चला। दूसरे भाग का संरक्षक वह स्वयं था। इस सेना को लेकर उसने अनेक पर्वतीय जातियों का दमन किया। अत्यन्त नीचा तथा अस्सेलनीयों को पराजित करता हुआ उसने ई० पू० ३२६ में सिन्धु नदी को पार किया।

तक्षशिला—तक्षशिला के राजा बाग्मी ने सिक्खर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इसकी देखा-देखी अन्य छोटे राजाओं ने भी आत्म-समर्पण कर दिया।

पुष का राजा पोरस—इन राजाओं के आत्म-समर्पण करने से सिक्खर का उत्साह बढ़ गया। वह तक्षशिला से पुष की ओर बढ़ा। उसने पुष के राजा पोरस को कहना मेला कि वह भी आत्म-समर्पण कर दे। किन्तु पोरस एक निर्भीक एवं स्वतंत्रता प्रेमी धार्मिक था। उसने उत्तर दिया कि वह सिक्खर से रचसंघ में मिलेगा। पोरस ने किया—

मेलासहित अस्सेलनीय के किनारे पहुँचा तो पोरस को
था। नदी में बाढ़ आई थी। कई दिनों तक
पर एक दिन अचानक रात में सिक्खर ने
दिन भर पुष हाथ गड़ा। बाग्मीयों ने

आक्रमण हुआ। कठों की बीरता देख सिक्खर को जीत की कोई आशा न रही पर पोरस को सहायता ने उसे निजामी बनाया। पोरस को भिन्नाने का काम सिक्खर को सौंप दिया गया।

चीक सेना का विद्रोह

ध्यास के छट पर पहुँच जाने के पश्चात् युवावी सेना ने सहायता मागे बढ़ने से इन्कार कर दिया। महान् सैन्यकक्षा कुशल सेनानायक एवं वीर सिक्खर की सुध्याव-स्मित सेना का यह विद्रोह आश्चर्यजनक ही रहा। सिक्खर के जोशीले भावनों के सम्मुख भी सेना केवल भाव्य बहाकर रह गई। सेना ने आज बढ़ने से क्यों इन्कार कर दिया इस सम्बन्ध में इतिहासकारों ने दो प्रकार के कारण बताये हैं। पहला आन्तरिक तथा दूसरा बाह्य। आन्तरिक कारणों में सैनिकों की विविधता व्याधिप्रस्तता बर्तमानाव तथा उनकी सुहोमुख होना सम्मिश्रित है तथा बाह्य कारणों में भारतीय सैनिकों की रसकुशला एवं भावी सत्ते की आशंका है।

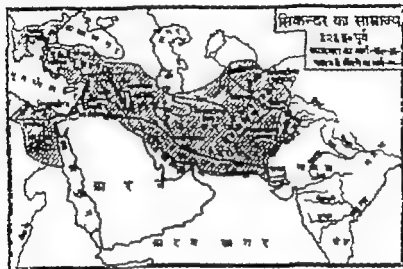
सिक्खर अपनी सेना की भावे बढ़ने के विषये बिना लक्षकाटा या सैनिकों का विद्रोह उठता ही बर्बरक रूप बारण करता था रहा था। उन्होंने सुन रक्खा था कि भावे नवानक नविरा कष्टकर नवयुधि तथा विधास सेनामुख लड़ाई काटिया है।

कहियस के कमानावहार यह बात होता है कि सिक्खर ने सेना से सपीठ की "सैनिकों। मुझे बात है कि इस देश के निवासियों ने पिछले दिनों में अनेक प्रकार की निबर्हिता प्रचारित कर रखी है जिनका अभिप्राय तुम्हारे जन्म केवल मय का संवार करना है। किन्तु तुम्हारे अनुभव में इस प्रकार के मिथ्या संवाय भवे नहीं है।" सेना पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और कोहियस ने कहा "यद्यपि यह सत्य है कि बर्बरों की संख्या सम्बन्धी अन्वयाहों में सर्वत बलवन्ति है तथापि उन मिथ्या अन्वयाहों से भी हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि भारतीयों की संख्या काफी अधिक होगी।" "तब ही मुझे बरन्ती नविरा के सत्ते में छोड़ दो मुझे कुछ बर्बरों की बया पर और इन बुरकनी जातियों की प्रतिष्ठित औदार्य पर जिनके नाम तुम्हें आशंक से भर रहे हैं वे बुरकनी या ऐसे बर्बरों को भी मेरा अनुसरण करेंगे। पर सिक्खर के इन वाक्यों का उत्तर मोक्ष-पाठ भाव की बुद्धि मिली और तब उसने गिरास होकर कहा "निस्सन्देह बर्बरों की भी मेरे सम्ये टकपाते रहे हैं भी ऐसे काबरी की उपाहित करता रहा है जिनके हृदय भास से भर पय है।" अन्त में सिक्खर की स्वहिस की और लगा का मुह मोड़ देना पड़ा।

सिक्खर की भावनी—सिक्खर ने पोरस को ध्यास और सेक्य के बीच के जाले का बरहरण बनाया। कौटले समय सिक्खर ने विविध तथा विविध जाति की हपमा और भाभीसीई, बल्ल तथा लुहकों पर विजय प्राप्त की। विज के सासक के उपहार न देने के कारण सिक्खर ने विज पर आक्रमण कर दिया और बरहस्य प्राप्ति का हपन कर अपनी और सुसंज्ञा का परिचय दिया। पतन पहुँच कर सिक्खर ने सेना के लोग भाग कर विने। एक भाग सक्कर, कौटा, कान्धार और सीसाल होता हुआ परिवरा की ओर चल दिया। दूसरा भाग बल्ल-भावे से बला और सीसाल भाग सिक्खर के साथ भिलीविस्तान के बलिभी भाग से होता हुआ भावे बढ़ा। गई ३२४ ई० पू० में वह प्यारस पहुँचा। मार्ग में ही ३३ वर्ष की आयु में ३२३ ई० पू० में बेबीलोन पहुँच कर सिक्खर स्वर्गवासी हो गया।

सिकन्दर के शासन का प्रभाव

सिकन्दर एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने विश्व-विजय का स्वप्न देखा था। इसी प्रेरणा से उसने भारत की ओर भी पैर बढ़ाया पर सैन्य के विद्रोह के कारण विजय हो नहीं पायी।



चित्र ७

राजनीतिक प्रभाव—उसके इस शासन का कुछ प्रभाव भारत पर महसूस पड़ा जो इस प्रकार है—

(१) सिकन्दर ने बहुत से सैन्यबल और नगरों की स्थापना की जिनका अस्तित्व उसकी मृत्यु के पश्चात् भी बना रहा। इस प्रकार आक्रमण-प्रवास का अवसर मिला और साम्राज्य-विकास का कार्य हुआ।

(२) इस शासन ने भारतीयों को यह पड़ाया कि उनका सैन्य-संगठन तथा युद्धविधि विदेशियों के मुकाबले में शीघ्रपूर्ण है। (३) सीमांत प्रदेशों में तथा पश्चिमी पंजाब और सिन्ध में यूनानी राज्य बन गया पर सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् ही उनकी सत्ता समाप्त हो गई। (४) इस शासन ने पश्चिमी भारत की राजनीतिक दुर्बलता को स्पष्ट कर दिया। (५) शासन द्वारा पथरावित राज्यों की सीमा तथा अन्तर्गत को अवसर मिला जिससे यह सीमा-साधारण की स्थापना कर सका। (६) शासन के पश्चात् ही यूनानियों ने पश्चिमीतर प्रदेश में एक सुवर्धित राज्य का निर्माण कर लिया जिससे भारतीयों की राजनीतिक एकता की शिक्षा मिली। (७) सिकन्दर की शासन विधि ने भारत में भी विधि का सुप्रचार कर दिया और उस से विधि क्रमानुसार इतिहास चलने लगा। (८) जनक विज्ञान यूनानी विद्वानों ने भी भारत में प्रवेश किया था जिन्होंने सत्ताधीन भारत का इतिहास लिखा। इनके द्वारा हमको उस काल की घटनाओं का ज्ञान होता है।

सांस्कृतिक प्रभाव—सिकन्दर के शासन का हल्का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर भी पड़ा—

(१) मूर्धा-निर्माण का कलात्मक ढंग यूनानियों ने भारत को दिया। (२) मन्मथ-निर्माण की नवीन विधि का प्रभाव भी भारतीयों पर कुछ काल तक रहा। (३) कला की माग्यार धीमी का अन्वेषण हुआ। (४) इसी प्रकार ज्योतिष पर यूनानी प्रभाव जात होता है। (५) भारतीय दर्शन पर यूनानी दार्शनिक पैथागोरस का प्रभाव पड़ा। (६) सिकन्दर द्वारा लीले भए मार्ग ने योरोप और भारत में जो सम्बन्ध स्थापित किया उससे योरोपवासियों को भी अनेक लाभ हुए। कुछ विद्वानों का मत है कि ईसाई धर्म के परवती रूप पर बीछ धर्म का प्रभाव पड़ा साथ ही योरोपीय दर्शन की भी भारतीय दर्शन ने प्रभावित किया।

आर्थिक प्रभाव—वातायात के साधनों का सिकन्दर के आक्रमण ने अधिक प्रोत्साहन दिया जिससे व्यापारिक उत्पत्ति हुई।

(१) यूनान भारत के चार पक्ष—एक बल से तथा तीन पक्ष से खोज निकाले गये। इससे भारत और यूनान का व्यापार सुगम हो गया (२) यूनानी सिक्कों का प्रचलन भारत में अधिक हो गया था। इससे व्यापारिक सम्बन्ध और भी गहरा हो गया और (३) भारत का व्यापार पश्चिमी देशों से भी होने लगा।

प्रश्न

1 Give a brief account of the Indian campaign of Alexander the Great and estimate its effects. (1958, 1957)

(सिकन्दर के भारतीय अभियान का संक्षिप्त वर्णन कीजिये तथा इस अभियान का भारत पर प्रभाव का मूल्यांकन कीजिये।)

२ प्रारम्भिक पारसीक आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण कीजिये।

३ सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक अवस्था का उल्लेख कीजिये।

४ सिकन्दर के भारतीय अभियान का संक्षिप्त इतिहास लिखिये।

५ सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ?

मौर्य-काल

चन्द्रगुप्त मौर्य

मृगानी आक्रमणकारी सिकन्दर जिस समय भारतवर्ष के सीमान्त प्रदेशों पर अपना तुष्टानी आक्रमण कर रहा था और दुर्बल एवं बेमतलब रहने वाले भारतीय राजाओं की सक्ति का अपहरण करने में लगा था उसी समय मगध के विद्याक साम्राज्य में एक भारतीय नवयुवक अपनी राजनीतिक क्षिति संभल कर रहा था। वह युव राज नीतिक कनेकता का युग था। सम्पूर्ण भारतवर्ष में कम-से-कम उत्तरी भारत में मगध ही एक शक्तिशाली एवं सुसंरक्षित राज्य था। सिकन्दर के आक्रमण का उत्प्रेष करके हुए पिछले परिच्छेद में हमने यह बताया था कि बिम्ब-बिम्बेठा सिकन्दर की मर्मेय सेना में जिस प्रकार मन्त्र-सेना की विद्याकता की कल्पना मात्र से ही नमातुर होकर जागे बहने में असमर्थता प्रकट की थी। दूसरी ओर एक बड़का व्यक्ति इस विद्याक साम्राज्य को पराजित करने की सोच रहा था। उसकी महत्वाकांक्षाएँ कबिष्ठ कल्पना मात्र न थी बरन उसने मन्त्रों का समूह मष्ट करके सचमुच भारतीय इतिहास में एक नये युग का निर्माण किया। इस उरसाहो और पुरुष का नाम चन्द्रगुप्त मौर्य था तथा उसके साम्राज्य का नाम मौर्य साम्राज्य था।

चन्द्रगुप्त का प्रारम्भिक जीवन—इस अज्ञात पिता के विद्याक पुत्र चन्द्रगुप्त का जन्म लगभग ३४५ ई० पू० में हुआ था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि मगध साम्राज्य के उत्कर्ष के समय मौर्यो को महत्ता का अन्त हो चुका था। इन्हीं मौर्यो के प्रबल का पुत्र चन्द्रगुप्त अपनी विद्याक द्वारा किसी प्रकार पाया जा रहा था। इतिहासकारों तथा अनुष्ठितियों एवं लोक-कथाओं में चन्द्रगुप्त की जाति पर मतभेद है। कुछ इसे क्षत्रिय मानते हैं तथा कुछ ब्रह्म भीषित करते हैं। मृगानी केवल अस्तित्व के कर्तानुसार चन्द्रगुप्त का जन्म एक ऐसे परिवार के प्रबल के घर में हुआ था जिसमें 'मौर-वोयक' (मौर पालने वाले) रहा करते थे। 'मौर-वोयक' कुछ में उत्पन्न होने के नाते चन्द्रगुप्त को मौर्य की उपाधि प्राप्त हुई। चन्द्रगुप्त मौर्य को निम्न कुल का बताने वाला दूसरा साधन बिम्ब पुराण है। मौर्य शब्द के आधार पर ही बिम्ब पुराण में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि चन्द्रगुप्त का जन्म मगध राजा की मूर नामक स्त्री से हुआ था। किन्तु संस्कृत-व्याकरण के अनुसार मूर से 'मौर्य' शब्द बनने न कि मौर्य। टीकाकार वास्तव में चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध राजपूत से थोड़ना चाहता है किन्तु अंतकथाओं एवं अनुष्ठितियों की आप उसके मतिरिक्त पर रही जिसके फलस्वरूप उसने चन्द्रगुप्त की माता का नाम मूरा-स्त्री सा रख दिया। बृहत्कथा में भी चन्द्रगुप्त को तुच्छ कुल का बतकाया गया है। विद्याकदत्त द्वारा लिख मूरापञ्चस नाटक में चन्द्रगुप्त मौर्य को बुरल' शब्द से सम्बोधित किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अस्तित्व साधन बिम्ब पुराण की टीका बृहत्कथा तथा मूरापञ्चस चन्द्रगुप्त मौर्य को तुच्छ कुल का बताते हैं। इनके विरिक्त अन्य कोई साधन नहीं उपलब्ध है जो चन्द्रगुप्त को ब्रह्म भीषित करते हैं।

अब हम उन साधनों पर प्रकाश डालेंगे जो चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय मानते हैं। बौद्ध अनुश्रुतियों का इस क्षेत्र में बिध पस्थान है। दिव्यावधान चन्द्रगुप्त के पुत्र विन्दुसार का मूर्धनिमिषित मानता है। इसी प्रकार एक अन्य बौद्ध ग्रंथ महावंश चन्द्रगुप्त का मोरीय क्षत्रिय कुल का मानता है। मोरीय क्षत्रियों की उपस्थिति का प्रमाण हमें एक अन्य प्रामाणिक बौद्ध ग्रंथ महापरिनिम्बान मुत्त से प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में मोरियों को पिप्पक्षिण का दासक बताया गया है। इस ग्रंथ में यह सिद्ध हुआ है कि पिप्पक्षिण के मोरियों ने मत्स्यों के पास महात्मा पीतम बुद्ध के पावनानुसेप का कुछ अंश माँगने के लिए एक दूत यह कहला कर भजा कि महात्मा बुद्ध क्षत्रियवंश के थे और हम लोग भी क्षत्रिय हैं।" इस विवरण से मोरीय क्षत्रियों की उपस्थिति का प्रमाण प्राप्त हो जाता है और साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य निश्चय ही इसी मोरियों से सम्बन्धित क्षत्रिय कुल का रहा होगा। दिव्यावधान महावंश महा परिनिम्बान मुत्त आदि बौद्ध ग्रन्थों तथा अन्य बौद्ध अनुश्रुतियों से चन्द्रगुप्त का क्षत्रिय होना प्रमाणित होता है। इनके अतिरिक्त तीन ग्रन्थों से भी चन्द्रगुप्त का क्षत्रिय होना सिद्ध हो जाता है। इन तीन ग्रन्थों में परिशिष्ट पर्वण तथा कल्पसुत त्रिपिटक के अन्तर्गत हैं।

एस्मिन सर पान मार्शल तथा डा हेमचन्द्र राय जीवरी भी चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय स्वीकार करते हैं।

मगध पर पहला आक्रमण—इस चन्द्रगुप्त मत्स्यों से बिछा का उभर एक रथकर बाह्य भी मत्स्यों का सर्वनाथ करने लिए अपनी लिखा बोल चुका था। उस बाह्य का नाम था चायक्य या कौटिल्य। चायक्य वैसा कूटनीतिज्ञ बाह्य का मन्त्र था वे असन्तुष्ट हो जाना बहुत बड़ी बात थी। मत्स्यों को यह नहीं मालूम था कि चायक्य में कौन सा गुण छिपा हुआ था नहीं तो वे उससे छमड़ा मोल न लेते। संयोगवश चायक्य और चन्द्रगुप्त की भेंट हो गई। फिर क्या पूछना था, दोनों ने एक बहुत बड़ी सेना एकत्रित की और मत्स्यों पर आक्रमण कर दिया। किन्तु उनका मगध पर आक्रमण करना ठीक न था क्योंकि केन्द्र में मत्स्यों की शक्ति काँधी बड़ी बड़ी थी। मत्स्यों ने चन्द्रगुप्त को हरा दिया। चायक्य और चन्द्रगुप्त को मगध से हटना पड़ा। चायक्य बना कूटनीतिज्ञ था। उसने तुरन्त तरकीब सोची।

सिकन्दर से भेंट—उस समय सिकन्दर का आक्रमण हो रहा था और यूनानी विजेता एक-एक करके छोटे-छोटे राज्यों को जीतता चला जा रहा था। सिकन्दर से मिल कर काम इस तरह बन सकता था कि सिकन्दर मत्स्यों का मांस करके चला जाता और वह चन्द्रगुप्त मौर्य मगध पर अपना अधिकार जमा देता। इसी उद्देश्य से चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला वह चन्द्रगुप्त कायर, दम्बू या कापुश्य नहीं था। उसने सिकन्दर के सामने भी पर्यमयी बातें की जिससे सिकन्दर बिड़बड़ा और उसने चन्द्रगुप्त के बंध की आज्ञा दी। सिकन्दर के सिपाही चन्द्रगुप्त को पकड़ने के लिए बड़ पर किसने इतनी शक्ति थी जो चन्द्रगुप्त को पा सकता। चन्द्रगुप्त सिकन्दर के खेम से बाहर चला आया।

मगध पर दूसरा आक्रमण—ज्योंही सिकन्दर स्वर्ण सीट गया त्योंही उतरा पक्ष की बनता में निहोड़ की आग ममक उठी क्योंकि यूनानियों ने उसे बहुत अधिक कष्ट दिये थे। छोटी-छोटी स्वतंत्र जातियाँ भी जिन्हें सिकन्दर ने पराजित कर दिया था अब फिर स्वतन्त्र होने की विन्या करने लगे।

परिस्थिति से साम उठाया। उन्होंने उत्तरापथ का नेतृत्व किया। सीधे ही सार उत्तरापथ में चन्द्रगुप्त की बाक बस गई। वहीं चन्द्रगुप्त ने सैनिक संगठन किया। बाणस्प ने काश्मीर की पहाड़ियों के राजा परबतेश्वर से सन्धि की जिससे मर्हों के विनाश में सहायता मिले। उत्तरपथात् पूरी तैयारी के साथ मन्ध-सम्राट बनामन्ध पर आक्रमण किया गया। बनानन्ध परिहार सहित मारा गया और मयब पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो गया। ३२१ ई० पू० में चन्द्रगुप्त मयब की गद्दी पर बैठा।

सेल्यूकस की पराजय—सिकन्दर की मृत्यु के वरचात् उसका साम्राज्य उसके सेनापतियों में बँट गया। सेल्यूकस इन सेनापतियों में प्रमुख था और भारत की पश्चिम मोक्षर सीमा का भू-भाग उसके अधीन ही रहा। सेल्यूकस बहुत महत्वाकांक्षी था। वह सिकन्दर की भाँति विश्व-विजेता बनाना चाहता था। इसलिए उसने सर्वप्रथम भारत के उन राज्यों को अपने अधीन करने की कम्पा की जो सिकन्दर द्वारा अधीनस्थ बनाये जा चुके थे। अतः ही चन्द्रगुप्त की यह सूचना मिली त्योंही वह तैयार हो गया और उसकी सेना ने गुलानी सेना को सिन्ध नदी के पास रोक़ा। सेल्यूकस को चन्द्रगुप्त के सामन घुटने टेक देने पड़े। यों तो गुलानी इतिहासकार मुंड के परिणाम के बार में कुछ नहीं बताते पर जो सच चन्द्रगुप्त और सेल्यूकस के बीच हुई उनसे ज्ञात होता है कि मुंड में निश्चय ही सेल्यूकस की हार हुई थी। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को ५०० हाथी दिए। सेल्यूकस ने हिरात से बलूचिस्तान तक का भू-भाग चन्द्रगुप्त को दे दिया और अपनी पुत्री का व्याह भी चन्द्रगुप्त से कर दिया। उसने मेगस्थनीज नामक एक राजदूत भी चन्द्रगुप्त के दरबार में रक़ दिया।

चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार—मर्हों की पराजित करके चन्द्रगुप्त ने उस समग्र भू-भाग पर अधिकार प्राप्त कर लिया जिस पर मर्हों का अधिकार था। इसके अतिरिक्त सेल्यूकस द्वारा प्राप्त भूमि काबुल कम्भार, हेरात और बलूचिस्तान पर भी उनका अधिकार हो गया था। पंजाब से गुलानियों को निकालकर उसने बहुत पहले अधिकार कर लिया था। इस प्रकार उत्तर में उसका साम्राज्य बलूचिस्तान और पंजाब से लेकर बंगाल की सीमा तक फैला था। पश्चिम में उसकी राज्य-सीमा सीरपट्टु या काटियावाड़ तक थी। दक्षिण में तमिऴनाडी मिले तक उसका राज्य फैला हुआ था।

अश्विनी दिन—इसके वरचात् चन्द्रगुप्त के सेप जीवन का इतिहास नहीं मिलता है। उसका साम्राज्य-विस्तार को देखते हुये ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त का सेप जीवन भी साम्राज्य विस्तार के लिए युद्धों में व्यतीत हुआ होगा। जैन अनुसूतियों के अनुसार चन्द्रगुप्त जैन मतानुसम्बी हुकर अपने शासन-काल के अन्तिम दिनों में मयब में बसकर अकाल पड़ने के कारण राज्य का परिणाम करके जैन धर्म ग्रहणाहु के साथ दक्षिण में मैसूर की ओर चला गया था। मैसूर में जब भी कुछ अभिनेय ग्रहणाहु तथा चन्द्रगुप्त का जैन साधुओं की भाँति निवास करने का संकेत करते हैं। वहीं जिन पहाड़ी पर ग्रहणाहु के साथ चन्द्रगुप्त निवास करता था वह अब भी चन्द्रविर के नाम से प्रसिद्ध है और वहीं चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मित चन्द्रगुप्त जन्मी नामक मन्दिर भी पाया जाता है। जैन अनुसूतियों के अनुसार चन्द्रगुप्त ने एक मन्थे जैन सिधु की भाँति उपवास करके अपन प्राणान्त कर दिया। इसकी मृत्यु तिथि २९८ अथवा १० ई पू बताया जाती है। गुलानी सिधुओं के विवरण में उक्त जैन अनुसूति का उल्लेख ही जाता है। इन सिधुओं के मतानुसार चन्द्रगुप्त ने हिमा को कर्मी नहीं छोड़ा था। ऐसी दशा में चन्द्रगुप्त का जैनधर्म ग्रहणाहु के साथ मैसूर जाना तथा अन्तर्गत करके प्राण त्यागना सम्भव नहीं है। किन्तु जब तक

कोई तर्कतन्त्र प्रमाण नहीं प्राप्त हो पाता तब तक इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन-प्रबन्ध

चन्द्रगुप्त के शासन-प्रबन्ध के अध्ययन के पूर्व तत्कालीन अनुविधानों का निर्धारण करना आवश्यक होगा। चौबीसवीं ई. पूर्व में यातायात तथा सन्देश-वाहन के साधनों की हीनादस्था को कल्पना सरलतापूर्वक की जा सकती है। तब तक कोई भी विशाल साम्राज्य नहीं हो सका था और इसके अन्तर्गत सभी-सम्बन्धों को सभ्यता आदि का होना असम्भव था। चन्द्रगुप्त मौर्य के सामन सबसे बड़ी अनुविधा शासन प्रबन्ध के सम्बन्ध में यातायात सन्देश-वाहनों तथा साम्राज्य की विद्यमानता की थी। प्रथा से केवल दक्षिण भारत तक विस्तृत इस साम्राज्य का समुचित शासन-प्रबन्ध करना निश्चय ही एक कठिन कार्य था। मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र से साम्राज्य के कोने-कोने में वसित तथा मुख्यतया स्थापित राज्या कठिन हो नहीं अपितु असम्भव था। किन्तु चन्द्रगुप्त स्वयं एक कुशल शासक तो था ही सीमाव्यवहार उसे आनन्द देता राजनैतिक का सहायक प्राप्त था। चन्द्रगुप्त ने अपने विस्तृत साम्राज्य का शासन केन्द्रायक्रम की पद्धति पर न करके प्रांतीय शासन-व्यवस्था की शोच डालकर किया जिसके विभिन्न स्वतन्त्रों पर अपने प्रकाश डाला जायगा।

चन्द्रगुप्त के शासन-प्रबन्ध का आग्रह हमें मेगस्थनीज की 'इंडिका' तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्राप्त होती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से तो चन्द्रगुप्त के शासन की प्रमुख प्रवृत्तियों का स्पष्ट रूप हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है। कुछ विद्वान् अर्थशास्त्र के रचयिता को तथा इस ग्रन्थ की चन्द्रगुप्त कालीन नहीं स्वीकार करते हैं। किन्तु उनका यह सन्देह अधिक मान्य नहीं है और अर्थशास्त्र को चन्द्रगुप्त कालीन अथवा उसके निकट का मानना ही युक्तिमगीत है।

साम्राज्य-शासन

चन्द्रगुप्त स्वयं शक्तिशाली था। वह शासन-सत्ता पूर्वतया अपने हाथ में रक्खता चाहता था। अतः इस शासन में साम्राज्य का केन्द्र और प्रधान राजा होता था जिसके हाथ में सेना न्याय-व्यवहार आदि सभी कार्य थे। मेगस्थनीज के कहना मुमकिन है कि शासन में बहुत बड़ा हाथ बटाता था। उसके वर्णन से यह ज्ञात होता है कि राजा दिन रात राज्य के कार्यों में रूपा रहता था और अपनी प्रजा की धार्मिक सुख के लिए वह हर समय तैयार रहता था। युद्ध-काल में राजा को सेना का नेतृत्व करना पड़ता था और युद्ध सम्बन्धी नीतियों पर वह सेनापति विचार विमर्श भी करता था। राजा का दूसरा महत्वपूर्ण काम यह था कि वह साम्राज्य के उच्च पदाधि-कारियों को नियुक्ति स्वयं करता था। आय-व्यय का निरीक्षण भी राजा के हाथ में था। परराष्ट्र-नीति शासन का महत्वपूर्ण अंग है अतः राजा इस विषय पर राजदूतों से स्वयं परामर्श करता था। युद्ध-काल में देश की आन्तरिक व्यवस्था तथा शत्रुओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना भी राजा का कर्तव्य था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के अनुसार राजा को यह अधिकार था कि वह नव कानून का निर्माण कर सके। वह प्रजा के आचरण के लिए शासन की योजना भी करता था।

धर्म-परिषद—राज-कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए एक 'मंत्रि परिषद्' भी थी। राजा योग्य व्यक्तियों का निर्वाचन इस 'परिषद्' में करता था।

नीटिस्य के अर्बरास्त्र से हमें १८ पदाधिकारियों का बोध होता है। ये पदाधिकारी अपने-अपने विभाग के अध्यक्ष होते थे। ये निम्नलिखित थे —

- | | |
|------------------------------------|---|
| (१) मंत्री | (२) पुरोहित |
| (३) सेनापति | (४) मुखराज |
| (५) बीरारिक 'हारों का रक्षक' | (६) अन्तरदेशिक 'अन्त-पुर का अध्यक्ष' |
| (७) प्रमास्थीय 'कारागाराध्यक्ष' | (८) समार्हता 'अर्बसंप्रहकर्ता' |
| (९) सभिप्राता 'होराध्यक्ष' | (१०) प्रदेष्टा 'अमिस्तर' |
| (११) नायक 'नगर रक्षक' | (१२) पीर 'कोठबास' |
| (१३) व्यावहारिक 'प्रधान व्यापारीस' | (१४) शक्तिभक्त 'भाकर तथा कारखानों का अध्यक्ष' |
| (१५) मंत्रि परिवशाध्यक्ष | (१६) इंदुपाल 'पुलिस का प्रधान' |
| (१७) दुर्बपाल | (१८) अन्तपाल 'सीमाओं का रक्षक' |

अधिकारियों की उपर्युक्त तालिका से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने एलकाडीन राज्य के लिए जिन आवश्यक विभागों का हुआ आवश्यक समझा उनकी स्थापना करके उन विभागों की देख रेख के लिए योग्य पदाधिकारियों की नियुक्ति की थी। उपर्युक्त पदाधिकारी अपने विभाग के उपप्रधान थे। इनके अतिरिक्त कुछ विभागों का स्वामी भी व जिनसे 'अध्यक्ष' कहा जाता था।

प्रांतीय शासन

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है शासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य प्रांतों में विभाजित कर दिया गया था। प्रांतीय शासन भी अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं सुव्यवस्थित था। राजधानी के निकटवर्ती प्रांतों का शासन तो स्वयं सम्राट की देख-रेख में होता था किन्तु दूरस्थ प्रांतों का शासन 'राजकुमार' अथवा राजकुलीन व्यक्तियों द्वारा होता था।

चन्द्रगुप्त के समय में प्रांतों की संख्या का स्पष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त है किन्तु उसके प्रदीप के शासन-काल में सम्पूर्ण साम्राज्य निम्नलिखित पाँच प्रांतों में विभक्त था—

१ उत्तरापथ	राजधानी	तक्षशिला
२ अश्वतिरथ	"	उज्जयिनी
३ इक्ष्वाकुपथ	"	मुचर्बगिरि
४ प्राक्य	"	पाटलिपुत्र
५ कर्लिन		तोपसि

प्रांतीय शासकों की वार्षिक आय १२ पथ थी।

पूर्वी तथा मध्य देशों के प्रांतों का शासन महामार्गों की सहायता से सम्राट स्वयं करता था। चन्द्रगुप्त का मंत्री नायक्य कूटनीति के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। अतः इसकी मंत्रणा से चन्द्रगुप्त ने गुप्तचर विभाग की ओर विशेष ध्यान दिया था। प्रांतीय शासकों तथा नीकरग्राही के अधिकारों की गति-विधियों का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के अभिप्राय से चन्द्रगुप्त ने सम्पूर्ण साम्राज्य में गुप्तचरों का जास-सा बिछा दिया था। वे गुप्तचर प्रांतीय शासकों के कार्यों की सूचना सम्राट को बराबर दिया करते थे। इन गुप्तचरों का राजनीति में इसकिए विशेष महत्व था कि ये प्रांतीय शासकों तथा अन्य

अधिकारियों की मनमानी से प्रजा की रक्षा करते थे। निश्चय ही इनके जमाब में प्रांतीय शासक प्रजा पर बुराबारी कर सकते थे और इस प्रकार प्रजा से बुरा-सम्पत्ति ग्रहण करके वे अपनी आर्थिक स्थिति को भी अच्छी बना सकते थे। यद्यपि प्रांतीय शासक राजकुमार अथवा राजकुलीन ध्वस्त हो थे तथापि चन्द्रगुप्त यह कदापि नहीं चाहता रहा होगा कि वे इतन मरुत हो जायें कि मलयदेवु की भाँति बिद्रोह या पक्षपात कर सकें। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में हम विभाग का विवरण वर्णन किया गया है।

नगर शासन

यों तो चन्द्रगुप्त का देशीय तथा प्रांतीय दोनों शासन उल्लेखोक्ति का था किन्तु इसका नगर-शासन अपनी मौलिकता तथा विशिष्ट के लिए भारतीय इतिहास में अपना जैसा स्थान रखता है। नगर-शासन (म्युनिसिपल शासन) का पूर्ण विवरण हमें मेगस्थनीज के उल्लेख से प्राप्त होता है। ध्यान रहे कि राजवृत्त मेगस्थनीज ने साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में ही निवास किया था। अतः उसका विवरण पाटलिपुत्र की नगरपालिका का ही वर्णन समझना चाहिये। सम्भव है पाटलिपुत्र के अतिरिक्त अन्य नगरों में भी नगर-शासन रहा हो पर उनका शासन इसमें कुछ भिन्न अवश्य रहा होगा। पाटलिपुत्र बहुत बड़ा नगर था अतः इसके लिए विषय प्रकार के प्रबन्ध की आवश्यकता थी। इस बड़े नगर में ही विद्वान्, कलाकारों, विदेशियों, व्यापारियों आदि की भीड़ लगी रहती होगी। इसी बड़े नगर में उद्योग-व्यवसाय भी बड़ा अधिक मात्रा में उत्पादन भी होता था। यहाँ की जनसंख्या में अन्य नगरों की अपेक्षा अधिक थी। उपर्युक्त इशाराओं में यह आवश्यक था कि नगर में एक मुखमण्डल एवं मुख्यव्यवस्था शासन-व्यवस्था की जाय।

मीर मेगस्थनीज के विवरण के आधार पर नगर-शासन का वर्णन किया जा रहा है।

मेगस्थनीज ने लिखा है कि नगर के प्रबन्ध के लिए पाँच-पाँच सदस्यों की एक समितिवाँ होती थी। इन समितियों के अधिकार तथा कार्य निम्नलिखित थे—

(१) शिल्प कला समिति—जैसा कि पहले बताया जा चुका है पाटलिपुत्र में कलाकारों की भीड़ थी। औद्योगिक कला तो काफी उन्नति कर चुकी थी। अन्तर्-औद्योगिक कलाओं के निरीक्षण के लिए शिल्पकला समिति का निर्माण किया गया था। यह समिति कलाकारों, मित्रियों और अन्य समितियों का पारिश्रमिक भी निर्धारित करती थी। औद्योगिक कलाकारों की सुरक्षा के लिए भी यह समिति उत्तरदायित्व लिये थी। पर साथ ही साथ वह उनके उत्पादन की सुखता पर भी कठोर दृष्टि रखती थी।

(२) विदेशिक समिति—यह समिति राज्य में निवास करने वाले विदेशियों की देख-रेख के लिए बनी थी। उसका कर्तव्य था कि विदेशियों के आवागमन उनके निवास-स्थान आवश्यकता पड़ने पर औपनिषादि का प्रबन्ध करे, साथ ही इस मन्त्रि के ऊपर उनकी सुरक्षा का भी भार था। विदेशियों की मृत्यु के पश्चात् उनकी अन्तिम क्रिया भी यही समिति करती थी तथा उनकी बुरा-सम्पत्ति उचित उत्तराधिकारियों को दे देती थी।

मेगस्थनीज के इस विवरण से यह परिलक्षित होता है कि मीर साम्राज्य में विशेषकर पाटलिपुत्र में विदेशियों की संख्या इतनी अधिक थी कि उनके लिए एक पृथक विभाग की स्थापना करनी पड़ी थी। विदेशियों की उपस्थिति उत्काशीन भाग्य के सामाजिक जीवन पर निश्चय ही प्रभाव डालती रही होगी और इस प्रकार इतना

विशेष सांस्कृतिक महत्त्व है क्योंकि बीबी सताब्दी ई० पू० के विरह इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय समयव्यवस्था में छठी सताब्दी ई० पू० में उदित धार्मिक क्रांति के परिणाम-स्वरूप जन-साधारण में गई बेचैनी एवं आपरन का प्रसफुटन हो रहा था।

(३) जनसंख्या समिति—यह समिति जन्म-मरण का रिकार्डबन्दी रखती थी। इसका अभिप्राय केवल जनसंख्या की गणना करना ही न था या इसके आधार पर केवल राज-कर ही नहीं लगाना था अपितु जन्म-मरण की रजिस्ट्री के आधार पर सरकार को नागरिकों के जन्म-मृत्यु बाहेक वह उच्च कुल की हो अथवा निम्न कुल की का पूर्ण ज्ञान करना भी था। जनसंख्या की वृद्धि अथवा कमी का ज्ञान प्राप्त करने का उद्देश्य स्पष्ट है और इसका केवल राजकोष के लिये सम्बन्ध नहीं है। निश्चय ही इस जनगणना की रजिस्ट्री का राजनीतिक महत्त्व की अपेक्षा आर्थिक महत्त्व अधिक रहा होगा ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। मीमें क्रांतिन आधुनिक विकास का ध्यान रखते हुए यदि हम इस विषय को समझने का प्रयास करें तो हमें जनगणना का महत्त्व स्पष्ट हो जाएगा।

(४) नागरिक व्यवसाय समिति—इस बीबी समिति का महत्त्व उल्लेखनीय है। यह समिति व्यापारियों एवं वणिजों के कार्यों की देख रेख के लिए नियमित की गई थी। एक ओर तो यह उनकी वस्तुओं की जनता की सुचना द्वारा उचित समय पर बिक्री करने का प्रबन्ध करती थी तथा दूसरी ओर जनता के हित के लिए इस बात का ध्यान रखती थी कि व्यापारी तथा वणिजों के लुटेरी लीम या माप से जनता को न फायदा। कोई भी व्यक्ति जो बिना माप के एक वस्तु से अधिक का व्यवसाय करता था उसे अनुपात में अधिक कर भी देना पड़ता था।

(५) वस्तु-निरीक्षण समिति—पटलिपुत्र मीमें साम्राज्य के औद्योगिक स्थलों में से प्रमुख था। अतः वस्तुओं के उत्पादन की देख रेख के लिए एक पृथक समिति की आवश्यकता थी। इसी अभिप्राय से उद्योगपतियों के उत्पादन पर निरीक्षण करना इस पंचव्यवस्था की मुख्य कर्तव्य निश्चित किया गया था। यह समिति इस बात की देख-रेख करती थी कि औद्योगिक उत्पादन में किसी प्रकार की बिबाध करके उद्योगपति अनुचित लाभ न उठावें। नई वस्तु बुरानी में किसी प्रकार की नहीं बिक्री जा सकती थी और उक्त समिति इस बात का ध्यान रखती थी कि वे पृथक-पृथक बेची जायें। नियम बनाने वाले व्यवसायियों को जुर्माना देना पड़ा था।

(६) कर समिति—यह समिति किसी भी वस्तुओं पर कर वसूल करती थी। यह भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण समिति थी। जो व्यापारी कर से बचने का प्रयत्न करता था उसे प्रायः-शुल्क दिया जाता था।

ऊपर मण-प्रधान का जो विवरण दिया गया है वह मूलानी राजदूत के वर्णन पर आधारित है। कोरिन्थ के अर्थशास्त्र में मण-शासन अथवा उसके इस प्रकार के विवरण का उल्लेख नहीं मिलता है। किसी-किसी स्तर पर इसका निर्देशन मात्र है। हम विषय में अर्थशास्त्र का मीम रचना यात्री के विवरण अर्थात् ६ समितियों तथा उनके कर्तव्यों-अधिकारों के विवरण की सत्यता में किसी प्रकार की संदेह नहीं उत्पन्न कर सकता। अर्थशास्त्र भी सर्वथा मीम नहीं है उसमें 'नागरिक' अथवा 'नगराध्यक्ष' को मण का शासक वर्णित किया है और उसके अधीन 'स्थानिक' तथा 'पोर' नामक परामित्तारियों का उल्लेख किया गया है।

मेगस्थनीज ने नगर-शासन का विवरण समाप्त करते हुए यह लिखा है कि जैसे ही अपने-अपने पृथक विभाग का निरीक्षण वे समितिवाँ करती ही थीं पर साथ ही सामूहिक रूप से सामान्य हित सम्बन्धी विषयों से भी उनका सम्बन्ध था। उदाहरणार्थ सार्वजनिक इमारतों की सुरक्षा तथा उनकी मरम्मत करना मुख्य सम्बन्धी विषयों पर ध्यान देना बाजार-निर्माण बन्दरगाहों तथा मंदिरों की देख-रेख करना सामूहिक उत्तरदायित्व का विषय था।

निका-शासन

नगर-शासन के अतिरिक्त मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त के निका-शासन पर भी प्रकाश डाला है। वह निका-शासन के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अधिकारियों का उल्लेख करता है जिनके ऊपर नदियों की देख-रेख भूमि की पैमाइश तथा सिंचाई की नहरों की धारा-मंदाजाओं के निरीक्षण का भार था। इन भूमि तथा सिंचाई के अधिकारियों के अतिरिक्त मेगस्थनीज ने कृषि संबंधित कुछ खान खादि क अधिकारियों का भी उल्लेख किया है।

जनपद या वैज्ञात-शासन—याम शासन की निम्नतम इकाई था। इसका शासक 'ग्रामिक' कहलाता था। पाँच या दस ग्रामों का शासक 'गोप' कहलाता था। गोप के ऊपर 'स्वानिक' नामक अधिकारी होता था। यह जनपद के चतुर्थ भाग पर शासन करता था। पूर्वलिखित पदाधिकारी 'प्रदेष्टा' और 'समाहृता' की देख-रेख में काम करते थे।

सैन-संयोजन

नन्द वंश का अन्त कर वेन के पश्चात् चन्द्रगुप्त की मगध की एक विस्तार सेना प्राप्त हुई थी। इस सेना की विस्तारता के सम्बन्ध में किबर्दिषाँ सुनकर ही मूनामी विवेता छिन्नर की अक्ष सेना का साइस छूट गया था और उसने आप बड़ने से स्नाक ईकार कर दिया था। मगध की इस पुष्टवी सेना के अतिरिक्त साम्राज्य-बुद्धि एवं जेध की रखा के लिए चन्द्रगुप्त ने काशी संख्या में नये सैनिकों की नर्जी भी की थी।

राजगुप्त मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त के सैन्यसंयोजन का भी पूर्व विवरण देता है। उसके कबनानुसार इस सेना में १० ००० से भी अधिक पैदल सिपाही थे। मीर सेना के अन्य आँकड़ इस प्रकार हैं—

१ ०० अश्व १००० पय तथा ८० ० रथ।

इतनी विस्तार सेना के प्रबन्ध एवं देख-रेख के लिए अक्षय सैनिक विभाग की आवश्यकता थी। इस सैनिक विभाग का संयोजन १ समितियों द्वारा हुआ था। प्रत्येक समिति के ५-५ सदस्य होते थे। इनका पूर्व विवरण इस प्रकार है—

समिति	नं०	(१)	नी सेना
"	नं०	(२)	पञ्चास-सेना
"	नं०	(३)	अस्त्र-सेना
"	नं०	(४)	रथ-सेना
"	नं०	(५)	गज-सेना
"	नं०	(६)	सेना-यात्रायार्थ तथा युद्ध सामग्री बाहिरी

मेगस्थनीज ने कड़ी समिति का कार्य बतलाते हुए लिखा है कि यह समिति सेना सम्बन्धी सामग्रियों को होनेवाली बीसगाड़ियों के अधिकारियों को सङ्गोप डेढ़ी थी।

न्याय विभाग

मौर्यकालीन न्याय प्राचीन भारतीय इतिहास में उज्ज्वलकौटि का है। राजा अश्वमेध न्यायाधीश होता था। मौर्यकालीन बंड की कठोरता का उत्कृष्ट मेगस्थनीज तथा कौटिल्य दोनों ने किया है। बुमला से केकर अंग-अंग तथा प्रायः एक का विवरण प्राप्त होता है। प्रायः बहुधा कलाकार को पंजु कर देने बचवा किसी की वस्तुओं पर कर न देने के अधिकार में दिया जाता था। व्यवहारियों तथा कोरों को अंग-अंग का बंड दिया जाता था। अपराधी से अपराध स्वीकार कराने के लिए अनेक प्रकार के कष्टदायक साधनों का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि अश्वमेध का बंड-विधान आज-सकल से अधिक कठोर था जिसे यदि अमानुषिक कहा जाय तो अनुचित न होगा।

वर्मसत्त्व के अनुसार दो प्रकार के न्यायालय थे —

(१) वर्मस्वीय (दीवानी) तथा (२) कंटक कोमन (छोडवारी)। इन दो न्यायालयों के अतिरिक्त ग्राम पंचायत भी अपने प्रारम्भिक रूप में चल रही थी जो छोटे-छोटे समझौते का अन्त बहुधा समझौता हाथ करा दिया करती थी।

आय-व्यय का साधन

भूमि-कर ही आय का साधन था। बहुधा जय का ३ भाग कर-रक में लिया जाता था किन्तु देव-काष्ठ के अनुसार यह कर-बंड़ी भी हुमा करता था। भूमि-कर के अतिरिक्त वन सीमाओं पर लगन वाले किसी कर, बाड़ों पर लगने वाले कर, बुमला, आकर (साले) भी आय का साधन थे।

आय के साधन की बहुत थे। सेना नीकरवाही प्रकाशितकारी आदि कार्यों में काफी आय बर्च हो जाती थी। राजा तथा राज-बखार के ऊपर भी आय का काफी भाग बर्च हो जाया करता था।

सम्पदा का मन्द, राजमहल तथा उसके अवस्थित जीवन

पहले हम अश्वमेध के नगर पाटलिपुत्र का वर्णन करेंगे।

मेगस्थनीज ने लिखा है कि पाटलिपुत्र रंग तथा रंग के संगम पर स्थित है। यह माण्ड का समुद्र बड़ा नगर है। पानी ने नगर की लम्बाई ३० स्तरिया (१३ मील) तथा चौड़ाई १५ स्तरिया (१ मील १२० गज) बतलाई है। नगर की घुरछा के भिन्न ६० फुट गहरी तथा २०५ गज चौड़ी खाई नगर के चारों ओर बनी हुई थी जो सदा मोल के पानी से भरी रहती थी। खाई के अतिरिक्त लड़की की एक दीवार भी बनी हुई थी। इस प्रकार नगर की घुरछा के लिए हर बखल किए गए थे। नगर की चहारदीवारी में १४ फाटक तथा ५०० मीनारें थीं।

अब हम अश्वमेध के वैयक्तिक जीवन तथा उसके राजमहल पर प्रकाश डालेंगे। पहले हम उसके राजमहल को ही लेंगे। अश्वमेध ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत करना पसन्द करता था। जब अपने निवास के लिए जगत् एक बहुत विद्यालय एवं सुन्दर महल का निर्माण कराया था। राजमहल के चारों ओर सुन्दर उद्यान बना हुआ था। उसके स्तरम सुन्दर थे। उत्कालीन मकन निर्माण कला की प्रशिक्षित प्रभावित तथा कुछ मोक्षिक रीतियों के सम्मिलन से बना हुआ यह राजमहल पूर्णतः काष्ठ का था। उत्कालीन भारतीय मकनों में इस राजमहल का स्थान बहुत ऊँचा था। इस राजमहल

के सौम्यत्व के समझ सूझ तथा इकजताना के ईरानी राज-प्रासादों की सुन्दरता भी खीकी पड़ जाती थी।

चन्द्रगुप्त के चारों ओर शरीर-रक्षिकों की भीड़ लगी रहती थी। इतिहासकार स्ट्रीबो के कथानुसार ये नारियाँ एक प्रकार की मूलाय होती थीं जिन्हें उनके माता-पिता से लीज लिया जाता था। चन्द्रगुप्त जब मृगया के लिए जाता था तब भी यह नारियाँ द्वारा रक्षित रहता था। मृगया के समय भी उसके पास दो या तीन चन्द्रगुप्त नारियाँ रहती थीं। राजा की रक्षा के लिए यमगियों की नियुक्ति भी प्रजा भारत में मीर्यकाण्ड के बहुत बाद तक चलती रही। इतना ही नहीं सम्राट की सुरक्षा के लिए अन्य उपाय भी किए गए थे। जिस समय सम्राट मृगया के लिए राज-प्रासाद से बाहर निकलता था उस समय उसका मार्ग रस्सियों से बिरा रहता था। जो व्यक्ति रस्सियों के काटने का प्रयास करता था उसे प्राण-बैठ दिया जाता था। राजा केवल चार अबसरों पर राज-प्रासाद से बाहर निकलता था—

(१) वृद्ध (२) यज्ञानुष्ठान (३) व्याध-विवाह तथा (४) आसत धार्मिक या अन्य सार्वजनिक उत्सव के अवसरों पर सम्राट मूलाय पालकी पर निकलता था। धार्मिक उत्सव के अवसरों पर-साही बल्लु की चमक-बमक अग्रिणी होती थी। अनेक सोने-चांदी से सुज्जित हाथी एवं घोड़वार, बलपण पाल्गु सिंहीं एवं पक्षियों से यह बल्लु भरा रहता था। चन्द्रगुप्त का अधिक समय राज-काज में व्यतीत होता था पर उस ललकट भावि से काफ़ी छीक था। यहाँ सड़ों हाथियों बैड़ों आदि की लड़ाई देखने में उसे विशेष आनन्द आता था। एवं-बीड़ तथा बुझीड़ भी इसके मनोरंजन के साधन थे।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि सम्राट वहाँ एक ओर कुशल शासक, कठोर सैनिक तथा योग्य रक्षक का जीवन व्यतीत करता था वहाँ दूसरी ओर विलासमय जीवन भी व्यतीत करता था।

चन्द्रगुप्त का जापनीय इतिहास में महत्त्व—इतिहास में चन्द्रगुप्त मीर्य का अपना अलग स्थान है और उसका अपना महत्त्व भी है। चन्द्रगुप्त की इस महानता के मूक में उसके कुछ विशेष उल्लेखनीय गुण हैं। यह एक महान विवेक उत्प्रेरक का शासनकर्ता, राजनीतिज्ञ प्रतिभावाली व्यक्ति के साथ-साथ एक महान देशरक्षक था।

जो लोग मॅपीलियन की तुलना समुद्रगुप्त से करते हैं वे यदि उसकी तुलना चन्द्रगुप्त मीर्य से करें तो अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि मॅपीलियन की माति चन्द्रगुप्त मीर्य की एक साधारण पक्ष से अपनी मुबानों के भल पर राज-वाद पर पहुँच सका था।

भारतीय इतिहास में यह प्रथम सम्राट था जिसने समस्त उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण भारत के एक बहुत बड़े भाग पर एकलतापूर्वक राज्य किया। चन्द्रगुप्त की महत्ता का सबसे बड़ा कारण तो यह है कि उसने देश की विदेशियों के अंगुल से छुड़ा कर उसे स्वयं बनाया। यूनानियों को देश से निकाल कर छोटे-छोटे राज्यों की निकाकर तथा राजनीतिक एकता स्थापित करने चन्द्रगुप्त ने देश की शक्तिशाली बना दिया था।

मुम्बर धामन-प्रक्रम की व्यवस्था करके चन्द्रगुप्त ने देश में शान्ति स्थापित कर दी जिससे आर्थिक सामाजिक और साहित्यिक एवं कला के क्षेत्रों में आसानी उत्पत्ति हुई। इसके दंड-विधान की कठोरता की निम्ना कुछ इतिहासकारों ने अभ्यस की है किन्तु इसकी कठोरता को ही प्रजा की शान्ति का कारण कहा जा सकता है। यह चन्द्रगुप्त के शासन-प्रक्रम की ही सुन्दरता का फल था कि अनेक ऐसे सामु प्रहति का सम्राट भी उस ओर साम्राज्यवादी यम में शान्तिपूर्वक राज्य कर सका।

बिम्बुसार

चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र बिम्बुसार मौर्य साम्राज्य के सिंहासन पर आसक्त हुआ। इतिहासकार बिम्बुसार को अनेक नामों से पुकारते हैं। ये सभी नाम संस्कृत के 'अभिजात' (रिपुघातक) के रूपान्तर प्रतीत होते हैं। जैन एवं राजवंशिक कथा में बिम्बुसार को सिंह सेन कहा गया है। सभी विदेशी लेखकों तथा आधुनिक पश्चिमी न चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र का जो नामकरण किया है उनमें पुराणों द्वारा दिया गया नाम ही ग्रहण किया गया है और उसके आधार पर ही हम उसे बिम्बुसार कहते हैं। बिम्बुसार के शासन का पूर्ण विवरण नहीं प्राप्त होता।

विशोह—चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-काल का वर्णन करते हुए यह बतलाया गया था कि मौर्य साम्राज्य में सभी विदेशियों की संख्या काफी थी। गुप्त रूप से पञ्चमन्य रत्न शालों की संख्या तो और भी अधिक थी। विष्णुवर्धन के कथानुसार हमें बिम्बुसार के शासन-काल में होने वाले उपद्रवों का ज्ञान प्राप्त होता है। निम्न ही चन्द्रगुप्त की अदम्य शक्ति के सम्मुख इन विदेशियों की मुक्त भागा पड़ा वा और इन्होंने कभी सर उठाने का साहस नहीं किया। बिम्बु अपने राजा की दुर्बल समझ कर विदेशियों ने विशोह कर दिया। परन्तु हम इस क्षात्रराज राज्य को अक्षरशः सत्य नहीं मान सकते क्योंकि विष्णुवर्धन तत्कालीन में होने वाले विशोह का वर्णन करता है। उसके समनार्थ जिस समय बिम्बुसार ने अपने पुत्र अशोक को सेवा से हटा दिया वह तत्कालीन पर्वत कर मार्ग में ही चलता है मिला जिसने निम्नलिखित कहा कि—

'म तो हम लोग राजकुमार के विरुद्ध हैं और न सम्राट के ही अपितु उन निर्बन्धी मंत्रियों के विरोधी हैं जो हमारा अपमान करते हैं।'

बाह्य नीति—बिम्बुसार का वाक्य-नीत्यक्ष इस राजशासक में हुआ था जिसने न केवल एक यूनानी राजा की अपितु यूनानी युवतियों की एक बहुत बड़ी संख्या थी। सम्भवतः उन विदेशियों के प्रति बिम्बुसार का कुछ मार्कपक्ष रहा होगा। उसने अपने पिता चन्द्रगुप्त तथा यूनानियों के सम्बन्ध की भी देखा था। बिम्बुसार ने यह भी देखा था कि विदेशियों की दीक्षा के लिए चन्द्रगुप्त ने एक पुष्क विनाय का निर्माण किया था। यह भी उसकी बाह्य नीति की प्रमाणित करने वाली पृष्ठभूमि। पुर्माप्यवश हमें बिम्बुसार के विभिन्न वैदेशिक सम्बन्धों का विवरण न प्राप्त होकर केवल यूनानियों से उसके सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त होता है। यूनानी इतिहासकारों ने अति लोक प्रिय सोच तथा बिम्बुसार के पञ्चमन्यरत्न का एक ममूना सुरक्षित रखा है। इससे ज्ञात होता है कि मौर्य सम्राट बिम्बुसार ने सीरिया के सम्राट अन्तिऑक से मधुर मदिरा खरीद और एक शार्पनिक की माँग की थी। उसके यूनानी मित्र ने बिम्बुसार की प्रथम दो माँगों की पूर्ति करते हुए जो उत्तर दिया है वह इस प्रकार है—

"मैं इस देश से तो बड़ी प्रसन्नता होती है, परन्तु अमान्यवश आपकी तीसरी इच्छा पूरी कर सकूँ वा क्योंकि देश का कानून शार्पनिक लेने के विरुद्ध है।"

मैससनीज के पश्चात् डेमोफ़स नाम का एक दूसरा राजकुल सीरिया सम्राट द्वारा बिम्बुसार के दरबार में सेवा गया था। स्प्री के कथानुसार इजिप्ट के राजा टालमी द्वितीय फिलिस्फ़स (२८५-२४७ ई. पू०) ने भी डायोनीसिस नामक राजकुल भारतीय राज-दरबार में सेवा था पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि डायोनीसिस बिम्बुसार अथवा अशोक में से किसके राज-दरबार में आया था।

बिन्दुसार का परिवार—केवल अशोक ही बिन्दुसार का अकेला पुत्र न था क्योंकि अशोक ने पाँचवें शिलालेख में यह बताया है कि उसके कई भाई और बहनें थीं। बिम्बावधान में अशोक के दो भाइयों का नाम सुसीम तथा बिगताशोक बताया गया है।

प्रश्न

१. चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में आप क्या जानते हैं? उसके प्रारम्भिक जीवन पर विचार रूप से प्रकाश डालिए।

२. चन्द्रगुप्त मौर्य की शांति पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए उसकी सैनिक उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।

३. चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रणाली पर प्रकाश डालिए। मेगस्थनीज के विवरण की प्रशंसा करते हुए उसके नगर-शासन पर संक्षेप प्रकाश डालें।

४. चन्द्रगुप्त मौर्य का भारतीय इतिहास में महत्व बताइए।

५. बिन्दुसार की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

■ Sketch briefly the rise of Chandragupta Maurya to power and give a brief account of the Central administrative machinery during his reign. (1958)

7. Give a brief account of the civil and military administration of Chandragupta Maurya. What are our chief sources of information for this? (1957 1953 1950.)

अध्याय १३

अशोक

बिम्बुसार के पश्चात् पाटिकपुत्र के सिंहासन पर उस महान सम्राट का पदार्पण हुआ जो भारतीय ही नहीं बरन् विश्व-इतिहास में अपने वैयक्तिक चरित्र तथा आदर्श के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इस महान् सम्राट को इतिहास में अशोक महान् कहा जाता है। अशोक ने जिस साम्राज्य पर शासन किया वह भारत का सबसे बड़ा साम्राज्य था। विश्व में विस्तारता के दृष्टिकोण से अनेक साम्राज्य तथा उनके शासक प्राप्त हो सकते हैं किन्तु विस्तृत साम्राज्य का सर्वश्रेष्ठ सम्राट होने के साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ मानव होना कठिन ही नहीं असम्भव है। श्रेष्ठ सम्राट, कुशल शासक तथा आदर्श मानव एक साथ एक व्यक्ति ही हो वह और कुछ नहीं प्रकृति का आश्चर्य है। इस परिच्छेद में हम उसी महान् विभूति अशोक के विषय में करेंगे।

अशोक का राज्याभिषेक—चन्द्रगुप्त ३२४ ई० पू० में यही पर बैठा और ३०० ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई। तदुपरांत बिम्बुसार सिंहासनाब्ध होता है जिसका पुराणों के अनुसार २५ वर्ष तक राज्य किया। इस साधन से तो बिम्बुसार की निबन्-तिथि २७५ ई० पू० मानी जा सकती है। ये सारे विवरण पुराणों के आधार पर दिये गये हैं जिनके अनुसार अशोक के राज्याभिषेक की तिथि २७५ ई० पू० होनी चाहिए, किन्तु बौद्ध अनुभूतियों के अनुसार बिम्बुसार ने २७-२८ वर्ष तक राज्य किया। यदि हम इस सत्य को सत्य मानें तो बिम्बुसार की निबन्-तिथि २७२-७३ ई० पू० सिद्ध होती है। सिह्नी अनुभूतियों के अनुसार अशोक का राज्याभिषेक बिम्बुसार की मृत्यु के चार वर्ष पश्चात् अर्थात् २९८-९९ ई० पू० में हुआ।

राज्याभिषेक का यह चार वर्ष का अन्तर—यदि वास्तव में कोई अन्तर रहा भी हो इतिहासकारों के समक्ष एक बहुत बड़ा प्रश्न उपस्थित कर बैठा है जो भी अशोक के चरित्र से सम्बन्धित है। इस चार वर्ष के अन्तर का कारण भी सिह्नी अनुभूतियों से आभासित हो जाता है। सिह्नी अनुभूतियों के अनुसार अशोक अत्यन्त निर्दयी तथा रक्त-पिपासु था जिसने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् ९९ माइयों की हत्या करके यही प्राप्त की थी। डा० स्मिथ इतना ही स्वीकार करते हैं कि सिंहासन के लिए अशोक को संघर्ष करना पड़ा और इसीलिए राज्याभिषेक में वेर हुई, किन्तु ये ९९ माइयों की हत्या करना स्वीकार नहीं करते। केवल सीतेले बड़े माई सुनीम से संघर्ष होना ही स्वीकार करते हैं। डा० भंडारकर भी सिह्नी अनुभूतियों का खंडन करते हुए स्मिथ महोदय का समर्थन करते हैं। बौद्ध अनुभूतियों से यह भी बात होता है कि सिंहासन के लिए अशोक को संघर्ष करना पड़ा था और उसने राजगृह की सहायता से अपने सीतेले माई सुनीम के समक्ष विजय पाई थी।

सम्राट अशोक की कर्त्तव्य विजय—महानदी तथा गीतावती के बीच स्थित कर्त्तव्य राज्य चन्द्रगुप्त मौर्य की विजयवासी सेना से अछूता रह गया था और इन प्रकार वह अब भी स्वयंज था। अशोक के तेरहवें शिलाशेख से हमें कर्त्तव्य-विजय का विवरण प्राप्त होता है। इन शिलालेख के अनुसार उड़ लाय बन्धी बना सिए गए, एक लाख

व्यक्ति मारे बने और उनसे कई युवा उमरी और सामरिक परिस्थितियों से मृत्यु के शिकार हुए जो सामान्यतः युद्ध के पश्चात् उपस्थित होती हैं। युद्ध की भयंकरता तथा मृत्यु की संख्या है कतिन राज्य के सैनिकों तथा वहाँ की जनता के त्याग एवं बलिदान का निरूपण होता है किन्तु ब्रह्मयुद्ध योर्मे द्वारा सुसंघटित सेना के सम्मुख कतिन राज्य के सैनिकों को नष्ट आना पड़ा और अधोः की विजय हुई। इस पर स्वतंत्रित विजय ने अधोः के जीवन में एक ऐसा परिवर्तन ला दिया जिससे सम्राट अधोः संतुष्ट हो गया।

धर्म-परामर्श अधोः—कतिन युद्ध के मरसंहार के तत्पश्चात् धर्म ने अधोः के हृदय पर जो झूठा छाया डाला उससे उसकी पैतृक सामरिक प्रवृत्ति का अंत हो गया और उसके स्थान पर मानवीय धर्म एवं नैतिकता का सहसा प्रभुत्व हुआ। धर्म-स्वरूप अधोः की नीति में पूर्णतया परिवर्तन हो गया। अधोः ने यह घोषणा कर दी कि अब वह स्वतंत्रता के स्थान पर सम्यक्ता करेगा। उसका यह निश्चय उसने स्वयं घोषित किया—किस से प्राप्त होता है।

इस विषय प्रतिभा धर्म पर धर्म मानव अधोः को किसी सम्प्रदाय विशेष की संकीर्ण सीमा में बाँधता उसकी महत्ता पर पर्दा डालता है। अधोः की सदाबलम्बी ही सत्ता है—उसी प्रकार जैसे महात्मा पीतम बुद्ध आर्य (हिन्दू) ने किन्तु अधोः का हृदय एवं मस्तिष्क सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न जीवनधारियों का सुपेक्ष है।

अधोः के धर्म के विषय में साधारणतया यह कहा गया जाता है कि वह बौद्ध अथावा बलम्बी था। कतिन-विषय के पश्चात् निश्चय ही अधोः ने बौद्ध धर्म का प्रथम विचार किया किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह बौद्ध धर्मावलम्बी था। अधोः वास्तव में एक ऐसे धर्म का अनुयायी था जिसे संस्थापक न कहा जाय जिसमें विश्व के समस्त धर्मों के मूल तत्वों का समावेश है। कोई भी धर्म ऐसा नहीं हो सकता जिसकी मूल प्रवृत्तियों किसी दूसरे धर्म से न मिलती हों। अब वहाँ केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि अधोः एक ऐसे धर्म का मानने वाला था जो समस्त धर्मों का निरालंकार था और इस धर्म की संज्ञा और कुछ नहीं केवल 'मानव-धर्म' या 'अधोः का धर्म' ही हो सकती है। अधोः के धर्म की कुछ विशेषताओं का उल्लेख ज्ञाने किया जायगा।

धार्मिक उपदेश के विषय—अधोः का धर्म सम्मानित नैतिक सिद्धान्तों तथा आचरणों का संग्रह है। अधोः के धर्म के उपदेश में कुछ विषय ऐसे थे जिनके आन्तरिक धर्म निम्नलिखित हैं—

(१) साधुता वा बहुकल्याण, (२) दया (३) दान (४) स्वयं (५) शौच तथा (६) मार्ग (आचरण)।

अपरोक्ष आन्तरिक धर्मों की प्राप्ति करने के लिए अधोः ने बाह्य उपकरणों का उल्लेख किया। इनके अन्तर्गत थे ही मनुष्य आन्तरिक धर्मों की प्राप्ति कर सकता है। ये निम्नलिखित हैं—

(१) पशु-वध का त्याग (२) अहिंसा (३) माता-पिता की सेवा, (४) बड़े लोगों की सुपूजा (५) धर्मों के प्रति आदर, (६) मित्र परिचित जाति-भ्राता, ब्राह्मण भक्तियों का आदर, (७) सेवाओं के साथ सत्यव्यवहार, (८) बौद्ध धर्म तथा बौद्ध संन्यास। पाप से दूर रहने के लिए या किसी सीमा तक इससे बचने के लिए अधोः ने निम्नलिखित नियमात्मक धर्म का भी उपदेश दिया—

(१) ब्रह्मता (२) निष्कृता (३) शौच, (४) अविमान तथा (५) ईर्ष्या।

अशोक के धर्म की विशेषता

अशोक के इस धर्म की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं —

(१) सार्वभौमिकता—अशोक का धर्म किसी जाति या वर्ग विशेष का धर्म न था। यह मानव-जाति का धर्म था। साम्प्रदायिकता की दृष्टि से कोई स्थान न था। इसकी यह सार्वभौमिकता ही इसे प्रभाव बनाती है।

(२) आदम्बरहीनता—अशोक स्वयं आदम्बरहीन व्यक्ति था जब उसने धर्म में भी आदम्बरों तथा धार्मिक विद्वन्मताओं का कहीं नाम न था।

(३) प्रायोगिकता—कोई दर्शन पर आधारित न रह कर अशोक का यह धर्म पूर्णरूपेण प्रायोगिक था। इसमें आचरण से सम्बन्धी नियमों पर विशेष जोर दिया गया था। दर्शन केवल मानसिक विकास के लिए उपयोगी हो सकता है पर धर्म के लक्ष्णे उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही बुद्धाचरण पर ही जोर देना अनिवार्य है जिस पर काफी जोर अशोक के धर्म में दिया गया है। उसके नियम ऐसे भी न थे कि सर्वसाधारण के लिए कठिन हो जायें। बुद्ध नैतिकता पर जोर देना ही अशोक का मुख्य उद्देश्य था।

(४) उदारता—उदारता इस धर्म की सर्वश्रेष्ठ विशेषता थी। इसकी उदारता विश्व के किसी धर्म में नहीं पाई जाती। कोई व्यक्ति बौद्ध नहीं हिन्दू तथा मुसलमान मान-मान नहीं हो सकता किन्तु अशोक के धर्म में इसकी उदारता थी कि सभी धर्मों तथा सम्प्रदायों के अनुयायी अपना-अपना विश्वास रखते हुए इस धर्म को स्वीकार कर सकते थे।

धर्म-प्रचार

अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अनेक साधनों का प्रयोग किया। यद्यपि कुछ इतिहासकारों का मत है कि अशोक ने केवल बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ ही इन साधनों का प्रयोग नहीं किया है अपितु स्वयं उसे अपने धर्म के प्रचार के लिए बिना भी। हो सकता है कि मानव-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उसने धर्म-प्रचार की ओर कदम बढ़ाया। अशोक अपने प्रयास में बहुत सफल हुआ। धर्म-प्रचार के निम्नलिखित साधन विशेष उत्तेजनीय हैं —

१ अशोक का व्यक्तित्व—विश्व प्रकार महारथी पौरुष बुद्ध के व्यक्तित्व ने उन्हें धर्म-प्रचार में बोल दिया ठीक उसी प्रकार (सम्राट होने के सम्भवत कुछ अधिक) अशोक के व्यक्तित्व ने उसे इन कार्यों में विशेष सफलता प्रदान की। अन्य धर्मग्रन्थों के लिये किसी सम्राट का एक विभू का जीवन बिताना प्रजा की उनके अनुकरण के लिए प्रेरित करने के लिए पर्याप्त है।

२ बौद्ध धर्म की राजदमन नीति करना—धार्मिक सहिष्णुता का बनावे रखते हुए भी अशोक ने बहुत ही गुप्त रीति से बौद्ध धर्म को राज धर्म बना दिया। अशोक के उत्तराधिकारियों ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। राजदमन ही जाने के बाद साम्राज्य अनन्त की दृष्टि भी बौद्ध धर्म की ओर झुक गई थी।

३ मठों का निर्माण तथा घोषित सहायता—बौद्ध धर्म के प्रचार में जिन साधनों ने विशेष योग दिया उनमें बौद्ध मठों का निर्माण का विशेष हाथ है। देश के विभिन्न भागों में बौद्ध मठ तथा विहार बन जाने से अधिक संख्या में भिक्षु तथा भिक्षुणियों के रहने का प्रबन्ध हुआ गया जो धर्मोपदेश में निरंतर मग्न रहते थे।

४ धर्म विभाग की स्थापना—अशोक ने अपने शासन प्रबन्ध में धर्म को ऊँचा स्थान देकर बौद्ध धर्म को विशेष प्रथम दिया। धर्म महामात्य नामक पदाविधारी की नियुक्ति करके अशोक ने सर्वसाधारण के नैतिक स्थान का ऊँचा उठाने का प्रयास किया। इसने लोगों की दृष्टि धर्म की ओर बढ़ा दी।

१ धर्म-यात्रा—अधोऽधो ने आठेठ तथा पुनः यात्रा स्वयित कर देन के पश्चात् धर्म-यात्रा की व्यवस्था की। कमिनीवन कपिलवस्तु, कुशीनगर, सारगम आदि स्वार्थों में समन करके अधोऽधो ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

२ धर्म-व्यवस्था की व्यवस्था—धर्म-प्रचार के लिए अधोऽधो ने धर्म-व्यवस्था की। उनका प्राथमिक ध्येय मुक्त आदि बड़े-बड़े राज-कर्मचारियों को भी इस कार्य में सहायता देने की पड़ती थी।

३ अहिंसा-धर्म का प्रचार—अधोऽधो ने अपने अभिलेखों में केवल इस बात का आदेश ही नहीं दिया कि पशुओं का नष्ट न किया जाय अपितु स्वयं इसका उदाहरण उपस्थित किया। विभिन्न हिंसक समाज आठेठ तथा राजकीय रणोद्देश में मांसाहार को बन्द कराकर अधोऽधो ने अहिंसा का उच्चादर्श जनता के सामने प्रस्तुत किया जिससे बौद्ध धर्म के पूरक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ।

४ सहायता—सम्पूर्ण साम्राज्य में अधोऽधो ने रीतिरिवाज, व्यवसायों की प्रवृत्तियों तथा असहायों का उचित प्रयत्न कर दिया था। उसके इस ध्यान का जनता पर बहुत ही कालिकायी प्रभाव पड़ा। दुर्बलों की सहायता की प्रवृत्ति सर्वसाधारण में उत्पन्न हुई।

५ धर्म-अभिलेख—अधोऽधो ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अपने धार्मिक उपदेशों को बट्टाओं तथा गुहाओं एवं प्रस्तर-स्तम्भों पर उत्कीर्ण कर के साम्राज्य के चारों ओर प्रसारित किया।

६ धर्म-प्रचारकों की नियुक्ति—अधोऽधो ने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ सिद्ध भिक्षुओं की नियुक्ति किया। चीन जापान सिङ्गपूर आदि देशों में भी अधोऽधो के धर्म-प्रचारक पर और उन्होंने धर्म-प्रचार किया। अधोऽधो के पुत्र महेंद्र तथा पुत्र संघमित्रा ने भी विराट् द्वार प्रेषित होकर उसी धर्म-विजय में योग दिया।

७ लोकहित कार्य—अधोऽधो ने सर्वसाधारण के हित लिए अक्षय्य खाखा एकत्रित किए जिससे जनता में अन्न का तथा अधोऽधो के धर्म के प्रति मिष्टेय अन्न उत्पन्न हो गई। जनता यह जानती थी कि धार्मिक प्रेरणा के फलस्वरूप ही अधोऽधो यह सब कर रहा है।

८ निरीक्षणों की नियुक्ति—अभिलेखों पर अक्षय्य खाखों का अनुकरण जनता सुचारु रूप से करती है या नहीं इस निरीक्षण के लिए अधोऽधो ने पदाधिकारियों की नियुक्ति की थी। जनता पर इस उचित अनुशासन न काफ़ी प्रभाव डाला।

९ बौद्ध संघीति—अधोऽधो ने बौद्ध धर्म के संवर्धन तथा प्रचार के लिए पूर्वीय बौद्ध संघीति का आयोजन किया। बौद्ध धर्म के संघों को बुर करने का उद्योग प्रयास इस बैठक में किया गया। परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म में थाने वाली विविधता का अन्त हो गया।

१० धर्मोपासना में धार्मिक संघों का सिद्धांत—जनसाधारण वाली में बौद्ध धर्मों की रचना की व्यवस्था करके अधोऽधो ने बौद्ध धर्म के प्रचार में विशेष योग दिया।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधोऽधो ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए महत् प्रयास किया। अधोऽधो के साम्राज्य का विस्तार अधोऽधो के साम्राज्य-विस्तार का साथ ही उसने अभिलेखों द्वारा अधिक स्पष्ट हो जाता है। अतः इस अधोऽधो के साम्राज्य-विस्तार को उसके अभिलेखों

के आधार पर निर्धारित करने। पहले हम यह देखेंगे कि दक्षिण-पश्चिम में उसका राज्य-विस्तार कहीं तक था क्योंकि दक्षिण-पश्चिम सीमा ही सीमा दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण थी। अशोक के चतुर्विध शिलालेख की एक प्रति कर्नात जिला में इरावडी नामक स्थान में प्राप्त हुई थी। बीली (पुरी) नौमड़ (बंजाम) नामक स्थानों में चतुर्विध शिलालेख की दो प्रतियाँ मिली हैं। इसी प्रकार बिछलपुर्य (मैसूर राज्य) में भी लघु शिला सेलों की तीन प्रतियाँ प्राप्त हुई थी जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि उत्तर-मैसूर अशोक के साम्राज्य की दक्षिण सीमा के भीतर था।

काल्मी (देहरादून) दमिलदेई मिन्नीन (नैपाक की तराई) में अशोक के दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर हम कह सकते हैं कि हिमालय पहाड़ तक अशोक का साम्राज्य फैला हुआ था।

लुम्बिनी, सङ्खासली तथा मल्लेश्वर के अभिलेखों से भी देहरीपड़मान पंजाब तथा सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी सीमाप्राप्ति की अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत किया जा सकता है। उक्त अभिलेख के प्रमाण का समर्थन जैनियों के बृहत्त से हो जाता है। विजयार (जुनावड़ के निकट) तथा सोवारा (बाना जिला) में भी चतुर्विध शिलालेख की अन्य दो प्रतियाँ मिली हैं जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि सीतापट्ट तथा दक्षिणी पश्चिमी भारत पर अशोक का आधिपत्य स्थापित था। इन्द्रायन के जुनावड़ वाले शिलालेख से विदित होता है कि सीतापट्ट पर तुपस्य नामक अशोक का प्राचीन शासक शासन करता था। काश्मीर पर अशोक का आधिपत्य होने का बृहत्त कम्बुज के राजतरंगिणी से प्राप्त होता है जैनियों भी इसका समर्थन करते हैं। इसी प्रकार ललितपुराण तथा रामपुरवाले स्मारकों से चम्पारन जिला तथा नैपाक की घाटी पर अशोक का अधिकार ज्ञात होता है। बंगाल पर भी अशोक का अधिकार था। इसका बोध हमें दिव्यावदान तथा जैनियों के बृहत्त से होता है। अशोक के द्वितीय एवं तृतीय शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि कम्बुज पाण्ड्य केरलपुत्र सतिमपुत्र उसकी सत्ता के अधीन नहीं रहे।

अशोक के अभिलेख

विश्व-इतिहास में अशोक के उच्च स्थान प्राप्त करने के प्रमुख कारणों में उसके अभिलेख भी हैं। अभिलेखों के विषय अशोक की महानता का निर्धारण मात्र ही नहीं करते अपितु वे सीधे भारतीय इतिहास पर भी पूर्ण प्रकाश डालते हैं। अतः अशोक का अध्ययन करते समय हमें उसके अभिलेखों का अध्ययन करना आवश्यक है।

सीधे हम अशोक के अभिलेखों के महत्व पर प्रकाश डालेंगे। निम्नलिखित दृष्टिकोणों से अशोक के अभिलेखों का काफी महत्व है —

साम्राज्य-सीमा का निर्धारण—अशोक के साम्राज्य विस्तार का वर्णन करते समय हमने कहा था कि इस विषय में हमें पूर्णतया उसके अभिलेखों पर ही आश्रित रहना पड़ता है। अभिलेखों के प्राप्ति स्थान के आधार पर हमने यह निष्कर्ष निकाला था कि मुसूर दक्षिण के पाण्ड्य अथवा सतिमपुत्र केरलपुत्र आदि को छोड़कर सम्पूर्ण भारत अशोक के अधीन था।

अशोक के धर्म का निर्धारण—यह विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अशोक की मठवाक्यावली का इस बात के समर्थक हमारी अभिलेखों का महाराज है। अशोक के व्यवहृत धर्म का बोध भी हमें इसी अभिलेखों से होता है।

अधोक्त के अरिज का निष्पन्न—इन अधिलेखों में अधोक्त का हृदय प्रतिबिम्बित होता है। वान सेवा आदि नैतिक आदर्शों के पोषक के रूप में अधोक्त हमारे सम्मुख इन्हीं अधिलेखों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। कल्पित विजय के परवान् अधोक्त ने अपने अधिलेखों में उस हृदय आनन्द बटना तथा मुक्त करने के निश्चय का प्रकाशन किया जिससे उसके दृढ़ निश्चय तथा कोमल हृदय का बोध होता है। अधिलेखों से ही हमें उसके महाबानी होने का ज्ञान प्राप्त होता है।

अधोक्त का वैदेशिक सम्बन्ध—अधोक्त के अधिलेख हमें इस बात का ज्ञान कराते हैं कि अधोक्त ने सीरिया एपरिज मिम सीरीन आदि देशों में अपने राजदूत भेजकर इन राज्यों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया था। इन अधिलेखों में हमें अधोक्त की विदेशी नीति का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है।

अधोक्त का तीन घातन-अवस्था का अनुशीलन—अधोक्त के अधिलेखों का उद्देश्य पूर्वतया धार्मिक (नैतिक) था तथापि उनसे तत्कालीन घातन सम्बन्धी राज्यशास्त्रों का बोध होता है जिन्हें अधोक्त न समय-समय पर प्रकाशित की थी। अधोक्त ने प्रजा के हित के लिए जो कुछ किया उसका भी बोध हमें अधिलेखों से होता है।

अब हम अधोक्त के अधिलेखों पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डालेंगे। मोटे तौर पर अधोक्त के अधिलेखों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं

- { अ } चिन्तालेख
- { ब } स्तम्भलेख तथा
- { घ } मुद्रालेख।

{ अ } अनुवध चिन्तालेख—इनकी संख्या १४ है। अतः इन्हें अनुवध चिन्तालेख की संज्ञा दी गई है। यह १४ चिन्तालेख निम्नलिखित स्थानों में प्राप्त हुये हैं—

- (१) सहसरायकी (पेशावर जिला), (२) मनसेहरा (हजारा जिला)
- (३) काठरी (बेहलान जिला) (४) मिर्गार (जुनायद के निकट) (५) बीली (पुरी जिला), (६) बीकड़ (पंजाब जिला) इरागुडी (कर्नाटक जिला), (८) सोपारा (बाना जिला)।

कल्पि के लेख—एकदम आदर तथा अपोदध चिन्तालेखों के बजाय किन्हे ह्वं बीली बीकड़ के दो पृथक् कल्पि अधिलेख हैं।

दो लघु चिन्ता लेख—इनमें से प्रथम लघु चिन्तालेख निम्नलिखित स्थानों में प्राप्त हुआ है—

- (१) कपनाय (बबलपुर जिला) सहसराय (भारा जिला) (२) बीराट (बबलपुर के निकट) (४) मरुकी (रायचू जिला) (५) सिद्धपुर, (६) बहगिरि (७) अतिम। ये तीनों स्थान मैसूर राज्य के भीतर हुए जिले में हैं। द्वितीय लघु चिन्तालेख (१) सिद्धपुर, (२) अतिम तथा बहगिरि में पाया गया है।

{ ब } स्तम्भ-लेख—स्तम्भ-लेख के अन्तर्गत सप्त स्तम्भ-लेख तथा लघु-स्तम्भ लेख सम्मिलित किये जाते हैं। सप्त स्तम्भ-लेख निम्नलिखित स्थानों में प्राप्त हुये हैं—

- | | |
|-------------------------|--------------------|
| { १ } टोपरा—दिल्ली | { २ } धरठ—दिल्ली |
| { ३ } कौलाम्नी—इलाहाबाद | { ४ } राय पुरवा |
| { ५ } सीरिया—नन्दाद | { ६ } सीरिया—अरधम। |

नम्र स्तम्भ-लेख—ये नम्र स्तम्भलेख साँची कीसाम्बी (इलाहाबाद) सारनाथ (बनारस) इम्मिनदेई तथा निगसिन्ध आदि स्थानों में प्राप्त हुए हैं।

(स) गुहा-लेख—गुहा-लेख में 'बराबर' बरीगुह के तीन अभिलेख सम्मिश्रित हैं। यथा से लगभग १९ मीट्र उत्तर की ओर बराबर नामक पहाड़ी स्थित है। इसी पहाड़ी की चार गुहाओं की तीन दीवारों पर यह अभिलेख अंकित हैं।

अभिलेखों की भाषा एवं लिपि—मानसेहरा तथा साहासगढ़ी के लेखों के अतिरिक्त छेपे सभी अभिलेखों की भाषा प्राकृत तथा लिपि हैब्राही-बाह्री लिपि की वर्तमान नामची लिपि का मूल कहा जाता है जो बाईं से दाहिनी ओर की लिखी जाती है। मानसेहरा तथा साहासगढ़ी के अभिलेखों की लिपि खरोष्ठी है। यह उर्दू की भाँति दाहिनी ओर से बाईं ओर की लिखी जाती है।

अशोक का शासन प्रबन्ध

अशोक को उत्तराधिकार के रूप में केवल एक विस्तृत साम्राज्य ही नहीं प्राप्त हुआ था अपितु सुख्यवस्थित शासन-व्यवस्था भी जो कुछल शासक चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा प्रतिपादित की गई थी प्राप्त हुई थी। चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-व्यवस्था में जोड़ा बहुत परिवर्तन एवं परिवर्धन करके ही अशोक ने शासन-प्रबन्ध किया। अशोक के शासन प्रबन्ध का आधार चन्द्रगुप्त मौर्य की ही शासन-व्यवस्था है। अशोक को अपने पिता मह चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रबन्ध में जो कुछ भी जोड़ा बहुत परिवर्तन-परिवर्धन करना पड़ा उसका मूल कारण उसकी नीतिकता एवं धार्मिकता है। अशोक के शासन प्रबन्ध का अध्ययन करने के पूर्व हमें उसके राजत्व सिद्धान्त पर विचार कर लेना आवश्यक है।

अशोक का राजत्व सिद्धान्त—अशोक एक आदर्श मानव था। उसकी नीति कता उसके जीवन की अनुशासिका थी। कल्पित-विषय के पूर्व का अशोक साम्राज्यवादी था किन्तु रक्तच्छावित बटना के पश्चात् का अशोक पहले मानव और तब सम्राट था—सम्राट भी इस अर्थ में कि वह कम से कम अपने साम्राज्य की सम्पूर्ण प्रजा को अपना पुत्र समझ सके उसका रखरक बन सके।

अशोक अपने जीवने स्तम्भलेख में प्रजा के प्रति वक्ष्यद् ही फूट पड़ने वाले अपने हार्दिक उद्गारों को इस प्रकार प्रकट करता है—“बिना प्रकार अनूप्य अपनी उन्मत्त को निपुण धाय को सौंपकर निश्चित हो जाता है और सोचता है कि वह धाय मेरे बालक की सुख पहुँचाने की अरपूर केष्टा करेगी उसी प्रकार प्रजा के हित और सुख के अभिप्राय से राजकु (राजकु) नाम के कर्मचारी नियुक्त किये हैं।” इससे अधिक स्पष्ट और कोई प्रमाण अशोक की प्रजाप्रियता का नाम नहीं हो सकता।

इस पृष्ठभूमि में हम अशोक के शासन प्रबन्ध को भली-भाँति समझ सकते हैं।

स्वाभत शासन—अशोक के लेखों में दिसालेख के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने ऐसा अनुमान लगाया है कि अशोक के अजीन कुछ ऐसे प्रदेश भी थे जो अप्रत्यक्ष रूप में तो अशोक की अजीनता स्वीकार करते थे किन्तु उन्हें स्वशासन का अधिकार प्राप्त था जैसे यवन कम्बोज नामक नामगति धान्यमोज तथा पारिय आदि। विशालों में उक्त प्रदेशों में से कुछ की स्थिति का अनुमान इस प्रकार लगाया है—यवन तथा कम्बोज राज। सम्भवत उत्तरी-पश्चिमी समुद्रतट अथवा बरार में और सम्भवत कृष्णा तथा गोदावरी नदियों के तटीय प्रदेश थे।

मंत्रि-परिषद—चन्द्रगुप्त के शासन प्रारम्भ के विषय में लिखते हुए यह कहा गया था कि उसके शासन-प्रारम्भ में भी मंत्रिपरिषद का बहुत बड़ा महत्व था। अशोक ने भी मंत्रि-परिषद को स्थापित रखा। वह भी राज-कार्य में मंत्रियों की राय को मान्यता प्रदान करता था। उसके बड़े शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि मंत्रिपरिषद को इस ज्ञान की काफी स्वतन्त्रता थी कि सम्राट से किसी बड़े विषय पर वाद-विवाद कर सके तथा अपना मत सम्राट को उसकी इच्छाओं के विरुद्ध दे सके। उक्त लेख में उसने इस प्रकार चोपणा की है "यदि परिषद में (महामानों के) कोई राज-सम्बन्धी समस्या मेरे प्राण की गई किसी मौखिक चोपणा के सम्मन्ध में व्यवसा महामानों के सुपुर्ष कर दिये गये किसी आवश्यक कार्य के विषय में विवाद या सुधार का प्रस्ताव उपस्थित किया जाय वा उसकी सूचना मुझ उसी अथ मिलनी चाहिये चाहे मैं कही भी छूँ और कौन भी समय हो।

प्रारम्भिक शासन—शासन के दृष्टिकोण से बीसा कि अभिलेखों से ज्ञात होता है मनुष्य साम्राज्य चार क्षेत्रों में विभाजित था। ये निम्नलिखित थे

(१) वल्लिषिका (२) उज्जयिनी (३) तोषकी तथा (४) सुवर्मावर्ति।

राजा का सहायक 'उपराज' होता था। वह राजकुलीन व्यक्ति होता था। अशोक का बाई विषय उसका उपराज था। 'उपराज' भी राजकार्य में सम्राट की सहायता करता था। इसी प्रकार अग्रमार्थ भी राजा का प्रमुख सहायक था। अशोक के समय में चन्द्रगुप्त अग्रमार्थ थे। राजकुमारों (कुमार अथवा आर्यपुत्र) से भी सम्राट शासन प्रारम्भ में सहायता लेता था। इनकी नियुक्ति सुदूरस्थ प्रांतों में की जाती थी क्योंकि उनमें राजमन्त्रि की पूर्ण आज्ञा थी और सुदूरस्थ प्रांतों में इसी कोटि के शासक की आवश्यकता थी।

अशोक के पदाधिकारी—अशोक के अभिलेखों से हमें विभिन्न प्रकार के पदाधिकारियों का बोध होता है। उनमें से अधिकोद्य अर्थशास्त्र में उल्लिखित पदाधिकारियों से मिलते-जुलते हैं। केवल बर्म-सम्बन्धी पदाधिकारी नहीं हैं। डा० हेमचन्द्र राय चौधरी ने निम्नलिखित बारह प्रकार के पदाधिकारियों का उल्लेख किया है —

(१) महापात्र (२) राजुक (३) रक्षिक (४) प्रादेशिक (५) युव अथवा युक्त (६) पुत्तिय (७) पतिवेरक, (८) वज्र भूमिका (९) विधिकार, (१०) दूत (११) आयुक्त तथा (१२) कारकक।

नीचे इन पदाधिकारियों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा।

बर्म महापात्र—चन्द्रगुप्त के शासन-काल में बर्म महापात्र नामक पदाधिकारी नहीं था। अशोक ने इसकी नियुक्ति सर्वप्रथम की थी। स्मिथ महोदय ने बर्म महापात्रों को 'निरीक्षक' (*epitaph*) कहा है। पर स्मिथ महोदय ने उनके कर्तव्यों को समझने में कुछ भूल की है। वास्तव में बर्म महापात्रों का कार्य केवल 'निरीक्षक' ही न था बल्कि उनके ऊपर कुछ और भी वारिमत्ता एवं नैतिकता सम्बन्धी उत्तरादायित्व थे। अशोक का प्रथम शिलालेख स्वयं ही बर्म महापात्रों कर्तव्यों का स्पष्टीकरण कर देता है—

"आज के पूर्व निष्कट में यतीत में कभी बर्म महापात्र नहीं रहे। अपन राज्या भित्त के ठेकर बर्म के परचात् मैंने ही उनकी नियुक्ति की। वे सभी सम्प्रदायों के बीच नियुक्ति किये गये हैं और उनका कार्य बर्म की स्थापना करना बर्म की घोषणा करना तथा ब्रह्मचरियों की उत्तम सुरक्षा एवं आनन्द के लिए प्रयत्न करना है। 'बर्म' बर्म ने लोगों के बीच उपस्थित रह कर क्या बाह्यत क्या गृह्यति क्या अनाथ और क्या बृद्ध

अथवा बहु संतान के मार से बचे हुए अथवा घोपित जन अथवा भर्त्त टोक ग्रहण कर मनुकरी या मितास पर निर्वाह करने वाले सभी व्यक्तियों को उनकी आवश्यकतानुसार उचित सहायता देना इन्हीं चर्मे महामानों का कर्तव्य था।

महामात्र—साम्राज्य के जिसे तथा नगरों में महामात्र स्वतंत्रतापूर्वक विवरण किया करते थे। अथोक के सिक्कासेलों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि पाण्डित्य की साम्बी तीव्रती स्वर्धमिरी तथा समाया में महामात्रों की नियुक्ति की गई थी। विभिन्न प्रकार के महामात्रों का उल्लेख अथोक के सिक्कासेलों में किया गया है—उदाहरणार्थ कर्त्तव्य सिक्कासेल में 'नयसक' तथा 'नगल कियोहसक' महामात्रों का उल्लेख किया गया है। डा० हेमचन्द्र राय जीवरी के मतानुसार में क्रमशः अर्थशास्त्र के 'नायसक' तथा पौर व्यवहारिक है। प्रथम स्तम्भसेल में भी अन्तमहामात्र का उल्लेख मिलता है। यह सम्भवतः अर्थशास्त्र का कल्पना है। इसी प्रकार कारुण्य सिक्कासेल में 'इविस्सक' महामात्र का उल्लेख किया गया है। यह सम्भवतः 'स्त्रीमय' है।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा ज्ञात होता है कि विभिन्न नामों के किए विभिन्न प्रकार के महामात्रों की नियुक्ति की गई थी। ये महामात्र अपने-अपने विभागों के अध्यक्ष थे तथा उस विभाग का पूर्ण उत्तरदायित्व इनके ऊपर था।

राजकु—डा सिमर के कथानुसार राजकु भी सर्वज्ञ होता था किन्तु उसका पर कुमार से नीचा था। ये भूमि तथा न्याय के अधिकारी थे। इनके अधिकार विस्तृत थे। अथोक के चतुर्थ स्तम्भसेल का उल्लेख शारम्म में ही किया गया है जिसमें अथोक 'राजकु' (राजकु) की नियुक्ति की घोषणा करता है। इस अभिलेख से राजकु के महत्व का बोध होता है और यह भी ज्ञात होता है कि वह कई जगह मनुष्यों पर शासन करता था। जनपदा की देखभाल करना इनका प्रमुख कार्य था। किसी को सम्मानित एवं उचित करने का भी इन्हें पूर्ण अधिकार था। राजिन तथा युक्त राजकु को सहायता करते थे।

प्रादेशिक—प्रादेशिक का स्थान भी काफी महत्वपूर्ण था। अथोक के सिक्का सेलों से यह ज्ञात होता है कि ये प्रांतीय शासन के प्रधान थे तथा वाहसठय के नीचे थे। अश्वामन के कृताग्र अभिलेख से मौर्यकालीन दो प्रांतीय गवर्नरों के नाम प्राप्त होते हैं—(१) पुष्य वृष्ठ को अश्ववृष्ठ के समय में सीरपट्ट का गवर्नर था तथा (२) तुपास को अथोक के समय में सीरपट्ट का गवर्नर था। तुपास पारसिक नाम है अतः इससे ज्ञात होता है कि राज कर्मचारी की नियुक्ति में सम्राट अथोक किसी प्रकार जातीय या धर्मी-विधेयी भेद नहीं रखता था। यह उसके नार्मिक धर्मिण्युता था भी परिचायक है।

राज अथवा वृक्ष—प्रादेशिक के बाद वृक्ष अथवा अर्थशास्त्र के वृक्ष का उल्लेख अभिलेखों में किया गया है। ये अपने सहायक उपवृक्ष की सहायता से बिना कोय की रेश रेश राजकीय संपत्ति का निरीक्षण भालगुजारी वसुधने तथा सर्व करने लेता-जोता एगने जादि का काम करते थे। मनु ने भी अपनी स्मृति में इस पदाधिकारी का उल्लेख किया है और उसका कर्तव्य लोई हुई वस्तुओं की पुनर्प्राप्ति के पक्षपात रखा करना बताया है। कीटिस्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में 'वृक्ष' का उल्लेख करते हुए उसे 'राज संपत्ति का प्रबन्धक' बताया है।

अथोक के अधिकारी सर्वथा इस बात का ध्यान रखते थे कि वे कोई भी ऐसी कार्य न करें जिसे अथोक की मार्मिकता की ठेस पहुँचे। प्रतिवेष्टों की उसन यह

जाता है रही थी कि महामार्गों या धर्म-परिषद के कार्यों की सुचना उसे बराबर देते रहे। इसी प्रकार पूर्वनिश्चित पञ्चाधिकारियों को भी उसने सबैव प्रजाहित कार्य में संवेष्ट करने की आज्ञा दी थी।

अशोक के निर्माण-कार्य

अशोक केवल इसीलिए नहीं प्रसिद्ध है कि उसने धार्मिक क्षेत्र में अद्वितीय प्रवृत्ति का भी अपितु वास्तु-कला के क्षेत्र में भी उसने आश्चर्यजनक प्रवृत्ति ला दी थी। इस क्षेत्र में अशोक ने सबसे महान् कार्य यह किया कि उसने समूहियों तथा ईदों के स्थान पर पत्थरों का प्रयोग कराया। उसे नगरों का निर्माण तथा उन्हें सुसज्जित कराने का काफी धौक था। अनुभूतियों के अनुसार अशोक ने काशी में भीनमर तथा नीलाचल में अस्तिपादन नामक नगरों का निर्माण कराया था। अनुभूतियाँ अशोक को महान् निर्माता के रूप में उपस्थित करते हुए बतलाती हैं कि उसने नगरों की सब धन का काफी प्रयास किया। महावंश के अनुसार अशोक ने अपने उपराजाओं द्वारा सम्पूर्ण भारत में चौकसी हजार स्तूपों का निर्माण कराया था। जेनरल ने भी अनुभूतियों का समर्थन करते हुए लिखा है कि अशोक ने महारामा वीरम बुद्ध के आठ स्तूपों में सुज्जित अस्ति-अवधेयों की चौकसी हजार स्तूपों में रक्खवाया।

अहिमस ने पाटलिपुत्र में अशोक का राजमहल देखकर चकित होते हुए कहा था कि 'इसे कोई भी मानव हाथ इस संसार में नहीं बना सकता।

बृहत्तर नामक बिन बुद्धाओं का निर्माण पया बिके में आनीतिको के निवासावे करवाया पया था उनकी छत तथा बीचारे बधसेप के कारण सीस-नी कमकती है। अशोक के महान्-निर्माण-कार्यों में स्तम्भ-निर्माण सर्वश्रेष्ठ है। वे स्तम्भ चुनार के पत्थरों के बने हैं जो नीचे काफी मोटे और ऊपर पतले हैं। इनकी ऊँचाई ४-५० फुट तथा वजन लगभग ५० टन है। शिखर पिट्टियों पर से बँटाकर हो गये हैं और बिस्तृत ऊपर बिहु, बीस गज जलवा जल की आकृतियाँ बनी हैं। पशु-आकृतियाँ अत्यन्त सजीव हैं। इनकी पाठिस तथा कबीरता को देखकर ही पाश्चात्य-कलाविचारकों ने इन्हें विदेशी धौक अपना पागली सीली से प्रभावित बतलाया है। इनकी पामिस तो निश्चय ही आश्चर्यजनक है। अनेक विद्वानों ने आरम्भ में इन्हें बापाम निमित्त न जानकर बातु-निमित्त समझने की भूल की थी। सिम बहोदर ने इन स्तम्भों की प्रशंसा में लिखा है कि इनका "निर्माण स्वामान्तर तथा स्वापन मीय कामीन दिव्याचार्यों एवं मिस्य तलकों की बुद्धि और कुशलता का अद्भुत प्रभाव प्रतिष्ठित करते हैं।" स्तम्भों की सुन्दरता से ही अधिक विस्मय वस्तु उनका एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना था। चुनार की पहाड़ियों को काटकर बनाए हुए पाँच स्तम्भ पाँच पाठ-सी नील दूर मेरठ जैसे स्थान पर से बाकर निर्मित किए जायें और वह भी उस युग में जब बाता-पाठ के साधन बहुत सीमित थे एक आश्चर्य ही था। सिम बहोदर ने तारीख-ए-फिरोजशाही के आधार पर स्तम्भों के स्वामान्तरय की कतिनाई का उदाहरण प्रस्तुत किया है। बर्नन इस प्रकार है कि फिरोजशाह गुप्तकाल अम्बाला के निकट टीपरा नामक स्थान से टीपरा-दिल्ली, स्तम्भ की केवल बाह्य मील दूर दिल्ली जामा बाहुता था उसे ४२ पहियों बाधी पाड़ियों में ८४ हजार आदमियों की सपाने की बरूरत पड़ी थी। मिश्र-ए-फिरोजशाही के अनुसार सर्वप्रथम हाजियों का प्रयोग किया गया था और तब २० हजार मनुष्यों का। इस प्रकार हम देखते हैं कि बिन स्तम्भों को बजाकर मध्य प्रदेश की ऊँची-नीची पहाड़ियों तथा तीव्रपतिताली गहरी नदियों को पारकर आठ-नी-

सौ मील दूर जूनार से हैदराबाद राज्य में २५१ ई. पू० के समय के मया या जूनी स्तम्भों में से एक को केवल १२ मील दूर के जाने में १९५१ ई० में फिरोज तुगलक को नाकों बन बनाने पड़े।

असोक के उत्तराधिकारी—असोक के पाँच पुत्रों का उल्लेख विभिन्न स्तंभों में किया गया है। इनके नाम हैं कुषाक तोवर, महेंद्र कुस्तान और बासीक। असोक के राज्य विहासन का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कुषासकुमा बितने जाठ वपों तक शासन किया।

बुद्धय मौर्य बंध का अन्तिम सम्राट था। यह बिकासी और अकर्मण्य का और सेना के सम्पर्क से सर्वथा विरक्त रहता था। फलतः उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने सेना के सामने उसका वध कर दिया और मौर्य साम्राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया।

मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

जिस विघात राज्य की स्थापना चन्द्रगुप्त मौर्य ने की बिन्दुसार ने जिसमें आधा-तीन प्रसार किया तथा असोक ने जिसे व्यापारिकता के बहुत बन्धन में बाँधा उसका पतन कुछ कारणों से असाध्य की मृत्यु के कुछ समय बाद ही आरम्भ हो गया। मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) शासन-सम्बन्धी (२) सामाजिक तथा (३) बाह्य आक्रमण। नीचे इनका पृथक्-पृथक् विवेचन किया जायगा।

(१) शासन-सम्बन्धी—असोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य में अनेक कालक कुम्भबस्त्राओं तथा दुर्बलताओं ने घर कर लिया जिनके परिणामस्वरूप मौर्य साम्राज्य की पतन की ओर झुकना पड़ा। इनमें से कुछ दुर्बलताएँ असोक के समय से ही बची जा रही थीं। शासन-सम्बन्धी दुर्बलताओं को यदि राजनीतिक कारण कहा जाय तो उचित होगा। मौर्य साम्राज्य के पतन में निम्नलिखित राजनीतिक कारण विशेष उल्लेखनीय हैं —

(क) अयोग्य उत्तराधिकारी—असोक के उत्तराधिकारी कुषाक बासीक महेंद्र सम्प्रति बंधारण इन्द्रपाति सोमधर्मा सनकन्धा तथा बुद्धय आदि दुर्बल थे और उनमें इतनी क्षमता न थी कि मौर्य साम्राज्य को संस्थापित कर सकें।

(ख) साम्राज्य की विघातता—दुर्बल उत्तराधिकारियों से सम्भवतः कोई छोट-मोटा राज्य संभासा जा सकता था पर मौर्य साम्राज्य से विघात साम्राज्य का संभासने के लिए किसी चन्द्रगुप्त की ही आवश्यकता थी। विघात साम्राज्य में विद्रोहों की आसक्ति अधिक रहती है। इतिहास में साम्राज्य-विस्तार हो जाने के पश्चात् यह अनिवार्य था कि राजधानी केन्द्र में हो और केन्द्रीय शासन सुदृढ़ हो।

(ग) कर्मचारियों की अयोग्यता निर्बलता तथा उनमें राजभक्ति की अस्पष्टता—मौर्य साम्राज्य से शुरू प्राक्तों के अधिकारी केन्द्रीय शासन की नीला पाकर या यह जानकर कि हमारी निश्चयता का ज्ञान सम्राट को न होगा अपनी प्रजा पर अत्याचार किया करते थे। बिन्दुसार ने समय में भी तथ्यविज्ञान में प्रजा ने अधिकारियों के अधिकृत

विद्रोह किया था जिसके समानार्थ स्वयं अधोः गया था इसी प्रकार अधोः के प्रकार काक में भी लक्षितता में विद्रोह हुआ था जिसके समानार्थ कुभास भेजा गया था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सुपूर बलिय की प्रजा राज्याधिकारी के दुर्व्यवहारों से असन्तुष्ट थी और उसमें विद्रोह की भाव प्रकट रही थी। राज्य-कर्मचारी निर्दयी और शान-सान अधोः भी वे जिसने जनता में अधिक असन्तोष फैल जाता था और जनता के असन्तोष को बढ़ाने में वे सर्वथा असफल रहते थे।

उत्तर कालीन राम कर्मचारी राम-मन्त्रि से बहुत दूर थे। उनके स्वार्थ की भावना अधिक थी। वे विद्रोही होते जा रहे थे। पुष्पमित्र धृग का उग्रहरण हीनपनी मुष्टि से किए पराजित है।

(ग) अधोः की अहिंसा की नीति तथा सैनिक दुर्बलता—अधोः ने अहिंसा की इतनी प्रधानता दी थी कि मौर्य-साम्राज्य के बन्ने-बन्ने में अहिंसा की भावना जाग्रत हो उठी थी। हथियारों पर पूर्णतः अवलंब और सत्कार्य में कड़ा जमी हो गया। सामरिक प्रवृत्ति का अन्त हो जाना उस दिन किसी भी सम्राट के लिए अहितकर था।

(घ) स्व-नीय राजाओं की स्वतन्त्रता की भावना—अधोः ने स्वाधीन राजाओं की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी। परिणाम यह हुआ कि सामन का दुर्बल होना केवल इन राजाओं ने स्वतन्त्र होने का प्रस्ताव करना आरम्भ कर दिया।

(२) साम्याधिकार—साम्याधिकार में प्रथम ब्राह्मणों का विद्रोह आता है। वे ब्राह्मण अधोः के उत्तराधिकारियों से असन्तुष्ट थे क्योंकि इन्होंने बौद्धों तथा जैनियों का पक्ष लिया था।

साम्याधिकार का कामगजक भी इसी के अन्तर्गत है। अधोः ने त्रिभुजाधारित शासन का सुझाव दिया था उसमें यदि साम्राज्य-पतन नहीं होता है तो बौद्धों की सम्मानना भी न थी। राजनीतिक उदासीनता और साम्यात्म की ओर विशेष रुचि साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुए।

(३) ब्राह्मण आक्रमण—उत्तर पश्चिम में वैजिद्रा के यवनों के आक्रमण का चालक प्रभाव इस साम्राज्य पर पड़ा। बहुतों हुए साम्राज्य के लिए यह आक्रमण मुकान बन गया।

उपरोक्त कारणों में मुख्य मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया। अन्तिम मौर्य-शासक ब्रह्मण की हत्या करके पुष्पमित्र धृगने शासन अपने हाथ में कर लिया। इस प्रकार ब्राह्मण (आक्रमण) द्वारा बिकाना गया साम्राज्य एक दूसरे ब्राह्मण (पुष्पमित्र धृग) द्वारा जीत लिया गया।

प्रश्न

१. अधोः कौन था? उसके भारतीय इतिहास में क्यों इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

२. अधोः की महानता का उल्लेख करते हुए उसकी चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। (१९५१)

भारतीय इतिहास

- ३ अशोक के प्रारम्भिक जीवन का संक्षिप्त परिचय देते हुए उस चटना का संक्षेप कीजिए जिसने उसे बौद्ध धर्मानुयायी बनाया।
- ४ क्या अशोक एक बौद्ध था? अपने मत के समर्थन में प्रमाण प्रस्तुत कीजिए।
- ५ अशोक ने बौद्ध धर्म प्रचारार्थ क्या किया? (१९५४)
- ६ अशोक के धर्म के विषय में आप क्या जानते हैं? (१९५५, १९५६)
- ७ अशोक काहीन भारतीय शासन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
- ८ मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए। क्या यह सब कि साम्राज्य के पतन में अशोक की शांति-नीति का भी हाथ था?
- ९ *Asoka is one of the greatest monarchs in history. Discuss the statement. (1947 1953)*
- १० *What do you know about the character and personality of Asoka? Explain his idea of "Dharma. (1948)*
- ११ *Asoka's victories were victories of peace and not of war. Discuss. (1949)*
- १२ *Give your estimate of the character and achievements of Asoka. (1950 1951)*

मौर्यकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

सामाजिक व्यवस्था

समाज की रचना—मौर्यकालीन समाज की रचना का ज्ञान हमें अर्थशास्त्र और मेगस्थनीज के विवरण द्वारा होता है किन्तु इन दोनों साक्ष्यों से जो सूचना प्राप्त होती है वह परस्पर कुछ विभिन्न प्रतीत होती है। अर्थशास्त्र में चारों वर्गों का उल्लेख मिला है—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। इनके कर्तव्यों और सामाजिक जीवन व वर्णन में अर्थशास्त्र अन्य धर्म-शास्त्रों से पर्याप्त समानता रखता है। कौटिल्य ने स्पष्ट कहा है कि राजा का कर्तव्य है कि वह चारों वर्गों और उनके आन्तरिक-वर्ग की रक्षा करे। मेगस्थनीज ने जाति-व्यवस्था का वर्णन कुछ विभिन्न प्रकार से किया है। उसने आठ जातियों का उल्लेख किया है और कहा है कि देश की सम्पूर्ण जनता इन आठ जातियों में विभक्त है। ये जातियाँ निम्नलिखित थी —

(१) धार्मिक (२) कृषक (३) गोपालक (४) कारीगर (५) वैदिकधर्म (६) गुप्तधर्म निरोधक और (७) अमात्य या राज्य के उच्च पदाधिकारी।

मेगस्थनीज ने इन जातियों का वर्णन कर चुकने के बाद कहा है कि किसी को भी अपने जाति के बाहर विवाह करने का अधिकार नहीं है और न कोई व्यक्ति अपनी जाति या व्यवसाय परिवर्तित हो कर सकता है। जातिकृत नियमों की यह कठोरता निःसन्देह ब्राह्मण धर्म का अनुसरण करती है परन्तु इस विषय में स्पष्ट कहा जा सकता है कि मेगस्थनीज का यह कथन उस युग की वास्तविक स्थिति को सूचित करता है। अन्तरजातीय विवाह मौर्ययुग में प्रचलित थे और लोगों के व्यवसाय-परिवर्तन के उदाहरण भी मिल जाते हैं। अन्तरजातीय विवाह की पुष्टि कौटिल्य ने भी की है। मेगस्थनीज के इस जाति-वर्णन के विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि इससे यह प्रतीत होता है कि उसने भारत की कालीन सामाजिक व्यवस्था की समझने में त्रुटि की। उसने अमरस भीमों के व्यवसायों और उद्यमों को उनकी जाति समझ लिया। मान्य होता है कि जातियों की अपेक्षा वह लोगों के व्यवसायों से ही अधिक परिचित था। मेगस्थनीज ने अपने विवरणों में कहीं भी जातिवर्णन का उल्लेख नहीं किया है। इससे कहा जा सकता है कि मौर्य-युग में समाज का विभाजन अधिकतर रूप से जातियों और व्यवसायों के सम्मिश्रण पर ही आधारित था। ब्राह्मण-धर्मों में नियमों की बिल्ड कठोरता का उल्लेख किया गया है वह समाज में प्रायः अज्ञात थी।

विवाह-प्रथा—गामाधिक जीवन की आधार-शिला उन दिनों भी आज की भाँति विवाह संस्था ही थी। अर्थशास्त्र में विवाह की आठ विभिन्न बरखाई गई हैं जिनके बारे में हम पहले ही पढ़ चुके हैं।

कीटनिक जीवन और नारी के स्थान—मौर्य काल में संयुक्त परिवार

की प्रथा विद्यमान थी यद्यपि कभी-कभी संयुक्त परिवार का विच्छेद भी हो जाता था। जैसे साधारण तौर पर पति-पत्नी का सम्बन्ध पारस्परिक स्नेह और सम्मान पर आधारित था किन्तु सामान्य जीवन में कुछ कमियाँ भी आ गई थीं। बहुपत्नीत्व की प्रथा इन कमियों के लिए उत्तरदायिनी थी। अपनी ही जाति की कन्या से विवाह-सम्बन्ध द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होती थी उसका सामाजिक स्तर उन संतानों की अपेक्षा नहीं अधिक ऊँचा था जिसका जन्म अन्य जातियों की कन्याओं के गर्भ से होता है। उत्तराधिकार इत्यादि के प्रश्न पर इस प्रकार की असमानताओं काफ़ी महत्वपूर्ण समझी जाती थी जिससे पति-पत्नी के सम्बन्ध में कटुता अवश्य उत्पन्न हो जाती रही होती। बहुपत्नीत्व की प्रथा ने न केवल पारिवारिक जीवन का रूप बिह्वल कर दिया अपितु इसके परिवार के जीवन में पत्नी का स्थान काफ़ी निम्न हो गया।

पारिवारिक जीवन में पत्नी का स्थान अपेक्षाकृत निम्नतर है जाने पर भी मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति कुछ विषयों में संतोषजनक रही जा सकती है। विधवा विवाह की भी इस समय व्यवस्था थी। पति के दुर्घटनहार करने पर स्त्री स्वाम्यात्म्य में स्वायत्तता प्राप्त कर सकती थी। उसे परिवार की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था। विवाह के अवसर पर बड़े-बड़े उपहार आदि के रूप में भी सम्पत्ति प्राप्त होती थी उस पर उसका पूरा अधिकार होता था और वह अपनी इच्छानुसार उनका प्रयोग कर सकती थी।

स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र पुष्टों के कार्य-क्षेत्र से काफ़ी भिन्न था। इस विषय में कौटिल्य का विधान अन्य साह्य स्मृतिकारों के विधानों से काफ़ी भिन्नता जुटाता है। कौटिल्य ने स्त्रियों के लिए उष्ण विद्या को निषिद्ध बताया है। कौटिल्य का यह मत उनके दृष्टिकोण से स्वाभाविक ही प्रतीत होता है क्योंकि वे स्त्रियों को सन्तान उत्पन्न करने का साधन मात्र समझते थे। स्त्रियाँ प्रायः घर में ही रूढ़ करती थी। शिक्षा से वंचित होने पर साधारण रूप में स्त्रियों का मानसिक क्षितिज संकुचित होता था वे ताला प्रकार के विभिन्न-विधानों में विश्वास करती थी। अशोक के एक शिलालेख से इस बात का प्रमाण मिलता है कि प्रायः स्त्रियाँ अपनी संयस्यकाओं की प्रतिमूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के अर्घ्यविन्यासों को अपनाती थीं।

मारियों को कलाओं की शिक्षा प्राप्त करने की भी सुविधायें प्राप्त थीं। कुछ स्त्रियाँ संगीत मूल्य तथा विश्लेषण आदि कठिन कलाओं में निपुणता प्राप्त करती थी। इसका ही नहीं सैनिक व्यवस्था अपनाने का मार्ग भी स्त्रियों के लिए सर्वथा अवरोध नहीं था। मेगास्थनीज ने चन्द्रगुप्त की महिला अंगरक्षिकाओं का उल्लेख किया है। वह कहता है "कुछ स्त्रियाँ रथों पर, कुछ अश्वों पर एवं कुछ हाथियों पर आरुढ़ होती हैं और वे प्रत्येक प्रकार के घटनाक्रम से सुसज्जित रहती हैं। ऐसा मामूली वस्तु है जैसे वे किसी आक्रमण के लिए जा रही हों। परन्तु सैन्य व्यवस्था ग्रहण करने वाली स्त्रियों में अधिकारों विदेशी जातियों की होती थी। महिला-अंगरक्षिकाओं का उल्लेख अर्थशास्त्र में भी हुआ है।

सामूहिक-प्रमोद—मौर्य काल के लोगों का जीवन अत्यन्त मुसी और आनन्द प्रमोदमय था। बाँधों में सार्वजनिक बालाएँ हुआ करती थीं जहाँ सामूहिक रूप से उत्सव आदि का आयोजन होता था। अशोक के शिलालेखों में उत्सवों तथा समारोहों का उल्लेख मिलता है। इन उत्सव-अवसरों पर स्त्रीय मस्त होकर गाने-बजाते थे। विभिन्न

प्रकार के बाह-सम्पर्कों का वापन ऐसे अवसरों पर एक प्रमुख कृत्य समझा जाता था। समाजों और उत्सवों के संयोजनकर्ताओं को इस कार्य के लिए राज्य की ओर से आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी। समाजों और उत्सवों का संयोजन सरम्भवी शिव बड़ा भारि देवताओं के आदर में किया जाता था। ऐसे अवसरों पर मस्तपुत्र जुमा करते थे जिनमें मामूली के लिये दूर-दूर से पहलवान आता करते थे। एलियन नामक मूनानी लेखक ने इन मस्तपुत्रों के विषय में लिखा है। उसने मनुष्यों और हाथियों तथा बय पशुओं के वर्णों का उल्लेख किया है। उसने रथों की दौड़ के विषय में कहा है कि पाटिक्पुत्र में ये रथ दौड़ अधिकता से जुमा करते थे जिनमें अच्छे-बख्शे बंस और जोड़े जुते रहते थे। मनुष्यों और पशुओं के मस्तपुत्रों में प्रायः भीषण रक्तपात हो जाता करता था। इतिवृत्त अक्षोक ने ऐसे समाजों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। परन्तु अन्य प्रकार के सामाजिक प्रयोगों की आवश्यकता की उसने भी समझा था। उसने मनोरंजन के साधनों को एक उच्चतर उद्देश्य—जनसाधारण के नैतिक-उन्नयन की प्रतिपूर्ति का साधन बनाया। अपने एक अभिलेख में अक्षोक कहता है कि उसने “मनुष्यों और पशुओं की मध्यस्थ व्यवस्था की और उसके स्वाध पर उसने आकाश में मूर्ति-मूर्ति के दुष्टों के विनाश की व्यवस्था की जिससे लोगों का मनोरंजन हो ही ही साथ ही उससे उन्हें बख्श नैतिक शिक्षा भी मिले।” ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में नाटकों द्वारा भी लोगों का मनोरंजन होता था।

भोजन-पात्र—भौतिकशास्त्रीय भारत की आर्थिक समृद्धि का परिचय हमें उस समय के लोगों के भोजन पात्र से द्वारा भी प्राप्त होता है। लोगों का भोजन सुखविपूर्व और पुष्टिकर होता था। सामान्य रूप से वे परिमित और स्वच्छ भोजन ही ग्रहण करते थे। भोजन में विविध प्रकार के दान दूध और मांस का समावेश होता था। यद्यपि जैन और बौद्ध धर्मों की अधिष्ठातादिता में मांस-भक्षण को कोई स्थान नहीं प्राप्त था तथापि अधिकांश लोग मांस खाते थे। मगरों में आकलन की भाँति बनेक दूकानें होती थी वहाँ पर भोज्य-सागधियाँ दूर समय तैयार मिलती थी। इन दूकानों पर पक्का मांस रोटी चावल आदि वस्तुओं का विक्रय होता था। मृग का प्रयोग प्रचलित था किन्तु इसके अप-विक्रय पर राज्य का नियंत्रण होता था। कौटिल्य ने विविध प्रकार की मरिच का उल्लेख किया है और उनकी निर्माण-विधि भी बतलाई है। मेगास्थनीज ने भारतीयों के भोजन करने के ढंग पर लिखा है—“जब भारतीय भोजन करने बैठते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख विपरीत आकार की भय रस बी जाती है। इसके ऊपर एक छोटे का प्लाता रखा जाता है जिसमें सबसे पहले चावल डाले जाते हैं। वे ऐसे डबले होते हैं जैसे उकले की। इसके बाद दूसरे बहुत से पक्का रस जाते हैं। जो भारतीय विधि से तैयार होते हैं। यह भाग भी लिखता है कि भारतीय जन अनेक हो कर भिन्न-भिन्न होते हैं भोजन करता है।

दास-प्रथा—दास प्रथा अति प्राचीन काल से भारतीय सामाजिक जीवन की एक मात्र व्यवस्था रही है। सर्व काल में भी यह प्रचलित थी। यद्यपि मूनानी लेखकों के प्रमाण इनके विरुद्ध हैं। एलियन लिखता है कि सभी भारतीय स्वतंत्र हैं और उनमें से एक भी दास नहीं है। मेगास्थनीज ने भी इसी प्रकार की बात कही है और स्ट्रबो ने उसके मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि कोई भी भारतीय दास नहीं रहता। परन्तु अन्य नाट्यों से दास-प्रथा के अस्तित्व के प्रमाण इतनी प्रचुरता से प्राप्त होते हैं कि मूनानी लेखकों का कथन अप्रामाण्य प्रतीत होता है। अरिस्तोत्त तथा स्मृतिर्मा में दास प्रथा का उल्लेख किया गया है। अक्षोक ने अपने अभिलेखों में दानों तथा भाड़े के

मजदूरों में बिभेद किया है और सब के साथ धन का व्यवहार करने का आदेश दिया है। यह सम्भव है कि मेगास्थनीज को भारत के किसी विशेष भू-भाग में दास-धन्या विस्तृत न दिखाई पड़ी हो जिससे उसने समझ लिया कि भारतवर्ष में दास-धन्या है ही नहीं। इसके अतिरिक्त मेगास्थनीज के यह किन्तन का कि भारत में दास-धन्या है ही नहीं एक महत्वपूर्ण कारण यह भी हो सकता है कि वहाँ पर यूनान के ठीक विपरीत दासों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था। प्रसिद्ध निडान् टीम डेविड्स ने लिखा है कि भारत में दास अधिकतर रूप में बरेलू पीकर होते थे। एवं उनके साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जाता था और उनकी सख्या भी महत्वपूर्ण होती थी।

आर्थिक जीवन

मौर्य-काल में भारतवासियों का आर्थिक जीवन काफी विकसित और सुव्यवस्थित हो गया। आर्थिक जीवन का सर्वांगीण विकास होने से कृषि उद्योग धन्धों और व्यापार की समृद्धि उत्पन्न हुई। इस युग के पहले भी आर्थिक जीवन काफी विकसित था। बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा बुद्ध के समय में भी विभिन्न उद्योग-धन्धों और आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार काफी उत्कृष्टतम अवस्था में थे। परन्तु मौर्य-युग में आर्थिक जीवन का इतना वस्तुस्थिति विकास हुआ कि यदि हम उस पर विचार करते हैं। तो हमें आश्चर्य होता है।

कृषि—सबसे अधिक मौर्य-युग का आर्थिक जीवन भी कृषि पर ही अवलम्बित था। कृषि लोगों में होती थी और उस समय के ग्राम मुख्यतः जीवन तथा समृद्धि के केन्द्र थे।

कौटिल्य ने उस समय के ग्रामों का बड़ा वर्णन किया किया है। ग्राम की भूमि का निर्माण इन भागों द्वारा होता था—(१) ह्युष्ट (बूटी हुई भूमि) (२) अकृष्ट (बैर बूटी हुई भूमि) (३) स्वक (ठोकी और सुकी भूमि) (४) केदार—कटकों से बने हुए लकड़ (५) जारम-मृज (६) छब्ब—केले इत्यादि फल-फूलों के आरोपण (७) मूस बाप—वे क्षेत्र जिनमें विभिन्न जड़ें वा लहसुने जैसे—अदरक इन्दी ससजम मूली यादि उगाई जाती थी। (८) दास-धन्य के आरोपण स्वाम (९) वन—जहाँ से ईंधन की सामग्री तथा आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती थी (१०) विनीत—ग्राम पशुओं के लिए चरागाह और (११) पंथि—राजमार्गों की भूमि। उपर्युक्त भागों के अतिरिक्त उस समय के ग्रामों में निम्नलिखित वस्तुओं का होना भी आवश्यक था—(१) वास्तु—बहु श्रेष्ठ जिसमें घर बने होते थे। यह कस्ती का माग होता था। (२) रत्न—पवित्र बुद्ध (३) वेदगुरु—मन्त्रि (४) मैनुष्य (बाह्य इत्यादि) (५) स्मरान (६) छत्त—शालग्राम, (७) प्रभा—पीने योग्य जल के एकत्र करने का स्थान (८) पुष्पस्त्रान पवित्र जगह और (९) प्रेक्षागृह—जहाँ पर जन साधारण के लिए सार्वजनिक आनन्द-धर्मोद की व्यवस्था होती थी।

कृषि की उत्पत्ति के लिए राज्य की ओर से श्रुतकर कानूनों का निर्माण किया गया था। किसानों की सुविधाओं का ध्यान रखा जाता था और उन पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होने पाता था। सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी। मेगास्थनीज सिंचाई व्यवस्था का वर्णन करते हुए ऐसे अधिकारियों का उल्लेख करता है जिनका कर्तव्य "भूमि का माप और उन छोटी नालियों का निर्माण करना था जिनमें होकर पानी सिंचाई की नहरों में जाता था जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपना सही माप मिल सके।"

एक स्थान पर मृगानी इत ने लिखा है—मृमि का अधिकतम भाग सिंचाई के अन्तर्गत है जिससे वर्ष में दो-दो फसलें तैयार हो जाती हैं।

अर्धशास्त्र में उन तमाम फसलों का उल्लेख किया गया है जो इस समय उत्पन्न की जाती थीं। ये फसलें इस प्रकार थीं—विभिन्न प्रकार के चावल कोषण—मोटा अनाज (गेहूँ) ककाम अरसी सर्पप शाक और मूक (तरकारियाँ) तथा विभिन्न प्रकार के फल जिनमें केले अमूर तथा पला इत्यादि प्रमुख थे। कौटिल्य ने कृषि पर लगाये जाने वाले विभिन्न करों का भी उल्लेख किया है (१) भाग—कृषि से होने वाली आमदनी पर राज्य का भाग (२) बलि—यह ऐसा कर था जो भाग के अतिरिक्त भी कृषकों पर लगाया जा सकता था (३) कर—यह समय-समय पर सम्पत्ति के आधार पर लगाया जाता था (४) विनीत—बरापाहूँ पर लगाया जाने वाला कर और (५) रज्जु—फसल की उपज के माप-जोख के लिए लगाने वाला कर और (६) कोराज्जु का कर। मूक और इमिल के समय कृषि की फसलों पर अतिरिक्त कर भी लगाया जा सकता था। इसके अलावा किसानों से कमी-कमी बेवार भी कराई जाती थी।

उद्योग-व्यापार—मीर्य-युग में उद्योग-व्यापारों की भी बहुत अधिक उन्नति हुई। इस युग का सबसे महत्वपूर्ण उद्योग-व्यापार वस्त्र तैयार करना था। मयपि सूती वस्त्र का उद्योग-व्यापार सम्पूर्ण देश में प्रचलित था तथापि कुछ स्थानों में इस उद्योग के केन्द्र बन गये थे। प्रचीन बौद्ध-ग्रन्थों में बनारस के बड़िया वस्त्र (कासीकूतम् वा कासिकावस्त्र) का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा सिद्धि देश के वस्त्र (सिध्योक) का भी जिक्र आता है। कौटिल्य के अर्धशास्त्र में सूती-वस्त्र-उद्योग के केन्द्रों की कुछ अधिक विस्तृत सूची मिलती है। ये केन्द्र थे—(१) मधुरा-यादृष्य देश की राजधानी (२) जयराम्प नौकन वा पविचनी समुद्रतट (३) काशी (४) बंग (५) वरस (६) कोराम्बी का निकटवर्ती प्रदेश और (७) मणिपा।

ऊनी वस्त्रों का निर्माण भी इस देश का अपना एक प्राचीन व्यवसाय है। ऋग्वेद में ही गान्धार के मयूष तथा कोमल ऊन का उल्लेख आता है। एक ऊनी पोशाक 'सामूय' का भी जिक्र आता है।

जौहरियों और पीछे की वस्तुएँ बनाने की कला तीसरी शताब्दी ई० पू० के बहुत पहले ही खेडता की ऊँची खेनी तक पहुँच चुकी थी। कौटिल्य के ग्रन्थ में छोटे चाँदी हाथी दाँत तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थों के कार्यों का प्रचुरता से उल्लेख किया गया है।

पत्थर को काट कर सुन्दर वस्तुएँ बनाने की कला में इस युग के काटीयर बहुत बढ़े-बढ़े थे। अशोक के समय के आन्तरिक वायाण-स्तम्भ उस युग की तत्काल कला का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। सुवर्णित पदार्थों के निर्माण में भी मीर्य युग में काशी उन्नति हुई।

पृथ्वी के द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तुओं के प्रयोग पर मीर्य युग की शासन-व्यवस्था काशी ध्यान देती थी। सेवा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कई महत्वपूर्ण उद्योग-व्यापारों का विकास हुआ। रत्नों बज्रपानों और सास्त्रास्त्रों के निर्माण से काष्ठ और बालु-कलामों की बड़ा प्रोत्साहन मिला।

व्यापार—उद्योग-व्यापारों की इस उन्नति ने व्यापार की उन्नति को स्वाभाविक ही नहीं अपितु अनिवार्य बना दिया। भारत में आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के

व्यापार काफ़ी उपस्थिति लब्ध अवस्था में थे। सुदूर पूर्वीय देशों के साथ भारत का घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था और देश में भी अनेक बणिक्पथों तथा बस्त-मार्गों की सुविधा विद्यमान थी जिनके द्वारा व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान को अपनी वस्तुएँ ले जाते थे। अर्थात् भारत में व्यापार के सम्बन्ध में जो उत्कृष्ट मिलते हैं, यद्यपि ये काफ़ी और विस्तृत-विस्तृत हैं, उनसे यह सिद्ध होता है कि व्यापार के क्षेत्र में मौर्य युग में देश ने काफ़ी अधिक उपस्थिति कर ली थी। कौटिल्य ने उन स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ से विभिन्न वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती थीं। एक कथन के अनुसार, जिसे कौटिल्य ने उद्धृत किया है बहुमुख्य वस्तुएँ जैसे हाथी, घोड़े, सुगन्धित पदार्थ हाथी दाँत, पशु, चर्म, सोना तथा चाँदी आदि हिमालय में बहुलता से सुलभ थी। कौटिल्य की सम्मति में कम्बल, पशु-चर्म और घोड़ों को छोड़कर अन्य वस्तुओं विशेषतया लकड़, हीरे, रत्न, मोतियों तथा चीना इत्यादि मुख्यतः वस्तुओं की अधिकता दक्षिण में थी। इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने अन्य वस्तुओं और उनके उत्पत्ति-स्थान की भी सूची दी है उससे भारत के आन्तरिक और विदेशी व्यापार पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इन वस्तुओं और इनके उत्पत्ति स्थानों में से ये प्रमुख थे—बंगाल, आसाम, बनारस, काकन और पाण्ड्य के वन, चीन के सिन्द, नेपाल के ऊनी वन, हिमालय प्रदेश के पशु चर्म, आसाम, लंका तथा हिमालय के सुगन्धित पदार्थ लंका, अलकनन्दा और विदर्भ के रत्न तथा अन्य इसी प्रकार की वस्तुएँ।

इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि भारत के प्राचीन विदेशी व्यापार को मौर्यों की सुव्यवस्थित राज्य-संस्था द्वारा काफ़ी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सेल्यूक की पराजय के उपरान्त चन्द्रगुप्त मौर्य ने पड़ोस के यूनानी राज्य के साथ वैधी की जो बुद्धिमत्तापूर्वक नीति अपनाई उसे उसके उत्तराधिकारियों ने जारी रखा। इस नीति ने भारत के विदेशी व्यापार को पश्चिमी एशिया तथा मध्य में फैला दिया। यूनानी केन्द्रों के अनुसार भारत और यूनानी राज्यों का व्यापार चल और स्थल दोनों मार्गों से होता था। भारत के लिए पाण्ड्याय बम्बई के साथ बड़े व्यापारिक सम्बन्ध काफ़ी हितकर और महत्वपूर्ण था। यहाँ से हाथी दाँत कछुवों की पीठ मोतियाँ नील आदि रत्न और बहुमुख्य लकड़ियों का निर्यात भिन्न देशों को होता था। व्यापारियों के लक्ष्यों का सफल विनियमन काफ़ी पहले हो चुका था इन युग में काफ़ी सुदृढ़ हो गया।

धन

इस युग की वार्षिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें बीड चर्म ग्रन्थों, अथर्व वेद, अमिषेयों और यूनानी लेखकों के विवरणों पर अवलम्बित होना पड़ता है। सभी साक्ष्यों का अवलम्बन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इन समय मुख्यतः ये धर्म-सम्प्रदाय प्रचलित थे—ब्राह्मण, सन्नास-आन्दोलन, बौद्ध धर्म, जातीय और वास्तविक आन्दोलन। हम इन सब की अलग-अलग विवेचना करेंगे।

ब्राह्मण धर्म—इस युग में ब्राह्मण धर्म में अन्य युगों की भाँति वैदिक तथा गृह्य रीतियों का प्राबल्य था। ब्राह्मण लोग यज्ञादि में रूढ़ रहते थे। अनेक ने अपने अमिषेय में दिन-रात पूजकों का उत्सेह किया है उनसे अमिषेय उम्मी ब्राह्मण पुनर्-हितों में है जो यज्ञ किया करते थे और लौकिक-धर्म के आन्दोलन से पूरक रखा करते थे। बीड ग्रन्थ ब्राह्मणों के ऐसे धर्म का उल्लेख करते हैं जिन्हें 'ब्राह्मण-महात्म्य' कहा जाता था। इन लोगों को राजा द्वारा दान में भी हुई भूमि का कर प्राप्त होता था। ये ब्राह्मण बड़े भगवन्त होने से और व्यवसायिक वर्गों का अनुष्ठान करने की क्षमता रखते

ये। वे अपने घरों में बहुत से सिखावियों को रखते थे जो देश के विभिन्न भागों से आते थे और उनके घरों के निकट बैठ कर धार्मिक शिक्षा प्रदान करते थे। यहाँ में तिरहु पण्डितों के मन में हिता की प्रेरणाहान मिलता था। सुत-निपात में ब्राह्मणों के ऊपर जो दोष लिये गये हैं वे पूरी तरह विचारार नहीं प्रतीत होते।

केवल वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान ही ब्राह्मण धर्म का सर्वस्व नहीं था। इसके कुछ मुख्य तत्व भी थे जो मनुष्य की आत्मा का परिष्कार करके उसे ऊपर उठाने की क्षमता रखते थे। यदि वैदिक किमवाक ब्राह्मण धर्म का स्थूल रूप था तो उपनिषद् का ज्ञानवाद् इसका सूक्ष्म रूप था। यह सम्भव है कि इस युग के ब्राह्मण धर्म में अभी भी वैदिक और आध्यात्मिक पक्ष से भी अनेक लोग प्रभावित थे। ब्राह्मण धर्म का हमने जो अध्ययन किया है उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि नव-मीर्य युग में वैदिक अनुष्ठान एवं औपनिषदिक विचार-आप दोनों ही धार्मिक जीवन की सक्रिय शक्तियाँ थीं। राजा-सामन्तों और सम्पन्न ब्राह्मणों का विश्वास वेदों के कर्मकाण्ड में ही अधिक था परन्तु दूसरी ओर समाज में ऐसे भी विचारशील जन थे जो ब्राह्मण-ब्राह्मणों में न पड़ कर तत्व के बचार्थ रूप को जानना चाहते थे। ये लोग मयरी से दूर बकबासी छोड़ कर छोटी-छोटी और संयम का जीवन बिताते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार करने की चेष्टा करते थे।

समाज-आन्दोलन—हमने ऊपर जिन उपस्थितियों का उल्लेख किया है वे ब्राह्मण होते थे परन्तु समाज में आमय कहे जाने वाले अन्य सम्प्रदायी भी होते थे। हमने सामाजिक अवस्था के सम्बन्ध में इनका विवरण दिया है। नीचे प्रश्नों में चार प्रकार के समूह बतलाये गये हैं—(१) मन्त्रिण—जो मार्ग के अन्त तक पहुँच चुके थे और जिन्होंने निर्वासन प्राप्त कर लिया था (२) मन्त्र—जैसे लोग जो देश को उत्कृष्टतम राज्य का मार्ग दिखाते थे (३) मन्त्र-वीर्य—जो मार्ग के अनुसार रहते थे और (४) मन्त्रकुली—जैसे अविनाशी वाचाल और संयमहीन होते थे और जो धार्मिक पुरुषों की वेद-भूषा धारण करके अपने सम्प्रदाय और पुरुष को बरनाय करते थे।

आजोबिक—आजोबिक सम्प्रदाय की उत्पत्ति तो महात्मा बुद्ध के समय में या उससे भी पूर्व ही चुकी थी किन्तु इसकी उत्पत्ति के विषय में मीर्य-काल के पूर्व का विवरण नहीं प्राप्त होता। संभवतः योसाक इस सम्प्रदाय के संस्थापक थे। वे काय भ्रातृ भावी होते थे और किसी प्रकार के कारण-परिणाम में विश्वास नहीं रखते थे। आये चल कर इस युग में अज्ञान के अमिषों द्वारा भी आजोबिक सम्प्रदाय के ऊपर प्रकाश पड़ता है। इस सम्प्रदाय का पूरे मीर्य-युग तक काफी मान रहा परन्तु बाद में धीरे-धीरे इसका प्रभाव घटता ही गया और आगे चलकर यह विस्तृत रूप में गिरा। आजोबिक कोव समय वर्ष के थे। ये भी प्रायः जनों में रहते थे। आजोबिक सम्प्रदाय में ब्राह्मण और अबाह्मण दोनों सम्प्रदायी थे किन्तु उनके विभिन्न-भिन्न समूहों में विभक्त होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

जैन धर्म—चन्द्रगुप्त के शासन-काल में जैन धर्म के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई और इसके अन्तर्गत एक महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया। बह्मबह्म चन्द्रगुप्त मीर्य का समकालीन और जैन धर्म का सम्पूर्ण घर (स्थविर) था। कहा जाता है कि अशोक का पौत्र और उत्तराधिकारी जिसका नाम सम्प्रति था जैन धर्म का अनुयायी था और इसने अपने पितामह की भाँति अपने धार्मिक विचारों को फैलाने का

प्रयास किया। परन्तु यौर्व काक में वैनवर्म का बहुत अधिक प्रचार न हो सका। बाद में अक्षय यह वर्म पश्चिमी और दक्षिण भारत में फैल गया।

बौद्ध धर्म—यद्यपि अशोक से पूर्व ही बौद्ध धर्म की काफी उत्पत्ति हो चुकी थी तथापि इसके दृष्टधारी प्रचार और विदेशों में इसके प्रसार का येव इसी में सम्राट की रिया वा सकता है। उसने केवल बौद्ध धर्म को राजाध्यय ही नहीं प्रदान किन्तु बौद्ध इसकी उत्पत्ति के लिए अनेक प्रयत्न भी किए। इतिहासकारों का विश्वास है कि अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए जो प्रयत्न किए उनमें उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई।

आस्तिक आम्बोधन—जैनवाद की आस्तिक आम्बोधनों का प्रचलन मौर्य-यु के धार्मिक जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। बालुदेव अथवा कृष्ण इस समय देवता के रूप में पूजे जाने लगे थे। मौर्य-काल में धर्म स्वल्प तथा विस्तारित न प्रतिमाओं का कम-विकसित होता था परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्ति-पूजा का प्रचार अधिकतर जन साधारण में ही था। जैनवाद धर्म के मौर्य मूर्ति-पूजा को प्राप्त उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते थे। जन साधारण के धार्मिक जीवन में अन्य क्रिया का भी समावेश था।

लोक धर्म—लोक-धर्म में मूर्ति-पूजा की प्रधानता थी। देश में बहुत से मन्त्रि-होत थे जहाँ पर लोग मूर्तियों की पूजा करते थे। कौटिल्य ने इन अनेक देवी-देवताओं का नाम विनाया है जिनकी जन साधारण द्वारा पूजा की जाती थी। यन्त्रि (कोट्ट) नगर के उत्तरी-पश्चिमी भाग में बनाये जाते थे। जिन देवी-देवताओं के सम्मान में मन्त्रियों का निर्माण कराया जाता था उनके नाम इस प्रकार थे—अपराजित अमृति हठ अमल वैनवर्त धिब वैनवर्त (कुबेर) अविघ्नी और लक्ष्मी। वास्तु और विन पूजा भी प्रचलित थी। लोक-धर्म में अन्धविश्वासों का पर्याप्त भाग में समावेश था। स्वर्ग और नरक में लोगों का बहुत अधिक विश्वास था। बौद्ध-धर्म में उस समय में लोक धर्म के प्रत्येक पक्ष का विस्तृत उल्लेख मिलता है और उसकी तीव्र छाया में निम्न की गई है जिससे मान उससे दूर रहें। परन्तु इन प्रयत्नों के उपरान्त भी लोक-धर्म जारी रहा।

भाषा और साहित्य

जिस युग की सांस्कृतिक और सामाजिक अवस्था का अब तक हमने अध्ययन किया है उनका अर्थ हम बात में भी है कि हम युग में न केवल प्राकृत देवी लोक-भाषाओं की बहुत अधिक उत्पत्ति हुई बल्कि हमने साहित्य-मूलन का भी कार्य हुआ। कवि का व्यापक रूप से प्रचार इस युग की एक प्रमुख सांस्कृतिक देव है। इस युग के साहित्यिक विकास की एक प्रमुख विशेषता है इहमीक परलोक साहित्य की रचना। इनका यह तात्पर्य नहीं कि हम समय धार्मिक अथवा धार्मिक दृष्टि से नहीं पर बल्कि हमारे कबल का अभिप्राय यह है कि पाणिनि के व्याकरण को छोड़कर अन्य किसी लौकिक साहित्य के अन्तर्गत जाने वाले ग्रन्थ का प्रचलन इस युग के पहले नहीं हुआ था जबकि इस युग में पहुँच कर काव्य भाटक बाकि साहित्य-भाषाओं का इस मूलन होते देखने हैं और अर्थशास्त्र की रचना से तो यह स्पष्ट हो जाता है कि एक वास्तविक वाङ्मय ने राजनीति जैसे लौकिक और पुण्य विषय को संस्कृत छान्दा का विषय बनाया। काव्य-मूल के रचना-काल को भी कुछ विद्वान् मौर्य युग के अन्तर्गत ही समझते हैं।

कार्यात्मक का पाणिनीय व्याकरण पर भाष्य इसी युग की रचना कही जाती है। गृह्यसूत्र के संस्कृत संस्करण हरिवंश के जैन गृह्यसूत्र कोय और बौद्ध-ग्रन्थ मन्वन्धी सूक्तस्य में मन्व ब्रह्मसूत्र तथा बिम्बुसार के एक ब्राह्मण मन्त्री सुबन्धु का उल्लेख किया गया है। अमिनवसूत्र में माट्य-शास्त्र पर 'अमिनव भारती' नामक जो टीका मिलती है उसमें उन्होंने सुबन्धु का कुछ विस्तार के साथ उल्लेख किया है और उसकी 'वासवदत्ता माट्यभाष्य' नामक एक विशिष्ट माट्य का रचयिता बताया है।

धार्मिक साहित्य के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण रचना-कार्य हुआ। इस समय जनता के धार्मिक जीवन में जो तीन प्रमुख धारायें थी उनके अनुसार धार्मिक साहित्य की रचना हुई। वैदिक धर्म बौद्ध और जैन तीनों के धार्मिक साहित्य का प्रचुर विकास हुआ। वैदिक धर्म के अन्तर्गत इस काल में अनेक गृह्यसूत्र-धर्मसूत्र और वेदांग-ग्रन्थों का प्रचलन किया गया। बौद्ध साहित्य की दृष्टि से यह युग काफी महत्व रखता है। इस काल के जैन सेतकों में शीर्य-स्वांग को अधिकृत करने वाले आचार्य महाबाहु द्वितीय अजने धर्म में शीर्य कर दिया था।

कला की उत्पत्ति

मीर्य-कला प्रारम्भ अशोक के राज्यकाल से होता है। इटों या मगध के पत्थरों के बने हुए ठोस स्तूपों को स्तूप कहा जाता था। अशोक ने विद्याल स्तूपों का बहुत बड़ी संख्या में निर्माण कराया था। अनुभूति के अनुसार उसमें ८४०० स्तूप बताये थे। साँची का विशाल स्तूप अशोक का ही बनवाया बताया जाता है परन्तु जिस रूप में इसका अशोक ने निर्माण कराया था उसमें आगे चलकर काफी परिवर्तन हो गया। अशोक द्वारा चारलास में निर्मित नम धर्मिका स्तूप का विशाल नाम अब भी धर्ममान है।

अशोक द्वारा निर्मित कलाकृतियों में सबसे अधिक महत्व उसके स्तूपों का है। इस समय यह सम्भव नहीं कि हम अशोक की राजाज्ञा पर बनाये गए स्तूपों की विस्तृत ठीक-ठीक संख्या बता सकें परन्तु तीस चालीस से बीस की संख्या अनुमानतः ठीक मान पड़ती है। स्तूपों का निर्माण कुम्हार के बलुआ पत्थर से किया गया है। सारभाष का स्तम्भ मीर्य-युग की कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसके निर्माण-कौशल की प्रशंसा सभी कला-समालोचकों ने भुक्तकंठ से की है। स्तम्भ पर पशुओं की जो आकृतियाँ खुदी हुई हैं उनकी सटीकता और सुन्दरता लज्जित कराने योग्य है।

अशोक के समय में मिथुनों के निवासार्थ बिहारों तथा बरीपहों का निर्माण कराया गया था। बारबरा की पहाड़ियों में बहुत सी गुफायें अवस्थित हैं जिनमें मिथु निवास करते हैं। इन गुफाओं की दीवारें इतनी चमकीली हैं कि वे दर्शन के समुदाय निदर्शन करती हैं। अशोक जसा कि पहले कहा जा चुका है कई मन्त्रों का निर्माण भी कराया था किन्तु वे इस समय नहीं मिलते। चीनी यात्री फाह्यान ने अशोक-निर्मित एक मन्त्र की देखा था जिसके निर्माण-कौशल को देखकर वह विस्मय विभूत हुआ था। उसने समझा कि ऐसा अद्भुत मन्त्र अशोक ने देवताओं द्वारा बनवाया होगा क्योंकि इसका निर्माण-कौशल मनुष्यों द्वारा सम्भव नहीं।

प्रश्न

- १ मौर्य कालीन समाज का विवेचन कीजिए।
- २ मौर्य कालीन सम्पत्ता एवं संस्कृति का विवेचन तत्कालीन सामाजिक, न्यायिक एवं आर्थिक अवस्थाओं पर प्रकाश डालते हुए कीजिये।
- ३ मौर्य कालीन कला एवं साहित्य पर प्रकाश डालिये।
- ४ मौर्य कालीन भारत की न्यायिक अवस्था से विषय में आप क्या जानते हैं ?
- ५ Describe the social life and economic condition of Indian society during the Maurya period (1956.)

अध्याय १५

शुंग, कण्व तथा आन्ध्र राज्य

भाग १—शुंग वंश

मौर्यों के बाद बंश की विस्तृत राजनीतिक स्थिति से साम्य उठाने की इच्छा रखने वाले मगधों ने भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा को पार किया और साम्राज्य (उत्तरी-पश्चिमी सीमा) साम्बत (उत्तर मध्य पंजाब) तथा अन्य स्थानों पर अपने अधिकाराली राज्यों की स्थापना की। मगध में भी एक महती राजनीतिक उमति हुई जिसके फलस्वरूप एक नया राजवंश उत्पन्न हुआ। यह वंश था शुंगवंश और इस क्रांति का नेता पुष्यमित्र शुंग था।

पुष्यमित्र शुंग ने अन्तिम मौर्य नरेश ब्रह्मरथ का वध करके राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया।

शुंगों की जाति—शुंगों की जाति के विषय में काफ़ी मतविमिश्रता दिखाई पड़ती है। 'विष्णुवर्दान' नामक बौद्ध-ग्रन्थ पुष्यमित्र द्वारा मौर्य-साम्राज्य के पतन किए जाने की बात को कहता है परन्तु इस ग्रन्थ में उसे मौर्य-वंश का ही बतलाया गया है। कुछ विद्वानों ने शुंगों को ईरान देश का बतलाकर अन्धारीय प्रभावित करने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि क्योंकि ईरान में मित्र (शुंग) की बहुत पूजा की जाती थी और शुंग वंश के प्रत्येक नरेश के नाम में 'मित्र' अवश्य लगा हुआ है इससे यह वंश ईरानी प्रतीत होता है। परन्तु यह मत ठीकसम्मत नहीं प्रतीत होता। केवल नाम के आधार पर शुंगों को ईरानी प्रभावित करने का हमें कोई अधिकार नहीं दिखलाई पड़ता। अधिकतर साक्ष्यों द्वारा शुंगों के ब्राह्मण होने का ही प्रमाण मिलता है।

पुष्यमित्र का साम्राज्य-निर्माण—ब्रह्मरथ की हत्या करने के उपरान्त पुष्यमित्र मगध राज्य का स्वामी हो बन गया परन्तु उसके राज्य की स्थिति अभी बड़ी दारिद्र्यपूर्ण थी। पड़ोस के राज्यों—कन्निय आगम और महापाट्ट—ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी थी और मगध राज्य को वे चुनौती देने पर तुल्य हुए थे। मगध के हाथों से सीमांत प्रांत निकल जाने से इसकी शक्ति जोरधारी हो गई थी और पड़ोस के राज्यों की बढ़ती हुई शक्ति इसके स्वामी के लिए एक अत्यन्त विकट समस्या थी अतएव मगध पर अधिकार जमा करने के बाद पुष्यमित्र ने सबसे पहले अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने की ओर ध्यान दिया। प्राचीन कौशल आकर, बल और अशक्ति को जो मंत्री भी मगध के अधीन थे पुष्यमित्र ने पुनः संयोजित किया और इन प्रांतों पर अपनी सत्ता का दृढ़ चिह्न जमाने का पूरा प्रयत्न किया। अशक्ति का राज्य मगध से कुछ दूर पड़ता था और मौर्य-साम्राज्य के बाद अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाने से शासन-व्यवस्था विचित्र तथा विस्तृत हो गई थी जिससे पाटलिपुत्र से अशक्ति पर केन्द्रीय शक्ति का अधिकार पूर्ण रूप से जमा रहना कठिनाई प्रतीत हो रहा था। अतएव पुष्यमित्र ने आकर प्रांत के मुख्य नगर विदिशा को अपनी दूसरी राजधानी बनाया। विदिशा में उसने अपने पुत्र अग्निमित्र को राज्य-अतिथि के रूप में

भारतीय इतिहास

रखता। अनिमित्त को उसने धाकर-अवगति प्राप्त का साधक निवृत्त कर दिया। इस प्रकार साम्राज्य-निर्माण के सम्बन्ध में अपनी विधि सुदृढ़ कर लेने के बाद पुष्पमित्र ने अपना ध्यान साम्राज्य-विस्तार की ओर दिया। परन्तु बीच की बिन्दु राजनीतिक अवस्था के कारण वह शुद्ध राज्य को अपने अधिकार में नहीं कर सका। विदेही राज्य के राजा उसका सर्वप्रथम विरोध करने वाला था।

यवनों का आक्रमण—पुष्पमित्र युव के राजकाज की सबसे महत्वपूर्ण घटना की यवनों का आक्रमण और युद्धों द्वारा प्रबल प्रतिरोध। मौर्यवंश के पश्चात्पुत्र होने के समय से ही देश की उत्तरी-पश्चिमी सीमा बलवत् प्रतीत होने लगी। उसके निकट ही बाकनी यवनों ने राज्य स्थापित हो चुके थे। ये यवन राज्य भारत पर अपनी पूरव-दृष्टि सर्वप्रथम रखते थे। पुष्पमित्र के समय में यवनों ने पूरी तैयारी के साथ भारत पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण का विवरण हमें प्लूटार्क के 'महाभारत' एवं 'मौर्य इतिहास' के द्वारा मिलता है। छापनाभ ने भी लिखा है कि पुष्पमित्र के राज्य काक में भारत पर सबसे पहले विदेही यवनों का आक्रमण हुआ था। प्लूटार्क ने पुष्पमित्र के समकालीन से इस आक्रमण का उल्लेख करत है। लेकिन यवनों को प्लाटिनिपुत्र से पीछे लौट जाना पड़ा।

हर्ष-संघर्ष इन्हीं दिनों के द्वारा यवन-आक्रमण का विवरण प्राप्त होता है यवन सरकार के नाम का कोई भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता। कुछ इतिहासकारों के अनुसार भारत पर यवन-आक्रमण का नेतृत्व डेमीट्रियस कर रहा था और कुछ के विचार में डेमीट्रियस नहीं बल्कि मिन डर आक्रमणकारियों का नेता था। प्रोक्सर एन० एन० नेप की धारणा है कि 'मौर्य इतिहास' में वर्णित एवं प्लूटार्क-महाभारत में उल्लिखित 'रतिपुत्र' के यवन-आक्रमण का कविनायक सम्भवतः डेमीट्रियस (Demetrius) था।" कुछ आक्रमण का नेतृत्व प्रोक्सर नेप के मन्त्रिमण्डल में पुष्पमित्र युव ने अवगमन करने का निश्चय किया। उसके लिए यह मन्त्र कराने के महत्वपूर्ण कारण थे।

यवन-आक्रमण का नेतृत्व प्रोक्सर नेप के उपनयन में पुष्पमित्र युव ने अवगमन करने का निश्चय किया। उसके लिए यह मन्त्र कराने के महत्वपूर्ण कारण थे। यवनों का यह कि विदेही राज्य के ऊपर उसकी प्रभुता का सिद्धांत बलवत् बन गया था और विदेही आक्रमणकारियों को हो बार विराज होकर लौट जाना पड़ा जिससे युववंश के पीरव में अधिकारि हुई। इसी बीच-बीरव की अभिवृद्धि की प्रवृत्ति करने के लिए पुष्पमित्र ने अत्यन्त यत्न का अनुष्ठान किया।

पुष्पमित्र युव और बीड धर्म—कतिपय बीड-धर्मों में पुष्पमित्र युव के ऊपर यह आरोप लगाया गया है कि वह बीड धर्म का प्रबल अनुयायी था। 'हिम्मावदान' के लेखक का कहना है कि पुष्पमित्र ने यह धर्म का निरस्तवादी भी कि जो मुझे एक धर्म का विरोध करता है उसे ही शीघ्र दूंगा। विदेही इतिहासकार छापनाभ ने भी लिखा है कि पुष्पमित्र धार्मिक प्रवृत्ति में बड़ा अवलम्बित था। उसने बीडों पर भीति-यौति के अत्याचार किए और उनके मठों तथा संघासनों को बह बलवत् किया करता था। पर मुक्तिदाता मंत्रों के विना भी ई० सी० हेतु ने इस विषय में जो कुछ लिखा है हमें नहीं मन्त्रों के बीचों का समय इसमें लिखा है कि पुष्पमित्र ने उनके संघ राजनीतिक धर्म के रूप में इसे नहीं लिखा है कि वे एक ऐसे धर्म को मानते थे जिसमें वह निराला नहीं करता था।

पुष्पमित्र युव के उत्तराधिकारी—पुष्पमित्र युव ने १६ वर्षों तक राज्य किया जना शासन-काल लगभग १४८ ई० पू० तक रहा। उसकी मृत्यु के अनन्तर उसका

पुनः अग्निमित्र सिंहासन पर आसीन हुआ। यही अग्निमित्र महाकवि कामिन्द्रास के प्रसिद्ध नाटक 'मासिकामिनिमित्रम्' का नायक है। यह हम देख चुके हैं कि यह विविधा का शासक रह चुका था जिससे इसने राज्य संभालने में अनुभव प्राप्त कर लिया था। इसके शासन-काल में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटित हुई। अग्निमित्र युग के पश्चात् उसका भाई सुजेष्ट मगध का अधिकारी हुआ। उसके शासन-काल में भी कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। सुजेष्ट के बाद अग्निमित्र का वीरपुत्र वसुमित्र मगध के सिंहासन पर बैठा। इसने ही सिन्धु नदी के दक्षिणी तट पर यवनों की सेना को पराजित किया था। वसुमित्र के उपरान्त बोजक राजा हुआ। इसका उत्प्रेक्ष्य सम्भवतः कौशाभी के निकट पनोसा के सिन्धालेख में हुआ है। शुंग वंश के नवम् राजा भागवत ब्रजवा मायमह के शासन-काल में सशिका के यवन शासक अन्तसिकित (Antialkidas) ने उसकी समा में दिया (Dion) के पुत्र हेसिमोडोर (Heliodoros) को अपना राजपूत बनाकर भेजा था। शुंग वंश का अन्तिम राजा देवभूति था। 'विष्णु पुराण' में लिखा है कि उसके मंत्री वसुदेव कल्य ने उसका वध कर दिया और स्वयं राजा बन बैठा। इस प्रकार मगध का राज्य युगों के हाथ से निकलकर कल्य वंश के हाथ में चला गया।

शुंगकालीन साम्यता और संस्कृति

धर्म और साहित्य—युगों के शासन-काल में बाह्य धर्म की बहुत अधिक उन्नति हुई। कला और संस्कृति का भी पर्याप्त विकास हुआ। इस दृष्टि से भारतीय इतिहास में शुंगवंश का महत्वपूर्ण स्थान था। शुंगकालीन संस्कृति गुप्तकालीन भारतीय संस्कृति की एक संस्थापक थी। पुष्पमित्र और उसके उत्तराधिकारियों ने अशोक के पूर्ववर्ती मगध की परम्परा को बढ़ाया। धर्म-विजय की अभिप्राप्ति का साधन युद्ध से बचा नहीं अपितु श्रेय्य संमठन का निर्माण समझा गया। राजनीति का रूप बर्बाद हो गया। युगों ने उत्तर भारत के एक विखंड भू-भाग पर अपना अधिकार जमाया मगध आक्रमणकारियों को पराजित किया और विदेशी राजाओं का सम्मान प्राप्त किया। उन्होंने कला साहित्य और वास्तु के पुनरुद्धार को पोषित किया। मध्ययुग में बुद्धिजीवियों तथा बुद्धिमानों की दृष्टि में संप्राप्त-दृष्टिकोण का आकर्षण गल्ट हो गया। धर्मों की ध्वनि सुदूर की गई, स्मृति ग्याय की सत्ता को पुनः पूरी तरह से स्थापित किया गया। सामूहिक उत्साह की नयी लहर ने बौद्ध धर्म के प्रति संघर्ष के दृष्टिकोण एक अधिक समृद्ध तथा पूर्वतरजीवन की खोज में युद्ध देवता काठिकेय के सम्प्रदाय में भागवत सम्प्रदाय के पुनरुद्धार में तथा हिन्दू देवमण्डल में वामदेव इन्द्र की प्रधानता में अभिव्यक्त प्राप्त की।

पुष्पमित्र युग ने दो बार धर्म करके सनातन धर्म की पर्याय को पुनः प्रतिष्ठापित किया। शुंग वंश के शासन-काल में ही प्रसिद्ध पुस्तक 'मनुस्मृति' या मानव धर्म शास्त्र की रचना हुई। इस पुस्तक में हम बाह्य आदर्शों की समाधि में पुनः पूर्वरूप से प्रचलित करने का प्रयास सुस्पष्ट देखते हैं। बार्हस्पत्य जीवन का महत्व पिछले युगों में बौद्ध धर्म की प्रधानता के कारण कुछ कम हो गया था परन्तु इस युग में मनुस्मृतिकार ने इसके महत्व को स्पष्ट किया। हिन्दू-मताधिकार के प्रति-अंधा के बगल बाकी कठोर कर दिये गये और स्त्रियों का स्थान भी पहले की अपेक्षा निम्नतर हो गया यद्यपि मनु महाराज ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' इत्यादि शब्दों द्वारा स्त्री-जीवन का महत्व समझाया। 'मनुस्मृति' में आदि से अन्त तक इसी बात का प्रयत्न किया गया है कि प्राचीन वैदिक

धर्म समाज में प्रचलित हो। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि 'मनुस्मृति' तत्का-
मीन स्थिति का उत्तना निर्वाहन नहीं कराती जितना कि यह समाज के सम्मुख एक
आदर्श प्रस्तुत करती है। हम यह नहीं कह सकते कि इस ग्रन्थ में सामाजिक अथवा
धार्मिक जीवन के जिन नियमों का उल्लेख है वे सब इस समय समाज में प्रचलित थे।
'मनुस्मृति' के अध्ययन से यह पता चलता है कि इस समय के हिन्दू धर्म में संकीर्णता
और कट्टरता प्रवेश कर चुकी थी किन्तु आधिकेयक शास्य से जो सूचना प्राप्त होती
है वह इसके विपरीत है। वेसनवर के स्तम्भलेख से यह प्रमाणित होता है कि मुगली
भी इस समय हिन्दू धर्म में वीक्षित कर लिये जाते थे। 'इससे यह भी सिद्ध होता है
कि तब का हिन्दू धर्म आज की भाँति संकुचित न था और इसकी छाया में विदेशीय भी
सोच से सकते थे। यद्यपि वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करने के लिए पुण्यमित्र ने काफी
प्रयत्न किया तथापि बौद्ध धर्म का भी इस समय प्रचार था। यदि हम भद्रकृत स्तूप के
"सूजनम् रत्नं" को पुण्यमित्र के काष्ठ का न भी मानें तो भी हमें इतना तो कम से कम
अवश्य मानना पड़ेगा कि उसके उत्तराधिकारियों की बौद्ध धर्म के प्रति असहिष्णु नीति
न थी। इसके अतिरिक्त मायवत्त धर्म का प्रचार और विकास इस युग के धार्मिक जीवन
की विशेषता थी। विविधा तथा बौद्धिक के धिकाकेकों से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है
कि इस समय जनता में मायवत्त धर्म का खूब प्रचार था।

साहित्य के क्षेत्र में हम जानते हैं कि महर्षि पतञ्जलि पुण्यमित्र युग के
समकालीन थे जिन्होंने पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' पर एक महत्त्वपूर्ण लिखा। मनुस्मृति
की रचना प्रसिद्ध विद्वान् डा० बृहन्नर के मतानुसार २०० ई. पू. एवं २० ई. के मध्य
किसी समय में हुई होगी। अधिक सम्भावना इसी बात की है कि बुधबंस के प्रारम्भिक
युग में ही इस ग्रन्थ का प्रचलन किया गया। पुण्यमित्र बुध और महाराज मनु के ब्राह्मण
धर्म का पुनरुत्थान करने के प्रयत्नों में वृष्टिकोण की पट्टी समानता है। पतञ्जलि ने
पूर्ववर्ती युग की साहित्यिक समृद्धि पर जो प्रकाश डाला है उससे यह कल्पना करना
अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत नहीं होता कि बुध बंस के शासन-काल में भी साहित्य सुजन की
परम्परा जारी रही होगी। परन्तु हमें ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं जिनका रचना-काल
हम सुनिश्चित रूप से बुध बंस के शासन-काल के अन्तर्गत निर्धारित कर सकें। 'इस
काल में सम्भवतः अनेक अन्य साहित्यिक महारथियों का भी प्रादुर्भाव हुआ था जिनके
नाम आज काल के धर्म में लोप हो गए हैं।

कला की उन्नति—बुध-काल में कला की भी काफी अधिक उन्नति हुई। इस
समय की कला की यह एक प्रमुख विशेषता है कि इसके द्वारा अधिकतम जनता के
मानससांस्कृतिक-आदर्श तथा उसकी परम्परा का प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। इस बात
में यह मीर्य-मूल से निताण्ड निम्न है। बुध-कला की एक दूसरी विशेषता है कि वह अपने
समय के जन-जीवन का चित्र बड़े ही यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है। महत्त्व स्तूप में जो
हजार बरों पूर्व के भारत के दैनिक जीवन का लघु चित्रण है। लोगों के घर, देवताओं
की मूर्तियाँ, शास्त्रों के आश्रम तथा शास्त्र ही शास्त्र गार्हपत्य रथ औरों के चक्र-सूत्रा छत्र
तथा आभूषण जिनका प्रयोग साधारण रूप से किया जाता था वे सभी वस्तुएँ निताण्ड
व्यापारिता की और स्पष्ट रूप में प्रदर्शित की गई हैं। ये स्तूप-स्थापत्य धार्मिक भावनाओं
और विरासतों को बेधमूया परिधान तथा धिष्टाचार-सम्बन्धी व्यवहारों को सूचित
करते हैं और बड़ी ही सारंगी तथा प्राणवत्ता के साथ बनाये गये हैं। इनसे हम भारत के
जनसाधारण के मानस और आशयों के सम्बन्ध में एक अमूर्त-प्रति प्राप्त करते हैं
और जीवन के आनन्द तथा सुखों की भावना उन सब को परिग्राह्य लिये हुए प्रतीत

होती है। प्राचीन भारत, अपनी स्वस्थ आधाबासिता तथा जीवन के प्रति सदात्म विश्वास के साथ इन पापाप्यों के द्वारा एक ऐसे स्वर में शोकता हुआ प्रतीत होता है जो कुछ उन प्राचीन धर्म-ग्रन्थों के अन्वयपूर्ण निराशावादी दृष्टिकोण से एक तीव्र परन्तु मन्द विरोध प्रस्तुत करता है, जो इनको बोझिलते हुए कमी पकड़ नहीं। इन स्थापत्य धर्मों के उत्पन्न का उद्देश्य जनता को महात्मा बुद्ध के जीवन की बटनाओं तथा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से परिचित कराना था परन्तु धर्मों के अन्वयपूर्ण से ऐसा प्रतीत होता है कि यह उद्देश्य भी हो गया है और कसाकार जीवन का विषय करने में इतना संलग्न हो गया है कि उसे जनता के नतिक उत्थान का कोई विरोध ध्यान नहीं। प्रोफेसर कुमार स्वामी ने ठीक ही कहा है कि इन धर्मों का प्रभाव केन्द्रिय न तो आध्यात्मिक है और न आचारवादी बल्कि सम्पूर्णतया सामान्य-जीवन से सम्बन्धित है। मूर्त स्तूप के शीर्ष-द्वारों पर पक्षियों एवं वृक्ष-कृतियों के जो चित्रण हैं उनको देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनको उत्पन्न करने वाले बौद्ध कलाकारों को केवल मानव-जीवन से ही अनुराग न था बल्कि उनके हृदय में सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के लिए स्नेह की भावना विद्यमान थी। प्रकृति के प्रति जनम्य प्रेम इन चित्रों की विशेषता है। इन दृष्टि से मूर्त के ये चित्र भारतीय संस्कृति के सर्वमानुराग एवं मज्जि सृष्टि के साथ अनुराग स्थापित करने वाले सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। यदि हम इस सिद्धान्त की परिपूर्णता चाहते हैं तो हमें संस्कृत और पाली के साहित्य-ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए जिनमें जीव प्रेम और प्रकृति प्रेम की भावनायें बड़ी ही महत्त्व मत्ता और समीक्षा के साथ अभिव्यक्त की गई हैं। सभी के 'असाधारण्य द्वार शीर्ष' श्रितिका निर्माण वा० पूरे के मतानुसार 'विदिशा के गजदन्त शिल्पियों ने ही किया था इस दृष्टि से काफ़ी महत्त्वपूर्ण है।

भाग २—कव्व बंध का शासन काल (लगभग ७५ ई० पू०)

धुंग बंध के पतन के सम्बन्ध में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार राज-सत्ता अन्तिम शुन-नरेश देवभूति के हाथ से निकल कर कव्वबंध के संस्थापक बसुदेव के हाथ में चली गई। धुंग-बंध के शासन काल का अन्त ७२ ई० पू० के लगभग हुआ और इसी समय से कव्व-बंध का शासन आरम्भ होता है। कव्व बंध भी बाह्यम या बसुदेव ने देवभूति की पश्यन् द्वारा हत्या करा के हैं। राज्य हस्तगत किया था यह हम यह चुके हैं। इस सम्बन्ध में 'विष्णु-पुराण' तथा 'हर्ष-चरित' के विवरणों का भी हम अध्ययन कर चुके हैं। कव्व बंध का काव्यामय भी कहा जाता था। संभवतः यह नाम भी के आधार पर पड़ा था। इस बंध में चार नरेश हुए। इनके नाम थे बसुदेव, अश्विनि, भारामय और सुधर्मय जिन्होंने क्रमशः ९, १४, १२ और १० वर्षों तक शासन किया। यद्यपि पुराणों में अभिव्यक्तापी की प्रकाशी द्वारा यह कहा गया है कि वे शत्रुओं के राजाओं को अपने अधीन रखने और वर्मानुसार राज्य करने तथापि कव्व नरेशों के इतिहास के सम्बन्ध में हमें कोई विवरण नहीं प्राप्त होता। कव्व बंध का अन्त २८ ई० पू० में आग्नेय अथवा आग्नेय मूर्तों द्वारा हुआ।

भाग ३—आग्नेय-सातवाहन-वंश तथा चारवेल

आग्नेय जाति का प्राचीन इतिहास—पुराणों में सातवाहन वंश के राजाओं के लिए आग्नेय राज्य का प्रयोग किया गया है, जब कि अपने अभिलेखों में वे अपने को सर्वश और सर्वत्र सातवाहन अपना शासन बोधित करते हैं। इन अभिलेखों में आग्नेय राज्य कहा नहीं गया। आग्नेय शीव शीववादी और इन्द्रा नदियों के बीच के

ईसवी सन में बसने वाली जाति के थे। ऐतरेय ब्राह्मण में सबसे पहले इस जाति का उल्लेख पाया जाता है। इस जाति की आर्य संस्कृति के प्रभाव से मुक्त बताया गया है। इस प्रश्न के अनुसार निस्वामिन के बंधनों ने गौरावरी और कृष्णा के बीच के प्रदेशों में जाकर आमतौर जातियां से विवाह किया। इन विवाहों के परिणाम-स्वरूप जिस जाति का उद्भव हुआ उसे 'आग्नेय' की संज्ञा मिली। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में आग्नेय जाति की राजनीतिक शक्ति काफी बढ़ी-बढ़ी थी। मेगास्थनीज ने उनकी प्रबल सैन्य शक्ति का उल्लेख किया है।

सातवाहन वंश

जब प्रश्न यह उठता है कि आग्नेयों और सातवाहनों में क्या पारस्परिक सम्बन्ध था? जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं सातवाहन नरेश अपने को कभी भी आग्नेय जाति का नहीं बताते जब कि पौराणिक अनुसूति के अनुसार उनके बंध का संस्थापक सिमुक या सिमुक या सिमुक आग्नेयवादी था। सातवाहन अपने को ब्राह्मण कहते हैं किन्तु आग्नेयों को प्राचीन कालों में आर्य संस्कृति के प्रभाव से मुक्त कहा गया है जिससे स्पष्ट होता है कि आग्नेय शक्ति मूल के थे। वास्तव में आग्नेय और सातवाहनों में कोई सम्बन्ध नहीं था। वे जिन आग्नेय से संबंध प्राप्त थे और महाराष्ट्र देश के निवासी थे। सातवाहनो ने अपनी शक्ति का विकास महाराष्ट्र प्रदेश से ही किया जहाँ आग्नेय प्रदेश में अपना उपनिवेश स्थापित किया परन्तु कुछ समय के बाद एक-आपसी के आक्रमणों के फलस्वरूप उनकी सत्ता केवल आग्नेय प्रदेश तक ही सीमित रह गयी और पश्चिमी प्रांतों पर उनका अधिकार नहीं रह गया। इस प्रकार आग्नेय ही उन सीमित रह जाने के कारण सातवाहन लोग आग्नेय कहावे।

सातवाहन कुल का संस्थापक—पुरुषों के अनुसार सिमुक या सिमुक अथवा सिमुक (१०-१७ ई. पू.) ने सुनों और कन्नौ की शक्ति का उद्भव करने के आग्नेय वंश की स्थापना की। यह सिमुक ही सातवाहन कुल का प्रथम नरेश था। सुनों और कन्नौ से सिमुक ने सम्भव विविधा के निकट का प्रदेश हस्तगत किया था। उसका राज्य इतिहास में ही था। उसकी राजधानी प्रविष्टान अथवा वीठन थी जो उत्तरी पौरावरी-सट पर स्थित थी। सिमुक के निधन में हुये किसी अन्य बात का पता नहीं लगता।

कृष्ण—सिमुक के उपरांत उसका भाई कृष्ण जबना कुछ राज्य का अधिकारी हुआ। उसके शासन-काल में सातवाहनो की साम्राज्य-सीमा के कुछ अधिक विस्तृत हो जाने का प्रमाण मिलता है। नासिक के लिए धिमासेन से विरिध होता है कि उसका समय में वहाँ पर गुप्त का निर्माण किया गया था। इससे यह सिद्ध होता है कि उसका अधिकार नासिक तक पहुँच चुका था। पुष्पमिश्र शय की शक्ति उसने में था। बार वर्षभेय वंश का अनुष्ठान किया और ब्राह्मण धर्म के प्रति अपनी सच्चा प्रशिक्षण की। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्कर्ष प्रथम राजकुमार का विधान सातवाहनो की विध्वंस-पार भारत के सर्वसत्ताकारी की स्थिति तक उठाया। इस प्रकार गौरावरी की घाटी में पहले महान् साम्राज्य का स्थापन हुआ जो विस्तार तथा शक्ति में गया की घाटी के गुप्त-नासिक और पंचनद प्रदेश के मूलानी साम्राज्य की बराबरी करता था। इस शक्तिशाली शक्ति को भी अपने एक समकालीन नरेश से जोड़ा देना पड़ा। कनिग नरेश पारस के शाहीगुप्त अधिकृत से यह प्रमाण मिलता है कि सातवाहन की शक्ति में कुछ भी न समझते हुए उतने अपने शासन के द्वितीय वर्ष में मुसिक नगर पर

आक्रमण कर दिया और सातवाहन नरेश से बैर ठान लिया। परन्तु इस बैर से सातवाहन को कुछ भी भयका नहीं लगने पाया। आरबों की शक्ति स्थायी नहीं होने पाई और सातवाहन का नीरव पूर्ववत् ही बना रहा किन्तु सातवाहन के बाद सातवाहन बंस का इतिहास कुछ अन्धकारमय हो जाता है।

सातवाहनी—सिमुस का पुत्र सातवाहन कुल का दुतीय नरेश था। यह एक महान् विजेता और अपने बंस का प्रतापी राजा था। इसने मगध राज्य के सम्पादन विस्तार की भाँति सैन्य विजय और वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ करने की ओर ध्यान दिया।

सातवाहनी की मृत्यु के अनन्तर उसकी राणी मायनिका ने जो अयोग्यकुलीन महारानी अश्वकपिरी की पुहिता की राजकार्य संभाला। उसके दो पुत्र धनिष्ठी और वैश्वी बनी अश्वकपिरी कुमार हीन अतएव उनकी संरक्षिका बनकर उसी ने शासन-सूत्र अपने हाथ में ग्रहण किया।

वीरमीपुत्र सातवाहनी—वीरमी पुत्र सातवाहनी अपने बंस का सबसे बड़ा प्रतापी और पराक्रमी राजा था। उसके राजनीतिक कार्यों का सबसे अधिक महत्व इस बात में है कि उसने अपने बंस के कुष्ठ पीरव की पुनः प्रतिष्ठापना की और विदेशी आक्रमणकारी सत्तों को अपनी मातृभूमि से निर्वासित कर दिया। उसने अनेक सम-कासीन राज्यों से जोड़ा लिया और उनकी युद्ध में पराजित किया। एक-यवन-पहलव-सहारावी का नाश करके वीरमी पुत्र ने अपने बंस की मान-सम्मान को बढ़ाया।

वीरमी पुत्र केवल एक महान् विजेता ही न था बल्कि एक पुनर्जन्म व्यक्ति भी था। उसका स्वभाव अत्यन्त मृदु और कृपण था। सब की रक्षा करने की वह सर्वत्र उत्तम रहता था। वह युवियों का आभयदाता सीमांत का वास-स्थान एवं खेत्त व्यवहार का स्रोत था। इन मुक्तों के साथ ही साथ उसमें एक आपस सातवाहन के समी मुक्त विद्यमान थे। अपने प्रजाजनो के सुख-दुःख की वह अपने ही सुख-दुःख के समान समझता था। वह अपनी प्रजा पर आभस्वकता से अधिक कर नहीं लगाता था और अपराधियों के साथ वह दयापूर्ण व्यवहार करता था।

वाशिष्ठी पुत्र की पुनर्जाती—वीरमी पुत्र सातवाहनी के पश्चात् उसका पुत्र भी पुनर्जाती १३० ई. सन् के लगभग सिंहासनाब्ध हुआ। उसका शासन-काल लगभग पन्द्रह वर्षों तक रहा। पुनर्जाती भी अपने पिता की भाँति पराक्रमी और विजेता था। उसने अपने पूर्ववत् सातवाहनी प्रथम की विवाह-सम्बन्ध द्वारा सैन्य स्थापित करने तथा सैन्य विजयों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ करने की नीति का अनुसरण किया। वाशिष्ठी पुत्र की पुनर्जाती लगभग १५५ ई० में मरा।

सातवाहनी का पतन

यशस्वी सातवाहनी—यशस्वी सातवाहनी अन्धका भीमज सातवाहनी सातवाहन बंस का अन्तिम प्रतापी और शक्तिशाली नरेश था। उसका शासन-काल लगभग १५५ ई० से १९५ ई० तक रहा। यशस्वी सातवाहनी को अपने एक अति प्रतापी पूर्ववत् वीरमीपुत्र सातवाहनी की भाँति अपने बंस के भूकृच्छ्र पीरव को पुनः प्रतिष्ठापित करने का नीरव प्राप्ति प्राप्त है। उसने अपनी साम्राज्य सीमा का विस्तार किया। उसके सिक्के मुद्राएँ काटियावाड़ पूर्वी माळवा अपराण्ट (दक्षिण पठार का पश्चिमी भाग) मध्य प्रान्त एवं हरण जिले में प्राप्त हुए हैं। सिक्कों के इस विस्तृत प्रवेश में पाये जाने के कारण हमारा यह सीधना तर्कसंगत प्रतीत होता है कि यशस्वी सातवाहनी का राज्य काशी

पूर तक फैला हुआ था और उसके राज्य में महाराष्ट्र और आन्ध्र दोनों सम्मिश्रित थे। यज्ञभी शातकर्णि ने इन प्रदेशों पर भी अपना अधिकार जमाना था जिसकी शक्तों ने कुछ ही दिनों पूर्व शातवाहनों से छीना था। उसके शासन-काल में व्यापार की भी काफी उन्नति हुई थी। उसके कुछ सिक्कों पर जलमानों के चित्र अंकित हैं जो यह सूचित करते हैं कि यज्ञभी के समय में सामुद्रिक व्यापार काफी उन्नतिशील रहा में था।

यज्ञभी शातकर्णि के उपरांत शातवाहनों की राजनीतिक प्रगति बितों दिन धीरे-धीरे गयी। उसके उत्तराधिकारियों में सभी निर्बल अकर्मण्य तथा अयोग्य निकले। इस समय आवश्यकता थी किसी गौतमीयुक्त शातकर्णि की जो अपने बंध के लुप्त गौरव को फिर से प्रतिष्ठित करता परन्तु शातवाहनों के दुर्भाग्य से यज्ञभी के उत्तराधिकारियों में से कोई उसके भा पीतमीयुक्त के समान पराक्रमी तथा योग्य नहीं हुआ। कुछ पुराणों के अनुसार यज्ञभी के उत्तराधिकारी ने विषय (२०३ ९ सं० ई०) यज्ञभी भा यज्ञाभी (२०९ १९ सं० ई०)। ये दोनों केवल नाम के ही राजा थे। वास्तविक शक्ता उनका हाथों में केन्द्रित नहीं रह गई थी। किसी प्रकार से शातवाहनों की क्षीय शक्ति का इस समय तक काफी ह्रास हो चुका था बिदेसी आक्रमणकारियों के प्रबल संघात में पड़कर विस्तृत हो चुका गया। शातवाहन बंध की कुछ शाखाएँ किन्हीं प्रदेशों पर बाद में भी शासन करती रही परन्तु बंध का मूल गौरव लुप्त हो गया।

शातवाहनों के समय में क्षत्रिय की सम्प्रदाय और संस्कृति

शातवाहनों से शासन काल में सम्प्रदाय और संस्कृति की बहुत अधिक उन्नति हुई। नीचे विभिन्न तारों पर प्रकाश डाला जायगा।

सामाजिक जीवन—शातवाहन युग के क्षत्रिणी समाज की अवस्था का अध्ययन करने में कतिपय विशेषताएँ स्पष्टतया दृष्टिकोण होती हैं। प्रथम विशेषता है स्त्री का सम्मानपूर्ण स्थान। शातवाहन युगीन क्षत्रिय भारत के सामाजिक जीवन में स्त्रियों को एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था आवश्यकता पड़ने पर वे शासन-युक्त भी अपने हाथ में बहक करती थी। शातकर्णि प्रथम की पत्नी ने अपने पति की मृत्यु के बाद अपने पुत्रों के अल्पवयस्क होने के कारण स्वयं राज्य-संचालन का कार्य किया।

आर्यों के युग की सामाजिक अवस्था की विषयता इस बात में भी थी कि यह सामाजिक जीवन स्वयं नियन्त्रणों द्वारा बोधित नहीं बना दिया गया था। शातवाहन नरेश ब्राह्मण व और ब्राह्मण-धर्म के पुनर्स्थापन के लिए सचेष्ट भी थे। यथार्थ धर्म के प्रचार के लिए भी वे प्रयत्नशील थे।

बारों वर्षों के व्यापार पर समाज का विभाजन यहाँ के सामाजिक जीवन के विषयता थी। शातवाहन राजाओं के उत्तरीय अधिकारों में ब्राह्मण क्षत्रिय वीर्य भी मूल इन बार वर्षों का उत्प्रेषण पाया जाता है। समाज की इकाई कुटुम्ब होती थी। इसके अध्ययन को कुटुम्बित नहीं थे। कुटुम्ब का परिवार के अन्य सदस्य काफ़ी सम्मान करते थे और उनकी आज्ञाओं की विरोधार्थ करने के लिए नहीं प्रस्तुत रहते थे।

धार्मिक अवस्था—शातवाहन युग के क्षत्रिणी भारत की धार्मिक विचारवादा अत्यन्त उबार और सहिष्णु थी। यद्यपि लगभग सभी शातवाहन नरेश ब्राह्मण धर्म

के अनुयायी थे तथापि उन्होंने अन्य वर्मावलम्बियों के प्रति किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया। उन्होंने बौद्ध धर्म को अपने राज्य में फलने-फूलने का पूरा अवसर प्रदान किया। उनके शासन-काल में बौद्ध धर्म का काफी अधिक प्रचार वा और कला के क्षेत्र में बौद्धों ने अपना महत्वपूर्ण योग भी दिया।

सातवाहन-युग में ब्राह्मण धर्म बहुत अधिक प्रचार वा। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, सम्भवतः समस्त सातवाहन नरेश ब्राह्मण धर्म के कट्टर अनुयायी थे और इस धर्म के पुनर्स्थापन के लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न भी किये।

वैदिक कर्मकाण्ड-प्रधान धर्म के साथ ही और वैष्णव धर्मों की भी बहुत अधिक उन्नति हुई। कदाचित् यह सोचना असंगत नहीं कि सातवाहन मुगल दक्षिण भारत में ही और वैष्णव धर्मों का सबसे अधिक प्रचार वा क्योंकि ये ही धर्म कोरु-रवि के सबसे अधिक निकट थे। मेगास्थनीज ने वासुदेव कृष्ण की पूजा का उल्लेख किया है और यूरसेनियों में इसका सबसे अधिक प्रचलन बताया है।

सातवाहन युग की आर्थिक अवस्था की एक सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इस समय विदेशियों ने बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू धर्म ग्रहण किया। इस सामाजिक जीवन का अध्ययन करते समय यह देख चुके हैं कि विदेशी जातियाँ सक-महसब बड़े वेग से हिन्दुओं की सामाजिक रचना में प्रवेश पा रहे थे। यह इसलिए सम्भव हो सका कि उन्होंने हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया और तत्कालीन धर्मावलम्बीयों ने उनके इस कार्य की स्वीकार भी कर लिया। धर्म बंध के शासन-काल में हमने एक पवन राजदूत की भावना धर्म स्वीकार करते देखा था। इस समय विदेशियों के भारतीय धर्मों के स्वीकार कर लेने की यह परम्परा और आगे बढ़ी। विदेशियों ने भारतीय धर्म ग्रहण कर लेने पर अपने नाम भी उदघोषित ही रख किये।

आर्थिक व्यवस्था—सातवाहनों के सुदीर्घकालीन शासन में दक्षिण आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व समृद्ध था। लोगों का आर्थिक जीवन विभिन्न किस्म-कलाओं से युक्त होने के कारण अत्यन्त समृद्धिवादी था। कृषि उद्योग-वर्गों और व्यापार से तीन ही समाज की आर्थिक व्यवस्था के अंग हैं और सातवाहन काल का दक्षिण इन तीनों दृष्टियों से सम्पन्न था। आर्थिक जीवन इस समय भी प्रमुखतया कृषि पर ही अब निर्भर था परन्तु उद्योग-वर्गों और व्यापार की भी बहुत उन्नति हुई। मुद्राओं का बहुलता से प्रचलन होना भी इस युग की आर्थिक समृद्धि की द्योति करता है। कई प्रकार के सिक्कों का प्रचार वा। सबसे अधिक मुख्य के सिक्के को सुवर्ण कहा जाता वा जिसका मूल्य चांदी के १५ कार्यपण के बराबर होता था। इसके बाद चांदी का एक दूसरा सिक्का होता था जिसे कुपान कहते थे। कार्यपण चांदी और ताम्र के सबसे छोटे सिक्के होते थे जिनकी सोग सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त करते थे। व्यापार पर रण्य प्रचार लेने की प्रथा विद्यमान थी।

सातवाहन युग के दक्षिणी भारत में आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के व्यापार उन्नतिशील अवस्था में थे। व्यापार की सुविधा के लिए देश के विभिन्न भागों में राज मार्गों की समुचित व्यवस्था थी। अनेक सड़कें बनी हुई थी जिनके द्वारा व्यापारियों के कारोबार अपनी-अपनी सामग्रियों के साथ एक भाग से दूसरे भाग तक पहुँचा करते थे। दक्षिण भारत में पैठन तगर, नासिण, अम्बार, कहलिक (कहलुड) आदि व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे। ये नगर राजपथों द्वारा एवं दूसरे से मिले हुए थे। विदेशी व्यापार भी काफी समृद्ध अवस्था में था। पारश्वाम्य जयत के साथ दक्षिण भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था।

कला और साहित्य—कलाओं के विकास और साहित्य-युवन की इष्टि सातवाहन युग महत्वपूर्ण नहीं था। जैसा कि हम ऊपर कह जायें हैं बौद्ध धर्म में युग की कलात्मक प्रगति को जन्म दिया। अधिकतर रूप में इस समय वास्तुकला का अधिक विकास हुआ। शक्ति में कमजोर बितने और शैलगुह और गुहा मंदिर इस समय मिले हैं जो सबका निर्माण सत्यवत सातवाहन युग में ही हुआ था। जैसा गुह भवन मंदिर और भवन का शिखरों के आवास के रूप में गुहा विहार और गुहा-जैत्य के अत्यन्त सुन्दर भवनों का नासिक कारके और भाभा में गुहा विहार और गुहा-जैत्य के अत्यन्त सुन्दर भवनों का निर्माण सातवाहन युग में ही हुआ था। सातवाहन गुरु प्राकृत भाषा के परिपोषक और प्राकृत कवियों के आभयदाता थे। उनके सभी अभिलेख प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण हैं। उनके शासन-काल में प्राकृत भाषा और साहित्य की बहुत अधिक प्रगति हुई। हाम नामक सातवाहन राजा स्वयम् प्राकृत का एक रचयिता कवि था। उसके प्रसिद्ध कथय गाथा सप्तशती का बहुत बड़ा महत्व है। उसी की राजसभा में मुकाबय नामक बुद्धिमान लेखक रहता था जिसने गुहाकथा नामक श्रव्य का प्रथम किताब का विद्यालय मन्थार है। ऐसे महोदय के कथनानुसार 'काव्य' नामक व्याकरण का रचना सर्ववर्मान ने इसी समय के लगभग की थी। इस युग में संस्कृत धर्मों के प्रथम का तो कोई स्पष्ट विवरण नहीं प्राप्त होता किन्तु इस काल की प्राकृत रचनाओं पर संस्कृत की व्यापकता परिलक्षित होती है।

कलिंग राज कारवेल

प्राचीन भारत में कलिंग का राज्य अत्यन्त समृद्ध था। इस राज्य की बन्धा तथा अन्य परिवारों की समृद्धि का वर्णन आठवें में मिलता है। कलिंग राज्य में गुरी और पञ्चम के बिले कटक का कुछ भाग उत्तर और उत्तर-पश्चिम के कुछ प्रदेस सम्मिलित थे। कलिंग राज्य के आधुनिक देश पर अधिकार था। कुछ इतिहासकारों की सम्मति में पूर्व सघाट बन्धुपुत्र के साम्राज्य में भी कलिंग का राज्य सम्मिलित था किन्तु उसकी मृत्यु के अनन्तर कलिंगवासियों ने विद्रोह कर दिया और स्वतन्त्र हो गये। किन्तु धार के समय में भी कलिंगवासी स्वतन्त्र रहे। सघाट बन्धु की कलिंग-विजय के विवरण प्राचीन भारत के इतिहास की एक अत्यन्त विरूपित घटनाओं में से है। कलिंग देश के अपने बाले अपनी स्वतन्त्रता के कुछ अनुशसी ने जितने कारण महान् मृत्यु के अनन्तर दिया की प्रथम छापी पूर्व यवन साम्राज्य के जो समु उठ खड़े हुए वे उनमें से कलिंग राज्य की एक प्रगत उपु था। हावीकुम्भा अभिलेख से हमें यह बात होगी कि जिस समय पश्चिम में सातवाहन राज्य कर रहा था। कलिंगवासियों ने उत्तरी भारत में अपनी सेवा के कारण राजगुह के राजा को पराजित किया। यह कारवेल कैरिब के महामेरवाहन परिवार का था।

महापन्न कारवेल प्राचीन भारत के अत्यन्त विख्यात सघाटों में अपना स्थान रखता है। हावीकुम्भा अभिलेख में जो भुवनेश्वर (उड़ीसा) के निकट उदयगिरि गुहा की एक गुहा में उत्कीर्ण है कारवेल के शासन-काल की घटनाओं का अत्यन्त विस्तार वर्णन है। इस अभिलेख के अनुसार राजकुमार कारवेल ने अपने

जीवन के प्रारम्भिक पन्ध्रह वर्ष राजोचित शिक्षा प्राप्त करने में व्यतीत किए। उसने शासन से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन किया। सीलमें वर्ष में राजकुमार कार्त्तवेल 'सुवराज' की पदवी से विभूषित किया गया। इसके उपरान्त आठ वर्ष उसने भूरा यज्ञना 'स्यवहारविधि' (मीमांसा तक आदि) तथा अन्य विद्यायें सीखने में बिताया। अपनी माय के चौबीस वर्ष समाप्त कर लेने के उपरान्त कार्त्तवेल कस्मि का महाराज हो गया। उसने 'कसिहोविपति' और 'कसिहो बन्धवर्तन' की पद्धतियाँ लागू की। सम्भवत उसने 'महाविजय' का भी विवर ग्रहण किया।

अपने शासन के प्रथम वर्ष में महाराज कार्त्तवेल ने अपनी राजधानी के बाहर बैराज को सौंभारने की ओर ध्यान दिया। उसने उन मुख्य द्वारों और प्राकारों की मरम्मत कराई जो काल के मुह में पड़ कर टूट गये थे। उसने लौकहित की दृष्टि से कुछ नवीं वस्तुओं का निर्माण करवाया जिनमें सीतल बग से मुक्त और सीढ़ियों से अलंकृत तटारों का स्थान प्रमुख था। दुर्गों की उसने अच्छी तरह से मरम्मत कराई। बमहित के कार्यों में उसका प्रभूत बल व्यय हुआ और पैंतीस लाख मूद्रायें व्यय करके महाराज कार्त्तवेल ने जनता के मनोरंजन और आमोद-ममोद की व्यवस्था की। अपने राज्य काल के द्वितीय वर्ष में उसने अपने सर्व्व बल और शक्ति का परिचय दिया। आग्नि नरेश पातकजि की दक्षिण को तुल्ल समझते हुए उसने अग्नि हाथी रख और पैदल सैनिकों की एक विद्याल काहिली भजकर दुष्का पर स्थित मुपिक नगर को ध्वस्त किया। चौथे वर्ष में सम्भवत कार्त्तवेल ने विद्याधर नामक राजकुमार की राजधानी पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया और उसी वर्ष उसने पाटिकों तथा सोबकी को जो कदाचित् बरार प्रदेश में रहते थे पराजित करके उनका हमन किया। अक्षिप्त में महाराज कार्त्तवेल को जो सफलता प्राप्त हुई उससे उसका उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया और उसने उत्तरी भारत पर भी अपना प्रभाव बमाने का विचार किया। इसी भावना से प्रेरित होकर उसने अपने शासन के आठवें वर्ष में गौरवविधि को विजयस्त किया। यह आक्रमण की पहाड़ियों में बना हुआ एक मुख्य दुर्ग था जिसके ध्वस्त हो जाने से उसकी आगे विजय प्राप्त करने में बड़ी सरलता प्राप्त हो गई। उसने राजगृह नगर पर बाबा किया और वहाँ के निवासियों को सम्मस्त किया। कार्त्तवेल के इन सीमापूर्ण कार्यों के समाचार ने एक मगध नरेश के हृदय को इतना अधिक प्रभावित कर दिया कि वह भावकर मनुष्य बना गया। यह मगध राजा जिसका नाम कमी-कमी कुछ सन्निवह रूप से विमित अबबा विमठ (हिमेन्द्रियध) पड़ा जाता है सम्भवत पूर्वी पञ्जाब का परवर्ती इच्छी-मुलानी शासक था। इसमें वर्ष में सेना संधि और साथ आदि विभिन्न उपायों का बहुसम्बन्ध करके कार्त्तवेल ने उत्तर-भारत-विजय के लिए 'भारतवर्ष की ओर' प्रस्थान किया। यहाँ पर भारतवर्ष राज्य का जो प्रयोग किया गया है उससे अभिप्राय अस्तर्बि रूपका उत्तरी भारत से है। अपने राज्यकाल के ग्यारहवें वर्ष में उसने दिवुध नगर को विजय किया और उसके प्रासादों पर हल चलवा दिया। इसी समय उसने अपने पलायित शत्रुओं के माल को लूटकर हस्तगत किया। उसने मयवहासियों को सम्मस्त किया और सम्भवत पंजा के तट पर मगध-नरेश बहुसति मित्र को पराजित भी किया। कार्त्तवेल ने अपने शासन के आठवें वर्ष में ही राजगृह पर आक्रमण करके वहाँ के निवासियों को भयाकुल कर दिया था और इस बार भी उत्तरापथ के अन्य नरेश कार्त्तवेल की प्रथम रण-शक्ति से प्रभावित हो चुके थे। अतएव बहुसतिमित्र ने जिसे राजगृह का स्वामी कहा गया है सन्धि की प्रार्थना की। सन्धि की इस प्रार्थना को स्वीकार करके महाराज कार्त्तवेल ने बहुसति मित्र से अपनी पादार्चना कराई। उत्तरापथ की सैन्य

सफलताओं के वर्णन में हाथीपुच्छा अभिलेख का प्रशस्तिकार कहता है कि कारनेक ने अपनी सेना के हाथी-बौड़ों को संध्या में लहसा कर मायमयनों में विपुल भय उत्पन्न कर दिया। इस समय वह कर्किग क्षेत्र की जिग मूर्ति को अपने साथ ले जाया जिसे तन राजा मनघ ले प्ये थ। मनघ के राजा को मुख में पराजित करके महाप्रतापी कारनेक ने नद्यों और मीनों के तमन में किये गये कर्किग के राष्ट्रीय अपमान का प्रतीकार किया। उसने इस बार मनघवासियों की बहुत सी सम्पत्ति भी लूटी। इसी वर्ष उसने बल्लिभ के पाण्डप नरेश पर आक्रमण किया और मुक्ता-मणि रत्न की अनन्त राशि प्राप्त की। सैन्य-विजयों के उपरान्त अपने शासन के ठेकरहें वर्ष में कर्किग नरेश कारनेक ने एक नाविक कार्य किया। वह स्वर्ण जैन तम के अनुयायी वा ब्रह्मचर्य उसने कुमारी पर्वत (उदयगिरी कच्छगिरी) में जैन साधुओं के वर्षावास तथा अन्य मुहूर्तों के लिए पक्का छाव ठे जी अधिक मुहूर्तों बनवाई।

प्रश्न

1. सुंग कौन थे? पुप्पमित्र ने किस प्रकार मनघ साम्राज्य को हस्तगत किया?
2. क्या पुप्पमित्र बीड़हन्ता था?
3. पुप्पमित्र सुंग के शासन-काल की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कीजिए।
4. सुंग कालीन सम्मता एवं संस्कृति के विषय में आप क्या जानते हैं?
5. कन्न बंध के विषय में आप भी कुछ जानते हैं? किजिए।
6. जाम्ब-सातवाहन बंध के विषय में आप क्या जानते हैं? उनका प्राचीन इतिहास किजिए।
7. सातवाहन बंध के कुछ प्रमुख घातकों का संक्षिप्त इतिहास किजिए।
8. सातवाहन कालीन बल्लिभ भारत की सम्मता एवं संस्कृति का विवरण कीजिए।
9. कर्किग राज्य कारनेक पर संक्षिप्त टिप्पणी किजिए।

भारत पर विदेशी जातियों का शासन

भाग १ इण्डो-ग्रीक (यवन जाति)

मीनों के सुसम्बन्धित शासन में भारतवर्ष के एक बहुत बड़े मूलान को राज नीतिक एकता प्राप्त तथा सुसम्बन्धित प्रभाग की थी। प्रथम मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में सिन्धु-कुस नाइनेटर ने भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर आक्रमण किया था और सिन्धु-कुस की महत्वाकांक्षा से उत्साहित होकर वह स्वयं भी भारत पर स्थायी यूनानी शासन की स्थापना करना चाहता था। परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य की विद्याल सेना ने यूनानी सेनानायक की महत्वाकांक्षा को बूझ में मिला दिया और उसे एक अपमानजनक सन्धि करने के लिए विवश होना पड़ा। इसके पश्चात् राष्ट्रीय सीमा के उस पार कुछ ही दूर रहने वाले यूनानी शासकों को इस बात की हिम्मत नहीं हुई कि वे भारत की हितचक्षुर्मयी वसुधैव कुटुम्बक की लुटे और यहाँ के निवासियों की उत्पीड़ित या संवत्स करें क्योंकि उनके ऊपर मौर्यकाशीन भारत की प्रचण्ड व्यवस्थित और बहुसिद्ध सैन्य बल का सिक्का पड़ चुका था। चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद उसके पुत्र बिन्दुसार के समय यवन राज्यों का मैत्री-सम्बन्ध था। अशोक ने मैत्री की इस परम्परा को न केवल अमूल्य ही रखा अपितु इसे सुदृढ़ भी बनाया। उसने अपने बर्म प्रचारकों को सीरिया मिस्र साइरीन मकड़ुनिया तथा एजिप्ट के यवन राज्यों में भेजा। इन राज्यों में इस महान् भारतीय सम्राट् की बर्मसंघर्षिणी नीति की सिरसा स्वीकार किया। किन्तु यहाँ ही अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य की शक्ति शिथिल पड़ने लगी यवन राज्यों के दृष्टिकोण में परिवर्तन उपस्थित हो गया। वेध की अशान्तिपूर्ण अवस्था और एक सुदृढ़ शासन के अभावजनित व्यापक अराजकता से खोप लान उठाने की सोचने लगे।

बलिटमा के यूनानी—सिन्धु-कुस महान् के सेनानायक सिन्धु-कुस ने एक विशाल राज्य को अपने अधीन रखा था। परन्तु उसके राज्य में विभिन्न जातियाँ रहती थीं जिनमें परस्पर कोई मूल-मूल सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय एकता विद्यमान न थी। वे जातियाँ शक्ति के जोर से दबा रक्खी गई थीं। अतएव जब तक सिन्धु-कुस के बाहु में बल था व वृषबाध उसके शासन की स्वीकार करती रहीं परन्तु अयोध्या बाद में यूनानी शासकों की शक्ति शिथिल होने लगी कि वे अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने का अवसर ढूँढ़ने लगे। अन्त में अवसर प्राप्त होते ही यूनानी राज्य के दो महत्वपूर्ण और विस्तृत प्रांत पार्थिया और बैक्ट्रिया में विद्रोह हो गया और वे स्वतन्त्र हो गये।

डियोडोरोस प्रथम और डियोडोरोस द्वितीय—डियोडोरोस प्रथम ने पहले कुछ दिनों तक सिन्धु-कुस ने बंध की ओर से परमर्ष के रूप में बैक्ट्रिया पर शासन किया था। परन्तु बाद में उसने एक स्वतंत्र गैरिष के रूप में शासन कर एक नवीन राजवंश को नाम डाला। वह एक शक्तिशाली राजा था और उसके पड़ोसी उससे काफ़ी डर भीत रहते थे। उसका शासन-काल संभवतः २४५ ई० पू० से लेकर २१० ई० पू० था। उसका अन्त एक सामरिक पर्यटन युधिष्ठिर (Euthydemus) द्वारा हुआ।

मुचिबधित—मुचिबधित ने कियोडीटस द्वितीय की हत्या कर के राज-सिंहासन हस्तगत करवा कर लिया था परन्तु शान्ति और सुख से राज्य करना नहीं उसे नाम में नहीं था। उसके सिंहासनावकाश होने ही तिस्रसक के राजवंश के छीरिप मग्राट एटिकोकस तृतीय (अगमम २२४ ई० पू०) ने अपने राज्य के छीरिप प्रांतों को जिनमें अब स्वतंत्र राजवंश स्थापित हो चुके थे छिर से अपने अधिकार में करने की वात्सल्य से चेष्टा की। २०८ ई० पू० के लगभग एटिकोकस तृतीय ने ईरिदुया पर आक्रमण कर दिया परन्तु वीरों के और संघर्ष के बाद भी उसे अपने प्रान्त में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। अंत में विषम होकर उसने मुचिबधित के साथ संधि करके ईरिदुया की स्वतंत्र राजसत्ता स्वीकार कर ली। इस संधि के प्रभाव स्वल्प उसने अपनी हत्या का बिवाह मुचिबधित के पुत्र डेमेट्रियस (Demetrius) के साथ कर दिया।

यूना-सम्बन्धी साक्ष्यों से विदित होता है कि मुचिबधित ने एक विलुप्त राज्य सीमा पर काफ़ी अधिक समय तक राज्य किया। उसके बाद के निकले नाम (ईरिदुया) और बुकारा में बहुत बड़ी सन्ध्या में पाये गये हैं। विद्वानों का विचार है कि अपने अपने पवित्रमी राज्यों के नामों में संभवतः १८७ ई० पू० के बाद जब कि एटिकोकस दक्षिण में अफगानिस्तान के गिल्गि प्रदेश तक अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ा ली। ईराण से लगे हुए प्रदेश और उत्तरी पवित्रमी भारत के कुछ भागों पर भी उसने अपना अधिकार जमा लिया।

डेमेट्रियस—डेमेट्रियस का उत्पन्न भारतीय प्रदेशों के विदेश के रूप में युगानी लेखकों ने किया है। 'युगपुराण' में यमनों के सम्बन्ध में जो लिखा है कि वे बाकेत (अबोष्मा) के निकट वीरतमान राजावाप बिते में है। पाश्चात्य (कुछ अर्थों तक वर्तमान इंडोसकंद कहा जा सकता है) और मगध की आक्रान्त कर कुतुम्पन्न पहुँचे। पठम्बजि ने अपने महाभाष्य में "अकम्प यमन साकेतम्" अर्थात् यमन साम्यनिकाय" द्वारा जिन भाषित का संकेत किया है वह डेमेट्रियस के सेतून में गयी आक्रमण था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद डेमेट्रियस का यह कारण था कि वह अपने लोटे जाना पड़ा। डेमेट्रियस के जाने न करने का यह कारण था कि वह अपने अपनी भारतीय विजयों में सफलता की मुक़ेदाइय (Eucabides) नामक एक पराक्रमी व्यक्ति ने अन्तर्गत का सन्ध्या जमा किया जिसने महाकर डेमेट्रियस को इस भाँति हरा दिया। वही कारण था कि अपनी भारतीय विजयों में भी डेमेट्रियस का प्रायः को विजय से ही संतुष्ट होना पड़ा। पुत्रियन गुप्त के प्रथम प्रतिरोध ने भी यमनों के लोटे कर दिये। बाह्य उनानायक की अक-पुत्रिगीता के अन्तर्गत युगानियों की मध्य सेव तथा पंजाब के कुछ भागों से हाथ बाँट गये।

मुक़ेदाइय—उपर हम कह चुके हैं कि मुक़ेदाइय ने अन्त-विहीन का लक्ष्य नष्ट करने ईरिदुया का राजसिंहासन हस्तगत कर लिया। वह तिस्रसक के राजवंश की छाया था। उसने ईरिदुया के मुक़ेदाइय नामक नगर का निर्माण कराया था। मुक़ेदाइय केवल ईरिदुया से ही संतुष्ट नहीं रहा। उसने हिन्दुस्तान की उत्तरी पश्चिमी कर्नाटकतुल्य करने भारत के यूनानी राज्यों पर आक्रमण कर दिया। पश्चिम नामक यूनानी लेखक के अनुसार "उसने भारत को जीता और वह हजार लोगों का स्वामी बन गया। उसकी विजयों के अन्तर्गत यूनानी भारत की भावी

में विभाजित हो गया—(१) पूर्वी भाग जिसके ऊपर सुविदेमस के बंधनों का राज्य था। इस बंध की-राजधानी साकस (साकसोट) थी। (२) पश्चिमी भाग की राजधानी उमसिला थी। इस भाग पर मुकटाइडस के बंधनों का अधिकार था। इन दोनों बंधनों को मिठा कर समग्र बालीस राजाओं ने शासन किया। उनके विषय में मुद्रा राज्य द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है।

हेल्मियोस्कीज—हेल्मियोस्कीज अपने बंध का एक प्रतापी राजा था। उनमें भारत और बैक्ट्रिया के युनानी राज्यों पर अपना अधिकार जमाये रखता। परन्तु यत्र याद रखना चाहिए कि हेल्मियोस्कीज बैक्ट्रिया का अन्तिम शासक था क्योंकि उसके बाद ही यहाँ ने सभ्य एशिया पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। परन्तु बैक्ट्रिया का राज्य छिन जाय पर भी इस बंध का समूलोन्मूलन न हो सका। इन कुछ के कुछ जैसे कानून और भारत के सीमावर्ती प्रदेश पर बाद में भी कुछ समय राज्य करने हे परन्तु इन राजाओं के विषय में हमें कुछ विशेष बातें साम्य नहीं हैं।

मिनेग्डर—भारत के युनानी शासकों में केवल मिनेग्डर ही ऐसा राजा है, उसकी स्मृति भारत की साहित्यिक अनुसृष्टि द्वारा है। जय इन्डो-चीन राजाओं, विषय में हमें जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त होता है वह लगभग सम्पूर्ण अंशों में मुद्रा द्वारा ही उपलब्ध होता है। मिनेग्डर न बीड बर्ग में जो अनिश्चित दिखाई उसका परिचय उसके यशस्वी की दृष्टि से हितकर ही हुआ। अपनी बमनिराजिता और दार्शनिक विज्ञाना दृष्टि के कारण वह भारतीय इतिहास में अमर हो गया है। 'मिस्त्रि' पण्डो नामक बीड राज्य में मिस्त्रि नामक जिस युनानी नरेश का उत्सेज किया गया है वह निरन्तर रूप से मिनेग्डर का। इस राज्य में वह एक महान् विज्ञान् तर्कशील विज्ञान व्यक्त तथा बर्ग के संरक्षक के रूप में चिन्तित किया गया है। न प्रसिद्ध बीड निम्न नामसे न बीड बर्ग के विषय में सूचनाविबुध प्रदान करता था सोमेन के 'अवधानकम्पता' राज्य में भी मिनेग्डर का उत्सेज किया गया है और उसका युद्ध संस्कृत नाम 'मिस्त्रि' दिया गया है। बीड साहित्य में उसकी वाणी बैनी ही प्रविष्टा है बैनी उपनिषद् में विवेक सघट जनक की। उसकी राजधानी पारस की जिसका वर्णन 'मिस्त्रि पण्डो' में एक महान् व्यापारिक केन्द्र के रूप में हुआ है वा नवीन भूखण्ड में बसा हुआ था और जिसकी सीमा आराम-उपवन-उपवन-उपवन पर्वतों से मुक्त होने के कारण न पर्वत और नदी के स्पर्श के समान हो रही थी। उ प्रथम में मिनेग्डर के लिए कहा गया है कि उसने अपना राज्य अपने पुत्र की सींग र संसार से संपादित किया और न केवल एक बीड मिश्र बस्ति बर्ध हो गया।

स्ट्रैबो ने मिनेग्डर का उत्सेज डेमिट्रियस के साथ किया है और उसे भारतीय लोगों का पीरवी प्रदान किया है। उसने यह भी लिखा है कि 'मिनेग्डर ने सिन्धु से भी अधिक देव बोले और वह हारफेरिज (व्यास मयी) की पार करके आग्नेयमन गरी तक पहुँच गया। मिनेग्डर के सिके कानून से लेकर मनुष्य और बुद्धिपूर्वक तक पाये जाते हैं। मुद्रा-मन्त्रणी प्रमाणों के आधार पर यह कह सकता अनुचित नहीं कि मिनेग्डर का राज्य मनुष्य तक फैला हुआ था।"

टार्न के अनुसार मिनेग्डर की मृत्यु १५०-१४५ ई. पू० के लगभग हुई। उसकी मृत्यु के बाद उसका राज्य काफी दुर्बल और पश्चिमीय हो गया। उसके उत्तराधिकारियों के सिके प्राप्त हुए हैं जिन पर स्ट्रैबो 'डितीय' का नाम मुरे हुने है। परन्तु उनके

सम्बन्ध में हमें अन्य किसी महत्वपूर्ण बात का पता नहीं चलता। मिनेम्बर के जल-बिकारियों का नाम धर्मों द्वारा हुआ। इस प्रकार मुनिमेम्बर के कुल की राजसत्ता भी भारत भूमि से नाम-निष्ठान मिट गया।

यूनान का भारत पर प्रभाव

यूनानी का भारत पर प्रभाव पड़ा था नहीं यह एक विवाद का विषय है। पारंपरिक विद्वानों का कथन है कि भारतीय सम्प्रदाय एवं संस्कृति के उत्थान की बीजात् मुनी नीच पर ही लड़ी है पर यह यथार्थ नहीं है। दूसरे विद्वान इस पक्ष में हैं कि भारत पर कोई यूनानी प्रभाव न पड़ा और यन्त्रार हीनी तथा मुद्राओं की छिद्र करों यूनानी अस्तित्व भारत में न टिक सका।

वैसा कि हमने पिछले पृष्ठों में पढ़ा है सिक्खर के आक्रमण का भारत पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। मेगस्थनीज ने तो साफ-साफ किस्म विवा है कि सिक्खर का भारतीय प्रभाव केवल १९ माह ही रहा और सेम्पुक्स सिन्धु तट से वापस चला गया। यदि कोई प्रभाव आक्रमण का पड़ा भी तो सिक्खर की मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो गया। हाँ सिक्खर ने विदेशों से भारत का सम्बन्ध स्थापित करने का मार्ग बरकर आला बिना बिसे यूनाना नहीं जा सकता।

सिक्खर के आक्रमण के बाद भारत के पश्चिमी-उत्तर भाग में लगभग २० वर्ष तक डेमेट्रियस और उसके उत्तराधिकारी बसे रहे। उस काल में दोनों सम्भाव्य परस्पर मिल गई पर यह नहीं कहा जा सकता कि किस सम्प्रदाय का प्रभाव अधिक रहा। कुपाय बंधीय राजाओं के बलिष्ठता से यही बात होना है कि यूनानियों में हिन्दु-धर्म स्वीकार कराने की मनोकामना की फिर भी विभिन्न क्षेत्रों में जो आदान-प्रदान हुए वे भी इस प्रकार हैं—

ज्योतिष के क्षेत्र में—यूनानी ज्योतिष का कुछकुछ प्रभाव भारतीय ज्योतिष पर दिखाई पड़ता है। भारतीय ज्योतिषाचार्यों ने यूनानी ज्योतिष से कुछ बातें अवश्य सीखी पर साथ ही उन्होंने उन विद्वानों को विस्मृत अपने सवि में हाथने की कोशिश की और वे अपनी प्रयास में सफल भी हुए। भारतीयों ने कुछ यूनानी सिद्धान्तों को ज्यो का लो घृष्ट कर लिया। जैसे राक्षिक ज्योतिष के 'रीम' और 'पौषि' सिद्धान्त देखकर वह कहना पड़ता है कि भारतीय ज्योतिष पर निश्चय ही यूनानी ज्योतिष का प्रभाव है। बदाहमिहिर नामक प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों ने कहा है कि 'यवन लोग मत्स्य हैं किन्तु ज्योतिष शास्त्र के पश्चित होने के कारण ज्योतिषों ने की भाँति पुनर्जीव हैं। हमारे देश के विद्वान दूसरे विद्वानों से ईर्ष्या नहीं करते वे इसलिज उन्होंने उनके ज्ञान से लाभ उठाने में सफलता प्राप्त की। हमने यूनानियों से जो कुछ सीखा उन ज्ञान में काफ़ी उपति करके कुछ ही समय पश्चात् अरब वालों को सिखाया जिससे योरप वालों ने सीनी।

गुरा-निर्माण के क्षेत्र में—यूनानियों के भारत में बसने के पूर्व यहाँ गुम्बर मुद्राएँ नहीं बनाई जाती थी किन्तु हम लोगों ने समझे मुद्रा बनाने की कला सीखी और गुम्बर तथा गुडीय विषय के नाम से। विषकों पर नाम उत्कीर्ण करवाने की प्रथा भी यूनानी लोगों ने ही अपनाई गई। मुत्तकाल में हमारे देश की सबसे गुम्बर मुद्राएँ बनाई गई थी क्योंकि इस समय तक भारतवासियों ने यूनानियों से मुद्रा-निर्माण करने की कला सीख ली थी। हाँ इन मुत्त विषकों में एक बड़ी विशेषता भी है जो यूनानी निरकों में

मही है वह यह कि इन मुद्राओं पर कवित्तों में लेख जुड़े हैं। यह बात विस्तृत माध्यम है और यह मूलानियों की देन नहीं है।

मूर्ति-निर्माण-कला के क्षेत्र में—वीछे यह बताया गया था कि सिक्खर के आक्रमण के बहुत समय बाद हमारे देश के पश्चिमोत्तर भाग में बसे हुए मूलानियों के प्रभाव से यहाँ एक विशेष प्रकार की कला का उदय हुआ। इसे माग्यार-कला कहते हैं। माग्यार प्रदेश में इसका जन्म होने से कारण ही इसका यह नाम पड़ा है। माग्यार में बुद्ध भगवान् की जो मूर्तियाँ बनाई गई थी उन पर मूलानी प्रभाव है। यही यह भी जान लेना जरूरी है कि माग्यार-कला का प्रचार सम्पूर्ण भारत में नहीं हो सका और बहुत सीधे बुद्धकामीन कला का रेश छा गया।

साहित्य के क्षेत्र में—यूरोप के विद्वान तो यह भी कहते हैं कि मूलानियों के साहित्य ने भी हमारे साहित्य को प्रभावित किया था। उनका यह विरासत है कि मूलान के महाकवि होमर के बन्नी 'इलियड' और 'ओडिसी' का प्रभाव हमारे 'महाभारत' और 'रामायण' पर है। यह मत विस्तृत ही असत्य है। हमारे ये दोनों महाकाव्य स्वतंत्र रूप से लिखे गए थे और इन पर किसी प्रकार का बाह्य प्रभाव नहीं है। होमर के दोनों महाकाव्यों की रचना के हजारों वर्ष पहले से हमारे दोनों महाकाव्यों की कबालें मौलिक रूप से चल रही हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मूलानियों से हमने बहुत सी चीजें सीखीं किन्तु उनको अपने सचि में हाँकने में भी हमने कोई बिलाई नहीं की।

भाग २ शकों का आक्रमण और भारत में शक-पञ्चन

भारतीय साहित्य में जिन विदेशी जातियों का उल्लेख आता है उनमें सबसे प्रथम स्थान 'शक' जाति को प्राप्त था। उसके बाद 'बहम' और पञ्चन जातियाँ आती थीं। संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर शक, बहम पञ्चन शब्द का प्रयोग मिलता है जिससे विदेशी जातियों का ही बोध होता था। भारत में जितने भी विदेशी कबीले आते और वहाँ बस गए उन सबको परवर्ती युग में 'शतर' समित कहा जाने लगा। परन्तु यह वास्तव में उनको हिन्दू धर्म में मिलने के प्रयत्न का प्रतिफल ही था। ये सभी जातियाँ विदेशी थीं और इनके लिए साधारणतया 'भलेच्छ' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इन जातियों में सबसे प्रथम मूलानियों ने ही भारत में प्रवेश किया जिनके विषय में हम पिछले अध्याय में एक चुके हैं। जिन विदेशी विदेशियों ने उत्तर-पश्चिम भारत से मूलानी सत्ता का उन्मूलन किया वे भी शक पञ्चन या पाण्डित्य और य. भी बहम कुपाय। ये लोग मूल रूप में मध्य एशिया की घुमकड़ जातियों में थे किन्ती एक छाया से सम्बन्ध रखते थे। अपने पड़ोसी कबीलों के आक्रमणों से सबजीत होकर और अपनी स्वाभाविक संकमनशीलता के कारण यहाँ वे विभिन्न स्थानों में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये थे। लगभग १७५ १९५ ई० पू० हिउंग-नू (Hiung-nu) हूय लोगों ने मुझी के महान और पश्चिमासी कबीले को पश्चिमी चीन से निकाल बाहर कर दिया। मुहू भी लोगों को टोकेरियन (Tocharians) और तुइक भी कहा जाता है। हूनों द्वारा पश्चिमी चीन से निकाल दिये जाने पर वे सोव पश्चिम शिया की ओर बढ़े जहाँ पर उनकी मुठभेड़ एक अन्य घुमकड़ जाति से हुई। इस जाति का नाम से (Soo) या शक था जो सर बरिवा (Jaxartes or Syr Darya)

के दरों पर रहते थे। यह मूठमूक सम्भवतः राकों के जाति देश में हुई थी वहाँ पर यू भी जाति में पराजित होने से बाद उनको दक्षिण की ओर हट जाना पड़ा। अपने बरस निकासे जाने पर उनको भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में धरम मैनी पड़ी कुछ दिनों बाद बिजेता यू भी कोर्पोको बु-सन नामक एक अन्य जाति द्वारा पराजय सहन करती पड़ी और वो यू भाग उन्होंने धर्मसे हस्तगत किया था उसे उन्हें छोड़ देना पड़ा। वे आक्सस (Oxus) की घाटी में बस गए और वही से दक्षिण में बैक्ट्रिया पर अपना कुछ अधिकार जताने लगे। यही कोनों द्वारा स्वरूपान से निकासे जाने पर राकों ने अपनी विभूतिसिद्धि पवित्र का संग्रह करना आरम्भ कर लिया और वे बैक्ट्रिया के बुखारे-वीक शासकों पर आक्रमण करने लगे। सीधे ही वे एराकोसिया (Arachosia) और उत्तरी बैक्ट्रिया (North Bactria) तथा पंजाब में बिलकरी पड़ने लगे। परन्तु काबुल में उनका प्रवेश नहीं हो सका क्योंकि वहाँ पर अब भी यूनानियों की राजसत्ता कुछ सक्रिय थी। अतः एक सोम भारत में बीबर बरें के मार्ग से होकर मही अपितु बलूचिस्तान की झाड़ूई पर्वत श्रृंखलाओं और होल्त के दरों से होकर प्रविष्ट हुए। बैक्ट्रिया के प्रथम राजाओं की दक्षिण अफगानिस्तान की ओर भी बिसेसे वे इन वर्षों आक्रान्ताओं के सामने ठहर नहीं सके। आगे बढ़ कर एक कोप एरियाना (पश्चिमी और दक्षिणी अफगानिस्तान) तथा पूर्वी ईरान में बस गये। दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ने पर राकों ने पार्थवों से जोड़ा किया जिनका बहु (Oxus) नदी के पार राज्य था। पार्थवों का राज्य राकों के प्रसार को रोक नहीं सका। काठ द्वितीय नामक पार्थव नरेश उनको रोकने के प्रयास में मारा गया। पाँच वर्ष बाद अर्तबानुस प्रथम को भी अपने प्रायः इसी कार्य में लोने पड़े। परन्तु अब राकों के प्रतापीपार्थव नृपति मिथात्राट द्वितीय (१२१-८८ ई० पू०) से जोड़ा केना पड़ा तो उनका न केवल प्रसार ही रुक गया बल्कि इस दूर क्षमक में उनको दक्षिण पश्चिम की ओर अग्रसर कर देसमण्ड घाटी की लकड़ही में कर दिया। बाद में इसी स्थान का नाम एक स्थान पड़ गया। यही से एक सोम आर्कोसिया (कन्धहार) तथा बलूचिस्तान हो कर भारत पहुँचे और सिन्ध नदी के किनारे कठि सिन्ध में बस पड़े। वह स्थान राकों के निवास के लिए पर्याप्त सुविधाजनक था अतएव यहाँ रहकर मार्स के विभिन्न भागों में उन्होंने अपने राज्य और उपनिवेश स्थापित किए। राकों ने पाँच विभिन्न राजकुलों की स्थापना की। वे राजकुल इस प्रकार थे—(१) सिन्ध और पश्चिमी पंजाब का राजकुल (२) उत्तर-पश्चिम के क्षेत्र (३) मरुभूमि के क्षेत्र (४) महाराष्ट्र का अहिराट कुल और (५) उज्जैन के क्षेत्र।

पार्थवों का शासन-काल

३

पार्थव राजकुल का प्रथम व्यक्ति सेलोजिज था। उसने अपनी सत्ता एराकोसिया और सीस्तान में स्थापित की। स्प्लन का मत है कि वह पूर्वी ईरान पर शासन करता था। उसके सिक्कों से पता चलता है कि उसने 'महाराजस रजरसस महारस' अर्थात् महाराजाधिराज का विवर धारण किया। उसके सिक्कों पर उसके भाई स्प्लिरासमिन (Spilradames) और स्पलहोरिस (Spalhoros) तथा उनके मतीजे स्पल-गरमिस (Spilgarames) के नाम भी लगे हुए हैं जिससे यह प्रकट होता है कि सेलोजिज को शासन-कार्य में इनसे सहायता प्राप्त होती थी। संभवतः ये विभिन्न प्रान्तों के उसके प्रतिनिधि शासक थे। सेलोजिज ने जो सिक्के चलवाये उन पर मूकटाइज तथा उनके बंधनों द्वारा बलवाये गए सिक्कों की स्पष्ट छाप है।

बोनोनीज का उत्तराधिकारी स्पेसराइसिस था। उसने भी संभवतः अपने नाम के सिक्के चलावाये। उसके सिक्कों से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वह पश्चिमोत्तर भारत के एक-बैचीय शासक एबेसा का सम्राट था। कुछ सिक्कों पर सामने की ओर स्पेसराइसिस का नाम खुदा है और खरोष्ठी लिपि में पीछे की ओर एबेस का। यदि एबेस स्पेसराइसिस का प्रतिनिधि शासक था जैसा कि कहें तो यह अच्छी तरह से प्रकट हो जाता है कि पञ्जाबों की राजसत्ता वास्तविक अर्थों में इस समय तक लमसिला तक फैल चुकी थी। —

इण्डो-पार्थियन प्रदेशों में सबसे अधिक और प्रतापी राजा गोंगोफरनिस था। गोंगोफरनिस ने सभी धर्म अपनी शक्ति की बहाला और सम्राट बन गया। संभवतः उसने पार्थियन साम्राज्य के कतिपय प्रदेशों की भी विजित किया। गोंगोफरनिस ने अपने बाहुबल से जिस साम्राज्य का निर्माण किया वह काफी विद्यालय या परन्तु उसके परचाय वह छिन्न विभक्त हो गये कला। पता चलता है कि फरोरोज पश्चिमोत्तर पंजाब में और सेनेबेटोज धीस्तान में शासन कर रहा था। ये दोनों संभवतः गोंगोफरनिस के उत्तराधिकारी थे। उनके राज्यकाल में पञ्जाब बंस की शक्ति काफी बढ़ गई और कुषाणों ने भारत में पार्थियन राजसत्ता का मुहोच्छ्रयन कर दिया।

प्रश्न

१-मिर्नेंडर कौन था? उसके भारतीय आक्रमण पर प्रकाश डालिये।

२ प्रथम सताब्दी ई० में भारत पर बिदेसी आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। इसका भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ?

३ क्या हमने प्राचीन काल में यवन सभ्यता से कुछ आशान-प्रदान किया था ?

4. Write a brief account of the establishment of Indo Bactrian rule in India and carefully summarise the achievements of Alexander I (1957)

5. Give a brief account of Greek influence on Indian literature sculpture and astronomy (1957)

६ एक कौन थे? भारतीय इतिहास में उनका क्या स्थान है?

७ पञ्जाबों के विषय में आप क्या जानते हैं?

अध्याय १७

कुपाय काक्ष

एक पक्ष और मग्न बातियों की तरह कुपाय लोग भी एक निवेसी बात के थे। भारत की विदेशी आक्रान्ता बातियों में सबसे अधिक प्रभावशालिनी कुपाय बात थी। इस बात ने देश की राजनीति पर अपना प्रभाव छोड़ा। कला के विकास तथा दार्शनिक जीवन में भी इसका काफी महत्वपूर्ण योगदान था। कुपायों के मूल और प्राचीन इतिहास का विवरण हमें चीनी ग्रन्थों से प्राप्त होता है। चीनी इतिहासकारों के अनुसार कुपाय लोग यू-ची जाति की शाखा के थे। मुख्य यू-ची लोग उत्तरी-पश्चिमी चीन के कान्सु नामक प्रांत में निवास करते थे। उनके विषय में पढ़ते हुए हम यह जान चुके हैं कि १०५ १६५ ई. पू. के लगभग हगनू लोगों ने यु-ची के महान और सम्रथासी कबीले को पश्चिमी चीन से निकाल बाहर कर दिया। हगनू जाति के द्वारा पराजित और पश्चिमी चीन से निर्वासित कर दिये जाने पर वे लोग पश्चिम की ओर बढ़े जहाँ पर एक अन्य आनाबसोच जाति से उनकी मुठभेड़ हुई। यह जाति की स्वे (Sue) अथवा एक जो सररिया (Jaxartes or Syr Darya) के तटों पर रहती थी। पश्चिम की ओर जाने बढ़ने के पहले यू-ची लोगों की इसी नदी की घाटी में निवास करने वाली एक जाति से मुठभेड़ हुई थी। इस जाति का नाम यू-मुन था। इस मुठभेड़ में यू-मुन जाति के सरदार को समरमुमि में अपने प्राचीन से हार होने पड़े और यू-ची लोगों को जीत हुई। यू-मुन जाति की पराजित और उनके सरदार का बल करने के उपरान्त यू-ची जाति के लोग एक उपयुक्त निवास-स्थान की खोज में पश्चिम दिशा की ओर बढ़े। इसी समय यह जाति दो शाखानों में विभक्त हो गई। इस जाति के कुछ लोग अलिख दिशा की ओर बढ़ गये और तिब्बत की सीमा में निवास करने लगे। वहीं पर रहने वाले "शिवाव यू-ची" अथवा छोटी जाति के कहलाये। अन्य लोगों ने पश्चिम की ओर ही अपने प्रसार को जारी रखा। वे लोग मुख्य साया के थे। वैसे कि पहले निवेश किया जा चुका है यू-ची जाति के लोगो न सररिया के उत्तर में बढ़े हुए उनके का का पक्ष कर दिया और उन्हें निर्वासित कर उनकी भूमि पर अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु अपने इस नवीन आवास में बृहत्तर शाखा के यू-ची अधिक करार के लिए न ठहर सके। जिस जाति की उन्होंने पहले पराजित कर दिया था उसी जाति ने इस समय उनसे बलवा करने का विचार किया। इस विचार से ही प्रेरित होकर यू-मुन जाति के गये नेता ने जो पुराने सरदार का ही पुत्र था हगनू की सहायता न १४० ई. पू. के लगभग यू-ची लोगों की उनके मर्त्य निवास-स्थान से लड़ाई दिया। विषय होकर के आखिर (युग) नदी पार कर ताहिवा या गुफार प्रदेश में प्रविष्ट हुए। ताहिवा प्रदेश के निवासी अधिकारियों का व्यापारी थे। उनके नमाज में पुत्र राजनीतिक संघर्ष नहीं था और उनकी प्रभुति युद्ध की ओर भी विस्तृत नहीं थी। यहाँ पर यू-ची लोगों की अधीनता स्वीकार कर ली। यहाँ पर

यू-नी बाति वालों न अपनी शक्ति का संगठन किया और बाबरी के निवासियों को उत्पीड़ित किया। बीरे-बीरे उन्होंने बाबरी और सोदिमना को विजित कर लिया और ई. पू० की प्रथम शताब्दी में अपने घूमकड़पन का परित्याग करके स्थायी जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। इस समय यू-नी लोग पाँच भागों में विभक्त हो गये जिनके चीनी नाम इस प्रकार थे—हिंयू-नी बुयामयी कुएई बुमांग हिंयुन काबो-फू। प्रत्येक के ऊपर एक ही साहू अपना साही धारण करता था। ई० शताब्दी के आरम्भ में कुएईबुमांग का राज्य कुषाण नामक साही या सरदार को मिला। इसने सेव चारों राज्यों को पराजित कर दिया और अपने अधीन कर लिया। फिर इन सबको मिलाकर उसने एक विशाल राज्य का निर्माण किया। कुषाण की अधीनता में हो जाने पर समस्त यू-नी बाति को कुषाण ही कहा जाने लगा। कुषाण का नाम कुमुल-कश्मिस् भी था।

कुमुल कश्मिस्—कुमुल कश्मिस् के मृत्यु में कुषाण बाति के लोगों में एक बड़ा राजनीतिक चेतना उत्पन्न हो गई। वे आप बहून का निचार करने लग। कुमुल में अपनी बाति के लोगों को आये बहून के लिए उत्साहित किया। अपनी शक्ति का संयोजन कर बहून के उपरान्त कुमुल न अपने बोड़ की बाग भारतीय सीमा की ओर बोड़ी। उसने हिंयुकुष पार किया और पारसियन प्रदेशों पर अपना अधिकार जमाया। काबुल की बाटी और अरमकोसिया पर कुमुल का अधिकार हो गया। काबुल में जिस दीक सत्ता का शिकरा जमा हुआ था उसे कुमुल कश्मिस् ने उखाड़ डेका। कुमुल कश्मिस् ने पारसिया पर अधिकार किया और कियिम (संभवतः यन्वार) तथा इमिन अफगानिस्तान को जीत लिया। उसने जिस साम्राज्य की स्थापना की उसका विस्तार बम्बू से लेकर सिन्ध तक था। उसके साम्राज्य ने ईरिया सम्पूर्ण अर्धमास अफगानिस्तान ईरान का पूर्वी छोर तथा भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत के पारसवंशी सम्मिलित थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुमुल कश्मिस् का जीवन सैन्य-संघर्षों और विजय प्राप्त करने के लक्ष्य प्रयत्नों का जीवन था। अस्सी वर्ष की परिपक्व अवस्था में कुमुल का जीवन-महीप बृद्ध गया।

चीन कश्मिस्—कश्मिस् अबका कश्मिस् प्रथम के उपरान्त उसका पुत्र निहामनासक हुआ। कान-य नामक चीनी इतिहासकार ने उसका नाम जमा (मेन) कश्मिस् दिया है कि जिसका विस्तृत विवरण हमें उसके पि की द्वारा होता है। चीनी शास्य ने द्वारा जमा या कश्मिस् ऐसा प्रथम कुषाण सम्राट था जिसने अपने राज्य की सीमा निबन-जिओ (Tien-toh-ou) या भारत तक विस्तृत की। उसके मिनके काथी भागों में पाये गए हैं जिनसे साक्ष्य होता है कि उसका राज्य विस्तार बहुत दूर तक था। यह ही स्पष्ट हो है कि सिन्ध नदी पार कर उसने लज्जिका और पंजाब को विजित किया। उत्तर प्रदेश के कुछ भागों पर भी सम्भवतः उसकी तुटी शक्ति थी। चीन कश्मिस् की सैनिक मण्डलानों का कुषाण साम्राज्य की दृष्टि से ही महत्व है ही उनका सांस्कृतिक और व्यापारिक महत्व भी बहुत अधिक है। डा० राय बीबरी ने लक्षों में 'कश्मिस् राजाओं की विजयों ने चीन और रोमन साम्राज्य तथा भारत के मध्य व्यापार के मार्ग को जोल दिया। रोम का मौला इस प्रदेश में प्रभुत्व परिमाण में जाने लगा जो निष्क समाने तथा रत्नों के मुख्य क रूप में था।' इस कवन में स्पष्ट है कि भाग्यवत् रोमन साम्राज्य के देशों में अपने मछासे भद्र बहुमूल्य वस्तु तथा अन्य सामग्रियाँ निर्यात करता था जिनके बन्ते में उसे चीन और चीनो के सिक्के प्राप्त होने थे। रोम द्वारा प्राप्त होने वाले चीनो का प्रयोग

बीम कदफिसेज ने सुबर्न-मुद्रामों के प्रचसन के कार्य में किया। उसने अपने नाम से सोने के सिक्के चलवाये।

कनिष्क

बीम कदफिसेज के बाद समस्त कुषाण राज्य-सिंहासन पर समासीन होने वाला कनिष्क ही था। निम्नार्थ कनिष्क कुषाण बंध का सबसे प्रतापी और प्रभावशाली सम्राट का और प्राचीन भारत के महान सम्राटों की पंक्ति में उसका स्थान अत्यन्त शौरवशाली है।



चित्र ८—कनिष्क की प्रति

मुम्तरी चाटी को अपने अधिकार में किया। काश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासकार कन्हूज के अनुसार कनिष्क के द्वारा काश्मीर में कई भवनों की स्थापना भी कराई गई थी। कनिष्क ने पार्षियन नरेश को युद्ध में पराजित किया। उसके पहले कुजुड कदफिसेज ने भी पार्षियन राजा को हराया था। अपनी पराजय का बदला लेने की भावना से पल्लव राजा ने कनिष्क के शासन-काल के प्रारम्भ में ही उस पर आक्रमण कर दिया परन्तु उसका मनोरथ सफल न हो सका। यद्यपि अभी कनिष्क अपने राज्य का ठीक में मसलन भी न कर पाया था तथापि उसने पल्लवों को युद्ध में पराजित कर दिया और इस बार फिर उनकी विजेता के हाथों अपना मान छड़ना पड़ा। चीनी और तिब्बती अनुपुति के अनुसार कनिष्क ने साकेत और पाटलिपुत्र पर भी अपना अधिकार किया था। यहाँ के शासकों के विरुद्ध उसके सैनिक-प्रयत्न पूर्ण रूप से सफल हो गये। कहा जाता है कि पाटलिपुत्र की विजय के सम्बन्ध में ही उसे प्रसिद्ध विज्ञान अरबशेष से भेंट करने के सामान्य प्राप्त हुआ था। अरबशेष को वह अपने साथ अपनी राजधानी लता गया और उनका उचित सम्मान किया था। कनिष्क ने चीन के विरुद्ध भी युद्ध किये। पहले तो उस इस युद्ध में असफलता ही प्राप्त हुई परन्तु बाद में उसने चीन के सम्राट को अपनी शर्त मानने के लिए विवश कर दिया। चीन के शासक कनिष्क के नौपय का विवरण बौद्ध अनुपुतियों द्वारा प्राप्त होता है। चीन देश का मुप्रसिद्ध मैगानासक राज-शासक बड़ा और योद्धा और सफल विजेता था। लगभग ईसा की पहली शताब्दी के अन्तिम भाग में उसने चीन देश के पश्चिमी राज्यों पर एक के बाद दूसरे पर बाधा डालना शुरू कर दिया और उन पर अपने देश की विजय-

कनिष्क की सैन्य सफलताएँ—कनिष्क ने केवल कुषाण बंध का सबसे प्रतापी सम्राट का बरन् वह एक और विजेता तथा महत्वाकांक्षी शासक भी था। अपने पिता और पितामह के द्वारा स्थापित साम्राज्य की सीमाओं को वह और अधिक विस्तृत करना चाहता था। इमी बुद्धिकोण से प्रेरित होकर उसने देशों को विजित करने का निश्चय किया। उत्तर, दक्षिण और पूर्व तीनों दिशाओं में कनिष्क ने अपनी विजयों द्वारा अपने साम्राज्य की सीमाओं को बढ़ाया। सर्वप्रथम उसने काश्मीर की

पताका कहानी क्या। देखते ही देखते काणगर, मारकन्ध और जोराम परपान-बाऊ का प्रभुत्व स्थापित हो गया। पड़ोस के राज्यों में भी उसके आतंक और प्रभाव का विकास बस गया। स्वयं भी एक महत्वाकांक्षी शासक होने के नाते कनिष्क पान-बाऊ की बढ़ती हुई शक्ति छहल नहीं कर सका। उसे अपने राज्य के लिए भी उसकी ओर से नम्र या अनम्र उसने चीनी सेनानायक से युद्ध ठानने का विचार किया। वह एक सोचने की बात है कि इस समय चीन की साम्राज्य-सत्ता कितनी सुबूढ़ और प्रभावशाली थी जिसकी चुनौती देना सामारण कार्य नहीं था। पान-बाऊ समस्त ईसवीयन के तट पर पहुँच चुका था और रोमन साम्राज्य की सीमा पर खड़ा था। अपनी विजयों के फलस्वरूप उसने चीन देश के राजनीतिक और नैतिक दोनों के हृदय में जगह बना ली थी। परन्तु इस बात का तनिक भी विचार न करते हुए कनिष्क ने चीन के सम्राटों की भाँति 'देवपुत्र' की उपाधि धारण की और अपना एक राजपुत्र भेजकर चीनी राजकुमारी के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट की। पान-बाऊ को यह प्रस्ताव अपने सम्राट और देश के लिए बड़ा ही अशोभन और अपमानजनक प्रतीत पड़ा। उसने भारतीय राजपुत्र को बन्दी बना लिया और चीन भेज दिया। वह स्पष्टता युक्त की ओरपन कर देने के अतिरिक्त कनिष्क के पास कोई दूसरा मार्ग नहीं था। उसने अपने सेनानायक की अधीनता में सत्तर हजार अश्वारोहियों की एक सुबूढ़ सेना चीनी सेनानायक के विरुद्ध भेज दी। मार्ग में पर्वतीय प्रदेशों की कठिनाइयों द्वारा कनिष्क की सेना की भयंकर क्षति उठानी पड़ी। परिणाम यह हुआ कि कनिष्क की बुरी तरह हार हुई। संवि स्वयं कनिष्क ने चीन के सम्राट को क्षमापत्र भेज देना स्वीकार किया।

परन्तु यह सन्धि कनिष्क को अतीव कष्टकर जान पड़ी। वह उपयुक्त अवसर की खोज में बैठ था कि कब अवसर मिले और वह चीनी सम्राट को कर देना बन्द करे तथा उनके साथ अपनी

जख्मों को दिलावे। इस पान-बाऊ की मृत्यु हो जाने से पास पड़ोस के देशों पर चीन की ओर का पहले बल चुकी थी वह कम हो गई। पान-बाऊ का पुत्र पुनः पान-बाऊ जिसके अन्त में अपने पिता के उत्तराधिकार बह्व का भार था पड़ा था एक अनुभवहीन सेनानायक प्रमाणित हुआ। कारपीर प्रदेश के मार्ग द्वारा पामीर की उपर्युक्तता से होता हुआ कनिष्क एक बड़ी सेना लेकर युद्ध के लिये पहुँच गया। इस युद्ध में कनिष्क की विजय हो गई। चीन के सम्राट को क्षमापत्र भेज कर संजय के अन्तर्गत नम्र हो गया। इसी ही नहीं मारकन्ध



चित्र १—कनिष्क का साम्राज्य

कोशल और काश्याय ग्रान्तों को कनिष्क ने अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

कनिष्क का धर्म—जैसा कि डा० राय चौबरी महोदय ने कहा है कनिष्क का धर्म उसकी विजयों पर उतना अधिक अवलम्बित नहीं जितना कि शास्त्रमुनि के धर्म को उसके राजाधर्म प्रभाव करने पर। उसकी मुद्राओं तथा पेशावर अभिलेख (Oasket) से यह निश्चित होता है कि उसने वास्तविक रूप में संभवतः अपने शासन-काल के प्रारम्भ में ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। पृथ्वीपुर बबरा पेशावर में उसने एक बौद्ध संघाराम का निर्माण कराया था। यह बौद्ध विहार एक बौद्ध तीर्थ के रूप में नहीं पताचौरी तक वर्तमान था जबकि प्रसिद्ध बौद्ध विज्ञान बीरवर में उसकी यात्रा की वी जो मण्डप के नरेश देवपाल के समय में नाकम्पा का महास्मरित निर्वाचित किया गया था। कनिष्क के धर्म का उत्प्रेषण असहजनी नामक प्रस्ताव मुस्लिम यात्री ने भी किया है।

परन्तु भारतीय जीवन की परम्परा के अनुसार कनिष्क ने धार्मिक विषयों में अपने उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उसके विद्यालय साम्राज्य में विभिन्न धर्मों के अनुयायी निवास करते थे और उनके साथ उसने धार्मिक निष्पक्षता तथा सहिष्णुता का व्यवहार किया। उसके सिक्कों से उसकी धर्म सम्मिलिनी धारणा का परिचय हमें स्पष्टतया हो जाता है। उसके सिक्कों पर यूनानी ईरानी और हिन्दू देवताओं के चित्र मिलते हैं। इन देवताओं के नाम इस प्रकार हैं—हेराक्लीय सेरमिब सुबं चन्द्र धिव और अग्नि आदि। उसकी राज-सभा को जो बुद्धवान व्यक्ति सम्मिलित करते थे उनमें सभी धर्मों के अनुयायी सम्मिलित थे।

कनिष्क के समय की बौद्ध संगीति—सम्राट् कनिष्क ने केवल बौद्ध धर्म स्वीकार ही नहीं कर लिया बल्कि इसके सिद्धान्तों को समझने की उसने चेष्टा भी की। परन्तु इस कार्य में उसको कठिनाइयों का अनुभव हुआ क्योंकि इस समय तक पहुँचकर बौद्ध धर्म का स्वरूप काफी अस्पष्ट हो गया था। सिद्धान्तों और धर्म के मूल तत्त्वों के प्रश्न पर माना प्रकार के विवाद उठ खड़े हो गए थे। विभिन्न धर्माचार्यों के मतों में पारस्परिक द्वंद्व काफी शत्रु परिमाण में उत्पन्न हो गए थे। विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों की सूक्ष्मता वेनीदयी और जटिलता के कारण वे बौद्ध धर्म की सरल और बोधगम्य सिद्धांतों बन गई थी। ऐसी स्थिति में उनको दूरदर्शक करना बड़ा कठिन था। इसके अतिरिक्त कुछ भौतिक प्रश्नों पर विभिन्न धर्माचार्यों के एकमत होने की आवश्यकता भी बहुत बलवती होती है। इन्हीं सब कारणों से कनिष्क के समय में बौद्ध संघीय का आयोजन करना अनिवार्य हो गया। बौद्ध ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा गया है कि कनिष्क के राजस्व-काल में जो बौद्ध-संघीति बुलाई गई थी उसका उद्देश्य विवादास्पद सिद्धान्तों का निर्णय करना था। इस वस्तु बौद्ध-संगीति का आयोजन काशीर के कुण्डलवन विहार में किया गया था। बहुमुख ने संघीति के अध्यक्षपद की भूमिका निभाई थी और अध्यक्ष ने उपाध्यक्ष का कार्य भार सम्भाळा था। इस अधिवेशन में धर्म-ग्रन्थों के बहु और जटिल स्थलों की परस्पर तर्क-वितर्क द्वारा पूर्ण रूप से विवेचना की गई। इन सम्मेलन में जो वादविवाद हुए उनको भाष्य रूप में संक्षिप्त कर लिया गया। ये भाष्य विभाषा शास्त्र कहलाय। लिपिक पर एक प्रामाणिक भाष्य की रचना हुई जिसे कनिष्क ने साम्राज्यों पर जल्दी करवाया। उनको एक पत्थर के समूह में रखकर उसने उनके ऊपर से एक स्तूप का निर्माण करा दिया था। इस संघीति ने दो मुख्य कार्य किए। एक तो उमन यह किया कि नय विचारों और बौद्ध धर्म की कठिन नवीन विचार-धारणियों के विकास के प्रकाश में धर्म-ग्रन्थों का नए ढंग पर लिपिबद्ध किया। नवीन लिपि-करण में संस्कृत भाषा का व्यवहार किया गया था। संघीति का दूसरा

कुषाण-काल

कार्य महामान बौद्ध धर्मा को राजबर्ष का रूप देना वा जिसके प्रचार के लिए कनिष्क संरक्षक बना। इस बौद्ध संदीप्ति में पाँच सौ विद्वानों ने माय किया था जो देश के अन्यत्र मान से भाये थे।

महायान मत का उदय—बौद्ध धर्म के इतिहास में कनिष्क के राजत्वकाल में नै बाली चतुर्थ संगीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह बौद्ध धर्म के इतिहास में ग्रीक न के बाद होने की सुविधा करती है। वह (ग्रीक युग) वा महायान का उदय। यह बौद्ध धर्म विदेशी जाकमनकारियों का धर्म हो गया तो इसका मूल रूप पूर्व रूप। विस्तृत हो गया। जब से बौद्ध धर्म भारत की सीमा पार करके दूसरे देशों में गया। ग्री से उसके प्राचीन रूप में परिवर्तन होने लगा और उसमें निम्न-निम्न धर्मों के तत्व भा मिले। पर महायान पंथ के ऊपर विदेशी प्रभावों की अपेक्षा मानव धर्म का प्रभाव अधिक स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

हीनयान और महायान धर्मों में एक मौलिक अन्तर है। हीनयान धर्म का मोक्ष पर विशेष जोर है और मोक्ष के लिए वह व्यक्ति की इस कार्य के हेतु निरन्तर प्रयत्नशीलता की ही सबसे बड़ा साधन बतलाता है। बुद्ध न अपने शिष्य से इस बात की ओर देख कर कहा था कि 'अपने धर्म का प्रयत्न तुम स्वयं परित्यागपूर्वक करते आदि। उन्होंने यह भी कहा कि 'अपने निर्वाण का प्रयत्न तुम स्वयं परित्यागपूर्वक करते रहो। परन्तु महायान मत में मोक्ष को समुचित स्थान दिया गया। एक कदमापय उपास्य देव की कृपाशीलता पर जोर दिया गया। हीनयान धर्म में बुद्ध केवल एक धास्ता के रूप में ही थे परन्तु महायान धर्म में उन्हें देवता का स्थान दिया गया। उनको परमात्मा समझा जाने लगा और उनकी मूर्ति बनाकर लोगों ने उनकी पूजा करनी भी प्रारम्भ कर दी। महायान धर्म में अवतारधार के सिद्धान्त को स्थान मिला।

कनिष्क का निष्पन्न—कुछ वस्तुधाराओं द्वारा विरहित होता है कि कनिष्क का निष्पन्न बुद्ध और कथन रूप में हुआ था। उसके सेनापतियों ने उसके विरुद्ध पथप्रवर्धन करते उसका बन्ध कर दिया। उसके सरदार और सेनापति उसके मुँहों से तथ्य भा गए थे जिसने उन्होंने राजा क समय उसकी हत्या कर डाली कुछ विद्वानों का कथन है कि कनिष्क ने ४५ वर्ष तक राज्य किया परन्तु अन्य विद्वानों का विचार है कि उसने २१ वर्ष तक राज्य किया था। यही मत हमें अधिक मान्य प्रतीत होता है। इस प्रकार उनका निष्पन्न (३८५-३९३) १०१ सन् ईस्वी के समय हुआ।

कनिष्क के उत्तराधिकारी—कुषाण बंध का सबसे प्रसिद्ध सम्राट् कनिष्क था जिसके वैशाखान्त के अन्तर्गत इस बंध का राजनीतिक गौरव शीघ्र होने लगा। कनिष्क के उत्तराधिकारियों में स कोई उसके समान पराक्रमी अथवा प्रभावशाली नहीं हुआ। उसके उत्तराधिकारियों के नियम में हमारा ज्ञान अत्यन्त स्वल्प है। कनिष्क के बाद कनिष्क उसका उत्तराधिकारी हुआ। कनिष्क के नियम में हमारा ज्ञान अपेक्षाकृत अधिक है। इसका एक अविश्वसनीय कारण है कि कनिष्क के शासन में प्राप्त हुआ है जो यह निश्चय करता है कि कनिष्क का अधिकार अफगानिस्तान पर था। बौद्ध अनुपपत्ति कनिष्क की भाँति उसे भी बौद्ध धर्म का अनुयायी तथा पौष बतलाती है।

बासुदेव—कनिष्क ने अन्तर्गत बासुदेव कुषाण साम्राज्य का स्थायी बना। इस अनुपपत्ति का नाम यह स्पष्टतया सूचित करता है कि कुषाण बंध का सामाजिककर्म अब पूर्ण रूप से सम्पन्न हो चुका था।

बासुदेव कुषाण बंध का अन्तिम सम्राट् था जिसका राजनीतिक प्रमुख विस्तार शीघ्र नहीं होने पाया था। किन्तु उसके समय से ही इस राजवंश का पतन आरम्भ हो

गया था। उसके बाद के कुषाण राजाओं का इतिहास प्रायः विमिश्रित ही है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि भारत में बासुदेव के राजत्वकाल (१४५-१७६ सन् ईस्वी) के सीम बाद ही कुषाण राजसत्ता का ह्रास होने लगा। एक समय जो मूकश कनिष्क प्रथम के प्रति अपना दास-भाव स्वीकार करते थे अब स्वतंत्र शासकों की नीति धारण करने लगे। पश्चिमी और मध्य भारत के विघास मू-यानों पर उनकी स्वतंत्र राजसत्ता स्थापित हो गई। भारत के विभिन्न भागों में जहाँ कुषाण वंश का अधिकार था विघेपतया वर्तमान उत्तर प्रदेश और राजपूताना में अधीनस्थ राजवंशों ने अपना मस्तक ऊँचा किया और यहाँ तक कि मयूर में से भी कुषाण सक्ति का उद्गम कर दिया गया जहाँ पर एक नाग परिवार सत्ताशु हो गया। नागों की बसोभसा में भारत में एक राष्ट्रीय एकता की लहर बही जिसके प्रबल रूप में कुषाणों का साम्राज्य बह गया।

कुषाण-युग की सम्मता और संस्कृति

सर्वप्रथम हम कुषाण-युगीन सम्मता की सबसे प्रमुख विघेपता पर विचार करेंगे। यह विघेपता थी विदेशों के साथ इसका कनिष्ठ सम्पर्क। कनिष्क ने जिस साम्राज्य की स्थापना की थी उसकी विस्तृत सीमाओं का अध्ययन हम पीछे कर चुके हैं। हिन्दुधर्म पर कनिष्क का राज्य स्थापित हो जाने और काश्मिर, खोतान तथा मारकण के उसके राज्य में सम्मिश्रित होने से गमनायमन और यातायात की सुविधाएँ बहुत बढ़ गईं। एक और व्यापारियों के कारण अपनी विषय-सामग्रियों के साथ विभिन्न भागों में जाने जाने लगे और इसी और घर्ष-प्रकारक अपने घर्ष को छेड़ने के लिए विदेशों की यात्रा करने लगे। हाँ, राज नीति का वह कथन बड़ा महत्वपूर्ण है कि कनिष्क के वंश में भारतीय सम्मता के लिए मध्य और पूर्वी एशिया का द्वार खोल दिया। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय से विदेशों में विघेपतया मध्य और पूर्वी एशिया में बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का प्रचार होने लगा। पारश्चात्य जगत् के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बहुत अधिक बढ़ जा गया क्योंकि गमनायमन और यातायात के विरहित साधन प्रचुरता से उपलब्ध थे। कनिष्कीय द्वितीय के समय से भारत का विदेशी व्यापार काफी उत्पत्तिशील हो गया था। हम इस बात का उत्प्रेषण करते हैं कि रोमन लेखक प्लिनी ने अपने देशवासियों की भूलता पर अधिपात किया है कि वे भारत की विलास-सामग्रियों के बड़े से अपनी सुख-सुखों देते हैं। रोमन साम्राज्य की सुख-सुखों भारत में इसी बहुलता से प्राप्त हुई हैं कि प्लिनी का कथन अनन्तरिक रूप से सत्य प्रमाणित हो जाता है। विदेशों के साथ सम्पर्क स्थापित हो जाने से भारत को दोतरफा लाभ हुआ। पहला लाभ तो यह था कि विदेशों में इसकी संस्कृति का प्रचार हुआ और दूसरा लाभ था पारश्चात्य जगत् के धन का व्यापारिक सम्बन्धों के उत्पन्नरूप देश में प्रवेश। यह मोक्षना संगत नहीं मान्य पड़ता कि कुषाण युग की आर्थिक समृद्धि ने सम्मता की उन्नति को एक प्रबल प्रेरणादायक प्रदान किया।

साहित्यिक उन्नति—इस युग की साहित्यिक क्रियाशीलता की एक प्रमुख विघेपता यह है कि इसका रूप एकदली नहीं था। इस समय केवल हिन्दू साहित्य-जन्मों की रचना ही न हुई अपितु धर्म-शास्त्र तथा चिकित्सा-विज्ञान पर भी ग्रन्थ लिखे गए। अक्षयपुत्र कुषाण-युग की साहित्यिक प्रगति का गता और मयबुत था। वह सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था। वह एक बार्हनिष्ठ सेवक नाटककार, संगीतज्ञ तथा महाकवि था। तथामत के जीवन पर मुद्र और सरस साहित्यिक शैली में लिखा हुआ उसका महाकाव्य 'मुद्र रचित' संस्कृत काव्य का एक उज्ज्वल रत्न है। अक्षयपुत्र की इसी ही इति 'वीरचरित' काव्य है जिसके अठारह सर्गों में मुद्र द्वारा अपने चचेरे भाई

मन्द को अपने मठ में दीक्षित कर लेने की चटना का वर्णन है। नामर्जुन नामक प्रसिद्ध दार्शनिक ने दर्शन के ग्रन्थों की रचना की। 'मध्यमक कारिका' और 'सुहृत्सेखा' उसके दो विख्यात ग्रन्थ हैं। नरसिंह भी इस युग का प्रसिद्ध दार्शनिक था। चरक को कनिष्क का राजवैद्य बतलाया जाता है। उसने चिकित्सा-शास्त्र पर अपना महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है।

कुपाय युग की कलात्मक प्रगति—महायान धर्म की भक्तिवादिता ने कला के क्षेत्र में कुछ महीनता उत्पन्न कर दी। इस युग के पूर्व बुद्ध की प्रतिमाओं का निर्माण नहीं किया जाता था। भरहुत और साँची के स्तूपों में बुद्ध की उपस्थिति को संकेतों अथवा प्रतीकों द्वारा चिह्नित किया जाता था। यदि बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के दृश्य को चित्रित करना हुआ तो एक सारोही-रहित अस्व दिखना दिया जाता था जिसका अभिप्राय यह होता था कि इसी अस्व पर आरुढ़ होकर तत्काल ही अरण्यायन किया था। परन्तु पर्वो-ज्यों बौद्ध उपासकों के हृदयों में भक्ति-भावना का सम्भार होता गया वे समयानु-बुद्ध की प्रतिमाओं का निर्माण करने लगे। निश्चय रूप से भक्ति-भावना का उदय कला के विकास के लिए बड़ा ही हितकर प्रभावित हुआ और आज तक भारत में कला को जो प्रचुर उन्नति हुई उसमें इसका बहुत महत्वपूर्ण योगदान था।

पाण्डार-कला—पाण्डार-कला से तात्पर्य मूर्ति-कला की एक विशिष्ट शैली से है जिसका विकास ईसा की प्रथम-द्वितीय शताब्दी में अजिंठा-शतया पाण्डार तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में हुआ था। इस कला के प्रमुख केन्द्र थे अलाहाबाद हूपर और बमिना स्वात बाटी एवं पैसावर का जिला। पाण्डार-कला को 'इण्डो-ग्रीक' कला के नाम से भी अभिहित किया जाता है क्योंकि इस कला के विषय तो भारतीय हैं किन्तु उनकी शैली यूनानी है। बुद्ध जगन्नाथ की ओ मूर्तियाँ इस शैली की चित्रचित्र द्वारा निर्मित की गईं वे यूनानी देवता अपोलो की मूर्तियों से काफी मिलती-जुलती हैं।

कुपाय युग में पाण्डार के अतिरिक्त और भी कला-केन्द्र थे जहाँ पर-कला की काँची उत्पत्ति हो रही थी। वे कलाकेन्द्र सारनाथ, अमरावती और मथुरा में थे।

प्रश्न

१

१. कुपाय कौन थे? उनका सर्वश्रेष्ठ समाद कौन था?

२. कनिष्क के विषय में आप क्या जानते हैं?

३. कनिष्क के धर्म पर प्रकाश डालिए?

४. कनिष्क ने बौद्ध धर्म का प्रचार किस प्रकार किया?

५. कनिष्क का भारतीय इतिहास में क्यों महत्व है?

६. कनिष्क काकीम भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डालिए।

7. Briefly summarise the achievements of Kanishka. What contribution did he make to the popularisation of Buddhism? (1957)

अध्याय १८

गुप्त वंश

जिस समय साम्राज्य को उदय छठी शताब्दी ई० पू० से आरम्भ हुआ और तीसरी शताब्दी ई० पू० तक जिसने अपनी शरमोन्नति को प्राप्त कर लिया उसी समय साम्राज्य को लगभग ५०० वर्षों तक इतिहास में जीव स्वाम प्राप्त हो जाता है और उसका पुनरुद्धार तब तक नहीं होता जब तक तीसरी शताब्दी में मगध साम्राज्य के पराजय के बाद तक नहीं होता। इतना ही नहीं गुप्त राजाओं के संरक्षण में मगध ने जिसकी उन्नति की उसकी यह अग्य किसी काल में नहीं कर सका था। गुप्त के राजमार्गों के समय बुद्धेन्द्रवर्धन तथा मध्य प्रान्त में बाकाटक गेरुस राज्य कर रहे थे। उसी भारत में कोई भी शक्ति न थी जो भारतीय इतिहास की गौरव-बुद्धि कर सके। किसी भी प्रभावशाली शासन के अभाव में भारत की एकता को जो खतरा था ही साथ ही उसकी स्वतंत्रता का भी ह्रास का भय था। भारतीय संस्कृति-शोधक, भारतीय, राष्ट्रीयता के रक्षक तथा भारतीयता के उच्चाधिक इन गुप्त सम्राटों पर इतिहास की गर्भ है। इनमें साम्राज्य और राष्ट्र का जो समन्वय देखने को मिलता है वह कुछ इन्-गिने केवल भारतीय सम्राटों में ही प्राप्त होता है।

गुप्त वंश का राजनीतिक इतिहास

गुप्तों का उदय—तीसरी सदी ईस्वी के तीसरे चरण में मध्य देश में किसी स्वाम पर गुप्तों का उदय हुआ था। भारतीय-भाषी के पराजय भारतीय इतिहास के रमन्ध्र पर गुप्तों का पतन मगध में पाटलिपुत्र तथा उसके सीमावर्ती प्रदेशों के स्वामी के रूप में होता है।

श्री गुप्त—गुप्त अभिलेखों में एक विषय महत्वपूर्ण बात यह है कि वे उनकी वंशावली के साथ आरम्भ होते हैं। इन वंश-गुप्तों में सर्वप्रथम नाम श्रीगुप्त का आता है। अतः इससे यह प्रभावित होता है कि गुप्तों के आदि पुरुष का नाम श्रीगुप्त था।

महाराज—गुप्त (श्रीगुप्त) के वंशानुक्रम-प्रणालि में महाराजा श्रीगुप्त के पुत्र महाराजा महाराज का उल्लेख है। उक्त अभिलेखों के महाराज में गुप्त मगध नहीं संलग्न है पर वंशावली में प्राप्त एक मूह पर 'महाराज गुप्तस्य' उल्लेख है।

महाराज प्रथम—प्रमाण-प्रणालि में गुप्त वंश का प्रतीय सासक महाराज को महाराजाधिराज की पहली प्राप्त है जबकि प्रथम दो राजाओं को केवल महाराज का विवर प्राप्त है। इससे यह बात होता है कि प्रथम दो राजाओं श्रीगुप्त तथा महाराज और महाराज के राजनीतिक अधिकारों में अंतर था। वे प्रथम ही सामन्त रहे (यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे किसे कर देते थे) पर महाराज स्वतन्त्र राजा रहा होगा तभी उसे महाराजाधिराज की पहली प्राप्त थी जो उक्त बाद के अन्य गुप्त राजाओं को प्राप्त है।

महाराज ने निश्चय ही अनेक विजयें की होंगी तभी ही उक्त साम्राज्य-उत्थापन का इतना अधिक श्रेष्ठ विद्या जाता है। किन्तु राजकुमारी से व्याह करके उसने अपने मगध और राज्य में अभिवृद्धि कर ली और इन विवाह के फलस्वरूप मगध

उसकी राज्य-सीमा एक ओर बंगाल की घाटी रही थी तथा दूसरी ओर वे मध्य भारत तथा पंजाब। अतः बंगाल के सीमान्त-क्षेत्र पर अश्वगुप्त का अधिकार स्थापित करना सम्भव है।

गुप्त संवत्—ऐसा अनुमान किया जाता है कि अश्वगुप्त ने अपने साम्यामित्रों की निधि से एक नये संवत् 'गुप्त संवत्' का निर्माण किया। विभिन्न गणनाओं के आधार पर अश्वगुप्त के साम्यामित्रों की तिथि २० विस्म्वर ३१८ ई० अथवा २६ फरवरी ३२० ई० निर्दिष्ट होती है। अतः लगभग ३१९ ३२० ई० से गुप्त संवत् का प्रारम्भ होता है। किन्तु यह प्रामाणिक डन से नहीं कहा जा सकता कि उक्त संवत् अश्वगुप्त का ही बताया हुआ है क्योंकि हमारे पास इस प्रकार के प्रमाणों का अभाव है।

अश्वगुप्त प्रथम की मृत्यु-तिथि—साम्यारोहण के समय अश्वगुप्त की आयु कांठी अधिक थी ऐसा उचित अनुमान लगाया जाता है जिसके आधार पर उसके अन्त राज्य की संका ठीक ही हो सकती है। समुद्रगुप्त के यथा साम्यकेन्द्र के अनुसार अश्वगुप्त की मृत्यु-तिथि ३२८ ई० जात है।

गुप्त साम्राज्य का निर्माण

समुद्रगुप्त

जिसके पुत्रों में हमने गुप्तों की सीमित राजनीतिक शक्ति पर प्रकाश डाला था। अब वह उन्होंने किसी प्रकार राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर ली थी। श्रीगुप्त और बटोल्कन दो विद्वत् लोग ही सामान्य शक्ति-सम्पन्न थे अश्वगुप्त प्रथम उनसे कुछ अधिक सशक्त रहा। किन्तु उन सबका राज्य केवल पोंडे से भू-भाग पर सीमित था पाटलिपुत्र के निदर्शनी भू-भाग पर ही उनका अधिकार था। पर अश्वगुप्त प्रथम के पश्चात् मगध के सिंहासन पर एक ऐसा और पुरुष बैठा जिसने अपनी विजयों द्वारा एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और घाताश्रितों के लिए गुप्त बंस की नींव सुदृढ़ कर दी। इस विशाल साम्राज्य-निर्माता का नाम था समुद्रगुप्त।

समुद्रगुप्त की विभिन्नता

भारतीय इतिहास के साम्राज्यकारी युग में कुछ एवं विजयों का इतना अधिक महत्व रहा कि लगभग सभी कवि एवं प्रसिद्ध कृतज्ञ चरित्रों ने अज्ञानों की प्रशस्ति-पां का सम्बार लड़ा कर दिया। प्रशस्ति-पां में अधिपत्य-शक्ति का कही अभाव नहीं है सर्वथा सामान्य है। प्राचीन भारत की समस्त ऐसी प्रशस्ति-पां में प्रभाव की प्रशस्ति अपना अद्वितीय स्थान रखती है। उक्त प्रशस्ति से हमें समुद्रगुप्त की विभिन्नता का बोध होता है उनके सामरिक जीवन पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। प्रभाव प्रशस्ति में विजयों की तिथि का निर्देशन नहीं किया गया है। विजयों का केवल परिचय दिया है उसमें पारस्परिक क्रम का उल्लेख भी नहीं किया गया है। इन विजयों की विविध माध्यायें हैं जिनके अनुसार समुद्रगुप्त की विजयों की निम्नलिखित ६ भागों में विभक्त कर सकते हैं—

क. उन्मूलित राज्य जिसका समुद्रगुप्त ने असुर-विजयी मृपति की भाँति सर्वथा नाश कर दिया

ख. भारतीय राज्य जिनके अधिपतियों को उसने अपना सेवक बनाने की आज्ञा दी

ग. दक्षिण-पश्चिम के राज्य जिनके अधिकारियों को उसने धर्म-विजयी मृपति की

मांति पराजित करके श्री-विहीन हो कर दिया किन्तु उनके राज्य को पुनः उन्हें लौटा दिया।

ब. प्रत्यस्त राज्य

क. गणराज्य जिन्होंने हस्तप्रभ होकर स्वयं आत्मसमर्पण कर दिया और

ख. भारतीय सीमा पर स्थित तथा कुछ विदेशी राज्य जिन्होंने समुद्रगुप्त के प्रति आत्म-निवेदन किया।

नीचे इन पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डाला जायगा।

क. उन्मूलित राज्य (आर्यावर्त-विषय)—विषय तथा हिमाचल के बीच की भूमि का प्राचीन नाम आर्यावर्त था। समुद्रगुप्त ने समस्त उत्तरी भारत के राजाओं को पराजित करके एकछत्र राज्य की स्थापना की। ऐसे विजेता की राजनीति में 'अतुरविजयी' की उपाधि प्रधान की जाती थी। आर्यावर्तीय राजाओं की सूची प्रयाग प्रशस्ति में इस प्रकार दी गई है—

(१) रुद्रदेव (२) मल्लिक (३) भागवत (४) चन्द्रवर्मन् (५) गणपतिनाभ (६) नागसेन (७) जम्बुत (८) नन्दि (९) वल्लभर्मा।

ख. आटविक राज्य—उत्तरी भारत के पूर्वोक्त राजाओं को पराजित करके समुद्रगुप्त दक्षिण-विजय की चिन्ता करना लगा किन्तु मार्ग में पड़ने वाले भु-भाग पर अधिकार स्थापित करना आवश्यक था अतः समुद्रगुप्त ने आटविक नरेशों को परास्त करके उन्हें अपना सेनक बनाया। आटविक राज्य मध्य भारतीय जन-संगण में कहीं थे। प्रयाग-प्रशस्ति में आटविक नरेशों के नाम तथा उनकी संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। प्लिनी महोदय के मतानुसार आटविक नरेश आधुनिक पाजीपुर से बबलपुर तक प्रसरित थे।

घ. दक्षिणापथ के राज्य—मध्य भारत के राज्यों को पार करके समुद्रगुप्त ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। दक्षिणापथ के शासकों की सूची प्रयाग-प्रशस्ति में दी गई है। वायसनाथ महोदय का ऐसा मत है कि दक्षिणापथ के समस्त राजाओं ने एक मित्र संघ बनाया और कोलेक नामक राजा के किनारे इन्होंने एकीकृत होकर समुद्रगुप्त की आर्य बढ़ाने के रोक। ईरक के मष्टराज तथा कांची के विष्णुशैव मम्मिस्ति सेना के सेनापति रहे। कीरल तथा महाकान्तार के राजाओं को छोड़कर उक्त मित्र संघ में अन्य राजा सेनागानक जिने के पराजितकारी थे। जबवा वायसनाथ महोदय के मतानुसार यह मुंड आर्यावर्त की पहली लड़ाई (कीसाम्बी) के पश्चात् ई० स० ४५३-४६ के लगभग हुआ था। दक्षिणापथ के राजाओं को समुद्रगुप्त ने पराजित हो अवश्य किया किन्तु उनके राज्य को अपने राज्य में नहीं मिलाया प्रत्युत उन्हें अपनी छत्र-छाया में राज्य करने की आज्ञा दे दी। प्रयाग प्रशस्ति में दक्षिणापथ-नरेशों की सूची इस प्रकार है—

१ कीरलक महेंद्र

२ महाकान्तारक

३ केरलक मष्टराज

४ पल्लुरक-महोदयगिरि-कीट्टुरक स्वामि दत्त

५ ऐरक पस्मकवमन

६ काश्चेयक विष्णुशैव

७ भवभुक्तक नीलराज

८ वैर्यगयक हस्तिवर्म

९. पालककोटसेन
१०. देवराष्ट्रक कुबेर तथा
११. कोत्पलपुरक जनम्भय।

य—प्रत्यक्ष राज्य—प्रत्यक्ष नृपति सीमाप्राप्तिय थे। समुद्रगुप्त की विजयी की महती श्रृंखला से प्रयत्नित होकर इन नृपतियों ने उस 'प्रचण्ड शासक' पराजित गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त को सब प्रकार के कर प्रदान करना आरम्भ कर दिया और वे उसकी आज्ञा का पालन करने लगे।

निम्नलिखित पाँच प्रत्यक्ष राज्य थे —

- (१) समरट्ट (२) उजाक, (३) कामरूप (४) नेपाल तथा (५) कर्णपुर।

इ. पंच राज्य—उत्तरी एवं पूर्वी सीमा के राज्यों की विजित करने के पश्चात् समुद्रगुप्त पश्चिम की ओर बढ़ा और उसने वहाँ ने पंच राज्यों का अन्त किया। सम्भवतः इसी समय से भारत में संप्रदाय का अन्त हुआ। समुद्रगुप्त ने इनको अपने अधीन शासन करने की आज्ञा दे दी और ये पंचराज्य उसे कर देते रहे। इनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

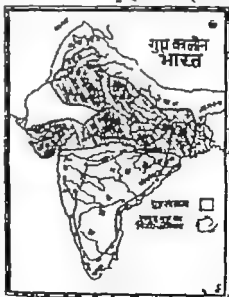
- (१) माकन (२) अर्जुनावन (३) घोषेन (४) मद्रक (५) आमीर, (६) प्राशन (७) सनकानीक (८) काक तथा (९) अर्परिक।

ब. विदेशी राज्य—समुद्रगुप्त की विजयों की ध्वनि भारत के निकटवर्ती राज्यों तक पहुँची और उन्होंने राजनीति की उचित चाल चककर उससे मित्रता स्थापित की। इन राज्यों के नाम ये हैं—

(१) दैवपुर साहिवाहानुषाहि, (२) चक (३) मुकण्ड तथा (४) संहल एवं अन्य हीन। इन विदेशी राज्यों ने मित्रता का केवल स्वीकार नहीं रखा बल्कि भारत निवेशन कम्पार्सों की भेंट तथा अपने राज्य में शासन करने के लिए मदद की माँग से मुद्रित अधिकार माँग कर उन्होंने एक प्रकार से उनकी प्रत्यक्ष मनीषिता स्वीकार की।

समुद्रगुप्त का नृत्योत्सव

समुद्रगुप्त की विजयों की इस लम्बी श्रृंखला से उसके सामरिक गुणों का अनुमान समाना अव्यक्त सरल है और यह अनुमान सरल के काफ़ी निकट तक पहुँचेगा। इसकी विविधता के आधार पर ही कुछ इतिहासकारों ने इसकी तुलना नपो-सियन से की है। जिसके सम्बन्ध में केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि यह तुलना निराधार है। कहीं एक साधारण सिपाही और कहीं राजकुमार। इन दोनों की विजयों में भी अन्तर है। नपोसियन का मुख प्रमुख पक्षियों से हुआ था जब कि समुद्रगुप्त की



चित्र १०

भी अन्तर है। नपोसियन का मुख प्रमुख पक्षियों से हुआ था जब कि समुद्रगुप्त की

उन शक्तियों का सामना करना पड़ा था जिसका भारतीय इतिहास में कोई बहुत बड़ा सामरिक महत्व नहीं था। कभी पराजित न होने वाली विघेपता का यहाँ अधिक अन्त हो जाता है।

समुद्रगुप्त के चरित्र का मूल्यांकन भी अतिरंजनात्मक है। इसका मूल कारण यह है कि चरित्र निरूपण का मूलाधार प्रमाण प्रचलित है। काव्य में राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख तो बहुत कुछ सँसकृत किया जाता है क्योंकि उसमें उत्पासत्य के स्पष्टीकरण का कुछ भय बना रहता है किन्तु जब कब अपने स्वामी या नामक का चरित्र-चित्रण करने लगता है तो वह समस्त गुणों को उसी में केन्द्रित कर देना चाहता है। ठीक यही दृष्टा हरिषेण की है। उसने समुद्रगुप्त में समस्त गुणों को पृथगीकृत कर दिया है—

“जिसका मन विद्वानों के सत्संग-सुख का व्यसनी था जो शास्त्र के उत्सवों का समर्पण करने वाला था बहुतेरी स्तुति कविता से कीर्तिराज्य का भोग कर रहा है धर्म के बाधे हुए परकोटे के सर्व्व जिसकी कीर्ति चन्द्रमा की किरणों की भाँति निर्मल और चार्णों और छिटक रही थी जिसकी विद्वत्ता शास्त्र तक को पहुँच जाती थी जिसने सुक्तों का मार्ग अपना ध्येय बना लिया और उसकी ऐसी कविता थी जो कवियों के मति के विषय का उत्सारण करती थी जिसका मन छपक हीन बनाव आतुरजनों के उद्धार और बीला भादि में लगा रहता था जो लोक के अनुग्रह तथा साक्षात् प्राप्तिमान स्वर्ग या कुबल, नक्षत्र इन्द्र और यम के समान जिसने अपनी तीक्ष्ण और विरह्य बुद्धि और समीप-कला के ज्ञान और प्रयोग से इन्द्र के मुख काव्यप तुम्बुक नारद भादि को अग्रिम किया जिसने विद्वानों को भीषिका देने योग्य अनेक काव्य कृतिवों से अपना कमिन्धन पद प्रतिष्ठित किया ऐसा हरिषेण का समुद्र गुप्त है।”

उपरोक्त काव्योक्ति अतिरंजित ऐसी में हरिषेण ने समुद्रगुप्त का जो चरित्र चित्रण किया है इसी आधार पर बहुत विद्वानों ने भी समुद्रगुप्त का मूल्यांकन किया है किन्तु हरिषेण की अतिरंजना भी निराधार नहीं हो सकती। समुद्रगुप्त में वे गुण किसी न किसी मात्रा में विद्यमान रहे होंगे जिनसे कबि को अत्युक्ति की प्रेरणा मिली होगी।

संक्षेप में उसकी आधिपतिक विघेपतामें ये थी —

१—महान विजेता—उसकी विजयों से प्रभावित होकर ही इतिहासकारों ने उसे नपोकल्पित की उपाधि प्रदान की है। समुद्रगुप्त के चरित्र की सबसे बड़ी विघेपता विजेता होना है।

२—महान सेनानायक—समुद्रगुप्त ने विजय अपने बाहु-बल पर प्राप्त की थी। सेना का संगठन उसने स्वयं किया था। उसका संशालन भी वह स्वयं करता था। बहु रण-विद्या में कितना कुशल था इसका साक्षात् प्रमाण उसकी विजयें हैं।

३—कृतस छासक एवं राजनीतिज्ञ—यदि समुद्रगुप्त कुशल शासक तथा राजनीतिज्ञ न होता तो इतने परिमल के पश्चात् पीछे हुए राज्य स्वयं उसके साथ समाप्त हो गए होते। यदि वह दूरदर्शिता से काम न लेता और समस्त विजित राज्यों को मिला कर उसने सिंग की तरह एक विशाल साम्राज्य बना लिया होता तो शासन कुम्भबत्ता न काव्य में प्राचीन भारत में बातायात तथा अन्य वस्तुओं के अभाव में अनिवार्य ही राज्य की निरुपय हो अपना पतन देखना पड़ता पर समुद्रगुप्त ने दूरदर्शिता से काम लिया। उसने केवल निकटवर्ती राज्यों की ही अपने साम्राज्य में मिलाकर आधीवर्त में ही अपने साम्राज्य की नीमित रक्खा। अन्य विजित राज्यों से उपहार भादि लेकर उसने

मिथठा बनाये रखी। सीमान्त प्रवेशों तथा विदेशी राज्यों के साथ उसने जिस नीति का अनुसरण किया वह प्रबलनीय है।

उद्योगिता—समुद्रगुप्त में उद्योगिता का भी सम्मिलन था। वह सैनिकों की रक्षा करवा करता था। उसकी उद्योगिता से प्रभावित होकर उसकी प्रजा उसका आदर करती थी।

अतीतिक व्यक्तित्व—समुद्रगुप्त बग में कुबेर, प्यास में ब्रह्म धर्म में इन्द्र, अत्यंत अथवा यम के समान अनेक बुद्धि में गृहस्पति था। इस प्रकार उसके अतीतिक व्यक्तित्व का बोध होता है।

साहित्य प्रेमी—अथाय-यशस्वि में समुद्रगुप्त को संगीत साहित्य तथा अन्य कलाओं का मर्मज्ञ बतलाया गया है। उसे सफल कवि की उपाधि भी दी गई है। समुद्रगुप्त विद्वानों की मजबूती से चित्र रखा था। वह उनका विशेष आदर करता था जिससे सम्पूर्ण देश के विद्वान् उससे मिलने आते रहें होंगे।

उदार धार्मिक दृष्टिकोण—ऐसा नहीं उल्लेख नहीं मिलता कि समुद्रगुप्त ने किसी धर्म विशेष या किसी सम्प्रदाय को अपने विष्णु धर्म के लिए ठिठकृत या उपेक्षित किया हो। उसमें पर्याप्त धार्मिक सहिष्णुता थी।

रामगुप्त

महान् विजिता समुद्रगुप्त की मृत्यु के ठीक पश्चात् आभिसेधिक प्रमात्रों के आचार पर हम आज तक चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही शासक बतलाते आ रहे थे किन्तु कुछ नये साहित्यिक प्रमाणों की प्राप्ति के पश्चात् हमें इन दो महान् शासकों—समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के मध्य में एक तीसरे शासक रामगुप्त का बोध होता है।

देवीचन्द्रगुप्त नाटक से यह ज्ञात होता है कि रामगुप्त कायर था। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् किसी सकराज ने उस पर आक्रमण किया और उसे अशक्ति करके शक्ति करने को बाध्य किया। शक्ति की एक चट्टिक सर्व यह थी कि रामगुप्त अपनी मर्मपत्नी भुवनेदी की शकाधिपति की देहे। रामगुप्त ने यह स्वीकार कर लिया। पत्नी की कबल पृथक् तथा कुल-जीवन के मान का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु पुरुषार्थी चन्द्रगुप्त को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने इसका प्रतिवाद किया और उसने भुवनेदी का श्रेष्ठ बनाकर मृत्यु-बाध से प्रतिध्वंसित शक-स्वभावधार में प्रवेश किया। वही चन्द्रगुप्त ने आशय से प्रसन्न भवामिता धिमा की और स्वागतार्थ बढ़ते हुए शकाधिपति के बध में छुरी मोंक दी। अन्त में चन्द्रगुप्त ने शकों के पतन के पश्चात् अपने भ्राता रामगुप्त का कब्र कर दिया और भुवनेदी से विवाह कर लिया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय विजयाम्बिरय

रामगुप्त के अन्त शासन के पश्चात् समुद्रगुप्त का दूत पराक्रमीपुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंहासनाब्ध हुआ। पिछले पृष्ठों में हमने देखा था कि किस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कायुष्य रामगुप्त की हत्या करके उसकी पत्नी से ब्याह किया और राज्यारोपण करी हुआ। शकों की पराजय चन्द्रगुप्त की नीरता का प्रथम उदाहरण है। किन्तु इसमें यह न समझना चाहिये कि चन्द्रगुप्त भ्राता की हत्या करके ही राज्यारोपण कर सका। कुछ प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। सम्भवतः वह इसका प्रकाश जूने दरबार में न कर सका था और इसीलिए साधारण नियमानुसार ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त सिंहासनाब्ध हुआ।

सत्ताधीन राजनीतिक परिस्थिति—यहाँ सत्ताधीन राजनीतिक अवस्था का बोध कर लेना आवश्यक है। जिस समय चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंहासन पर बैठा उस समय

यद्यपि भारत की विभिन्न जातियों एवं राज्यों की शक्ति जीव हो चुकी थी—क्योंकि वैसे कि हमने पिछले परिच्छेद में पढ़ा है समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के राज्य आदिभिक राज्य बलिबापन के राज्य प्रत्यम्न राज्य मल राज्य आदि का वधन कर दिया था फिर भी यह वधन स्थायी नहीं रह सकठा था क्योंकि दासता में स्थायित्व लाने के लिए अमीन राज्यों को समयकी लम्बी दूरी पार करके अभ्यस्त कराना आवश्यक था पर ऐसा नहीं हो सका था। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् ही रामगुप्त वैसे कायर शासक सिद्धान्तस्व हुआ जिसकी बुद्धिमत्ता का परिचय हमें पिछले पृष्ठों में प्राप्त हो चुका है। ऐसी परिस्थिति में तो निर्वाह होगा आवश्यक था किन्तु समुद्रगुप्त की भीषण की स्थित अब भी अवशेष थी अतः केवल राजाओं ने ही बिड़ोह किया। उन दिनों राजाओं के दो कन्ध थे—(१) सीमाप्रान्त अफ़ग़ानिस्तान आदि और (२) मागधा तथा पश्चिमी भारत।

राज-विजय—रामगुप्त पर आक्रमण करने वाले राजाओं को चन्द्रगुप्त ने पराजित किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने प्रमुख विरोधी गुजरात तथा काठियावाड़ प्रायद्वीप के राज-शासक ब्रह्मसिंह तृतीय पर विजय प्राप्त करके पश्चिमी सीमा की ओर अपने राज्य का विस्तार किया।

विजय का परिणाम—इस विजय से चन्द्रगुप्त न न केवल विदेशियों को भारत से भगा दिया प्रत्युत उसने अपनी राज्य-सीमा के अंतर्गत काठियावाड़ तथा गुजरात जैसे प्रदेशों को सम्मिलित करके अपने साम्राज्य का प्रसार बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक कर दिया। पश्चिमी घटवर्ती पत्तनों के सम्पर्क में आ जाने के कारण भारत के वाणिज्य व्यापार पर एक प्रकार से गुप्तों का एकाधिकार हो गया। सब ही वैश्व वाणिज्य सम्प्रदाय के निकट सम्पर्क में आ सका।

अन्य विजय—जब हम चन्द्रगुप्त की अन्य विजयों पर विचार करेंगे जिसका उल्लेख अभिलेखों से मिलता है। चन्द्रगुप्त के मुखसचिव शाक के लेख से यह बात होता है कि वह (चन्द्रगुप्त द्वितीय) विजय-विजय करने के लिए चला था। चन्द्रगुप्त के सेनानायक आगुकारद्व के लिए कहा जाता है कि उसने अनेक विजयों से स्मृति प्राप्त की थी। किन्तु दुर्भाग्यवश इन विजयों के विषय में सामग्रियों का अभाव है। दिल्ली की कुतुबमीनार के निकटवर्ती लोहस्तम्भ (मेहरीली स्तम्भ) पर चन्द्र नामक किसी राजा की विजय-गाथा का उल्लेख है। इस स्तम्भ लेख में चन्द्रगुप्त ने सिन्धु नदी से सार्वभौमिकता को पार करके बाकिर (बम्ब) के शासकों को जीता इस प्रकार कथन है जिससे यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि मेहरीली लोहस्तम्भ-लेख का चन्द्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ही है तो हमें यह विश्वास होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने राज्य के पूर्वीय तथा पश्चिमी दोनों सीमान्त प्रदेशों पर आक्रमण किया और उसे इन अभियानों में सफलता प्राप्त हुई।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का मूल्यांकन—चन्द्रगुप्त की सैनिक सफलताओं का विवरण हमें ऊपर मिल चुका है। इसी और सम्राट् न समुद्रगुप्त द्वारा प्रारम्भ की गई विजय यात्रा को वास्तव में पूर्णता प्रदान की और इसने न केवल सीमान्त जातियों या रिवाजों को गुप्त साम्राज्य में मिलाया प्रत्युत भारतीय सीमा पर स्थित एक कुपाम आदि विदेशी जातियों को भी पराजित करके उनके राज्य को गुप्त साम्राज्य में मिला कर लिया। उसकी इस विजयता के कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय की स्मृति जनता के हृदय में अविनाश तक बनी रही। इसके इस कार्य की जनता न निश्चय ही अधिक पसन्द किया होगा जिसकी जीव वास्तव में साम्राज्य-निर्माता समुद्रगुप्त ने डाली थी।

"सम्राट् गुप्त जो समरघट घोष वा वह इतिहास का एक नामक था। चन्द्र गुप्त द्वितीय जिसने राजनीतिक महानता और सांस्कृतिक पुनर्जीवन के महीन युग को प्रीति पर पहुँचाया उसने लोक-दुःख में अपना स्थान बना लिया। वास्तव में गुप्त कालीन भारत की बहुमुखी उत्थिति के मूल में इन्हीं दोनों सम्राटों का हाथ है। इन्होंने ही अपने सक्रिय सहयोग से इस युग को 'स्वर्ण युग' की उपाधि प्रदान कराई। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कला एवं साहित्य को जो संरक्षण प्रदान किया कलाकारों को जो प्रेरणा दी उसकी चर्चा प्राचीन काल से ही इन्द्रकिसाओं का विषय बनी हुई है और इन इन्द्रकिसाओं की ऐतिहासिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके दरबार में नबर्तनो की जो बात कही जाती है और उसमें काकिबास का नाम पਿਆया जाता है वह सत्य है वैसे कि अनेक पृष्ठों में स्पष्ट किया जायगा। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में भारत में कपभण्ड १ ११ वर्षों (४०४१ ई०) तक निवास करने वाले चीनी यात्री फाहियान के विवरण से (जिसके सम्बन्ध में हम आगे प्रकाश करेंगे) यह बात होता है कि उस समय देश में शान्ति एवं समृद्धि व्याप्त थी। प्रजा की आर्थिक अवस्था काफी अच्छी थी। बिना कठोर दण्ड के ही शान्ति स्थापित रहना चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन प्रणाली की सफलता का प्रमाण है।"

मुद्रा-निर्माण की ओर भी चन्द्रगुप्त ने विशेष ध्यान दिया जिसका प्रभाव मुद्रा निर्माण-कला तथा देश की आर्थिक व्यवस्था पर अवश्य पड़ा होगा। अब तक मुद्राओं में स्वर्ण-मुद्राओं का ही निर्माण कराया जा किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ताम्र तथा चाँदी के सिक्के भी प्रचलित कराय जो एक-लक्ष को मुद्राओं से प्रभावित है।

कुमारगुप्त प्रथम

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की मृत्यु के अनन्तर उसका पुत्र कुमारगुप्त सिंहासनाब्ध हुआ। उसके चाँदी के सिक्कों पर उसकी सबसे बाल की छिपि दी हुई है। यह छिपि मु० सं० ११५ अर्थात् ४५५ ई० है। इससे यह पता चलता है कि कुमारगुप्त ने सन् ४१५ ई० से लेकर ४५५ ई० तक शासन किया। उसका शासन-काल काफी लम्बा था। कुमारगुप्त के जितने अभिलेख प्राप्त हुए हैं उतने किसी भी अन्य गुप्त सम्राट् के नहीं। उसके सिक्के भी बहुत बड़ी संख्या में मिले हैं। उसने कुछ नवीन प्रकार की सुवर्ण-मुद्राएँ बनाईं। उसके सिक्कों और अभिलेखों का विस्तार बंगाल से लेकर सीरापुठ तक हिमालय से लेकर मगध तक है। जिससे सिद्ध होता है कि उसने अपने पिता द्वारा अधिगत साम्राज्य को पूर्णतः एकता और एक विधात राज्य पर धामन किया था। मगधोर सिंहालेश में कहा गया है कि कुमारगुप्त प्रथम चारों सभ्रों की अंशक लहरों से घिरी हुई पृथ्वी पर शासन करता था। अपने प्रतापी पिता की भाँति कुमारगुप्त भी महाकवि काकिबास के शब्दों में "आसमुद्राभितीत" था। "उमने महेश्वरिण की उपाधि भी धारण की थी।

पुष्पमित्रों से युद्ध—वैसे ही कुमारगुप्त प्रथम का शासन-काल काफी शान्ति भव था किन्तु उसके राजत्वकाल के अंतिम दिनों में उसके साम्राज्यकी भूमिभण्ड पर विपत्ति के बादल फिर आवे थे। भीतरी स्तम्भ लेख के एक दलोक ने इस विपत्ति पर प्रकाश पड़ता है। इस दलोक से पता चलता है कि कुमारगुप्त को बृद्धावस्था में पुष्पमित्रों ने जिनकी सैन्य-शक्ति और सम्पत्ति काफी बढ़ गई थी गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये थे। यह आक्रमण इतना भयंकर था कि इनके द्वारा गुप्त बंध की राज्य-संरभी विचलित हो गई थी जिनको फिर से प्रतिष्ठापित करने

के लिए कुमारगुप्त प्रथम के बीर पुत्र स्कन्दगुप्त को रात भर पृथ्वी पर छेदे-छेदे ही बिठाना पड़ा था और कठिनाइयों के बावजूद भी विजयभी ने गुप्त सम्राट का ही बरम किया।

कुमारगुप्त प्रथम के कार्यों और चरित्र का मूल्यांकन

यद्यपि कुमारगुप्त प्रथम ने प्रायः अपनी तुलना 'देवताओं के सेना नायक' से की है तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि यह न तो समुद्रगुप्त की तरह बीर योद्धा ही था और न चन्द्रगुप्त द्वितीय की भाँति मनुष्यों का निर्भीक नेता ही। किन्तु सैन्य उपक्रमों के बीरव से सुसज्ज होने पर भी कुमारगुप्त महेश्वरचित्य में कुछ ऐसे गुण विद्यमान थे जिसके लिए उसके शासन-काल का महत्व काफी अधिक है। कुमारगुप्त का सुवीर्य कासीन शासन सुख-शान्ति और समृद्धि के लिए विख्यात है। कुमारगुप्त के तरह अभिलेखाँ में केवल एक ही सैन्य-कार्यवाही का बोध कराता है जो कि उसके शासन-काल के अन्तिम दिनों में की गई थी जब कि वे सभी एक शान्तिपूर्ण तथा बड़े शासन व्यवस्था का संकेत करते हैं। उसके साम्राज्य का केवल एक बड़े और उदार शासन व्यवस्था के अन्तर्गत ही इतने अधिक दिनों तक इतना विद्यालभ भू-भाग था सकला था। उसने बेहवारहान के अनन्तर सीमाएँ हूणों और अन्य सभ्रुओं को जो परमम सहन करना पड़ा उससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता था कि इतने सभ्रु शान्तिपूर्ण शासन काल में भी सेना की सैन्य-निपुणता का ह्रास नहीं होने पाया था। यह बात कुमारगुप्त के लिए कोई कम वीरव की नहीं है कि इतने अधिक दिनों तक युद्ध से विरत रहने पर भी उसने अपने सैनिकों की रण-कुशलता को कम नहीं होने दिया।

कुमारगुप्त ने अपने पिता की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पूरी तरह से पालन किया। उसने अपने अभिलेखाँ में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। बहु स्वर्ण क्रांतिकेय का बड़ा प्रभु था किन्तु उसने सूर्य बुद्ध सिद्ध एवं विष्णु आदि देवताओं की पूजा में किसी प्रकार का विघ्न नहीं उत्पन्न होने दिया। इसके विपरीत उसके अभिलेख इस बात के अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि उसने बौद्ध तथा अन्य धर्मों के प्रति महती उदारता का परिचय दिया। धानकुवर, कर्मवर्ण और मन्वसोर अभिलेखाँ में अमरा बुद्ध सिद्ध तथा सूर्य के प्रति अद्भुत प्रभु की गई है।

स्कन्दगुप्त

कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के अनन्तर स्कन्दगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। उनके शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षे निरान्त अधान्तिमय रहे।

हूणों का आक्रमण—स्कन्दगुप्त के समकालीन लेखों में उसके यह राजाओं के साथ संबंधों का उल्लेख मिलता है जिनमें कुछ हूणों के लिए 'मैन्डरा' का प्रयोग किया गया है परन्तु संबंधों का कोई विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है। इतना तो निश्चित है कि अपने शासन-काल में किसी समय स्कन्दगुप्त को हूणों के आक्रमण का सामना करना पड़ा था। हूण लोग बर्बर भाँति के व और अपनी शक्ति बड़ा सेने पर वे घोरत तथा एशिया की मही महीनी में आतंक फैला रहे थे। ईसा की सप्तम शताब्दी सप्तमरी के मध्य में हूणों की एक शाखा ने जिह्मे देवत हूण कहा जाता है आनस की घाटी पर अपना अधिकार जमा दिया और फारस तथा भारत के निवासियों को भयवस्त कर दिया। उन्होंने मायार को जीत कर वहाँ एक ऐसे राजा को सिंहासन पर बैठा दिया जो अत्यन्त निर्बल और बर्बर था। मायार के निवासियों के साथ हूणों ने बड़ी ही निर्बलता का व्यवहार किया और उन पर भौतिक-भौतिक के

आयाचार किये। आन्ध्र के पश्चात् वे भारत की सीमा में प्रविष्ट हो गये और गुप्त साम्राज्य के ऊपर अपने बाँध बढ़ाने लगे किन्तु इस समय भारत पर एक और सेनानी और सहायी भेजा आक्रमण कर रहा था। यह और सेनानी स्कन्दगुप्त या जिसमें पुष्प मिश्रों को पराजित कर अपने पराक्रम और भुवनेश्वर का परिचय दिया। इस आक्रमण के कारण गुप्तों ने बहुत अधिक भी नहीं पराजित और उसमें डटकर उसका सामना किया। गुप्तों के साथ स्कन्दगुप्त का जो संबंध हुआ वह निश्चय ही भव्यमान रहा होगा। परन्तु इसमें हमें नहीं कि स्कन्दगुप्त ने अपने गुप्तों के ऊपर विजय प्राप्त की और अपने राज्य की माटी विपत्ति से रक्षा की। गुप्तों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त वे स्कन्दगुप्त ने देशवासियों के लिए बकि अगुष्ठान करवाये और एक विष्णु-स्तम्भ का निर्माण भी करवाया। आन्ध्र के पूर्व में चौथी शताब्दी के अन्त तथा छठी शताब्दी के प्रारम्भ तक फिर कभी आन्ध्र के गुप्त काल दुस्साहस नहीं कर सके।

स्कन्दगुप्त की शासन-नीति—यद्यपि स्कन्दगुप्त ने महान् संघट के समय राज-संघर्ष पर अधिकार स्थापित किया था और उसकी काफी सक्ति इस संघट के निवारण में सहाय हो गई थी तथापि उसने शासन-व्यवस्था को ठीक नी अन्वेषणा की दृष्टि में न देखा। उसने अपने राज्यारोहण के मुख्य बाध ही प्राचीन शासकों की निवृत्ति किया। इस कार्य द्वारा उसने अपने शासन की सुदृढ़ करने का प्रयास किया। उसकी शासन-व्यवस्था उदात्ता और लोकहित के सिद्धान्तों पर आधारित थी। उसने साम्राज्य के दूरस्थ प्रांतों में भी सार्वजनिक हित के कार्यों पर ध्यान दिया। ऐसा ही एक कार्य था गुप्त में मुख्यतः शोध का पुनर्निर्माण।

स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य

गुप्तगुप्त—स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बाद उसका भाई पुष्पगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। पुष्पगुप्त स्कन्दगुप्त का छोटेका भाई था। वह अनन्तदेवी के पुत्र से उत्पन्न हुआ था। कुछ विद्वानों की धारणा है कि पुष्पगुप्त ने स्कन्दगुप्त के राज्यारोहण का विरोध किया था और इस पर उन दोनों में परस्पर युद्ध भी छिड़ा था।

नरसिंहगुप्त बाकाशित्य—पुष्पगुप्त की मृत्यु के अनन्तर उसका पुत्र और उत्तराधिकारी नरसिंहगुप्त था। नरसिंहगुप्त बाकाशित्य एक प्रतापी सम्राट् था जिसने गुप्त साम्राज्य के विस्तार और उसकी पुनः प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया था और प्रयास अपने में जिसे कुछ बंधों तक सफलता भी मिली थी। नरसिंहगुप्त बाकाशित्य की मृत्यु करीब ४५० ई. के आसपास ही हो गई। यही कारण है कि जयवा शासन काल मिलाव अत्यन्त सीमा था।

कुमार गुप्त द्वितीय—आधिकारिक और साहित्यिक भाषाओं से यह पता चलता है कि नरसिंहगुप्त के मुख्यतः कुमारगुप्त द्वितीय गुप्त राजसिंहासन पर आरुढ़ हुआ। सम्भवतः कुमारगुप्त द्वितीय के ही शासन-काल में देश के अन्तर्गत की एक सेना ने वज्रपुर के उस भूय मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया जिसका निर्माण मूलतः कुमारगुप्त प्रथम ने जो इस कुमारगुप्त का प्रपितामह था समय में किया गया था। इसने "विष्णुमूर्ति" का विष्णु मन्दिर किया था।

बुद्धगुप्त—कुमारगुप्त द्वितीय के उपरांत गुप्त राजसिंहासन पर बुद्धगुप्त समा आया। शासक अधिकृत में बुद्धगुप्त की सबसे प्राचीन तिथि भी नहीं है जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि इसने ईसवी सन् ४७५ में राज्य प्राप्त किया था।

बुद्धगुप्त एक शक्तिशाली नरेश था और उसने अपने बंध की उन्नति हुई शक्ति को पुनः समाज का प्रयत्न किया। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् ४८४ ई० में बुद्धगुप्त ने अपनी राज्य-सत्ता मध्य प्रान्तों तथा मालवा के कुछ भागों पर स्थापित कर ली थी।

बुद्धगुप्त के उत्तराधिकारी—जूनसाइन के जीवनचरित्र से यह पता चलता है कि बुद्धगुप्त का उत्तराधिकारी तथागतगुप्त था जिसके उपरान्त बाह्मदित्य राजाधिकार प्राप्त किया था। इस समय मध्य भारत में हर्षवर्धन तोरमान ने गुप्त की शक्ति को कुंती की थी।

जूनसाइन के अभिलेख से विदित होता है कि बाह्मदित्य बौद्धधर्म का अनुयायी और संरक्षक था। जिसने प्रसिद्ध यह अपने पराक्रम के लिए था उतनी स्वाति उसने अपने धर्म संरक्षकता और धर्मानुपमिता के कारण भी अविदित की थी। उसने मालवा में एक बौद्ध संघागम का निर्माण कराया था।

हर्षों का आक्रमण

स्कन्दगुप्त के विषय में पहले हुए हम हर्षों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार स्कन्दगुप्त ने अपने प्रबल पराक्रम द्वारा हर्षों के देश की सीमा के बाहर डकेल दिया और अगले डेढ़ सौ वर्षों तक अपने राज्य को उनके बर्बर आक्रमणों से बचाये रखा। परन्तु इस प्रबल प्रतिरोध से विक्रम-मनोरथ हो जाने पर भी हम सर्वत्र के लिए हतोत्साहित नहीं हो सके। उन्होंने शक्ति संघम करके पाँचवीं शताब्दी के अन्त में पुनः भारत की ओर अपनी दृष्टि फेंकी। इस बार हर्षों को तोरमान, बैसा पराक्रमी और महत्वाकांक्षी मत्वा प्राप्त हो गया। उसके नेतृत्व में टिहरीदल की शक्ति हर्ष लोग पश्चिमोत्तर और मध्य भारत में छा मये। इस समय उनके आक्रमण और प्रसार को रोकने वाला दुर्भाग्यवश कोई स्वन्त्र गुप्त नहीं था जिससे वे लोग भारतीय सीमा में बिना किसी विशेष प्रबल रोक-टोक के दूर पड़े। तोरमान के नेतृत्व में हर्षों ने दूर साम्राज्य की रीढ़ तोड़ दी और कई प्रान्तों पर अपना अधिकार जमा लिया। उसके सैनिकों ने भयंकर मार-काट मचाई और निरपराध स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों तक को लूटमार के घाट उतार दिया। मालवा पर तोरमान का अधिकार हुआ। माला। परन्तु तोरमान अधिक समय तक मालवा पर अधिकार जमान में सफल नहीं सका। सन् ५१ ई० के लगभग हर्ष को मध्य भारत और मालवा से निकास दिये गये। हर्षों को इन प्रवेष्टों से निष्कासित करने वाला हीर गुप्तगुप्त बाह्मदित्य था। हर्षों के मत्वा तोरमान की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मिहिरकुल उसका उत्तराधिकारी हुआ।

मिहिरकुल अपने पिता से अधिक मूर्खतापूर्ण और अज्ञानता भरा था। अनुभूतियों—में उसका ज्ञान विवरण दिया गया है उससे यह पता चलता है कि वह बड़ा ही निर्दय तथा रक्तपिपासु था। मर संहार और रक्तपात में उसे अभिरुचि थी और इनके द्वारा उसका मनोरञ्जन होता था। जूनसाइन और कोस्मास (Cosmas) के लेखों से यह प्रमाणित होता है कि मिहिरकुल ने बौद्धों पर बहुत अत्याचार किया। बौद्धविहारों को बूटबा कर उसमें उमने आग लगी। मिहिरकुल ने बाह्मदित्य पर भी आक्रमण किया परन्तु इस बार उसने एक न बल मकी और उस गहरी पराजय उठाती पड़ी। बाह्मदित्य ने बिना उस पक्ष में पराजित हो किया बल्कि उसे अपना गुप्त-बन्धी भी बना लिया। किन्तु राजमाता के अनुरोध से मिहिरकुल मृत कर दिया गया। मिहिरकुल ने इसके बाद कार्मौर के राजा के यहाँ शरण ली। कार्मौर नरेश ने उसका काफी आदरसत्कार किया और

उसे अपना अधिपति बनाया। परन्तु अर्धराज्यीय असम्य रूप ने राजा के साथ विरवाधभाव सिद्धा और उसके राजसिंहासन पर पड़पुत्र द्वारा अधिकार कर लिया। परन्तु अपने इस



चित्र ११

दुर्गबहार का विहिरकुल का सोध हीरक भोगना पड़ा और उसे मृत्यु भडा ले गयी।

प्रश्न

1. Describe the character and achievements of Chandragupta II Vikramaditya. (1958) (1955)
2. Estimate the character and achievements of Samudragupta. (1958.)
3. Samudra Gupta was only of the ablest and most versatile rulers India has known." Discuss. 1957
4. Critically analyse the causes of the fall of Gupta Empire (1957)
5. "Samudra Gupta was a great man, a great ruler and a great revivalist. Discuss. (1958.)
6. Give an account of the military activities of Samudra Gupta. (1955.) How far did he succeed in the unification of the country
7. Who were the Huns? What part did they play in Indian history

गुप्तकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

भारतीय इतिहास में गुप्त-युग की विषय महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पिछले युग की अन्धता और अज्ञान के स्वान पर हम गुप्त-युग में ऐन्य और प्रकाश को देखते हैं। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद देश में विघटन की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई वह गुप्त युग के उदय के पूर्व तक जारी रही और यद्यपि संस्कृति का नर अविच्छिन्न तथा अबाध गति से बढ़ता रहा तथापि उतना वेग और प्रवाह नहीं था जितना कि हम गुप्त युग में देखते हैं। अपनी महान् उपलब्धियों और सफलताओं के कारण गुप्त युग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहलाता है। आज हम गुप्त युग के सांस्कृतिक जीवन का विषय विस्तार के साथ अध्ययन करेंगे तो सुस्पष्ट सिद्ध हो जायगा कि इस युग के लिए स्वर्णयुग का प्रयोग सर्वथा समीचीन और सार्थक है।

गुप्त युग की सर्वप्रमुखी सांस्कृतिक प्रगति में उस शासन-व्यवस्था का अपना महत्वपूर्ण योगदान था जिसको गुप्त सम्राटों ने अपनाया था। अतएव हम सर्वप्रथम गुप्तों की शासन-प्रणाली का ही अध्ययन करेंगे।

शासन-प्रणाली

गुप्तों की शासन-प्रणाली राजतन्त्रात्मक थी। शासन का प्रभार राजा या और उसकी शक्ति असीमित थी। गुप्त नरेश 'महाराजाधिराज' 'सम्राट' 'परमेश्वर' 'परमदेवता' 'वज्रवर्तिन' आदि विरूढ बारम्बार करते थे। राजाओं की ऐश्वर्य्य मानने की वारसा इस काल में काफी लोकप्रिय हो गई थी। प्रभाव प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के लिए कहा गया है कि वह एक देवता था जो इस पृथ्वी पर निवास करने के लिए आय था। परन्तु राजा के देवता होने की इस भावना से यह अभिप्राय नहीं था कि वह स्वेच्छावादी और निरंकुश हो सकता है। वह अपने अमात्यों की सहायता से शासन कार्य करता था जिनके परामर्शों को मानने के लिए बाध्य न होने पर भी वह उनकी मुनता मन्थन था। ग्राम पंचायतों और नगर-सभाओं तथा व्यापारिक श्रेणियों का शासन-सम्बन्धी कार्यों से सम्बन्धित काफी अधिकार प्राप्त थे जिससे सम्पूर्ण शक्ति केंद्रीय सरकार अथवा राजा में केन्द्रित नहीं होने पाती थी। काद्वान नामक चीनी यात्री ने गुप्तों की उदार शासन-प्रणाली का जिन शब्दों में वर्णन किया है सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था में भी साधारण जनता को व्यक्तिगत अधिकार काफी संख्या में थे। चीनी यात्री लिखता है 'भ्रजा प्रभूत तथा मुक्त है। लोगों को अपने घरों की छोटी-छोटी, बातों का न तो व्योरा देना पड़ता है और न किन्हीं व्यापारिकार्यों या शासकों के यहाँ हाजिरी। जनता के भावों में राजा हस्तक्षेप नहीं करते थे। लोगों को राज्य भर में जाने-जाने का पूरा अधिकार था और इसके लिए उन्हें विरोध अनुमति-पत्र नहीं प्राप्त करना पड़ता था। दण्ड आधुनिक युग की प्रवेष्टा भी मनुष्य। राजा न तो प्राजडा देता था और न भीर शारदिक पानना ही। बहुत से अपराधों के लिए केवल दण्ड की ही व्यवस्था होती थी जो अपराध की समुदाय व गुणता के अनुसार कम ज्यादा हो सकता था। यद्यपि राजनियम गरम और दण्ड मृदुल थे तथापि अपराधों की संख्या घटती थी।

इसको नियुक्त करता था। विपदपति की शासन-सम्बन्धी कार्यों में सहायता करने के लिए अनेक कर्मचारी के विभिन्न नाम इस प्रकार हैं—

नगर सेण्टी—नगर का प्रधान सेठ अथवा सेनी प्रमुख।

सार्वभौम—नगर का प्रमुख व्यवसायी अथवा व्यापारियों के संघ का प्रधान।

प्रथमकुलिक—प्रथम धनी अथवा सिम्पलिस का प्रमुख।

प्रथम कापस्थ—प्रधान लेखक।

पुन्यपाक—संप्रदायिकारी।

नगर-शासन—इस प्रकार का अनुभव करना सम्भव नृतिपूर्ण नहीं कि गुप्त काल में नगरों में म्युनिसिपल-शासन की व्यवस्था थी। यद्यपि इस समय के म्युनिसिपल-शासन का विस्तृत विवरण ने वाला कोई मेगस्थनीज हमारे सहायता नही करता। स्वास्थ्य और स्वच्छता आदि विषयों के समुचित प्रबंध के लिए प्रत्येक मुख्य नगर में एक समा होती थी। इस समा का अध्यक्ष नगरपति कहलाता था जिसके लिए दैनिक धन का प्रयोग किया गया है। नगर-निवासियों और व्यापारियों से कर वसूल कर 'दैनिक' उनके हित के कार्यों पर व्यय किया था। स्वास्थ्य पर समुचित ध्यान दिया जाता था। यदि कोई मनुष्य मुख्य मार्ग स्नानागार, मन्दिर तथा भवन के निकट मगधी फैलाते हुए पकड़ा जाता था तो वह दण्डनी होता था और उसे एक पद दण्डकर के रूप में देना पड़ता था।

ग्राम-शासन—ग्राम उस समय के शासन-प्रणाली की सबसे छोटी इकाई था। ग्राम का मुखिया जिसे ग्रामेयक तथा ग्रामाध्यक्ष कहा जाता था ग्राम-शासन का अध्यक्ष होता था। मुखिया की शासन-सम्बन्धी कार्यों में सहायता देने के लिए स्थानीय लोगों को एक समा हुआ करती थी जिसमें राजकर्मचारी नहीं होते थे। ग्राम-समा सरकार के समय समय कर्तव्यों का निर्वाह करती थी। यह ग्राम की सुरक्षा का ध्यान रखती थी ग्राम बागों के फुकरों का निर्भय करती थी भूमिकर एकत्र कर राजकोष में जमा करती थी और ग्राम निवासियों के सार्वजनिक हित के कार्य करती थी। ग्राम-शासन की मुखिया के दृष्टिकोण से ग्राम-समा उपसमितियों का भी निर्माण करती थी। कृषि उद्यान सिंचाई, मन्दिर आदि के लिए निम्न-निम्न समितियाँ होती थी। ग्राम-शासन के लिए धन की आवश्यकता पड़ती थी जो प्राप्त कर द्वारा ग्राम समाजों को प्राप्त होता था। यद्यपि ग्रामवासियों का मुख्य उद्यम कृषि-कार्य था तथापि समय समय परवेक ग्राम में जुलाहे, कुम्हार, बड़ई, ठेक बनाने वाला तथा मृत्नार होते थे जिनके द्वारा ग्राम-समाजों को काफी आय होती थी। ग्रामों की सीमाओं का निर्माण बहुधा दीवारों और नालियों द्वारा किया जाता था। गुप्त लेखों में नीमा-निर्माण के लिए माली के प्रयोग के उदाहरण प्रचुरता से प्राप्त होते हैं।

राज्य की आय के साधन—राज्य की आय के साधन प्रचुर और विविध थे। गुप्त लोगों से पता चलता है कि करों की संख्या गुप्त काल में बढ़ाई गई थी किन्तु उनके नाम हमें ज्ञात नहीं। हममें कोई सन्देह नहीं कि करों में सबसे प्रमुख भूमिकर होता था। कुछ स्थानों में भूमिकर के लिए 'घागकर' और कुछ स्थानों में 'उन्नम' धन का प्रयोग किया गया है। भूमि की अवस्था के अनुसार कर सोलह प्रतिशत से लेकर पच्चीस प्रतिशत तक लगाया जाता था।

भूमि द्वारा भी राज्य को पर्याप्त आय होती थी। राज्य में विभिन्न वस्तुओं का निर्माण किया जाता था उन पर चुंकी लाई जाती थी। वनों चरमाहुँ, बेकार भूमि तथा चानों पर राज्य का स्वामित्व होता था और उनकी उपज बेचकर अथवा उन्हें ठेके

मन्त्रिमण्डल—मुफ्त नरेश अपने शासन-सम्बन्धी कर्तव्यों का संवातन मन्त्रियों की सहायता से किया करते थे। मन्त्रियों के लिए 'सचिव' या 'मन्त्रिन्' शब्द का प्रयोग प्रायः किया गया है। अमात्यों तथा मन्त्रियों का पर पितृकुमानुयत होता था। राजा तथा मन्त्रिमण की सम्मिश्रित रूप से एक घना होटी थी जिसका प्रधान राजा होता था। यह अनुमान करना सम्भवतः दृष्टिपूर्व न होया कि सैन्य भूमि-कर, व्यापार, उद्योग, तथा इसी प्रकार के अन्य विभाग मन्त्रिमण्डल के किसी सदस्य के अधीन कर दिये जाते थे और उसका उत्तरदायित्व उस सदस्य पर छोड़ दिया जाता था।

केन्द्रीय शासन—प्रणाली का कोई विस्तृत उल्लेख तत्कालीन अभिलेखों में नहीं किया गया है किन्तु कुछ प्रधान कर्मचारियों का विषय ज्ञात किया गया है। सम्राट के बाद सबसे ऊँचा स्थान भुवराज का होता था। मुफ्तकालीन शासन-प्रणाली में शासनाधिकार का नियम उत्तराधिकार के ऊपर आधारित होता था किन्तु बहुधा सम्राट अपने उत्तराधिकारी का अपने ही जीवन-काल में निर्वाचन कर लेता था। मन्त्री सिविल शासन का अध्यक्ष होता था। महाबलाधिकृत (सेनापति) महादण्डनायक और महाप्रतिहार, ये उच्च पदाधिकारियों में प्रमुख स्थान रखते थे। महाबलाधिकृत का पर सम्भवतः सातवाहन राजाओं के कर्मचारी (महासेनापति) से मिलता-जुलता था। उसके अधीन महास्वपति (अस्मारोही सेना का अध्यक्ष) भटारकपति (अरवारोही सेना का निरीक्षक) महापीलपति (हाथियों की सेना का अध्यक्ष) सेनापति और बलाधिकृत नामक सैन्य अधिकारी होते थे।

प्रांतीय शासन—शासन की सुविधा के दृष्टिकोण से मुफ्त युग में साम्राज्य को विभिन्न प्रांतों में विभाजित कर दिया जाता था। मुफ्त केपी में 'प्रांत' के लिए 'दिश' या 'भुक्ति' शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रांतीय शासकों की नियुक्त सम्राट् करता था। वे अपने भक्ति की बाह्य आक्रमणों तथा भीतर विप्लवों से रक्षा करने के लिए उत्तरदायी होते थे। अपनी राज्य-सीमा में शांतिस्थापना करके सार्वजनिक हितों के कार्य करना प्रांतीय शासन का कर्तव्य समझा जाता था। उसे इस बात का अधिकार प्राप्त होता था कि अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की नियुक्ति करे। मुफ्त सत्ता में प्रांतीय शासक के लिए अधिकतर 'उपरिकर महाराज' का प्रयोग किया गया है। 'गोप्' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। प्रांतीय शासक अधिकांशतया राजकुल से सम्बन्धित होते थे। जितने भी शासन-विभाग साम्राज्य की राजधानी में होते थे सम्भवतः वे सभी 'भुक्ति' या 'दिश' की राजधानी में भी होते थे। प्रांतीय शासन की रचना सम्भवतः केन्द्रीय शासन के समूचे के आधार पर की गई थी। आधुनिक काल की शक्ति मुफ्त काल में भी गवर्नरों के शासन-काल की अवधि निर्दिष्ट कर दी जाती थी। प्रांतीय शासकों के कार्य-काल की अवधि कम से कम पाँच वर्ष अवश्य होती थी। मुफ्त-कालीन अभिलेखों द्वारा हमें साम्राज्य के समस्त प्रांतों का नाम तो प्राप्त नहीं होता किन्तु 'भुक्तिमा' के नामों का उल्लेख काफी मिलता है—पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति तीरभुक्ति नगर भुक्ति आबस्तीभुक्ति तथा अहिष्मर भुक्ति मुकुति रथ तथा मोरपट्ट आदि।

जिले का शासन—प्रांत जिले में विभाजित किये जाते थे। जिलों के लिए 'विपय' शब्द का प्रयोग किया है। एक भुक्ति के अन्तर्गत कई 'विपय' होते थे। विपय के सबसे बड़े अधिकारी की विपयपति कहा जाता था। इनकी नियुक्ति बहुधा 'गोप्' या 'उपरिकर महाराज' अर्थात् प्रांतपति ही करता था किन्तु कभी-कभी सम्राट् भी

इसकी नियुक्त करता था। विषयपति की सासन-सम्बन्धी कार्यों में सहायता करने के लिए अनेक कर्मचारी थे जिनके नाम इस प्रकार हैं—

नगर धेठ्ठी—नगर का प्रधान सैठ अथवा धेनी प्रमुख।

सार्वबाह—नगर का प्रमुख व्यवसायी अथवा व्यापारियों के संघ का प्रधान।

प्रथम कुञ्जिक—प्रथम धिपरी अथवा डिस्पिचर का प्रमुख।

प्रथम कायस्थ—प्रधान लेखक।

पुस्तपाक—संप्रदायिकारी।

नगर-शासन—इस प्रकार का अनुभव करना सम्भवतः मुद्रिपूर्ण नहीं कि मुद्रा काल में नगरों में म्युनिसिपल-शासन की व्यवस्था थी। यद्यपि इस समय के म्युनिसिपल-शासन का विस्तृत विवरण से बाकी कोई वेगस्वामीज हमारी सहायता नहीं करता। स्वास्थ्य और स्वच्छता आदि विषयों के समुचित प्रबन्ध के लिए प्रत्येक मुख्य नगर में एक सम्रा होती थी। इस सम्रा का अध्यक्ष नगरपति कहलाता था जिसके लिए डांगिक सचिव का प्रयोग किया गया है। नगर-निवासियों और व्यापारियों से कर वसूल कर 'डांगिक' उनके हित के कार्यों पर व्यय करता था। स्वास्थ्य पर समुचित ध्यान दिया जाता था। यदि कोई पशुपुत्र मुख्य कार्य स्नानागार, मन्दिर तथा यवन के निकट गन्धगी फैलाते हुए पकड़ा जाता था तो वह दण्ड भोगी होता था और उसे एक पल दण्डकर के रूप में देना पड़ता था।

ग्राम-शासन—ग्राम उस समय के शासन-अवस्था की सबसे छोटी इकाई था। गाँव का मुखिया जिसे ग्रामेयक तथा ग्रामाध्यक्ष कहा जाता था ग्राम-शासन का अध्यक्ष होता था। मुखिया की शासन-सम्बन्धी कार्यों में सहायता देने के लिए स्थानीय लोगों की एक सम्रा हुआ करती थी जिसमें राजकर्मचारी नहीं होते थे। ग्राम-समा सरकार के स्वयंसेवक समस्त कर्तव्यों का निर्वाह करती थी। यह ग्राम की सुरक्षा का ध्यान रखती थी ग्राम वालों के मुखियों का निर्वाह करती थी भूमिकर एकत्र कर राजकोष में जमा करती थी और ग्राम निवासियों के सार्वजनिक हित के कार्य करती थी। ग्राम-शासन की मुखिया के दृष्टिकोण से ग्राम-समा उपसमितियों का भी निर्माण करती थी। कृषि उद्यान विचार, मन्दिर आदि के लिए भिन्न-भिन्न समितियाँ होती थी। ग्राम-शासन के लिए धन की आवश्यकता पड़ती थी जो प्रायः कर द्वारा ग्राम सवासियों को प्राप्त होता था। यद्यपि ग्रामवासियों का मुख्य उत्तम कृषि-कार्य था तथापि स्वयंसेवक प्रत्येक ग्राम में बुछाई कुम्हार, बर्हई, ठेक बनाने वाला तथा सुनार होते थे जिनके द्वारा ग्राम-समाओं को काफी आय होती थी। धानों की सीमाओं का निर्माण बहुधा रोबारों और गाँवियों द्वारा किया जाता था। गुप्त कैलों में सीमा निर्धारण के लिए माछी के प्रयोग के उदाहरण प्रचुरता से प्राप्त होते हैं।

राज्य की आय के साधन—राज्य की आय के साधन प्रचुर और विभिन्न थे। मुद्रा सिक्कों से पता चलता है कि करों की संख्या मुद्रा काल में बढ़ाकर भी किन्तु उनके नाम हमें ज्ञात नहीं। इसमें कोई संशय नहीं कि करों में सबसे प्रमुख भूमिकर होता था। कुछ स्थानों में भूमिकर के लिए 'भागकर' और कुछ स्थानों में 'उर्ध्व' छन्द का प्रयोग किया गया है। भूमि की अवस्था के अनुसार कर सोलह प्रतिशत से लेकर पच्चीस प्रतिशत तक लगाया जाता था।

भूमि द्वारा भी राज्य को पर्याप्त आय होती थी। राज्य में जिन वस्तुओं का निर्माण किया जाता था उन पर भुवी लाई जाती थी। वनों बरपावों केकर भूमि तथा खानों पर राज्य का स्वामित्व होता था और उनकी उपज बचकर अपना उन्हें ठेके

पर उठा कर राज्य काफ़ी आय प्राप्त करता था। जैनस राजकीय आय का एक प्रमुख स्रोत समझा जाता था जिसका प्रबन्ध 'बीस्मिक' नामक कर्मचारी के अधीन होता था। व्यापारियों और शिल्पियों से जो कर वसूल किया जाता था उसे मुष्ट केवों में 'धुस्क' का नाम दिया गया है। मुष्ट के शासन-काल में भारत का आन्तरिक और बाह्य व्यापार काफ़ी उन्नति पर था और दोनों प्रकार के व्यापारों द्वारा राज्य को काफ़ी आमदनी होती थी। देश में बाहर से भी वस्तुएँ आती थीं उन पर राज्य-कर लगाया जाता था। व्यापारी यदि राज्य की वृत्ति बढ़ाने का प्रयत्न करते हुए पकड़ा जाता था तो उसे बरख का भागी होना पड़ता था। गधीली वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता था किन्तु इस कर से राज्य को बहुत आय ही होती रही होगी।

मुष्ट कालीन समाज

मुष्ट सम्राटों के सुदीर्घकालीन शासन ने उत्तरी भारत में और उनके समकालीन ग़रेछों ने दक्षिणी भारत में सागिठ तथा सुव्यवस्था की स्थापना करके पिछले युग के सामाजिक जीवन की विषयताओं को देश की भूमि पर अच्छी तरह से बमने का अवसर प्रदान किया। भारतवासियों के श्रेष्ठ नैतिक चरित्र की प्रशंसा भूतानी राजकुल मेवास्थानीय ने की थी। मुष्टकाल में चीनी यात्री फाह्यान ने भी प्रशंसापूर्ण शब्दों में ही लोगों के चरित्र का उल्लेख किया है और यह सचमुच मनोरंजक है कि हर्ष-काल के भारतीयों की चारित्रिक श्रेष्ठता का वर्णन ह्वेनसांग ने भी किया है।

वर्ण-व्यवस्था—अन्य युगों की भाँति मुष्ट युग में भी समाज की आचार-धिता वर्ण-व्यवस्था ही थी। इस बात में शन्देह की गुन्नाहक कम है कि वर्ण-व्यवस्था के विन नियमों की रचना पूर्ववर्ती यगों में की जा चुकी थी उनका परिपालन इस समय किया जाता था। जिस प्रकार कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में शाहजनों लभियों वीक्षों तथा शूद्रों के लिए विभिन्न वस्तियों का विधान किया है उसी प्रकार ब्रह्ममिहिर ने 'ब्रह्मसंहिता' में भी इन चारों वर्णों के लिए बलम-अलग वस्तियों की व्यवस्था की है। मुष्टकाल के स्मृति ग्रन्थ अन्तर्जालीय विवाहों और मीथन-दान के सम्बन्ध की अनुमति नहीं प्रदान करते हालाँकि उन्हें पैर कानूनी भी करार नहीं करते। इन प्रकार नैतिकतात्मक रूप में मुष्ट युग वर्ण नियमों की पटिकता का प्रारम्भ युव था परन्तु व्यावहारिक रूप में इस बात के समुचित प्रमाण मिलत है कि सामाजिक नियम अभी बहुत बढीर नहीं होने पाये थे। शाचार्य तीर पर विवाह अपने वर्ण में ही होते थे किन्तु अन्तर्वर्ण विवाहों का प्रचलन भी था। उच्च वर्ण के पुरुष अपने ने निम्न वर्ण की स्त्रियों के साथ विवाह कर लेते थे। इस प्रकार के विवाहों का स्मृति ग्रन्थों में अनुलोम विवाह की संज्ञा दी गई है। एक मुष्ट कालीन लेख से इस बात का पता चलता है कि एक शाहजान पुरुष ने सखि कन्या के साथ विवाह किया था।

प्रतिकूल विवाहों को जिनमें पत्नी उच्च वर्ण की होती थी और पति उससे निम्न-तर वर्ण का मात्रवत्स्य ने कानूनी भागा है। समाज में इस प्रकार के विवाहों का प्रचलन था। मुष्टकाल में भी विदेशियों की कन्याओं को पत्नी रूप में स्वीकार कर लेने की पटनाका के उल्लेख मिलते हैं। एग्रासायन इसलिए सम्मन हा सका कि विदेशी लोग हिन्दू समाज में मिलाए जा चुके थे और उनको सामाजिक संगठन में स्थान भी मिस चुका था यद्यपि वे अब भी 'व्रात्य' ही समझ जाते थे। इन्द्रबाहु राजाओं न कट्टर शाहजान होते हुए भी उज्जयिनी के गक राजकुल की कन्या से पवित्र-ग्रहण किया था। अनुस्मृति में एक स्थान पर कहा गया है कि 'स्वीरल' और मिस विद्या नहीं थे भी ग्रहण कर लेनी चाहिये।

विभिन्न वर्गों के बीच भोजन-पात्र का सम्बन्ध गुप्त काल में निम्न नहीं समझा जाता था। यह स्वाभाविक ही था कि जब अन्तर्जातीय विवाहों का समाज में प्रचलन था तो भोजन-पात्र के विषय में प्रतिस्पर्धा अधिक कठोर नहीं हो सकती थी। एहों को छोड़ कर प्रायः अन्य वर्गों के लोग परस्पर एक दूसरे से ज्ञान-पात्र का सम्बन्ध रखते थे। परन्तु मातृवस्त्व ने कृपक नाई और अहीर के साथ भोजन करने की आज्ञा दे दी है यद्यपि समाज में ये लोग शूद्र समझे जाते थे।

अपने वर्ग के ही अनुसार व्यवसाय ग्रहण गुप्त काल में नियम के रूप में नहीं था। वस्तुतः आर्थिक काल से लेकर आज तक कभी भी यह बात पूर्ण रूप से नहीं पाई गई। लोग अपनी-अपनी सुविधाओं के अनुसार अपने वर्ग के प्रतिष्ठित भी व्यवसाय चुनते रहे हैं और आज भी ब्राह्मण बौद्धों ब्राह्मण व्यापारियों तथा वैश्य व्यापारियों का अभाव नहीं है। गुप्त-काल में भी अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि लोग अपने वर्ग के अनुकूल व्यवसाय अपनाते के नियम का पालन नहीं करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त-युग में शूद्रों की अवस्था पहले की अपेक्षा कुछ उत्थापनक थी। शूद्रों के विषय में इस काल के स्मृतिकारों का दृष्टिकोण काफी उत्तरा प्रतीत होता है। मातृवस्त्व ने शूद्रों को व्यापारी कृपक और कारीगर होने की अनुमति दी है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि शूद्रों ने इस सुभवसर से अवसर लाभ उठाया। कुछ शूद्रों ने राज्य वृत्ति को भी अपनाया था और कुछ तो सेना के पदाधिकारी भी हावर्ग थे। शूद्रों का राजा होने का प्रमाण भी मिलता है। जैनगान ने लिखा है कि मतिपुर का राजा शूद्र जाति का था।

गुप्तकालीन समाज में दास प्रथा विद्यमान थी और इस सम्बन्ध में इस काल के स्मृतिग्रन्थों में जो नियम मिले हैं वे इस प्रथा को कुछ विकसित रूप में प्रदर्शित करते हैं। मारव स्मृति में दास-प्रथा के सम्बन्ध में काफी सूक्ष्म विवेचन मिलता है। यज्ञ बलिषों को दास बनाने की प्रथा प्राचीन मातृव पकड़ी है और गुप्त काल में भी इसका प्रचलन था। जो श्रमकर्ता अपना श्रम बचा नहीं कर पाते थे उनका भी अपने श्रमदाता की दासता स्वीकार कर लेनी पड़ती थी। हारे बुझाटी को भी दास बन जाना पड़ता था। मारतवर्ष में दासता सम्भवतः कभी भी बारीबन नहीं होती थी। श्रमकर्ताओं बुझारियों और यज्ञबलिषों को अपनी दाम्पत्य से मुक्त होने का अधिकार प्राप्त था। यद्यपि दासों के साथ व्यवहार उनके स्वामियों के स्वभाव पर निर्भर करता था तथापि इस बात में कोई सन्देह नहीं कि भारत में यूनान तथा रोम की भाँति दासों के प्रति कठोर व्यवहार नहीं किया जाता था।

पारिवारिक जीवन—सम्मिश्र कुटुम्ब के ऊपर गुप्त काल का हिन्दू-समाज आधारित था। इस काल के स्मृति-ग्रन्थों में सम्मिश्र कुटुम्ब की प्रथा की प्रचलनीय बतलाया गया है और पिता के जीवन-काल में परिवार के विभाजन की निन्दा की गई है। गुप्तकालीन अभिलेखों से भी सम्मिश्र कुटुम्ब के अस्तित्व का परिचय प्राप्त होता है। एक केस से हमें पता चलता है कि श्रमकर्ता अपने अपनी माँ पत्नी एक पुत्र एक पुत्री को भतीजों और बहिनियों के आध्यात्मिक कल्याण के लिए दान करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पिता की मृत्यु के बाद भाई-भाई पूरे परिवार के साथ हो रहा करते थे।

नारियों की स्थिति—गुप्त कालीन समाज में नारियों की स्थिति पिछले युगों की अपेक्षा कुछ पिछी हुई प्रतीत होती है। विवाह की अवस्था बटा दिये जाने

से उनके लिए सामान्यतया उच्च शिक्षा का द्वार अवकट ही गया था और विवाह के सम्बन्ध में भी उनको किसी प्रकार प्रतिबन्ध की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। कुछ स्मृति ग्रन्थों में पितामहों के लिए यह अनिवार्य ठहराया गया है कि वे अपनी कन्याओं का विवाह उनके जीवन के पूर्व ही कर दें।

मुष्ट कालीन समाज में विधवा-विवाह का प्रचलन किन्हीं सीमा तक था यह कह सकता कुछ कठिन अवश्य है। 'अभरकोप' से पता चलता है कि एक द्विज्या पुरुष पुनर्भू विवाहिता विधवा की अपनी प्रमुख पत्नी भी बना सकता था। चन्द्रयूज प्रतीय ने अपने अग्रज की विधवा पत्नी से विवाह किया था। नारद और पराशर ने विधवाओं के पुनः विवाह को नियमानुसृत बताया है किन्तु अन्य स्मृतियों ने विधवाओं के लिए ब्रह्मचर्य और आत्मसंयम के जीवन को आवश्यक कहा है। बृहस्पति ने तो यहाँ तक कहा है कि विधवा स्त्री को अपने पति के साथ उसकी चिता में बल बाँधा चाहिए। सती प्रथा का प्रचलन सम्भवतः समाज में था।

ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व की प्रथा गुप्त कालीन समाज में कुछ सीमा तक अवश्य विद्यमान थी। यद्यपि गुप्त काल की कलाकृतियों में नारी प्रतिमाओं के ऊपर किसी प्रकार का आचरण नहीं है तथापि अभिजात कुलों की स्त्रियाँ घरों से निकलने पर घूबट अथवा पर्दे का प्रयोग करती थी। परन्तु इस युग में पूर्व की प्रथा विशेष कठोर नहीं थी।

वस्त्राभूषण—गुप्त-काल के साहित्यिक ग्रन्थों और कलाकृतियों से इस समय के वस्त्राभूषण पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। पुरुषों का वस्त्र साधारणतया एक अर्धवस्त्र (चोटी) तथा उत्तरीय होता था।

स्त्रियों की पोशाक गुप्त काल में भी बहुत कुछ मात्र सीमी थी। साड़ी तथा पेटीकोट ही उस काल की नारियों के सामान्य वस्त्र थे। बहुत-कहों एक कम्बी साड़ी से ही दोनों वस्त्रों का काम चल जाता है। स्त्रियों की साड़ियाँ बहुधा रंगीन हुमा करती थी।

सूनी कपड़ का प्रचलन अधिक था किन्तु जूतु के अनुसार ऊनी और रेशमी कपड़े पहनता भी गुप्तकाल के भारतवासी जानते थे। काश्मीर के विवरण से तो ऐसा मान्य पड़ता है कि भारतवासी ऊनी तथा रेशमी कपड़ों का प्रयोग बहुतायत से किया करते थे।

गुप्तकालीन साहित्य-ग्रन्थों और कलाकृतियों द्वारा हम काल के स्त्री-पुरुषों की अलंकारप्रियता तथा विभिन्न प्रकार के आभूषणों का परिचय प्राप्त होता है। स्त्रियों के आभूषण विविध प्रकार के तथा नशों को जने लगने वाले होते थे। लहने तथा मातियों के हारों का सौन्दर्य अद्भुत होता था।

भोजन-शाल—गुप्त कालीन भारतीय समाज में शाकाहार तथा मांसाहार दोनों का ही प्रचलन था। ब्राह्मण तो निश्चय ही काफ़ी सीमा तक शाकाहारी हो गये थे और महिषासुर भी इन्होंने त्याग दिया था। शत्रियों में फिर भी मुरा-भक्षण का प्रचार बना रहा।

आमाश्रय प्रतीक और उत्तर—भारतवासियों का जीवन बड़ा आमाश्रय प्रदायक था। राजाओं के लिए मुख्यतः मनोरंजन का प्रमुख साधन था। साधारण जनता के लिए मन रंजन की पर्याप्त व्यवस्था थी। भोग तथा हावियों की परस्पर लड़ाई का उग समय काफ़ी प्रचार था और इन लड़ाइयों को देखने से लोगों का मन-विनोद होता था। हाँ यह अवश्य उल्लेखनीय बात है कि भारत में उस क्रूर और निर्धन

कार्य को मनोरंजन की दृष्टि से कभी नहीं देखा गया जिसका प्रचार रोम में था। वही एक भयंकर पशु को मरमत्त कर मकाड़े में छोड़ दिया जाता था और उससे मुँह करन के लिए उसी मकाड़े में किसी निहत्थे पुरुष को छोड़ा जाता था। जब पशु मनुष्य पर आघात करके उसका अंग-अंग करता था उसे छटुछुहान कर देता था दर्शक हर्ष-निन्दन करके ठाकियाँ बजाते। मारतर्पण में ऐसे आमुरी मनोरंजन की कभी कल्पना भी नहीं की गई।

‘मुष्कटिक’ से युतश्रीका का भी परिचय मिलता है। भारतीय इतिहास के पाठकों को मान्य होना कि जूवेर के समय में भी जूए का मनोरंजन के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में काफी प्रचार था। गुप्तकाल में भी जूए का प्रचलन था और कुछ मोक्ष इसके द्वारा निश्चय ही मनोरंजन करते थे।

नगर में अनेक नाटक-गृह और गान-मदन होते थे वहाँ लोगों का मनोरंजन होता था। मन्त्र के मुद्रित एवं चिह्नित जनों का मनोरंजन नृत्य साधन आदि तथा नाटकों द्वारा ही होता था।

सामाजिक उत्सव इस काल में आमाप प्रभेद के सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन थे। इसका उल्लेख काह्नियान के यात्रा-विवरण में किया गया है।

आर्थिक जीवन

विशेष धृष्टों में इसमें गुप्त युग के नीतिक जीवन का जो विवरण दिया है वह हमें समझ हो सकता था जब कि इस की आर्थिक स्थिति मुद्द नहीं हो। हम काल में निस्सन्देह बिहारी प्रगति सम्मता और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी गई थी उतनी ही आर्थिक क्षेत्र में भी।

कृषि—गुप्तकालीन भारत की आर्थिक रचना कृषि पर अवलम्बित थी। देश में इस समय जमीनारी प्रथा नहीं थी। गुप्त काल के पूर्व ही लोगों ने कृषि की वैज्ञानिक पद्धति सीख ली थी और वे इस पद्धति के द्वारा विभिन्न प्रकार की फसलें पर्याप्त परिमाण में उत्पन्न करते थे। जल की विभिन्न फसलों के अतिरिक्त देश में मीठ-मीठ के फलों तथा घासों की भी उपज होती थी। कुछ स्वाम विधेयकर फसलों की उपज के लिए ही विस्मात थे। कई तरह के तिलहन की भी पैदावार होती थी।

उद्योग-व्यवसाय—गुप्त काल में भारतीय उद्योग-व्यवसायों की स्थिति बड़ी ही समृद्धिपूर्ण और समुपजनक थी। कुछ उद्योग-व्यवसायों में भारत के गुप्त कालीन कारीगरों ने जो निपुणता प्राप्त की वह आज के वैज्ञानिक युग के कारीगरों के लिए ईर्ष्या और स्तुति की वस्तु है। लौह की वस्तुओं के निर्माण का उद्योग हमी प्रकार का एक व्यवसाय है। पौष्ट-निर्माण कला में गुप्त कालीन कारीगर काफी कुशल थे और वे पत्थरों, गताई के युरोपीय जलपानों की अवेष्टा बड़े और मजबूत जलपान बनाते थे। दिल्ली के निकट था लौह-स्तम्भ आज भी अपनी उत्कृष्ट कारीगरी द्वारा लोगों को आश्चर्यान्वित कर देता है। लौह उद्योग और पौष्ट-निर्माण के अतिरिक्त अन्य उद्योग-व्यवसायों में भी गुप्तयुग के भारतीय कारीगर काफी निपुण थे।

गुप्त काल में वस्त्र व्यवसाय काफी विकसित रहा में था। इसके प्रमुख केन्द्र मुजराठ ब्यास दक्षिण और तामिक देश में अवस्थित थे।

गुप्तकाल में विभिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रयोग किया जाता था जिससे यह सात होता है कि मुखर्षकार का व्यवसाय समुद्र व्यवस्था में था। वास्तव में मुखर्षकार की कला इतनी विकसित थी कि इसके द्वारा विज्ञान की एक नई शाखा का जन्म

हुआ जिसका नाम 'रत्न पौसा' था। फाहियान के यात्रा-विवरण से पता चलता है कि इस काल में सोने चांदी और मणि की मूर्तियाँ भी बनाई जाती थीं। तब के बड़िया बर्तन तैयार करने का उद्योग भी प्रचलित था। भगवान बुद्ध की कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ मिली हैं जो पीतल और कंसि की बनी हुई हैं जिनसे पता चलता है कि इन बातुजों का भी सोव प्रयोग करते रहे होंगे। मोती के आभूषण बनाने के व्यवसाय की गुप्तकाल में बहुत अधिक उत्पत्ति हुई थी।

साहित्यिक और पुरातात्विक दोनों स्रोतों से पता चलता है कि गुप्त युग के भारतीय उद्योग-मन्त्रों में राज-वन्त-धिस्य को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस काल के राजवंत धिसियों की निपुणता प्रशंसनीय थी। वे विविध प्रकार की वस्तुएँ हाथी-बाँट से तैयार करते थे जिनका प्रयोग बनी-मानी लोग अपन घरों को सजाने में करते थे।

श्रेणियाँ—प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन में व्यापारियों और व्यवसायियों की श्रेणियों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। गुप्त कालो तथा महरों में कई स्थान पर व्यावसायिक श्रेणियों के अस्तित्व का पता चलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त युग में पटकार, तैलिक, मृत्तिकाट, धिस्यकार, बविक आदि व्यवसायियों की श्रेणियाँ विद्यमान थीं। ये श्रेणियाँ समाज में बड़ आदर और सम्मान की अधिकारिणी समझी जाती थीं। ये स्वतन्त्र संस्थाएँ होती थी और अपने ही नियमों तथा उपनियमों द्वारा संघाक्षित होती थीं। इनके नियमों और परम्पराओं का सम्मान राज्य द्वारा किए जाने का उल्लेख 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में मिलता है। श्रेणियों स्वस्वों में जो मुकदमे आपस में हुआ करने थे उनका फैसला श्रेणी की व्यवस्थापिका करती थी राज्य के सामाज्य नहीं। श्रेणियों के पास अपनी सम्पत्ति तथा अपना कोप होता था। कई-कई श्रेणियों के पास तो इतना अधिक धन होता था कि वे बटीबूट दान कर सकती अथवा मन्दिर का निर्माण करा सकती थीं।

व्यापार—कृषि और उद्योग-वन्त्रों की समृद्धि ने व्यापार की उत्पत्ति को अनिवार्य कर दिया। आन्तरिक व्यापार की अवस्था काफी सन्तोषजनक थी और देश के एक भाग से दूसरे भाग तक व्यापारी अपनी विभिन्न सामग्रियों के साथ बिना किसी टोक-टोक के आया-आया करते थे। विदेशी व्यापार भी समुपलब्ध रहा है। देश के नीचरी व्यापार की सुविधा के लिए राजमार्गों और जलमार्गों की समुचित व्यवस्था थी और दोनों ही मार्ग से व्यापारी अपने सामान पहुँचाते तथा वापस करते थे। इस समय मङ्गीय उद्योगिणी विविधा, पैठन प्रवास बनारस गया पाटलिपुत्र वैशाली ताप्ल सिन्धि कौशाम्बी मथुरा अङ्गिकल तथा ऐसावर व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। ये राज मार्गों द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए थे। गुप्तों के सुदृढ़ शासन-व्यवस्था के कारण राजमार्ग सर्वथा सुरक्षित थे। इस समय जल-मार्ग व्यापार की दृष्टि से अधिक सुविधाजनक तथा कम व्यवसाय्य था। गंगा, ब्रह्मपुत्र नर्मदा योरावती कृष्णा कावेरी नदियों द्वारा व्यापार किया जाता था। बड़ी-बड़ी नौकाएँ बनाई जाती थीं जिनके द्वारा व्यापार काफी सुविधापूर्ण हो गया था।

भारत का विदेशी व्यापार काफी विकसित अवस्था में था और देश की आर्थिक समृद्धि का महत्वपूर्ण कारण था। विदेशी व्यापार भी जल और स्वक दोनों मार्गों द्वारा किया जाता था। स्वक मार्ग द्वारा भारत पूर्व में तिब्बत तथा चीन और पश्चिम में ईरान और अरब से व्यापार करता था। सहस्रों यात्रियों के कारण भारत से विदेशों

द्वारा विदेशी व्यापार अधिक परिमाण में किया जाता था। पूर्व में साम्रज्य का बन्दरगाह बंधास का एक प्रमुख नगर था। भारत के पूर्वीय व्यापार का यह सबसे प्रमुख केंद्र था। चीन से आया जाया और सुमात्रा जाति देशों को भारतीय व्यापारी इसी बन्दरगाह द्वारा जाते थे। आग्नेय देश में घोषावती तथा कुम्भा नदियों के मुहाने पर अनेक बन्दरगाह थे जिनमें कदूर और मष्टाला अधिक प्रसिद्ध थे। इनका उल्लेख टासमो ने भी किया है। कावेरी पट्टनम और तोंगर्ई चोल देश के प्रमुख बन्दरगाह थे। पाण्ड्य देश के प्रसिद्ध बन्दरगाह कोरकई तथा सांति पुर थे और इसी प्रकार मासबार के समुद्री तट पर कोट्टयम और मुबारि प्रमुख बन्दरगाह थे। चीन और अन्य पूर्वीय देशों के साथ इन बन्दरगाहों के मार्ग से भारत ने व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर रखे थे। व्यापार के साथ-साथ इन स्थानों में भारतीय संस्कृति का भी प्रचार होता था।

गुप्त काल में पश्चिमी देशों के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध काफ़ी पुराना हो चुका था। कुषाण-संस्कृति का अध्ययन करते हुए हमने देखा है कि कुषाण काल में भारत को पश्चिमी देशों के साथ व्यापार करने से कितना अधिक लाभ होता था। गुप्त काल में यह व्यापार और अधिक सम्पन्न तथा वृद्धिगत हुआ। जिस समय से चन्द्रगुप्त द्वितीय विजयवर्धन ने कठियावाड़ के बन्दरगाहों पर अपना अधिकार कर लिया भारत के पश्चिमी व्यापार को प्रबल प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। प्राचीन ताम्रिच साहित्य में यवनों का उल्लेख किया गया है और इस साहित्य के अध्ययन द्वारा रोम और अन्य यवन देशों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध पर काफ़ी महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। कोस्मस (Cosmas) नामक यवन ने भी भारत और पश्चिमी देशों के व्यापार का उल्लेख किया है। इस केन्द्र ने लिखा है कि भारत को कुपि-सम्बन्धिनी उपभोगों में जोड़ुमोट, लींग और चन्दन की कफ़ड़ी भारत के पूर्वोत्तर से लंका पहुँचानी जाती थी और वहाँ से उनका निर्माण पाश्चात्य बन्दरगाहों को किया जाता था। उत्तर तथा इथियोपियन समुद्र तट तक वे वस्तुएँ पहुँचती थीं। पोल निर्भ का निर्माण विद्येप तीर पर किया जाता था। यह वस्तु मसाबार के पाँच बन्दरगाहों से विदेशों का भेजी जाती थी। मोती बहुमुख्य परमर, सुमन्वित पदार्थ काटे मसाले, नील जीव-हिमी नारियल और व्यापार निर्वात की प्रमुख सामग्रियाँ थीं। इन वस्तुओं के बदले में विदेशों से सोना तथा सोने के सिक्कों का आयात होता था। भारतवासी खजूर, चीड़, टिन, कपूर तथा मृगे विदेशों से मँगाते थे। चीन के रेशमी वस्त्र भी देश में काफ़ी लोकप्रिय थे।

धार्मिक अवस्था

गुप्त काल भारत के धार्मिक विकास के लिए भी विख्यात था। गुप्त सम्राटों की धार्मिक उदारता वस्तुतः प्रशंसनीय थी।

भारत के प्रचलित हिन्दू धर्म के स्वल्प का निर्माण गुप्त युग में ही हुआ। वैदिक इतिहासों की पूजा के स्थान पर विष्णु और शिव की उपासना का प्रचार समाज में बढ़ा। गुप्त युग के धार्मिक जीवन की यह एक प्रमुख विशेषता यह है कि इन समय धर्म की जनबासी परम्परा को जिसकी अभिव्यक्ति शैव और वैष्णव तथा महायान सम्प्रदायों के द्वारा हुई थी वड़ा प्रबल प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। कई पुराणों की रचना की गई जिनमें शैव और वैष्णव धर्मों का महत्व बतलाया गया और कथाओं के माध्यम से जनता को इन धर्मों से शिक्षान्तों से अवगत कराने का प्रयत्न किया गया।

वैदिक धर्म—यद्यपि गुप्त युग में लोक-धर्म के अधिक निकट वाले वैष्णव और शैव धर्मों का प्रचार अधिक था और बौद्ध तथा जैन धर्म भी अधिक ह्यायोग्युद्धी स्थिति में नहीं थे तथापि वैदिक धर्म समाज में एक सबल शक्ति के रूप में था। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य कुमारगुप्त प्रथम और स्कन्दगुप्त वैष्णव धर्मानुयायी थे किन्तु उन्होंने वैदिक धर्म का सक्रिय पोषण किया।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक वैदिक धर्म समाज में काफी लोकप्रिय था। बाद में भी साधारण जनता की भ्रष्टा इस धर्म के प्रति बनी रही।

गुप्त युग के लेखों से इस बात की सूचना काफी मिलती है कि उन्होंने ब्राह्मणों को प्रचुर रक्षितार्थ दी। यह एक उल्लेख्य तथ्य है कि ब्राह्मणों को दान देना वैदिक या ब्राह्मण धर्म का एक प्रमुख तत्त्व है।

अभिलेखों और मुद्राओं द्वारा उत्तरी और दक्षिणी भारत के गुप्तियों द्वारा वैदिक यज्ञ विधिष्ठतया अवधेय यज्ञ किये जाने के उल्लेख प्रचुरतया प्राप्त होते हैं।

वत्सव धर्म—वैदिक धर्म का प्रभाव साधारण जनता पर बहुत घमौर नहीं पड़ सका। भक्तिप्रधान स्मार्तधर्म की दिनोदिन बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण वैदिक यज्ञों का प्रचार उतना अधिक नहीं रह सका वीसा कि कुछ ही वर्षों पूर्व था। पाँचवीं शताब्दी से हम निश्चय ही वैदिक यज्ञों को ह्यायोग्युद्ध पाते हैं।

इस बात का हमने पहले ही उल्लेख किया है कि गुप्त नरेश वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। उनके समकालीन अन्य राजाओं के भी वैष्णव होने का प्रमाण मिलता है। चन्द्रगुप्त कुमारगुप्त प्रथम और स्कन्दगुप्त के सिक्कों पर उनको परम भागवत कहा गया है जिससे यह पता चलता है कि वे भगवान् बामुदेव के महान भक्त थे।

उपलब्ध प्रमाण के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि गुप्त युग में वैष्णव धर्म काफी लोकप्रिय होता जा रहा था। दक्षिण भारत में इसके प्रचार का ध्य आलवार सन्तों को है जिन्होंने तामिल भाषा में सरस और भावपूर्ण पदों की रचना करके लोगों का ध्यान वैष्णवमत की ओर आकृष्ट किया। इनके पद इतने सरस हैं कि साधारण जन भी इन्हें समझ सकते हैं। उत्तर भारत में वैष्णव मत के प्रचार का कारण पुराणों का प्रचलन था जिनमें स्थान-स्थान पर विष्णु की महिमा गाई गई है।

गुप्त युग में भगवान् विष्णु के अनेक अवतारों की कल्पना की गई जिनमें बाराह कृष्ण बामन मत्स्य कूर्म और राम के अवतार प्रमुख थे। इन समस्त अवतारों में बाराह और कृष्ण वे अवतार सबसे अधिक लोकप्रिय थे। तामिल साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि दक्षिण में भी कृष्ण की लोकप्रियता सब अवतारों से अधिक थी।

शैव धर्म—गुप्त काल में शैव धर्म का भी काफी प्रचार था। यद्यपि गुप्त सम्राट् स्वयं परम भागवन् थे तथापि उन्होंने शिव पूजा के प्रचार में कोई बाधा उपस्थित नहीं की। उनके मन्त्री सेनानायक और उच्च पदाधिकारी शैव थे। यदि गुप्त पत्तन और गुप्त नरेश अधिकांशतया वैष्णव थे तो मारसिध नाकाटक नल वैष्णव करम्भ और नरिदाजक बंसों के नरेश शैव धर्म को मानने थे।

अपने या अपने पूर्वजों की स्मृति को निरस्पायी रखने के लिए किसी विनमर का निर्माण कराना गुप्त राज की एक सामान्यतया प्रचलित प्रथा थी। पृथ्वीदेव और विष्णुधर्मन ज जो गुप्त तथा पत्तन के सेनाधिकारी थे अपने नामों की स्मृति बनाए रखने के लिए मन्दिरों की स्थापना कराई थी।

अन्य देवताओं की पूजा—गुप्त युग में विष्णु और शिव के साथ-साथ अन्य देवताओं की भी पूजा की जाती थी। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश देवताओं की विमूर्ति में विष्णु और महेश (शिव) की पूजा के विषय में हम पढ़ चुके हैं। यहाँ ब्रह्मा के विषय में भी हमें कुछ जान लेना चाहिए। पौराणिक काल का विकास होने पर कई वैदिक देवताओं का स्थान नीच हो गया और नए देवताओं की प्रतिष्ठा बढ़ गई। जिन देवताओं को गौण स्थान मिला उनमें से ब्रह्मा भी थे। विमूर्ति में उनको स्थान अब भी प्राप्त था किन्तु उनका स्थान शिव और विष्णु के समकक्ष न रह गया। फिर भी ब्रह्मा के उपासक समाज में विद्यमान थे। पद्यपुराण में ब्रह्मा का महत्व पुनः प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया गया है।

आजकल भी यद्यपि लोग सूर्य की पूजा कर लेते हैं तथापि देवता के रूप में सूर्योपसना उतनी प्रचलित नहीं है जैसा कि गुप्त युग में था। वर्तमान युग में हमें कभी सूर्य के मन्दिर नहीं दृष्टिगत होते किन्तु गुप्त काल में कई सूर्य-मन्दिरों के उल्लेख हमें प्राप्त होते हैं।

गुप्त काल में शक्ति (देवी) की पूजा का भी प्रचलन था। यही स्वानामात्र के कारण शक्ति-पूजा या शाक्त धर्म के उद्भव पर विचार नहीं किया जा सकता परन्तु एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कालान्तर में शक्ति और शिव की पूजा का एक दूसरे के साथ सम्मिश्र होना प्रारम्भ हो गया। शिव और शक्ति की पूजा उनके कदवा, मम और ब्रह्मकर, दोनों प्रकार के रूपों में की जाती थी। सम्भवतः इस तत्त्व में दोनों शक्तियों को एक दूसरे के निकट आने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की। देवी के विभिन्न रूपों में उमा गौरी पार्वती भवानी अन्नपूर्णा ललिता हस्तादि कदवापाल रूप में और चामुण्डा दुर्गा कालरात्रि कालाहिनी और भैरवी के रूप में ब्रह्मकर थे।

हिन्दू धर्म का विदेशों में प्रचार—हम यह देख चुके हैं कि पूर्ववर्ती युगों में हिन्दी धर्म को किस प्रकार विदेशियों ने ग्रहण कर लिया था। गुप्त युग में भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रचार होने पर हिन्दू धर्म भी वहाँ फैल गया। जावा सुमात्रा और चीनियों में हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा का काफी प्रचार था और हिन्दुओं की धार्मिक विचार-धाराओं को वहाँ के निवासियों ने ग्रहण किया। चौथी शताब्दी तक मेगालोटीनीया और सीरिया में हिन्दू-मन्दिरों का अस्तित्व बना रहा। यह सम्भव है कि हिन्दू धर्म ने ईसाई धर्म पर कुछ प्रभाव डाला था।

बौद्ध-धर्म—गुप्त युग का बौद्ध धर्म अपने अधिकतम रूप में महायान था। इसके उद्भव और विकास के विषय में हम पीछे पढ़ चुके हैं। परन्तु हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि महायान बौद्ध धर्म की प्रधानता ने हिनयान को विस्तृत हा हासो-स्पर्श कर दिया। यद्यपि लोकव्यक्ति के अधिक निकट हान के कारण महायान धर्म अधिक लोकप्रिय हो गया था तथापि गुप्त काल में हिनयान भी काफी फल-फूल रहा था। परन्तु समष्टि रूप में विवेचन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय लोक में अल्प प्रमाण स्मार्त-धर्मों का जितना अधिक प्रचार था उतना बौद्ध और जैन धर्मों का नहीं।

अहिंसान पंचमों गतावदी में भारत में आया था और उसने देश में बौद्ध धर्म की व्यवस्था के विषय में लिखा है। उसने अपना यात्रा मध्य-एशिया के देशों से प्रारम्भ की थी जहाँ पर उसने बौद्ध धर्म को कसते फूँटते हुए पाया। मार्ग में उसने मनुष्य में अनेक बौद्ध विष्णुओं और बौद्ध संतों को देखा और अधिकतम स्थानों में उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि सृष्टिगत अधिकतर इस धर्म के प्रति भीहार्थ का दृष्टिकोण रखते

न और मित्रों का उचित सम्मान करते थे। कुछ राजाओं ने संघों को भूमि दान में दे रखी थी जिससे विहारों का व्यय अच्छी तरह से चल सके।

महावि भीषोदिक दृष्टि से हीनयान और महायान मतों के केन्द्र भिन्न-भिन्न स्थानों में थे तथापि इन दोनों मतों के सभी सम्प्रदाय एक दूसरे से पूरक नहीं रहते थे। बहुत से स्थानों में विशेषकर मगध में वे लोग साव-साव रहते थे। भाग्यसा विरामसिन्हा और पाटलिपुत्र के सिन्हा-केन्द्रों में महायान और हीनयान मतों के मानने वाले मिलजुलकर रहते थे।

चैन धर्म—चैन धर्म में इतिहास की दृष्टि से मुक्त युग का काफी महत्त्व है। इस समय चैन मत के अन्तर्गत कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुईं। बसन्ती की प्रतिष्ठ चैन संगीति मुक्त काल में ही हुई थी। इस समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त सिद्धान्तों को संशुद्ध किया गया। इसके बाद चैन विद्वानों ने अपने धर्मों पर टीकाओं एवं भाष्यों की रचनाएँ कीं। महाबाहु द्वितीय ने महत्त्वपूर्ण चैन धर्मों पर नियुक्तिवा (टीकाएँ) लिखीं। चैनियों ने भी संस्कृत को अपना लिया। अनेकक तथा सिद्ध विद्याकर नाम के दो विद्वानों ने भी कई दार्शनिक धर्मों का प्रचयन किया।

तीसरी सताब्दी के अन्त तक चैन धर्म भारतवर्ष में अच्छी तरह से जम गया। मगध से चलकर दक्षिण-पूर्व में कलिंग तक मगध और मात्स्य तक पश्चिम में और दक्षिण में ताम्रिल नाड तक चैन धर्म फैल गया। परन्तु इस समय चैन धर्म का केन्द्र मगध में न रह गया। पश्चिमी और दक्षिणी भारत में इसका प्रचार अधिक हुआ। उत्तरी भारत में चैन धर्म को कोई व्यापक प्राप्ति नहीं हो सका किन्तु दक्षिण में कई राजवंशों ने इसका पोषण किया अतएव वहाँ इसका प्रधान केन्द्र बन गया। फाहिमान ने चैन धर्म का कोई उल्लेख नहीं किया है जिससे यह प्रतीत होता है कि चैन धर्म उसके समय में समूह अवस्था में नहीं था। फिर भी व्यापारियों और मध्यवर्ग के लोगों में इस धर्म का पर्याप्त प्रचार था। मगध और बसन्ती श्वेताम्बर चैन धर्म के प्रबल केंद्र थे। उत्तरी बंगाल में पुष्करवर्धन विष्णुचर चैन मत का केन्द्र था। दक्षिण भारत में कर्नाटक और मैसूर में विष्णुचर चैन मत के एक थे। कदम्ब और बंग राजाओं ने इसे राजाधाय प्रदान किया था। किन्तु बाद में चैन धर्म को चैन धर्म के रूप में एक प्रबल प्रतिद्वन्द्वी मिल गया जिससे दक्षिण में भी चैन धर्म का प्रचार बहुत कम हुआ। यमा किन्तु यह विस्तृत गण्ट नहीं हो सका और आज भी ताम्रिल देश मुजरात तथा मात्स्य में चैनियों की संख्या काफी है।

मुक्त युग में साहित्य की समृद्धि

मुक्त युग की साहित्यिक समृद्धि की तुलना एबेन्स के इतिहास के पैरीक्लीयन युग और अंग्रेजी साहित्य के इतिहास के एलीजाबीथन युग से की जाती है। चीनी इतिहास के स्वर्ण युग तब काल की भाँति मुक्त युग में कविता का विकास अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गया। कुछ इतिहासकारों ने मुक्त काल की साहित्यिक समृद्धि को ध्यान में रखते हुए इसकी तुलना चीन साहित्य के जानस्टन युग से की है।

विशुद्ध साहित्य—मुक्त काल में विशुद्ध साहित्य अर्थात् महाकाव्य, पण्डकाव्य नाटक आख्यायिका आदि की अमृतपूर्व उत्पत्ति हुई। मुक्त कालीन साहित्यिक महारथियाँ म कविमुक्त युग काशिदास का नाम अग्रगण्य है। कुमार सम्भव और रघुवंशम् महाकाव्य के दो महाकाव्य हैं। विजयतम् और अनुसुहृद उनके दो लघु नाटक हैं। विनयावलीम्, मातङ्गिनीमित्रम् और अमिताभ-यादुनाम जलकटीन नाटक हैं।

सूत्रक गुप्त-युग के दूसरे साहित्यकार थे। इनका सुविख्यात नाटक 'मुञ्च-कटिकम्' संस्कृत साहित्य का एक अनोखा और एक ऐसा अकेला नाटक है जो समाज के दबावकारी दैनिक जीवन के बिचल से संप्राप्त है। 'मुद्राराक्षस' के प्रयोजित विद्रोह वक्त भी गुप्त काल में ही हुए थे। विद्यासायन ने 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नाटक का भी प्रथमन किया था किन्तु अपने मूलरूप में यह सम्पूर्ण नाटक उपलब्ध नहीं है। मुख्यतः इस बात के प्रसिद्ध गद्य से ज्ञात कि जिसकी 'वासवदत्ता' ने बाल के छात्रों में कवियों के गर्व को बुर कर दिया। 'किरातर्जुनीयम्' के रचयिता भारवि का समय कुछ विद्वान् छोटी घटावों का अन्त बतवाते हैं। बर्द्ध का काल भी सम्भवतः यही है। इनका महाकाव्य 'राजवर्ष' एक विचित्र काव्य है जिसके प्रत्येक पद्य के द्वारा संस्कृत ध्याकरण के किसी न किसी तियम का विरलेय्य किया गया है और साथ ही साथ राम के जीवन की घटनाओं का वर्णन भी किया गया है। कुछ विद्वानों का विचार है कि मजुहिर भी इसी समय हुए थे। उनके तीन ग्रन्थ 'नीतिशतक' 'धनशतक' और 'वैराग्यशतक' अपनी दृष्टि से अनुकूल एवं काफी महत्त्वपूर्ण हैं। कश्यप की 'राजतरंगिणी' में मनु श्रेष्ठ नामक कवि का उल्लेख किया गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त गुप्त युग में ही संभवतः 'राजवर्ष' और 'महामारत' के अन्तिम संस्करण तैयार किए गए।

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पञ्चतन्त्र' की रचना भी गुप्त काल में हुई। भारत का विरल सभ्यता की प्रमुख देवी में से विद्वान् 'पञ्चतन्त्र' को भी एक मानते हैं। इस पुस्तक में कथानों के माध्यम द्वारा नैतिक शिक्षा और सांसारिक जीवन के अनुभव प्रदान करने का सफ़ल प्रयास किया गया है। संसार की समस्त प्रत्येक भाषा में 'पञ्चतन्त्र' का अनुबाध किया गया है।

वार्तिक साहित्य—गुप्त युग की साहित्यिक क्रियाशीलता वार्तिक साहित्य के भूजन एवं संवर्द्धन में भी दिखलाई पड़ी। वार्तिक साहित्य में सबसे अधिक महत्त्व ने पुराण है। पुराणों की रचना का काम गुप्त युग के काफी पहले ईसा की प्रथम घटावों के कई ही वर्षों पूर्व प्रारम्भ हो चुका था किन्तु आज के जित रूप में प्राप्त है वह कम अधिकतर गुप्त-काल में ही दिया गया। वैदिक मन्त्रांशों एवं भक्तिवादी वार्तिक आन्दोलन के समन्वय का मध्यम प्रयास पुराणों में ही किया गया है और इस बात के लिए प्रमाण है कि यह प्रयास गुप्त काल में ही किया गया।

'मनुस्मृति' के आधार पर गुप्त-युग में स्मृतियाँ भी लिखी गईं। याज्ञवल्क्य शारद कात्यायन और बृहस्पति ने अपने स्मृति ग्रन्थों का प्रथम गुप्त काल में ही किया। कात्यायन का स्मृति ग्रन्थ अपन मूल रूप में उपलब्ध नहीं है किन्तु हमने जवाहरलाल अम्ब ग्रन्थों में मिलते हैं।

अर्थशास्त्र के आधार पर गुप्त-युग में कबल 'कामन्दकीय नीति शार' की ही रचना की गई। 'नीतिशार' के रचयिता कामन्दक ने कौटिल्य के सिद्धान्तों और शिक्षाओं को ही अपने ग्रन्थ का आधार बनाया है।

दार्शनिक साहित्य—गुप्त युग में प्रचुर दार्शनिक साहित्य का भी भूजन हुआ। हिन्दुओं, बौद्धों और जैमिनों सभी धर्म वालों ने अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की। सांख्य दर्शन पर सबसे पहला टीका लिखने वाले ईश्वर कृष्ण थे जिन्होंने 'सांख्यकारिका' नामक ग्रन्थ लिखा।

जैमिनि के 'मीमांसा सूत्रों' की रचना गुप्तकाल के पूर्व हो चुकी थी किन्तु उन पर प्रामाणिक टीका सांख्य भाष्य का प्रथमन ईसा की चौथी घटावों के मारम्भ में हुआ।

उद्योतकर नामक विद्वान् ने सातवीं शताब्दी में वात्स्यायन के मतों की पुं करते हुए विनयाय के विचारों को काटा है। 'परार्थबर्तनं सर्वत्र' का प्रथम कर प्रद्यस्तपाह ने कर्माह के वैधेयिक दर्शन को बहुत आगे बढ़ाया। प्रद्यस्तपाह का एक टीका मात्र नहीं है बल्कि इसकी विषय प्रतिपादन की रीति इतनी सुन्दर है कि मौलिक ग्रन्थ की उपार्यता का यह निरूपण ही बड़ा होता है। अन्त नामक विद्वान् ने 'वत्सपराश' शास्त्र' किताब जिसका अब भीनी संस्करण हो प्राप्त है। अन्त नामक विद्वान् बौद्ध और जैन धर्मों में भी प्रचुर धार्मिक साहित्य का सूचन हुआ। मुक्त युग में बौद्ध धर्म की दो-दो उपशाखाएँ हो गई हैं। हीनयान की दो शाखाएँ थी—

(१) भरवाह (स्वविरवाह) और वैपायिक (सर्वास्तिवाह)। महाभारत सम्प्रदाय भी दो उपशाखाओं में विभक्त था—(१) भाष्यमयिक तथा (२) नौपाचार। जैन धर्मशास्त्र के सबसे प्रधान आचार्य थे। इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ य हैं—

(१) 'महामान सम्प्रदाय' (२) 'प्रकरण आर्यवाचा' (३) 'महामानानिबर्तनं सर्व' (४) 'वत्सपराश' (५) 'नौपाचार भूमिशास्त्र'। समुद्रगुप्त भी प्रसिद्ध हैं। अजितदर्शन' इनकी सर्वप्रसिद्ध कृति है जिसका प्रचलन उन्होंने वैनायिका सम्प्रदाय के विद्वानों का विवेचन करने के लिए किया था। बौद्धों के धार्मिक साहित्य का सबसे विस्मय ग्रन्थ है। श्याम प्रवेश इनका दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। धर्मपात्र नामक काव्यी निवासी विद्वान् ने नौपाचार सम्प्रदाय का विकास करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बुद्धबोध का बौद्ध धार्मिकों में बड़ा गौरवपूर्ण स्थान है। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। 'विमुक्तिमय्य' नामक ग्रन्थ में बौद्ध धर्माभि और प्रमा के रूप पर बुद्धबोध ने बड़ा विचार विवेचन किया है। समस्तपाश्चादिका' नामक ग्रन्थ 'विनयविट्क' के समस्त ग्रन्थों की टीका है। इस ग्रन्थ से उत्कामीन मौलिक और ऐतिहासिक बातों का भी पता चलता है। 'सुमयक विनायिनी बुद्धबोध की एक सुविस्मय रचना है जिनमें 'बौद्धनिकाय' की व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। कविपय मुक्त युग की इस बात का गौरव प्राप्त है कि इसी युग में जैन धर्मों की विविधता किताबें बना और जैन दर्शन के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रथम भी मुक्त युग का ही हुआ। आचार्य सिद्धमेन मुक्त युग के प्रसिद्ध जैन आचार्य थे। इन्होंने विनयाय की भाँति श्याम दर्शन पर ग्रन्थ लिखे। 'व्यापाकतार' जैन श्याम का सबसे प्रामाणिक और प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। उन्होंने 'उत्तमानुसारिणी उत्पार्थ टीका' नामक मौलिक ग्रन्थ की रचना की। सिद्धमेन विवाकर कवि भी थे। इनके स्तोत्र भक्ति और धर्म के माधो से भौत-भौत है।

अन्त साहित्यिक शब्द—मुक्त युग में प्रसिद्ध कोषकार अमरसिंह हुए जिन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अमरकोष' का प्रथम किया। यह संस्कृत का सबसे प्रसिद्ध कोष है। काश्य बाघमीर निवासी बौद्ध विद्वान् ने एक व्याकरण ग्रन्थ लिखा जिसमें व्याकरण कि पूर्ण पद्धति का विकास किया गया था जो ब्राह्मण ग्रन्थों से भिन्न थी। काश्य का व्याकरण काव्यीर, सिद्धमेन नामक और लंका में बड़ा प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय था। मल्लिनाथ नामक प्रसिद्ध टीकाकार ने 'मेषवृत्त' की अपनी टीका में काश्य द्वारा बलाई गई व्याकरण-पद्धति का उल्लेख किया है। अन्य व्याकरण-ग्रन्थों की रचना भी मुक्त-युग में हुई। परन्तु इनमें से अधिकतर टीकाएँ थी। कहा जाता है कि 'मेषवृत्त' ने पतञ्जलि

के महाकाव्य पर अपनी टीका किसी परन्तु यह टीका उपलब्ध नहीं हुई है। जिनैन्द्रबुद्धि ने 'काशिका' पर अपनी 'न्यास' नामक टीका लिखी। माघ ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिवपाल बच' में 'न्यास' का उल्लेख किया है।

तामिल साहित्य—गुप्त काल का तामिल साहित्य प्रमुखतया नायिक है।

सर्व नायकमारों और बैन्धव आत्मचारों ने तामिल भाषा में भक्ति विषयक सरस एवम् की रचना की। वे मीठ-सादे भक्तों के और अपने उपास्य देवों के प्रति इन्होंने भक्ति तरंग में जो गीत गाये वे ही पदों के रूप में हो गये। नायकमारों और आत्मचारों के पद्यों में यह भाव प्रचुरता से व्यक्त किया गया है कि सर्वप्रथमतः और भक्तवत्सलप्रभु तर्कमयी बुद्धि प्राप्त नहीं अपितु भक्तिरस सने तथा तड़पते हुए हृदय द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

विज्ञान

गुप्त काल में विज्ञान की भी अधिक उन्नति हुई। ज्योतिष और गणित के क्षेत्र में गुप्त कालीन विज्ञान की महत्त्वपूर्ण देन है। यद्यपि पद्धति का जो विश्व सम्प्रदाय को भारत के अनेक उपहारों में से एक प्रमुख उपहार है, विकास गुप्त काल में ही हुआ। भारत में चिकित्सा पद्धति का गुप्त काल के पूर्व ही काफी विकास हो चुका था। गुप्त काल में विकसित चिकित्सा-विज्ञान का सरलण और संवर्धन किया गया परन्तु दुर्भाग्यवश इस युग के चिकित्सा-विज्ञान सम्बन्ध ग्रन्थ नहीं बच उपलब्ध नहीं।

ज्योतिष—आर्यभट्ट गुप्त-काल के सुप्रसिद्ध थे। आर्य ने पृथ्वी की परिधि की अनुमानित जो माप की, भी आज तक बड़ा प्रायः सही माना जाती है। पृथ्वी गोल है तथा अपनी धुरी पर घूमती है आदि बातों के प्रतिपादन करण का श्रेय आर्यभट्ट को ही प्राप्त है। जलज और जगोत्त विद्याओं के सम्बन्ध में इनकी मान्यताएँ काफी सीमा तक निर्धारित मानी जाती हैं। इन्होंने सूर्य और चन्द्रग्रहण के विषय में पौराणिक चारवा का बड़ा साहस के साथ जखन करते हुए प्रतिपादित किया कि ग्रहण में राहु का कोई स्थान नहीं है। वह चन्द्रमा तथा पृथ्वी को छाया का कस है। बराहमिहिर गुप्त-काल के सबसे प्रसिद्ध ज्योतिषज्ञ थे। उन्होंने पाँच पुस्तकें लिखी— (१) 'लघुभाष्य' (२) 'बृहद्भाष्य' (३) 'ब्रिहद्-सूत्र' (४) 'योगशास्त्र' (५) 'बृहद्-संहिता' और (६) 'पञ्चमिहिरात्मिका'। अन्तिम ग्रन्थ में इन्होंने रोमक बसिष्ठ आदि विद्वानों की विवेचना की है। बराहमिहिर ने ज्योतिष विद्या में यूनानियों के ज्ञान को स्वीकार किया है।

ब्रह्मगुप्त भी गुप्त काल के एक प्रसिद्ध ज्योतिषज्ञ थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'ब्रह्म सिद्धान्त' की रचना एक संवत् ५५० अर्थात् सन् ५२८ ई० में की।

गणित—गुप्त कालीन भारत में गणित की भी उन्नति हुई। इस समय ज्योतिष और गणित एक दूसरे के साथ काफी घनिष्ठ रूप में मिले हुए थे। इस काल के ज्योतिषज्ञ ही इस काल के प्रमुख गणितज्ञ थे। आर्यभट्ट ऐसे प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने गणित को एक पुष्पक विज्ञान माना। उनकी सबसे प्रचलित देन है। अश्विनीय सख्या पद्धति। संसार के किसी भी प्राचीन देश को यद्यप्य-पद्धति का ज्ञान नहीं था किन्तु आज सारे संसार में यह प्रचलित है।

आयुर्वेद तथा रसायन शास्त्र—इस क्षेत्र में भी गुप्त-युगीन भारत ने महारथ पूरा प्रगति की। नागार्जुन नामक प्रसिद्ध विद्वान् ने 'रसचिन्ता' नामक अतीत

चिकित्सा-यज्ञति का आविष्कार किया जिसने चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण क्रांति सम्पन्न कर दी। नागार्जुन ने यह सिद्ध किया कि सोना चाँदी लोहा तथा आदि खनिज धातुओं में भी रोग निवारण की शक्ति विद्यमान है। 'पारब' का भी आविष्कार नागार्जुन ने किया। चिकित्सा-क्षेत्र के भी अनेक इन्वेंटों का प्रयोजन गुप्त-काल में किया गया।

कलाओं की उत्पत्ति

गुप्त काल की कलात्मक प्रगति का अध्ययन हम इन धीर्पुरुषों के अन्तर्गत करने (१) वास्तु कला (२) स्थापत्य-कला अथवा तख्त कला (३) चित्रकला और (४) संगीत-कला।

वास्तु-कला—गुप्तकाल के पूर्वकर्त्ता युगों में स्तूप, चैत्य, स्तूपबुद्ध और विहार बनवाये जाते थे। गुप्त-काल में न केवल इनका निर्माण-कार्य जारी ही रहा बल्कि इनका चरम विकास भी हुआ। बौद्धों और जैनियों की शक्ति बाह्यजनों ने भी पर्वतों में गुफाओं को खुदवाया और उनमें स्तूपों के निवास की व्यवस्था की। सम्राट् समुद्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में प्वाम्पिर राज्य में मिथिला के निकट उत्पतिर में गुफा खुदवाई गई थी। गुफाओं में सुन्दर चित्र कभी-कभी बना दिये जाते थे। वाग और अजन्ता की चमत्कृतियाँ चित्रकारी गुफाओं में ही खींची गई हैं।

गुप्त काल में अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया गया। इस समय के बने हुए प्रमुख मन्दिरों में निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं—

- (१) जबरपुर जिले के ठिगवा नामक स्थान में विष्णु मन्दिर,
- (२) नागीर राज्य में भुमकर का शिव मन्दिर,
- (३) आनमपड़ राज्य के मचना कुचर में पार्वती का मन्दिर,
- (४) बोधगया के बौद्ध मन्दिर,
- (५) वैशम्पट्ट का ब्रह्मावतार मन्दिर,
- (६) आसाम के बरंग जिले में ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर बड़ परबतिया नामक स्थान में एक मन्दिर बना है जो काफी जीर्ण तथा में है परन्तु कला की दृष्टि से बड़ मन्दिर काफी उत्कृष्ट है तथा

(७) नागीर राज्य के खोइ नामक स्थान में एक शिव मन्दिर भी बना है। इन उपर्युक्त मन्दिरों के अतिरिक्त केवल ईंटों द्वारा निर्मित मन्दिर भी थे। मिटारगाँव का मन्दिर और पहाड़पुर तथा भव्य प्रान्त के छरपुर के मन्दिर ईंटों द्वारा ही बनाये गये हैं।

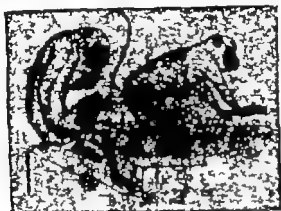
मूर्ति-कला—जैसा की हम पीछे कह आये हैं गुप्त कालीन मूर्तिकला पराकाष्ठा पर पहुँची हुई कला है। पुरा सप्रहास्य में सुरक्षित एक सजीवाकृत बुद्ध प्रतिमा गुप्त काल की अमूर्त शिल्प कालमयी मूर्तिकला का एक भव्य नमूना प्रस्तुत करती है। चारनाथ की बड़ प्रतिमा जिसमें समबाह तथा ग. बैठे हुए उपदेश देने की मुद्रा में प्रथम किए गये हैं मारन के मूर्तिकला के अष्टतम नमूने में से एक है।

गुप्त काल—जैसा की हम पीछे कह आये हैं गुप्त कालीन मूर्तिकला पराकाष्ठा पर पहुँची हुई कला है।

पुरा सप्रहास्य में सुरक्षित एक सजीवाकृत बुद्ध प्रतिमा गुप्त काल की अमूर्त शिल्प कालमयी मूर्तिकला का एक भव्य नमूना प्रस्तुत करती है। चारनाथ की बड़ प्रतिमा जिसमें समबाह तथा ग. बैठे हुए उपदेश देने की मुद्रा में प्रथम किए गये हैं मारन के मूर्तिकला के अष्टतम नमूने में से एक है।

गुप्त काल में बौद्ध कलाकारों ने तथागत की प्रतिमाएँ बनाईं तो हिन्दू कलाकार भी अपने इष्टदेवों की मूर्तियों के निर्माण में उत्तम पीछे न रहे। वैष्णव और शिव धर्मों के प्रचार से शिव तथा विष्णु की अनेक मूर्तियाँ का निर्माण हुआ। कोहली शिव सिंह प्रतिमा हम काल की हिन्दू-कला का एक सुन्दर नमूना प्रस्तुत करती है। इस युग

के हिन्दू कलाकारों ने संकर के अर्धनारीश्वर रूप की प्रतिमा का निर्माण बड़े ही कौशल से किया। मथुरा से प्राप्त विष्णु की प्रतिमा में भी, सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा की मूर्ति एक स्वर्णीय समुद्रचित्र तथा मम्मरीर आध्यात्मिक ध्यान-मूहा के वर्णन होते हैं। जयमिरि की विद्याभरद्वाज-मूर्ति गुप्त-कालीन कलाकारक की प्रतिमा का एक सुन्दरतम नमूना प्रस्तुत



चित्र १२—अजन्ता की चित्रकारी

करती है। सूर्य दुर्गा स्वायिकार्षिकेय आदि ऐवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी इस काल में बनाई गई थीं। गुप्त-काल की मूर्ति-कला समीक्षता आध्यात्मिकता सुन्दरता सौंदर्य पूर्वता और सुवर्णसम्पन्नता में अपना सानी नहीं रखती।

चित्र-कला—गुप्त-काल की चित्रकारी के नमूने हमें अजन्ता और बाघ की कन्दराओं के निधि चित्रों द्वारा प्राप्त होते हैं।

अजन्ता और बाघ की चित्रकला की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। यह हमारे सामने उत्कालीन जीवन का जीवीय चित्र उपस्थित करती है। अजन्ता के चित्रकार प्रकृति के साथ स्नेहमयी भावना रखते थे। उन्होंने कूँछते हुये बृद्ध मन्द गति से बहते बाँके निर्धर तथा दृढस्तन परिभ्रमण करने वाले अरण्य नागरिकों (पशुओं) के समीप चित्र कीये हैं। वन्यजों और हाथियों हिरणों और घड़कों को चित्रकारों ने बड़ी सहा मूर्ति के साथ चित्रित किया है।

संगीत—चित्रकला की मूर्ति संगीत का भी भारतीय साहित्य में प्रचुरता से उल्लेख मिलता है। गुप्त-काल के साहित्य ग्रन्थों से पता चलता है कि इस समय नायक नायक तथा नर्तन तीनों संगीत के विभिन्न रूप से और तीनों ही का समाज में प्रचलन था। समुद्रगुप्त के कुछ मिस्रों से पता चलता है कि उसकी बीजाबादन में बहुत अधिक अभिरुचि की और प्रयास प्रगति में तो उस अपने बीजा-बादन से नारद एवं मुन्बुद को ललित करने वाला बनताया गया है। गुप्त काल के अतिप्रथम साहित्य ग्रन्थों से ऐसा संकेत मिलता है कि संगीत की शिक्षा देने के लिए शिक्षक नियुक्त किए जाते थे। समाज में नृत्य का भी काफी प्रचार था। अभिजात कुलों की नारियाँ संगीत की शिक्षा प्राप्त करती थीं। इस काल की गणितार्थ संगीतार्थ कलित-कलाओं में बड़ी नियुक्त होती थीं।

मुद्रा-निर्माण-कला—यूनानियों से मुद्रा-निर्माण-कला सीखकर गुप्तों के साधन-काल में भारतीयों ने इसको एक राष्ट्रीय कला का रूप प्रदान किया और इसे उत्कर्ष की परम सीमा पर पहुँचा दिया। गुप्त-सम्राटों ने कलापूर्ण सुवर्ण मुद्राएँ बनाईं। उनकी मुद्राओं की आकार-प्रकार की विविधता इस काल की समृद्ध अवस्था का संकेत करती है। गुप्त सम्राटों के सिक्के निर्माण-सुपेक्षता तथा शक्ति की कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध हैं। उन पर स्पष्ट अक्षरों में लेख प्रतीक हैं। हमने पिछले पृष्ठों में गुप्त कालीन सम्प्रदाय और संस्कृति का जो विवेचन किया है उससे यह स्पष्ट हो गया कि गुप्त काल निस्सन्देह भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग था।

प्रश्न

- 1 Give a brief account of the development of the Gupta literature, sciences and arts during the age (1955) (1958.)
- 2 Gupta age is regarded as the Golden Age of Hindu India. On what grounds is this claim based? (1956)
- 3 गुप्त काल की भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग क्यों कहते हैं?
- 4 गुप्त कालीन समाज का चित्रण कीजिए।
- 5 गुप्त काल में भारत की आर्थिक अवस्था पर प्रकाश डालिए।
- 6 गुप्त काल में हमारी आर्थिक अवस्था कैसी थी?
- 7 गुप्त काल में हमारी आर्थिक अवस्था पर प्रकाश डालिए।
- 8 गुप्तकालीन साहित्य एवं कला के विषय में आप क्या जानते हैं?

थानेश्वर का वर्द्धन वंश

पिछले परिच्छर में बताया गया था कि भारत में राजनीतिक अधान्ति के भारत में रहा हो। भारत की राजनीतिक अधान्ति की दुर्बलता का संकेत हमें प्राप्त हो चुका है। ऐसी परिस्थिति में थानेश्वर में एक ऐसे वीर एवं पञ्चमी युद्ध का उदय हुआ जिसने सम्मता एवं संस्कृति के विनाशक रूपों से देश की रक्षा कर के इसकी राजनीतिक शक्ति को दुर्बलता के कोढ़ से पुनः करके उसे सुदृढ़ बनाया।

प्रारम्भिक इतिहास—प्रभाकर वर्द्धन ही थानेश्वर का प्रथम शक्तिशाली राजा था जिसने 'परममहाराज' तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधियाँ धारण की थीं। बाण के अनुसार उसका पुत्र सिन्धु देश के राजा कुर्बन-नरेण काट तथा मात्स्य के राजाओं से युद्ध किया।

किन्तु बाण का यह कथन इतिहास के किन्तु निष्ठ है यह नहीं कहा जा सकता। प्रभाकरवर्द्धन की माता महादेव-पुत्र देशी पुत्र वध की थी जिससे यह परिस्थिति होती है कि थानेश्वर राजवंश का उत्तरकाशीय पुत्र-नरेणों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित था।

प्रभाकरवर्द्धन की पत्नी महादेवी वसोमति ने तीन पुत्रों उत्पन्न हुई—उज्ज्व वर्द्धन, हर्षवर्द्धन तथा राज्यधी। राज्यधी का व्याह कर्माज के मौखी-नरेण ग्रह वर्मा से हुआ था जिससे दोनों राजकुलों में बनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया और जिसका थानेश्वर के इतिहास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जाता कि हम जगते पृथ्वी में देखेंगे।

६०४ ई के लगभग वर्षों में साम्राज्य की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर आक्रमण एवं कूटनीति कर ही जिसके बगल प्रभाकर वर्द्धन ने जगत् पुत्र राज्यवर्द्धन को भेजा। हर्ष भी राज्यवर्द्धन के साथ चला। युद्ध-काल में ही पिता की बातक बीमारी की सूचना प्राप्त हुई और वह राजधानी की लौट आया। यहाँ आकर उसने राज्यवर्द्धन को बुलाने के लिए दूत भेजे। राज्यवर्द्धन पिता के जीवन-काल में न लौट सका। युद्ध समाप्त करके वह वह लौटा तो उसे राज्यसिंहासन देने की बातें होने लगीं पर वह सम्पाद ग्रहण करने की चिन्ता में विलीन था किन्तु राजनीतिक अधान्ति की बाधका से उसे विवश होकर राज्य भार अपने कंधों पर लेना पड़ा। सम्भवतः हर्ष का यह हठ कि वह भी उसका अनुसरण करेगा राज्यवर्द्धन की संस्थाप ग्रहण करने से रोक सका। ऊपर लिखित राजनीतिक अधान्ति यह भी कि कर्माज से एक दूत निम्न समाचार लेकर थानेश्वर आया—

“जिन दिन राजा प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु का सुख समाचार मिला उसी दिन मात्स्य के पुत्र स्वामी ने महाराज ग्रहणों का प्राणान्त कर दिया राजकुमारी राज्यधी भार की पत्नी की माँसि कायकुरुष के कारागार में डाल दी गई है और उनके चरमों में बेकियाँ पहना दी गई हैं। इसके अतिरिक्त यह भी सुनने में आया है कि वह पुत्र यहाँ की सेवा की नेताबिहीन समस्त कर इस देश पर भी आक्रमण करने का विचार कर रहा है।” ग्रहणों का हत्याप मात्स्य-नरेण देव-पुत्र था।

यह समाचार सुनते ही राज्यवर्द्धन बड़े हवाले अम्बारोहियों को लेकर तथा राजधानी हर्ष को सौंप कर मालवा के शासक पर आक्रमण को चल पड़ा। वहीं वह जान केगा चाहिये कि मालवा के राजा (वेणुगुप्त) तथा कर्णसुवर्ण के बीच राजा घाटा में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो चुकी थी। घाटाक निश्चय ही गुप्त बंध का था और उसने अपने पूर्व पीरवा को पुनः स्थापित करने के लिए यह मैत्री सम्बन्ध जोड़ा था क्योंकि वह पुन्यपूति तथा मीनरी बंध की ध्वस्त को छिन्न-भिन्न करना चाहता था। यह वह भी जानता था कि मालवा के गुप्त लोगों तथा घानेश्वर के वर्द्धन लोगों के बीच अनबन थी। इसलिए वह मालवा के गुप्तों को अपने साथ लेकर कभीनवर आक्रमण करता चाहता था पर योजना असफल रही।

हर्ष को एक दिन मुत्तल नामक एक अम्बारोही जफ़र ने सूचना दी कि महापद्म राज्यवर्द्धन ने बड़ी शरारत से मालव-नरेश को वधवित किया किन्तु वीह राजा के छोटे सम्मान तथा शिष्टाचार के मुद्दे में जाकर उसने (राज्य-वर्द्धन) ने पर विस्वास कर लिया और उसने (वीह-नरेश ने) राज्यवर्द्धन को अपने भवन में एकाकी निधन पाकर मार डाला।

हर्षवर्द्धन

जाई की हत्या का समाचार पाते ही हर्षवर्द्धन ने प्रश्न किया कि 'ये कुछ दिनों में ही बड़ी बौद्धिहीन कर डूना अथवा अपने पापी शरीर को पतन-समान पदों में डाल देना।'

राजसिंहासन पर बैठते ही उसका पहला कार्य था बहुत राज्यभूमी को बचाया जो उस समय तक कायधार से मुक्त होकर विन्ध्यारक्ष के बंधनों में बसी गई थी। अतः हर्ष उसकी ओर में निकल पड़ा और वह ठीक वही समय पहुँचा जब राज्यभूमी बिता में बदलने जा रही थी। हर्ष ने कामरूप के राजा भास्कर-वर्मन से मित्रता स्थापित कर ली जो बितने हर्ष को आगे चल कर काफ़ी सहायता मिली।

हर्ष की विजय—हर्ष ने सर्वप्रथम अपने बहनोई के हत्यारे सदाक पर आक्रमण किया किन्तु कहा जाता है कि वह घाटाक को कभी पराजित न कर सका और घाटाक ६१९ ई. तक राज्य करता रहा। हर्षराज ने हर्षवर्द्धन की विजयों को बढ़ा-बढ़ा कर लिखा है। उनके अनुसार उन्हें ने ६ वर्षों के भीतर 'पंच भारत' से मुक्त किया और उन्हें जीत कर बागामा १० वर्षों तक बिना शरत् उदाये शांतिपूर्वक राज्य किया। किन्तु यह ठीक नहीं जान पड़ता। हर्ष यह जानूँ है कि नर्मदा नदी के पार हर्षवर्द्धन की मैना नहीं बढ़ सकी थी क्योंकि दक्षिण क चालुक्य-नरेश पुलकेशिन ने उसे पराजित कर दिया था। अपने भासन-काक के अन्तिम भाग में उसने पूर्व की ओर रण-बाधा की। अब तक घाटाक की मृत्यु ही चुकी थी और कोई दक्षिणगामी उत्तराधिकारी नहीं था जो हर्ष की रोक सकता अतः हर्ष को पूर्व में विजय मिली। मगध को जीतता हुआ वह कौनार पर भी (मज्जाव जिता) जो घाटाक के राज्य की दक्षिणी सीमा पर था विजयी हुआ। घाटाक का सौप साम्राज्य अर्थात् उत्तर-दक्षिण तथा पूर्वी बंधात कामरूप के राजा भास्करवर्मन को मिला।

हर्ष के साम्राज्य के विस्तार के सम्बन्ध में कहा मतयेह है। हर्षराज कुछ और लिखता है। 'हर्ष' चरित नामक पुस्तक में आगे हर्ष के साम्राज्य को बहुत विस्तृत बताता है परन्तु ठीक प्रमाणों से ज्ञात हो सका है हर्ष के साम्राज्य में पूर्वी

पंजाब उत्तर प्रदेश बिहार, पश्चिमी बंगाल तथा छत्तीसगढ़ सम्मिलित थे। इनके बाहर उसकी राजसत्ता नहीं स्थापित थी। ही अन्य राजे इसका बख्शना अवश्य स्वीकार करते थे।

कन्नौज की परिधि—अब तक हमने हर्ष के राजनीतिक जीवन का विवरण किया है। अब उसके सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पर विचार किया जायगा जिससे उसके व्यक्तित्व की पूर्ण रूप रेखा हमारे सम्मुख उपस्थित हो सके। हर्ष किसका विद्वानुसंगी था और उसमें उस ज्ञान सम्बन्धी शिक्षा किन्हीं प्रवक्त भी इसका पहला उदाहरण है कन्नौज की परिधि से प्राप्त होता है जिसका आयोजन उसम बीपी यात्री ज्ञान के सम्मानार्थ किया था। उसने यात्री से कहा—“ये काम्यकुशल हैं एक विद्याकसमा करने की इच्छा करता हूँ और महाबान की विद्यपताओं को सिखाने तथा चित्त प्रम का निवारण करने के लिए समर्थों, ब्राह्मणों तथा पंचवीर के बीच बर्मेसर महाबलम्बियों को आना देता हूँ कि वे जाकर उसमें सम्मिलित हों जिससे उनका बहुमान दूर हो जाय और वे प्रम के महान पुत्र को समझ सकें।”



चित्र १६

फरवरी ६५६ ई० में कन्नौज की परिधि की बैठक हुई जिसमें १८ देशों के राजा तीन हजार भक्त (महायान तथा हीनयान) तीन सौ ब्राह्मण एवं निर्धन बर्मेसर जैन तथा नाक्या मठ के एक हजार पुरोहितों ने भाग लिया। जैनसंगी को बाव-विवाद का सम्मेलन बनाया गया जिसने सब प्रथम महायान सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की प्रशंसा की। बाव-विवाद का विषय समा-अवन के काटक पर लक्ष्मी भवाकर चूषित कर दिया गया जिस पर निम्नलिखित शब्दों में सार्वजनिक चुनौती दी गई—

“यदि कोई व्यक्ति प्रस्ताव में एक सङ्ग भी तर्कविवाद बताये अथवा उसमें उत्पन्न पैदा कर दे तो मैं विपक्ष के अनुरोध से उसके बख्शे अपना धिर कटान प्रस्तुत हूँ।”

हा सिमर का मत है कि उत्तम बाव-विवाद एकतरफा था उसकी धर्मोप्याय संवत न थी। हर इस पर चुका हुआ था कि उसका ह्वापात्र ज्ञानसंगी पराजित न होने पाये मत्ता ऐसी रक्षा में कौन विपक्ष में बोलता ?

सिमर महाभारत के मत में काफी सत्यता है क्योंकि हम देखते हैं कि इतनी प्रतिक्रिया विपक्षियों पर हुई और उन्होंने ज्ञानसंगी की हत्या का दृढमन किया। जब हर्ष की इस पराजय का बोध हुआ तो जमान नोपना कर दी कि “यदि कोई व्यक्ति बर्मेसरों को उत्तम करेगा अपना बोट पहुँचायगा तो उसे प्राणरुद्ध दिया जायगा और जो उनके विरुद्ध कोई दण्ड कहेगा उसकी जिह्वा काट ली जायेगी किन्तु जो साग

उनके उपदेशों से सामान्यतः होना चाहते हैं कि सब मेरी सलाहमता पर बिश्वास रखें और इस बीच-या-पन से मरमोचन हों।

१८ दिन यों ही बीत गये और किसी भी भारतीय विद्वान् को विषय में बोझ का साहस नहीं हुआ क्योंकि ज्ञानसाग को चुनौती दी जा सकती थी पर हर्ष की धक्क को चुनौती देना असम्भव था। अन्त में ज्ञानसाग ने महायान सम्प्रदाय की रित्त खोज कर प्रपंचा की और समा भंग हो गई। ज्ञानसाग की इस विजय के उपलक्ष्य में मगर में उसका एक पानधार जुलूस निकाला गया और यह घोषित कर दिया गया कि उसने समस्त विरोधियों को पराजित करके महायान सम्प्रदाय की सत्यता तथा हीनवान् सम्प्रदाय के अनुयायियों के भ्रम को सिद्ध कर दिया है।

प्रयाग का आरम्भिक सम्मेलन—पौराणिक काल से ही तीर्थराज प्रयाग दान वितरण का प्रधान क्षेत्र माना जाता है। आज भी कुम्भ पर्व के अवसर पर बसा-बसता के संयम पर दान-वितरण की यह परम्परा चली आ रही है किन्तु प्रारम्भ में कुम्भ एक पर्व मात्र था इसे मेके का रूप देने का ध्येय हम हर्ष को ही है सकते हैं। हर्ष का पाँचवें वर्ष प्रयाग में जाकर समस्त वर्गजनसमिधों को आमन्त्रित करके साधू-संन्यासियों भजन बाह्य निर्धन निर्धन भावि को दान देता था। यद्यपि इस प्रकार के अभिषेचन का सर्वप्रथम विवरण चीनी यात्री ज्ञानसाग के कैव से प्राप्त होता है जिससे यह ज्ञात होता है कि हर्ष ने लगभग ६४३ ६४४ ई० में प्रयाग में पंचवर्षीय दान-वितरण का आयोजन किया था तथापि स्वयं हर्ष ने इसे उठा अभिषेचन स्वीकार किया है। इससे यह विदित होता है कि इसके पूर्व भी पाँच ऐसे अभिषेचन हो चुके थे किन्तु सामग्रियों के अभाव में उनके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते।

हर्षवर्द्धन ने चीनी यात्री ज्ञानसाग से प्रयाग-अभिषेचन में सम्मिलित होने को कहा। यद्यपि यात्री को स्वदेश लौटने की जरूरी थी तथापि प्रयाग का आकर्षण अपेक्षाकृत प्रबल निकला और यात्री को प्रयाग माना पड़ा। प्रयाग अभिषेचन तथा हर्षवर्द्धन के महादान पर यात्री का निम्न विवरण पर्याप्त प्रकाश डालता है।

“भारतीय काल से यह प्रथा चली आती है कि राजे-महाराजे तथा अन्य बनी मानी व्यक्ति जब वहाँ (प्रयाग) जाते हैं तो वे अपना सम्पूर्ण मन दान के रूप में दे डालते हैं। महाराज हर्षवर्द्धन ने भी अपने पूर्वजों का अनुसरण करते हुए पाँच वर्ष का संवत् कौप एक दिन में वितरण कर दिया। प्रथम दिवस हर्ष ने बगवान् बुद्ध की एक मूर्ति बनवा कर अपने सम्पूर्ण बहुमूल्य रत्न उस पर चढ़ा दिये और उत्पत्तात वहाँ के रहने वाले पुजारियों को उन्होंने वह सब दान कर दिया। इनके बाद उन पुजारियों की भी दान किया गया जो बाहुर से जाकर वहाँ रहे थे। हर्ष ने विद्याधियों विद्वानों अनाथों और दीन-पुत्रियों को भी अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति में हिस्सा दिया। जब उनके पास कुछ भी शेष न रहा तब उन्होंने अपना रत्नमय मुकुट और मुक्ताहार भी उतार कर दान कर दिया।”

अन्त में अपनी निर्धनता के चिह्नस्वरूप हर्ष ने अपनी बहुत राख्यही से तीर्थधीर्ब वस्त्र से कर उस बारण किया। यह सब कुछ कर देने के पश्चात् हर्ष की यह प्रमत्ता थी कि उसने अपनी समस्त सम्पत्ति पुष्प जाते में लगा दी है और बगवान् बुद्ध का “दसवत्” प्राप्त करने के लिए उसने मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

अभिषेचन समाप्त होने के पश्चात् ही ज्ञानसाग ने चीन की प्रशान किया। हर्ष का आदेश पाकर जार्जवर के राजा उदित ने उसका साथ एक रत्न दत्त विदुरत किया और स्वयं हर्ष उन दूर तक बिदा करन गया।

हर्ष की मृत्यु—जीवन के अन्तिम तीन-चार वर्षों में हर्ष की क्या समस्या थी इस सम्बन्ध में हमारा ज्ञान सामग्रियों के अभाव में स्वल्प है। बाटर्स के अनुसार 'पुष्य का बूझ आरोपित करने की चेष्टा में इतना संलग्न था कि सोना और ताँबा भी मूख गया' और संभवतः इसी पुष्य कार्य में उसके अन्तिम दिन बीत गये होंगे। हर्ष के शब्दों में ही 'ईश्वर करे कि मैं आगामी जन्म-जन्मावसरों में सदा इसी प्रकार अपने को ब्रह्म के वस बलों से सम्पन्न करूँ' प्रभाव के महाबान के उपासक हर्ष ने ये वाक्य कहे थे। इन समस्त प्रयासों के आचार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दार्मिक कृत्यों में ही हर्ष के अन्तिम दिन बीते होंगे। ६४६ ई० अन्तिम दिनों में जबका ६४७ ई० के प्रारम्भ में हर्ष की मृत्यु हो गई।

हर्ष का शासन प्रबंध

हर्ष के शासन-सम्बन्ध पर हर्षे वुण्ड शासन-प्रबन्ध की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। वुण्ड शासन प्रयासी इतनी सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित थी कि उसका अनुकरण अनेक परवर्ती राज्यों ने किया।

राजा का स्थान—शासन-सम्बन्ध में राजा का सर्वोच्च स्थान था। उसे परममहाराज 'परमेश्वर' 'परमदेवता' 'महाराजाधिराज' आदि की उपाधियाँ प्राप्त थीं। शासन-प्रबंध के सक्रिय भाग लेकर राजा राज्य के सभी उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था आज्ञा-पत्र एवं नीति-पत्र निकालता था न्यायाधीश का काम करता था युद्ध में सेना का नेतृत्व भी करता था। इन कार्यों के अतिरिक्त हर्ष का शासन-सम्बन्धी अधिक महत्वपूर्ण कार्य जनता के सुख-दुख का अनुसंधान द्वारा पर्यवेक्षण करना था।

पदाधिकारी—राजा को उच्च मंत्रणा देने के लिए मंत्री थे जिन्हें सचिव या मन्त्रालय कहा जाता था। दान-यज्ञों पर भी हर्ष के पदाधिकारियों की सूची प्राप्त होती है वह इस प्रकार है—वीस्ताबलिक प्रमातर, राजस्थानीय कुमारमात्य उपरिक्त तथा विषयपति। दान-यज्ञों में कुछ नामक पदाधिकारी का उल्लेख मिलता है। मुख्य नामक पदाधिकारी का भी इन दान-यज्ञों में उल्लेख किया गया है। इसे कहीं-कहीं बीबर भी कहा गया है। अनेक बीबरों के ऊपर एक बीबरपति होता था।

ग्रामीय शासन—ग्रामों को भूमि अथवा भेड़ कहते थे। प्रत्येक ग्राम को जिलों में बाँटा गया था जिन्हें ग्रैथ अथवा विषय कहते थे। ग्रामीय शासक को 'ग्राम भुक्ति' कहते थे। 'पंचक' वर्तमान सहस्रीक की ही प्रति एक छोटा ग्राम था। सीमांत प्रदेश के शासकों को सम्भवतः गोप्ता कहा जाता था। जिले के शासक विषय पति की नियुक्ति ग्रामीय शासक करते थे। 'अभिष्ठाणों में' विषयपति के केन्द्र होने से जहाँ उनके अधिकरण (न्यायालय तथा कार्यालय) होते थे। बसाड़ की मूर्हर में कुछ अधिकरणों का उल्लेख किया गया है।

ग्रामीय शासकों तथा जिलों के शासकों की सहायता के लिए दंडिक बीरो अतिरिक्त ईशपायिक आदि पुलिस के कर्मचारियों की भी व्यवस्था की गई थी।

ग्राम शासन—ग्राम अब भी शासन की न्यूनतम इकाई था। 'महत्तर' नामक पदाधिकारी का उल्लेख ग्राम के अधिकारियों में मिलता है जो सम्भवतः गाँव के सब मामलों की देखभाल करता था।

दण्डविधान—जीवहारी का शासन अत्यन्त कठोर था। 'उज्जोह' के लिए आजीवन कारावास का दण्ड दिया जाता था। सामाजिक गणधार के प्रतिकूल आचरण

करने माता-पिता के साथ अनुचित व्यवहार करने तथा विस्वासघात करने पर अंग-अंग (एक नाक एक कान एक हाथ या एक पैर का) कर दिया जाता था। दंड-निर्वाचन तक का भी बख्त दिया जाता था। अन्य अपराधों के लिए भी जुर्माना किया जाता था। जस जगि तुका बिष द्वारा अपराधी की परीक्षा भी की जाने की प्रथा प्रचलित थी।

हर्ष के समय में बख्त-विभाग निरन्तर ही कठोर था और उसका प्रतिफल यह था कि अपराधों की संख्या कम थी किन्तु इसका यह अविश्राम नहीं कि सम्पूर्ण राज्य में कहीं भी कोई अरक्षित स्थान न था।

“एक बार पंजाब में सेनाब नदी को पार करने और साकल नगर को छोड़ने के पश्चात् बह (हूँसांग) एकछत्र के वन से हो कर गुजरा। वहाँ पचास बाजुओं के एक दल में उस पर आक्रमण कर दिया बस्त्रादि सब छूट किया और हाथ में छतवार लेकर उसका पीछा किया। अन्त में एक बाह्यन ने जो खेत जोत रहा था, उसकी रक्षा की। उसने पुकार कर ८० हथियारबन्ध आरमियों को एकत्रित किया।”

बख्तगुप्त विजयवर्धन के समय में फाह्यान की भाषा की यात्रा में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा था पर हूँसांग को बल तथा स्वतन्त्र होने में मार्गों में डाकू मिले। यह घासन की बिक्री का सबसे बड़ा प्रमाण है और इसीलिए डा० मुकजी का मत है कि हर्ष का घासन प्रबन्ध गुप्त नरेशों के घासन-प्रबन्ध की तुलना नहीं कर सकता। मुकजी का मत बिल्कुल उचित है।

आय के स्रोत—आय के विभिन्नभित्तित सामान्य श्रोत थे—(१) उदंग (एक प्रकार का मृमिकर) (२) उपरिकर (नियमित कर के अतिरिक्त कर) (३) बात (?) (४) मूठ (?) (५) बान्ध (६) हिरण्य (नोना) (७) आवेय बारि।

उपरिक्त करों के अतिरिक्त कुछ कुछ बरापाह तथा खनिजों पर भी कर लगाया जाता था। अनाज की मण्डियों में बिक्री हुई वस्तुओं के नाप तौल के आधार पर निर्धारित कर संग्रह किया जाता था। चाटो पर भी कर लगाया जाता था। जुर्माना से भी अच्छी आय हो जाती थी। भूमि-उपज का लड़ा भाग कर कप में लिया जाता था। हर्ष का व्यक्तित्व

हर्ष के प्रमुख कार्यों के पश्चात् उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विस्लेषण करने में हमें किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। वहाँ हम उसके नैतिक विचारों, नैतिक नीति साहित्यिक प्रवृत्ति आदि पर प्रकाश डालेंगे।

हर्ष का धर्म—पुण्यभूति शिव का उपासक था प्रभाकरवर्द्धन तथा उसका पिता आशिमवर्द्धन सूर्योपासक थे। राम्यवर्द्धन तथा राम्यभी बौद्ध थे। बाण के बचनानुसार हर्ष विभिन्नय के समय नीलजोहित (शिव) उपासक था। कालान्तर में हर्ष बौद्ध मतावलम्बी हो गया। प्रारम्भ में सम्मन्त हीनयान सम्प्रदाय में था और उत्तरवान् हूँसांग के सम्पर्क में आकर महावान सम्प्रदाय का समर्थक हो गया।

हर्ष की साहित्यिक अभिरुचि—हर्ष साहित्य-प्रेमी भी था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि उसने बाण को उत्कृष्टतम प्रदान किया था। इतिहास के बचनानुसार हर्ष ने कवियों को अपने दरबार में रचनायें करने की कहा था और उनके मकलम का नाम ‘आठक माला’ रखा गया। हर्ष के विशेष ह्तापाय बाण ने ‘हर्ष चरित’ के अतिरिक्त ‘कादम्बरी’ जैसी अमर रचना की। कुछ विद्वानों का यह मत है कि बाण ने ‘पार्वती पण्यन’ तथा ‘बन्नीघातक’ नामक ग्रन्थों की भी रचना की।

बाण के सम्बन्धी (स्वभूर या साका) मयूर को भी हर्ष ने प्रथम प्रदान किया और उसने कामसास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टक' की रचना की।

मर्त्य विषाकर नामक एक अन्य प्रसिद्ध साहित्यिक हर्ष के दरबार में रहता था। गतबी धताश्री के पूर्वार्ध में सुप्रसिद्ध कवि मर्त्य हरि भी नीबिठ बा पर यह निबन्ध-वर्क नहीं कहा जा सकता कि उसे हर्ष का प्रथम प्राप्त था अथवा नहीं। हर्ष के दरबार में इतने कवियों एवं साहित्यिक व्यक्तियों का रहना संस्कृत-साहित्य कोष की अभिवृद्धि सम्बन्धी प्रवृत्ति के विकास के लिए एक सुन्दर साधन था।

हर्ष साहित्यिक व्यक्तियों को प्रथम ही नहीं प्रदान करता था प्रत्युत वह स्वयं साहित्यकार था। 'रत्नाकर' 'प्रियवर्धिका' तथा 'नामानन्द' नामक संस्कृत के तीन नाटकों की रचना हर्ष ने की थी। कुछ विद्वानों की इसमें संशय है कि उन ग्रन्थों की रचना स्वयं हर्ष ने की।

हर्षकालीन भारत की सामाजिक धार्मिक एवं आर्थिक अवस्था

सामाजिक अवस्था

हर्ष कालीन भारत की विभिन्न परिस्थितियों का विवरण हमें छेनसांग तथा समसामयिक संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों से प्राप्त होता है। छेनसांग के कथना नुसार उस समय ब्राह्मण शक्ति वैश्य तथा शूद्र जातियों के अतिरिक्त पाँचवीं मिश्रित जाति भी थी। समता है कि वागी ने उपजातियों की मिश्रित जाति की संज्ञा दे दी है। छेनसांग ने ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की काही प्रशंसा की है। उसने बताया है कि ब्राह्मणों की समाज में उत्तम स्थान दिया जाता था। ब्राह्मण राज-काज में भी भाग लेते थे और हर्ष के कुछ अमत्य ब्राह्मण भी थे। क्षत्रियों के सम्बन्ध में छेनसांग ने लिखा है कि वे सरल निर्दोष एवं मित्रवत् भीषण विद्वाने बने थे। वैश्यों को छेनसांग ने वाणिज्य-व्यापार में जमा हुआ पाया। शूद्रों का प्रथम व्यवसाय कृषि-कार्य था। शूद्रों की दशा इस काल में काही सुचारु नहीं थी। मिश्रित जातियों की उत्पत्ति अनुलोम तथा प्रतिक्रम विवाहों से हुई थी। अनुलोम की संस्था भी समाज में बहुत बड़ी थी जिन्हें नगर के बाहर रहना पड़ता था। मेहतर, कसाई, मजदूर, गट बाण्डाल आदि इस वर्ग में सम्मिलित थे। इनके निवास-स्थान विच्छिन्न कर दिये जाते थे। सामान्यतः स्वराष्ट्रीय विवाह ही होते थे। सती-यथा का प्रचलन था। हर्ष की मत्ता अपने पति की मृत्यु के पूर्व ही इस विरवास से कि अब पति नहीं बन सकता सती होने की उद्यत थी। राज्य-की भी सती होने का खी थी पर हर्ष ने ठीक अवसर पर उसे रोक लिया। 'हर्ष चरित' से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बहुपत्नीत्व का प्रचार बहुत अधिक था। राजमहली के अन्त-पुर में स्त्रियों की जीड़ ती लगी रहती थी।

परामाभूषण—रत्न-विहारे वस्त्रों को लोप कम वस्त्र करते थे। बहुधा स्वेत वस्त्र पहने जाते थे। कपड़ों की संख्या बहुत अधिक न थी। स्त्रियाँ दोनों कन्धों को ढकता हुआ एक लम्बा वस्त्र धारण करती थी। कुलीन पुरुषों में सांके का प्रयोग प्रचलित था। माभूषण का प्रयोग काही होता था। विभिन्न प्रकार के अलंकरण हार, कुण्डल, बड़ा आदि का काही प्रयोग किया जाता था।

मोजन—छेनसांग के विवरण से यह ज्ञात होता है कि प्रायः लोप मोजन का प्रयोग मोजन में नहीं करते थे। बहुमुख प्याज भी नहीं खाया जाता था। मिट्टी तथा बाण के बर्तनों का प्रयोग केवल एक बार किया जाता था। भी हूब यही चीनी मिट्टी रोटी आदि मोजन के प्रमाण अंग थे। गेहूँ तथा चावल अन्न साधारण का मोजन था।

मनीरंजन के सामन—घटरज तथा पासे के खेल का उत्कृष्ट बार-बार किया गया है जिससे यह परिलक्षित होता है कि यह खेल काफी प्रचलित था। इन शालिक तथा यमपटिक अपनी कलायें बिलसामा करते थे। योंमें में मराठी गट आदि बहुधा बूम-बूम कर अपना कीर्णक दिलाते थे।

नाटकों के अभिनय में निरुपय ही यह समाज उत्तमिणीय रहा होता। प्रेक्षा-गृहों (रंगमंचों) संवीत-मंचों तथा चित्रमंचों का उत्कृष्ट उत्कामीय नाटक प्रदर्शनों में यम-रूप किया गया है। बीच मास की पुर्णिमा की वसन्तीत्तव मनाया जाता था इसका उदाहरण 'प्रियदर्शिका' तथा 'रत्नावली' में मिलता है।

भारियों की स्थिति—जिस समाज में बहु-पत्नी प्रथा प्रचलित थी उसमें भारियों की दमनीय दशा की कल्पना सहज ही की जा सकती है। यद्यपि हमें उनके सामाजिक जीवन की उन्नत अवस्था का बीज विभिन्न सामनों से होता है और वह भी ज्ञात होता है कि वे संवीत मृत्यु चित्रकला तथा पिछा आदि में निपुण होती थी तथापि उनका औद्योगिक जीवन पूर्णतया शान्त न था। समाज में माता (और पिता का भी) कितना उच्च स्थान था। इसकी कल्पना हम इस प्रकार कर सकते हैं कि इनकी उचित सेवा न करने वाला व्यक्ति दण्ड का शर्नी होता था। 'हर्ष चरित' के आधार पर तो हम यह कह सकते हैं कि राजपरामे की स्थिति पूर्णतया बिलासिता एवं उपजीव की वस्तु होती थी। उच्च कुलों में पर्व-प्रथा भी प्रचलित थी।

आर्थिक अवस्था

बीड़-वर्म—बीड़ वर्म के मुख्य सम्प्रदाय महायान तथा हीनयान में वे प्रथम का अस्तित्व अधिक महत्वपूर्ण था। स्वर्ग हर्ष भी इस सम्प्रदाय के प्रति विशेष कृपाक प्राप्त होता है। यह तथा बिहार बीड़ वर्म की सक्रियता के केन्द्र थे। यात्री ने बीड़ वर्म का १८ शाखाओं का भी वर्णन किया है जिनके क्रिया-अनुष्ठान भिन्न-भिन्न थे और वे सभी अपनी-अपनी बीड़िक महत्ता घोषित करते थे।

बाह्य वर्म—ययाग तथा वाराणसी अब हर्ष वर्म के प्रमुख केन्द्र बन गये थे। आशिर्य दिय तथा किष्ण की पूजा अधिक लोकप्रिय होती जा रही थी। 'हर्ष चरित' से यह ज्ञात होता है कि इन देवताओं की मूर्तियाँ यमिहरी में प्रतिष्ठापित की जाती थी और इनकी विधिवत् पूजा होती थी। प्रयाग तथा वाराणसी के अतिरिक्त कशी में भी बाह्य वर्म का बोधभासा ज्ञात होता है क्योंकि वहाँ भी वी से अधिक देव-मन्दिर निर्मित थे। बाह्य वर्म अनेक शाखाओं में वृत्तकाल से ही विभक्त था जा रहा था। हीन वर्म का रूप अब विकृत होता जा रहा था। कर्मकाण्डी की प्रकृति एवं उनके रूप में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी।

जैन धर्म—बीछाली पुण्ड्रवर्धन तथा समस्त के अतिरिक्त भारत के अन्य भागों में इस धर्म का प्रायः अभाव-ता ही पला था। उच्च स्वार्थों में भी विनम्र सम्प्रदाय वालों का ही बाहुल्य था। इनकी दूसरी शाखा स्वेताम्बर थी। जैन धर्म के सम्बन्ध में यात्री का विवरण अपेक्षाकृत स्वल्प है।

आर्थिक अवस्था

इति ही लोगों का प्रमुख व्यवसाय था किन्तु औद्योगिक एवं आर्थिक सम्बन्धी उन्नति के पक्षस्थल अब हीन वर्म इस और उन्निक की ध्यान नहीं दे रहा था और पूरा ही बहुधा इति-कार्य करते थे। सिपाई की पर्याप्त मुद्रिका भी जितने

कृषि-उपज में किसी प्रकार की कमी नहीं होने पाती थी। बरागाहों के लिए भी पर्याप्त भूमि छाड़ी जाती थी जिससे पशुओं के चारे की समस्या हल की जा सकती थी।

अन्तर्देशीय तथा विदेशी दोनों व्यापारों की वृद्धि काफी अच्छी थी। कुछ नये नगरों की उन्नति के मूळ में व्यापारिक कार्यों का ही हाथ बात होता है। बंगाल में साम्राज्यिक मामक एक बन्दरगाह था। पाटलीपुत्र से उन्मज्जित होता हुआ एक रात-मार्ग मझीच तक जाता था जिससे काफी व्यापार होता था। विदेशी व्यापार की कुछ सतक हमें होनसांग के विवरण से प्राप्त होती है। बागी के अनुसार कपिषा में भारत के कोने कोने से व्यापारिक सामग्रियाँ आया करती थीं और यहाँ से ये ईरान तथा योरोप के देशों की भेजी जाती थीं। काश्मीर ■ होकर चीन तथा मध्य एशिया तक भारत का विदेशी व्यापार प्रसरित था। अलमार्ग से जो विदेशी काफी व्यापार होता था जिसका प्रमुख केन्द्र पूर्वकवित साम्राज्यिक जो दक्षिण पूर्वीशीप समूहों से सम्बद्ध था और सम्भवत मलया मुमावा आदि से व्यापार का यही प्रमुख अन्त-मार्ग था।

हर्ष कालीन शिक्षा साहित्य एवं कला

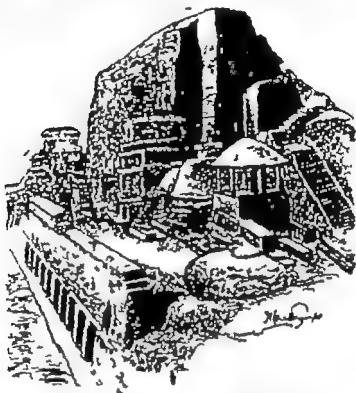
होनसांग ने भारतीय शिक्षा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। मध्यदेश के निवासियों की भाषा की स्पष्टता तथा शुद्धता और उनके उच्चारण पर भी भारी मुद्र था। बागी ने बताया है कि सात वर्ष की अवस्था के बालक को व्याकरण मानिककला ब्रह्मक तर्क शास्त्र तथा आध्यात्म-शास्त्र अर्थात् वर्णशास्त्र की शिक्षा प्रारम्भ कर दी जाती थी।

नालन्दा विश्वविद्यालय—होनसांग ने अनेक शिक्षा-केन्द्रों का उल्लेख किया है जिनमें सर्वप्रसिद्ध बनबी का हीनयान विश्वविद्यालय तथा नालन्दा का महायान विश्वविद्यालय था। जिस समय होनसांग इस विद्यालय में आया था उस समय इसमें दस सहस्र विद्यार्थी थे। हर्ष ने इसे अपार धन राशि दान रूप में दी थी। कुछ अन्य छात्रों से भी संस्था को पर्याप्त धन प्राप्त होता था क्योंकि इसमें निःशुल्क शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थियों के भोजन-वस्त्र की भी व्यवस्था की गई थी। भारत विस्फाट सीतमह यहाँ का कुलपति था। श्री योग्य आचार्य इस विद्यालय में अध्यापन कार्य करते थे। यह तीन सौ फीट ऊँचा बना था।

नालन्दा विद्यालय को कुमारपुत्र प्रमथ तथा उसके अनेक उत्तराधिकारियों ने प्रायशः एवं महत्त्व प्रदान किया था। हर्ष ने इनके लिए पर्याप्त धन-राशि दी थी जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। सीतमह के पूर्व विपनाव स्थिरमति तथा वर्मपाक-विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध 'पण्डित' आचार्य अथवा कुलपति रह चुके थे। विश्व विद्यालय में प्रवेश तभी सम्भव था जब कोई छात्रपाठ छात्र ली गई परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाय पर केवल ३० प्रतिशत विद्यार्थी ही इसमें सफल होते थे। विद्यार्थी का भी प्रवेश वय या पर के कक्षा में विद्यार्थियों से बाह्य नहीं कर सकती थीं। हर्ष बाहर बात करने की आज्ञा दी गई थी। संस्कृत ही शिक्षा का माध्यम था। नालन्दा में प्रारम्भिक (८-१३ वर्ष के बालकों के लिए) माध्यमिक (१३-२० वर्ष तक) तथा उच्चतर शिक्षाओं की व्यवस्था थी। नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के सम्बन्ध में भी इतिहासकारों की उच्च आशंका है। विश्वविद्यालय तथा उनके छात्र ती अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर रहे थे।

कला—हर्षकालीन कला की प्रशंसा भी हानसांग ने की है। वह नालन्दा के

मठों तथा विहारों की सुन्दरता की पर्याप्तगीय बटाता है और बुद्ध भयवान् की मूर्ति



चित्र १४—नालन्दा विषयविद्यालय का अनामसेय

कीट जैसी ताग मूर्ति की भी उदाहरण करता है। सीरपुर राजपुर जिला (मध्यप्रदेश) में मगध का ईर्दों वाला मन्दिर हर्ष कालीन नभन-निर्माण-कला का एक सुन्दर नमूना है।

इस काल की साहित्यिक प्रगति के सम्बन्ध में पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है।

प्रश्न

- 1 Give a brief account of the career and work of Harshvardhana. (1933, 1934, 1955)
हर्ष के जीवन चरित्र तथा उनके कार्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
- 2 Show with the help of a sketch map the extent of Harsha's Empire and estimate his achievements. (1953)
- 3 Compare and contrast the works of Samudra Gupta and Harsha. (1954)
- 4 Who was Hsien Tsang? What information do we obtain from his account of India about the social economic and political conditions during the seventh century? (1933.)
- 5 Describe the life and condition of the people under Harsha with special reference to the account of Hsien-Tsang (1937)

अध्याय २१

बृहत्तर भारत

हम जानते हैं कि किसी देश की भौगोलिक स्थिति का उसके इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भारत ने भी अपनी भौगोलिक स्थिति से पूर्ण लाभ उठाया है। सबसे बड़ा लाभ तो इनमें व्यापार तथा उपनिवेश-स्थापना के सम्बन्ध में उठाया। भारत एशिया महाद्वीप का एक अंग है अतः एशिया के विभिन्न देशों से इसका सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। इसकी भौगोलिक स्थिति तो और भी महत्वपूर्ण है। हम जानते हैं कि हिन्द महासागर में भारत की केन्द्रीय स्थिति है और इस प्रकार यह प्राचीन समुद्र देशों के सामुद्रिक भागों के बीच में पड़ता था। अतः पूर्व तथा पश्चिम के देशों से प्राचीन काल में ही जल तथा स्थल दोनों मार्गों से हमारे देश का सम्बन्ध स्थापित हो गया था।

इन्हीं सारी सुविधाओं के कारण भारतवासियों को विदेशियों से सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर प्राप्त था। जिन जिन देशों में भारतवासियों ने अपने उपनिवेश डहाये वहाँ भारतीय सभ्यता का प्रचार हुआ। इन्हीं उपनिवेशों को बृहत्तर भारत कहा जाता है।

प्राचीन काल में—हम पढ़ चुके हैं कि भारत में प्राचीन राज्य की स्थापना के पूर्व उत्तर-पश्चिम में यूनानियों की बस्तियाँ स्थापित हो चुकी थीं। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य ने इस प्रदेश को विदेशियों से मुक्त कराया। हमारे देश से अब तक यूनानियों का सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण न था। चन्द्रगुप्त के शासन-काल में ही सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया पर परिणाम क्या हुआ इसे हम पढ़ चुके हैं। इस आक्रमण ने भारत और यूनान में मैत्री-भाव स्थापित किया। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया और यूनानी राजदूत मेगस्थनीज को अपने दरबार में स्वागत दिया।

चन्द्रगुप्त के बाद बिन्दुसार के समय में भी भारत का विदेशों से सम्बन्ध स्थापित रहा। पश्चिम में एशिया ने उसका गहरा सम्बन्ध था। मेगस्थनीज के बाद डाइमेकस दूत बनकर पाटलिपुत्र आया था। उसके सेना नाम माथ को ही बचे हैं। सेल्यूकस के पुत्र सम्याट एन्टिओकससोटर से ही बिन्दुसार का पञ्च-व्यवहार भी चलता रहा। एक बार बिन्दुसार ने उससे कुछ अंजीर और एक वार्षिक अभ्यापक मंगाया था। एन्टिओकस ने अंजीर वापिस तो भेज दिया, किन्तु उसने लिखा कि हमारे यहाँ अभ्यापक भेजना नियम के विरुद्ध है। मिथ के यूनानी सम्राट् टालेमीफिलाडेल्फीस ने भी आपोनीसियस नामक एक राजदूत पाटलिपुत्र भेजा था। अंग्रेजों की भाँति उमन भी भारत का वृत्तान्त लिखता है।

अंग्रेजों को तो विदेशों से मैत्री स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक हो गया क्योंकि यह सारे संसार के लोगों को अपनी देवता चाहता था और बहुत ही सम्भव था जब चारों ओर बौद्ध धर्म का प्रचार हो जाता। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए ही उसने एशिया मध्य और अफ्रीका के विभिन्न स्थानों में वर्षात् सीरिया मैसीडोनिया, एशिया,

मित्र और साहसीति में अपने धर्म दूत भेजें थे। ये धर्म-प्रचारक विदेशों में जाकर न केवल बौद्ध धर्म का प्रचार करते थे बल्कि साथ-साथ वहाँ की जनता के कुछ-कुछ को धर करने का प्रयास भी करते थे। वे उनकी दवा-दाक की भी व्यवस्था करते थे। उस प्राचीन काल में इस प्रकार की विषय में यह पड़नी व्यवस्था थी। अशोक के इस कार्य से उपर्युक्त देशों के सम्राट् निश्चय ही प्रभावित हुए होंगे। अशोक के एक अभिलेख में इन स्थानों के सम्राट् के नाम भी दिये हैं जैसे सीरिया सम्राट् एन्टियोकस मिथ का टालमीफिलिस्तीन सीरीन का मागस एरिथरस का सिकन्दर आदि।

तीसरे काल के पश्चात्—तीसरे काल के पश्चात् एक बार फिर विदेशी आक्रमणों का जोर होता है। ईश्वरिया और पाकिया के बुलानी घासकों के आक्रमण का विवरण हम पीछे कर चुके हैं। उत्तर-पश्चिमी एशिया में इनके आघातों की स्थापना हो जाने पर भारत से इनका सम्बन्ध बराबर बना रहा पर वह पूर्वतया मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं रहा। पुत्रमित्र युद्ध के समय में बुलानी आक्रमण का हाल हम पढ़ चुके हैं। उस वक के पीछे सम्राट् मायमह के शासन-काल में अश्वघोष के बुलानी घासक ने ईलियोडोरस नामक दूत भेजा था। ईलियोडोरस ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया था।

चतुर्थ-काल में—प्रथम छठमरी ई० पू० से प्रथम छठमरी ई० के बीच हमारे देश में विदेशियों का आक्रमण शुरू हुआ। मध्य एशिया से एक आदि हमारे देश में आती है और नैसा कि हम पढ़ चुके हैं इस बल का आसन हमारे देश के कुछ भाग पर काँधी समक तक रहता है। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिमी चीन के कुछ विदेशी यूरपी आदि की कृपाय घासा ने भी भारत में अपना राज्य स्थापित किया जिसके सर्वोच्च शासक कनिष्क के सम्बन्ध में हम पढ़ चुके हैं। कनिष्क ने चीन के सम्राट् से युद्ध किया था। कनिष्क ने जी बौद्धधर्म के प्रचारार्थ दूर देशों में धर्म प्रचारक भेजे थे। उनके समय में बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति का प्रसार मध्य तथा पूर्वी एशिया में हुआ।

गुप्त-काल में—गुप्तों के समय में तो विदेशों से हमारा सम्बन्ध बहुत अधिक बढ़ गया। नीमात के अनेक राजाओं ने समुद्रगुप्त से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया था। लंका के शासक मधवर्धन ने समुद्रगुप्त को बहुमूल्य उपहार भेजे थे। रोम के शासक गुप्त काल में जो व्यापार रहा उसका सम्बन्ध में हम यथा स्थान पढ़ चुके हैं। गुप्तों के समय से ही गुप्त आक्रमण शुरू हो जाते हैं। गुप्तों ने जिस प्रकार गुप्त साम्राज्य की प्रतिपत्ति किया इसका भी उल्लेख किया जा चुका है। व्यापारिक सम्बन्ध के कारण रोमन मन्त्रियों और भारतीय सम्राट् में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। जेरीसियन काउन्टेंटायन बुक्मिन जस्टीनियन आदि रोमन सम्राट् के समय में भारतीय राजगुरु उनसे दरबारों में गए थे। सिक्न्दरिया नामक नगर में इन दोनों देश के बीच आपस में मिलते जुलते थे। हमारे देश के कुछ आश्रय भी इस समय सिक्न्दरिया गए थे और कानन मेमेरस के घर में रहते थे। फुरान मरी की ऊपर पाटी में भारतवासियों की बस्ती थी और वहाँ उन्होंने एक मन्दिर का निर्माण करवाया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में चीनी यात्री भागुत आया। गुप्त काल में कई अन्य चीनी यात्री भारत आये थे। भागुत ने भी कई बौद्ध धर्म-प्रचारक चीन गए थे।

हर्ष-काल में—हर्ष के समय में चीन से हमारा सम्बन्ध बना रहा। हर्षनामक इनका सबसे बड़ा प्रमाण है। अन्य चीनी दूतों का उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है।

यह हम विभिन्न देशों से भारतीय सभ्यता का प्रसार और भारतीय उपनिषदों की स्थापना पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

विदेशों में भारतीय सभ्यता का प्रसार

भारतवासियों का प्राचीन काल से ही विदेशियों से सम्बन्ध था। यह सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से स्थापित किया जा सकता है। सिन्धु वादी की सभ्यता के जग में भी बलविस्तार करके भारत मिथ आदि देशों से भारत का व्यापार-सम्बन्ध स्थापित था। पौराणिक काल में भी उपनिषेध-स्थापना का विवरण मत्स्य-पुराण तथा वायु-पुराण से प्राप्त होता है। मेसोपोटैमिया में एक लेख प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारतीय वायों का सम्बन्ध १७०० ई० पू० में भी मेसो पोटेमिया बस्तों से स्थापित था। किन्तु यह सम्बन्ध व्यापारिक था। विश्व के प्राचीन सभ्य देशों में भारत का ठेका स्थान था। अतः अन्य देशों से इसका सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित था किन्तु यही यह भी बता देना आवश्यक है कि जब तक भारतीयों ने विदेशों में किसी प्रकार के उपनिषेध की स्थापना नहीं की थी। केवल व्यापारी अपनी वस्तुओं को लेकर विदेशों में जाते थे और उन्हें बेचकर उनकी वस्तुएँ खरीदकर भारत की ओर लाते थे।

ऐतिहासिक काल से विदेशी सम्बन्धों के विषय में पर्याप्त सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं अतः उनका विस्तारपूर्वक विवरण नीचे दिया जा रहा है।

यूनान तथा रोम के साथ भारत का सम्बन्ध—मिथ में निवास करनेवाला एक यूनानी नाविक पहली सताब्दी ई० में साक संगर तथा अरब सागर के तट से होता हुआ भारत आया था, जिसके विवरण से यह बात होती है कि पश्चिमी देशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित था। इस नाविक ने यह भी बताया है कि भारतीय व्यापारी अरब सागर के द्वीपों में बस गए थे और इन्होंने सोकोत्रा में अपने उपनिषेध स्थापित किये थे। यूनानी के विवरण से हमें भारत और रोम के बीच होने वाले व्यापार का पता चलता है जिस पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। लगभग २९ ई० पू० में पाण्ड्य राजा ने रोम के सम्राट् आगस्टस के पास राजदूत भेजा था। उत्तरवात्सीय और राजदूत भेजे गए थे। वास्तव में सिकन्दर के बाद विदेशियों ने सम्बन्ध स्थापित करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था क्योंकि उसने जब तथा स्वतः दोनों प्रकार के मार्ग खोल दिये थे। अरबों के उत्थान के पश्चात् सातवीं शताब्दी ईस्वी में इन मार्गों पर अरबों का अधिकार हो गया और तब भारत के साथ उनका व्यापारिक-सम्बन्ध स्थापित हुआ।

इन देशों ने हज़ारों व्यापारिक सम्बन्ध त। वा ही भारतीय संस्कृति का प्रसार भी इन देशों में पूरा हुआ। हमें बात है कि अशोक ने पश्चिमी एशिया उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिण पूर्व के योनीय देशों में बौद्ध सिद्धि भेजे थे। इन सिद्धिओं ने इन देशों में अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। बुद्धराज तथा उसकी परम्परा के दार्शनिकों अस्तु सेटी (अकलातून) आदि पर भारतीय दर्शन का कितना प्रभाव है यह यद्यपि विवरण पूर्वक नहीं कहा सकता किन्तु साफ हो इसके साथ ही भी अवहेलना नहीं की जा सकती कि भारतीय दर्शन ने यूनानी दर्शन को प्रभावित किया। इस्लाम धर्म के उदय के पूर्व पश्चिमी एशिया में बौद्ध धर्म का प्रचार पाया जाता है। वहीं भारत ने यूनानियों को दर्शन के अनेक तत्त्व बताये वही स्वयं भारतीयों ने यूनान तथा रोमवासियों में मुद्रा-निर्माण तथा मठन निर्माण-कला की कुछ सीखियाँ ली थी। अरबों से सम्बन्ध स्थापित हो जाने

जम्मा पर अपना अधिकार कर लिया। पर कुबर्गई खाँ का शासन भी स्थायी न हो सका और १२८७ ई० में इसके हाथ से जम्मा निकल गया। १३९० ई० में फिर एक नवें राजवंश की स्थापना हुई, जिसका प्रथम राजा बयसिद् बर्मदेव था। इसके उत्तराधिकारी कुबर्ग निकले और अन्त में जम्मा सदा के लिए जगामियों के हाथ में जाता गया।

कम्बोजिया (हिन्दू जीव) में उपनिवेश स्थापना—कहा जाता है कि दक्षिण भारत के कश्मिर नामक ब्राह्मण ने कययस पड़ोसी घटाखी में वहाँ हिन्दू राज्य की स्थापना की थी। कययस प्रथम कययस द्वितीय यणीवर्धन तथा सुर्ववर्मन यहाँ के सुप्रसिद्ध एवं शक्तिशाली शासक हुए। पन्द्रहवीं घटाखी ई० में कम्बोजिया पर जगामियों तथा बाई लोगों के भीषण आक्रमण प्रारम्भ हो गये जिससे इसकी शक्ति छिन्न भिन्न हो गई। कम्बोजिया में चौब-वर्म का लूट प्रचार था। कुछ काल पश्चात् यहाँ कैयस वर्म का भी प्रचार हुआ। साथ-साथ बौद्ध धर्म भी चल रहा था। कम मग सभी हिन्दू देवी-देवताओं की पूजाएँ लोग करते रहे। भारतीय सभ्यता का जन करण इन्हे भारतीय धर्म स्वीकार करने के कारण करता पड़ता था।

जावा में उपनिवेश स्थापना—जाटवी घटाखी ई० में कैलेन्द्र नामक एक व्यक्ति ने जावा में हिन्दू राज्य की स्थापना की। यह राज्य सीमा ही मल्लिकार्जुनी की जमा और इनके अर्वाज सुमावा जावा कोनियों और बाली द्वीप हो गये। कैलेन्द्र बंधीय राजे बौद्ध धर्म के महापान सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इस वंश के राजाओं ने अनेक स्तूपों मन्दिरों मूर्तियों आदि का निर्माण कराया था। प्यारुवी घटाखी में चौब नरेय राजेन्द्र जोल प्रथम ने कैलेन्द्र राज्य पर आक्रमण कर दिया। यह विजयी हुआ पर चौब एक घटाखी ने अधिक यहाँ नहीं रह सके। कैलेन्द्र वंश का पुन अधिकार हो गया पर वह भी प्यारुवी घटाखी में समाप्त हो गया।

जावा में उपनिवेश-स्थापना—बैने ली जीवी घटाखी ई० में ही जावा में हिन्दू राज्य की स्थापना हो गयी थी किन्तु कैलेन्द्र वंश के सामकों ने इसे विजित करके कययस नवी घटाखी तक अपने अधीन रखा। उत्तरवाद् जावा वालों ने अपने को स्वतन्त्र बना लिया।

प्यारुवी घटाखी के अन्तिम चरण में विजय नामक सम्राट् ने जावा में एक नवें राजवंश की स्थापना की। वह बहुत शक्तिशाली निकला और पड़ोसी राज्य को पराजित करके १३९५ ई० तक हमले मकाया प्रायद्वीप तथा मकाया द्वीप समूह को अपने अधीन बना लिया।

मलक्का उपनिवेश-स्थापना—जावा के एक हिन्दू सामन्त न १५वीं घटाखी में मलक्का में जाकर वहाँ हिन्दू राज्य की स्थापना की। बहुत सीमा इस राज्य में उत्पन्न कर ली किन्तु इन राजवंश के दूसरे शासक ने इस्लामधर्म स्वीकार कर लिया। इसका प्रभाव पड़ोसी राज्यों पर भी पड़ा और देखते-देखते जावा में भी इस्लाम धर्म का प्रचार हो गया। यहाँ के हिन्दू शासक को पदच्युत कर दिया गया। जावा के हिन्दुओं को माय कर वाली द्वीप में चरण लेनी पड़ी। यहाँ अब भी हिन्दू धर्म का प्रारम्भ है।

जावा तथा मलक्का आदि द्वीपों में भारतीय संस्कृति का मूल प्रचार हुआ। प्रारम्भ में ही वहाँ हिन्दू (ब्राह्मण) धर्म जोरों पर आ पर कुछ काल पश्चात् बौद्ध धर्म का आक्रमण हुआ।

बाली तथा बोलियों द्वीप में हिन्दु-राज्य की स्थापना—बाली में हिन्दु राज्य की स्थापना का इतिहास ठीक-ठीक नहीं प्राप्त होता। विद्वानों का ऐसा मत है कि साठवीं शताब्दी ई० के लगभग वहाँ हिन्दु राज्य की स्थापना हो चुकी थी। तभी इन्द्रवज्र काशिका नामक कोई क्षत्रिय शासक वहाँ राज्य करता रहा। तत्पश्चात् बसबी शताब्दी में उद्यमन केसरी आदि भारतीय राजाओं का उत्प्रेक्ष मिलता है। ऊपर बताया जा चुका है कि १६वीं शताब्दी में बाबा के हिन्दुओं में मुख्यतः आक्रमणों के समय से बाकी में खरप ली थी। तब से बाकी में हिन्दु-सम्प्रदाय का प्राबल्य स्थापित हो गया है।

बानियों में चौबी शताब्दी ई० में हिन्दु राज्य की स्थापना हुई थी। मूलबर्मा उस समय वहाँ का शासक था।

सिंहल द्वीप—छठी शताब्दी ई० में काठियावाड़ के राजकुमार विजय ने वहाँ भारतीय उपनिवेश की स्थापना की। तत्पश्चात् सम्राट् अशोक ने अपने पुत्र और पुत्री को भेजकर दोनों देशों के सम्बन्ध को बढ़ाया और लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। बौद्ध धर्म का लंका में अधिक स्थापन हुआ। यहाँ के शासकों ने उसे प्रथम प्रधान किया। लंका बाकों ने बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पश्चात् पाकी भाषा तथा ब्राह्मी लिपि का ज्ञान प्राप्त किया।

सुबर्ब भूमि—भारतीय साहित्य में बर्मा की सुबर्ब भूमि कहा गया है। आदि काल से ही भारतीय व्यापारी यहाँ बर्ब प्राप्ति के लालच से व्यापार करने आते थे। सम्राट् अशोक ने यहाँ बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। यहाँ के निवासी अब भी बौद्ध अनुयायी हैं।

श्याम—म्यांमर की शताब्दी ई० तक वह कम्बोजिया के हिन्दु राज्य के अधीन था तत्पश्चात् यह बाई जाति के प्रभाव में आया। उसी से यहाँ बौद्ध धर्म का भी प्रचार शुरू हुआ। यहाँ अब भी बौद्ध धर्म का प्राबल्य है।

उपरोक्त विवरण से हमें भारतीय सम्प्रदाय के प्रसार की छाँची मिलती है। इन सारे उपनिवेशों का अन्तःकरणों युक्तों मनीलों आदि बाह्य आक्रमणकारियों तथा पारस्परिक संबंधों न कर दिया।

वैदेशिक सम्बन्ध का भारत पर प्रभाव

साम्राज्यों के युग में भारत का विदेशों से पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित रहा जिसका प्रभाव भारत पर पड़े बिना नहीं रह सका। मौर्य-काल से ही हमें व्यापक रूप में विदेशी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगते हैं। चन्द्रगुप्त के दरबार पर ईरानी प्रभाव हमें स्पष्ट रूप से देखने की मिलता है। (१) ईरानी सम्राट् अपने जल्प-विषय के समय 'हैट-वाशिंग' (Hate washing) का उत्सव मनाते थे। चन्द्र गुप्त मौर्य भी इस प्रथा का पालन करता था। (२) दूसरा प्रभाव यह पड़ता है कि ईरानियों की भाँति 'अर्ब-सात्र' में कौटिल्य ने यह व्यवस्था की है कि वैद्य तथा उपस्थी में परामर्श लेते समय सम्राट् उस कमरे में बैठे जहाँ हवन-आग्नि (पवित्र-आग्नि) बल रही हो। (३) सीमांत प्रदेशों में सिंधि का शताब्दियों तक प्रयोग में लाना भी भारत पर ईरानी प्रभाव का द्योतक है। (४) अशोक के अभिलेखों पर भी हम ईरानी प्रभाव देख सकते हैं। (५) ईरानी पर्वी शरप का प्रयोग भी ईरानी प्रभाव का प्रकट करता है। (६) विदेशियों ने भारत का सम्बन्ध रहने का एक सबसे बड़ा ऐतिहासिक प्रभाव यह पड़ा कि विदेशी भाषियों ने हमारे देश के विषय में अपनी योग्यता के अनुसार कुछ न कुछ

लिखा है। इनके विवरणों से हमारे इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है। इन यात्रियों में मेगस्थनीस बाइमेकस डायोनीसियस काहियान ड्योनसिग इतिथस भावि के नाम विद्यमान उल्लेखनीय हैं। (७) कहा जाता है कि बिरोशों के सम्पर्क के कारण ही बौद्ध धर्म की महायान शाखा को जनपद का गौरव मिला। (८) भारतीय कला और विज्ञान (व्योक्ति) पर जो यूनानी प्रभाव पड़ा, उसका संक्षिप्त परिचय हम पिछले पृष्ठों में प्राप्त कर चुके हैं। (९) बिरोशों सम्पर्क का प्रभाव हमारे शासन-प्रणाली पर भी कुछ-कुछ पड़ा। बिरोधकर चीन और रोमन शासन प्रणाली के कुछ तत्व हममें अवश्य ग्रहण किए। कुपाय धर्मकों का अपने को देवपुत्र कहना कुछ-कुछ चीनी प्रणाली से मिलता-जुलता है। (१०) यूपों की मुद्राओं की सुश्रुता और कलात्मकता में हम रोमन प्रभाव ही देखते हैं। (११) बिरोशों व्यापार से भी भारत को काफी लाभ पहुँचा है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि बिरोशों के सम्पर्क में आकर भारत को काफी लाभ हुआ कुछ बर्बर जातियों के आक्रमणों ने उसे क्षति भी पहुँचाई।

उपनिवेशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

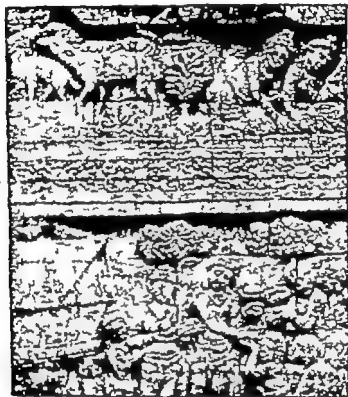
यहाँ हममें बिरोशों से कुछ सीखा था यहाँ उसके स्वाम पर हमने उन्हें बहुत कुछ सिखाया था। भारतीय उपनिवेशों पर भारतीय धर्म साहित्य कला और सामाजिक रीति-रिवाजों का गहरा प्रभाव देखन को मिलता है। यहाँ हम उसी प्रभाव को संक्षेप में बतायेंगे।

जावा बोनियो अणम कम्बोडिया मलाया आदि द्वीपों के निवासी भारतीय साहित्य धर्म और राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं से काफी प्रभावित थे। उनके लक्षों से ही इसका प्रमाण मिल जाता है। चम्पा और यूनान के लेखों से भी यह ज्ञात होता है कि यहाँ के लोग हमारी पौराणिक कथाओं से बुरा परिचित थे। इसी प्रकार पश्चिमी जावा में जो अतिरिक्त मिले हैं उससे यह पता चलता है कि यहाँ के निवासी भारतीय संस्कृति से काफी प्रभावित थे। उन पर हिन्दू-धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके अभिलेखों की भाषा धृष्ट संस्कृत है और भारतीय अभिलेखों की भाँति हैं। वे राज्य में मिल पाये हैं। जावा में तो महीना और पूरी नापने के पैमाने के भारतीय धर्म में लगे जात्र भी परिचित हैं। यहाँ की कुछ नदियों के नाम जैसे गोमती चन्द्रमहा आदि विस्तृत भारतीय हैं। बोनियो और मलाया द्वीप में भारतीय धर्म का प्रभाव इस प्रकार देखने का मिलता है कि कुछ भारतीय देवताओं की मूर्तियाँ बोनियो में और बुनी गधम मन्दी आदि की मूर्तियाँ मलाया में प्राप्त हुई हैं। मूर्तियों के साथ जो मस्तक-आत्र भारत में दिखाये जाते हैं वही यहाँ भी देखन को मिले हैं। उदाहरणार्थ यहाँ भी पित्र के हाथ में त्रिशूल और विष्णु के हाथ में चक्र संलग्न गदा तथा पद्म दिखाया गया है। इतना ही नहीं वे भी धमा को पवित्र नहीं मानते थे जिसका प्रमाण यक्ष-मन्त्र मिलता है। बाह्य धर्म के नाच-साज यहाँ बौद्ध-धर्म का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

भारतीय धर्म से प्रभावित होने वाले स्वाम भारतीय कला में अवश्य ही प्रभावित होने। जावा की कला पर निश्चय ही भारतीय कला का प्रभाव पड़ा। जावा के सुयमिड बोरोबातूर के स्थापत्य चित्रों में महारामा गौतम बुद्ध के जीवन में सम्बन्धित घटनाएँ चित्रित हैं। यह पूर्णतया कला का प्रभाव ही है।

जावा के नायार्जिक विचारों पर भी भारतीय प्रभाव स्पष्ट रूप से देखन को मिलता है। उनकी धामन-मूर्ति पर भी हमारे देश का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता

। जम्पा के सामाजिक संमेलन पर भी भारतीय प्रभाव रहा क्योंकि वह बहुत कुछ
मारी बर्न-स्यवस्था के अनुकूल रहा। वहाँ भी हमारे देश की भाँति बौद्धा बहुत परि



चित्र १५—जावा का बोरोबोदुर मन्दिर

वर्तन के साथ चार बर्न बने। वहाँ के मूल और संमेलन पर भी भारतीय प्रभाव पड़ा है।
इतना ही नहीं वहाँ संस्कृत भाषा का काफी प्रचार रहा और वही जम्पा की राज्यभाषा
भी थी।

कम्बोडिया के कला पर भी भारतीय कला का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को
मिलता है। वहाँ का सुप्रसिद्ध मन्दिर अंबकोरवात भारतीय मन्दिरों से काफी मिलता
जुलता है। अन्य प्राचीन मन्दिरों की आकृति भी बहुत-कुछ मूल्य काशीन मन्दिरों-सी
है। स्थापत्य विषयों पर भारतीय प्रभाव और भी अधिक पड़ा है। कहा जाता है कि वहाँ
की अनेक मूर्तियों और मन्दिरों का निर्माण भारतीय कलाकारों ने किया था जो उप
निवेश-स्थापका के साथ कम्बोडिया गये थे।

कलिंग निवासियों ने मलाया और उनके समस्त द्वीपों में भारतीय सम्प्रदाय का
प्रचार किया था। सुमात्रा बौद्ध धर्म का सुप्रसिद्ध केन्द्र बन गया था और लगभग एक
हजार बौद्ध भिक्षु वहाँ निवास करते थे। इन्होंने सुमात्रा के निकटवर्ती भागों पर अपना
बहुत प्रभाव छोड़ा था। मलाया ने सभी अभिलेख संस्कृत भाषा में हैं।

- उपर्युक्त स्थानों की सम्पत्ता एवं संस्कृति का पाठ पढ़ाने का योग भारत को प्राप्त है। इन स्थानों के अतिरिक्त विश्व के अन्य देशों को भी भारत ने अपने धर्म और साहित्य से प्रभावित किया। संस्कृत के प्रकाश विद्याओं की विद्वत्ता से विदेशियों ने काफी लाभ उठाया था। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भारतीयों ने प्राचीन काल में विश्व के अनेक देशों को सम्पत्ता और संस्कृति सम्बन्धी कुछ ज्ञान दिये और जिनसे कुछ सीखा जा सकता था उससे लाभ प्राप्त करने में भी वे नहीं शूक।

प्रश्न

१. विदेशों में बौद्ध धर्म तथा भारतीय संस्कृति के प्रसार का संक्षिप्त इतिहास लिखिए।

२. विदेशों में उपनिवेश-स्थापना पर प्रकाश डालिए।

३. विदेशी सम्पर्क से भारत को क्या लाभ हुआ?

1. Briefly describe the establishment of Indian colonies in the Far East. (Apr 1935.)

2. Describe the objects, nature and extent of Hindu colonisation of "Greater India." (Sept. 1936.)

अध्याय २२

राजपूत काष्ठ

भाग १ राजपूत कौन थे

हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद भारतवर्ष में फिर राजनैतिक विघटन हो गया। उत्तर तथा दक्षिण में छोटे-छोटे राज्य बन जाते हैं। परन्तु अब से राज्यकुल राजपूत के नाम से पुकारे जाने लगे। अब मूल यह उपस्थित होता है कि क्या ये राजपूत पूर्व काष्ठ के क्षत्रियों का ही कालान्तरिक नाम है या वे कौम कोई और थे जिन्होंने अपने राज्य स्थापित कर लिये थे और अपने को राजपूत कहने लगे। राजपूतों पर जोर करने वाले विद्वानों ने अवश्य अपने-अपने मतों का प्रकाश डाला है परन्तु उनमें मेलक नहीं है। अब हम उन विद्वानों के विभिन्न-विभिन्न मतों पर विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

अग्निहोत्र का सिद्धान्त—बम्बहारसाई ने जो पृथ्वीराज चौहान का बरबाटी कवि या राजपूतों की उत्पत्ति के विषय पर लिखा है कि जब परमुद्रम ने पृथ्वी का निःशेष कर दिया तो बाह्यलों को उनकी उपस्था में रक्षा करने वाला कोई नहीं रहा। अपने को निःशरण पाकर उन्होंने अपने उपोत्सव पर धरोरा कर जाबू पर्वत पर एक महान यज्ञ किया। इसी यज्ञ की समाप्ति पर उस हवनहुँद से चार सप्तस्र बाढ़ाओं की उत्पत्ति हुई। इसी चार बाढ़ाओं के वंशज कमल चौहान बालुक्य (या सीताजी) परमार तथा प्रविहार कहलाये।

इस मत पर विचार करने पर हम समझ सकते हैं कि यह कितना लोचला है। परमुद्रम की कथा रामायण काल की है और राजपूत हर्ष के बाद इतिहास क्षेत्र में आये। यह मत तो बम्बहारसाई ने केवल चौहानों की महत्ता स्थापित करने के लिये ही लिखा था। यह कवि की कमनसमक रचना मात्र है।

अभारतीयता सिद्धान्त

टाड का मत—राजस्थान पर प्रवेश करने वाले महान विद्वान् जेम्स टाड ने राजपूतों की धार्मिक बनावट उनके रस-रिवाज आदि का अध्ययन करते हुए उनके उत्पत्ति के विषय पर भी प्रकाश डाला है। उनका मत है कि राजपूत अभारतीय हैं। भारत पर आक्रमण करने वाले एक हुए कुषान गुर्जर आदि भारतवर्ष को ही अपना घर बनाकर वहीं बस गये और यही उन्होंने अपने राज्य भी बना लिये। ये विदेशी आक्रमणकारी अपने साथ पर्याप्त भाषा में अपने देश की स्त्रियों को नहीं लाये थे। अब उन्होंने यहाँ के विभिन्न प्रांतीयों के स्त्रियों से विवाह कर लिया। इसी के वंशजों ने जो युद्धप्रिय थे अपना एक पृथक वर्ग बना लिया और अपने को राजपूत कहने लगे। राजपूतों का अग्नि पूजा करना उनका अपना-अपना सामाजिक संगठन तथा कुल बनाता उनके धर्म की बनावट इस बात का प्रमाण है। इस मत का समर्थन प्रोफेसर मंडारकर ने भी किया है।

भारतवर्ष में राजनीतिक उन्नत-पुनरुत्थान के समय ब्राह्मणों ने इनकी शरण ली और इनकी सुरक्षा या संरक्षण से जोड़ कर इनकी काल्पनिक संस्थापनी बना दिया। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि विदेशियों के आक्रमण के पहले के समयों में राजपूतों का उत्थेय नहीं मिलता है। इसका कारण यही है कि उस समय राजपूत नाम की जाति ही नहीं।

अतः सिन्धु साहस इस मत से सम्पूर्ण सहमत नहीं है फिर भी वे इस बात को मानते हैं राजपूतों में काफी मात्रा में विदेशी लोगों की संख्या है। उनके मत से सन्धिय तथा बिदेसी दोनों के ही ऐसे बघज जो युद्धप्रिय थे तथा जिन्होंने यज्ञ तथा सामान कार्य अपने हाथ में ले लिया था अपने को राजपूत कहने लगे।

भारतीयता का सिद्धान्त

भारतीय विद्वान् बच महोदय तथा बीरीयकर बोला दोनों ने ही अभातीयता के सिद्धान्त का संरक्षण किया है। उनका मत है कि राजपूत आर्य संतान है। अग्नि पुत्रा भारतवर्ष का प्राचीन संस्कार है। बीर्य बर्ष के उदय के पूर्व अग्नि पुत्रा आर्यों में प्रजापति माना में प्रचलित थी। उन्होंने यह भी कहा है कि गीरी तथा वसन्ती घाटाओं के सिलसिलों में राजपूतों ने अपने को सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी कहा है। इन विद्वानों के मत में ऐसा उत्थेय बिना ऐतिहासिक तथ्य के नहीं हो सकता है।

ले इन तारे मतों को देखते हुए हम यही कह सकते हैं कि राजपूत न तो सम्पूर्ण रूप से आर्यों की ही संतान थे और न सम्पूर्ण विदेशियों के बघज थे। इस वर्ग में भारतीय तथा अभातीय सभी सम्मिलित हो गये थे। इस सभी लोग राजनीतिक विषय लक्ष्मण से नाम उठाकर अपने राज्य बनाने में सफल हुए और अपने को औरों से पृथक् रखने के लिये अपने आप को राजपूत कहने लगे। कालांतर में राजपूत विषय पर राजपूत बन गया।

भाग २ उत्तरी भारत के मुख्य राजपूत राज्य

हम की मृत्यु के बाद भारत के राजनीतिक घनमण्डल पर एक बार पुनः कुछ समय के लिए अंधकार छा जाता है। यह परिवर्तन पर हमें छोटे-छोटे राज्य दिखाई देते हैं। इन राज्यों का पारस्परिक संबंध इस युग की राजनीतिक अवस्था की विशेषता बन जाती है। भारतवर्ष के छोटे-छोटे राज्यों का वर्णन नीचे दिया जाता है।

कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार

गुर्जर प्रतिहारों की संस्थापनी द्वारा हमें ५०० ई० के पूर्व का उनका इतिहास नहीं मिलता होता। सबसे पहले उनका उत्थेय पुनर्केसिन द्वितीय के एहोल अभिषेक (५१४ ई०) में किया गया है। छत्री सत्ताधी के प्रारम्भ से गुर्जरों ने भारत की राजनीतिक घटनाओं में महत्वपूर्ण भाग लिया। उन्होंने पंजाब, मारवाड़ और मद्रास में अपने राज्य स्थापित कर लिये।

गुर्जर प्रतिहारों के प्रारम्भिक इतिहास में सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि आर्यों के प्रसार की रोक कर गुर्जर प्रतिहारों ने बसुन्ग भारत की ग्रीहीणी (हार रतन) का कार्य किया। इस बघ के संस्थापक नागमट्ट प्रथम ने जिसका समय मनुमानस ७२५-७६० तक निश्चित किया जा सकता है उन्होंने को पराजित किया था।

गुर्जर-प्रतीहार बंस का अतुल्य नरेज बत्सराम अपने कुल का एक सक्रियवासी राजा था। यह सम्भवतः नाममट्ट प्रथम का प्रणीत था। बत्सराम ने बंगाल के सामक को पराजित किया और उससे दो छत्र छीन लिये। किन्तु राष्ट्रकूट बंस के प्रभु नामक राजा ने उसे पराजित कर दिया और अन्त में यह बंगाल के राजा के द्वारा मारा गया। बत्सराम ने अपने बंस को शक्ति और प्रतिष्ठा को बढ़ाने का प्रयास किया।

बत्सराम का उत्तराधिकारी नाममट्ट द्वितीय (८००-८१४) भी अपने कुल का एक प्रतापी सम्राट् था। नाममट्ट को अपने राज्य-जीवन के प्रारम्भ में कई सफलताएँ प्राप्त हुईं। नाममट्ट द्वितीय का सब से महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उसने बंगाल के राजा बर्मपाक्ष को मुर्जर के निकट पराजित किया और कमीज के शासनक पञ्चमुख को वहाँ से निष्काश कर बाहर कर दिया। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि बंगाल का राजा बर्मपाक्ष चक्रायुध का संरक्षक था। कमीज पर गुर्जर-प्रतिहारों का अधिकार स्थापित हो गया। नाममट्ट द्वितीय को इस बात के लिए खेद प्रदान किया जाता है कि उसने उत्तर में सिन्ध से लेकर दक्षिण में आन्ध्र तक और पश्चिम में क्षात्रप (काठियावाड़ में एक स्वाम) से लेकर पूर्व में बंगाल की सीमाओं तक अपने राज्य का विस्तार किया। यद्यपि राष्ट्रकूट बंस के राजा मोहिन्द तृतीय ने नाममट्ट द्वितीय को पराजित कर दिया तथापि कमीज पर प्रतीहार बंस का अधिकार बना रहा। नाममट्ट द्वितीय को गोविन्द तृतीय द्वारा पराजय सहन करने से कुछ हानि अवश्य उठानी पड़ी किन्तु उसने अपने हाथ से कमीज नहीं जाने दिया और इसे अपनी राजधानी बनाई। नाममट्ट द्वितीय का उत्तराधिकारी राममट्ट था (८१४-८४०) जिसके शासन-काल में कोई महत्वपूर्ण घटना घटित नहीं हुई।

मिहिर भोज—मिहिर भोज अपने बंस का अत्यन्त प्रतापी और प्रभावशाली नरेज था। इसने सुदीर्घ काल (८४-८९०) तक शासन किया। मिहिर भोज को ही वास्तव में अपने राजकुल की सीमाओं को विस्तृत करने का श्रेय दिया जा सकता है क्योंकि उसके पूर्वजों का पर्याप्त समय पार्सों और राष्ट्रकूटों से युद्ध करने में व्यतीत हो जाता था। मिहिर भोज को इस बात का गौरव प्राप्त था कि राजनीतिक प्रभुता के लिए तीन राजकुलों में जा संघर्ष छिड़ा उसने अपन बंस को सबसे अधिक शक्तिशाली बनाया। विभिन्न दिशाओं में उसकी विजयों के फलस्वरूप गुर्जर-प्रतिहारों का राज्य एक वास्तविक साम्राज्य के रूप में परिणत हो गया। उसके राज्य में पूर्वी पंजाब राजपुताना का अधिकांश भाग वर्तमान उत्तर प्रदेश का अधिकतर हिस्सा और ग्वातियर आदि प्रदेश सम्मिलित थे।

महेन्द्र पाल—मिहिर भोज का उत्तराधिकारी महेन्द्र पाल (८९०-९०८) अपने महान् पिता का एक पुत्र था। अपने पिता द्वारा प्राप्त साम्राज्य के ऊपर न केवल उसने अपना मुकुट अधिकार रखरा बल्कि उसमें कुछ अन्य भाग भी मिलाये। उसके अधिपत्य पेशवा (करनाम आधुनिक पूर्वी पंजाब का एक जिला) अगल में गया तथा काठियावाड़ में प्राप्त हुए हैं। शिवहरीजि (ग्वातियर) तथा आबस्ती के मुक्ति में भी उसके अधिपत्य मिले हैं। उसके अधिपत्य यह सूचित करते हैं जलने पार्सों से मगध और उत्तर बंगाल छीन लिया। काश्मीर के राजा शंकर वर्मन ने आक्रमणों के फलस्वरूप महेन्द्रपाल की राज-सीमा कुछ उड़ गई, परन्तु अन्य किसी प्रकार से ह्रास को सूचना हमें नहीं प्राप्त होती। महेन्द्र पाल ने हर्ष और यशोधर्मन की मूर्ति बिद्या को प्रोगाहन दिया। उसके राज दरबार में राजातर नामक कवि रहता था।

महीपाल—महेन्द्रपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र भोज द्वितीय हुआ किन्तु अन्ततः अल्पकालीन शासन के बाद वह मर गया। उसने बाल-उत्तका अनूप महीपाल (११०-४०) कर्मीन के राज्य-सिंहासन पर भारतीय हुआ। महीपाल के शासन-काल से कर्मीन के प्रतीहार बंस की राजव्यवस्था विचलित होने लगी परन्तु उसके शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षों में उसके राज्य में शांति और समृद्धि व्याप्त थी। साम्राज्य की शक्ति इस समय अशून्य बनी रहती और इसकी सीमाएँ संकुचित भी नहीं होने पाई। कवि राजधर ने लिखे उसकी राजसभा को भी सुशोभित किया था उसे अर्जुनवर्त का महाराजविराज कहा है और उसने मुरखों सेकड़ों, कस्बों के राजों और कुम्हारों पर महीपाल की विजयों का भी उल्लेख किया है। सन् ११६ ई० में राष्ट्रकूट प्रदेश इन्द्र तृतीय ने एक बहुत बड़ी सेना लेकर कर्मीन पर आक्रमण कर दिया और इसको अपने अधिकार में कर लिया। परन्तु महीपाल ने चम्बेल राजा की सहायता से अपने राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया। कर्मीन के साथ-साथ उसने दोबाब बनारस स्वात्मिक और सुदूरवर्ती काठियावाड़ पर भी अपना स्वात्मिक स्थापित किया।

महीपाल के उत्तराधिकारी—महीपाल की मृत्यु सन् १४४ ई० के लगभग हुई। उसके बाद महेन्द्रपाल द्वितीय राजा हुआ। उसने अपने पिता के राज्य को दो-तीन वर्ष तक सम्भाला। उसके बाद उसका अनूप देवपाल प्रतीहार साम्राज्य का स्वामी हुआ। देवपाल के समय से साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया। परवर्ती प्रतीहार राजाओं ने बका की भाँटी राजपूताना के कुछ भागों और बाल्मिक पर किसी प्रकार अपना अधिकार स्थापित रखा। परन्तु चम्बेलों ने जो पहले उनके सामन्त के उत्तका विशेष करते हुए, अपनी आक्रमणकारी नीति प्रारम्भ की। कामरवी ने गुजरात में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी परमार मालवा में स्वतन्त्र हो गए और चम्बेलों तथा केरवों ने यमुना तथा गर्महा के मध्यवर्ती भाग में अपने को स्वतन्त्र घोषित किया। महीपाल के परचातु महेन्द्रपाल देवपाल विजयपाल और राज्यपाल प्रतीहार बंस के राजसिंहासन पर बैठे ने परन्तु इनमें से कोई भी अपने बंस के वीरों का पुनर्जीवित न कर सका। जब राज्यपाल कर्मीन के राज्य सिंहासन पर बैठा (११०-१०१८) तब उसका राज्य तिकुड़ कर केवल नवा और बमुना नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश तक ही रह गया था। युक्तमात्रों के आक्रमण इसकी घटनाओं में होने लगे थे जिनका आपात राज्यपाल के राज्य को भी लगा। जब चम्बेलों के महमूद ने ११८१९ में कर्मीन पर आक्रमण किया तो राज्यपाल ने निर्विरोध आत्मसमर्पण कर दिया। फिर भी महमूद ने कर्मीन को काफी लूटा-सतोटा। महमूद के लौट जाने के बाद चम्बेल राजकुमार विद्याधर ने राज्यपाल को उसकी कार्यरता का दण्ड देन के लिये उसके ऊपर आक्रमण कर दिया और मृत्यु में उसे मार डाला। इस प्रकार प्रतीहार साम्राज्य को एक हुनस अन्त होना पड़ा।

सभी प्रतीहार-नरेश सैन्य या वैष्णव धर्मों के अनुयायी थे। कुछ प्रतीहार शासक वैष्णव धर्म को मानते थे और कुछ दैव धर्म को। मन्मथी के प्रति भी उनकी यत्ना और शक्ति थी। कूर्मर प्रतीहारों के परचातु कर्मीन का राज्य गहड़वालों के अधिकार में चला गया।

कर्मीन के गहड़वाल मरत

गहड़वालों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनका मूल निवास स्थान अतिथि प्राण में था परन्तु इन चारणा का अन्य विद्वान् समर्थन नहीं करते। कर्मीन पर

इन्द्रदेव नामक एक बहुइशान सरदार ने कब्जा कर लिया। चन्द्रदेव ने सभादीक्षित विश्व भारण किये जिससे प्रवीत होता है कि वह एक स्वतन्त्र नृपति था। चन्द्रदेव ने पांचाल नरेश को, जिसका सम्बन्ध राष्ट्रकूट कुल से था पराजित कर दिया और बल-भूरियों की उन्नता करते हुए उसने अपने राज्य का विस्तार सम्भवतः इलाहाबाद और बनारस तक किया। बहुइशानों ने काशी को अपनी दूसरी राजधानी का रूप ग्रहण किया और अमिकेशों में इनको काष्मिकुब्ज तथा काशी का स्वामी कहा गया है।

महान चन्द्र—चन्द्रदेव का उत्तराधिकारी रामचन्द्र हुआ। बहुइशानों ने आमीनी घासकों की सत्ता का विरोध किया क्योंकि मुस्लिम इतिहासकारों के विवरणों से ज्ञात होता है कि मसूद तृतीय (१०९९-१११५ ई०) ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर दिया जिसकी राजधानी कभीरु थी और उसके राजा को बन्दी लिया गया। इन इतिहासकारों के अनुसार मल्लिखान ने (मल्लि नाम सम्भवतः महान चन्द्र का एक विकृत रूप है) एक सहरी रकम भेंटकर अपने को मुक्त किया।

योगिन्द चन्द्र—योगिन्द चन्द्र सन् ११५४ ई० के पूर्व अपने पिता के राज सिंहासन पर बैठा। योगिन्द चन्द्र जिससमेन्द्र अपने कुल का सबसे प्रतापी और पराक्रमी शासक था। उसके वालीस अमिकेश दिन पर १११४ से लेकर ११५४ तक के वर्षों की तिथियाँ पड़ी हैं उनके सुदीर्घ शासन-काल का परिचय देते हैं। उसके सिक्कों से भी बहुइशानों की परिवर्धमाना क्षति की सूचना प्राप्त होती है। उसके अमिकेश यह स्पष्ट सूचित करते हैं कि बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षावर्षों में उत्तरी भारत के काशी विद्याल भूसाध पर उसका प्रभाव विद्यमान था। उसने लाहौर के आमीनी घासकों का विरोध किया और पाकों से भी बड़ा लड़ा। उसने तीन राजाओं की नीका क्षति की उन्नता की दृष्टि से देखते हुए मूर्तर अवस्था पटना तक अपनी सेना बढ़ाई। उसने चन्देयों को पराजित करके उनसे पूर्वी भागना छीन लिया। इतिहास कोषक के कलचुरि गैरों के साथ योगिन्द चन्द्र ने कूटीयिक सम्बन्ध स्थापित किये।

विजय चन्द्र—योगिन्द चन्द्र का उत्तराधिकारी उसका तृतीय पुत्र विजयचन्द्र (११५५-११७०) था। उसने मुकों से सम्बन्ध की रक्षा की। अपने शासन-काल में उसने मुसलमानों को अपने राज्य की भूमि पर नीब नहीं रखने दिया। 'पृथ्वीराजराजो' नामक हिन्दू काव्य-ग्रन्थ में इसके विजयों की सातिका दी हुई है। परन्तु उस पर विश्वास करना कठिन है। विजयराज श्रीकलदेव के एक लेख से ज्ञात होता है कि उसने विजय चन्द्र से दिल्ली छीन ली।

जयचन्द्र—विजयचन्द्र का उत्तराधिकारी जयचन्द्र ११७० ई० में कदोत्र के राजसिंहासन पर बैठा। अपने बच का वह एक प्रतापी नरेश था। उसके पास एक विद्याल सेना थी। उसकी क्षतिग्रस्त मूलसन्तान इतिहासकारों ने भारत का सबसे बड़ा नम्राद कहा है। भारतीय इतिहास और अनुभूति में उसे काशी स्वतंत्रि (या कुषपाति) प्राप्त हुई है। उसके अमिकेश दिन पर ११७० और ११८९ के बीच की तिथियाँ खरी हैं वह सूचित करते हैं कि उसने उत्तराधिकार द्वारा जो विद्याल साम्राज्य प्राप्त किया था उसकी पूर्ण रक्षा की। कहा गया है कि उसने वैजयिरी के यादवों, गुजरात के मोहम्मदियों और मुकों को कई बार पराजित किया। उसके राज्य की पूर्वी सीमाएँ गया तक फैली थी। पूर्व में उसका राज्य बंगाल के लोगों के राज्य की नीया का स्पर्ध करता था। 'पृथ्वीराजराजो' के अध्ययन से पता चलता है कि लोहर के श्रीहान नृपति पृथ्वीराज तृतीय उसकी पुत्री संयोगिता की स्वयंवर-स्वत में गया के

प्रथम ने सन् ११०५ ई० के लगभग राज्य किया। उसके पुत्र जयचरण ने जयम
मैव जयराज जयमेर नामक नगर की स्थापना की। उसने बाह्यबलों से राज्य
में शासन करना शुरू किया। वह अपने कुल का प्रथम शासक था जिसने एक जाति-
मर्यादक साम्राज्यवादी नीति का अवलम्बन किया। उसने उम्मीद पर आक्रमण किया
और परमार सेनानायक को बन्दी बना लिया। उसके लिए यह कहा जाता है कि उसने
मुझ में हीन राजाओं को उसवार के घाट उतार दिया। परन्तु हमें इस बात का विवरण
प्राप्त नहीं है कि इन मुझों के फलस्वरूप उसके राज्य की सीमा में कोई विस्तार हुआ या
नहीं। जयचरण के उपरांत बर्माचरण शासक हुआ जिसके दो अभिषेको पर सन् ११३९
ई० की तिथि हो गई है। उसका परासिंह सिद्धराज और बलिहाराज के कुमारपाल ने
संघर्ष हुआ। बर्माचरण ने कुछ तुर्कों (बर्माचरण के मुसलमानों को जिन्होंने
उसके राज्य पर आक्रमण किया था) मुझ में पराजित कर दिया और मार डाला।

विपह राज बल्लभ—विपह राज बल्लभ जयचरण के ससुराल बाह्यमान बंध का एक
अति प्रतापी विस्मात जनेव था जिसने बाह्यमानों की शक्ति को काफ़ी बढ़ा दिया
और उसे एक साम्राज्य-सत्ता के रूप में परिणत करने का प्रयास किया। सन् ११५३ ई०
में विपह राज बल्लभ बोटकरों के आक्रमण पर बैठा। उसने महानामों
में दिल्ली जौन कर अपने राज्य में भिजा दिया। उसने बालासिंहपुर, नरसिंह और
राजपूताना के अन्य छोटे-छोटे भू-भागों पर अपना अधिकार कर लिया। ये राज्य
कुमारपाल के अधीनस्थ थे जसएव इनकी विजित कर विपह राज बल्लभ ने उस पराक्रम
का बरका किया जो उसके पिता को बालक्यों द्वारा सहन करनी पड़ी थी। उसने
गुजरात तक अपने राज्य की सीमा बढ़ाई और बर्माचरण को पराजित किया।
विपह राज बल्लभ के लक्ष्यों से पता चलता है कि उसका राज्य उत्तर में सिवासक की
हादियों तक फैला हुआ था और दक्षिण में कम से कम जयपुर के जिन की
उसके राज्य की सीमा स्पर्श करती थी।

विपह राज बल्लभ प्राचीन भारत के राजपूत राजाओं की शक्ति में एक वीरव
वाली स्थान का अधिकारी है। वह केवल विजिताहीन बाहरने उसका मुख्य उसके एक
घन्य 'हरिकेति नाटक' पर था। जयचरण है। वह स्वयं एक नाटककार था और
विद्वानों एवं कवियों का आश्रयदाता भी था। उसके दरबार में सोमदेव रहता था जिसने
अपने मरमक के सम्मान में 'ललितविपह राज नाटक' का प्रबंधन किया। विपह राज
को विद्यानुपविता भी विस्मात थी। उसने माछवा के गोक प्रथम की माति जयम
में एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना कराई थी। इस संस्कृत विद्यालय के स्थान पर
आज एक मस्जिद खड़ी है जो विद्यालय की एक भव्य दीवार तुड़काकर बनवाई गई
थी। जयमेर को इस मस्जिद का नाम 'बडाई दिन का सोपड़ा' है। इनमें वह कुछ
पाषाण जर्तों पर 'हरिकेति नाटक' के कुछ अंश भूरे हुए दिखाई पड़ते हैं। ललित
विपह राज नाटक की संस्कृत विद्यालय के सम्मानधरों पर उत्कीर्ण भिजा है। विपह
राज बल्लभ का बहाण्ड ११६४ ई० में हुआ।

पृथ्वीराज तृतीय—बाह्यमान बंध का सबसे प्रतापी राजा पृथ्वीराज तृतीय
था। उसकी भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट के रूप में उसकी स्मृति लक्ष पाषाणों से
सर्वश्रेष्ठ की गई है और इनमें अनेक लोक-गीतों की विषय प्रदान किया है। जय
मरदाई नामक कथा-नामा कवि ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराज रागों' में जने
मरदाई बना दिया है। उसके जीवन चरित्र से सम्बन्धित एक अन्य ग्रन्थ है 'जिनका
नाम 'पृथ्वीराज विजय' है। मुस्लिम इतिहासकारों ने भी पृथ्वीराज तृतीय के विषय में

मल्लाहीन सिक्खी ने सन् १३०१ में किया। इससे कुतुबुद्दीन ने हरिद्वार को पराजित कर चौहान बंस का अन्त कर दिया।

मुन्तरलखण्ड के चन्देल

प्रतीहार साम्राज्य के अस्तित्वक्षय पर आ राज्य उठ खड़े हुए उनमें जैनाकमक्षि (मुन्तरलखण्ड) के चन्देलों का राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था।

नवीं सताब्दी के प्रारम्भ में मल्लू ने कटरपुर में निष्कट अपना एक राज्य स्थापित कर दिया। मल्लू के पीछे जयसिन्ध (जैना वा जैनाक) और विजयसिन्ध (विजा वा विजयक) थे। जयसिन्ध के ही नाम के आचार पर चन्देल राज्य का नाम जैनाकसिन्ध पड़ा। इस बंस का प्रथम राजकुमार, जिसने वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त की, हर्ष था। इसने महीपाल को ९१६ में पण्डित आक्रमण के उपरान्त कन्नौज पर फिर से अधिकार करने में सहायता प्रदान की। उसने महीपाल प्रथम या सित्तिपाल का उसके मूह-कमल में भी दाख दिया और उसके सोतेके माई मोहराज द्वितीय को सिद्ध-धनचतु कर दिया। हर्ष के समय में चन्देलों की शक्ति समूना तक फैल गई जो उनके और कन्नौज राज्य के बीच की सीमा बन गई। हर्ष ने बाह्यमन वर की एक कन्या के साथ अपना विवाह किया था। उसकी ही चन्देलों की शक्ति और महानता का वास्तविक संस्थापक कहा जा सकता है।

यक्षोवर्मन—हर्ष का पुत्र यक्षोवर्मन था जिसने अपने को पूर्ण स्वतन्त्र घोषित कर दिया। उसने मूर्खों की कापी धृति पहुँचाई। वह एक महत्वाकांक्षी नरेश था। उसने प्रतीहार साम्राज्य को मिरतो हुई अवस्था में जो उसकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए श्रेष्ठ प्रस्तुत किया वह वैदिपी के विजय आक्रमण करने में बड़ा सामर्थ्यवान प्रभावित हुआ इसी आक्रमण के क्रमवर्तमान उसे काकिजर का प्रसिद्ध बर प्राप्त हुआ। यक्षोवर्मन ने उत्तर में समूना तक अपने राज्य का विस्तार किया। इसके बाद उसने अपना विजय अभियान आरम्भ किया और अभिनेत्रों के अनुसार उसने वहाँ कोसलो काश्मीरियों में बिलों मालवों, वैदिपी और मूर्खों को परास्त किया। यक्षोवर्मन ने लज्जराहों के एक प्रतिष्ठ मन्दिर का निर्माण कराया और इसमें विष्णु भगवान की उत प्रतिमा को प्रतिष्ठित कराया। उसने देवपाल से प्राप्त की थी। यक्षोवर्मन की मृत्यु के उपरान्त बंस राजा हुआ।

बंस—दसवीं सताब्दी के अन्त में बंस उत्तर भारत का सबसे प्रतापी और शक्तिशाली नरेश हो गया। हमने पीछे यह देखा था कि यक्षोवर्मन के शासन-काल तक चन्देल प्रतीहार शक्ति की अशीनता स्वीकार करते थे। बंस ने अशीनता के इन सघर्षों को भी उतार फेंका और अपनी पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दी। उसके शासन काल में चन्देलों की शक्ति का बड़ी तेजी से विकास हुआ। सन् ९५४ ई० तक उसका राज्य उत्तर में समूना तक उत्तर-पश्चिम में प्लासियर तक दक्षिण पश्चिम में बिलता तक फैल गया। प्लासियर और काकिजर उसके हाथ में आ जाने से मध्य भारत में उसकी शक्ति कापी मुदू हो गई। उसने सम्भवतः इलाहाबाद पर भी अपना अधिकार जमाया। अपने पञ्चम वर्ष के कुटीरकाल के शासन में उसने प्रतीहार साम्राज्य के भूभागों को विजित करना आरम्भ किया और समूना के उत्तर में बुर तक और पूर्व में बनारस तक अपना राज्य बढ़ा दिया। समूनाहों में उसने दो मन्दिरों का निर्माण कराया जिसका नाम मारुन्दवर और प्रमयनाथ पड़ा। एक विद्वान् का कथन है कि समूनाहों के

मुम्बईयों का निर्मिता बंग ही था। सी बर्ष की लम्बी जामु में बंग का
इहासमान प्रयास में हुआ।

विद्याधर—बंग के उपराज्य उसका पुत्र यन्त्र बन्धेक राज्य का स्वामी हुआ।
उसने भी अपने पिता की भाँति यहूय राजमनी के विरुद्ध संघर्ष किया पने हिन्दू
राजाओं के संघ में भाग लिया था। आनन्दपाल जयपाल के पुत्र के अनुरोध
पर महमूद के आक्रमणों का सामना करने के लिए हिन्दू राजाओं ने अपना एक संघ
बनाया था परन्तु यह संघ भी महमूद के प्रयास को रोकने में सफल न हो सका। उसके
बाद विद्याधर वैजाकमुक्ति राज्य का अधिकारी हुआ। विद्याधर ने महमूद के प्रति आत्म
समर्पण करने के कारण राज्यपाल प्रतिहार को बंद बन्ध दिया और कन्नौज के साथ
को गठ करने का प्रयत्न किया। परमार नरेश योज प्रथम और कलचुरि राजा कोष
त्रितीय के साथ विद्याधर की सहायता की परन्तु उसके सामन इन राजाओं की सक्ति
पुष्क नहीं। उसका प्रयास बन्धेक से लेकर नर्मदा तक फैला हुआ था। अतएव मुक्ति
में यन्त्री के महमूद ने भारत पर आक्रमण किया और जब वह विद्याधर के सामने आया
तो कुछ देवकों के अनुसार विद्याधर रक्तस्राव से मारा गया हुआ। महमूद ने दो बार
बन्धेकों पर आक्रमण किए परन्तु लम्बे बरे के बाद भी उसके पुत्रों पर अधिकार न कर
सकने के कारण उसे बाघस जीट जाना पड़ा।

बेदि नरेश वायव्य के उत्पान ने बन्धेकों की सक्ति के विकास में बाधा
पहुँचाई, उसके पुत्र लक्ष्मीकर्म कलचुरि की सक्ति ने भी बन्धेकों की सक्ति का
पराजित हानि पहुँचाई। यन्त्र के पीछे विजयपाल को विरस होकर बन्धेकसन्ध की परा
जयपुष्ट कर दिया। कर्म न भी कीर्तिवर्मन को अपनी सेना में नीकरी करने के लिए
बाध्य किया। परन्तु ध्याह्वी क्षत्राप्ती के उत्तरार्ध में कीर्तिवर्मन ने बाह्य बोजा
मोपास की सहायता से अपने बंस की लक्ष्मप्राय सक्ति और अर्थात् की पुन
प्रतिष्ठापित किया।

उसके बाद बन्धेक बंग में जयनवर्मन नामक उत्तमनीय नरेश हुआ। जयनवर्मन
ने ११२९ ई० से लेकर ११९९ ई० तक शासन किया। इसके अधिकारों से पता चलता है
कि लक्ष्मणों कातिजर महोबा और जयपुष्ट पर उनका अधिकार था। अपने मातका
गुजरात और बेदि इत्यादि राज्यों में संघर्ष किया परन्तु महोबा के साथ उसका
सैन्यपूर्ण सम्बन्ध था। उसके राज्य की सीमाओं में महोबा और समुदा नरिपों द्वारा
निमित्त होती थी। लगभग सम्पूर्ण बन्धेकसन्ध के उत्तरी भाग और
अधिकांश में जयनपुर के पड़ाव का प्रदेश उसके राज्य में सम्मिलित थे।

महोबावर्मन के बाद उनका पीछे परमादिदेव बन्धेक राज्य का अधिपति बना।
उसका प्रारम्भिक शीघ्र जीवन बड़ा सकल रहा और उसने जामुपों से मिलकर
प्रदेश छीन लिया। परन्तु उसे बाह्यमान नरेश लक्ष्मीराज तृतीय के द्वारा पगथय
सहन करने पड़ी। उसमें उसकी सक्ति विस्तृत हुई नहीं। कुतुबुद्दीन ऐकब १२२
में कातिजर पर परा शतकर इने अपने अधिकार में कर लिया और दूसरे वर्ष महोबा
पर भी अधिकार हो गया। किन्तु नैलोनयवर्मन (१२०२-१२४९) ने १२०५ में
कातिजर पर फिर से अपना अधिकार जमा लिया और पुन अपने बंग को स्थापित
किया जिसने कातिजर पर बन्धेकों का अधिकार बना रखा। राजी कुतुबुद्दीन जिसने

अक्षर से युक्त किया था एक चम्पैय राजकुमारी ही थी। काश्मिर के दुर्ग पर मुसलमानों का अधिकार १५६९ ई० में जाकर हो पाया।

मालवा के परमार

परमार बंध की स्थापना जेष्ठ अथवा कृष्णराजा ने दसवीं सताब्दी के प्रारम्भ में की थी। पहले परमार लोग दक्षिण के राष्ट्रकुलों के सामन्त थे। बाद में पश्चिम के निकट जेष्ठ चला था। उसे राष्ट्रकुट सम्राट गणित्य सुवीय ने मालवा का शासक नियुक्त कर दिया। जेष्ठ के बाद उसके दो बंधजों ने राष्ट्रकुट के माध्यमिक रूपियों के रूप में मालवा पर शासन किया और वे अपने स्वामी (राष्ट्रकुट सम्राट) के प्रति भक्तदार बने रहे। चौथे परमार सामन्त वाक्पति प्रथम ने अपने बंध की स्थिति का समर्थन किया।

वाक्पति मूक्य—वाक्पति मूक्य ने मालवा के परमारों की शक्ति का वास्तविक रूप में निकास किया। अपने समय का वह एक महान् योद्धा और अपने कुल का मुख से शक्तिवादी नरेश था। उसका सम्पूर्ण जीवन युद्धों और विजयों में व्यतीत हुआ। 'उत्तम राज' 'अमोघवर्ष' 'वीरकर्म' 'पृथ्वी वल्लभ' आदि विद्वत् उसने बारण किये। उदयपुर के अतिरिक्त में वाक्पति मूक्य की विजयों की एक पूरी सूची दी गई है। सबसे पहले जिपरी के राजा मुक्ताज द्वितीय को पराजित किया। इसके बाद उसने गट (गुजरात) कर्नाटक बोल और केरल के राजाओं को युद्ध में परास्त किया। उसने नहुवा पर भी मालवा के उत्तर-पश्चिम में हुचमण्डल नामक एक छोटे से प्रदेश पर सत्ता कर रहे थे भी विजय प्राप्त की। हुचमण्डल नामक यह लघु-प्रदेश घोरमाय और मिहिरकुल के विद्याल सागराज का अधिकार बखोप था। मूक्य ने नहुवा के बाह मातों पर आक्रमण किया और उनसे बाहु पर्वत और बाहुमिक बयपुर राज्य के इतिहास के अनेक राज्यों को जीत लिया। उसने अहिर्नृपात्म में बालक्य बंध के संस्थापक मूलराज को भी हराया।

अपने पड़ोस के राज्यों को जीत लेने के उपरान्त मूक्य ने बालक्य नरेश तृतीय पर आक्रमण करने का विचार किया। मूक्य ने तृतीय की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए उस पर छ बार आक्रमण किये परन्तु सब उसने सातवीं बार अपने अनुभवों से मंत्री की सलाहों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए, पेशावरी पोर किया तो वह बन्दी बना लिया गया। उसे कारावास में बाल दिया गया। मूक्य ने बाहर आने के योग्यताएँ बना रखी थी किन्तु उसकी योजनाओं की सूचना उसके सन्तु को पिल था जिससे उसका बंध कटा दिया गया। इस प्रकार राज्याराक्षण के बीच बंध पराजित १९५ ई० में मूक्य को अपना कुलबन्धन देखा पड़ा।

राजपूत युग के हिन्दू सामन्तों में मूक्य अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। मूक्य स्वयं कवि था और उसके द्वारा रचित पद्यों का संकलन काव्य-मंजरी में मिलता है। कला और साहित्य का वह महान् संरक्षक और पोषक था। पञ्चजय हनुमान पत्रिक और पञ्चगुप्त नामक कवि उनकी राजसभा की सुशोभित करते थे। पञ्चगुप्त भवमाह सांकेतिक और 'हनुमान' अभिधानरत्न माला तथा 'भूतगंजावली' के रचयिता थे। मूक्य के लिए यह भी कहा जाता है कि वह एक उदार शासक था। उसने अनेक बड़े बड़े जलायक मुद्राओं और कई मंदिरों का निर्माण कराया।

मूक्य के पञ्चाक्षर नामक भाई विष्णुराज मालवा के राजमहिषासुन पर बैठा। उसने बालक्य राजा को परास्त कर अपने साथ हुए राज्यों को फिर से अधिकार में ला

किया। कहते हैं कि उसने हूणों और लार्गों के विरुद्ध युद्ध किया। सिन्धु नदी बचवा सिन्धु नदी का शासन अत्यन्त स्वल्प काल तक ही रहा।

मोज—मोज का नाम संस्कृत साहित्य में अमर है। भारत के सबसे विख्यात और लोकप्रिय शासकों में मोज की पंथना की जाती है। उसका शासन-काल अर्द्ध सताष्टी से भी अधिक समय तक रहा। मोज अपने समय का एक पराक्रमी योद्धा था किन्तु अपनी सैनिक सफलताओं के द्वारा वह अपने राज्य की सीमा का विस्तार अधिक न कर सका। हाँ यह अवश्य है कि मोज ने सैनिक-कार्यों में समकालीन नरेशों के बीच उसकी क्याति जमा दी। मोज ने कस्यापी के बालकम नरेश बर्षिह द्वितीय को परास्त करके मूकम की हार का बदला लिया। मोज ने कश्मिर के यनों के एक सामन्त इन्द्रव और उत्तरी कोंकण के शासकों को हराया। पार्थिवदेव और राजव कोठ कहते हैं कि उसने एक बार मुस्लिम मेवा के विरुद्ध भी युद्ध किया और हूणों के ऊपर उसके द्वारा आक्रमण किया जाने का उल्लेख मिलता है। उदयपुर की प्रसिद्धि में मोज की विजयों का अतिरञ्जनपूर्ण वर्णन है और उसे हीराज तथा मल्ल की भूमि का विजेता कहा गया है। निम्नलिखित यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्य से दूर है। वास्तव में मोज मूकम में विजय, विजय प्राप्त हुई लगभग इतनी ही पराजयों की थी जितने वहन किया।

मोज की क्याति उसके युद्धों के कारण नहीं बल्कि उसके विद्यानुष्ठान उसके प्रकाश पाण्डित्य विद्या और साहित्य के सम्बर्धन में उसके योगदान एवं लोक कल्याण के लिए किए गए कार्यों से है जो आज भी उसकी कीर्तिशाली की मूर्तियाँ नहीं देखे रहे हैं। मोज की इतने अधिक और विभिन्न विषयों के ग्रन्थों का रचयिता बताया गया है कि उनकी मोज द्वारा प्रणीत मानने में सम्यक् उत्पन्न होने लगता है। चिकित्सा बधित ज्योतिष कोष वास्तु, अस्त्रकार आदि विषयों पर उसके ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है। कुछ ग्रन्थों के जो मोजरचित बताये गये हैं नाम इस प्रकार हैं—'मातृवर्द्धनसर्वस्व' 'रामय्याय' 'व्यवहार समुच्चय' 'छात्रानुशासन' 'समर्थन-सुखचार', 'सरस्वती-कण्ठामरण' 'नाम आत्मिका' 'यक्ति-कल्पतरु' इत्यादि। सम्भव है कि इन समस्त ग्रन्थों की रचना मोज ने न की हो परन्तु इन बात में सम्यक् नहीं किया जा सकता कि वह एक महान् और विख्यात लेखक था। आज ने 'रामायण चम्पू' नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें पद्य और पद्य दोनों की शैलियाँ विद्यमान हैं। 'सरस्वती-कण्ठामरण' और 'शृंगार प्रकाश' नामक ग्रन्थ काव्य-शास्त्र के हैं। विज्ञानों के बीच इन ग्रन्थों का अधिक समावेश होता है। मोज विद्या का महान् प्रोत्साहक और संरक्षक था। उसने बारा संस्कृत का एक महाविद्यालय बनवाया जहाँ दूर-दूर के विद्यार्थी अपनी शैक्षिक शिक्षा प्राप्त करते थे। इसकी शीर्षालों पर बहुमूल्य रत्नानाँ पर अभिलिखित अने प्रस्ताव-सङ्घटन अमर हुए हैं। इस विद्यालय की इमारत की अब भी मोजशास्त्रा कहते हैं। मातृका के लक्षणा ने इसके स्थान पर मस्जिद बनवा दी। मोज की राज मय में अनेक विज्ञान रखा करने थे। उसकी राजसभा के विज्ञानों में वर्मपाक और उसके भाई योगन का नाम अधिक उल्लेखनीय है। सम्भवतः भीता नाम की कविश्री के भी राजा मोज का संस्थाप प्राप्त था।

मोज के लोक सम्बन्धी कार्य—अपने राज्य भर में धर्मियों का निर्माण कर के अपने अपनी धर्मनुशासी प्रजा की प्रशंसा अतिशय की और राज्य को सजाया। उसने मोजपुर नामक नगर बसाया और इसके निकट एक बड़ी शीत लुखाई।

मौज ने संस्कृत विद्यालय सरस्वती मन्दिर के निकट बनवाया था। इस मन्दिर के लिए सरस्वती की जो मूर्ति बनवाई गई थी वह आज भी देखी जा सकती है। यह मूर्ति ब्रिटिश म्यूजियम में रखी हुई है। इसकी सुन्दरता और कलात्मकता की मूर्ति मूर्ति प्रशंसा की गई है।

मौज के उत्तराधिकारी—मौज का उत्तराधिकारी जयसिंह एक ऐसे समय में माकवा के परमार राजसिंहासन पर आकर हुआ जिस समय राज्य की सामुह्य और कलचुरि पर हुए थे। उसी कठिन परिस्थिति में जयसिंह ने अपने बख्शी पड़ोसिया बख्त के बालकों से सहायता को माँगा की। बख्त के बालकों ने अपना पुराना और मुकादर सिंहराज की प्रार्थना की स्वीकार कर लिया और राजकुमार बिक्रमादित्य ने माकवा को उसके राज्यों से मुक्त कर दिया। उद्योगधर्म ने जो सम्भवतः मौज का भाई था सिंहासन पर अनुचित तरीकों से अपना अधिकार जमा लिया। उसने माकवा की विरही शक्ति को नैदान्य का प्रयत्न किया। उसने उदयपुर में मौज कम्प्रेसर मन्दिर का निर्माण करवा जो अब भी अच्छी स्थिति में विद्यमान है और उस युद्ध के उत्तर भारत की वास्तुकला का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करता है। इसी के एक बाँव में बहुत से चीन और हिन्दू मन्दिर हैं जिनमें से अधिकतर का निर्माण सम्भवतः उद्योगधर्म ने करवाया था।

उद्योगधर्म के उपरान्त लक्ष्मणदेव माकवा राज्य का स्वामी हुआ। उसने यह कर्म कलचुरी और कर्वाचित् कोकों तथा मजनी के महानुब बंधुओं पर विजय प्राप्त की। पर बर्बन और भोजसर्वन लक्ष्मणदेव के बाव माकवा के उत्तराधिकारी हुए, जिनकी शाह तिनि क्रमशः १९७-११११ और ११९४-११४२ है। इस काल में माकवा के ऊपर सोलंकियों ने अपना अधिकार जमा किया और ११३७ से लेकर ११७९ तक जब पर उनका अधिकार रहा। भोजसर्वन की मृत्यु के बाद परमारों का राज्य उसके उत्तराधिकारियों के बीच विभाजित कर दिया गया। कुमार पाल के पश्चात् सोलंकी भोज मुनीबत में पड़ गये जिसने माकवा के परमारों की अपनी शक्ति नैदान्य का अवसर प्राप्त हो गया। विजयनगर ने ११९२ में पर को अपने अधिकार में कर लिया और उसके उत्तराधिकारी मुमल वर्मन ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया।

भर्जुनवर्मन के समय में माकवा का प्राचीन बंधन कुछ अंशों में लौट आया। भर्जुनवर्मन ने स्वयं 'अमक शायक' पर एक टीका लिखी और उसके बायल-काल में 'शारिजात भंजरी' नामक नाटक लिखा गया जो अपने पूर्ण रूप में आज उपलब्ध नहीं है परन्तु यह पाषाण-स्तम्भों पर उत्कीर्ण कराया गया था जहाँ इनके कुछ अंश अब भी मिलते हैं। भर्जुनवर्मन की मृत्यु के पश्चात् परमारों की शक्ति धीरे-धीरे गिरने लगी। सन् १२९२ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने माकवा को जीव भूटा। इसके बाद माकवा की हिन्दू-सत्ता का नाश हो गया।

अम्बिलवाड़ के सोसकी

मुजराह में अम्बिलवाड़ (पारन) नामक स्थान पर पहले प्रतीहार साम्राज्य का अधिकार था परन्तु राजनीतिक प्रभुता के लिए राष्ट्रकुलों और प्रतिहारों में जो पारस्परिक संघर्ष हुआ उसने काम उठाकर मुजराह प्रथम दखनी सत्ताधी के उत्तरार्ध में अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया और अम्बिलवाड़ को अपनी राजधानी बनाया।

माछीय इतिहास

मूलराज सोलंकी—मूलराज सोलंकी ने अपने एक स्वयं राज्य की स्थापना कर केते के बाद इसकी सीमाओं के विस्तार का भी प्रयत्न किया। उनमें घीघा ही एक केरा और मुराट्ट के पूर्वी भाग पर अपना अधिकार जमा किया। परन्तु उसे अपने प्रभु पड़ोसियों का भी सामना करना पड़ा। मूलराज के पुत्र चामुण्डराज ने चामुण्डराज के विजय के पश्चात् मूलराज के पुत्र चामुण्डराज का वीर योद्धा प्रभु (१२२२) सोलंकी राज्य का एक विभाजित प्रदेश था।

भीमदेव प्रभु—भीमदेव प्रभु के शासन-काल के शारदा-काल में उसके राज्य पर आक्रमण किया गया। भीम ने उसे अपने हाथों में लाने का प्रयत्न किया परन्तु एकदम ही उसकी मृत्यु हो गई।

[illegible][illegible]

मैं प्योरील हुआ तथापि मीठ की ही तरह इतने भी बिखा की भाँति अधिकतर पुत्र
ज्योतिष त्याग और पुत्रप के अन्वेषण के लिए अग्रिम में विवाह-संस्कार्य सुसर्वा।
जगदी राजनता में प्रसिद्ध नैव सिंग महाराष्ट्रित ह्यमभर रहते न। जयसिंह ने अपने

राज्य में मन्दिरों का निर्माण कराया। स्वयं ही होते हुए भी उसने जैन पद्धति हेमचन्द्र को अपनी राजसभा में स्थान दिया। जयसिंह ने 'जयसिंहनाथ' और 'राजसिंह' के विरूद्ध धारण किए।

कुमारपाल—जयसिंह के उपरान्त उसका पुत्र के एक सम्बन्धी कुमारपाल ने उसका राज्य पर अधिकार कर लिया क्योंकि जयसिंह के कोई पुत्र नहीं था। कुमारपाल ने छात्रमयी के ब्राह्मणों को पराजित किया और आबू के परमारों का वनाया। कोकण के राजा मुस्तिकानुन को भी उसने हराया था। कुमारपाल जैन धर्म के इतिहास में काफी प्रसिद्ध है। जन प्रथा में लिखा है कि आचार्य हेमचन्द्र के शराफत भर्मेनिष्ठपत्र से प्रभावित होकर कुमारपाल ने जैन मत ग्रहण कर लिया। उसने अपना राज्य भर में महिला के शिष्टाचारों के परिपालन के लिए कठारआचार्य निकलवा डो। जैन धर्म का अनुयायी होने पर भी कुमारपाल ने अपने पृथ्वी की शिष्टोपासना सम्बन्धित मन्त्रों का स्थान नहीं दिया। इसने मोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर का औपचार्य करवाया।

भीमदेव द्वितीय—कुमारपाल के बाद गुजरात का शासक बजयपाल हुआ जिसने अपने राज्य में जैन मत के विरुद्ध एक प्रतिहिंसारमक नीति का प्रचार किया। उसने जैन मन्दिरों को विध्वंस कराया शुरू किया। कहा जाता है कि उसने महार्घित हेमचन्द्र के प्रिय शिष्य और प्रसिद्ध सेवक रामचन्द्र का बन्ध कर दिया था। उसके राज्य के एक अफसर ने उसकी हत्या कर दी। बजयपाल के पश्चात् मूलराज त्रितीय ने कुछ समय तक शासन किया। उसके बाद भीमदेव द्वितीय राजा हुआ जिसने अपने राज्यारोहण के वर्ष में गोर के मुहम्मद का युद्ध में हराया। तन् ११९५ में भीमदेव द्वितीय ने कुतुबुद्दीन से युद्ध किया और उसे हारवा गहरो पराजय दी कि मुस्लिम सेना नायक को बजरत तक डकेल दिया। परन्तु दूसरे वर्ष (११९७ ई.) में अहिमसाध पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। किन्तु कुतुबुद्दीन का गुजरात पर स्वाधीन रूप से अधिकार नहीं स्थापित हो सका।

भीमदेव द्वितीय ने एक सत्र समय साठ वर्षों तक शासन किया। उसके समय में मुसलमानों के जो आक्रमण हुए उससे उसका राज्य की स्थिति काफी बाधित हो गई और प्रांतीय शासकों ने अपना स्वतन्त्रता घोषित करने का बजरत ठाकना आरम्भ किया। किसी प्रकार अहिमसाध अपनी स्वतन्त्रता को रक्षा करता हुआ अन्त उद्दीन विजयो के पूर्व तक बना रहा।

मिपुरी व कलचुरि

कलचुरि बंस का संस्थापक तथा प्रथम ऐतिहासिक शासक कन्नडत प्रथम (८७५-९२५) का जिसने राष्ट्रकूटों और चन्देलों के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किए।

कोकण में अने विजयों के द्वारा जिस राज की स्थापना की उसमें उसका मृत्यु के दोष बाद विप्लव के तरह उत्पन्न हो गये। जिससे कलचुरियों की शक्ति क्षीण होन लगी। परन्तु मारहण, पलायन में मागधन की अधीनता में कलचुरियों की भारत का सत्र महान् राजनैतिक शक्ति क्षीण का गौरव प्राप्त हो गया।

राजेश्वर—गोमयेश्वर ने बार ईश बजवा कांसका घाटी तक उत्तर भारत में आक्रमण किए पूर्व में बनारस तथा प्रयाग तक अपने राज्य की सीमा का बढ़ाया। प्रयाग और दारासमी से और आगे बढ़ पूर्व में बना। अपनी सेना लेकर वह मरुपना

पूर्वक पूर्वी समुद्रतट तक पहुँच गया और उसने उड़ीसा को विजित किया। जननी इन विजयों के कारण उसने 'विक्रमादित्य' का निम्न धारण किया। उसने पालों के बल को जगद्वेला करते हुए बंध पर आक्रमण किया। नांदेद्वेला का मृत्यु प्रभाव में हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसकी सौ पत्नियाँ उसके साथ पिता में विलीन कर भस्म हो गई।

सकल कर्ण—नांदेद्वेला के उपरान्त उसका प्रतापी पुत्र लक्ष्मी कर्ण अथवा कर्णराम सिंहासन पर बैठा। वह अपने पिता की भाँति एक और नैतिक भी 'सहस्रों युद्धों का विजय' था। उसने काफी विस्तृत और महत्वपूर्ण विजयों द्वारा कलचुरी धर्म का विकास किया। कल्याणी और अहिमलवाड़ के शासकों से सहाय्य प्राप्त कर कर्ण ने परमार राजा मोक्ष की पराजय किया। उसने चन्देलों और पालों का विजय प्राप्त की। उसके अधिपत्य बंगाल और उत्तर प्रदेश में पावे जाते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि इन भागों पर उनका अधिकार था। कर्ण का राज्य मुजरा से लेकर बंगाल और बंगाल से महानदी तक फैला हुआ था।

कर्ण अपनी विजय-बाहिनियों को पूर्वी समुद्र तट की ओर कराता हुआ कोची तक पहुँच गया जिस पर उस समय कोलों का राज्य था। कहा जाता है कि कर्ण ने दक्षिण में पल्लवों, द्रविड़ों, मुरलों और सुभुर बलिष के पाण्डुरों की पराजय किया। यह मान्य है कि दक्षिण की इन आतियों ने कोलों की सहायता की हो और उसने इन सबको सामूहिक धर्मित का शत्रु बना दिया। कर्ण की इन विजयों के कारण उस 'भारतीय इतिहास के सबसे महान् विजेताओं में से एक' कहा गया है। उसकी युक्तता प्रसिद्ध विजेता नवीनिकन के साथ की गई है। परन्तु वह युक्तता न चाहे कि जनने जीवन के अन्तिम दिनों में कर्ण को कई पराजयें सहनी पड़ी थीं। पालों, चन्देलों का कोई स्थायी प्रभाव नहीं बढ़ सका। उसकी विजयों ने उनके पीरय को लं। बढ़ाया किन्तु उनकी राज्य नीमा में कोई विस्तार नहीं किया। १०७२ ई. में कर्ण ने अपने पुत्र के लिए सिंहासन त्याग दिया।

यस कर्ण—सन १०६ के लगभग यस कर्ण विपुली के सिंहासन पर बैठा। उसने वैष्णव और उत्तरी बिहार तक जाये बीते। इनके पिता के अन्तिम दिनों में उसके राज्य की स्थिति काफी शरादील हो गई थी और इनी शरादील स्थिति में उसने राजसिंहासन पर बैस गया था। परन्तु अपने राज्य की इस विपन्न स्थिति का विचार न करते हुए यस कर्ण ने अपने पिता और पितामह की भाँति सैन्य विजय का नय जारी रक्खा। पहले तो उसे कुछ सफलता मिली लेकिन धीरे-धीरे उसका राज्य स्वयं आक्रमणों का केन्द्रबिन्दु बन गया। इन सब पराजयों ने उसकी धर्मित की शरादील दिया। उसके हाथ से प्रयाग और बाराबन्की के नगर निकल गये और उनके बस का पीरय भीड़न हो गया।

यस-जन के उत्तराधिकारी और कलचुरि बंध का क्षम—यस कर्ण के उपरान्त उनका पुत्र यशकर्ण सिंहासनावृद्ध हुआ। किन्तु अपने पिता के धामनकाल में धारण होने वाली अपन बंध की राजनीतिक अवस्था की वह राक सका। यशकर्ण का उर्वीय पुत्र यशविहू कुछ प्रतापी था। उसने कुछ बंध तक अपने बंध के पीरय की पुनः प्रति-प्राप्ति करने में सफलता प्राप्त की। उसने मोरली-जेस कुमारपाल को पराजित किया। यशविहू को मृत्यु ११०५ और ११८० के मध्य किसी समय हुई। उसका पुत्र यशविहू वाचकन प्रथम के बंध का अन्तिम जेस था जिनने विपुली पर राज्य किया। यशविहू को ११०५ और १२०० के बीच में जैनुमि प्रथम ने जो देवगिरि के

भारत बंध का नरेश का मार डाला और त्रिपुटी के कलचुरि बंध का जन्मस्थ कर दिया।

दंगास व पास

बंगाल का प्राप्त मगध राज्य में सम्मिलित था। मगधों के समय में भी बंगाल मगध साम्राज्य के अन्तर्गत था। मगध के राजसिंहासन पर बैठने वाला सम्राट् बंगाल का भी स्वामी होता था। छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में गौड़ अथवा बंगाल स्वतन्त्र हो गया और गुप्त-राज्य काही बड़ गई। परन्तु पञ्चाक की मृत्यु के बाद बंगाल की राजनीतिक एकता और सार्वभौमिकता निलट हो गई। जब सम्राट् हर्षवर्धन और कायस्थानिपति यास्करवर्मन दोनों को अवसर प्राप्त हो गया और उन्होंने बंगाल पर आक्रमण करने इसको सम्भव हो पागों में विभक्त कर दिया तबको उन्होंने आपस में बाँट लिया। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में खैब बंध के एक राजा न पौण्ड्र पर अधिकार कर लिया। कायपोर-नरेश कलितारिष्य मुत्तापीड और कदाज नरेश यशोवर्मन ने भी बंगाल पर आक्रमण किया था। कामरूप-नरेश हर्ष देव न अवसर पाकर बंगाल को विजित कर लिया। एक बृहत् शासन-राज्य के अन्तर्गत बंगाल और अरुणकटा का क्षेत्र हो गया। आक्रमणों के ठठि ने बंगाल में चारों गोपाल नामक व्यक्ति को अपना राजा चुन लिया। गोपाल को सम्पूर्ण बंगाल का धामक स्वीकार कर लिया गया।

गोपाल—आठवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में गोपाल ने बंगाल का शासन संभाला। गंगाल ने बंगाल में हिमालय से लेकर समुद्र तक एक सम्पूर्ण राज्य को सुगठित किया और विपत बड़े शताब्दियों की अरुणकटा और अज्यवन्ता का अन्त करके समस्त बंगाल में शांति स्थापित की। उसने गालन्दा के निवट मोहनपुरी नामक स्थान पर एक विरहविद्यालय की स्थापना करवाई। गोपाल ने अपनी मृत्यु के समय अपने उत्तराधिकारी के लिये एक समृद्ध और सुशान्ति राज्य छोड़ा। उसके उत्तराधिकारियों ने बंगाल को राजनीतिक उत्कर्ष और सांस्कृतिक नीरव की उम्र पराकाष्ठा पर पहुँचाया तबको उसने पहले कभी स्वयं में भी कल्पना न की थी। गोपाल के बाद जनपाल बंगाल का राजा हुआ।

बर्मपाल—बर्मपाल अपने बंध की वास्तविक महत्ता का संस्थापक था। बर्मपाल एक सुयोग्य और नर्मद धामक था जिसने अपने राज्य की सीमा मोन नदी के पश्चिम तक बढ़ा दी। वह पश्चिम भौगोलिक का था और पिता की भाँति बीड था जिस की राजनीतिक दृष्टि ने वह महत्वाकांक्षी था। तिब्बती इतिहासकार तापनाय न लिखा है कि बर्मपाल के राज्य का विस्तार पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में जालंधर और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में किन्चन पर्वत तक था। सम्भव है कि तापनाय का यह कथन अत्युक्तिपूर्ण हो परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि समस्त उत्तरी भारत में बर्मपाल की शक्ति का प्रभाव जमा हुआ था।

बर्मपाल ने स्वयं ४६ वर्षों तक राज्य किया। उसने विक्रमदित्या और नामपुर में बीड विहारों का निर्माण कराया। विक्रमदित्या में एक विरहविद्यालय की स्थापना भी उसने करवाई थी। विक्रमदित्या में भी गालन्दा की भाँति पिता का एक बहुत बड़ा क्षेत्र स्थापित हो गया था। बर्मपाल ने अपने राज्य में अग्य कई मन्दिरों और बीड विहारों का निर्माण कराया था।

काश्मीर का राज्य

प्राचीन भारत में काश्मीर का क्षेत्र भारत के साथ बहुत पहरा और अभिन्नता—भौतिक सम्बन्ध नहीं था परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से काश्मीर कभी भी भारत से पृथक् हो था। कुछ समय तक तो काश्मीर संस्कृत विद्या के प्रमुख केन्द्र के रूप में रहा। सोर का काश्मीर पर अधिकार था। कश्मिर की 'राजतरंगिणी' में इस बात का स्पष्ट मिलता है कि असाक को मृत्यु के बाद जब मौर्य साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति का तम होने लगा तो उसके पुत्र आसीक ने जो काश्मीर में राजप्रतिनिधि के रूप में धामन र रखा था अपनी स्वतन्त्रता के घोषणा करके केन्द्र से पृथक् एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर दी थी। आसीक के उ राज्य काश्मीर में किम राजा जबका राजवंश का विकास था यह शिवदत्ताय रूप में हुने जात पड़ी परन्तु कृपाश्री के अधिकार में आसीक या अश्वमेध रूप से हुमें मान्य है।

कर्कोटक राजवंश—काश्मीर में कर्कोटक राजवंश ने जात या कर्कोटक राज की स्थापना की। उसके राज्य काल में जूनराय ने काश्मीर की यात्रा की। चीनी यात्री के ज से जात होता है कि कर्कोटक राजवंश का राज्य केवल मुख्य काश्मीर तक हो सीमित हो था बरन पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी पंजाब के कुछ भाग पर भी उसका अधिकार था। कर्कोटक राजवंश ने उत्तरीय कर्कोटक राज राज्य किया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी बर्मन का धामन-काल पचास वर्षों तक रहा परन्तु उसके विषय में कोई ज्ञात्य ऐतिहासिक बात मान्य नहीं है।

कर्कोटक के उपरांत उसका पुत्र जन्मापीड काश्मीर सिंहासन पर समाधीन हुआ। जन्मापीड काश्मीर का एक प्रसिद्ध नरेश था। उसने अरबा के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए चीनी सम्राट के पास अपना एक राजदूत भजा था। यद्यपि उसे जान था कि कोई सहायता प्राप्त न हो सकी तथापि उसने मुहम्मद बिनकासिम को काश्मीर की सीमा में बुलाने नहीं दिया।

कर्कोटक राजवंश का सबसे प्रसिद्ध शासक कश्मिरादित्य मुस्तापीड था जो ७२४ में सिंहासनाब्ध हुआ। कश्मिरादित्य काश्मीर का तो सबसे प्रसिद्ध शासक था ही अपने समकालीन शासकों में भी उसको सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। वह एक महान् जेता और उत्प्रेक्षणीय सम्राट था।

मसोबर्मन के सम्बन्ध में पढ़ते हुए हम देख चुके हैं कि उसकी भाति कश्मिरादित्य भी चीनी सम्राट की राज सभा में अपना राजदूत भजा था। इसके बाद कश्मिरादित्य और मसोबर्मन के बीच किम प्रकार संबंध और विवाद के सम्बन्ध स्थापित हुए, उसका अध्ययन हम कर चुके हैं।

कर्कोटक के शासक मसोबर्मन को युद्ध में पराजित करने के पश्चात् कश्मिरादित्य ने अपना विभिन्नय अभियान प्रारम्भ किया। कश्मिरादित्य पूर्वी समुद्र की ओर बढ़ा और कश्मिरादित्य तक पहुँच गया। कश्मिरादित्य ने कश्मिरादित्य की अधीनता निबिरोह हो शीकार कर ली और उनसे कश्मिरादित्य की सेना के लिए कुछ हाथों मिलवा दिये। शान्त होना हुआ कश्मिरादित्य काबेरी पहुँचा और उसने कुछ हीनों की भी विजित किया। विजय की ओर अभिमुख होने पर उसने जात कोकणा का दमन किया और हाफका तक पहुँच गया। इसके पश्चात् कश्मिरादित्य ने अजन्ति तथा अन्य राज्यों को भी जीता परन्तु यह कहना कुछ कठिन है कि कश्मिरादित्य द्वारा अजन्ति कश्मिरादित्य-विभिन्नय का विवरण ज्ञात है।

ब। सिखा के संग्रहण और प्रसार में इन बौद्ध विश्वविद्यालयों का काफी महत्वपूर्ण योगदान था। बो-गक नरेशों को छोड़कर बाकी सभी पाठनूपति बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने बौद्ध धर्म को उस समय साम्प्रदायिक प्रचलन दिया जिस समय वेज के जंगल भाषा में यह पतनीमन्त्र था। पाल नरेशों ने अपने राज्य में बौद्ध धर्म के प्रचार का पूरा प्रयत्न किया परन्तु उनका धार्मिक दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था। वे बाह्यकों की भी धर्म-व्यवस्था देकर सम्मानित करते थे। बौद्ध धर्म के प्रचारक अनीश नामक प्रतिष्ठित बार्तात्मिक मित्र ने तिब्बत की यात्रा की थी। पालों के शासन-काल में साहित्य की उत्पत्ति अधिक तीव्र हुई जिसकी कला की किन्तु सम्प्रदायिक नस्ली का 'रामपाल' चरित नामक वसेपात्मक महाकाव्य इसी समय लिखा गया। 'सोकेनवर सतक' नामक काव्य की रचना बौद्ध कवि बज्रवत्स ने देवपाल के समय में ही की।

बंगाल का सेन वंश

विजय सेन—सेन वंश के संस्थापक रामसेन के पीछे विजय सेन ने अपने बंध के पीछे को बढ़ाया। उसने ९२ वर्षों तक राज्य किया। विजय सेन ने बंगाल में बर्माओं का निकाल बाहर किया। उत्तरी बंगाल के सबन पाल का निर्वासित करन वाला भी विजय सेन ही था। कहा जाता है कि उसने नौवाक नामाग्र और कलिंग पर विजय प्राप्त की। रामपाल की मृत्यु के बाद पाल साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर विजय सेन ने जिस राज्य की स्थापना की उसमें पूर्वी पश्चिमी और उत्तरी बंगाल के भाग सम्मिलित थे। उसने परम माहेस्वर की उपाधि ग्रहण की जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि विजय सेन ही था। सींग विजयों के साथ-साथ उसने सांस्कृतिक और धार्मिक कार्य भी किए। उसने सिंध-मन्दिर का निर्माण करवा एक शीत सुवर्ण, विजयपुर नामक नगर बसाया और कवि उमापति की सम्प्रदाय प्रचलन किया।

बल्लाल सेन—बल्लाल सेन एक विद्वान् शासक था। बंग कमानुषट द्वारा उसे जो राज्य मिला उसकी उसने पूर्ण रूप से रक्षा की। उसका राज्य पाँच प्रांतों में विभक्त था। कहा जाता है कि बल्लाल सेन ने अपने गुरु को सहायता से राजशासन और 'अद्भुत सागर' नामक ग्रन्थों का प्रचलन किया। दूसरा ग्रन्थ वह अपूर्ण ही छोड़ कर मर गया। 'परम माहेस्वर' और 'निर्मलकण्ठ' जैसी विद्वानों ने बल्लाल सेन के शीर्ष होने का प्रमाण मिलता है।

सहस्रम सेन—सहस्रम सेन अपने बंध का एक प्रतिष्ठित शासक था। साथ ही साथ भारत के सबसे कायर नरेशों में भी उसकी यचना को जाना चाहिए। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार जब मुहम्मद बिन-बख्तियार खिलजी बिहार की रीढ़ों का भ्रमण करती थी तो सेना लेकर उसकी राजधानी पहुँचा तो सहस्रम सेन चुपचाप अपने महल के पिछले दरवाजे से निकल आया।

सहस्रम सेन का शासन संस्कृत साहित्य के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उसकी राज नमा में 'वीर रत्न' रहते थे जिनके नाम थे—(गोत पौबिन्ध के राज पिता) जयदेव उमापति धोवी (पवनकुल के रचयिता) हकामुद् और धीरर धाम। सहस्रम सेन ने स्वयं अपने पिता के अपूर्ण ग्रन्थ 'अद्भुत सागर' को पूरा किया।

सहस्रम सेन के राज्य पर मुसलमानों का आक्रमण ११९९ ई० में हुआ था। इनके बाद सेन राजवंश का अंत हो गया यद्यपि पूर्वी बंगाल पर और बाद तक इन के राजा राज्य करने रहे।

काश्मीर का राज्य

प्राचीन भारत में काश्मीर का क्षेत्र भारत के साथ बहुत महान् और अभिन्न अराजनीतिक सम्बन्ध नहीं था परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से काश्मीर कभी भी भारत से पृथक् नहीं था। कुछ समय तक तो काश्मीर संस्कृत विद्या के प्रमुख केन्द्र के रूप में रहा। अशोक का काश्मीर पर अधिकार था। कन्हन की 'राजतरंगिणी' में इस बात का उल्लेख मिलता है कि अशोक की मृत्यु के बाद जब मौर्य साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति का क्षय होने लगा तो उसके पुत्र आसीक ने जो काश्मीर में राजप्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहा था अपनी स्वतन्त्रता का घोषणा करके केन्द्र से पृथक् एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर दी थी। आसीक के उत्तरागत काश्मीर में किम राजा जबका राजवंश का अधिकार था यह विद्वत्प्रताप कम से कम ज्ञात नहीं परन्तु कृपाश्री के अधिकार में काश्मीर का यह असन्दिग्ध रूप से हमें मान्य है।

कर्कोटक राजवंश—काश्मीर में दुर्लभबर्द्धन ने जाल या कर्कोटक वंश की स्थापना की। उसके राज्य काल में जूनसांग ने काश्मीर को घाटा की। चीनी यात्री के लेख से ज्ञात होता है कि दुर्लभबर्द्धन का राज्य केवल मुख्य काश्मीर तक ही सीमित नहीं था बरन पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी पंजाब के कुछ भाग पर भी उसका अधिकार था। दुर्लभ बर्द्धन न सत्सील क्यों तक राज्य किया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी दुर्लभक का शासन-काल पचास वर्षों तक रहा परन्तु उसके विषय में कोई ज्ञातव्य ऐतिहासिक बात मान्य नहीं है।

दुर्लभक के उत्तरागत उसका पुत्र चन्द्रापीड काश्मीर सिंहासन पर समासीन हुआ। चन्द्रापीड काश्मीर का एक प्रसिद्ध नरेश था। उसने अरबों के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए चीनी सम्राट के पास अपना एक राजदूत भेजा था। यद्यपि उसे जान वेध से कोई सहायता प्राप्त न हो सकी तथापि उसने मुहम्मद बिनकासिम को काश्मीर की सीमा में घुसने नहीं दिया।

कर्कोटक राजवंश का सबसे प्रसिद्ध शासक ललितादित्य मुक्तापीड था जो ७२४ ई० में सिंहासनावृत्त हुआ। ललितादित्य काश्मीर का तो सबसे प्रसिद्ध शासक था ही अपने समकालीन शासकों में भी उसकी सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। वह एक महान् विजेता और उत्सेहनीय सम्राट था।

यशोधर्मन के सम्बन्ध में पढ़ते हुए हम ऐसा बुरे हैं कि उसकी माँति ललितादित्य ने भी चीनी सम्राट की राज समा में अपना राजदूत भेजा था। इसके बाद ललितादित्य और यशोधर्मन के बीच किस प्रकार संधि और विग्रह के सम्बन्ध स्थापित हुए, इनका अध्ययन हम कर चके हैं।

कभी के तामक यशोधर्मन की मृत्यु में पराजित करने के पश्चात् ललितादित्य ने अपना विभिन्नय अभियान प्रारम्भ किया। ललितादित्य पूर्वी समूह की ओर बढ़ा और कलिय तक पहुँच गया। गौडविषयि ने ललितादित्य की अधीनता विरोध ही स्वीकार कर ली और उसने ललितादित्य की सेवा के लिए कुछ हाथो भिजवा दिए। कर्नात होता हुआ ललितादित्य कानेरी पहुँचा और उसने कुछ द्वीपों की भी विजय किया। पश्चिम की ओर अभिमुख होने पर उसने मात कोकियों का वध किया और हागका तक पहुँच गया। इनके पश्चात् ललितादित्य ने अन्तिम तथा अन्य राज्यों का भा जीता परन्तु वह कहना कुछ कठिन है कि कन्हन द्वारा बर्चित ललितादित्य-विभिन्नय का विवरण पूर्वतः सत्य है।

राज्याधिराज की मृत्यु तत्पश्चात् ७६० ईस्वी में हुई। उसने छठीय वषों तक राज्य किया। उसका पश्चात् काशीर के राजसिंहासन पर कई तुर्क गद्दे बैठ बिन के क्षान-काक में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटित हुई। काशीर विनयाधिराज के राजतुल्य का अन्तिम पराक्रमी और प्रतापी सघाट था। उसने अपने बड़े से विमुक्त शत्रु का पुनः प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया। उसने पितामह की मूर्ति बनायी विनयाधिराज ने भी कभी पराक्रम किया और वहाँ के राजा बन्धायुध क्षत्र का सिंहासन पर चढ़ कर दिया।

उत्पल बंस का शासन—काशीर में उत्पल बंस की स्थापना करके प्रथम राजा के पुत्र-सर्वजन की मार ब्रह्म विनयाधिराज समर्थ में बने चौथे राजा के राज्य के अन्तिम क्षणों में उत्पल बंस का शासन—काशीर में उत्पल बंस की स्थापना करके प्रथम राजा के पुत्र-सर्वजन की मार ब्रह्म विनयाधिराज समर्थ में बने चौथे राजा के राज्य के अन्तिम क्षणों में उत्पल बंस का शासन—

[illegible][illegible]

काश्मीर संस्कृति

हम यह पहले कह चुके हैं कि काश्मीर सांस्कृतिक दृष्टि से कभी भारत में विच्छिन्न नहीं होने पाया है। जिस युग का हम इस समय अध्ययन कर रहे हैं उसमें काश्मीर मस्केट विद्या का केन्द्र था। डा० आर० सी० गजूमहार ने काश्मीर राज्य के पृथिव पत्रों की कटु आलोचना करते हुए संस्कृति तथा कलाओं के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं। आप कहते हैं "यद्यपि राजनीतिक विकास और बबर कृतता में काश्मीरियों की सुख्या मध्य काल के योरप मिवासियों से भी अधिक है तथापि परिष्कार, संस्कृति और उन बातों में जो सम्प्रदाय का निर्माण करती हैं वे काफी विकसित अवस्था में थे। विद्या का प्रचार था और देश में यह अधिक प्रचलित थी। संगीत तथा मूल्य जैसी अस्तित्व कलाओं की आराधना राजा और प्रजा दोनों के द्वारा समान रूप से की जाती थी। कला और वास्तु की बहुत अधिक उन्नति हुई और यहाँ तक कि सबसे निम्न राजाओं और उनके मन्त्रियों ने मन्दिरों और मठों के निर्माण की प्रथा को जारी रखा। कम और बर्तन में काश्मीर ने अस्केलनीय प्रगति दिखायी और छैठे बर्ष के एक तम सम्प्रदाय का विकास किया जिसकी मानवता और विचार प्रदानता अनेक पूर्ववर्ती छैठे सम्प्रदायों के अर्थकर और हिंस्र प्रभाव चित्र के निदान विपरीत है।" हमने गुप्त युग की साहित्यिक प्रगति का अध्ययन करते हुए भट्टमेन्द्र नामक कवि के विषय में पढ़ा है जो काश्मीर के राजा मातृगुप्त का राजकवि था और जिसका अस्केल कस्तूर ने किया है। अवन्ति बर्ष के राज्य काल में काश्मीर में कवियों की एक शृङ्खला-सी थी। अजयवामिन ने 'अजयवामिन चरक' के आधार पर एक महाकाव्य लिखा। गलाकर ने छैठे विषयों पर रचनाएँ लिखी और अमिनन्द ने बाह्य रचित 'काश्मीर' को सरल संस्कृत में पद्यबद्ध किया। समेन्द्र नामक प्रसिद्ध लेखक ने काश्मीर को गौरवान्वित कर दिया। उसने अपनी 'बृहत्कवामञ्जरी' नामक रचना में गुणादय की कृति को सरल कविता के माध्यम द्वारा समिष्ट कर दिया। यह एक स्वर्णीय बात है कि समेन्द्र ने इस रचना के द्वारा गुणादय और संस्कृत साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की क्योंकि मूल पैगामी प्राकृत में लिखी गई 'बृहत्कवा' अप्रामाण्य हो चुकी थी। 'अजयवामिन चरक' नामक ग्रन्थ में बौद्ध कथाओं को उसमें संस्कृत में लिखा। समेन्द्र ने विष्णु के अवतारों रामायण और महाभारत तथा काव्य-शास्त्र से सम्बन्धित विषयों पर भी कविताएँ लिखीं। छेठे देख नामक प्रसिद्ध लेखक की उत्तम कविता का गौरव काश्मीर की ही वसुधा को प्राप्त है। उसने 'कथा मरिसागर' नामक भुविख्यात कथा-ग्रन्थ का प्रणयन किया। विष्णु एक काश्मीरी नरेश का राजकवि था। इन सबके अतिरिक्त कस्तूर के कारण काश्मीर विषय रूप में गौरवान्वित हुआ क्योंकि कवि कस्तूर के रूप में उसे अपना इतिहासकार मिला गया। इन प्रकार यह कवि और इतिहासकार दोनों थे। काश्मीर में अनेक सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री हुए।

काश्मीर में बौद्ध बर्ष का भी काफी प्रचार हुआ था। कन्निक के समय में प्रसिद्ध बौद्ध संगीति काश्मीर में ही हुई थी। परन्तु छैठे बर्ष के एक अत्यन्त दिव्य स्वर्ण के विकास करने के कारण धार्मिक जगत में काश्मीर का महत्व अविनाश है।

प्रश्न

- 1 Who were the Rajputs ? (1047 1049 1032.)
(राजपूत कौन थे ?)

2. What were the chief Rajput kingdoms in Northern India in the twelfth century ? (1947)

(बारहवीं शताब्दी ई० में उत्तरी भारत में कौन-कौन से मुख्य राजपूत राज्य थे ?)

3. Give a brief account of the rise and fall of Pratiharas of Kanauj (1942)

(कन्नौज के प्रतिहारों के उत्थान और पतन का संक्षिप्त वर्णन दीजिये।)

4. What do you know about of the Chauhans of Bhakambhari and Ajmer ?

(बाहमनी और अजमेर के चौहानों के विषय में आप क्या जानते हैं ?)

दक्षिणापथ के राजकुल

दक्षिणापथ का अभिप्राय—संस्कृत शब्द 'दक्षिणापथ' का अभिप्राय गर्महा नदी के दक्षिण के देश से है। इस प्रदेश का वर्तमान नाम दक्कन है। जिस प्रकार विन्ध्य और हिमालय के बीच की सारी भूमि को 'उत्तरापथ' की संज्ञा दी गई थी, उन्हीं प्रकार गर्महा नदी के दक्षिणवर्ती भूभाग को दक्षिणापथ कहा जाता था।

दक्षिणापथ का कुछ इतिहास—आर्यों के दक्षिणापथ में प्रवेश और प्रसार से उत्तरापथ के निवासियों के साथ दक्कन के लोगों का सम्पर्क हुआ। 'रामायण' में बर्णित दक्षिणापथ में राम का कथानक सम्भवतः एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिए हुए है जो उस प्रदेश में आर्यों के राजनीतिक विस्तार का सूचक है। महाकाव्य का एक और पुरानी परम्परा के अनुसार यहाँ अत्यन्त पहले यहाँ से विन्धाने विन्ध्य पिरि के पारवर्ती प्रदेशों में आर्य-जय और संस्कृति का प्रकाश फैलाया और एक उपनिवेश बनाया। यदि इस परम्परा में कोई ऐतिहासिक तथ्य है तो यह सांस्कृतिक प्रदेश निरन्तर ही राजनीतिक प्रभुता के स्थापित होने के पहले हुआ होगा और उसका काल समयम आठवीं सताब्दी ई० पू० का अन्त अथवा सातवीं सताब्दी ई० पू० का प्रारम्भ माना जा सकता है।

आर्य साम्राज्य की नींवों गर्महा के दक्षिण में अवश्य ही फैली थीं यद्यपि सुदूर दक्षिण के भाग उसमें सम्मिलित नहीं थे। आर्यों का साम्राज्य सुदूर दक्षिण तक नहीं ही विस्तृत न रहा हो परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने भारत में जिस राजनीतिक एकता की स्थापना की उसका प्रभाव दक्षिण के काफी भूभाग पर था। किन्तु आर्य साम्राज्य के विघटन हो जाने पर जिस प्रकार उत्तरापथ की राजनीतिक एकता छिन्न भिन्न हो गई उसी प्रकार दक्षिण भाग में भी राजनीतिक एकता का अभाव उत्पन्न हो गया।

आर्य या सातवाहन राज्य की स्थापना में कुछ समय के लिए दक्षिण में काफी दूर तक राजनीतिक एकता स्थापित हो गई। परन्तु ईसा की पाँचवीं सदी में जैसे ही यह साम्राज्य लुप्त हुआ यह राजनीतिक एकता भी क्षिन्न-भिन्न हो गई। दक्कन के विभिन्न भागों में कई राज्य उठ पाड़े हुए। तृतीय सदी ईस्वी के मध्य ईश्वरदेव नामक आभीर सरदार ने सात महाराष्ट्र सातवाहनों से जीत लिया। आर्यों के अधिकार में भी कुछ प्रदेश आ गये। ईसा की तीसरी सताब्दी से बाकायक बंध के भेदों ने मध्य-भारत और दक्कन के कुछ भागों पर राज्य करना आरम्भ किया। गुप्तयुग में जिस अभिनव राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ था उसका प्रसार दक्कन और सुदूर दक्षिणापथ तक था। परन्तु बाकायक और गुप्त राज्यों के पतन से दक्षिणापथ में विदेशीकरण की प्रवृत्ति फिर एक बार सघन हो गई और अनेक राजवंशों की स्थापना हो गई। इन राजवंशों में वातापी (वाटामी) का बालुच बंध काफी विख्यात और धर्मिजानी का अष्टक हथ पहले हमी बंध के इतिहास का अध्ययन करेंगे।

बहामी के प्रारम्भिक वासुदेव नरेश

वासुदेव बंध का प्रथम नरेश जयसिंह वा जिसने राष्ट्रकूटों और कदम्बों के सहकर एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। जयसिंह का पुत्र और उत्तराधिकारी रणराज वा जिसके समय में वासुदेवों की शक्ति का विघ्न विकास न हो सका। परन्तु उसके पुत्र पुनः पुनः प्रथम को वासुदेव बंध का वास्तविक संस्थापक कहा जाना है। उसका राज्य सम्भवतः आधुनिक बीजापुर जिसे एक सीमित वा और बहामी उसकी राजधानी थी।

कीर्तिवर्मन—पुलकेशिन वर्मन ने अपने पड़ोसियों के ऊपर जो सफलता प्राप्त की थी उसमें उसे अपने पुत्र कीर्तिवर्मन से महत्वपूर्ण सहायता मिली थी। कीर्तिवर्मन के समय में बहामी के वासुदेवों की शक्ति का पर्याप्त विकास हुआ। वर्मन के महत्त्वपूर्ण संघर्ष पुलकेशिन वर्मन के अनुसार कीर्तिवर्मन ने वर्मन बंध वर्मन बंधुर मगध मगध किया। परन्तु यह निश्चित है कि इस अभियान की सही विताण्ड बलिष्ठतापूर्ण है, अतएव इस पर विचार नहीं किया जा सकता। कीर्तिवर्मन की सफलताओं के उप-स्वरूप जिनमें से कुछ उसके पिता के शासन-काल में प्राप्त की गई थी वासुदेवों का राजनीतिक प्रभाव बम्बई राज्य तथा मैसूर और मद्रास से लगे हुए काफ़ी विस्तृत मार्ग पर फैल गया। ऐसा प्रतीत होता है कि कीर्तिवर्मन ने कीर्तिवर्मन के उन भागों की भी अपने राज्य में मिला लिया वा जो मीनों के अधीनस्थ थे। महाराज कीर्तिवर्मन का शासनकाल ५९९-६७ ए. ५९७-९८ तक निश्चित किया गया है।

वर्मन—कीर्तिवर्मन की मृत्यु के समय उनके पुत्र नागावर्मन ने अतएव राज विहासन पर उसके सौतेले भाई ने अपना अधिकार जमा लिया। ऐवरी-हीप और कन्नुरियों के ऊपर विजय प्राप्त कर लेना वर्मन की सबसे बड़ी सफलताएँ थीं।

पुलकेशिन द्वितीय—पुलकेशिन द्वितीय (६१-६२ से लेकर ६४२ तक) अपने बंध का सबसे प्रतापी नरेश वा ही अपने समकालीन राजाओं में भी उसका स्थान और प्रथम था। उसके विहासमारोह के समय में उक्त राज्य की स्थिति बड़ी दबनीक हो गई थी।

पुलकेशिन द्वितीय की संघर्ष सफलताएँ और विजयें—अपने राज्य की स्थिति सुदृढ़ कर लेने के उपरान्त पुलकेशिन द्वितीय ने विजय-अभियान प्रारम्भ किया।

पुलकेशिन द्वितीय की सर्वत्र महत्त्वपूर्ण सफलता थी इसके द्वारा उत्तराखण्ड के मगध हर्ष की पराजय। हर्ष ने पुलकेशिन पर आक्रमण किया परन्तु वह विफल प्रयास ही रहा। पुलकेशिन के सामने हर्ष की एक न बल सही और उसे बाधित कीटना पड़ा। इन विजय ने पुलकेशिन की प्रतिष्ठा को बहुत अधिक बढ़ा दिया। अपने अन्य समकालीन राज्यों पर उतका अत्यन्त जय मचा। महाकोणक और कन्निर के रूपति उत्तम मयवीर और आर्यभट्ट हो गए। उन्होंने बीघा ही उसके सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद समुद्रतीर पर द्वारा वासुदेव की सेना दक्षिण दिशा की ओर मुड़ी

मिष्टपुर और एक अन्य दुर्ग पर पुनर्कथित द्वितीय का अधिकार हो गया। पुनर्कथित द्वितीय ने पल्लव-नरेश महेंद्रवर्मन को युद्ध में पराजित किया और उसे अपने दुर्ग में धारण करने के लिए बाध्य किया। पुनर्कथित द्वितीय के आक्रमण न पल्लवों की राजधानी काञ्ची (आधुनिक कंचीवरम) को नष्ट करने के लिए किया। इसके बाद उसने काञ्ची को पार कर चोलों, केरलों और पाण्ड्यों को अपना मित्र बनाया। पुनर्कथित द्वितीय का मृत्यु सुख नहीं हुआ। उसके जीवा के अन्तिम दिनों में चामरय सन्धि का ह्रास होने लगा। पल्लव नरेश नरसिंह वर्मन ने ६४२ में वातापी पर आक्रमण किया और पुनर्कथित द्वितीय को युद्ध में मार डाला। वातापी पर पल्लवों का अधिकार हो गया किन्तु यह अधिकार भी स्थायी न हो सका। कुछ ही दिनों बाद चामरयों न पुनर्कथित द्वितीय की शक्ति ध्वस्त कर दी।

पुनर्कथित द्वितीय का साधनाथ—पुनर्कथित द्वितीय के सुविशाल साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में बिन्ध्य पर्वत अनी और महानदी तक दक्षिण में मैसूर के पठार तक और आसिन्धु-सिन्धु पर्वत पर्वत तक थी।

कुनसाय का विवरण—कुनसाय ने ६४१-४२ ई० में पुनर्कथित से नासिक में बैठ कर भी और उसने राज्य का प्रभुत्व भी किया था। चीनी यात्री ने पुनर्कथित द्वितीय के व्यक्तित्व तथा उसके राज्य और उसके प्रजाजनों के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान किया है। पुनर्कथित के विषय में कुनसाय लिखता है “बहु शक्तिशाली था। उसके बिहार विद्यालय और वन्यजीव हैं और अपनी सहायक शक्ति तथा शान-विद्याओं का उसने काफी विस्तार कर रखा है। उसके प्रजाजन पूर्ण शक्ति के साथ उसकी सेवा करते हैं।”

चामरय की शक्ति का पुनर्कथित—तेरह वषों तक चामरयों की शक्ति को पल्लवों ने ध्वस्त कर रखा था। चामरयों का राज्य बिन्ध्य भागों में बँट गया था परन्तु विक्रमादित्य प्रथम (६५५-८०) ने भी पुनर्कथित द्वितीय का सुयोग और और पुनर्कथित का अपने बंधु के मौर्य को फिर से उत्थित किया। उसने अपने पैतृक राज्य को पल्लवों से छीन लिया। अपने पहले सामरिक प्रयास में ही उसने पल्लव राजधानी को नष्ट करने के बाद सुदूर दक्षिण तक जाने दिया और चोल पाण्ड्य और केरल राज्यों की शक्तियों को परास्त किया। विक्रमादित्य ने ६८० से लेकर ६९९ तक और विक्रमादित्य न अगमन ६९९ से लेकर ७३३ तक शासन किया।

विक्रमादित्य द्वितीय—विक्रमादित्य द्वितीय चामरय वंश का प्रतापी नरेश था। उसके उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मन द्वितीय ने चामरयों में विक्रमादित्य की सैनिक सफलताओं का वर्णन किया है। इस माध्य के अनुसार उसने अपने प्रहस्यमित्र को परास्त किया। उसकी सेना पल्लवों की राजधानी काञ्ची में प्रविष्ट हो गयी किन्तु उसे नष्ट नहीं किया गया। उसने राजसिंहासन और अन्य मन्दिरों को उन मूर्तों के रूप में परिपूर्ण कर दिया जिन्हें कुछ दिनों पूर्व पल्लवों ने छीन लिया था। उसने चोल पाण्ड्य और केरल शक्तियों को भी ध्वस्त तथा अग्रस्त कर दिया। उसके राज्य काल में मरकों ने जिन्होंने मन् ७१२ ई में मित्र पर अधिकार कर लिया था दक्षिण पर भी आक्रमण किया। विक्रमादित्य न उनका सामना किया और उन्हें पराजित किया। उसका यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसके कारण दक्षिण मरकों के ह्रास में जाने में सक्षम गया। परन्तु वह पल्लवों की शक्ति पूर्ण रूप से नष्ट न कर सका। पल्लव मूर्ति पञ्चवर्गमन् ने पराजित होने पर भी अपनी राजधानी काञ्ची पर फिर से अपना अधिकार प्रस्थापित किया।

वासुदेव सत्ता का अन्त—बिष्णुवादित्व द्वितीय का पुनः कीर्तिवर्मन द्वितीय अपने पिता की मृत्यु के बाद शासक हुआ। कीर्तिवर्मन द्वितीय वातापी के वासुदेव कुल का अन्तिम नृपति था। ७५९ ई. में राष्ट्रकूट नरेश दन्तिदुर्ग ने उसकी पराजित कर दिया। कीर्तिवर्मन द्वितीय के राज्य के अधिकशास भागों पर दन्तिदुर्ग का अधिकार स्थापित हो गया। एक अभिलेख से पता चलता है कि कर्नाटक क्षेत्र में बिष्णुवादित्व की सत्ता ७५७ ई. तक बनी रही किन्तु राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण प्रथम ने वातापी के वासुदेव राजवंश की मूल शाखा का सम्भ्रान्त कर दिया। परन्तु वास्तव्य उसकी दूसरी शाखाओं ने अपना अधिकार बनाये रखा।

वासुदेवों के समय में जर्म और कला की अवस्था

वासुदेव बंस के शासन की प्रारम्भिक दो शताब्दियों में वाङ्मय जर्म को प्रमानता प्राप्त थी। राजाओं और प्रजाजनों में वैदिक धर्म को ग्रहण किया। पौराणिक देवताओं का समाज में सम्मान था। वातापी तथा पन्नरक में बह्म विष्णु और महेश के विराट् मन्दिर बने थे। परन्तु वासुदेव राजाओं की धार्मिक सहिष्णुता के कारण दक्षिण में जैन धर्म को फलने-फूलने का अवसर प्राप्त हुआ। बौद्ध धर्म के प्रति वासुदेव में इस धर्म की क्या अवस्था थी इस पर हीनराज के लेख के प्रकाश पड़ता है। चीन नरेणों का क्या दृष्टिकोण था यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता परन्तु उनके राज्य में इस धर्म की क्या अवस्था थी इस पर ह्वेनसांग के लेख से प्रकाश पड़ता है। चीनी यात्री लिखता है "बौद्ध विहारों की संख्या १८ से ऊपर थी और ५ ॥ अधिक की संख्या में हीनयान और महायान सम्प्रदायों के भिक्षु वहाँ विद्यमान थे। राजाओं के भीतर और बाहर ५ अशोक स्तूप थे वहाँ पिछके चार बूढ़ कमी बैठे थे और उन्होंने वास्तुवेदन किया था। वहाँ पर पत्थर और ईंटों के अल्प स्तूप भी थे। परन्तु जैन धर्म की अत्यधिक उत्पत्ति के कारण बौद्ध धर्म का विकास रुक गया।

कला—वासुदेवों के शासन-काल में कला की भी पर्याप्त उत्पत्ति हुई। अजन्ता और एलोरा दोनों ही वासुदेव राज्य में अवस्थित थे। इनके कुछ जिन वासुदेवों के समय में बनवाये गये थे। औरंगाबाद और नासिक में अनेक बौद्ध गुहा स्थापत्य अब भी विद्यमान हैं। बाबामो में समानात् विष्णु के नृसिंह आदि अवतारों की मूर्तियाँ कला की दृष्टि से बड़ी प्रशंसनीय हैं। एलोरा बाबामी और पन्नरक में इस काल के बने हुए मन्दिर हैं। बिष्णुवास मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है जिसमें मिलि चित्रों द्वारा रामायण की कथाओं को चित्रित किया गया है। वासुदेव राजाओं ने हिन्दू देवी-देवताओं के मन्दिर बनवाने और मन्दिरों की प्रचुर दान दिया।

माय सेंट (मालसेड) ने राष्ट्रकूट

बाग्री शताब्दी के छठे दशक में दक्षिण में राजनीतिक प्रमुखा वासुदेवों के हाथ में निष्कास कर राष्ट्रकूटों के हाथ में चली गई। राष्ट्रकूटों ने अपने साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार किया और आगे चलकर राजनीतिक प्रमुखा में फिर जिन तीन राज्यां में संघट्टि हुई उनमें से एक दक्षिण मायसट के राष्ट्रकूट कुल की भी थी।

राष्ट्रकूटों का उत्कर्ष—दन्तिदुर्ग के अपीम राष्ट्रकूट का उत्पान हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि दन्तिदुर्ग एक वासुदेव राजकुमारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था वा किन्हीं राष्ट्रकूट सरदार के साथ ग्याही गई थी। सम्भवतः उसने उत्तर और दक्षिण के प्रदेशों को छाँड़कर सम्पूर्ण वासुदेव राज्य पर अधिकार जमा लिया। दन्तिदुर्ग (७५५

७५९) ने ही राष्ट्रकुलों के विनाश राज्य की नींव डाली। उसने मड़ीय के मुर्बों और गुजरात के भास्वयों का परास्त किया। दन्तिपुर्य ने ७३५ ई. में भास्वय राजकुमार गोविन्दमन द्वितीय को युद्ध में पराजित कर महाराष्ट्र का उत्तरी भाग अपने राज्य में मिला लिया। काशी कांछक कर्मिय भास्वय साट (बसिन गुजरात) और य. वीस (कर्नूल जिल में) के राजाओं को उसने परास्त किया था। दन्तिपुर्य की मृत्यु तीस वर्ष की पौड़ी अवस्था में हो गई।

दन्तिपुर्य के कोई पुत्र न था अतएव उसके राज्य का कुप्य प्रथम अधिकारी हुआ। कुप्य प्रथम दन्तिपुर्य के पिता का भाई था। कुप्य प्रथम ने भास्वय राजघराने के विनाश-कार्य को पूरा किया। कौक्य की विजित करने के बाद वहाँ उसने सिखा हारों को अपने अधीनस्थ एक सामन्तवासी दक्षिण के रूप में प्रतिष्ठित किया। उसने ७६८ ई० में धोपुर्य को संभार में परास्त किया और उसको भी अपने सामन्त बनाया। कुप्य का राज्य-काल ऐखोरा के कौकस-मन्दिर के निर्माण के लिए प्रसिद्ध है।

गोविन्द द्वितीय—कुप्य प्रथम के उपरांत गोविन्द द्वितीय राष्ट्रकुल राज्य का अधिकारी हुआ। जब वह अपने पिता के शासन-काल में युवराज था तभी उसने बैयी के विष्णुवर्धन वसुध को पराजित किया था। गोविन्द द्वितीय ने पारिजात को भी युद्ध में हराया। परन्तु राज्य का अधिकारी होने के उपरांत वह व्यभिचार और मोपविभास में डूब हो गया। परिणाम यह हुआ कि राज्य का समग्र सारा उत्तरदायित्व उसका अनुज राज बहन करने लगा और प्रथम के बंधीनूत हो कर उसने राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। ७७९ ई. में अचर प्राप्त होने पर राज ने अपने भाई के विरुद्ध बिद्रोह कर दिया और नही पर अधिकार कर दिया।

धुब—धुब पारावर्ष राष्ट्रकुल-कुल का एक महान् विजेता था। उसने ७८० से लेकर ७९४ तक राज्य किया। धुब ने मंग राज विजयार द्वितीय को पराजित करके उसके राज्य पर अधिकार बना लिया और उस पर शासन करने के लिए अपना एक ब्राह्मण नियुक्त किया। वह पल्लव नरेश दन्तिवर्मन के विरुद्ध काशी तक अपनी एक बाहिनी ले गया। दन्तिवर्मन को राष्ट्र-कुल राजा के सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ा। इससे बाद धुब ने इन्द्रायुध को परास्त कर अपने भ्रात्रे परगमा-यमुना को विरुद्ध ग्रहण किया और मया-यमुना के दोषाव में ही उसने बंभार के राजा वर्मपाल को पराजित कर उसका राज्य भी जीत लिया। उषी के समय में राष्ट्रकुलों पार्कों और प्रतिहारों के बीच पंथा और यमुना की बाटियों में राजनीतिक प्रभुत्व बनाम के लिए पारस्परिक संघर्ष छिड़ गया।

गोविन्द तृतीय—धुब ने अपने शासन काल के अन्तिम दिनों में अपने तृतीय पुत्र गोविन्द को युवराज नियुक्त किया और कुछ दिनों बाद उसके पक्ष में स्वयं राज्य त्याग दिया। यद्यपि धुब उसे अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित करने के बाद मरा था तथापि गोविन्द तृतीय के राज्याधिकार का उसके बड़े भाई रत्नम ने विरोध किया। उनमें बारह राजाओं का एक संघ बनाया। गोविन्द अपने विरुद्ध बारह राजाओं की सम्मिलित दक्षिण से तनिक भी भयभीत न हुआ अतएव उसने बैयी और साहम के साथ अकेल ही उनका सामना करने का निश्चय किया। उसने इस संघ पर विजय प्राप्त की और बिद्रोह का दमन करने में बहुपूर्व रूप से सफल रहा। इस प्रकार आन्तरिक ऊप्राधी से छुटकारा प्राप्त करने के उपरांत गोविन्द अपनी रणबाहिनी उत्तर भारत में ले गया और मातङ्ग-नरेश गुर्जर नागभट्ट द्वितीय और उसके सहोदरी

भारतीय इतिहास

बन्ध गुप्त को पराजित किया। कुछ दिनों तक मालवा छाट प्रदेश के छात्रक के जमीन रहा। अधिक उत्तर में पहुँच कर मोरिन्द तृतीय ने कभीवाधिराजि बन्धपुत्र को अपने साथ आत्मसमर्पण करने के लिए विवश किया और इस प्रकार बन्धपुत्र के संसार सर्वपात की भी अवहृत्ता की। स्पष्ट है कि तीन अधिकारों के बीच प्रभुता के हस्त सभ्य में मोरिन्द तृतीय ने राज्यकर्ता को सबसे अधिक शक्तिधारी प्रभावित किया। गान्धर्व न ८ १ ई० के समय पल्लव राज्य पर आक्रमण करके इतिवर्तन को हराया। उत्तर के रत्न-अभियान से लौट आने के बाद पल्लवों के साथ अपने पुत्र अपना युद्ध जारी कर दिया। बलिष्ठ की राजधनियता के विरुद्ध युद्ध में मोरिन्द तृतीय को अपनी शक्ति न ऊपर विजय का पद लँका तक पहुँच गया और कंकाधिपति ने अपनी सेना में अपनी एक मूर्ति सेजकर अपने अधीनता प्रवृत्त की। बलिष्ठ ने अपने विद्रोहियों की शक्ति को कुचकन के बाद शक्ति ने अपना जीवन राज्य के पालन का सुखस्थित करने में व्यतीत किया।

अमोघवर्ष प्रथम—अमोघवर्ष प्रथम ८१४ ई० में राष्ट्रकूट की राजमहती पर बैठा, राज्याभिषेक के समय उसकी अवस्था केवल बाढ़ वर्ष की थी। अमोघवर्ष की बत्ता से राष्ट्रकूट कुल के चितोचियों ने काम उठाया बाह्य अट्टक विरापी साम्य ने उसके विरुद्ध अपना सिर उठाया और पश्चिमी पंथों ने अपनी स्वाधीनता का साथका करके बाल-भूषण को विहासनभूषण कर दिया।

विहासन प्राप्त कर आने के बाद भी राज्य की आन्तरिक पड़वही न कारण अमोघवर्ष काफ़ी समय तक लीग-भूषण से निष्क्रिय रहा। हो सकता है कि अपनी बल्लवापु के कारण भी उन रत्न-अभियान प्रारम्भ करना उचित न समझा हो। ८१० ई० के समय अमोघवर्ष ने "मो के विजयादित्य तृतीय को पराजित करने के आतिरिक्त और कोरि ईनिक सकलता नहीं प्राप्त की। उसके समय में राष्ट्रकूट साम्राज्य का विस्तार कम हो गया।

अमोघवर्ष की बलि नैतिक-कार्यों की ओर नहीं गयी। उसका स्वभाव साम्प्रदायिक था और बर्ष तथा साहित्य के प्रति उसके हृदय में पर्याप्त अनुराग था। उसका सम्भवतः कविदाय मार्ग नामक ग्रन्थ का प्रयत्न किया। बर्ष के बीच में उनकी बलि लैन मय को बोर की। आदि पुराण के प्रथम विमर्शन का दावा है कि वह अमोघवर्ष का पुत्र था।

ऐसा प्रतीत होता है कि अमोघवर्ष ने अपने पुत्रराज कृष्ण के कर्णों पर राज मार सौकर स्वयं ही राज्य से लिखा था।

इच्छा द्वितीय—इच्छा द्वितीय (८८०-९१२ ई०) की अभिलेखाओं में महामु विजया कहा गया है। एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि उसकी आमाओं का पालन बंग बंद कतिपय पंग और कोयल के घामक करते थे। यह निश्चित है कि अभिलेख का यह दावा अतिरिक्त मान है। यह अवश्य है कि इच्छा द्वितीय को अपने पद्मेनी चम्पा से बचकर संवर करती रहना पड़ा। बलिष्ठ में उसका संग और नीलमर्मा में पूर्व में बंगी के बालकपा से भी उत्तर में पूर्व-मतिहारी तथा पुत्रराज के राष्ट्रकूटों से युद्ध किया। इच्छा-द्वितीय भी अपने पिता की तरह जैन सिद्धांतों से प्रभावित था। मूलतः नामक वैशाखाय उनके पुत्र थे।

इस तृतीय—११४ ई० के लगभग कृष्ण द्वितीय का बेहान्त हो जाने पर उसका पुत्र इस तृतीय गिर्यवर्ष राष्ट्रकूट राजसिंहासन पर बैठा। सिंहासनावक होने पर इस तृतीय की आयु पैंतीस वर्ष की थी और उसने केवल पाँच वर्ष तक शासन किया किन्तु अपने अति संक्षिप्त काल में ही इस तृतीय ने अपने को पराक्रमी घोषा किया।

सम्भवतः पत्र सेबों से विरहित होता है कि पहले उसने उज्जयिनी पर आक्रमण किया। इसके बाद वसुधा नदी को अवतीर्ण करके उसने कन्नौज बोट लिया। पूर्व प्रविहार सम्प्रदाय महीपाल भाग सका हुआ और इस तृतीय के सेनापति नरसिंह बालक्य ने उसका पीछा किया।

इस तृतीय की मृत्यु के बाद उसका श्वेच्छ पुत्र ज्योतिष वर्ष द्वितीय राष्ट्रकूट वंश का राजा हुआ। किन्तु ज्योतिषवर्ष का शासनकाल अपने प्रतापी पिता के शासन-काल की अक्षा कहीं संक्षिप्त था और एक वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् २५ वर्ष की अवस्था में ज्योतिषवर्ष का बेहान्त हो गया। इसके बाद बौद्धि चतुर्थ राष्ट्रकूट सिंहासन पर बैठा। उसका अधिकार समय मोग विकास में स्थित हुआ करता था। गिरिन्द्र चतुर्थ का शासन-विमूढता तथा भोयसिद्धता संसृष्ट होकर उसके सामन्तों ने सदैव विरुद्ध बुरा छत्र बिगा और ज्योतिषवर्ष तृतीय से इस बात का निवेदन किया : वह राष्ट्रकूट वंश की रक्षा करने के लिए स्वयं राज्य-भार ग्रहण करें।

ज्योतिषवर्ष तृतीय—(११५-११९ ई०) वह बौद्धि अधिकार का वृद्धि पा। न अपने पुत्र कृष्ण तृतीय के सुपुत्र शासन-भार सौंप दिया।

कृष्ण तृतीय—सन् ११९ ई० के विस्मरक मास में कृष्ण तृतीय राष्ट्रकूट सिंहासन पर बैठा। कृष्ण तृतीय ने एक मर्यकर बुरा के उपरान्त पोलों को बहुत पराजय हो। परमार बंस के राजा शिवक द्वितीय को उसने पराजित किया लेकिन परमारों की शक्ति को रोकने में उसे कोई स्थायी सफलता न प्राप्त हो सकी। दक्कन में कृष्ण तृतीय ने अपने पीछे से राष्ट्रकूटों का आधिपत्य फिर से स्थापित किया लेकिन उसी भारत में उसे विषेय सफलता न प्राप्त हुई। ऐसा जान पड़ता है कि उसने अपने राज्य-भार के बाद मध्य भारत के कुछ प्रदेश जीते थे। मुहूर शक्ति में उसने उसकी मनीषता स्वीकार कर ली जिसके उपरान्त में कृष्ण तृतीय न राज्यस्वरूप में अपने विजय-स्तम्भ चढ़े किये।

राष्ट्रकूट वंश का पतन—कृष्ण तृतीय अपने वंश का अन्तिम महान् शासक था। उसकी मृत्यु (११८ ई०) के पश्चात् राष्ट्रकूटों का पीरबन्धन अत्यन्त होने लगा। तोटिक जो इस तृतीय का भावा और सत्पराजिकारी था इसका शक्तिहीन प्रभावित राजपानी मान्यत पर अपना अधिकार जमा दिया। तोटिक का मनीषा भी उत्तराधिकारी कर्क द्वितीय था जिस से १०३ ई० में तैल द्वितीय ने राजसिंहासन छन लिया। तैल न कल्याण क बालक्य राजवध की नीति बानी। इस प्रकार राष्ट्रकूट का शक्ति का पतन हो गया।

राष्ट्रकूट राजाओं के समय तक दक्कन में पौराणिक हिन्दू धर्म अच्छी तरह स जमा हुआ था। हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के शास-शास जैन तथा अन्य

प्रथम अधिकार जमाना चाहता किन्तु वह असफल रहा। आठमा के परमार नरेश दुर्जय के साथ उसका बहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा।

सत्याभय—द्वितीय के पश्चात् पश्चिमी बालूक्या के राजवंश का स्वामी सत्याभय हुआ। सत्याभय (११७-१०८ ई०) चौक नरेश राज-राज का ममकाजीन था। उसके शासन-काल में चौकों की राजधरि का बहुत अधिक उत्थान हुआ। राज राज प्रथम चौक की सेनाओं ने बालूक्या राज्य में मृत्यु का ताण्डव नचा कर दिया। फिर भी सत्याभय ने अपनी शक्ति को पुन संगठित करने में सफलता प्राप्त की और बल्लभ में चौकों से कुछ प्रदेश जीते। सत्याभय १०८ ई० में मर गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका बड़ा बेटा विक्रमादित्य ने दस वर्ष तक शान्तिपूर्ण परिस्थितियों में शासन किया।

सन् १०१८ ई० में जयसिंह द्वितीय सिद्धासन पर बैठा। उसने चौकों अगुहक बाद के कालियों बबरा सोलहियों और मालवा के परमारों से युद्ध जारी रखा। बाद और कुन्वस सरदारों का जयसिंह द्वितीय ने सफलतापूर्वक धमन किया। जयसिंह द्वितीय ने परमार बहाव नरेश मोह को परास्त करके 'पाल्पा सब' पट्ट कर दिया और इस प्रकार मोह का साम्राज्य-निर्वाण-स्वप्न टूट गया।

सोमेश्वर प्रथम आहुवमस (१०४२-११६८) —जयसिंह द्वितीय बगदक मस की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सोमेश्वर प्रथम नृपति हुआ। उसने अपने शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों से ही चौकों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध में चौक नृपति राम्याधिकारी प्रथम को वीरगति प्राप्त हुई किन्तु विजय-श्री चौला के ही हाथ रहा। ११२ ई० में उसे पुन चौकों से पराजय उठानी पड़ी।

चौकों के विरुद्ध सोमेश्वर प्रथम को सफलता न प्राप्त हो सकी किन्तु उसने मालवा के राजा मोह परमार ने विरुद्ध राजाओं के संघ में भाग लिया और उनकी शक्ति को टूट-भट्ट कर दिया। उसकी शक्ति का लोहा कलौज के मुर्जर बनिहारों की भी मानना पड़ा।

विक्रमादित्य पट्ट विजयन मस (१०७६-११२६) ई —विक्रमादित्य पट्ट अपने कुल का सब से प्रतिष्ठ भासक था। अपने शासन के शुरू में ही उसने चौकों से युद्ध किया। उसका हयसल सामन्तों ने १११० ई० के लगभग चौकों से उत्तकाह का प्रदेश जीत लिया। किन्तु होयसल लोग काही शक्तिशाली हो गए थे और वे विक्रमादित्य पट्ट की मजबूतता नाम मात्र का ही स्वीकार करते थे। विक्रमादित्य पट्ट ने काशीर के प्रतिष्ठ कवि विश्वरूप की बुझाकर अपनी राजसभा में आदरपूर्ण स्थान दिया। विश्वरूप ने अपने आत्मचरिता का जीवनचरित्र 'विक्रमादित्य चरित' नामक पात्र में लिखा। उसके समय में विजयनगर में हिन्दुओं के लिए 'मिताभरा' नामक कानून की पुस्तक लिखी। विजयनगर ने विक्रमादित्य पट्ट और अपनी राजधानी कल्याण के विषय में लिखा है "इस जन्ममें पूर्णों पर कल्याण और विक्रमादित्य की शक्ति कोई नगर और नृपति न है न कभी हुआ है और न होगा।"

विक्रमादित्य के बाद—विक्रमादित्य पट्ट की मृत्यु ११२० ई० में हुई। उसके देहावसान ने उपरान्त सोम ही केन्द्रीय सरकार की शक्ति छिन्न-भिन्न होम गया। उसके पुत्र सोमेश्वर तृतीय का शासन केवल नाम मात्र का ही था। मानसवर तृतीय एक शक्तिशाली सामन्त भी नहीं था जवण कल्याण के बालूकों का साम्राज्य दिनों दिन ह्रासोन्मुख होम गया किन्तु सोमेश्वर विद्यानुरागी और विद्वान् था। उसने

भारतीय इतिहास

'मानसोत्साह' नामक ग्रन्थ का प्रथम प्रकाश जिसमें विविध विषयों का विवेचन किया गया है। सोमेश्वर तृतीय का पुत्र जयदेवकमल द्वितीय (११३६-११५१ ई०) का आक्रमण करते उससे मानवा का एक भाग और परमार क्षेत्र के राजा जयवर्मन पर तृतीय कल्याण के सिंहासन पर बैठा। तृतीय तृतीय को काफ़ी नरेश प्रीति ने पराजित कर दिया। इस पराजय से काफ़ी बरा को शक्ति और प्रविष्टा को प्रसन्न करवाए पहुँचा जिससे आम उठाकर मन्त्री विजयल न को सम्भवत कलचुरी बंश का राजसिंहासन पर अधिकार जमा लिया (११५६ ई०) और तत्काल तृतीय को कल्याण का बाहर खदेड़ दिया। इस प्रकार कल्याण में एक नये राजवंश की स्थापना हुई, फिर भी तृतीय तृतीय अपने राज्य के एक छोटे से भाग पर ११६३ ई० व शासन करता रहा।

कल्याण में कलचुरी आठराधिक्रिय और तियायल सम्प्रदाय—तृतीय तृतीय क मन्त्री विजयल कलचुरी ने ११५६ ई० में राजसिंहासन इत्ययल कर लिया। सात वर्ष तक शासन करने के बाद उसने ११६३ ई० में सिंहासन त्याग दिया। विजयल के उत्तराधिकारियों का अधिकार ११८३ ई० तक स्थापित रहा। कलचुरी सम्प्रदाय का समय में और जीवपल बचवा लियात सम्प्रदाय का अधिकार में काफ़ी प्रकार बढ़ा। विजयल की मन्त्री बावल तियायल सम्प्रदाय का उत्तराधिकार में कलचुरी का मंदूर देश में आम की मन्त्री बावल तियायल सम्प्रदाय का उत्तराधिकार में की जयस्यवरा तथा सर्वसायल। नहीं मन्त्री और छिछ के लिए रूप तथा उनके बाह्य मन्त्री क परम जयस्यवरा की नहीं मन्त्री और छिछ के लिए रूप तथा उनके पुत्रादय प्रस्ताव है। वे कर्म-जयस्यवरा की नहीं मन्त्री और छिछ के लिए रूप तथा उनके पुत्रादय में विजयल नहीं करते। बाह्यभा की मन्त्री और परम्परायल सिंहासन की सामा तियायल सम्प्रदाय के उत्तराधिकार काय का जय बाह्यल परिवार में ही हुआ था। मन्त्री यत काय विजयल-विवाह का समर्थन करते हैं। इस मत के प्रचार से कलचुरी देश में जैन धर्म की बहुत सति पहुँची। तियायलों ने कलचुरी भाषा में साहित्य-सूचन किया।

दशगिरि का आदेश

चारल भोज अपने को अपमान कृष्ण के ब्रह्म बधुर्ग का बताते हैं। तबसे व एण्डुको के सामन्त से बार में परिषदी बाधुर्गों की शक्ति बढ़न पर यात्रल भोज उनल सामन्त हू मर्ग। उत्तरवर्षी बाधुर्गों के समय में विजयल सिंहासन पर पठा का सामन्त नियुक्त किया गया। विजयलियल पट ने यह अनुभव किया कि वरा बिना स्वामीय नरवारों की सहायता के आम सामान्य का शासन सम्भव करे नही। वन सत्यल स्वामीय शासन के स्वयंनवा प्रदान कर यों। मेमुचल का शासन पिल उसका स्वामीय शासन के स्वयंनवा प्रदान कर यों। मेमुचल का शासन पिलावटी नदी के मैदानी भाग (गानडा) पर था। किययाविल की मृत्यु के बाद उनल मन्त्री शक्ति को बढ़ाया। बाद में मेमुचल के पुत्र ने अपने पिता के कार्य का जारी रखा। कल्याण में कलचुरी आठराधिक्रिय के कारण चारल भोज कुछ काम ठक मन्त्री शक्ति का अधिकार कर सके। सामेनर बधुर्ग के समय चारल भोज

स्वतन्त्र हो गये। यादवों की स्वतन्त्रता का प्रतिष्ठापक मिस्त्रम पञ्चम या जिसने सामन्त वतुर्प से कृष्णा नदी के उत्तरवर्ती प्रायः छीन लिये। मिस्त्रम पञ्चम ने सम्राटों के निम्न कारण लिये और अपनी राजधानी देवगिरि में बसाई। उसी के समय से देवगिरि के स्वतन्त्र राज्य का प्रारम्भ मानना चाहिए।

अपने विद्रोही सामन्तों को बसाने के प्रयत्न में मिस्त्रम पञ्चम को अपने प्राणों से हान भोग पड़े। मिस्त्रम पञ्चम की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र और उत्तराधिकारी देवपाल प्रथम अथवा जैतुपी देवगिरि के सिंहासन पर बैठा। जैतुपी ने ११९१ ई० से लेकर १२१० ई० तक शासन किया। १२१० ई० में जैतुपी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सिंहास राजा हुआ जो मात्र बच का सबसे प्रसिद्ध शासक था।

सिंह—सिंह के सौतीसवर्षीय शासन-काल (१२१०-१२४७ ई.) में देवगिरि के पारवा का राज्य अपन विस्तार और नीरव के बरमेन्स पर पहुँच गया। १२११-१२ ई० और १२४०-४८ ई० में सिंह ने दो बार गुजरात पर आक्रमण किये और बल्लाह द्वितीय के निरुद्ध युद्ध छड़ कर उसने सबसे आक्रमण तथा कृष्णा नदी के दक्षिण में काछी विस्तृत भूमि छीन ली।

सिंह ने मास्कराचार्य के बंधनों का समाप्त करना जारी रखा। उसका राज्य-न्योविपन्न छावने का जो मास्कराचार्य का पीर तथा लक्ष्मीवर का पुत्र था। छावने में पावना में एक विद्यालय खोला जा वहीं पर मास्कराचार्य के निदान्त गिरी-मणि तथा अन्य ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। सिंह की राजसभा को सारस्वर सुशोभित करता था जिसका संघीत उत्साह तथा लोभ संगीत साहित्य में सम्पन्न एक रत्न है। स ग्रन्थ के ऊपर एक टोका प्रस्तुत है और इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि वह जो स्वयं सिंह ने लिखी थी। सिंह एक मोक्षिकुल शासक और महान् निर्माता भी था। उसने अपने राज्य में ८४ पुर्ण बनवाये और अपने सामन्तों को भी ऐसा काम की जाता थी।

सिंह के उपरान्त उसका पीर कृष्ण सिंहासन पर बैठा। कृष्ण ने १२४७ ई० से लेकर १२६० ई० तक शासन किया। कृष्ण का भाई और उत्तराधिकारी महादेव (१२६०-७१ ई०) एक सामर्थ्यशाली शासक था। महादेव का १२७१ ई० में देहान्त हुआ और उसके बाद उसके पुत्र रामचन्द्र प्रथम राजा हुआ।

राज्य राजा रामचन्द्र के समय में दिल्ली के तिमूजि सुल्तान अलाउद्दीन ने देवगिरि पर आक्रमण किया। रामचन्द्र की मुश्किलानों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। देवगिरि के पारवा राज्य का सम्पूर्ण अलाउद्दीन तिमूजि के उत्तराधिकारी मुबारक तिमूजि के समय में हुआ।

बारगल क फाकतीय

दक्कन क बालकय साम्राज्य के धर्मसाधकों पर जा नहीं राजवंश उठ लड़ हुए उनमें बालक्यों का राज्य भी एक था। काकतीयों के मूल में सम्भव में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ अभिलेखों में काकतीयों को गुरु बताया गया है किन्तु इन बारगल को यह मनी बल-शक्ति स जिसमें स्फुटत के अनेक नाम मिलते हैं विरिष्ठ होता है कि काकतीय सम्भवतः सुपर्वतीय क्षत्रिय थे।

काकतीय बल का सर्वप्रथम ऐतिहासिक व्यक्ति होता था जो कल्याणी के बालक्य नरेश विक्रमादित्य पट्ट ना सामन्त था। ग्रीक द्वितीय न चामुन्यों की राजसभा

भारतीय इतिहास

को विनाशोन्मुखी रैलकर तथा कुतोत्पन्न प्रयत्न की मृत्यु के कारण बगो में उत्पन्न
अपराधों से काम उठाकर कुम्हार तथा कावेरी नदियों के सम्भवती भू माप पर अपना
अधिकार जमा किया और अन्तर्गत (अथवा अनुसन्धान) में अपनी राजधानी बसाई।
ऐसी अनुसूति है कि प्रीत द्वितीय ने कम्पाणी के तैयार पृथीय को ११५५ ई के लम्ब
मय पराजित किया और उसे कम्पनी बना दिया किन्तु बाद में उस मुक्त भी कर दिया
गया। प्रीत द्वितीय ने अपना राज्य में अनेक जमायत सुवर्ण और कृषि में सुधार
कराने की ओर ध्यान दिया।

प्रतापराज काठ्तीय ब्रह्मका मुपति हुआ। अपने पिता की भाँति प्रतापराज को भी
सिंहासन प्राप्त करते समय विद्रोही सामन्तों का समन करना पड़ा था। होम्स और
मार्किन्हेम नामक दो लिखू सरदारों से प्रतापराज ने अपनी कार्यरत छीन ली।
नीम नामक एक रक्षितानी सरदार ने अन्य सरदारों का जापोरें छीन कर अपने
अधिकार में कर लो और इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ा ला। उसने प्रतापराज की
राजधानी कारंजम की ओर प्रयाग किया और कार्य में मिलने की छोट-मोटे नवर
पड़ उन सबको नीत किया। किन्तु नीम से प्रतापराज को पराजय लानी पड़ी और
बूढ़ नृपि में ही उसके प्रायः सभी प्रतापराज को पराजय लानी पड़ी और
काठ्तीय मरेण प्रतापराज प्रथम ने बना दिया और उसकी राजधानी में जाय
सगना ली। उसने अन्य सामन्तों के पड़ों की ओर नवरों की भी विध्वस्त करा दिया
और अपनी राजधानी कारंजम की जापोरें सुदृढ़ करवाई। उसने अपनी राजधानी
में अनेक शक्ति का निर्माण भी करवाया। प्रतापराज प्रथम का राज्य दक्षिण में
समुद्र तक उत्तर में मेवाडारी तक और पश्चिम में वर्तमान हैराबाद नगर तक फैला
हुआ था। वह विद्रोहों का कायवलाण था। उसकी शासन-नीति भी उदारता और
प्रभावशाली के सिद्धांतों पर आधारित थी। उसने स्वयं एक-एक नीतिवार का
संस्कार और लेखन सम्पूर्ण लेखन और कला इन तीन भागों का राजस्व प्रदान
सम्प्रदाय की ओर की जिससे प्रेरित होकर उसने सोमनाथ को राजस्व प्रदान
किया। सोमनाथ सम्पूर्ण लेखन और कला इन तीन भागों का राजस्व प्रदान
उसने और तीन सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धांतों पर कई धन निकले। नरदास ने
को कमलहस्त का सरदार का कुमार सम्भव' किया। वह काम धन लेखन-आप-
में लिया गया है और इन पर महाकवि काशीदास के 'कुमारसम्भव' का प्रभाव
मुसलमान लेखन दृष्टिगत होता है। प्रतापराज प्रथम की मृत्यु (११९९ ई) के पश्चात्
उना अनुज महारथ निगलताक हुआ किन्तु उसे शासनका जैतुनी में सिंहासन
भुगत कर दिया। जैतुनी ने नाकटोय मणपति की शारंजम के सिंहासन पर अभिषिक्त
कर दिया।

यशवन्ति—यशवन्ति काठ्तीय वंश का एक शक्तिशाली और प्रसिद्ध शासक
था। उसका सम्भवतः शासन मरेण सिंहासन का जिक्रने विषय में हम पोंछें प;
बने हैं। यशवन्ति ने अपने सामन्तों के प्रति उदारता दिखाई और उनके साथ
सैन्यिक सम्बन्ध स्थापित किए। अपने राज्य में शांति स्थापित कर लेने के बाद
यशवन्ति ने पड़ोसी राज्यों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। एक अभियान में एना
चलता है उसने तीन अभियान प्रारंभ करवाए। एक अभियान में एना
को पराजित किया। किन्तु एना प्रतीत होता है कि यादव मरेण निहल और यशवन्ति
को पराजित किया। किन्तु एना प्रतीत होता है कि यादव मरेण निहल और यशवन्ति
को पराजित किया। किन्तु एना प्रतीत होता है कि यादव मरेण निहल और यशवन्ति

ई के समयम वेकनामि बोड़ों के निकल जाने के कारण वहाँ की राजनीतिक स्थिति अस्थिर हो गई। माध की इस राजनीतिक अस्थिति से नाम उठाकर मयपति ने (१२०९ ई०) के लगभग वहाँ अपना अधिकार बना लिया और वहाँ की सर्व सूम तथा हीरे की लागो एवं वहाँ के बखरगाहा से अधिकतम लाभ प्राप्त किया। मस्कीर के तैलमू-बोठों में भी मयपति की असीमता स्वीकार कर ली। मयपति ने छुफपट्ट तथा कमूक के कामस्थ साठकों मायम माहिनि तथा उसके मतीका त्रिपुरासक तथा मम्बरें को अपने अधीन किया। इसके पश्चात् मयपति ने अपनी एक मात्र पुत्री ब्रह्मा को अपने राज्य का उत्तराधिकारी मियुक्त किया और उसे 'अदेव महाराज' नाम से विमूयित किया। मोतपत्ति में का बिदेसी व्यापारी शिखारत करते थे उनको उस 'अमयमान' द्वारा व्यापार को छूट प्रदान की। काइय कोरनुविज न यो मयपति की असीमता स्वीकार कर ली थी।

मयपति के सुवीर्य भागन-काल में (११९१-१२६१ ई०) काठ्तीय बय जाने राजनीतिक उत्कर्ष की सर्वोच्च सीमा पर पहुँच गया। काठ्तीय बय की सीमाय काठी दूर तक फैल गयी। मयपति के स्त्री बय ने अनेक मार्वात मयिरी को हानि दी और फिदने ही नवीन मयिरा का निर्माण करवा। पन्डरवर बिदेरदर मयपति के पुत्रादि मयपति काठ्तीय के मंत्री बय ने ही करवाया। चोत मय्याद मयपति प्रथम का अनुसरण करते हुए मयपति ने मयुधो के बयान और निर्माण मोतपत्ति प्रथम का अनुसरण करते हुए मयपति ने मयुधो के बयान और निर्माण 'पाकल' नामक एक सीमा का भी निर्माण करवाया। मयपति एक महानुभावों का अत्यंत उत्तम अपने राज्य में सैन्य के प्रति विशेष उदारता प्रदर्शित की। मयपति ने धार्मिक साहित्य के अध्ययन को मोत्याहन प्रदान किया। उसके समय में धर्मियों मार्ग का बिदेसी व्यापार काठी बढ गया और देश के बय तथा समूह में पराजि बमि बूढि हुई।

मयपति के पश्चात्—१२६१ ई० में मयपति की मृत्यु के उपरान्त उनको पुत्रा ब्रह्मा विहायन पर बैठा। ब्रह्मा के शासनकाल में काठ्तीय राज्य में कोई गड़बड़ उत्पन्न नहीं हुई। केवल दस-एक नामनों ने बिरोह करने का प्रयत्न किया किन्तु उनका बिरोह कुफल दिया गया। उसके समय में मार्कोपोलो नामक बेनिन के एक पर्यटक ने उसके राज्य का भ्रमण किया था। मार्कोपोलो ने अपने यात्रा-विवरण में ब्रह्मा के शासन की बहुत प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि साधन-व्यवस्था ठीक और व्यापार ई तथा नामनों के मित्राचार पर आधारित है। ब्रह्मा का उत्कर्षा जा बहुत बहादुरी थी। इत्यादि की मूहल पर योनूपत्ती का बखरगाहा था जो राज्य का सबसे प्रसिद्ध बखरगाहा था। राज्य के व्यापार की स्थिति समृद्धिपूर्ण था। हीरे और मङ्गीसे बल बहुत बढ परिमाण में बिदेसों को भेजे जाते थे। लौह मित्रा की सहायता द्वारा गुजरात में हीरे प्राप्त करते थे। ब्रह्मा के मती प्रताप अदेव न मावों के विरुद्ध युद्ध कर के बगानि मयिज की और १२८० ई० में बह युवराज मनामोप कर दिया गया। बह युव राज बह ब्रह्मा के मन्त्री मम्बरें न विद्रोह कर दिया परन्तु युवराज ने एक नाम बल कर उसके बिरोह को विफल कर दिया। १२९५ ई० में ब्रह्मा की मृत्यु के उपरान्त प्रतापअदेव राजा हुआ। प्रताप अदेव ने १३२६ ई० तक शासन किया। अपने राजकाल के प्रारम्भ में ही उसने असीम और समृद्ध

विहिनदेव विष्णुवर्द्धन की मृत्यु के बाद सन् ११४१ ई० में भरसिंह प्रथम होयसलों का मूर्तिपति हुआ। अपन सिंहासमारोहण के समय भरसिंह प्रथम केवल जाट वर्ग का शासक ही था। उसके राज्य-काल में कोई विजयकार्य सम्पन्न नहीं किया गया किन्तु तरसिंह प्रथम के पुत्र वीर बल्लाह प्रथम (११७२-१२१५ ई) ने अपने को गोप्य वीर धर्मिष्ठता की सांगत प्रमाणित किया। उसने अपने ४३ वर्ष के शासनकाल में होयसल वंश की राजसक्ति को पुनर्बहाया। वीर बल्लाह होयसल वंश का प्रथम विजय कार्य का पूर्णकृत्य सम्पन्न किया तथा पाण्डुरों का सफलतापूर्वक दमन किया। वीर बल्लाह जो अपनी सेना लेकर उस वीर बल्लाह के हाथों पराजय स्वीकार करती पड़ी। ११९९ ई० में लोकायुद्ध के दुर्घट पर होयसलों का अधिकार हा गया। उसने इन्का को एक सहायक नदी मान्यता को अपने राज्य की विस्तार कर दिया। होयसल राज्य की यह सीमा बल्लाहद्वारा पिछली के सेनानायक मलिक काफूर के आक्रमण तक स्थित रही। ११९१-९२ ई० में ही वीर बल्लाह ने कई सम्राटोंवित्त उपाधियों वारण की वीर इसी वर्ष से उसने एक नया सम्पत्त बहाया। १२१५ ई में उसकी मृत्यु के समय होयसलों का राज्य अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उनमें ईश्वरों की राजाधन्य प्रदान करने की नीति जारी रखी।

वीर बल्लाह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् तरसिंह द्वितीय द्वारासमूह न निहामन पर बीठा। इस समय तक (१२१९ ई) कुलीयुग सुग्रीव की मृत्यु हो गई थी जिसमें बौलों की धर्मिष्ठ विष्णुवर्द्धन सहन-नहन होने जा रही थी। लेकिन तरसिंह द्वितीय ने बौलों की सहायता प्रदान की वीर यावत-नेता इन्का के पार पहुँच गई। तरसिंह द्वितीय के बाद वाले होयसल राजाओं के विषय में कुछ विषय विवरण प्राप्त नहीं होता। केवल इतना पता चलता है कि वे बौलों वीर पाण्डुरों से लड़ने रहे। किन्तु वीर बल्लाह प्रथम ने होयसलों को उनके राजनीतिक उत्कर्ष की विम सीमा तक पहुँचा दिया था उसके कारण बाह्यी तथा वैश्यी धर्माधियों में बलिष भारत की राज नीतिक धर्मिष्ठों में उनका प्रमुख स्थान था। वीरबल्लाह धर्माधियों में सुदूर दक्षिण में विजय नगर के हिन्दू राज्य की स्थापना में होयसलों का भी योगदान महत्वपूर्ण था।

होयसल शासकों ने कर्मियों को राजाधन्य प्रदान किया जिससे उनका राज्य में विद्या साहित्य और कला की उत्पत्ति हुई। वे विद्यालय गिरियों के निर्माण में और उन्होंने जनक इमारतों बनवाई जो आज भी हमारे तथा अन्य स्थानों में खड़ी हैं और उनकी कलाप्रियता तथा कर्मनुपधिया प्रगटि करती हैं। विष्णुवर्द्धन ने नामक अथवा अमिनन पम्पा को अपनी राजसभा में स्थापन दिया था। कान्ति नामक विष्णुधर्म और कर्म माया की प्रसिद्ध कर्मिणी की जो लम्बवत विष्णुवर्द्धन की नमकालीन थी। राजाधन्य ने वल्लि के नियमों की सम्बोधन किया। नयसेन एक आचारवादी व्यक्ति और अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान तथा लेखक था। नेमिचन्द्र नामक विद्वान न नवम् की वातवदता के मोड़ पर कर्म माया में 'सीमावर्ती' धर्म का प्रथमन दिया जिसे कुछ विद्वान् कर्म माया का प्रथम उपपाठ मानते थे। पम्पा कान्ति राजाधन्य और नयसेन में सभी तीन अन्तर्गत की वे विमये मह मित्र होता है कि कला माना

की साहित्यसृजन द्वारा समृद्ध बनाने में जैनियों का योग महत्वपूर्ण था। हीनबल राजाओं के समय में हरीश्वर ने 'गिरिजा कल्याण' और रामचन्द्र ने 'हरिश्चन्द्र' काव्य लिखा। ये दोनों साहित्यकार और सब सम्प्रदाय से अनुयायी थे।

इसमें सन्देह नहीं कि कन्नड़ भाषा की उन्नति की दृष्टि से होमसों का योग काफी महत्वपूर्ण था।

चोल राजकुल

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के अन्तर्गत कारवामन ने चोलों का उत्थेय किया है। अशोक के द्वितीय सिलालेख में पाण्ड्यों सतिमपुरों और केरलपुरों के साथ चोलों के स्वतन्त्र राज्य का उल्लेख मिलता है। इन राज्यों के साथ अशोक का वैभी सम्बन्ध था। मौर्य साम्राज्य के पश्चात् ईसा की प्रारम्भिक दूधरी-तीसरी शताब्दियों में तामिल राज्यों की स्थिति का विवरण हमें 'संगम युग' के तामिल साहित्य तथा रोमन लेखकों जिनमें प्लनी और पेरिप्लस के अन्तर्गत केन्द्र अधिक उल्लेखनीय है द्वारा प्राप्त होता है।

तामिल साहित्य में चोल वंश के जिन राजाओं का उल्लेख मिलता है उसमें करिकाळ इतिहासिक व्यक्ति मान पड़ता है। करिकाळ इस युग में चोलवंश का एक सक्तिशाही और सुप्रसिद्ध शासक था। करिकाळ एक महान् विजेता था। उसने अपने सैन्य विजया द्वारा तुल्लूर बक्षिण के अन्य राजाओं पर चोलों की बाक जमा की। करिकाळ ने चोल राज्यों की सीमा का विस्तार किया। करिकाळ की राजनीतिक सक्रियता की कितनी अधिक महत्व है उसका अनुमान है। महत्व उसकी सक्तिशाली विजयों का है। उसने जयलों को साठ करवा और उनमें लोगों को बसाया। सिचाई के लिए जलाशय पृथक्कर उसने अपने राज्य की आर्थिक समृद्धि को बढ़ाने का प्रयत्न किया। करिकाळ बौद्ध धर्म का अनुयायी था और उसने यहाँ का अनुष्ठान किया था। वेदन्त विस्नी भी चोल वंश का एक सक्तिशाही शासक था जिसने राजसूय यज्ञ किया था। तामिल राजाओं में केवल वेदन्त विस्नी को ही राजसूय यज्ञ करने का मौक़ प्राप्त था। कोण्डन गणन नामक चोलसूपाधि ने भी करिकाळ की भाँति पर्याप्त शक्ति अर्जित की। संगम-युग के चार राजाओं से कल्लभों ने राजनीतिक सक्ति छीन ली। पल्लवों के उत्कर्ष से भी चोल सक्ति को काफी बचका पहुँचा फिर भी चोलों का पूर्ण विनाश नहीं किया जा सका। साहित्य ग्रन्थों तथा मन्दिरों में पद्या-पद्या उनका उल्लेख प्राप्त हो जाता है। संगम-युग के बाद के विजयाक्षय के पूर्व तक की सक्तिशाहियों में चोलों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है यद्यपि इतना सत्य है कि उनका प्रभाव अत्यन्त परिमित था।

संगम-युग में तामिल देश का साम्राज्य और वहाँ की संस्कृति

संगम युग का तामिल देशीय संस्कृति आदर्श तथा ब्रह्म संस्कृतियों के तथा म मिश्रित हो कर बनी थी। तामिल देश की सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ उत्तरायण की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं से काफी मिलती-जुलती थी। तामिल-देशीय अपनी राजधानी में राजभवन पर द्योती-गोपी करान के तिन देव प्रहिया का निगूण किया करते थे। साम्राज्य का आधिकारिक भाषा कृषि कर्म पर अत्यन्त प्रिय था किन्तु उद्योग-धर्म तथा व्यापार की स्थिति बहुत ही उत्तम थी। शोरासा द्वारा उल्लेखित स व्यापार-सामग्रियों भेजी जाती थी और स्वतः मार्गों में

बोस होने का हार्म पशुओं से लिया जाता था। अति प्राचीन काल से ही दक्षिण के महीन वस्त्र तथा मोतियों के प्रति उत्तर के लोग आकृष्ट थे। अर्बुदास्त्र के प्रपेता में तामिस देव के मोतियों और सूती वस्त्र का उल्लेख किया है। तामिस देव के निवासी व्यापारकुशल व और वे पश्चिमी देशों तथा रोमन साम्राज्य से व्यापार किया करते थे। रोम के व्यापारी प्रायः तामिस देव के बन्दरगाहों से आया करते थे और कुछ प्रमुख केन्द्र में उन्होंने अपनी बस्तियाँ बसा ली थीं। म्यूजिरिस (कम्पनोर) में पश्चिमी समुद्र-तट पर रोमन व्यापारियों ने अपना सम्राट् जायस्टस का एक मन्दिर बनाया था। दक्षिण में रोमन साम्राज्य की सुवर्ण तथा रजत मुद्राएँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई हैं जिससे यह निश्चित होता है कि व्यापार स तामिस लोगों को अधिक लाभ होता था। समयसमय तक तामिस देव का किसी व्यापार अर्थवत्त समुद्र रहा किन्तु बाद में इसका ह्रास होन लगा। 'पेरिप्लस' में दक्षिण भारत के अनेक बन्दरगाहों तथा उनकी प्रविष्ट व्यापार सामग्रियों का व न विस्तारपूर्वक किया गया है। मृगालकार ताक्षमी संग्रह (१४० ई०) को दक्षिण भारत के अनेक आन्तरिक नगरों का ज्ञान था और उसने उनके बाजारों तथा व्यापार सामग्रियों का काफी विस्तृत वर्णन किया है। पूर्वीय देशों के साथ ही तामिस लोगों का व्यापारिक सम्बन्ध था और वे बहानों में अपनी व्यापार सामग्रियाँ—गरम मसाले, मिर्च, अरक, मोती, रत्न, सुमरित द्रव्य आदि—छाड़कर सुदूर पूर्व तथा मलाया द्वीपों की यात्रा किया करते थे।

बनास्य व्यक्तियों के घर बड़े कलापूर्ण होते थे। य जूत तथा ईंटों के बमाल जाते थे और मोती बीजों पर बैजताओं तथा पशुओं के चित्र टेंपे रहते थे। घर को चारा ओर से एक प्रमोद-उद्यान घेरे रहा करता था। जन-साधारण का भोजन भी प्रमोदमय था। वे मत्स्य मूडों के बड़े छोटीन होते थे। शोषकों में रहते थे। और मछली पकड़ने में बड़े कुशल होते थे। लोगों को धार्मिक जीवन पर भावों की धार्मिक विचार धारा का बड़ा प्रभाव पड़ा था। संगम युद्ध स तामिस कवि वैदिक तथा संस्कृत महा काव्यों का दण्ड-कवियों स पूर्वतया परिचित थे और उन्मुख बर्मदास्त्रों की व्यापार सम्बन्धी मामलों का यथास्थान निरूपण किया है। 'मन्त्रिकेच्छाई' तथा 'सिक्-पदिकारम्' नामक तामिस महाकाव्यों में जिसका प्रथम सम्बन्ध संवत् ५५ के भाग प्राप्त किया गया था भावों की पौराणिक कथाओं का उल्लेख प्रचुरता से किया गया है। भावों के कर्मकाण्डों तथा धार्मिक अनुष्ठानों का प्रचार इस समय तक दक्षिण में भी प्रकार ही चुका था। संगम युग के लोग शासकों द्वारा वैदिक धर्म के अनुष्ठान का परिचय प्राप्त होता है। भावों को अधिक विवाह रीति भी तामिस-भवास द्वारा वर्गीकृत की जा रही थी। धन, बसराम और कृष्ण तथा भूतल तामिसों के प्रविष्ट उपास्य देव थे। वैदिक देवता इन्द्र की पूजा भी समय-समय पर का जाती थी। अन्न पूजन-विधि में मंत्री की बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। तामिस देव के निवासियों की विचारधारा पर बौद्ध धर्म का प्रभाव भी पर्याप्त रूप से पड़ा।

संगम युग से विजयालय तक—यह कहा जा चुका है कि करम लोगों ने पोसा की राजनीतिक धारिण को काफी दृष्टि पहुँचाई। उत्तर भारत के पन्थों ने तामिस देव में अपना राज्य स्थापित कर लिया जिससे वे उपासकों का अपनी शक्ति वृद्धि का अवसर प्राप्त न हो सके। 'उरैपुर' नामक भाग के निवृत्तों भावों का स्थिति मामलों के समुच्चय भी कलु कुटुम्बा तथा करमल विधियों के लोगों की दृष्टि कुछ अधिक थी। साठवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने रेमानु लोगों की राजनीतिक

घण्टि का उत्खनन किया है। यह सिद्धता है "बु-सि-ये (बुस्य अथवा बीस) देश प्रायः २४०० या २५०० बी (मील) में फैला हुआ है और उसकी राजधानी का बरा समान १० मील है। देश अधिकतर उजाड़ है और उसमें दम्बरवी और बनों का प्रभुत्व विस्तार है। देश की जनसंख्या बहुत थोड़ी है और धार्मिक तथा डाकू बूँटों की पर देश को मूटते हैं। जनसंख्या उष्ण है प्रजा का स्वयंशासन और कुर है। लोग स्वामाधिकार से निर्धन हैं और उनका विवास सड़कों के किनारे है। छपाराम उजाड़ और बन्द है और इसी प्रकार उनमें रहने वाले भिक्षु भी अपावन हैं। वहाँ बर्बतों के मन्दिर तथा अनेक निर्धन भिक्षु हैं। जिस समय जूलिया ने बर्बतों का पर्यटन किया था वहाँ पर उस समय पल्लवों की राजसत्ता जमी हुई थी। सम्भवतः इस समय बोल बंदीय राजकुमार पल्लवों के अधीनस्थ सामन्त थे। बोलों का राजनीतिक सम्बन्ध बलिमापय तथा मुद्रुर बर्बतों की प्रमुख राजनीतिक दलितों बाल्मव्यों तथा पल्लवों के साथ बहुत महान् था। बाल्मव्यों तथा पल्लवों के पारस्परिक संबंधों से काम उठाकर बालों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली।

विजयालय तथा आदित्य—नवी सदाश्री के युद्ध में विजयालय ने तंजीर पर अपना अधिकार बसाकर बोलों की राजनीतिक शक्ति को प्रतिष्ठापित किया। विजयालय पल्लवों का सामन्त था। उसने पल्लवों के सामन्तों मूलस्वर बोलों से तंजीर छीन लिया जिसके फलस्वरूप पल्लवों और पार्श्वों में संघर्ष छिड़ गया। मीपुरम्बियम के युद्ध में विजयालय के पुत्र आदित्य ने अपने स्वामी पल्लव राज अग्रजितवर्मन का नाश किया। अपराजित वर्मन को युद्ध में सफलता प्राप्त हुई, जिसके उपरान्त में उमन आदित्य को तंजीर का निकटवर्ती प्रदेश दे दिया। इतर पल्लवों की शक्ति भी हामोलेमुची की अवस्था ८८१ ई. के लगभग आदित्य ने अपराजित वर्मन को पराजित कर दिया और काव्ची को अपने अधिकार में कर लिया। मम्मूष पल्लव राज्य को अपने अधिकार में कर लेने पर आदित्य प्रथम बोलों की राज्यसीमा उत्तर में राट्टकूट राज्य सीमा का संस्पर्ध कर लगी। यह पृथ्वीपति द्वितीय ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। आदित्य ने बाल्मव्यों का नाश भी अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया। उसने राट्टकूट प्रदेश का नाश द्वितीय की राजधन्या से अपना विवाह किया और उमन का एक पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम कन्नरदेव था। स्वाधु रवि ने अपनी पुत्री का विवाह आदित्य के परान्तक के साथ कर दिया। कैर-नरेय स्वाधु रवि का सहायता में आदित्य ने पार्श्वों ने कोयम्बटूर तथा गरीय के प्रदेश छीन लिए। इन प्रकार आदित्य बोलों का कलहर्ष ने लेकर यदुकोट तथा कोयम्बटूर तक के प्रदेश का स्वामी हो गया। विजयालय और आदित्य बोलों ही ही थे। आदित्य प्रथम ने गिर के कई परिवार बनाया थे। उसने मृत्यु कलहर्षि के निकट लोण्डेमाना में हुई।

परान्तक—आदित्य प्रथम के पुत्र परान्तक (९०७-९५३ ई०) ने अपने शासन-काल के प्रारम्भ से ही पार्श्वों से निरन्तर की ओर ध्यान दिया। उसने बहुत पराक्रम करके मुदुरेय की उपाधि धारण की। ९१५ ई० के लगभग केन्दुर के युद्ध में परान्तक ने पार्श्वों तथा गिरों को पराजित कर दिया। अपने तृतीय रण निराल में ९२० ई० के लगभग परान्तक ने पार्श्व प्रदेश राजसिंह द्वितीय का राज्य से विद्रोह बाहर कर दिया और तीन बग बाघ उगने 'मदुरेयम्' इत्युपनाम (मदुर तथा लंका का विद्रोह) की उपाधि धारण की। परान्तक ने पल्लव राजसत्ता के अग्रज की भी सफल मृत्यु कर दिया और उत्तर में केन्दुर तक के भूभाग का अपने अधिकार में कर लिया। पश्चिमी गंग राजा पृथ्वीपति द्वितीय परान्तक का अधीनस्थ सामन्त

का। यह प्रकार परान्तक का राज्य उत्तरी पेशवर से लेकर कुमाय मध्यरोप तक फैल गया।

परान्तक प्रथम ने चारों ओर तक शासन किया और अपने इन सुबोध सामन-काण्ड में उसे प्राप्त सफलता ही प्राप्त हुई, परामर्श नहीं। किन्तु उसके जीवन के अन्तिम दिन मृत्युपूर्वक व्यतीत न हो सके।

परान्तक प्रथम के उत्तर में अग्निशेखरों में उत्तरी शासन-व्यवस्था का वर्णन किया गया है। उसके शासन-काण्ड में साहित्य की उन्नति हुई और कावेरी के तट बहन माधव ने श्रद्धा पर एक भाव्य लिखा। अग्निशेखर पर बने माधव प्रणीत भाव्य ही सम्भवतः सबसे प्राचीन भाव्य है। परान्तक प्रथम शिव का प्रथम परम भक्त था। विशाल्वरम् के शिव मन्दिर पर उसने भाग की छत डमवाई थी। प्रोफेसर नीलदर का कहना है कि "बस्तुतः परान्तक का सामन-काण्ड शक्ति भारतीय-मन्दिर-वास्तु के इतिहास में एक महान् युग था और मन्दिर निर्माण का कार्य जिसे साहित्य प्रथम ने प्रारम्भ किया था उसके सामन-काण्ड के सर्वोत्तम भाग में संसर्ग रूप में आगे रहा।"

परान्तक के पश्चात् और राजराज प्रथम के पुत्र—९५३ ई० में परान्तक की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के बाद बोलों की शक्ति नाम मात्र की ही रही। ९८० में राजराज प्रथम सिंहासनावृत्त हुआ जिसने बोलों की राजनीतिक शक्ति का केवल पुनरुत्थान ही किया शक्ति उन्हें (बोलों का) उनके गौरव के उत्थान पर पहुँचा दिया। परन्तु ९५३ से ९८५ तक पचीस वर्ष का समय बोल इतिहास में विमिरावृत्त युग है। उस युग में बोल राजाओं की क्यावसी कुछ अनिश्चित है और भी प्रकार से उनका कार्यक्रम भी निश्चित नहीं किया जा सकता। इस लक्षित नाम का इतिहास जानने के लिए जो साधन उपलब्ध हैं उनके सम्बन्ध में बिहारी के बराबरी मत है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि परान्तक के पश्चात् उसका द्वितीय न महाशक्ति नाम का राज हुआ।

महाशक्ति की क्यावति राजनीति में न होकर धर्म के क्षेत्र में है। उसकी तभी सेविधम महादेवी बड़ी ही शक्तिशाली और दयालु स्वभाव की थी। महाशक्ति के भक्ति परान्तक द्वितीय सुन्दर बोल न अपने बंधों की शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया और अपने इन प्रयत्न में वह पचीस बंधों तक लक्ष्य हो रहा। अपने अपने इन साहित्य द्वितीय की सहायता से पश्चिम राज्य पर आक्रमण किया और बार पाण्डव की बुद्ध में भार डाला। परन्तु इन युद्ध का परिणाम अनिर्वचनीयक ही रहा। उत्तर में सुन्दर बोल का अधिक महत्ता प्राप्त हुई। उसन राज्यका क आचार न नान्दमन्त्रम् न बंधों का प्रथम रीति किया। महाशक्ति के पुत्र उत्तम बोल न न स्वर्ग नाम राज्य का दयाली हला चाहता था। साहित्य की भाव डाला। अपने सुपुत्र पुत्र तथा सुन्दर की हत्या न व्यक्ति हो कर सुन्दर बोल स्वयं मियाँ गया। सुन्दर बोल के बाद उत्तम बोल न ९७३ से लेकर ९८५ ई तक शासन किया। उत्तम बोल ने सुबोध के लिये जगज्ज ओ बोल बंध के सबसे प्राचीन निबन्ध है। उत्तम बोल के पश्चात् राजराज प्रथम का सिंहासन प्राप्त हुआ।

राजराज प्रथम—राजराज प्रथम परान्तक द्वितीय का पुत्र था। उसकी प्रथम सम्पत्तिशक्त सफलता यह थी कि उसने कन्नूर में चेरों के एक महानी बड़ को विजय कर लिया। शक्ति में राजराज प्रथम न कन्नूर के अनेक भाग पर विजय की ही नहीं

परास्त किया अथिउ उस पाण्ड्यनरेश तथा संकायिपति के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त हुई। उसने पाण्ड्य राज्य में जोकों का अधिकार बना दिया और उत्तरी संका की भी अपने राज्य में मिला लिया। लका में अपनी विजय-स्मृति की विरहमायी बनाय अपने के लिए राजराज प्रथम ने वहाँ जयवान शिव का एक मन्दिर बनवाया। उत्तरी संका का सु-भाय मुम्मडि-चोल-मण्डलम् के नाम से जोस प्राप्त बन गया। पाण्ड्यों और वेरों की शक्ति की हवाये रखने के उद्देश्य से राजराज प्रथम कुर्ब तक अपनी विजय गह्वरी ले गया। सन् १०११ से १०४६ ई के बीच में उसने गंगवाडी तथा मैसूर से अन्य प्रांता को विजित कर लिया। पवित्रभी बालुक्कम नरेश सत्याघय को राजराज प्रथम के द्वारा महती पराजय स्वीकार करनी पड़ी। इस युद्ध में विजय प्राप्त कर लेने के बाद राजराज न रत्नाप्री पर अधिकार कर लिया और बालुक्कम देश की रीढ़ डाला तुयमन्न मई। बालु सायाज्य की सीमा बन गई। राजराज प्रथम ने वनी के पूर्वी बालुक्का की भाण्डरिक राजनीति में हस्तक्षेप किया। उसने उनकी पारस्परिक कलह का अंत करके उनके साथ मैत्री स्थापित कर ली। इस मैत्री के स्मारक में राजराज प्रथम ने अपनी कन्या कुन्दर्बी का विवाह विजयविजय (वैनी नरेश) के साथ कर दिया। अपने राजत्वकाल के अन्तिम दिनों में राजराज प्रथम ने लकदीव और मालदीव के द्वीप समूहों को विजित किया। इन द्वीप समूहों की विजय से यह स्पष्ट तथा प्रामाणिक है कि राजराज प्रथम ने जोकों का एक बहानी देश सगठित किया था। सुमात्रा के भी विजय साम्राज्य के सम्राट् भार विजयोत्सवमें के नाम राजराज प्रथम का मैत्री सम्बन्ध था और उसने भार विजयोत्सवमें के नाम पर उत्सव में एक बौद्ध विहार बनवाने की आज्ञा दे दी।

अपनी विजयों के फलस्वरूप राजराज प्रथम सम्पूर्ण वर्तमान मद्रास प्रांत कुर्ब मैसूर और मिहल के अनेक द्वीपों का स्वामी बन गया। इस मैथ सफलताओं के फल में अपने पर राजराज प्रथम को प्राचीन भारत के अग्रणी योद्धाज महान् विजयार्थ और साम्राज्य निर्माताओं की शक्ति में परिकल्पना स्थान देना चाहिए।

राजराज प्रथम कलस की विजय ही नहीं था बल्कि एक सुयोग्य साधक भी था। उसने अपने विभिन्न साधन-सम्बन्धी कार्यों द्वारा अपने साम्राज्य की नींव मजबूत कर दी।

राजराज स्वयं शिव का प्रथम पत्न था किन्तु प्राचीन भारत के सभी महान् धामों की शक्ति वह धर्म के मामल में सहित था। उसने अपने राज्य में वैष्णव सम्प्रदाय को फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया और यह हम पीछ पड़ चुके हैं कि उसने भी भारविजयोत्सवमें की बौद्ध विहार बनवाने की अनुमति दे दी थी। स्वयं राजराज ने इस विहार को एक मीन ताल में किया था। वह मन्दिर का निर्माता भी था। उसने तमिल में अपने उपास्य देव शिव का एक सुन्दर मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर का नाम उगी के नाम के आधार पर 'राज राजदेव' पड़ा। "यह मन्दिर अपने अगा नृपात् गादी करैगा सजीव नृतिमा गया अगाचारण अलंकरणों की नृपादता के लिए प्रसिद्ध है। मन्दिर की शक्ति पर राजराज प्रथम की विजयों का नृपात्त गुण। और यदि यह प्रस्तुत न होता तो उस महान् नृपाति के अरि का अधिकार नृप हो जाता।

राजेंद्र प्रथम—राजराज प्रथम का सुयोग्य पुत्र राजेंद्र उसके पश्चात् नृपा हुमा। राजराज प्रथम ने पाण्ड्य नरेश के विरुद्ध भी युद्ध किया उसने परिणाम-तत्त्व यह कि उसने उत्तरी संका का ही स्वामी हो गया किन्तु राजराज प्रथम ने १०८८ ई०।

सिंह के मरे स उसका राजवंश छीन लिया और उसके देश को विजित कर लिया। राजेन्द्र प्रथम ने उत्तरी भारत के राज्यों को जीतने का निश्चय किया। वह स्वयं अपनी सभा के साथ नौवावरी तक आया और बाग के देशों को जीतने के लिए उभर आया। गंगा-यमुना के साथ सेना मजबूत की। गोवावरी नदी को पार कर राजेन्द्र प्रथम की सेनाएँ बस्तर और उड़ीसा होती हुई पश्चिमी बंगाल तक जा पहुँची। मार्ग में ही उज्जयिनी का बोल सेना ने पराजित किया। इसके पश्चात् सेना ने बंगाल नदी को पार किया और पाल नरेश बलिपाल प्रथम की हराया।

राजेन्द्र प्रथम नौबोख की महत्वाकांक्षा उसकी इन उपर्युक्त विजयों से शान्त न हो सकी। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में नहीं मिलेगा एक ऐसा घातक या जिसने भारत की सीमा के बाहर जलमार्गों द्वारा बंगाल की खाड़ी में अपने जहाजी बेड़े का प्रहार किया। सन् १०२५ ई० के लगभग राजेन्द्र प्रथम ने केराला और भी विजय के राज्यों के विरुद्ध अपना जहाजी बेड़ा तैयार किया। बृहत्तर भारत के इन राज्यों की विजय का वास्तविक उद्देश्य क्या था यह नहीं कहा जा सकता। डॉ० एमासकर विपारी के अनुसार सम्भवतः यह आक्रमण केवल राजेन्द्र प्रथम की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए नहीं किया गया था, बल्कि इसका उद्देश्य मध्य प्रायद्वीप और दक्षिण भारत के बीच व्यापार सम्बन्ध स्थापित करना भी था।

राजेन्द्र प्रथम को अपने शासन-काल के अन्तिम दिनों में आन्तरिक विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। राजेन्द्र प्रथम के बृहत्तर भारत पर-अभियान के पश्चात् ही न अपनी स्वयंसेवकों का विमुख बचाया। पान्थ और करल राज्यों ने भी बग़ावत की किन्तु राजेन्द्र प्रथम के पुत्र राजाचिराम प्रथम ने इस विद्रोह का सफलतापूर्वक अन्त कर दिया। पश्चिमी बाल्हुय नरेश सोमेश्वर प्रथम को सफलता प्राप्त हुई। इस आक्रमण में बोल सेना ने कम्पाची को बुरा लूटा जलौटा। वैन्दुर आदि स्वामी में भी कुछ छोटे-मोटे आक्रमण किए गए। राजेन्द्र प्रथम की मृत्यु १०४४ ई० में हुई।

राजाचिराम प्रथम—राज सिंहासन पर बैठते ही उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किन्तु उसने दौरेला तथा धैर्यपूर्वक उन कठिनाइयों का सामना किया। राजाचिराम का शासन-काल अधिकतर मुद्रादि कार्यों में ही व्यतीत हुआ। उसने सिंह के विरुद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त करने पर अवश्यमेव यश का अनुष्ठान किया था।

राजेन्द्र (देव) द्वितीय (सन् १०५२-६२ ई०)—राजेन्द्र द्वितीय राजाचिराम प्रथम का अनुज था। आन्ध्र-नरेश सोमेश्वर प्रथम को राजेन्द्र द्वितीय ने कुद्रुमल संघमम् नामक स्थान पर १०५२ ई० में पराजित किया था। राजेन्द्र द्वितीय के समय में बोल साम्राज्य की सीमाएँ संकुचित नहीं होनी पायीं।

वीर राजेन्द्र प्रथम (सन् १०६१-७०)—राजेन्द्र द्वितीय का अनुज और राजेन्द्र प्रथम का उत्तराधिकारी हुआ। आन्ध्र-नरेश सोमेश्वर प्रथम को हरा दिया। बृहत् ई कि सोमेश्वर प्रथम की जूनीटी स्वीकार करके वीर राजेन्द्र ने पश्चिमी बाल्हुय साम्राज्य पर आक्रमण किया। सोमेश्वर प्रथम रौपयस या हनीलिए बहू स्थिति में उपस्थित न हो सका। इनके बाद बोल सम्राट् बेंडी तक पहुँच गया और बेंडी के निम्न पश्चिमी बाल्हुयों का पराजित किया। वीर राजेन्द्र ने अपनी राजधानी में एक मुविगाल प्रासाद तथा अपने लिए एक राजसिंहासन बनवाया। वीर राजेन्द्र के समय में बड़मिह न “वीर सौमिह” नामक ग्रन्थ रचित हुआ।

अचिराजेन्द्र—अचिराजेन्द्र ने अपने पिता वीर राजेन्द्र के साथ विभिन्न राज्यों पर आक्रमण किया। वीर राजेन्द्र की मृत्यु के पश्चात्

नृपति हुआ किन्तु कुछ ही महीनों तक वह एक स्वतन्त्र नरेश की हैमियत में शासन कर सका। उसकी मृत्यु अस्वाभाविकता से ही हुई। अभिरामर के समय में बोल रावसता का प्रभाव और आत्मक कम हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् बोल साम्राज्य का स्वामी कुलोत्तुंग हुआ।

कालीसुर प्रथम (१०७०-११२२ ई०)—कुलोत्तुंग प्रथम का वास्तविक नाम राजेन्द्र था। बोल साम्राज्य की दक्षिण और प्रसिद्धि का पुनरुज्जीविता करने के लिए एक दक्षिणवासी तथा साहसी व्यक्ति की आवश्यकता थी और कुलोत्तुंग प्रथम ने अपने को इस कार्य के लिए योग्य प्रमाणित किया। यद्यपि कुलोत्तुंग प्रथम बड़ी क पूर्वी आक्रमण बंध का थे तथापि वह अपने को बोल सम्राट् मानता था। सिंहासन प्राप्त कर देने के बाद उग बाह्य विपत्तियों का सामना करना पड़ा। १०७१ ई० के लगभग उस कार्य करचुरा ने बेंबो पर आक्रमण किया। वा वर्ष बाद लका-नरेश ने अपने को बोलों की सर्वभूमि में स्वतन्त्र करने के स्वप्न में पित कर दिया। १०७६ ई० के लगभग कुलोत्तुंग प्रथम की कन्याया के प्रथम आक्रमण नरेश विजयविजय पट्ट ने यश करवा पड़ा। पूर्वी आक्रमण तथा विजयविजय पट्ट का पराजित करने (१०७६ ई०) के बाद कुलोत्तुंग प्रथम ने वही सम्मान स्थापित कर लिया और इसे सुदृढ़ बनाने के लिए परस्पर विवाह सम्बन्ध स्थापित किए गये। पारव्यों तथा बेटों पर कुलोत्तुंग प्रथम ने पुन विजय प्राप्त की और उनको स्वायत्त राज्य के स्मि उनक देशों में स्वतन्त्रता स्थापित कर दिए किन्तु उनके आन्तरिक मामलों में उन्हें पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की गई।

कुलोत्तुंग प्रथम ने दक्षिण राज्य को विजित करने की बात प्यार दिया। दक्षिण के विरुद्ध समन हो-रन जजियाल भजे। उत्तरी दक्षिण का राज्य बोल साम्राज्य में मिलाया नहीं गया।

सन् १११७ ई० में कुलोत्तुंग प्रथम की हयमक नरेश विष्णु वर्धन के आक्रमण का सामना करना पड़ा। विष्णु वर्धन ने बोल नरेश से लंबाड़ी का प्रदेश छीन लिया। उसने लम्काइ के प्रदेश का भी जीत लिया और तेलकनुमोन्द उपाधि धारण की। १११८ ई० के लगभग विजयविजय पट्ट ने भी कन्याया का आक्रमण बदीय राजा था बगी पर अधिकार जमा लिया। लंका का राजा विजयबाहु स्वतन्त्र हो गया। समुद्र पार के द्वीपों पर जो राज्य प्रथम मंगीकोण्ड के समय में बोलों के अधीन थे कुलोत्तुंग प्रथम के अधीन नहीं रहे गये थे।

कुलोत्तुंग प्रथम बोल बंध का एक गुप्तत्व दातक था। उसने अनक अनिष्टों से यह प्रमाणित होता है कि उसने शासन-व्यवस्था को सुमरुतिव दिया। उसने अपने शासन कास के सीलम्व तथा आदिमर्गे वर्ष में अपने राज्य भर में भवि का माप करवाया था। उसने अनक स्थानों पर कृषि उपनिवेश स्थापित किए थे जिससे यह सूचित होता है कि वह अपनी शासीय प्रजा की आर्थिक समृद्धि का प्यार रखता था। स्वतन्त्र उपनिवेश स्थापित करने उसने राज्य नीतियों की सुरक्षा पर ध्यान दिया।

कुलोत्तुंग प्रथम ने शासन-कास का कुछ आर्थिक और साहित्यिक महत्त्व भी है। उसने सभी शासकों की योगिनी सेन मन को राजाध्व प्रदान दिया। उसने बोलों में प्रति गतिगुना दिगदर्श और मागाद्विषय के बीछ रंगों का अनेक राज दिव। महात्त्व शासन भाषाएँ राजानुत्त उनके समराजीय थे किन्तु उनक प्रति उगता व्यवहार संगति-म पड़ा। नरु फाता है कि राजानुत्त ने वी प्रचार-व्यक्ति उन समय के परि

पाटीप्राप्त समाज का अप्रीतिकर प्रतीत हुई जिससे कुलोत्तुंग प्रथम उनके प्रति असहिष्णुता दृष्टिकोण से निम्ने बाध्य हो गया। रामानुज उनका अत्याचारों से तंग आकर मैसूर चले गये, जहाँ विजयनगर ने उनका प्रभुत्व सम्मान और आदर स्वीकार किया। पेरिया पुराणम के प्रणेता मोक्कलार को कुलोत्तुंग ने अपनी राज-ममा में स्थान दिया था। कलिमत्तुप्परनी व रत्नमिता जैयोंन और शिखपट्टिकारम् पर राज्य लिखने वाले आदि यक्षु नम्बर कुलात्तुम प्रथम के समय के विख्यात साहित्यकार थे।

कुलोत्तुंग प्रथम के पश्चात् विक्रम चोल—कुलात्तुम प्रथम के प्रायः वर्ष शताब्दी के सुशाय धामन काल में चोल साम्राज्य की स्थिति उद्यमप्रबन्ध रही किन्तु उनकी मृत्यु के बाद चोल बंश की शक्ति गटन लगी। परन्तु वहाँ तक सांस्कृतिक कार्यों का प्रयत्न है उनमें कमी नहीं आने पाई। कुलात्तुम प्रथम का उत्तराधिकारी विक्रम चोल ११२० ई० में चोल साम्राज्य का अधिपति हुआ।

कुलोत्तुंग द्वितीय—कुलात्तुम द्वितीय ने ११३५ ई० में अपने पिता विक्रम चोल की मृत्यु के पश्चात् शासन-भार अपने हाथों में ग्रहण किया। विशम्भरम् के मठ राज मन्दिर की सेवा में उसने भा प्रभुत्व उपहार भेंट किये। ताम्रिक साहित्य के इतिहास में कुलोत्तुंग द्वितीय का शासन-काल उत्कृष्टनीय है क्योंकि उसने और उसके सामन्तों ने ओट्टुकुत्तम् सेलिक्कर तथा कम्बन आदि कवियों को राज्यालय प्रदान किया था।

कुलोत्तुंग द्वितीय के पश्चात् राजराज द्वितीय (११५०-७४) राजा हुआ। राजराज द्वितीय राजाविराज द्वितीय दुर्बल धामक था जिसके समय में चोल शक्ति का देनादिन पतन हुआ गया। उत्तर में काकतीय बंध के सानका ने चोलों पर बार-बार आक्रमण कर दिया। यक्षपति और कृष्णम्मा के समय में काकतीय बंध की शक्ति खल हो उठी और उन्होंने चोल साम्राज्य की उत्तरी सीमा के कुछ भूभाग पर अपना अधिकार बना लिया। दक्षिण में पाण्ड्यों ने मारवर्मन मुन्दर पाण्ड्य तथा जटायुवर्मन मुन्दर पाण्ड्यों के अधीन अपनी शक्ति का विस्तार करके चोल साम्राज्य के अधीनत्व माना को अपने अधिकार में कर लिया। पश्चिम में यही कार्य हुयसलो ने किया। तबका के राजा पराक्रम बाहु ने चोलों से संघर्ष किया। कुलोत्तुंग तृतीय इन काल में चोल बंध का एक पण्यमा साधक हुआ और उसने कुछ बंध तक अपने राज्यों का एकतापूर्वक सामना किया। उसने अपने सैन्य-सूत्रों के द्वारा चोल साम्राज्य की राजा की और उसे नष्ट होने से बचाया। किन्तु कुलोत्तुंग तृतीय के उत्तराधिकारी राजराज तृतीय ने अपने को दुर्बल प्रभावित किया। राजराज तृतीय अपने सामन्तों को भी बंध में न रख सका। उनके समय में पल्लव आदि के सरदार कैलेरुविय ने विद्रोह करके उस बन्ध बना लिया। ऐसी संकटापन्न स्थिति में चोल नरेश राजराज तृतीय की उसके स्वभुर नरसिंह (हुयसल नरेश) ने अपनी एक सेना भेज कर की। इस सेना ने राजराज तृतीय को युक्त किया। इसके पूर्व १११५ ई० में हुयसल राजा नरसिंह ने राजराज तृतीय की मारवर्मन मुन्दर पाण्ड्य के आक्रमण से बचाया था था तब और एक दंड माना था। पैरुम्पिडन ने चोल साम्राज्य के कुछ भागों जैसे मेयमयलम् (दक्षिण मरवाट जिला) में अपनी स्वतन्त्र राजसत्ता प्रतिष्ठित कर दी। अपने हुयसल राजा मेयमयल के भी जटायुवर्मन मुन्दर पाण्ड्य के विरुद्ध चोल सैन्य की रक्षा करनी पड़ी। किन्तु चोल साम्राज्य के उत्कर्ष के दिन अब समाप्त हो चके थे। पाण्ड्यों की शक्ति बाकी बड़ चुकी थी। राजराज तृतीय की जटायुवर्मन मुन्दर पाण्ड्य ने पण्डित कर दिया और कांची पर, जहाँ चोल-शक्ति का प्रमुख केन्द्र था अधिकार बना लिया।

अन्तर्गत सुन्दर पाण्डप के उत्तराधिकारी मारक्यन कुम्भवर ने जोर राज्य को रीर बनाया। जोर साम्राज्य के उत्तरी सिरे तेजस सरदारों के प्रमुख में स्वतन्त्र हो गए। न तेजस सरदार अपने का करिकाल जोर का बंधन बताते थे। कावेरी नदी के मैदान में रहने वाले जोरों का अस्तित्व स्वामीय सरदारों के रूप में कुछ और समय तक बना रहा। चौहानी घाटी में विजयनगर के राजाओं ने जोरों के अवशेष को भी पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया।

जोर सम्प्रदाय एवं सम्प्रति

घासन

जोर राजाओं के अनेक अभिलेख उनकी घासन व्यवस्था पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। जोरों की घासन व्यवस्था भुमनठित तथा कतिपय विशिष्ट तरीकों से युक्त थी।

केन्द्रीय सरकार—जोर साम्राज्य की घासन-व्यवस्था प्रमुख राजन्यात्मक थी। जोर राज्य के एक विशाल साम्राज्य में परिणत हो जाने पर राजा का प्रमुख डाट-बाट तथा सम्मान बहुत अधिक बढ़ गया। सम्राट् विविध प्रकार से अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने का प्रयास किया करता था। उसकी एक से अधिक राजधानी होती थी और उसकी राजसभा ऐश्वर्यमयी तथा तटक-मटक से परिपूर्ण हुआ करती थी। वह अरबनेबाहि यत्रों का सम्बोधन करता था और इन अवसरों पर ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणा दान दिया करता था। इसका ही नहीं विशेष मन्दिरों के नाम सम्राटों के नाम पर रख दिये जाते थे। राजराजेश्वर मन्दिर और मन्दिरों में उसकी प्रतिमाएँ रखी जाती थी।

जोर साम्राज्य में उत्तराधिकार की व्यवस्था बड़ी ही उत्तम और नृस्यष्ट थी। सम्राट् अपने जीवन काल में ही अपना उत्तराधिकारी चुन लेता था जिसे 'सुवराज' कहते थे। 'सुवराज' अपने पिता को सावधान्य में सहायता प्रदान किया करता था। सम्राट् को घामन-दासों में सहायता देने के लिए कई कर्मचारी होते थे जिनको लेकर बनन नहीं बरन् नू भाग के रूप में पारिवीयिक दिया जाता था। यह एक उल्लेखनीय बात है कि घामन-दास पद्धति में मणि-मण्डल नहीं था किन्तु इन अभाव की पूर्ति एक योग्य कर्मचारी बर्मे के द्वारा ही जाती थी।

समा और बहानी बड़ा—जोर सम्राटों के असीन एक सुविशाल समा हुआ करती थी। समा में हाथी अश्वारोही और पैदल होते थे। अभियोगों में समा के सतर मध्य समा का उल्लेख किया गया है।

जोरों का अहासी बड़ा अत्यन्त सुमनठित था। इसी अहासी बड़ा की सहायता से केशरम और भी विजय व राज्य विजित किये गए थे।

भूमि कर और आध के साधन—जोर साम्राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमि कर द्वारा प्राप्त होता था। भूमि कर धर्म समारोहों के लिए दिया करनी था और निजानों का इन बात की सुविधा प्रदान का जाती थी कि वे अपनी इच्छानुसार कर नष्ट निरर्थक भयका उत्र के अंग चूकना करें। भूमि कर पड़ने अथवा बाढ़ भरने के कारण कमल नष्ट होने पर भूमि कर माफ कर दिया जाता था।

भूमि कर में अनिश्चित विविध प्रकार ने जहाँ से भी राज्य को लाभकारी हुआ करनी थी। विभिन्न व्यवसायों तथा नुसारों व्यापारियों नुस्करों पर भी कर लगाया

पाठा था। जानी नहीं गयीं। जामातों और दाताओं पर भी जो कर समाप्त जान से उनसे साम्राज्य को पर्याप्त आय होती थी।

प्रादेशिक विभाजन—राजराज प्रथम ने अभिलेखों से यह सूचित होता है कि उसका साम्राज्य आठ 'मण्डलों' या प्रांतों में विभक्त था। प्रत्येक मण्डल बलाम्बु और 'नाडु' में विभाजित किया जाता था। 'कुरैय' तथा 'कोट्टम' शासन की छाने इराइयों को। 'मण्डल' का शासन करने के लिए राजवंश का कोई राजकुमार या कोई उच्च म... वहाँ का वाइसराय नियुक्त किया जाता था। बलाम्बु नामक गाम्भ-इराई ने कई जिंके होते थे। नाडु सम्भवत आधुनिक जिंके के समतुल्य था। कई ग्रामों के समूह से 'कुरैय' की रचना होती थी।

शोक शासन की सबसे प्रमुख विघटता भी इसकी स्व-शासन-व्यवस्था। दक्षिण भारत में लोगों का सामिक तथा सामिक जीवन पारस्परिक सहाय्य और सह कारिता के विद्याओं पर आधारित था तथा 'नाडु' और 'नगरम्' से लेकर सभी शासन इराइयों में 'मण्डलम्' तक स्व शासन की संस्थाएँ हुआ करती थी।

वर्तमान कूट प्रथा से मिलती-जुलती एक ग्वाय-व्यवस्था उस समय भी विद्यमान थी। माधवार्य नरुवमा का फैसला स्थानीय संस्थाएँ करती थी। अभिलेखा से सूचित होता है कि विभिन्न प्रकार की हत्याओं के अन्तर को अच्छी तरह से समझा गया था और इन अन्तर के अनुसार ही दण्ड की व्यवस्था भी की गई थी। यदि किसी व्यक्ति के द्वारा दण्डमात्र-रहित कोई हत्या की जाती थी तो उसे केवल सोलह पायें दण्ड-करके रूप में दनी पड़ती थी। जिस व्यक्ति की हत्या की जाती थी उसकी माता को दानि पुरुषान के लिए राज्य की ओर से मन्दिर में निरन्तर प्रदीप जलाने की व्यवस्था कर दी जाती थी। बाणों की दण्डनीति कठोर नहीं थी अपितु इसे मुक्त कहा जाय ता अनुचित नहीं। दण्डनीति प्रतिबोधनात्मक मनोवृत्ति पर आधारित नहीं थी। उत्तर मेरु अभिलेख पता चलता है कि व्यक्ति को अपराध करने वाले व्यक्ति को पकड़ कर राज्य में पुन पठा जाता था और सम्पूर्ण अपराध करने वाले व्यक्ति को पकड़ कर राज्य में पुन सत्ताक संस्थाएँ किया जाती थी अपराध नहीं इसका फैसला स्थानीय नरुवमारियों को प्राप्त होता था। सामाजिक व्यवस्था

चाल युग के दक्षिण-भारत का सामाजिक संयोजन जाति-व्यवस्था पर आधारित था किन्तु विभिन्न जातियों में पारस्परिक सहयोग रहा करता था। उद्योग-व्यवसाय नग बाणी जातियों का विभाजन बलगाई तथा इरैवाई नामक वर्गों में हो गया था।

चाल युग में सामाजिक अधिकारों का वितरण समान नहीं था। कुछ वर्गों को विशेष अधिकार प्रदान कर दिये जाते थे। ब्राह्मणों ने अपने जातिधर्म के प्रति अपनी परिपूर्ण प्रवृत्ति का परिचय देने हुए अपनी बलिदान अथवा बलानी शुरू कर दी। किन्तु इन वर्गों के बावजूद भी सामाजिक जीवन सहयोग और सहभागीतापूर्ण था।

सामिक नवजा में सभी प्रथा का प्रकार तो अक्षय्य था किन्तु अभिलेखों में हमने उत्कृष्ट इन कम मिलते हैं कि हमके व्यापक रूप में प्रकटित होने का आमान नहीं किया जा सकता। प्राचीन युग की भाँति दक्षिण भारतीय नगर में भी

मनकिर्मी (देवशायियों) का एक वर्ग था। ये देवशायियाँ नृत्यादि सफल कलाओं में निपुण होती थीं। मन्दिरों में भी देवशायियाँ रखा करते जो जो विशेष अवसरों पर नृत्य द्वारा देवता को प्रसन्न किया करती थी।

पाश्चात्यों के दक्षिण भारतीय समाज में वास प्रथा प्रचलित थी। इस युग के माहिर्य से इस बात का प्रमाण मिलता है कि कृषि करने वाले पमजीवियों का जीवन श्रमता के ही बराबर था। दासों की विभिन्न कोटियाँ हुआ करती थी। जिन तथा जीवन की अन्य वस्तुओं के अभाव में स्थिरताग्रस्त हो जाने के कारण स्वयंभू व्यक्ति स्वयं ही सम्पन्न व्यक्तियों का दास हो जाता अपने लिए अधिक लाभ कर समझत थे।

व्यापिक जीवन

दक्षिण भारत में व्यापारिक और बाह्य व्यापार की अवस्था उत्तम एवं समृद्ध थी फिर भी व्यापिक जीवन का बाजार कृषि-कार्य या जलमय्या का अधिकतम भाग श्रमों में निवास करना या और कृषि-कार्य हो उसका मुख्य उद्यम था। हुपक भूमि का स्वामी होता था और भूमि का स्वामित्व समाज में सम्मान का कारण समझा जाता था। कृषि को उत्पत्ति के लिए राज्य संचयित रहता था। कावेरी नदी से जनेकों नहरे निकलवायी गई थी। ग्राम-महासभाओं के प्रमुख कर्तव्यों में से एक कर्तव्य ग्राम के सामानों तथा निवासी के अन्य सामानों की देख रेख करना भी था जिससे चिठ्ट होता है कि वह की उत्पत्ति के रूप तथा तथा दोनों के द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रयत्न मिले जाते थे। राज्य की बाग से समय-समय पर भूमि का माप बर्गीकरण किया जाता था। यद्यपि दुमिष का रोकने के लिए राज्य संचयित रहता था तथा अनादृष्टि के कारण दुमिष पड़ने के कई उल्लेख मिले हैं।

विभिन्न उद्योग-श्रमों में दक्षिण भारत के निवासियों ने काफी उत्पत्ति कर ली थी। सुवर्णकार मोति-मोति के बड़िया आभूषण बनाते थे और मूर्तियों की मीमांसा के वाग्म वास्तुकारियों की कला उत्पत्ति पर पहुँच गई थी। काश्मी में वस्त्र-व्यवसाय का एक प्रमुख केन्द्र था। कुमाठी अन्तरीप मरकमास (इसिबी मरकाट) तथा समुद्र तट के निकटवर्ती अन्य स्वामी में नमक तैयार करने का व्यवसाय होता था।

बाल शालक अपने नामाश्रय में राजमाओं का निर्माण करते थे जिसमें आन्तरिक व्यापार काफी सुविधापूर्ण हुआ करता था। 'विद्वत्' या राजमाओं द्वारा आग्रह पश्चिमी जलमय और कोम्पू देश एक दूसरे में मिले रहते थे। व्यापारियों की अनेक भाँवियाँ थी जो व्यापार का निरीक्षण करने से। चीन मन्नाया पूर्वी द्वीप समूह तथा फारस की गाड़ी इत्यादि देशों में दक्षिण भारत के निवासियों का व्यापारिक सम्बन्ध था। आन्तरिक व्यापार में वस्तु-निमित्त का बहुधा प्रयोग किया जाता था। चीन मासका न १०१५ ई० १३३ ई० और १०७७ ई० में चीन से मरने शिष्ट-महल गेज था।

धार्मिक जीवन

नगम तुनीन दक्षिण भारत में ही शीघ्र जीवन जीम तथा बीज मनों का प्रचार हो सका था। पम्पुन-यम में उत्तर भारत की धार्मिक निवासियों ने दक्षिण में अपनी जड़ जमा ली थी। इस युग में दक्षिण में जीवन और शीघ्र मनों की जो उत्पत्ति हुई उसका भ्रम चीन शासकों के समय में गंभीर जारी रहा। विजयनगरवंशीय शासकों का शासनकाल दक्षिण में एक महान् धार्मिक उत्साह का युग था। उनकी

सहितपूर्ण धार्मिक नीति के कारण जोस साम्राज्य में शैव और वैष्णव मतों को समान रूप से फलने-फूलने का अवसर प्राप्त हुआ। विजयाद्वय के बीच जोस शासकों के समय में ही इतिहास भारत में शैव और वैष्णव मतों का 'रजत युग' प्रारम्भ हुआ। नागहार और आन्ध्र सत्तों के पवित्र भीतों का एक निश्चित-नियमानुसार सम्मेलन प्यारहा सत्ताधी में ही किया गया था।

जोस-युगीन इतिहास भारत के धार्मिक जीवन में मन्दिरों का स्थान काफी महत्वपूर्ण था। इस काल के मन्दिरों के धार्मिक और सामाजिक कार्यों के प्रमुख केन्द्र थे। मन्दिरों और उसमें प्रतिष्ठापित की जाने वाली प्रतिमाओं के निर्माण से प्रेरित हो लोगों को जीविका प्राप्त होती थी और कलाकारों को अपनी निपुणता दिखाने का अवसर मिलता था। शालुकारों और सुवर्णकारों को मन्दिरों से बहुत लाभ होता था।

साहित्य

जोस सभ्यता का शासन-काल (८५० ई० • ई०) तमिल संस्कृति का स्वयं पुत्र था। साहित्य के क्षेत्र में काव्य के प्रबल रूप का प्रधानता रही और शैव-सिद्धान्त वर्णन का साक्ष्योप निरूपण प्रारम्भ हुआ। प्रसिद्ध तमिल महाकाव्य 'जीवक चिन्तामणि' की रचना इसी सत्ताधी के प्रारम्भ में हुई। 'जीवक चिन्तामणि' के प्रणेता तिरुवत्तकवेर नामक जैन पण्डित थे और जैन मत के सिद्धान्त हैं। इस मनोरम काव्य की भाव भूति का निर्माण करते हैं। तेल्लामोक्ति नामक जैन लेखक ने 'सुत्त-प्रणि' नामक ग्रन्थ लिखा जिसकी रचना तमिल के पाँच लघुकाव्यों में की जाती थी। जोस राजसभा के कवि जयम्बोन्धार ने 'जम्बुतुप्पनि' नामक युद्ध काव्य में कुलोत्तुंग प्रथम के कर्त्तव्य युद्ध का वर्णन किया है। कुलोत्तुंग तृतीय के समय में कम्बन हुए जिनका सुप्रसिद्ध काव्य 'गमावतारम्' है। इसका सत्ताधी में ही किसी बौद्ध कवि ने 'कुम्बलकोषि' नामक काव्य तथा कस्तुरनर नामक कवि ने अपना ग्रन्थ 'कस्तुरम्' लिखा। जयम्बोन्धार नामक जैन विद्वान् ने काव्य-रचना पद्धति पर एक पुस्तक का प्रचलन किया। प्यारहा सत्ताधी में लिखात बौद्ध विद्वान् बुद्धमित्र हुए जिन्होंने 'वीर्योक्तिम्' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा। काव्य के क्षेत्र में पुम्पेन्नि का नाम प्रस्तावित रहा जो सत्ताधी जिनका 'नवमेय' एक महान् काव्य है। ऐकिकनर प्रवीर 'विन्यापुत्तन' में शैव सिद्धान्तों का निरूपण है। काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध सेतक इण्डिन की पुस्तक 'काव्यार्थ' के आधार पर तमिल में 'वकिवर्त्तपरम्' नामक ग्रन्थ की रचना की गई। इस पुस्तक के लेखक का नाम अज्ञात है। कुलोत्तुंग तृतीय के शासन-काल में जैन विद्वान् पवनाम्नि ने 'जम्बु' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा। यद्यपि जोस शासकों ने अपने साम्राज्य में संस्कृत भाषा और साहित्य के पठनपाठनार्थ विद्यालय स्थापित करवाये थे तथापि संस्कृत-साहित्य-ग्रन्थों में उनका योगदान अत्यन्त ही स्वल्प है। परम्परा प्रथम के शासन काल में वैकुण्ठनाथ ने लृणवेर पर अपना प्रसिद्ध भाष्य लिखा। राजराज द्वितीय की आज्ञा से केरावस्वामिन् ने संस्कृत में 'नामार्थोपेक्ष संज्ञा' नामक काव्य का सम्पादन किया।

निर्वाण-काव्य और कला

जोस सभ्यता ने साहित्य के लिए अनेक निर्माण-कार्य किए। शिवार्थ के लिए उग्रहान हुए और लालाव पुरवाये। राजेन्द्र प्रथम ने अपनी राजधानी 'मयैको-पुरम्' के निकट एक विद्यालय शाल लुईवाई जिनमें कौन्तेय और वेम्बर लुईवाई

का बल भरवाया गया। इस सीक पर जो बीच बँधवाया गया था उसकी पम्पाई सोलह मील की और इसमें प्रस्तर-प्रणालिकाएँ तथा नहरें काटकर निकाली गई थीं। बीच सासका न पक्कवा की मन्दिर-निर्माण-परम्परा की जारी रक्खा। परास्तक प्रथम द्वारा निर्मित कोरंगनाथ और परास्तक द्वितीय का मूर्तकोबिरल मन्दिर प्रारम्भिक कोल-सीकी के अनुपम उदाहरण हैं।

राजराज प्रथम द्वारा निर्मित तंजौर के 'राजस्वर' मन्दिर का उल्लेख किया जा चुका है। राजेन्द्र प्रथम ने अपनी राजधानी पर्वकण्डकोळपुरम् में तंजौर के 'राजराजस्वर' मन्दिर की नीति एक अव्यक्त सुविशाल मन्दिर बनवाया। राजराज द्वितीय के समय के 'परावतेश्वर' मन्दिर तथा कुलीतुन तृतीय के शासन-काल में 'कम्पलेश्वर' मन्दिर द्वारा जो जो की मन्दिर निर्माण-सीकी जारी रही।

इसके अलावा में जोल मृग सुन्दर काश्य प्रतिमाओं के निर्माण के लिए प्रयुक्त तथा उल्लेखनीय हैं। भगवान् नटराज (नृत्य करते हुए भिन्न) की विचित्र प्रतिमाओं का कलात्मक तीव्र निरूपण अनुपम है। तंकर मयमान के अन्य रूपों की मूर्तियाँ भी कलाकारों ने की। बड़ा सप्तमाण्ड, मूर्तबी तथा करनी के साथ विष्णु भगवान् अपने अनुचरों के साथ राम और सीता तथा वीर सुन्नों की साधु-मूर्तियाँ भी बनवाई गई। काश्मिर-शैली प्रचलित करण वाली मूर्तियाँ बड़ी लोकप्रिय थीं।

प्रश्न

1. Write a brief note on Chola administration and Chola Art. (1042, 1949 1955)

चोल शासन तथा चोल कला का संक्षिप्त वर्णन दीजिये।

2. Write a brief note on civilisation and culture of the Cholas.

चामुन्य सभ्यता एवं संस्कृति का संक्षिप्त वर्णन दीजिये।

3. Who were the Rashtrakutas? Write a brief note on any of their important Ruler

राष्ट्रकूट कौन थे ? उनके किसी प्रमुख शासक का वर्णन दीजिये।

पूर्व मध्यकालीन भारत की सभ्यता एवं संस्कृति

भारतीय इतिहास के अध्ययन को सरल बनाने के लिए विद्वानों ने इसे कई कालों में बाँट रखा है। उनमें सतवाही, सताव्वी ई० से यादवा, सताव्वी ई० तक का काल को पूर्वमध्यकाल कहते हैं। इस काल की राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण तथा हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं परन्तु हमें भी अधिक महत्वपूर्ण है उस काल का सांस्कृतिक इतिहास। इस काल में साहित्य, कला आदि सबको जो प्रगति हुई वह भारतीय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अब हम इस काल की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, विज्ञान तथा कला सम्बन्धी प्रगति का उत्प्रेक्ष्य कर रहे हैं।

आर्थिक अवस्था

कृषि—ग्रामीण जनता कृषि-कार्य में लगी हुई थी। यहाँ की जमीन खन गन्ना आदि फसलों से उगाई जाती थी। कृषकों को अपनी अधिकृत भूमि के मालिकानुकारी देनी पड़ती थी। यह मालिकानुकारी ११वीं सताव्वी तक मागधोय के रूप में उपज का छठाँ हिस्सा को दे दी जाती थी किन्तु बाद में छठाँ हिस्से में विपक्षों के प्रचलन से नक़्त मालिकानुकारी की जाने लगी। उत्कालीन राजाओं ने कृषि का भार विशेष ध्यान दिया। राज्य की ओर से सिंचाई का उत्तम प्रबंध किया गया। नहरों की निकासी एवं जिनमें सिंचाई सरल हो गई। कुएँ तथा टांकियों का निर्माण कराया गया। परमार-नरेगा ने एक विशाल जलाशय का जो सुमार की इजिप्त सीमा में खनने बढ़ाया निर्माण कराया था। राजेन्द्रपाल (१०१८-३५) ने भी अपनी राजधानी के मन्त्रिपट्ट बनाने बढ़ा जलाशय बनवाया था। मुराष्ट्र की सुरगन सील इसी काल में खनवाई गई। सतम नदी पर बाँध बंधवा कर सिंचाई का काठोरी था। अलेख राजाओं के सील-निर्माण का ज्ञान सेलों से प्राप्त हुआ है। कृषकों को सिंचाई-कर अल्प से देना पड़ता था। कृषि-कार्य में विषय राजासय प्राप्त था।

वाणिज्य-व्यापार एवं उद्योग—मध्यकालीन काल में श्राव होता है कि इस युग में व्यापार की सुविधा के लिये व्यवसायिक श्रेणियों स्थापित की गई थीं। विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के लिए पृथक्-पृथक् श्रेणियाँ थीं जिनका प्रबन्ध अपने व्यवसाय की उन्नति के लिये सर्वत्र प्रयत्नशील रहता था। मथुरा और बनारस में सूती कपड़ तैयार होने लगे। बंगाल मलमल के लिए प्रसिद्ध था जिसकी प्रशंसा अरब यात्री मुहम्मद और इब्नबतूता जहाँ न की है। कपड़ के अतिरिक्त लकड़ भी तैयार किया जाता था। चाय पदार्थ का भी व्यापार होता था जस की उन्नति होती थी। कांस्य मूर्तियाँ कांस्य और बहुमूल्य प्रसंगों ने विभिन्न प्रकार के जामूय बनाने का काम होता था। सोन चाँदी का पात्र बनाए जाने लगे। अरब यात्री ने सतमन मेन के सोन-चाँदी के बने बर्तनों का वर्णन किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों व्यापार उन्नतावस्था में थे। देश में नदियों और राजमार्गों ने जहाँ तथा वैश्याङ्गियों पर आसानी आया-जाया करना था। पना

२६८

भारतीय हाथहाथ

बता है कि ईसापूर्व चौथी सदी में भारत पर सामान्य रूप से एक
स्वतंत्र सभ्यता का विकास हुआ था। लेकिन न बाद में प्रकाश की शक्ति का
उद्भव किया है। उन्नीसवीं और फरवरी भारत के प्रसिद्ध नगर थे। इनके अतिरिक्त
पाटलिपुत्र अथवा मगध का भी व्यापारिक बृद्धि से बड़े महत्वपूर्ण थे। भारत
स एशिया के अन्य देशों को जनक मार्ग जाते थे। मध्य एशिया भी तिब्बत भारत
आदि देश से भारतवासियों ने बहुत पहले से ही व्यापार करना आरम्भ कर दिया
था। उपनिवेश स्थापना से भारतीय व्यापारियों का बहुत सहायता मिली। बाहरी
देशों से व्यापार करने का मार्ग था—बस मार्ग और समुद्री मार्ग। सामान्य
भारत का प्रसिद्ध बन्दरगाह था। लेकिन न इसके विषय में सिद्धांत है कि व्यापार
की सुन्दर वस्तुएँ सामान्यता से एकत्रित रहती हैं। यहाँ से लंका और चीन आदि
को कहा जाता है। इतिहास में कार्वाही, कावेरी पश्चिम में और पश्चिम में अरब
बन्दरगाह थे। बस मार्ग से भारतीय व्यापारी भारत परकर और तक पहुँच जाते
थे। भारत तथा ईराक में जो बस मार्ग था उसका इस्तेमाल करते मजदूर
न किया है। उन्हें अपने लीग कपूर, जायफल, मारिचक, लवंग, चीनी, कपड़े, मजदूर
हाथीदांत माँझ बहुतसारे पत्थर आदि आते हैं। इसके अतिरिक्त मारिचक आम पत्थर
का भी बाहर भेजा जाता है। बाहर से भारत में पत्थर की खेपड़ी मृगा घराने
रखी कपड़े, नमूर, पोस्टोन, मुसाबकल खजूर तथा चीड़ भेजाते जाते हैं।

का इन्हीं की बाहुर मंत्री जाती थी। बाहुर से माछे न निकाले जाते थे।
रघुमी कपड़े समूह पोस्तीन मुकाबलत खजूर तथा चीड़ मँगारे जाते थे।
पूर्वमध्य काल में बिनिमय के साधन तिक्के थे। ये मोने बाँधी अथवा ठाँके के
बने होते थे। जिसमें बाँधी और ठाँके के सिक्कों का विशेष प्रचलन था। इन चक-
बत्ती के मतानुसार ब्याक में गुप्त साम्राज्य के पठन के पश्चात् कीड़ी ही बिनिमय का
साधन बनी किन्तु कालान्तर में पाक मरेछों में इस अर्थानु बाहु के सिक्के चलने लगे।
ममलमान याबिया में भी बंगाल में कीड़ियों का प्रचलन पाया था।
सामाजिक अवस्था

सामाजिक व्यवस्था

सामाजिक अवस्था

बर्गीकरण—पूर्वमध्य कालीन समाज और भारतीय समाज में इतना निकट सम्बन्ध है कि वर्तमान समाज को पूर्णतया समझ सने से ही पूर्वमध्य कालीन समाज की कल्पित रूप रेखा खींची जा सकती है। वर्तमान हिन्दू समाज स्मृतियों द्वारा अनुमानित है और इनकी रचना इसी युग में हुई थी। विवादास्पद काल में भारी बर्गीकरण स्थापित हुआ है और इसकी रचना इसी युग में हुई थी। विवादास्पद काल में भारी बर्गीकरण स्थापित हुआ है और इसकी रचना इसी युग में हुई थी।

काशी हाथ है। किन्तु पापों के कारण ही काशी विनाश हो गया। इन विनाशों को 'कूटी' गीत का प्रेरक बर्णनकार आदि सबसे अनक विनाश हो गए।

का हृषि कामों में लग रहना भी सात होता है। य बाणिज्य व्यवसाय में भी भाग लगे थे।

गोंज एवं प्रबरी के निर्माण के परवान् रोटी-बटी का सम्बन्ध भी नामित हुआ। यह निश्चित है मया कि जर्मर मोन के शाह्यन की कन्या का ब्याह धर्मु नाज न शाह्यन से हो हा सकता है।

राजियों को समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त था और शाह्यनों को समता में पड़ा होने का दावा करता था। शात्र-भम था मुद्र करना और प्रजा एवं अनाथों को रक्षा। इस समय के राजियों (राजपूतों) की विरायता पर प्रकाश डालते हुए टाड महोदय ने लिखा है कि अरम्य उत्साह राजमन्त्रित वेद प्रेम बीमनस्म आदि गुण इनमें विद्यमान थे। किन्तु यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि सामान्य शाह्यन और सामन्य राजियों में शाह्यनों का स्थान हा ऊँचा था कदम राजकाज के अधिकारी राजिय (राजपूत) ही शाह्यना में ऊँचे समझ पाते थे। शाह्यनों की भाँति राजिय भी अनक उपजातिया में बँटे हुए थे। इस समय तक लगभग ३६ उपजातियाँ बन गई थी। राज काज के अतिरिक्त हृषि-कार्य में भी राजियों की एक बहुत बड़ी नक्या लगी हुई थी। बारहवीं शताब्दी के एक लेख में दानप्राप्ती अथिय सामन्त का उल्लेख किया गया है।

बैलों ने हृषि-नाय तक तत्सम्बन्धी अम्य उत्साहा से अपना ह्रास र्छ प लिया था और जब ये पुनः न्या बाणिज्य व्यवसाय में लग गए थे। पूर्व मध्यकालीन एता में ईसा एवं भेगियों का उल्लेख प्राप्त होता है। भेगियों का महत्व अब काफी बढ़ चुका था। दैनिक आवश्यकताओं की अभिवृद्धि के कारण ही व्यवसायियों का स्थान अधिक सम्मिलित हुआ तथा वा योकि बाणिज्य व्यवसाय पर इनका एकाधिरार था।

पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में एक सर्वथा नवीन आनि का अस्तुत्प होता है। वह जाति है कायस्थ। कायस्थों के कथनानुसार तो यह जाति अम्य जातिया के समान ही बहुत प्राचीन है और इनकी उत्पत्ति भी राजपूतों की भाँति पौराणिक है किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। वास्तविकता जो भी है हम काय महोदय के इस मत में सहमत होने में कोई हिचक नहीं है कि छठी शताब्दी में पूर्व धर्मशास्त्र में कायस्थों का उल्लेख नहीं मिला किया गया है। इस विषय की स्मृतिरा में इनका नाम मिलता है। कायस्थ शब्द का प्रयोग विषय व्यवसाय सजन कार्य करने वालों के लिए अनेक स्थानों में किया गया है। पूर्वमध्यकालीन एता में लिखित दो पर पर कार्य करने वाले व्यक्ति का कायस्थ कहा गया है। इसी प्रकार माहितिक एवं बाणिज्य धर्मों में भी सिद्धि को कायस्थ घोषित किया गया है। बारहवीं शताब्दी में कायस्था न जाति का कारण दिया। उसका तथा वेद व्यास स्मृति में कायस्था की एक पृथक जाति बताई गई है। कायस्थों का द्विज न कोई सम्बन्ध नहीं था। जब वे व्यास ने इन्हें गुरु घोषित किया। किन्तु य धूर्तों में नहीं गए मर और कायस्थों की एक पृथक जाति ही बन गई। शाह्यन राजिय और बैद्यों में भी अन्तर्भाव न गया मर। कायस्थों में भी निवासस्थान के आधार पर उपजातियाँ बन गई। मररा में निवास करने वाले मापूर तथा गीड़ (बंगाल) के निवासी गीड़ बरमाण।

गुडा में दो प्रकार के वर्ग पाये जाते हैं। एक वह वर्ग जिस अस्तुत्प समता पाता है तथा दूसरा अस्तुत्प है। बाण्डाक अस्तुत्प गुडा में विराट् उत्पन्नगीन है। व्यास ने शाह्यन और बैद्यों में अनन्तम विराह ने उत्पन्न मतान की अन्तर्भाव पंक्ति

किया है। कुछ पृथित कार्य करते बाघों की मरणा भी असुख्य में होने लगी और वे पचमर्ग कहलाने लगे।

जलवायु की भी पर्याप्त जानकारी है। इनमें जलवायु, नदियाँ, जल संचयन व. आदिमान से जल की मांग बढ़ाती है। जलवायु का नाम उल्लिखित है जो जल की उप-आवृत्तियों की स्वयंकारी को जोड़कर जल में धूल जोड़ित किया गया है किन्तु जलवायु समाज में वृद्धि माने जाते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति और जलवायु का उपयोग ही जिसमें उनके जलवायु की निम्न सम्पत्ति में आना पड़ता है। इसका मूल में है।

सती प्रथा बचवा जीहूर—सती प्रथा का भीषणोपद्रव प्राचीन काल से ही हो गया था। हर्ष की माता भी पति की मृत्युसमय आत्महत्या ही सती हो गई थी। हर्ष की बहन राज्यश्री भी पति के देहान्त के पश्चात् सती होने का रही थी। विद्याराजीन काम में इस प्रथा ने और जोर पकड़ लिया था। पति के देहान्त के पश्चात् विधवाओं का जीना पाप समझा जाने लगा। स्मृति ग्रन्थों में भी सती होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। बल्लभ में यादव देश की भी पत्नियाँ के सती होने का उत्तेजित किया गया है। डा० ईश्वरी प्रसाद ने सती प्रथा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि राजपरिवारों में काफी सख्या में समय-समय पर सती हुईं थी। यह प्रथा इतनी प्रचलित थी कि शाबारण बरों की स्त्रियाँ भी विधवा होने पर सती हो जाती थी। कभी-कभी वे स्वेच्छा से इस व्रत का पालन करती थी और कभी उन्हें समाज सती होने के मिय बाध्य करता था। डा० ईश्वरी प्रसाद ने बाल-हत्या का भी कथन चित्रित किया है जो उस समय समाज में प्रचलित था। किन्तु यह व्यवस्था राजपूत बंध में ही अधिक थी। सोप समाज इसकी पालन इतनी कठोरता से नहीं करता था।

भोजन-वस्त्र तथा आभूषण—पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों में गौतम का मत तथा का के नाम बार-बार आते हैं जिससे यह परिलक्षित होता है कि ये भोजन के प्रमुख अंग थे। मांस-जड़नी एवं मरिचा का उल्लेख अभिलेखों में किया गया है। बंगाल में शाक्य मत का प्रचलन और महायान के प्रचार के फलस्वरूप वहाँ मांस मधन एवं मरिच-पान पर काफी जोर दिया जाता था। अरहन्त देवी के एक स्तर में यह मान होता है कि ब्राह्मण भी मांस भक्षण करते थे। किन्तु सभी ब्राह्मणों के लिए ऐसा गोचर उचित नहीं माना जाता। प्रतिहार राजा के समय में यह बात बताई है कि ब्राह्मण शी मरिचा पान नहीं करते थे पर शक्तिवाद में मुरपान प्रचलित था। मुरा वस्त्रों वाली स्त्रियाँ का भी बोध हमें कुछ शिलों से होता है।

तत्कालीन मूर्तियों के आधार पर बेज-मुया का अनुमान करना अधिक ठीकसंगत नहीं जान पड़ता और इसीलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सिन्या अपने सम्पूर्ण शरीर को ढँके रहता नहीं चाहती थीं। अर्थात् बाहर का प्रयोग कम हो जाता था। वास्तव में मूर्तितार ही यौन्य के प्रदर्शन के निमित्त मूर्तियों को नग्न अवस्था में पन्न स्थितान रहे समान में इन प्रकार की कोई कप भूरा प्रचलित नहीं थी। सिन्या शृंगार-प्रिय भवत्स की किन्तु शृंगारिणीता का माप इह आयुर्विक युग की यौनि नग्न न था। वे अपने शरीर का रक्ता तथा आयुपर्णा का पुषतया ढँके रहती थीं। शरीर मूर्तियों की भी मूर्तितार आयुपर्णा में केवल इसलिये मार देत थे कि उनकी वस्त्र निहिमिता अच्छा लगता पर एक बाहरय थड़ जाय। अधिकतर वर्तमान आयुपर्णा का प्रकार सिन्याउपीन काय में भी था।

मनोरंजन के साधन—ग्रामीण प्रमोद के प्राचीन साधन अब भी विद्यमान थे। गणराज (जायिक वलरज) का खेल काफी प्रिय था। संगीत एवं नृत्य का आयोजन समय अवसर पर हुआ करता था। नाचन अबसरों पर हुआ करता था। नाचिक कसरो पर रच-यात्रा की व्यवस्था की जाती थी। इनके अतिरिक्त घुड़-झींझ भी लोक में प्रचलित थी जिसपर कर लगता था। परमार नामुण्डराय की प्रशस्ति से उदा प्रमाण मिलता है। विभिन्न खेल-कूदों में भी लाल भाग लिया करते थे। शायद ही कुछ लोगों के लिए मनोरंजन का एक साधन था।

नाचिक व्यवस्था

ब्राह्मण धर्म का पुनर्स्थापन सुगों के समय से ही आरम्भ हो चुका था। पूर्व मध्यकाल तक तो इस पूर्णता प्राप्त हो चुकी थी। जैसा कि अस्तेकर महाशय न बताया है केवल कुछ ही स्वामी पर बौद्ध धर्म का अस्तित्व रह गया था। चलनामा के अनुसार इस युग के आरम्भ तक सिन्धु में बौद्ध धर्म का काफी प्रभाव बना रहा। इसी प्रकार बाह्यकी राजाध्वी के अस्तित्व पर धन के बला में इस धर्म का बोल-बाला रहा। जैन धर्म भी कुछ प्राप्ति में आरंभ पर था। मुगल में इस धर्म का अधिक बोल-बाला था पर हिन्दू धर्म का प्रादुर्भाव लगभग सम्पूर्ण भारत में था।

हिन्दू धर्म—अस्तेकर महाशय ने भाग बताया है कि यद्यपि कुछ प्राप्ति में जैन तथा बौद्ध धर्म का प्रभाव स्थापित था तथापि यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि विचाराधीन काल में संशोधित हिन्दू धर्म का काफी प्रचार बढ़ रहा था। माना कि गुप्त-काल में हिन्दू धर्म को सम्पूर्ण प्राप्ति होते हुए भी बौद्ध धर्म का बोल-बाला स्थापित था पर परिस्थिति में सीधे ही परिवर्तन आया और जैनधर्म ने देखा कि पंचांग तथा चतुर्थी संयुक्त प्रवृत्ति को पञ्चानाम के समय में बौद्ध धर्म के मानने वाले के पुनः ब्राह्मण-धर्मावलम्बियों के केन्द्र बन गए। कौशाम्बी आवस्ती कपिलवस्तु, कुशी नगर तथा वैशाली आदि प्रमुख बौद्ध स्वाम या तो प्राचीन लुप्त हो गए थे अबका यहाँ हिन्दुओं का प्रादुर्भाव स्थापित हो चुका था।

धर्म मत—विचाराधीन काल में सिन्धु और सिन्धु की पुनः साध-साध चलती रही। अस्तेकर महाशय न इन युग की नाचिक सहिष्णुता तथा पारस्परिक नाचिक समन्वय पर प्रकाश डालते हुए यह बताया है कि हिन्दू धर्म के भी विभिन्न सम्प्रदायों में पारस्परिक समन्वय एवं सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में प्राप्त थी। यही कारण है कि हमें एक ही घर में धर्म तथा सिन्धुसम्प्रदाय के मानने वाले के अन्तर्गत की सूचना मिलती है। उदात्त भारत के बंगाल मध्य भारत भासवा तथा पूर्वी पंचांग से प्राप्त सिन्धु के आधार पर ही यह बात हो सती है। पाण्डु केरि चरित आदि राजाओं के कर्तव्यों में "आम् नमः सिवाय" अथवा "ओम् नमो ब्राह्मणा निपुण व्यापक नित्य-धर्म" उक्तोर्ण है। इसका अर्थ सिन्धु अथवा नमः अस्तेकर किया गया है। इतना ही नहीं बौद्ध महाशयभी राजाओं के सेवकों में भी पशुपत मत की प्रशंसा मिलती है। इस प्रकार के साक्ष्यों के तो यह बात होती है कि विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों में धर्म मत का प्रादुर्भाव था। नमः चरित में राजाओं का 'परम माहेश्वर' की उपाधि की गई है जो पशुपत सम्प्रदाय के अनुयायी बताया गए हैं। इसी प्रकार का एक अन्य प्रमाण प्रतिहार में है जो अर्धनाटीश्वर की प्राप्ति से आरम्भ किया गया है। मन्दिरों के निर्माण का उल्लेख भी किया गया था। इस समय के निर्मित समस्त मन्दिरों में धर्ममत ७० प्रतिशत या इससे भी कुछ अधिक मन्दिर विचाल्य अर्थात् सिन्धु मन्दिर थे।

अनेक राजाओं ने शिव-मन्दिर-निर्माण में सक्रिय योग दिया। अधिक भेदि परमार तथा इन मरेसों द्वारा शिव-मन्दिर निर्माण का विवरण हमें क्लों से प्राप्त होता है। इन मन्दिरों में शिव की मूर्तियाँ स्थापित की गईं।

वैष्णव मत—वैष्णव मत का प्रचार बंगाल से लेकर मध्य भारत तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में काफी था। हमें ज्ञात है कि मामवत धर्म का प्रचार उत्तरी भारत में प्रचलित था। यही हा चुका था और गुप्त बंशीय शासकों ने इसे राज-धर्म घोषित किया था जिसके फलस्वरूप उन्हें "परम भागवत" का विवर दिया गया था। तत्कालीन मुद्राओं पर विष्णु सहस्री तथा विष्णु-बाहुल वचन की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उदयगिरि में शेषशायी विष्णु की प्रतिमा प्राप्त हुई है। सगमग शाही राजाओं में विष्णु मत में कृष्ण का आबिर्भाव हुआ जो बंगाल में कृष्ण सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। यहाँ इस सम्प्रदाय का जून प्रचार हुआ। कृष्ण जीना का प्रदर्शन इस प्रदेश में किम श्रृंखारिक रूप से होता था इसका प्रमाण हमें आठवीं शताब्दी की पहाड़पुर की मुद्राई से प्राप्त होता है जहाँ प्रकटर पर कृष्ण जीना के चित्र उत्कीर्ण हैं। वैष्णव मत का उदयमान्य भा प्राप्त हुआ था। उन बंशीय राजाओं के क्लों में हमें यह ज्ञात होता है कि उनकी अभिव्यक्ति वैष्णव मत की ओर अधिक थी। उत्तरी भारत के विभिन्न स्थानों में प्राप्त शिलालेखों में भी भगवान् वासुदेव अर्थात् विष्णु की उपासना के प्रचार का ज्ञात होता है। उत्तर भारत तथा बंगाल में पर्याप्त संख्या में विष्णु प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। बंगाल में चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमाएँ बहुतायत से प्राप्त हुई हैं। विचारान्वित काल को स्वर्ण मद्रास पर स्वर्ण की आकृतियाँ उत्कीर्ण की जाती थीं। इन मारे मद्रास से यह परलक्षित होता था कि वैष्णव-मत काफी ज़ोर पकड़ चुका था।

कुछ अन्य सम्प्रदाय—हिन्दू धर्म का ही प्रमुख शाखाओं पर ऊपर प्रकाश डाला गया है किन्तु इनके अनिश्चित भा कुछ अन्य सम्प्रदायों का उदय हो चुका था। इन सम्प्रदायों में शक्ति सम्प्रदाय नाम सम्प्रदाय आदि तथा सूर्योपानक गणेश-गुरु आदि भी अपना कुछ पक्ष अस्तित्व रखते थे। ये ब्राह्मण धर्म के अभ्यास निरालों की कुछ अंशों तक मानते हुए भी अपना एक पक्ष बना रखते थे। इनके पक्ष दृष्ट देख में ब्रिहदी आराधना पर अधिक बल देने थे।

शक्ति पूजा के पीछे नारी की महत्व प्रदान करने की मेरवा का ही ज्ञान ज्ञात होता है। नारी की शक्ति मान कर नारी-देवताओं की मूर्ति का गई था। इनमें भगवती दुर्गा अम्बा कलत्रदेवी लक्ष्मी आदि देवियों की पूर्ण मध्यम में काफी महत्व प्रदान दिया गया था। कला और साहित्य को भी शक्ति सम्प्रदाय ने अधिक प्रभावित किया और कुछ समय में तो ऐसी स्थिति उपस्थिति हुई थी कि अन्य सम्प्रदायों के विरुद्ध अम्बा की शक्ति ही जाने की आवाज़ होने लगी। दुर्गा-महिम्न तथा भगवती-पूजा का उदय अनेक क्षेत्रों में दिखता है। नारियों ने इन देवियों की पूजा में विशेष रुचि दिखाई और तत्कालीन साहित्य में यह ज्ञात हुआ है कि नारियों की महादामना गिद्धि का एक मात्र गाजन इन्हीं देवियों की उपासना और पूजन था। बंगाल में तो शक्ति-पूजा ने और भी अधिक ज़ोर पकड़ा। कृष्ण सम्प्रदाय में शक्ति-पूजा का उदय गिद्धि पूर्ण में दिया गया था यहाँ "शक्ति-पूजा" के रूप में इस पूजा का प्रचार होने लगा। शक्ति पूजा पत्नी शक्ति तथा भगवती देवियों की आराधना पर भी काफी ज़ोर दिया जान लगा। मध्य प्रदेश में भी देवियों की पूजा का प्रारम्भ स्थापित हुआ और यहाँ का शक्ति पूजा का प्रमाण-प्रमाण है।

शाक्त सम्प्रदाय का प्रभाव केवल हिन्दू धर्म तक ही सीमित न रहा। इसने बौद्ध तथा जैनधर्मों को भी पर्याप्त अंशों में प्रभावित किया था।

शक्ति सम्प्रदाय की भाँति विचारधीन काल में नाथ सम्प्रदाय भी काफी जोर पर था। इसकी उत्पत्ति तथा उत्पत्ति-काल व सम्बन्ध में विद्वानों का मतभेद है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही कुछ धर्म में योगाभ्यास तथा योगिक क्रियाओं के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो चुकी थी। योगाभ्यास का कुछ रूप तो हमें प्राचीन तपों में ही प्राप्त होता है। ईसा पूर्व से ही योग विद्या का प्रादुर्भाव होता पाया जाता है। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भिन्न को आहिमसी माना जाता है। नामदास के आदि प्रवर्तक भिन्न हो हैं। इसीलिए इनका दूसरा नाम योगेश्वर भी है। गुरु नामदास सम्प्रदाय के इतिहास में प्रथम योगेश्वर का स्थान रखते हैं। उन्होंने विभिन्न योगिक क्रियाओं का प्रचार किया। इनके शिष्यों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और धारा धारा नाथ-सम्प्रदाय का प्रभुत्व भारत व अनेक भाग में स्थापित हो गया। विद्वानों का इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में ऐसा मत है कि इस पर बौद्ध धर्म तथा धैव-सम्प्रदाय का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। गुरु पारसनाथ ने जिस हठयोग को प्रधानता प्रदान की उसका सम्बन्ध माठवी घटावड़ी के कुछ स्रोतों में मिलता है। हठयोग द्वारा सिद्धि तथा मान प्राप्त की कामना नाथ सम्प्रदाय वाले करते थे। नाथ सम्प्रदाय के कनकट योगियों का नो बहुत बड़ा महत्त्व है। इनका मुख्य उद्देश्य जो भी हो वे कम-बूम कर मिनादन करते हैं। कापालिक मार्गी साधु भी नाथ सम्प्रदाय में ही सम्मिलित हैं।

— योग सम्प्रदाय पर प्रकाश डालते हुए यह बताया गया था कि भारत में भिन्न पासना का प्रचार भक्ति का पर साथ ही सूर्य तथा गणेश की पूजा भी कम प्रचलित न थी। गणेश तो भिन्न के पुत्र ही मान जाते हैं अतः इनकी पूजा करने की शक्ति पासकों को भी प्रेरणा मिली। वर्षायत पूजा में गणेश का भी नाम आता है। भगवत कामना के लिए ही गणेश की पूजा प्रचलित हुई।

सूर्योपामना हमारे देश में प्राचीनकाल से ही प्रचलित है। साठवीं घटावण के पश्चात् वे केला से विकसित सूर्योपामना का आभास मिलता है। गुप्त काल में सूर्योपामना का काफी प्रचार था। प्रभाकर वर्द्धन भी सूर्योपामन था। विचारधीन काल में अनेक सूर्य मन्दिरों का निर्माण हुआ था जिनके प्रतिष्ठान का उद्देश्य यहूदवाद प्रतिहार तथा बहुमान केरों में मिलता है। बंगाल में छेन सामक विद्वत्पुत्र मन्त्र तथा केन्द मन्त्र सूर्य के परम उपासक थे और इसलिए उन्हें "परमासीर" का ब्रह्म प्राप्त था। विचारधीन काल में सूर्य की मूर्तियों का भी अधिक सम्प्रदाय में निर्माण हुआ था। ये मूर्तियाँ बहुधा पालसैनी में काँटे पत्थर पर बनती रहीं। दोनों शायद "वर्म" का पुनरुत्थान हुए सूर्य देवता की वही मूर्ति प्राप्त होती है। निम्न भाग में सूर्य के मातृ भवभाव के रूप का चित्र रहता है जिसके दायाँ और ऊपर तथा मध्य दिशा की आरुतिप्राप्ति होती है। पाल तथा मन्त्र के सामन-काल में इस प्रकार की सूर्य-मूर्तियाँ काफी संख्या में निर्मित हुई थीं। मुस्ताम का सूर्य-मन्दिर इन समय के सर्वप्रसिद्ध मन्दिरों में था।

बौद्ध धर्म—बौद्ध धर्म व पतनोन्मुख होने का उद्देश्य हम विद्वत्पुत्रों में बड़ा हुआ है। उस स्थान पर अनेक महत्त्व के विचारों पर प्रकाश डाला गया है। भाग उत्तम विद्वान ने बताया है कि बौद्ध धर्म का कुछ प्रभुत्व प्राप्त हुआ था और बौद्ध विद्वानों की गहरा नी गहरा गहरा था। विद्वत्पुत्रों के शायद धर्म का प्रतिष्ठान

था इसके पीछे जनता को कोई अनिश्चय न थी। जूनसारि तथा इरिग के भ्रमण-काल में ही बौद्ध धर्म को अपनी अस्यायु का आभास प्राप्त हो चुका था। उक्त यात्रियों ने स्वयं बौद्ध भगवान्‌श्रियों में ही अपने धर्म के भारत से विस्तृत हो जाने के विश्वास का उल्लेख किया है। बौद्धधर्म के बौद्धों का यह विश्वास था कि जब वहाँ की राजसौक्ति-लेखक की मूर्तियाँ बालू में पुरतया जैसे आवेगी तो उनका धर्म (बौद्ध धर्म) विस्तृत हो जायगा। सातवीं शताब्दी में जर्म से कुछ मूर्तियों पर छाती तक बाल चढ़ चुकी थी। पुरुषपुर (आधुनिक वेरावर) में जूनसारि का एक शीर्ष-शील माता दिग्गारि गई की जिसके सम्बन्ध में कहा जाता था कि बूद्ध भगवान् इस वारण कर चुके थे। मिक्षुओं का यह विश्वास था कि भारत के अन्त के साथ ही साथ उनके धर्म का अन्त हो जायगा। अन्तर्गत महीनय ने आये यह किया है कि इरिग का भी बौद्ध धर्म की हीनावस्था एवं उसके साथ विनाश की आशंका ही चुकी थी और इसलिये यानी न आती पत्तन में बौद्ध धर्म को रक्षा के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के सम्मेलन की बात कही थी।

इन विवरणों से यह परिष्कृत होता है कि बौद्ध-धर्म अपनी प्राचीन महत्ता खोता जा रहा था। भारत में इस धर्म का पतनोन्मुख होने का प्रमुख कारण विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव है जिसने बौद्ध-धर्म की मौलिकता को क्षतिग्रस्त कर दिया। जैसे तो प्रथम शताब्दी ई० से ही मायवत धर्म के प्रभाव में आकर बौद्ध-धर्म की महत्ता धस्ता का उदय हुआ था पर काळांतर में इस धर्म में इतने महान् एवं आवश्यकजनक परिवर्तन आए कि छठी शताब्दी ई० पू० और ११वीं १२वीं शताब्दी के बौद्ध-धर्म में समता बूझने में काफी कठिनाई पड़ सकती थी। पाँचवीं शताब्दी में ही वाचार्म धर्म के प्रभाव में तान्त्रिक विचारवादा का समावेश प्रभावशाली ढंग से किया गया जिसके उत्तररूप बौद्ध-धर्म में तब का प्राबल्य स्थापित हुआ। महामान सम्प्रदाय का प्राचीन स्वल्प काल में सातवीं शताब्दी तक बना रहा किन्तु पूर्व यथेष्ट यथेष्ट में इस सम्प्रदाय में लगभग नष्ट कर दिया। साधारण लोगों में ऐसी-ऐसी बातों में पूर्ण आस्था थी। मंत्र को मात्र प्राप्ति का साधन मानते थे। ऐसा विश्वास था कि मंत्र (पारवी) से मनुष्य पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। इन सभी विचार-वादाओं के फलस्वरूप बौद्ध-धर्म में विभिन्न प्रकार के आह्वयों नष्ट कर दिया और मूल-ग्रंथ इन्द्रजाल चोहन बचीकरण आदि की भावनाओं से समस्त बौद्ध सम्प्रदाय पुरित हो गया। इन्द्रजाल की भाषा में जैन आन क पश्चात् की स्थिति और की विकृत हो गई। शीघ्र ही तान्त्रिक बौद्ध-धर्म न अपनी बुनावस्था का प्राप्त कर लिया और इसे ब्रह्मयान सम्प्रदाय कहा गया। ब्रह्मयान सम्प्रदाय वालों ने पौनिक नियामा में मंत्र के साथ साथ मुद्रा की भी स्थान दिया। तान्त्रिक भाषा में 'मुद्रा' उसे कहते हैं जहाँ सापक विमां मुखर्ती को अपनी मंगिनी बसाना है। इस साधना में सहज (मात्र) सुर पाल क स्थि योगिक गुण उत्पत्ति का प्राप्त किया जाता है। इनमें विभिन्न धार्मिक कृत्य तथा ऐसी-ऐसी बातों की पूजा की स्थान लेकर पौराणिक देवा की ब्रह्मयान में अपवादा गया। किन्तु बिहार यहाँ तक मौलिक न रहा गया। ब्रह्मयान के वापकान अपनी साधना न हट्याए और मंत्रम की प्रणामता की। ८४ सिद्धा को ही इतने प्रचार का भय दिया जा सकता है। इनमें गरहपा तिष्ठता नरोपाद कागहपा आदि विषय उल्लेखनीय हैं। ब्रह्मयान सम्प्रदाय के आचार्यों ने इन्द्रजाल के विम नाशनों का उल्लेख किया था आन बागी पीड़ी व उरका कुरूपण किया। ब्रह्मयान तथा बिहार ब्रह्मयान सम्प्रदाय के प्रमुख वेद से और नास्तिक तान्त्रिक मत का केन्द्र था। तान्त्रिकों, उपामा का बौद्ध धर्म में भी आचार हुआ और ऐसी की बौद्ध धर्मियों में प्रमुख स्थान प्रदात किया गया।

सिद्धों ने वर्णान्त में सृष्टि का बार-बार उल्लेख किया है। वहाँ सामान्य स्त्रियों को कोई स्थान न देकर सारवत् सृष्टि की साधना पर बल दिया गया है। इसका सारवर्ती घातर्षी क बीच में सिद्धों ने इस मत क प्रचार में एही चोला का जोर लगा दिया। कालान्तर में इस मत क नए कर्तों को सहजमान तथा कालभक्त्याम की सजा दी गई।

जैन धर्म—यद्यपि जैन धर्म की भी प्राचीन महत्ता ओहोत होती था रही थी तथापि अभी उसको स्थिति बीड़-धर्म की अपेक्षा अच्छी नो। उत्तर भारत में इसका बबबसा भव्य कम हा। यवा ना किन्तु दक्षिण भारत में इस धर्म को राजाधम प्राप्त करन का पौरव बिना और मन्थकर महोदय के लब्धों में विचारणीय काल (उष्ट्र कूट-युग) जैन धर्म क इतिहास में दक्षिण में सर्वोच्च विकासोन्मुख काल था। उत्तर भारत में इसको लोकप्रियता अपेक्षाकृत कम हा यई लो जिसके मूल में हिन्दु धर्म का पुनरुत्थान हा रहा। उत्तर भारत में विभिन्न राजाधो न जैन मठों तथा बिहारों को दान दिय ग जिसका प्रमाण उत्कालीन लेखों तथा दानपत्रों स प्राप्त होता है। पाक कन म पौर राजा को पत्नी द्वारा जैन बिहार को दान देने का उल्लेख किया गया है। बंगाल क पुण्ड्रवदन क्षेत्र में अनक जैन बिहार से बितका प्रथम हिन्दू राजाधा से दान मिल जाया करता था। मारवाड़ चहमान लेख में तीर्थ कर घान्ति नाम की देव यात्रा क लिए बबहार दान का बिबरन प्राप्त होता है। दान का एक भव्य उदाहरण मासिक के निकट प्राप्त एक प्रशस्ति स मिलता है। जिसमें सूर्यप्रहृय के बबसर पर दान देने तथा दान की माय मे जिन पूजा और जैन साधुओं के भोजन को व्यवस्था का उल्लेख किया गया है।

पूर्व मध्यकालीन साहित्य एक कथा

साहित्य और वास्तुकला के लव में जो समति इस युग में हुई वह सचहनीम है। उस समय की कलाकृतियों आज हमारे गौरव को बस्तु बनी हुई है। साहित्यिक कृतियों वर्तमान साहित्यकारों एवं साहित्य-विचारिणों के पथ-प्रदर्शन करने की धमता रखती है। इस युग में वास्तुकलाविधारणों एवं साहित्यकारों की बाइ-सी बा यई लो। उग्यामय पाकर कलाकारों को उसाह बिना। साहित्य के विभिन्न जर्मों पर जितनी रचनाएँ इस युग में हुईं वह संस्कृत साहित्य के काव्य में अपना अधिक महत्व लो रखती हा है लान ही के सक्या में भी अधिक है।

लभित साहित्य—स्थानाभास के कारण समस्त साहित्यकारों का न लो उल्लेख हो किया जा सकता है और न महत्वपूर्ण साहित्यकारों की तिबियाँ एवं उनकी रन माओं पर ही बिचार किया जा सकता है। अत कबल नामांकन करके ही मंतीय करना पड़ेगा। बलित भारत के महाकवि भारवि सातवीं घातर्षी में बाव है। इनका मुद्रविद्ध रंन 'क्रियतामृनीय' है। भारवि की कविता संस्कृत साहित्य में बब गौरव क लिये प्रसिद्ध है। भारवि अनन्त काव्य शैली के पथप्रदर्शक माने जाते हैं। बलभी के राजा मापर सेन के दरबार में महाकवि भट्ट समापण्डित से जिन्होंने 'राजन-अप' जपवा 'मट्टिकाव्य' की रचना की। संस्कृत साहित्य के महारणी पुनपठ निबामी बाव ना भाविमोह भी इनी युग में हुआ था। इनका मुद्रसिद्ध महाकाव्य 'विपुलाय-अप' मस्टव साहित्य की उरुष्ट रचना है। यदि कासिन्धु अपनी उरुबामों भारवि बब गौरव तथा दक्षिण परलानिय के लिए बिजात है तो माय में य तीनों मुल बिद्यमान है। माय के बार काव्यीय पणित धमग्र का नाम बिषय उल्लेखनीय है। न म्भारती

[illegible]

रचयिता उदात्तकर (सातवीं शताब्दी के कुछ पूर्व) न्यायबौद्धिक के सुप्रसिद्ध टीकाकार 'तात्पर्यटीका' के तथा 'न्याय सुखी निबन्ध' के प्रणेता विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं के महापण्डित वाचस्पति मिश्र (नवीं शताब्दी) चार्वाक बीज माला तथा वेदान्त मतों के सुप्रसिद्ध कश्चनकर्ता एवं 'न्याय मंजरी' के रचयिता जयन्त मल्ल (नवीं शताब्दी) नैयायिक मरेक महापण्डित उदयनाचार्य (दसवीं शताब्दी) जिन्हें यह दावा था कि जिस प्रकार जिस विद्या में सूर्य उदय होता है वही पूर्व दिशा कहलाती है उसी प्रकार उदयनाचार्य जो कुछ कहें वही सत्य है। इन्होंने जनेन ग्रन्थों की रचना की जिसमें 'तात्पर्य परिपुष्टि' 'कसमावली' 'बीजविमर्का' 'न्याय कुसुमाञ्जलि' आदि प्रसिद्ध हैं। न्याय शास्त्र के दो अन्य आचार्यों का उल्लेख मान्यवर्क है। वे हैं 'न्याय सार' के प्रणेता भास्वर्ज (नवीं शताब्दी का अन्तिम भाग) तथा बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में होन वाले सुप्रसिद्ध दर्शन-ग्रन्थ 'तत्त्व चिन्तामणि' के रचयिता गणेश उपाध्याय।

कमायु द्वारा प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन को जागू बढ़ाने के लिये इन युग में अनेक विद्वानों एवं दर्शन महापण्डितों ने एड़ी चोटी का जोर लगाया। इनमें 'ज्योमवर्ती' के रचयिता ज्योम विवाचार्य (दसवीं शताब्दी) पूर्व उल्लिखित उदयनाचार्य जिन्होंने अद्यपरि दर्शन का प्रसिद्ध टीका-ग्रन्थ 'किरमावली' की रचना की। योगराचार्य (दसवीं शताब्दी) जिसका न्याय कम्पनी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। वैशेषिक सिद्धान्त का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'न्याय कीटावली' के रचयिता बल्लभाचार्य (बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण) तथा 'सप्तपदावली' के प्रणेता विद्यावित्त मिश्र (बारहवीं शताब्दी) आदि विषय उल्लेखनीय हैं।

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन की अति साक्ष्य एवं योग के क्षेत्र में भी पर्याप्त उत्पत्ति हुई। वाचस्पति मिश्र ने भी साक्ष्य शास्त्र पर 'साक्ष्य तत्त्व कीमूला' नामक ग्रन्थ की रचना की। दूसरे विद्वान् चार्वाक के बीड़पात्र (सातवीं शताब्दी) जिन्होंने साक्ष्य कारिका पर एक महत्त्वपूर्ण भाष्य 'मीड पाद भाष्य' की रचना की। योगदर्शन के क्षेत्र में कुछ आचार्यों ने कार्य किया। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महापण्डित वाचस्पति मिश्र ने इस क्षेत्र में भी कार्य किया है और उनका ग्रन्थ 'तत्त्ववेद्यारवी' प्राचीनतम मान्य ग्रन्थ 'व्यासभाष्य' की सुस्वर टीका है। अन्य आचार्यों में 'योगबौद्धिक' तथा 'योगसार-नदह' के रचयिता विज्ञान मिश्र 'पातञ्जल रत्नस्य' के रचयिता रामशान्त सरस्वती 'यजमार्तण्ड' के रचयिता भोज 'वृत्ति' के रचयिता भावा मयेरा 'मणिप्रभा' के प्रणेता रामानन्द पति 'योगचन्द्रिका' के लेखक अनन्त पण्डित 'न्याय सुवाकर' के रचयिता महाशिव सरस्वती नागोत्री मल्ल आदि का नाम बाहर के लिये लिया जा सकता है। यहाँ यह भी बताना आवश्यक है कि इन युग में टीकाओं का ही बाहुल्य रहा। दर्शन साहित्य के इतिहास में इन टीका काल कहें तो अनूचित न होगा।

इस युग में यीमोला दर्शन के क्षेत्र में भी पर्याप्त कार्य हुआ। कुमारिल मल्ल की ही इन युग का दृष्टम मानना चाहिये। वे संकराचार्य जो के पूर्ववर्ती थे। इन्होंने बाद पर्व को द्वापर हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान में बड़ा योग दिया। इनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं 'स्फोट बौद्धिक' 'तम बौद्धिक' 'टिप्टिका' आदि। इनके शिष्यों में मञ्जन मिश्र (आठवीं शताब्दी) विषय उल्लेखनीय है। इन्होंने 'विधि विवेक' 'भाषणा-विवेक' 'विषयन-विवेक' आदि की रचना की। उम्मेक दूसरे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ थे। इन्होंने कई सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की टीकाएँ की जिनमें 'वर्णाक बौद्धिक' की 'तात्पर्य टीका' अधिक प्रसिद्ध

है। मनु विद्वान् के पोषका एवं उनके टीकाकारों में पार्श्व मारुति मिश्र भास्कर-चार्य तथा जगद्देव अधिक विख्यात हैं। मीमांसा दर्शन में नवमास पूर्वमे वालों में श्री प्रभाकर मिश्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि ये कुमारिल मनु को अपना गुरु मानते थे। इनकी अद्वितीय प्रतिभा से प्रभावित होकर ही कुमारिल मनु ने इन्हें 'पुरु' की उपाधि प्रदान की थी और तब से इनका मत 'गुरुमत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु कुछ काल इन्हें कुमारिल का पूर्ववर्ती मानते हैं। सातवीं शताब्दी इनका समय माना जाता है। गुरुमत के आचार्यों में शांभिकनाथ नवनाथ मरारि मिश्र तन्वीश्वर आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

भारतीय दर्शन की दिश में गौरव प्रदान करने का योग्य वेदान्त दर्शन का ही दिया जा सकता है। वेदान्त दर्शन का मूलपात बहुत प्राचीन काल में ही हो चुका था और महर्षि बाधरायण व्यास ने 'ब्रह्मसूत्रों' की रचना करके इसकी प्रतिष्ठा की थी। विचारणीय काल में अनेक आचार्यों ने वेदान्त दर्शन के सम्बन्ध में अपने-अपने मत का प्रतिपादन किया। निम्नलिखित आचार्य प्रमुख हैं —

क्र.	नाम	माध्य	माध्य
१	छन्दारचार्य (७८८-८२ ई०)	धार्मिक भाष्य	मत
२	मास्कर (१० ई०)	भास्कर भाष्य	मोदामेद
३	रामानुज (११४ ई०)	श्री भाष्य	विहित
४	आनन्दलील (११३८ ई०)	पूर्वप्रश्न भाष्य	ईश
५	निम्बार्क (१२५० ई०)	वेदान्त पारिभाष	ईशान

उपयोगी साहित्य

कौटिल्य—सक्ति-साहित्य के अतिरिक्त उपयोगी साहित्य के अन्त में पूर्व मध्यकाल पर्याप्त कार्य हुआ था। मनु-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाला रूप में आठवां शताब्दी में विक्रम की मया के तत्परान् अवरोहिष्ठ द्वारा रचित अमरकोश प्रबल अपने इस का पहला ग्रन्थ है। तत्परान् पूर्णोत्तम देव ने विचार्य राय गौर 'हाराजी' नामक राय काया की रचना की। इनके अतिरिक्त कोमकारा में 'अन' कार्य समुच्चय रचयिता गार्हपत्य 'अभिधान रत्नमाला' के प्रकृति हर्षपुत्र 'वैजयन्ती' के रचयिता गार्हपत्य प्रदान तथा 'अभिधान चिन्तामणि और 'वैज' नाममात्रा के अन्तर्गत हेमचन्द्र अधिक विख्यात हैं।

व्याकरण—विचारणीय काल में कुछ व्याकरणकारों ने मौलिक तथा टीका व्याकरणों की रचना की। व्याकरण और वाचस्प ने ११० ई० के निकट पाणिनि ११ व्याकरणों की टीका 'काशिका बृहत्' लिखी और उनके टीका की पीछे पाणिनि जिनके अन्त में 'व्यास के नाम में टीका लिखी। एक अन्य बौद्ध विद्वान् धारण देव ने ११०२ ई० में 'वृषट्पुत्र' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया। उस और बौद्धों के अतिरिक्त 'वैजयन्ती' नाम ने १२०० ई० में एक ग्रन्थ लिखा। उस और बौद्धों के अतिरिक्त 'वैजयन्ती' नाम ने भी 'उत्तम' प्रणीत किया। जिनके अन्तर्गत व्याकरण गार्हपत्य ने 'गार्हपत्य व्याकरण' ११५ ई० में काशीश्वर ने 'अभिधान नाम और १०५ ई० में और देव ने गुरुदास व्याकरण लिखा। मनु-व्याकरणों के अतिरिक्त प्राचीन भाषा

के भी व्याकरण विद्याराशीन युग में मिले गए जिनमें ब्रह्म का 'प्राकृतिक प्रत्यय जीनाचार्य हेमचन्द्र का 'उच्चारण सूत्र कृति' और कवयश्वर का 'धम्मपुत्रहस्य' आदि उल्लेखनीय हैं।

भाष्यबोध—चरक की 'चरक संहिता' इस विद्या का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसकी टीका विद्याराशीन युग में लगभग ८ ई. में अरबो भाषा में हुई। सुषुत द्वारा 'वैरचित सुषुत संहिता' को प्रसिद्धि गयी। अष्टाङ्गने में कम्बोदिया से संस्कार अथवा हर फैली थी। चक्रपाणि दत्त ने उक्त ग्रन्थ की ११वां अष्टाङ्गी में टीका लिखी। बृहत् समुद्र ने 'अष्टांग हृदय' और 'अष्टांग हृदय संहिता' दो ग्रन्थों का रचना की। भाष्य करने आठवां तथा गवा अष्टाङ्गी में 'हृदिनिर्देश' का प्रणयन किया जो 'भाष्यनिर्देश' के नाम से विख्यात है। 'निर्दिष्टोप' या 'बृहत्भाष्य' के प्रणेता बृह्म का भी उक्त इसी काल में हुआ था जो विज्ञान का सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ है। सम् १९ ई० में चक्रपाणिदत्त ने 'चरक' और 'सुषुत' पर टीका लिखी और 'चिकित्सासार सग्रह' नामक एक मोक्षिक रचना भी की। १२ ई. के निकट 'चार्यचर संहिता' और १२२४ ई. में मिहिर ने 'चिकित्सामुत्त' की रचना की। बोपदेव ने इस ग्रन्थ की टीका लिखी। ७ वां या ८ वीं अष्टाङ्ग में भाष्यार्जन ने 'रस रत्नाकर' लिखा। इसी काल में लगभग १२० ई० में 'रत्नाकर' रचा गया। नित्यनाथ ने 'रस रत्नाकर' राम चन्द्र ने 'रसम् चिकित्सामणि' १ ७५ ई० में गुरुराज ने 'धर्म प्रसंगि' की रचना की। मदन पास ने 'मदन निघण्टु' लिखा।

इन पास्तो के अतिरिक्त रत्नाकर और धार्य बाहु विज्ञान मन्त्र-निर्माण धार्य विज्ञान धार्य आदि में भी ग्रन्थ विद्याराशीन युग में मिले गए। विज्ञान बनाने की कला पर राजा भोज का 'समरंजन सुखसार' नामक ग्रन्थ पाया जाता है। 'विज्ञान विद्या और 'विज्ञान सञ्च' नामक दो अन्य ग्रन्थों को भी उपलब्धि होती है। मृति-निर्माण-कला में भी कई ग्रन्थ पाये गये हैं जिनमें उत्तमस्वामी कला पर प्रकाश डाला गया है। नौ धार्य भी-निर्माण-कला को स्पष्ट करता है।

गणित—गणित धार्य में भी भारत बड़ा हुआ था और इसी ने पाश्चात्य देशों का गणित सम्बन्धी विचार बाँटें बसाई। ब्रह्म के नाम का विकास जिने ब्रह्मलोक पद्धति कहते हैं हमारे आचार्यों के मस्तिष्क की वस्तु है। सर्व प्रथम यह पद्धति हमारे यहाँ से उत्पन्न हुई। गणित धार्य के अनेक विभागों—अनगणित बीजगणित रेखागणित त्रिकोणमिति अक्षरगणित स्थिति धार्य (स्थितिस्थिति) तथा गणित धार्य (कामनिमित्त) में हमारे विज्ञान पारंगत थे।

ज्योतिषधार्य—प्राचीन युग में ज्योतिष धार्य में भी धूम प्रगति हुई थी। आप भट्ट ने विद्याराशीन काल के पहले या ज्योतिष ग्रन्थों की रचना की थी। उनके बाद बराहमिहिर का नाम आता है जिन्होंने 'पञ्चमिहिरास्तिका' 'बृहत्संहिता' और 'बृहत् पञ्चाङ्ग' तीन ग्रन्थों की रचना कर ज्योतिष धार्य में नव विज्ञानों को प्रतिपादन किया। ब्रह्मपुत्र ने ६२८ ई. के लगभग 'ब्रह्मस्फुट' विज्ञान तथा ६९५ ई. में 'गण्ड मापक' का प्रणयन किया। जलन पृथ्वी के घूर्णन का विज्ञान विज्ञान जिस धार्य के विज्ञानों ने बहुत समय पञ्चाङ्ग मान्य किया। १५ ई. में भोज ने 'रात्रिमास' धार्यग्रन्थ में 'भारत' और अष्टाङ्ग ने 'करण प्रकाश' लिखा। भास्कराचार्य का उक्त इन काल के अन्तिम दिन में हुआ। आपने 'विज्ञान विरोध' नामक ग्रन्थ की रचना की जो ज्योतिष धार्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

फलित ज्योतिष—बराह मिहिर ने 'बृहत्संहिता' और 'बृहत्पञ्चाङ्ग' नामक दो ग्रन्थों की रचना की।

यम साहित्य—प्रविष्ट भाष्यकार सेवातिथि तथा टीकाकार विज्ञानेश्वर ने 'मनुस्मृति' और 'पातञ्जल्य स्मृति' की टीका इसी युग में की। विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरा' तथा जीमवतवाहन का 'दायभाग' इसी युग की देन है। इनके अतिरिक्त अलङ्कार विश्वकर्म भारवैवर, भावदेवमट्ट, बलमट्ट आदि प्रकाश विद्वानों का आधिपत्य इसी युग में हुआ जिन्होंने अपनी टीकाओं और भाष्या द्वारा धर्म-साहित्य के कोप को बढ़ाया।

शिक्षा—विद्यारण्यीन युग में शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध किया गया था। वैदिक काल का गिराव प्रबन्ध आने बसकर परिवर्तित हो गया। बौद्ध काल में विहारों और मठों में ही शिक्षा का प्रबन्ध था। धीरे-धीरे इन मठों ने शिक्षा संस्था का रूप ग्रहण कर लिया। इन संस्थाओं में प्राकृत भाषा के बहते सस्कृत का पूर्ण प्रचलन हुआ। प्रारम्भिक पाठशाळाओं में हिन्दी को स्थान मिला गया परन्तु सस्कृत की प्रधानता पून बन्द बनी रही। साहित्य में सस्कृत को स्थान मिला ही चुका था। नाममात्र और विक्रम शिक्षा के विश्वविद्यालयों की प्रधानता इसी युग में हुई थी। इनके अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी वहाँ व्याप्ति वगित आर्यवेद रसज्ञ आदि विषय पढ़ाये जाते थे। इन विश्वविद्यालयों में तीन पूर्वी द्वीप समूह लंका सिन्धुत आदि दूर-दूर के देशों से विद्यार्थी अध्ययन के हेतु जात थे। इन विश्वविद्यालयों में विद्यापिपा के रखे भोजन कपड़ा आदि की व्यवस्था होती थी जिसका लक्ष राजाओं और बान्धवों के विद्यालयों को विषय दोनों से चलता था। इन विद्यालयों से निकलने पर विद्यापियों की सर्व साधारण में बड़ी प्रतिष्ठा की जाती थी। उदयपुरी का विश्वविद्यालय भी इसी युग में स्थापित था।

इसके अतिरिक्त विद्यापियों की व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती थी। आर्यवेद के अध्ययन विषयों का अध्ययन प्रायोगिक रंग से किया जाता था। अनेकानेक चिकित्साशास्त्रों का अन्वेषण प्रयोग कर के किया जाता था। अध्ययन विद्यापियों का इन चिकित्साओं का ज्ञान प्रायोगिक रंग पर ही, सिद्धकावा करते थे। और-छात्र की विज्ञा भी इस युग में उत्पत्ति पर थी। अरब बालों ने यह विद्या हमारे यहाँ से मीली। मुद्र गिद्या व्यापार शिक्षा आदि का भी अध्ययन प्रायोगिक रंग पर किया जाता था। इस प्रकार शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में स्थिति सन्तोषजनक थी। शिक्षा का प्रबन्ध उत्तम था।

पूर्व मध्यकालीन कला

भारतीय कला के इतिहास में गुप्तकालीन कला महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसका परभाव पूर्व मध्य कालीन कला का आधिपत्य होता है। यह कला भी भारतीय कला में अपना विशिष्ट स्थाव रखती है।

गुफा कला—गुफा-निर्माण की जो गर्द लौरी इस युग में प्रचलित हुई वह पराङ्गिषा की काटकर मठ बसका चैत्य का निर्माण था। इस रंग में हमारो में ही बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ की स्थापना की जाती थी। अल्प इसका कोई प्रबन्ध नहीं होता था। यह कला इसी काल में उत्तरोत्तर प्रगति करती गई जिसकी तीन धेनियाँ हो गयी हैं। (१) एनीया विधि (२) एनीफेन विधि और (३) एस्कर विधि। एनीया विधि में गौरकर एक कमरा निर्माण किया जाता था और उसमें काष्ठम तथा जैन मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी। इस गुफा में एक बगलवा बना हुआ था जिसमें अल्प में

एक कच्ची निर्मित होती थी। एलीफेन्टा-गुफा में जिब की प्रतिमाएँ बट्टान का काठबन गुफा के साथ ही बनाई जाती हैं।

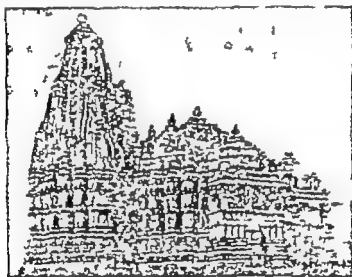
दक्षिण भारत की वास्तुकला उत्तरी भारत की वास्तुकला से भिन्न है। इस मिश्रता का आधार पर दक्षिण की वास्तुकला को द्रविड़ शैली और उत्तरी भारत की शैली को आर्य शैली के नाम से पुकारा गया।

द्रविड़ शैली—इस शैली में बड़ी-बड़ी बट्टानों की कल्पनाएँ हैं। पत्थर में गुफा शैली का जल्ला था। इनके उदाहरण अजन्ता एलीरा और एलोफरा में देवना का मिलते हैं। इन गुफाओं के उत्पन्न रूप को मन्दिर कहा जाता है। यद्यपि मन्दिरों का परिचयन से उत्कलमान गुफा निर्माण का कोई साक्षात् स्पष्ट रूप में नहीं देखा जा सकता किन्तु पश्चिम शैली द्वारा यहाँ निष्कर्ष निकलता है और उत्तरी भारत का प्रभाव है।

आर्य शैली—उत्तरी भारत में गुफाओं का प्रारम्भ से ही समाप्त हो गया। इस कारण यहाँ की वास्तुकला की प्रगति में गुफा-निर्माण कला का महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिल सका। यहाँ स्तूप और मठों तथा विहारों की ही प्रधानता रही। आर्य शैली के मन्दिरों की विशेषता यह थी कि यहाँ के मन्दिरों के चिह्न विकसित रूप में नहीं थे। इन शैली का उद्भव स्तूपों से हुआ। ये स्तूप एक ऊँचे चबूतर पर अवशिष्ट किम्वदन्तों के और उनका आकार मूर्तत्व की भाँति होता था। मूर्तत्व के सिरे पर एक वर्गाकार प्रस्तर लगा होता था जिसे हस्तिका कहते थे। उसका ऊपरी भाग कम चौड़ा होता था। स्तूपों का यही रूप इस रूप में मन्दिर के आकार में आ गया। ये मन्दिर दक्षिण भारत का भाँति प्रस्तर से निर्मित नहीं होते थे। बल्कि ईंट तथा प्रस्तर के टुकड़ों से बनने के जिसे उदाहरण मित्तलजी तथा तालन्दा के मन्दिर हैं। उत्कलमान मन्दिरों को मुख्यतः आक्रमणों ने विनष्ट कर उन्हीं ईंटों द्वारा मत्तिका का निर्माण कर दिया जिसे वे अधिक संख्या में आज प्राप्त नहीं होते। पद्मापुर में इनकी शताब्दी तक ईंटों के बने स्तूप प्राप्त हुए हैं। इस काल में स्तूपों की रचना ईंटों के अतिरिक्त काली और पत्थरों मिट्टी द्वारा भी होती थी। मूर्ति पूजा का प्रचलन इस काल में अधिक था। इन कारण मन्दिरों का निर्माण लम्बे हुआ। इन मन्दिरों को नमर या आर्य शैली के कहते हैं। इन मन्दिरों में वर्षापूर्व के ऊपर छिन्न होने से जो ऊपर की ओर कमजोर पड़ते होते थे। इसके उदाहरण चबूतरा का मन्दिर, उड़ीसा का मन्दिर, काँवर का शैलनाथ मन्दिर, कुम्भ का विश्वेश्वर मन्दिर, राजपुताना का शैलनाथ मन्दिर तथा बदायुँ के अनेक मन्दिर हैं। पूर्व मध्यकाल में प्रारम्भ में जिस प्रकार मन्दिरों का निर्माण हुआ उसकी प्रगति धीरे-धीरे होती रही इससे शैली में बारीकी आती थी।

उड़ीसा शैली—इसका आरंभ तथा द्रविड़ शैली की मिलावटी शैली कहना अधिक होगा। यह शैली भुवनेश्वर के नाम से प्रख्यात है। उड़ीसा की राजधानी होने के कारण भुवनेश्वर पूर्व मध्यकाल में उत्तरी शैली प्रसिद्ध हो गया किन्तु प्राचीन काल में नहीं था। भुवनेश्वर में पाण्डवों ने बहुत से मन्दिरों का निर्माण कराया जिन्हें आज भी देखा जा सकता है। इन मन्दिरों का विशेषतः छिन्न-निर्माण में भी। छिन्न के अन्तिम सिरे पर छत्र की आकृति बनी होती है और उसके बाद सामक्य का चक्र का पत्थर चक्र की भाँति बना रहता है। इन मन्दिरों में अलङ्कारिता का विशेष ध्यान दिया जाता है। यहाँ के मन्दिर विद्याग होते हैं। इनमें विद्याग नामक मन्दिर प्रधान माना जाता है।

जबुराहो खैली—जम्हेल राजाओं का राजधानी होने के कारण जबुराहो का महत्त्व कला के क्षेत्र में काफी बढ़ गया। उड़ासा के बाव इमी खैली को प्रभावित रही। यहाँ पर खैर खैलज और खैल राजा ने मन्दिर निर्माण में काफी उत्साह दिखाया। कण्डरिया महादेव का हिन्दू मन्दिर यहाँ खोदकर बनाया गया था। इसमें तीन स्तम्भ मुक्त कमर हैं। सभी कमरों पर बुत्ताकार मुख्य निमित्त हैं जिनके बीचरी भाग में कमल बना है। छिन्नर सबसे ऊपर भाग में है जो कलस के स्थान पर सुन्दर प्रस्तरों से विभूषित है। गर्भगृह के ऊपर खोकील छिन्नर का निर्माण है जो कार्य खैली के आधार पर बना है। इसमें मध्य छिन्नर के लोके छिन्नराकार मुख्य प्रधान छिन्नर के चारों ओर बन है। ये छिन्नर पत्थरीकारी द्वारा विचित्र मसकृत बना दिये गये हैं। इस खैली के उदाहरण चतुर्मुख खैलज तथा आग्निश के खैल मन्दिर हैं। ये मन्दिर बहुत ऊँचे महा हैं। इन मन्दिरों में हवा तथा रोशनी का समुचित प्रवाह किया गया है। दीवारों में ताक निमित्त होते थे जिनमें मूर्तियाँ स्थिर की जाती थीं।



चित्र १९—जबुराहो का मन्दिर

भवन निर्माण—पूर्व मध्यकाल में धर्म के पूर्णतः क्षेत्र के अतिरिक्त लोगों का ध्यान भवन-निर्माण की ओर भा कम न रहा। मन्दिर भिन्न-भिन्न भवन आदि का निर्माण कला के दृष्टिकोण से बहुत उत्तम कोटि का था। मकान कई मंजिल के बनने लगे। मकानों में एकरी का मन्दिर आज भी उस काल का कला को प्रदर्शित कर रहा है। मकानों का विन्धविशालता इस काल की वस्तु है। भादृष्टि गुदाइयाँ से मकानों के मकानों का भाग होता है। ये भवन कई मंजिल के होने से और इनकी गहरा तथा भागल भी बहुत बड़ा था। यहाँ विवाहियों के गढ़ने रहने तथा मीन के सुन्दर भवन का निर्माण हुआ था।

लक्षण कला—इस कला का प्रादुर्भाव-काल बहुत प्राचीन है। गुप्तकाल में यह कला अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गई थी। इसी काल में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर पूर्व मध्यकाल में इसका विकास हुआ। इस काल में ताम्रिक मत्तों का काफी प्रचार हुआ जिससे उसका प्रभाव लोकात्मिक कला पर पड़ा। बौद्ध तथा हिन्दू प्रतिमाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा। छठी सताब्दी में प्रतिमाओं का जो रूप था उसमें इस काल तक आते-आते पोषाभन का आकार प्रवेश कर गया। इनमें कोमलता के साथ-साथ सहायकों का लक्षण भी जान लगा।

इस काल में स्थान और समय के अनुसार कई शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ। बिहार, बंगाल राजपूताना गुजरात उड़ीसा आदि स्थानों पर भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न शैलियों का जन्म हुआ। पश्चिमी भारत में पश्चिमी शैली का उद्भव हुआ जिनमें गुजराती और राजपूत दो स्कूल आते हैं। गुजराती स्कूल में प्रतिमाओं का स्वरूप मनोमन हो गया। घटीर तथा बंग को अनुपाकार में निर्मित करना इसी स्कूल की विशेषता है। राजपूत स्कूल में प्राचीनता सिद्धे हुए प्रतिमाओं का सूचन हुआ जिनमें जीवन का प्रस्तुतन रहता था। इसके अतिरिक्त जन्मेस तथा हैहय स्तम्भों का समावेश होता है जिनमें मनोविज्ञान का प्राधान्य है। इसमें आइतियों का स्वाभाविक मुन समाविष्ट होता है। मनुष्य की मूर्ति के साथ-साथ पशुओं की भी आकृतियाँ इन स्कूल में बनीं। उत्तरी भारत में चारनाथ शैली की प्रतिमाएँ आती हैं जिनमें अनार प्रस्तर प्रबल होते थे। बिहार और बंगाल में राष्ट्रीय भावना की संकीर्णता न एक नवीन शैली को जन्म दिया जिसे पूर्व भारतीय शैली या पाल स्कूल कहते हैं।

मूर्ति निर्माण—मूर्ति निर्माण-कला की प्रवृत्ति इस युग में खूब हुई। शासन मत् के प्रचार से व्यक्तियों का इन मूर्तियों में के सिद्धा गया और इस प्रकार मूर्ति के निर्माण की एक नई शैली का प्रादुर्भाव हुआ। लोगों ने भिन्न प्रकारों का एक-साथ भावन मूर्तियों का ही माना तथा इन व्यक्तियों जैसे सूर्य बिन्दु चित्र बृद्ध आदि की विभिन्नभावस्था की मुद्रायें अनेक मूल अवस्था अनेक हावों के साथ सुसज्जित किया। विचारणीय काल में मूर्तियों की कुछ अपने विशेषताये थीं जिनसे विमूर्तिपण होता उनका सिद्ध वाङ्मय था। प्रथम तो उनको मन्दिरों की शीशालों में निर्मित ताँसों में नियमित रूप से रखा जाता था और दूसरे प्रतिमाओं के कई हाव और मुह बनाय जाते थे। कुछ प्रतिमाएँ ऐसी भी होतीं थीं जिनके कई हाव न लिपटा कर कुछ दिग्गज किम्हा (संघ चक्र, गदा पद्म) की आकृतियाँ बना दी जाती थीं।

सूर्य की प्रतिमा अथवा गुप्त काल से ही बनी प्रारम्भ ही गई थी किन्तु इन युग में इसकी बनावट में परिवर्तन आ गया। इस मूर्ति में उड़ी तथा पिण्ड दो मूर्तियों के साथ ऊपरी तथा प्रत्युपा नाभर देखियाँ भी जोड़ी गई हैं। इस प्रकार का उदाहरण मध्य भारत में प्राप्त हुआ है। ऐसा ही कानाको का बिनास भुव-मन्दिर उड़ीसा में तैयार किया गया था। बिन्दु प्रतिमा इन काल में बहुत संख्या में प्राप्त होती है। बिन्दु के चोरीस अवतारों की मूर्तियाँ मिलती हैं जो पड़ी तथा कमलासन पर बैठे दोनों अवस्थाओं में हैं। बलराम चराह नामक मत्स्य नरसिंह आदि की मूर्तियाँ अलग अलग तथा एक साथ मिलती हैं। ११वीं सताब्दी के हैहय शासन-काल की बनी स्तम्भ पर बिन्दु की अनेक अवस्थाओं का प्रतिमाएँ मिली हैं जिनमें मत्स्य बृद्ध नामक चरित्र की प्रतिमाएँ एक के ऊपर दूसरी स्थित हैं। एक अन्य स्तम्भ पर कूम चाराह आदि नरसिंह की मूर्तियाँ हैं। बंगाल में बिन्दु की मूर्ति लक्ष्मणायन में मन्दु के साथ निर्मित मिली है। बिन्दु मूर्ति में आयुषों (राज चक्र, गदा और पद्म) का भी अंग पाया

बाता है। कहीं-कहीं विष्णु और ब्रह्मा की सम्मिश्रित प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं। विष्णु मूर्ति में चतुर्भुजी रूप ही प्रायः प्रदर्शित किया गया है।

विष्णु के साथ शाक्त मतानुसार शिव की त्रिमूर्ता का भी विचारणीय युग में अधिक प्रचार रहा। अस्तु एक मुक्त भक्त चतुर्भुज शिव की मूर्तियाँ शिव के आकार को प्रकट करने के लिए निर्मित हुई। शिव की मूर्तियाँ सदाशिव उमा महेश्वर कल्याण सुन्दर तथा अक्षरेश्वर की मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। पाल हीनो में जैनगौरीश्वर की शिव मूर्ति को सौम्य रूप में स्थापित दिया गया है। इस कारण शिव पार्वती की सम्मिश्रित प्रतिमा का प्रचार इस युग में शुरू रहा। दूसरा धर्माध्यक्ष के हेतु मन्दिर में एक एसी ही प्रतिमा मिली है। शिव के आंतरिक यक्ष और कार्तिकेय की भी पूजा इस युग में होती थी। इस कारण इनकी भी मूर्तियाँ अधिक संख्या में निर्मित हुई।

जैन धर्म में भीवीर्य से युक्त मूर्तियाँ मिली हैं जिनके साथ भक्त तथा यक्षिणी समाविष्ट किए गए हैं। प्रधान मूर्ति को २३ मूर्तियों के बीच में बनाया गया है। वेदि राज्य में इन धर्म की बनें मूर्तियाँ मिली हैं जो उनकी आराध्य शक्तियाँ हैं। बौद्ध धर्म में महायान तथा मध्ययान शाखाओं में साथ भक्तोक्तिश्वर, वासिष्ठक लोकेश्वर, जम्बल हेमन्त आदि शक्ति प्रतिमाएँ मिली हैं। कारण यह था कि बौद्ध-धर्म पर हिन्दु मूर्ति-पूजा का इतना पराजित प्रभाव पड़ा कि बौद्धों की शक्तियाँ देवी-देवताओं के नाम से पुकारे जाने लगी और फिर उन्हें प्रतिमा के रूप में स्थापित कर दिया गया। इन प्रतिमाओं का ध्वजन प्रस्तरों के अतिरिक्त काल्य साथ आदि वातुओं से भी हुआ जिसके प्रभाव में कई मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। मिट्टी की मूर्तियाँ का भी बाहुल्य है।

संकीर्ण तथा विशिष्टता—उत्कामीन प्रतिमाओं के दिग्दर्शन से उस काल की संगीत कला का स्पष्टीकरण संकल्पित हो जाता है। पाल धर्म में पाठ्ययुग को निर्मित शिव की वातु प्रतिमा मिली है। जिसमें शिव शङ्ख नृत्य कर रहे हैं। पहाड़पुर की खुदाई में गणेश की मिट्टी की प्रतिमा मिली है जिसमें नृत्य कला का ज्ञान होता है। मूर्तियों के साथ भक्त मूर्तियों एकता का ज्ञान बावनीहाट नृत्य कला का ज्ञान होता है। सामाजिक उत्सवों पर मण्डप का भी ज्ञान होता था। इन प्रकार पूर्व मध्यकाल में नृत्य नृत्य और पावन लोग का प्रचार रहा।

चित्रकला का धर्म भी विचारणीय युग में उपलब्धता में था। गुप्त कालीन भक्तों की चित्रकारी इस युग में भी चलती रही। जिसके अनुसार मन्दिरों की दीवारों को मूर्ति चित्रों से सजाया जाता है। आठवीं शताब्दी में इन मूर्ति चित्रों के स्थान पर छोटी आकृतियाँ निर्मित हुई जिनका प्रयोग हस्तनिर्मित वस्तुओं के प्रचारण में होता था। इनका चित्र पाल हीनो में प्रचलित हुआ। तादृक पता पर भी इस युग में चित्र बन। इनमें 'प्रभापादविना' मुख्य माना जाता है। तत्कालीन चित्रों का निर्माण देनाका की आकृतियों पर हुआ। पहले काले रंग में इन चित्रों का आकार गीत किया जाता था तत्पश्चात् लाल नीले हरे पीले आदि रंगों में भर दिया जाता था। रंगीन चित्रों के पत्र-पुष्पा में चित्रित कर दिया जाता था। चित्रों के मध्य में प्रधान देवता की रचना होती थी और चारों ओर अन्य आकृतियाँ बनाई जाती थी।

इस प्रकार इस युग में पित्रों की छुन अभिवृद्धि हुई। हस्तलिखित पुस्तकों के बीचोबीच में कलाकार चित्रकला का भी निवेदन कर अपनी कलात्मकता का परिचय देता था।

प्रश्न

- १ पूर्व मध्यकाल से आप क्या अर्थ समझते हैं ? भारतीय इतिहास में इस युग का क्या महत्व है ?
- २ पूर्व मध्यकालीन भारत के राजनीतिक संगठन पर प्रकाश डालिए ।
- ३ राजपूतकालीन समाज का चित्रण कीजिये ।
- ४ राजपूत कालीन सभ्यता एवं संस्कृति पर प्रकाश डालिए ।

अध्याय २५

इस्लाम धर्म का जन्म तथा प्रसार

भाग १ इस्लाम धर्म का जन्म तथा प्रसार
छठी सताव्वी के अन्त में अरब की परिस्थिति

अरब का देश एक प्रायद्वीप है। इसका क्षेत्रफल फ्रांस के क्षेत्रफल से चार गुणा अधिक है। इस विद्यालय देश का उत्तरी भाग भाग एक पठार है जिसके दक्षिण में एक विद्यालय मरुभूमि है। छठी सताव्वी के अन्त में अरब देश की परिस्थिति अत्यन्त साधनीय थी। यहाँ के निवासी कबीलों में विभाजित थे। एकता या राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव नहीं था। इससे स्पष्ट नहीं कि कबीलों में संगठन का परम्परा कबीलों में परस्पर कुछ रहने के कारण देश में तत्काल सघामित नहीं रहनी थी।

अराबिकता के प्रकीर्ण के साथ-साथ यहाँ अन्यविश्वास का प्रकीर्ण भी पूर्ण मात्रा में फैला था। फलस्वरूप यहाँ के निवासी देश परस्पर की वैयक्तिक तथा मूल-मूलों का निर्वासन मानकर उनका पूजा करते थे। बहुत देरी के बाद यहाँ की जमातों की बहुत निर्यात का पूर्ण अभाव था। सामाजिक जीवन में धार्मिक संगठन के अभाव के कारण यहाँ के निवासी निर्बल थे। अन्यविश्वास और वर्चस्व के कारण अरब निवासी बहुत ही पराधीनता के सिद्धि निर्भर रहते थे। ऐसी अवस्था में मूढ़ मार करना या लूट बहाना उनके सिद्धि स्वाभाविक नियम सा बन गया था।

सन् ५७० ई० में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ।

मुहम्मद साहब तथा इस्लाम का जन्म

अरब देश के कुरैश कबीले के हाशमी शाखा में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ। मका शहर में अल्लुला के घर आप का जन्म हुआ। आपका अत्यन्त दुख था। जन्म से पूर्व ही आपके पिता का स्वर्णमग्न हो गया था। पिताका आपका बेनी शत्रु का हाथमक मरता था बीता। छ वर्ष की आयु में आप की माता अरबा का भी स्वर्णमग्न हो गया। शत्रु का कारण आपके वालन पोषण का भार आपके बादा अत्यन्त सन्तान्त्रिय माता का भी बेहाल हो गया। अब आप अपने भाषा अनुनासिक यहाँ रहने लगे। अनुनासिक एक प्रसिद्ध व्यापारी थे और व्यापार के मिलविले में मुहम्मद साहब का देश धर्म का भीमाग्न भी प्राप्त हुआ। शत्रु कारण उनकी स्वाभाविक तीक्ष्ण बुद्धि का विकास अत्यन्त तीव्रता से बढ़ता गया।

यद्यपि मुहम्मद साहब गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लग गये परन्तु स्वामादिक विचारस्तोत्र होने के कारण अधिकतर समय आप विचार में ही व्यतीत करने लगे। अपने जीवन के चालीसवें वर्ष जब आप रमजान के महीने एकादश पहाड़ियों में समय बेटा रहे थे कि आपको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ कि इस्लाम कहने हैं। मुहम्मद साहब का ज्ञान हो गया कि ईश्वर एक है सारा भीषे उमी की जहूँ (अनिष्टविशुद्ध) है। इस ज्ञान प्राप्ति के बाद मुहम्मद साहब ने अपना धार्मिक एमान किया कि 'अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा ईश्वर नहीं है और मुहम्मद उसका पैगम्बर' है। इस प्रकार इस्लाम धर्म का आरम्भ हुआ।

जब मुहम्मद साहब ने अपने धर्म का एमान किया तो मक्का के कुरैश कबीले के काला ने इनका पौर विरोध किया क्योंकि यहाँ कय नहीं के करीब ३६० मूर्तियाँ मारदारक थी और जिनकी पूजा में वह ई हुई वस्तुएँ ही उनके जीवन निवाह का साधन थी। इन काला का विरोध बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि मुहम्मद साहब का सन् ६२२ ई० में मक्का छोड़ कर पेरिश मानना पड़ा। इस वृत्तमा में ही मुहम्मदानी का सम्मान मारम्भ हुआ और यसरिब का नाम भी मदीना पड़ गया। मदीना में मुहम्मद साहब ने अपने धर्म का प्रचार भी किया और गुरबा के लिए बना वा मस्जिद भी। सैनिक उपकरण के परचाल ६३ ई० में आपने मक्का पर आक्रमण किया और पीछे समय में ही आपका अधिकार इस नगर पर सम्पूर्ण रूप से हो गया। अब मुहम्मद साहब ने अपने "एकेश्वरवाद" का प्रचार जारी से आरम्भ किया। जब आप अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे कि सन् ६३२ ई० में ६३ वर्ष की आयु में आपका एक एक वृहत्त हो गया।

मुहम्मद साहब के अनुसार इस्लाम का धर्म

मुहम्मद साहब के वदवान् अनुसूक्त उमर, उस्मान और अली लगीका हुए। इनका नाम पवित्र गलीफा का काल माना जाता है। गलीफा अली के चाचा के रूप में मृत्यु के बाद उनके पुत्र हमस और ललीफा उमर के बंधु 'मुजाबिया' और मीरियाफे धामक व एक युद्ध लड़ गया। धामन तथा मुजाबिया के हृष आ गई। मुजाबिया से उत्तराधिकार उन्ही के साम्राज्य में रहा और उनके आनदान के धामन कास का "उमैय्यद गलीफाओं" का काल कहा जाता है। ये लोग "मुभा" का मानव थे।

उमर करबले के युद्ध में अलीफा अली के पुत्र तथा पैगम्बर मुहम्मद साहब के देहा हसन का बल हो गया। यह एक इस्लामिक दुनिया का महान दिन है। इससे इस्लाम की उद्दीर् होस का दिन आज भी मुहम्मद के रूप में मनाया जाता है। अरब के काफ़ी निवासी 'मुजाबिया' के साम्राज्य काका का विराध करने लगे। परन्तु सैनिक दक्षिण, जब वह "उमैय्यदों" के पास रही उनका राज्य भी बलता रहा परन्तु सन् ७५० ई० में अल्लुम अल्लुम उमैय्यद अलीफा का वध करके इस साम्राज्य का अन्त कर दिया। उमैय्यदों की राजधानी दमिस्क में थी। इनके राज्य कास में इस्लाम का विस्तार अपने अरब शिष्य पर पहुँच गया था।

अल्लुम अल्लुम के राज्यकास में अलीफा, गलीफा का काल मारम्भ होता है जो सन् १२५६ ई० तक चलता रहा जब अलीफा के पीछे हमापू गी ने वध कर पर आक्रमण करके गलीफा "अल्लुमगाम विष्णाई" का वध कर दिया। गलीफा के साम्राज्य के बने लुष लोग मिश्र भाग गए और अल्लुमगाम गलीफाओं का नाम भी समाप्त हो गया।

अवामी खसफा अधिक उपार थे और उनकी राजधानी वयदाद विश्व संस्कृति का केन्द्र बन गया था। इनके बंध में उसीका 'हाक्य अमरदीव' का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने हिन्दुओं को कितनी ही पुस्तकों का फारसी तथा अरबी भाषा में अनुवाद करवाया। अमामी खसफा ईरानी सम्प्रदाय से अधिक प्रभावित हुए थे तथा अपने शासन व्यवस्था में भी ईरानी व्यवस्था बहुत कुछ अपनाये थे। इन्हीं के राज्यकाल में तुर्कों को बड़ बड़ पद मिलन लगे थे जिनके कारण तुर्कों में भी एक जागृति की प्रवाह बारा दह बली थी। जिनके फलस्वरूप महमूद गजनवी का उदयान तथा भारत में तुर्कों के राज्य की स्थापना हुई।

भाग २—इस्लाम का भारत में आना

महमूद गजनवी के इतिहास में इस्लाम को महमूद खान नहीं दिया गया है। अजमेर इतिहासकारों का दृष्टिकोण इस विषय पर सदा ही गमन रहा है। इन पार्श्वों का कारण कुछ हद तक उनकी इस्लाम के सम्बन्ध में अज्ञानता थी परन्तु अधिक मात्रा में उनका राजनैतिक दृष्टिकोण था। भारत पर वे राज्य करना चाहते थे और अपने लक्ष्य को पूर्ण के लिए उन्हें तथा मुगलशासकों का परस्पर ईर्ष्या-विरुद्ध समझत था। इसमें संशय नहीं कि उन्हें अपने लक्ष्य की पूर्ण के लिए तात्कालिक प्रयास में उन्हें उपाय मिल गए। परन्तु वास्तव में भारत पर तुर्कों के आक्रमण राजनैतिक हानि के कारण नहीं तभी शरयाकार भी हुए। इस्लाम धर्म का प्रचार भी तुर्कों परन्तु जिनका अपनाचार वगैरह था वही जातों में हुआ था। तात्कालिक समयमान भी क्या करना पड़ा तभी या हिन्दुओं के मुसलमान मानने की वदना भी उनका गौरव समझकर उनके लक्ष्य बड़ा बड़ा कर दिया है। इतिहास में एबी बरनाजा पर जिनका जोर दिया गया है कि यदि वे मृत्यु हमी तो उनकी भारत पर मुसलमानों के गौरव भी बच राज्य या तो एक से हिन्दू नहीं होता कतिन या परन्तु वास्तविकता कुछ और हान के कारण वे बड़े मरया में पाये जाते हैं।

इस्लाम धर्म भी अन्य धर्मों का तरह सामान्य धर्म है। कुतब ने स्पष्ट किया है कि धर्म में किसी प्रकार का जबरन नहीं होना चाहिए। (Let there be no compulsion in religion—Surah II 257) तत्पश्चात् के वाद पर भी धर्म प्रचार इस्लाम के विषय है। परन्तु राज्य विस्तार और धर्म विस्तार साथ साथ हान के कारण हमें पट्टा बाध प्रयोग डालना धर्म विस्तार हान दिना देना है। भारतवर्ष के इतिहास में मिन पर अरब आक्रमण तथा अधिकांश इस्लाम प्रचार का धारण माना जाता है। परन्तु इन धारणों में पहचाना उल्लेख भ्रम में इस्लाम धर्म का प्रचार था। मुसलमान व्यापारी भारत के लिये म आते रहते हैं और उनसे प्रभाव ग बड़ा कुछ लोग इस्लाम धर्म का जाना कर रहे हैं। वहाँ का राजा बरान देवमल ने भी इस्लाम धर्म का स्वीकार कर लिया था। ऐसा कहा जाता है कि उनसे मरका का हब भी किया था।

मिम्ह पर धर्म-नियमन

आक्रमण के कारण

पूजा-विष्णु के आक्रमण के बाद में ही भारतवर्ष का विविधता से काबिज्य गमन स्पष्टि हा गया था। धीरे-धीरे व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिम के गारे सम्बन्ध का भाग बनता ही गया था। इस्लाम धर्म के कारण मिम्ह पर धर्म-नियमन में प्रभाव

कमिष् बाई और वहाँ राज्य संघटन का जोर हुआ। उन्मैय्यब लक्षोकार्थों के काल में राज्य-विस्तार के साथ राजनी ठाठ तथा आर्थिक अवस्था में काफी उन्नति हुई। साग्त के साथ बरब का बाधिम्य सम्बन्ध अब और भी घनिष्ठ हो गया। बरब सागर में अब बरबी जहाजी बड़ों का घाटायात बढ़ गया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि इस व्यापारी आवाहन प्रधान में नईबड़ी होने के कारण लक्षोका ने सिब पर आक्रमण किया। परन्तु यह दोष एक बहाना माना था। इस्लाम के जन्म के साथ राज्य-विस्तार का कारण अधिक समय तक इस धर्म के अनुयायियों का आर्थिक जोर रहा है। सिब पर जो आक्रमण का प्रधान कारण यही रहा है। सिब की राजनैतिक परिस्थिति का हमें पूर्व ज्ञान था। सिब में ब्राह्मण जब ने राज्यवर्ध को हटा कर अपना राज्य स्थापित किया था। जब का पीन बाहिर इन समय सिब पर राज्य कर रहा था। सिब के निवासी बाहिर के विरुद्ध ने और उसके विनाश के लिये उत्सुक थे। इस परिस्थिति से बरब वाले लाभ उठाना चाहते थे। वे आक्रमण का बहाना करने लगे। एसी अवस्था में सिब के समुद्र-तट पर कुछ बरबी बहाल लट लिये गए। ईरान का हाकिम (राज्यपाल) इस समय बल हवाज था। उसने बाहिर से इन समुद्र-बहाल को मजबूत को कहा। परन्तु वे बाहिर की राज्य-सीमा से बाहर व भीर बाहिर का उन पर कोई अधिकार या हवाज न था। बाहिर ने अपनी असमर्थता को सूचना हवाज को दे दी। हवाज इससे नतुष्ट न हुआ बल्कि उसने सिब पर आक्रमण की आज्ञा दे दी।

सिब पर आक्रमण

हवाज ने अपन जनापति जबरउल्का को एक सेना के साथ मजब परन्तु वह असफल रहा। दूसरी बार हवाज ने बुरैक ने अजीन एक और सेना भजी। बुरैक भी बाहिर से हार गया और लड़ाई में मारा गया।

इस प्रकार दो बार हारने पर हवाज ने लीजना से बचन क लिये अपन दामाद इमादउद्दीन मुहम्मद बिन कामिस के नेतृत्व में एक विनाश तथा सुमनठित सेना सन् ७११ ई० में भेजी।

मुहम्मद बिन कामिस की सिब-विजय

मुहम्मद बिन कामिस शीराज से मेकरान (आधुनिक कलात) होता हुआ सन् ७११ ई० में दीबल पहुँचा जो उन दिनों एक बन्दरगाह था परन्तु बाहिर अपनी राजधानी मारोर में ही रहा और दीबल की रक्षा का कोई प्रयत्न नहीं किया। कमलस्वरूप कामिस ने बड़ी आसानी से दीबल पर अपना अधिकार जमा लिया। दीबल के निवासियों को बरबी नैतिक बर्बरता तथा अत्याचार का प्रथम आभास भी मिला परन्तु बाहिर या मारत निवासी हमने कोई चेतावनी नहीं ग्रहण कर सके। दीबल में कामिस जबर दारमन प्रथम सेनाक का आग बढ़ा।

दीबल और मेह्राम की बीछटा हुआ नागिन कहलाकार की तरफ बढ़ा जहाँ बाहिर युद्ध के लिये प्रस्तुत था। युद्ध में बाहिर हार गया तथा मारा गया। राबर का विनाश कामिस के हाथ आ गया। कामिस का जय कैरियों के साथ बाहिर की दो पुत्रियों मृत्यु देवी और परमात्मा देवी भी हाथ आ गई जिन्हें कामिस ने भेंट स्वरूप गुमीका के पास भेज दिया। बहानावाद ने कामिस सिब की राजधानी मारोर की तरफ बढ़ा और उसे भी जगने लात लिया। इस प्रकार समुद्र सिब पर आक्रमण का अन्तिम चरण पूरा हुआ।

मुस्ताग विजय

सिन्धु विजय के पश्चात् कासिम मुस्ताग पहुँचा। यहाँ भी जनता में काफी लोभ अपनी अकस्मा से अर्धसुप्त से और कासिम का साथ देना चाहते थे। जिस समय कासिम शहर पर घेरा डाला था, किसी ने उसे शहर में पानी जाने के मुक्त मार्ग का भेद बता दिया। कासिम ने पानी के रास्ते का रोक दिया जिससे मुस्ताग के सैनिकों को विजय होकर आत्म-मर्त्य करना पड़ा। मुस्ताग की जनता ने कासिम का स्वागत किया। नगर पर अरब शासन स्थापित हो गया। इस प्रकार भारत के वा प्रदेश अर्थात् सिन्ध और मुस्ताग अरब साम्राज्य के अंग बन गये।

मुहम्मद बिन कासिम की सफलता के कारण कासिम के सफल होने में सिन्ध की सक्तिहीनता ने सबसे अधिक सहायता की। सिन्ध के सक्तिहीन होने का मुख्य कारण वहाँ का आदम्बरपूर्ण जीवन था। जनसंख्या मिश्रित तथा सामिक मठभेद से परिपूर्ण थी। जाति व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। ठेक मोहू आदि-आदि उनके दैनिक जीवन के अंग बन चुके थे। आह्वान के लिए किर्मी या सक्ति का साथ देने की सर्वत्र तैयारी रहते थे। छोटी बात के लिये दलित होने का कारण ठेके वहाँ से महानुमति नहीं रखते थे। बाहिर की वहाँ के लोग नहीं चाहते थे और उनका पतन चाहते थे। बाहिर स्व मूलता के कारण कासिम का सामना दोबल पर नजर डालना चाहते थे उसकी प्रतीक्षा करता रहा और कासिम को अपने सक्ति सन्ध का उसने बहुत समय दिया।

एक तरह बाहिर की मूलता तथा सिन्ध का कमजोरपन भी दूसरी तरह मुहम्मद बिन कासिम में अपार साम्यता कार्यरुसायता स्वामिमक्ति छोटी इज्जत की लुब्धी और इस्लाम का नया जीव था। कासिम का नाब अरब के चुने हुए छोटी से जिनके सामने सिन्ध के अनभिज्ञ सिपाही बच्चों के समान थे। कासिम के हार विजय का नाब सिन्ध निराली थी। उसका साथ होना जाने था। कासिम तथा अरबी सिपाहियों का अपने उद्देश्य की महानता में अटूट विश्वास था।

मार्च ७१५ ई. में गलीफा कम्पार का वैदाग्य हो गया और उनका भाई मुने मान लम्बीका हुआ। मुनेमान हज्ज का लुब्धा था उनने हज्ज तथा उच्छ मर्त्यियों का पर म हटा कर गाम करना आरम्भ कर दिया। कासिम भी हज्ज का भतीजा था। हमाद था जिन वह भी काम बुनाया गया और बरत करवा दिया गया। कासिम को मृत्यु के विषय पर आ कहानियाँ प्रचलित हैं वे विश्वासपात्र नहीं। कासिम की मृत्यु से अरबी सामन सिन्ध में सिमित पड़ गया। उच्छ बाद कई रोम्य व्यक्ति डिन सिन्ध में नहीं आया।

सिन्ध में अरब शासन—सिन्ध प्रांत पर अधिपति स्थापित करने के पश्चात् यहाँ जंगल गाम का मार्ग भी आवश्यक था। गाम मार्ग में मार्गीयों का सामन बना अरब के लिए नितात जावन्पद हुआ गया था यथाकि पहाग था वे मृत्यु से कम से कम मृत्यु मर्त्य के सक्ति रिवाज और नियम से परिचित नहीं थे और मार्ग मार्गय जनता बिनाम मर्त्य मर्त्य थी जंगल अगहवाग कर अरब का अतिरिक्त हुए गमर में पड़ गया। इमीति अरब ने सामन प्रकथ में मार्गीयों का हाथ लगा। यहाँ हम अरब सामन का गतिग गाम प्राप्त करेय।

भूमि व्यवस्था—अरबों को सिन्ध विजय के पक्षस्वस्व पर्याप्त भूमि मिल गई थी। इससे 'इफ्ता' भूमि पुरस्कार स्वरूप वितरित कर दी गई जिनके अधिकारियों से किसी प्रकार का कर भी न लिया जाता था। अधिकार भूमि पर खेती की जाती थी। यह कार्य कबल भाग्यीय ही करता थे। उन्हें 'स्वावहीन' कृषक और मजदूर बना दिया गया। भूमि का कुछ भाग बेतल रूप में सैनिकों को भी दे दिया गया था। वारिमिक पुण्या का भी बड़ा भूमि हो गई थी। अरब सैनिकों ने सिन्ध में आकर व्याह कर लिये थे इस प्रकार सिन्ध भूमि पर उनकी वस्तियाँ ('बुनूद' और 'अम्मार') बस गई जो कालान्तर में विभाजित नगर बन गई। यह विद्या और मस्जिद का केन्द्र बनती गई

कर व्यवस्था—भूमिकर एवं 'जमिया' को एक कर व जितने राज्य को अच्छा आय थी। बड़े और छोटे उपज का दो भाग उन क्षेत्रों से जिनकी सिंचाई सार्वजनिक महलों से होती थी और दो भाग उन क्षेत्रों से जहाँ सिंचाई नहीं होती थी लिया जाता था। छद्मों अमुक्त तथा अन्य फसों पर उपज का दो भाग कर रूप में लिया जाता था। इन प्रकार पचास मछनों मोटी आदि पर भी पैदावार का दो भाग कर दर में समूह किया जाता था।

सैनिक संपन्न—अरबों के पास जितनी सेना थी वह तो थी ही हिन्दुओं की कुछ मना की इन्होंने अपने न लिया लिया। शान्तिमय जीवन हो जाने के पश्चात् अरब विनाशप्रिय हो गए और उन्होंने भाई पर सैनिक रखना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अरब मना की विप्लवना समाप्त हो गई और उनका वह संपन्न भी विविध पड़ गया।

न्याय व्यवस्था—अरबों ने काजी के ऊपर न्याय-भार छाड़ा था जो कुरान की अपना आधार मानते थे। न्याय में पक्षपात का अंश अधिक था। भारतीयों के राजनीतिक एवं सामाजिक अपराधों के लिए भी कुरान का महाराज लिया जाता था। पचासों का अतिरिक्त विद्यमान था।

धार्मिक नीति—अरबों ने भारतीयों के साथ प्रारम्भ में जे अशोभनीय व्यवहार किया था उसने हम परिचित हो चुके हैं। सिन्ध में अधिकार स्थापित हो जाने के बाद अरब वालों ने कुछ सहिष्णुता से काम लिया। प्रारम्भ में तो हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार कराने के लिए अरब वालों ने एड़ी चोटी का भार लगाया था और इन्हीं लिए कल्लेबाजों की कड़ाया किन्तु यह सब एक समय था। अने वारिमिक हिन्दुओं को छुट दे दी कि यदि वे 'जमिया' कर दे तो बरीर मुमलमान बन के राज्य में रह सकेंगे। जमिया कर देने वाला जा कि 'जिम्मी' कहलाता था इस्लामी राज्य में सुरक्षा रह सकता था। वारिमिक का माग्य में जमिया (सलीफा में स्वीकृति प्राप्त कर) ममता इस्लामी कानून में एक नए अध्याय का श्रीगणेश है।

इस्लाम का सिन्ध के आगे न करने के कारण

वारिमिक के सिन्ध विजय के भारत के एक कोन में इस्लामी राज्य बबरस कायम हो गया परन्तु हम धर्म तथा राज्य के विस्तार के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल न हो सकी और उनका राज्य सिन्ध में ही सीमित रह गया। सिन्ध पर विजय पाने में सलीफा और हजरा ने ही हाथ था परन्तु वारिमिक का बोझ तथा योग्यता को देने भी कम न थी। वारिमिक की मृत्यु के बाद सिन्ध में योग्य व्यक्ति नहीं आया तथा मन् ७५ ई में अमरुत सलीफाओं का शासन-भार भी समाप्त हो गया और उष्मानी सलीफा का शासन आया जो अने राजधानी बगदाद की उम्मतों में जमे रह और सिन्ध में सिमा प्रसार में सहपक्ष न मंत्र मरे।

सिन्ध के चारों तरफ भारत में राजपूतों के शक्तिशाली राज्य थे जिन्हें जीतने के लिये जिस बल की आवश्यकता थी वह सिन्ध में बसे अरब निवासियों में न था। सिन्ध में बसने के उपरान्त अरब साग भी शान्तिप्रिय हो गये थे। उनके पास जब बाहर में महामता मिलने की कोई सम्भावना न थी तब वे लोग सिन्ध में ही सौमित्र रह गये। अरब और भारत सम्पर्क का सांस्कृतिक मूलत्व—अरबों का शासन भारत पर जबकि दिनों तक नहीं टिका रह सका। इसलिए उनका कोई राजनीतिक प्रभाव भारत पर नहीं पड़ा किन्तु अरबों की सिन्ध विजय का मुसलमान संस्कृति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इस यह बल चुके हैं कि अरब निवासी प्रारम्भ में बिल्कुल ही पिछड़े थे मुहम्मद साहब के उद्यम के पश्चात् इनका कुछ विकास हुआ था फिर भी उन्हें संस्कृति के प्रमुख जगों का अभिन्न दर्शन किया तो वे आश्चर्यचकित रह गये। एवं संस्कृति के प्रमुख जगों का अभिन्न दर्शन किया तो वे आश्चर्य में डाल दिये। ज्योतिष मन्त्रि चिकित्सा शिल्पकला विषकला नृत्योत्कला आदि समस्त कठिनीय कर्मों में उन्हें अपना एकदरबार भी मिला। भारतीय दर्शन की महानता उन्हें दिया। ज्योतिष मन्त्रि चिकित्सा शिल्पकला विषकला नृत्योत्कला आदि समस्त कर्मों में भारतीयों ने जो उत्पत्ति कर ली थी वह अरबों को आश्चर्य में डालने पर्याप्त थी। तबही न मिला है कि एक बार पत्नीका हाई रसीद ने अपने असाध्य रोप की चिकित्सा के लिए भारत से एक रीढ़ चुकवाया था जितने लसीका को रोपमुक्त कर दिया।

अरबों ने बाह्यो से शासन संचालन सम्बन्धी जगत् काटें सींगी थी। बाह्य राज-कार्य में निपुण भी थे। बौद्ध भिक्षुओं या बाह्य पण्डितों के अरबों ने बौद्ध अरब विद्वानों ने जगत् साग-विज्ञान की बातें सीख ली।

भारतीय ज्योतिष का भी प्रभाव अरब ज्योतिष पर स्पष्टतया दिखलाई पड़ता है। बहामुत्त के ब्रह्म मित्राल और 'अरब ज्योतिष' नामक ग्रन्थ भारत से बमबाद पहुँचे। जहाँ इन ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। इन्हीं ग्रन्थों ने अरबों में पहले पहल ज्योतिष विज्ञान के प्रारम्भिक मित्रालों का ज्ञान प्राप्त किया था। बमबाद में अनेक भारतीय विद्वान बुलाये गए जहाँ बौद्ध ज्योतिष आदि विषयक भारतीय ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद कराया गया।

प्रश्न

1 Give a brief account of the Arab conquest of Sind Do you think it was a mere episode in the history of India ;

अरब निवासियों के सिन्ध विजय का वर्णन नक्षत्र में लिखिय। क्या आपके विचार में यह भारत के इतिहास की केवल एक घटना मात्र थी ? (१९४२ १९४४)

2 Sketch the career and achievements of Mohammad-bin Qasbi and estimate the effects of his conquest

२ मुहम्मद बिन कासिब की जीवनी तथा कृतिया का संक्षेप में वर्णन दत्त हुए उनके विजय के प्रभाव लिखिय। (१९४८)

3 Give a brief account of the Arab occupation of Sind and account for the failure of the Arabs to extend their conquest beyond Sind

३ अरब निवासियों के सिन्ध पर आधिपत्य स्थापित करने का संक्षेप में वर्णन कीजिय तथा सिन्ध न साग उनके विस्तार न होने का कारण बताइए। (१९४३)

भारत पर तुर्कों का आक्रमण

मालिबी बंध का उत्कर्ष

इसकी शताब्दी के आरम्भ में बलख प्रदेश के एक सरदार जो कि समन का बख्त था और इस्लाम धर्म को अपना चुका था अपने राज्य का विस्तार पारस तथा अफगानिस्तान तक कर दिया परन्तु इसका राज्य अधिक समय तक कायम न रह सका राज्यवाही इनके तुर्की गुलामों के हाथ बीरे-बीरे जाने लगी। समन बख के शासन काल में तुर्की गुलाम ऊँची ऊँची पदवियों पर थे और समन के राज्य बख के पठान के साथ साथ के अपनी-अपनी को बढ़ाने लगे और अपने-अपने देशों में अपने की स्वतन्त्र घोषित करने लगे। ऐसे ही समय में इनके एक गुलाम अलपतगीन ने अपना राज्य मजनी में कायम किया।

अलपतगीन के एक गुलाम मुबुस्तगीन ने भी उसका साम्राज्य भी वा मजनी के राज्य पर १७७ ई में अधिकार कर दिया और अधिकार की स्वीकृति बुलारा के गहनूह द्वितीय से करवा ली परन्तु उसने अपने मतलब का हक करने के पश्चात् पर बुलारा के छाह की परवाह न की।

मुबुस्तगीन—मुबुस्तगीन का राज्य मजनी के आसपास स्थापित हुआ। आरम्भ के बारह वर्षों तक वह अपने राज्य की सीमा के विस्तार में लगा रहा और अपने राज्य को सीमाओं की मौजबंद नदी से अफगानिस्तान तथा ईरान के कुछ हिस्सों तक फैला दिया।

उसके राज्यवाही पर बैठने के दो वर्ष पश्चात् पंजाब के राजा अयपाल ने मजनी पर चढ़ाई की की परन्तु मुबुस्तगीन के साथ एक समझौता होने के बाद वह पंजाब लौट आया था। अयपाल से अस्सा लेने के लिये १८१ ई में पंजाब पर आक्रमण किया और बहुत से गुलाम तथा बख लेकर मजनी वापस चला गया। दो वर्ष पश्चात् उसने अयपाल पर फिर आक्रमण किया और उससे काबुल तथा अन्य पवित्रवी प्राण्य गोन लिये। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि इस समय तक तुर्कियों को हिन्दुस्तान 'धर्म प्रचार करने का उत्साह न था बल्कि राज्य विस्तार करने के उद्देश्य से ही पंजाब के राज्य (हिन्दुवाही) पर आक्रमण करते रहे।

सन् १९४ ई में बुलारा के गहनूह द्वितीय को अलीमुज्जर के विद्रोह की वजह से तहायता देने के लिये मुबुस्तगीन की मुराजान का प्राण मिल गया। मुराजान के प्राण का धामन प्रबन्ध उसने अपने बड़े बेटे महमूद को दिया। इन प्रकार मजनी के राजा तथा विस्तृत राज्य की स्थापना कर १९७ ई में मुबुस्तगीन का वैवाह्य हो गया।

ऐसा कहा जाता है कि मुबुस्तगीन मरण समय अपने छोटे बेटे इस्माइल की अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गया था। उनकी इस इच्छानुसार मजनी के मालिबी ने इस्माइल की मजनी की नदी पर बैठने की बुलावा परन्तु महमूद ने बल्य से जी

कि कुरासान की राजधानी भी अपने भाई को रोकने के लिये एक सेना लेकर गजनी की ओर बढ़ा और गजनी के पास दोनों भाइयों की मुठभड़ हुई। इस लड़ाई में इस्माइल हार गया तथा कैद में आस दिया गया।

महमूद का राज्यारोहण—महमूद सत्ताश्चर्च वर्ष की आयु में सन् ९९८ ई० में गजनी की गद्दी पर बैठा। इसका जन्म नवम्बर १ सन् ९६८ ई० में हुआ था। गद्दी पर बैठते समय उसका राज्य अफगानिस्तान तथा कुरासान तक फैला हुआ था। राज्यभिन्नेक के दूसरे वर्ष सीस्तान पर उसने अपना अधिकार जमा दिया।

एक शक्तिशाली शासक होने पर भी महमूद अपने पद की कमजोरियाँ को नमसता था क्योंकि उसने बंधन का अधिकार जब तक केवल तस्मार के ओर था ही था। मुब्तलीन शक्तिशाली हुन पर भी सिक्कों में अपने को एक स्वतन्त्र शासक घोषित करने का साहस न कर सका। महमूद अपनी अनियमित राज्य-सत्ता की कानूनी नींव पर कायम करना चाहता था। अतः उसने सीस्तान जीतने पर लम्बोका कादिर बिस्माह के पास अपने पद की स्वीकृति के लिये दूत भेजे। लम्बोका की शक्ति उस समय घटती जा रही थी इसीलिये उसके लिये महमूद की इस प्रार्थना को अस्वीकार करना सम्भव न था। उसे महमूद की प्रार्थना अपने लिये एक उज्रवत की बात लगी। उसने महमूद के पास खिजात भेजा और महमूद को यामिन-उद-बीछा तथा यामीन-उम-बिस्माह की उपाधि दी थी। अपनी प्रतिष्ठा को इस्लाम के कट्टर अनुयायियों के मत से इस प्रकार कायम कर महमूद ने शपथ उठाई कि वह प्रत्येक वर्ष भारत पर आक्रमण करेगा तथा वहाँ से मूर्ति-पूजा का विनाश करेगा यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि उसने अपनी शपथ को कार्य-रूप में परिणत करने के प्रयत्न में कोई प्रयत्न नहीं किया।

राज्य विस्तार की आवश्यकताएँ—महमूद एक उन्मादी व्यक्ति था। वह अपने पिता के राज्य को सीमाओं में अपने को सीमित न रखकर अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था। इस राज्यविस्तार की कठिनाइयों को भी वह सही भाँति जानता था। राज्यविस्तार के लिये उसे सैनिक शक्ति तथा धन की आवश्यकता थी। धन प्राप्त के लिये उसने भारत की ओर दृष्टिपात किया। भारत में उस दो उद्देश्यों को पूर्ण होनी हुई दिखाई दी अर्थात् धन की प्राप्ति तथा धर्म का प्रचार। तब अभी नये मुसलमानों की ओर उन्हें धर्म प्रचारना जोस सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता था। इस शक्ति को संकटित कर महमूद को भारत पर आक्रमण करने में आध्यात्मिक सफलता मिली थी। इसलिये यद्यपि महमूद के भारत के आक्रमण बाह्य रूप से इस्लाम प्रचार की आवश्यकताओं से प्रेरित प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव में वे उसकी धन-लालसा की प्रति जिया मात्र थे।

भारत पर महमूद के आक्रमण—सन् १००१ ई० में महमूद एक सुसज्जित सेना लेकर पैसावर की ओर बढ़ा जहाँ पर हिन्दुमाही राजा जयपाल प्रथम अपनी सेना लेकर महमूद से भुम्बेड़ के लिये तैयार था। २७ नवम्बर सन् १००१ ई० में दोनों सेनाओं में मुठभड़ हुई। दोहर के समय तक जयपाल की सेना में भयङ्कर क्षय गई और जयपाल अपने १५ कुटुम्बों के साथ बर्बाद हो गया। इस विजय से महमूद के हाथ काफी धन लगा। यही है महमूद के हिन्दु की तरफ बढ़ा और उस राष्ट्र की लूट। जयपाल काफ़ी धन और १५० हाथों लेकर अपनी जान बचा सका। इस प्रकार धन तथा हाथियों की लेकर महमूद गजनी लौट गया।

जयपाल अपनी इन हाथों के लज्जित होकर अपना राजराज करने बड़े आत्मश्लाघा को लेकर स्वयं अग्नि कुंड में अग्न्य हो गया। इन विजयों में वह पान्त दोन पाप बाण

है कि हिन्दू धर्म में उस समय लुभाकृत की भावना इतनी अधिक आ गई थी कि हिन्दुभाही प्रजा जयपाल की स्वीकार करने में हिचकिचाते नहीं थी क्योंकि जयपाल का शरीर उनके विचार से एक श्रेष्ठ से छू जाने से कलुषित हो गया था। जिस धर्म में इस प्रकार की भावनाएँ आ जाती हैं उसका पठन होना भी अनिवार्य है।

सन् १४ में महमूद पुनः भारत की ओर बढ़ा। इस बार उसका ध्येय भटिय या उच्छ के शासक बाबर को सत्ता देने का था। बाबर मुकुत्तमीन से एक मित्रता की संधि कर चुका था। महमूद को जयपाल पर आक्रमण करते समय बाबर ने सहायता की आज्ञा भी परन्तु उसे कोई सहायता न मिली थी। बाबर ने महमूद का सामना किया परन्तु द्वार गया और जंगल में आश्रय ले लिया। महमूद उच्छ को अपने राज्य में मिला देने का कुछ प्रयत्न कर जब दम लेकर मजनी रोह रहा था तो मुस्तान के शासक अब्दुल काल दाऊद ने उस पर आक्रमण कर दिया। महमूद की काफी हानि हुई, मगर दूसरे वर्ष महमूद ने दाऊद के ऊपर आक्रमण किया। महमूद हिन्द के रास्ते आगे बढ़ा। आनन्दपाल ने महमूद को रास्ते में रोकने का प्रयत्न किया परन्तु महमूद की सेना का सामना करने में असमर्थ रहा और काश्मीर भाग गया। महमूद के आक्रमण से डर कर दाऊद ने मुस्तान के किस्ते में शरण ली। महमूद ने किस्ते पर बरा दाम दिया। इसी समय दक्कन पर मुबारक के अब्दुल हुसम मसर के आक्रमण का समाचार महमूद के पास पहुँचा। दाऊद ने भी बीस हजार विरहम बापिक बर देन का प्रस्ताव महमूद के पास भेजा। महमूद ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और उच्छ के जयपाल व पले मुजपाल को अब नीचाघाह कहलाता था गवर्नर नियुक्त कर दखान के तन्त्र चला दिया। यह बात उल्लेखनीय है कि महमूद की सेना में एक टुकड़ी भारतीय सैनिकों की भी तथा उनकी सेना में एक हाथियों की भी टुकड़ी थी। सन् १७ में महमूद का फिर भारत की ओर आना पड़ा। क्योंकि उस समाचार मिला कि नीचाघाह ने विद्रोह कर अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया है। नीचाघाह लड़ाई में हार गया उसकी सम्पत्ति उसने खो ली गई। दाऊद भी पकड़ा गया क्योंकि उसने भी नीचाघाह से मिलकर पक्षधर किया था। इन दोनों को ज़ाँबत कारावास का पंड दिया गया। मुस्तान के राज्य की महमूद ने अब अपने राज्य में मिला लिया।

महमूद अब आनन्दपाल का प्रतिघोष करने का फल देना चाहता था। मगर उसने सन् १०८ ई० में वेसावर के रास्ते में आनन्दपाल पर आक्रमण किया। आनन्दपाल महमूद के उद्देश्य का समझ गया था इसीलिए उसने भी बाधों पैदा करने की कोशिश की। आसपास के राजाओं को उसने सहायता के लिये निर्बंधन भी दिया था। किन्तु राजाओं ने उसका साथ दिया इसका निर्णय करना कठिन है। परन्तु इतना अवश्य है कि आनन्दपाल की सत्ता मजनीसरो की एक सहायक सत्ता थी। मोहम्मद के मरदान में खोला सेनाओं का सामना हुआ और जीत महमूद की हो गई। आनन्दपाल जलम से भाग लड़ा हुआ। महमूद अब मयरकोट में काँपड़ा की ओर बढ़ा। तान रिन के घेरे के उपरान्त उसने किस्ते की ओर लिया। इस किस्ते में उसे बहुत सा माला-बाँगी तथा बीमार इत्यादि मिले जिसे उसने मजनी छोड़ कर वहीं के निवासियों को दिखाया। बीमार महमूद को फिर भारत आकर अपने विजय बन्ती पश्तियों का दबावा पड़ा।

सन् १०९३ ई० में उसने लम्हना पर आक्रमण किया जहाँ आनन्दपाल का बेटा जयपाल द्वितीय अब राज्य करता था। जयपाल के बेटे निडर भीम ने महमूद का सामना किया परन्तु हार गया। महमूद शरण को मजनी का गवर्नर नियुक्त कर बहुत सा धन और भारतीय सैनिकों को लेकर लौट गया।

सन् ११४ ई० में महमूद धानवहार (जो कि अम्बाला और करनाल के बीच में है) पर आक्रमण करने के लिये गजनी से एक सुसज्जित सेना लेकर चला। कहा गया है कि महमूद ने इस उद्देश्य का पता लगते ही जयपाल ने अपना बूत महमूद के पास भेजा और प्रार्थना की कि महमूद इस पवित्र स्थान पर आक्रमण कर उसे अपवित्र न करे। परन्तु महमूद ने इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। यह भी कहा जाता है कि जयपाल ने दिल्ली नरेश विजयपाल की महमूद के आक्रमण के संदेश को भेज दिया। परन्तु विजयपाल के प्रस्तुत होने के पूर्व ही महमूद धानवहार पहुँच गया और उसने बिना किसी रोक टोक के उस स्थान को लूटा वहाँ की मूर्तियों को लूटा तुड़काया तथा मारा बल गजनी से गया।

सन् ११५ ई० में महमूद ने काश्मीर पर आक्रमण किया परन्तु असफल रहा और काश्मीर के घेरे को सफलतापूर्वक समाप्त न कर सका। उसे पीछे हटना पड़ा। उसकी सेना का मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और वह एक विनष्ट सेना लेकर गजनी लौटा। महमूद की भी पृष्ठो धार हारना पड़ा।

सन् ११८ ई० में महमूद फिर गजनी से हिन्दुस्तान की तरफ चला। महमूद की सेना में एक लाख बृहस्पति तथा बीस हजार ऐसे सैनिक थे जो तुर्किस्तान ट्रैन्स थीनियमन तथा कुरासान के आसपास से हिन्दुस्तान में धन धान के लोभ से महमूद के साथ हो गये थे। महमूद पंजाब होता हुआ जमुना पार करता हुआ मथुरा पहुँचा। मथुरा बेहली के राजा विजयपाल के अधीन था परन्तु विजयपाल मथुरा की रक्षा के लिये न आ सका और महमूद आसानी से मथुरा में प्रवेश कर गया। सहर तथा मन्दिरो को उतार गूँथ लूटा। उन्को न लिखा है कि महमूद मथुरा को सुम्हरता की शक्ति से जीत रहा था। मथुरा का लूटा हुआ धन तथा मन्दिर के टूटे हुए टुकड़ों को उतार गजनी भिजवा दिया। मथुरा से वह बुन्दावन गया और उसे भी लूटा। उसके उपरान्त उसने कन्नौज पर आक्रमण किया जो कि राठीरों की राजधानी थी परन्तु राठीर राजा ने महमूद को बहुत सा धन तथा पञ्चासी (८५) हाथी देकर शहर को सुरक्षित में बचा लिया। कन्नौज से महमूद मथुरा (जो कि जौनपुर के पास है और बाद में जफराबाद के नाम से प्रचलित हुआ) की ओर बढ़ा। मथुरा के किले पर महमूद को पंद्रह दिन तक घेरा शक्यता पड़ा। उसके पश्चात् राजपूतों ने बुटने टोक दिये। यहाँ से महमूद गजनी वापस लौट गया।

गजनी पहुँच कर महमूद ने हिन्दुस्तान में लूटे हुए धन तथा पत्रों से जामा मन्दिर बनवाई तथा इस मन्दिर के साथ एक विद्यालय भी स्थापित किया। महमूद की सेना वही वहाँ के अधीरों ने भी मन्दिर विद्यालय तथा सरायें इत्यादि बनवाई और गजनी बहुत धीमे ही एक सुसज्जित नगर हो गया।

सन् १०२२ ई० में वह काश्मीर पर आक्रमण करने के लिये गजनी से चला। काश्मीर उस समय अन्धेस राजा गन्धा के अधीन था। महमूद काश्मीर होता हुआ काश्मीर पहुँचा। गन्धा ने महमूद से तमिष कर ली और महमूद बहुत सा धन लेकर गजनी लौट आया। इस समय महमूद का पंजाब में विद्रोह का, कर का जिन कारण वह काश्मीर में अधिक समय तक न ठहर सका।

महमूद का सोमनाथ पर आक्रमण—१७ आदुबर सन् १०२४ ई० में महमूद एक बहुत बड़ा सेना लेकर गजनी से सोमनाथ के मन्दिर की भूमि की इच्छा से चला। इस बार लूट में हिन्दा पाने के इरादे से बहुत न लोभ साथ हो लिये थे। सोमनाथ

मुबारक के अधिन में हिन्दुओं का सबसे बड़ा मन्दिर था। वहाँ के बाइबलियों का कथन था कि सोमनाथ महादेव के श्रेष्ठ के कारण ही महमूद अन्य मन्दिरों को तोड़ सका था। महमूद भी इस कथन की सत्यता की परीक्षा लेना चाहता था।

२० नवम्बर को महमूद मुस्तान पहुँचा। मुस्तान में उसने सेना की रसद भेजवाई ता मलोमति प्रबन्ध किया। प्रत्येक सैनिक को कई दिन के लिये पानी तथा खाना अपने साथ रखने के लिये हुक्म दिया। अपने साथ उसने तीस हजार ऊँटों पर रसद तथा पानी लदवाया। इस प्रकार पूर्ण तैयारी से महमूद रैगिस्तान पार करता हुआ 'अहिंसबाड़ा' (जामुनिक पाटन) पहुँचा। अहिंसबाड़ा के राजा मीमरेब महमूद के आने का समाचार पाते ही बहुत सी प्रजा को साथ लेकर भाग खड़ा हुआ। इस सहर को छूट कर महमूद ने रसद की कमी को पूरा किया और सोमनाथ सहर पहुँचा। सोमनाथ के निवासी अपने को सोमनाथ महादेव की रक्षा में समर्पित थे। अतः यह लोग सहर की चहार दीवारी पर चढ़ कर सेना का विनाश करने के लिये लड़े थे। परन्तु उनकी आशा के विपरीत हुआ फल दिखाई दिया। महमूद को सेना आसानी से सहर के भीतर घुस आयी और कस्बेजाम प्रारम्भ कर दिया। अन्त में मन्दिर में प्रवेश किया। अपनी मदा से उसने सोमनाथ की मूर्ति तोड़ डाली। इस मूर्ति के मोत्तर महमूद को बहुमूल्य रत्न पर्याप्त मात्रा में मिले। मूर्ति के टुकड़ों को महमूद न गजनी भिजवा दिया। वहाँ से मूर्तियों के बड़े टुकड़ों को मक्का और मदीने पहुँचा दिया। सोमनाथ से लौटते समय सिन्ध सामर साम्राज्य के जाटों ने महमूद का काफ़ी क्षति पहुँचाई थी। इसलिये महमूद ने गजनी पहुँच कर इन जाटों को क्षमा देने का निश्चय किया। महमूद ने एक नौ सेना तैयार कर इन पर मुस्तान की ओर से आक्रमण किया और इनको हरा कर बहुतों को कत्ल कर दिया और बहुत से जाटों को बन्दी बनाकर साथ ले गया।

गजनी लौटने पर महमूद को सन्तुष्ट तुर्कों की बढ़ती हुई शक्ति को बचाने का प्रबन्ध करना पड़ा और फिर भारत पर आक्रमण करने का यौका उसको न मिला।

सोमनाथ से लौटने पर खलीफा के पास से उसे नई उपाधि मिली थी और उसने बेटे मसूद को भी कुछ उपाधियाँ और सन्मद मिली थीं। आगे चलकर मसूद को इन उपाधियों तथा सन्मदों से उत्तराधिकार में काफ़ी सहायता मिली थी।

महमूद का देहान्त २१ अप्रैल सन् १०३० ई० में गजनी में हुआ। उसके देहान्त होने पर उसके बेटे मसूद तथा मुहम्मद में उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हो गया। मसूद अधिक शीघ्र था। उसने आसानी से अपने भाई मुहम्मद को हरा कर गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया।

महमूद की महानता

इतिहासकार महमूद को न तो एक सुपुरुष ही बताते हैं और न उसके धारोचित बल की बड़ाई करते हैं, परन्तु निमन्वेह वह एक सुयोग्य सेना-प्रधानक था। उसकी सेना में हिन्दुस्तान फारम अफगानिस्तान और ट्रान्सऑक्सियाना के सैनिक थे। ये सैनिक भिन्न भिन्न जाति के होने पर भी महमूद के नेतृत्व में एक एही जुर्मगठित शीघ्र शक्ति में परिणित हो गये कि उनका विरोध तथा दमन करना उसके समकालीन राजाओं के लिये असम्भव हो गया। इस एका तथा मण्डन का योग महमूद को हो है क्योंकि इस सेना के अधिक सैनिक विभिन्न राज्यों के सैनिक ही थे। इतिहास अब तक महमूद की इन अद्भुत शक्ति के कारण की परीक्षा में असमर्थ रहा है।

भारतीय इतिहासिक दृष्टिकोण से महमूद एक सुदृढ़ मूर्ति तोड़ने वाला हिन्दू धर्म का शत्रु और बर्बर व्यक्ति प्रतीत होता है। परन्तु महमूद के चरित्र का पूर्ण अध्ययन केवल उसके भारतवर्ष के आक्रमण से हो करना सम्भव नहीं है। महमूद का मुख्य उद्देश्य मध्य एशिया में एक महान् तुर्की साम्राज्य (ईरानी बादशहों पर) स्थापित करना था और उसका साधन जीवन इसी प्रयत्न में होता। इस साम्राज्य की स्थापना में उसने अपने किसी भी साधन को कार्यान्वित करने से छोड़ न रखा। भारत उस समय बन से पूरा था और मस्जिदबन के भग्नावशेष ही रहे थे अन्तु उन्हें कूटना और तुड़वाना भी उसके लिये स्वाभाविक ही था। परन्तु इन्हें केवल धर्म प्रचार की भावना से प्रेरित कहना असम्भव होगा क्योंकि वहाँ उसने भारतवर्ष में मस्जिदों का मूटा और हिन्दुओं की कत्ल कराया उसने द्वांस आन्ध्रप्रदेश के मुसलमानों की भी न छोड़ा। राज्य विस्तार की सङ्घर्षों को दूर करने के साधन में उसने एक ही-सा मार्ग अपनाया। उस एक कट्टर मुसलमान और धर्मप्रचारक कहना अव्यक्ति होती। एक कट्टर मुसलमान और धर्म प्रचारक अपने विविध हिन्दू राजाओं का सिर्फ अपनी अधीनता स्वीकार करने को नहीं कहता बल्कि वह उनको मुसलमान बनाने की भी कोशिश करता। पर महमूद को मुसलमानों की जितनी परवाह न थी उससे ज्यादा उनकी अपना राजनीति का राज्य बढाने की चाह थी, और इसके लिये वह हिन्दू या मुसलमान किसी भी जात्या की परवाह न करता था।

महमूद का लक्ष्य में दक्षिण की ओर बढ़ कर का पारसी था। मल्लवेक्षी उरबी अम्सारी कन्नौली और फिरबीली वह सब उसके शरबार की छोटी सङ्घाटे थे। उसने राजनीति में एक सुन्दर मस्जिद बनाई जिसका नाम था मस्जिद था। एक विद्यालय की भी स्थापना की। उसने राजनीति का सर्व प्रकार ही सुयोग्य किया तथा इसे समुद्रिणी बनाया। राजनीति महमूद के राज्यकाल में एशिया का एक विस्तृत नगर बन गया जिसकी छोटी छोटी देश-विदेश में होन लगी।

राजनीति और मोरासान के छोटे से प्रदेश का विस्तार कर महमूद ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसके साम्राज्य में ईराक तथा कैस्पियन सागर से पञ्जाब तक के प्रदेश सम्मिलित थे। इनने बड़े साम्राज्य की ता उसने स्थापना कर दी परन्तु उसमें साम्राज्य गणराज्य की विशेषता न थी। इसका भी साधन व्यवस्था में उसकी दन लक्ष्य है। अपने साम्राज्य की भी मजबूत करने में वह असफल रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् जब कि उसकी दन-रेख न रही उसका साम्राज्य बिखरने लगा। एक-एक उसके उगम प्रदेश स्वतन्त्र होन लगे। उसका साम्राज्य एक बेवृत्तिवाद इमाम के समान था जो एक ही मुख्य के अति में टूट कर चूर हो गया। सागर व्यवस्था इनकी दन न थी जो समय के समाचार का सामना करने में असमर्थ होती।

फिर भी दन महमूद का एक पालिगामी, गद्गद् मानने के लिये बाध्य है। अपनी शक्ति तथा योग्यता के लक्ष्य पर है। उसने इन बड़े साम्राज्य की मूर्ति में की और अपने जीवन का लक्ष्य में इसे बाधन भी रखा। महमूद के बाधों का मुख्यतः हम जानते हैं उस की मृत्यु के बाद ही नही कर सके। हमें ऐसे व्यक्ति का उर्मी के समय के आधार पर समझा जाय। इस दृष्टि में महमूद उस समय के मजान में एक उच्च स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है और अपने लक्ष्य का मजान प्रतिनिधि है।

महमूद ने दन प्राप्ति और इस्लामीकरण के लिये जो अनेक आक्रमण किए उनका मजान मान हमें प्राप्त हो चुका। वह टिहरी दन का भाग माना था और उर्मी

प्रकार झूठा-झोसठा बना जाता था। उसका उद्देश्य यदि मजबूत पृष्ठा जाय तो कबल घने झूठना ही था। भारत में साम्राज्य निर्माण की कल्पना उसने स्वीकार नहीं की थी। यही कारण है कि उसके आक्रमण का कोई स्थायी प्रभाव भारत पर न पड़ सका। महमूद ने आक्रमण एक बातक बाँधी की भाँति में प्रित्तन बना पृष्ठों को जड़ से उखाड़ फेंका। यमुना कभीय आदि जैसे कला केन्द्रों को धराशायी बनाकर महमूद ने कला के अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरणों का अन्त कर दिया। मोहम्मद हबीब ने ठीक ही लिखा है कि "महमूद की विजय हिन्दुओं के नैतिक विश्वास का विनाश नहीं थी और उसके बर्ष (इस्लाम) को स्थायी निम्न प्राप्त हुई। हमारे देश के वास्तविक इतिहास से महमूद का कोई सम्बन्ध नहीं था। इतना होने हुए भी महमूद के आक्रमण का कुछ स्थायी प्रभाव पड़ा है, जिसे हम सक्षम में इस प्रकार अंकित कर सकते हैं—

१ भावी आक्रमणों की भविष्य—अरबों ने भारत पर जो आक्रमण किया वे थे इतने प्रभावशाली नहीं सिद्ध हो सके। किन्तु महमूद के आक्रमणों ने भावी आक्रमणकारियों को उसी मार्ग से रण-अभियान करने की प्रेरणा दी। उत्तर-पश्चिम से होने वाले समस्त आक्रमण महमूद द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से ही हुए।

२ भारत की राजनीतिक दुर्बलता का प्रकाशन—महमूद के आक्रमणों ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत का राजनीतिक संयोजन अत्यन्त दुर्बल है। इस तथ्य को प्रकाशित करके महमूद भावी आक्रमणकारियों को अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन प्रदान किया।

३ भारतीय सम्पत्ति और कला की क्षति—हिन्दू कुपों मन्दिरों और मठों का नष्ट कर महमूद ने देश को दरिद्र बना दिया। मन्दिरों में युग-युग की अचिंत पार्श्व गजनी हरबार में लकी गयी। बसा की उत्कृष्ट बस्तुओं का विध्वंस करके महमूद ने भारतीय पौरव को कम कर दिया। आज यदि उस समय की समस्त कलाकृतियाँ बिना मान रहता तो हमें उत्क्रामीय कला पर गर्व होता।

याहिनी बंध का पतन—महमूद गजनी की मृत्यु के पश्चात् याहिनी बंध का पतन आरम्भ हो गया। उत्तराधिकार के निश्चित नियम के अभाव के कारण महमूद के पुत्रों में और उनके बाद महमूद के पीढ़ों में परस्पर युद्ध छिड़ते ही रहे। इस प्रकार के घरेलू युद्ध के कारण गजनी राज्य का पतन सीमिता से होना रहा। किन्तु याहिनी बंध का राज्य गजनी में सन् ११५१ ई० तक चलता रहा जब बलाउद्दीन हुसैन "जहानसोब" ने गजनी को लूटा कर याहिनी बंध को समाप्त कर दिया। महमूद के बंधों का राज्य कबल भारत के पश्चिमी पंजाब में रह गया और इस टिमिदमले दीप को भी बहाबुद्दीन गोरी ने सन् ११८६ ई० में मदा के लिये बुला लिया।

महमूद

1 Give a character sketch of Mahmud of Ghazni as a military general, a patron of arts and learning and an empire-builder (1913 45 50)

महमूद गजनवी के चरित्र का विवरण सेनापति बिष्ठा तथा कला के संरक्षण और साम्राज्य निर्माता के रूप में कीजिये।

2 Write a brief account of the campaigns of Mahmud of Ghazni (1040)

महमूद गजनवी के आक्रमणों का विवरण दीजिये।

3 Write a brief note on the effects of the invasions of Mahmud of Ghazni

महमूद गजनवी के आक्रमणों के प्रभाव पर संक्षिप्त नोट लिखिये।

भारत में तुर्की राज्य की स्थापना

भाग १—मुहम्मद गोरी के आक्रमण

अफगानिस्तान के पूर्वी भाग की ऊँची पर्वतमाफाओं में भोर या हवारा स्थित है। यामिनी बंध के दफते चिनों में यहाँ के ससबनिया बंध के तुर्क अपनी सक्ति का संगठन कर सुस्तान बहराम से टककर लेन लय। ससबनिया बंध में भ्रातृ प्रेम तथा परिवार प्रेम एक आदर्श सा बन गया था। इसी कारण में बहाउद्दीन साम के दो पुत्र गयासउद्दीन साम तथा सहाबुद्दीन साम दो शक्तिशाली मूस्तान हुए हैं। दोनों में प्रेम होने के कारण सहाबुद्दीन ने अपने बड़े भाई गयासुद्दीन की सम्पाद मान गौर साम्राज्य को स्थापना की और यजमी को अपनी राजधानी बनाया। गयासउद्दीन भोर के पश्चिम में अपने राज्य का विस्तार करता रहा और सहाबुद्दीन यजमी से पूर्व की तरफ।

सहाबुद्दीन जिसे मुहब्बुद्दीन मुहम्मद बिन साम भी कहते हैं भारत की तरफ सन् ११८१ ई० में बढ़ा और काहीर के सासक कुसक मालिक से कर लेकर लौट गया। सन् ११८६ ई० में उसने दूसरी बार काहीर पर आक्रमण कर कुसक मालिक को कैद कर लिया तथा काहीर को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। सहाबुद्दीन की मारुत में साबारपत मुहम्मद गोरी कहते हैं। काहीर पर आक्रमण करने के पूर्व भी मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया था परन्तु उसे कोई विजय मफलता न मिल सकी थी।

मुहम्मद गोरी के भारतीय आक्रमण

समय—महमूद गजनवी के बाद मुहम्मद गोरी ने भारत पर लगातार कई आक्रमण किये। अपने आक्रमणों का समय मुहम्मद गोरी ने महमूद से कुछ-कुछ परिवर्तित रक्खा था। उसने भारत में गौर राज्य की स्थापना को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया था। विजयियों को दण्ड देना तो उसने इसलिए अपना लक्ष्य घोषित किया था कि सेना में अक्षय उत्साह बना रहे।

भारत की दशा—जिस समय मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया उस समय समस्त उत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। हिस्सी में तोमर अजमेर में चौहान कभीर में राठीर, गुजरात में बघेल बिहार में पाल और बंगाल में सेन बंध का शासन स्थापित था। हम वेत चुके हैं कि प्रमुता के लिए इन राजबंधों में न अनेक पारस्परिक संघर्ष में भीत थे। इनमें ईर्ष्या और द्वेष हम सीमा तक था कि एक दूसरे का पतन देखकर प्रसन्न होते थे। विषामय जीवन व्यतीत करना और छोटी-छोटी बातों पर तकरार चमका देना इनकी प्रमुख विजयता थी। राजपूत राजे स्थायी सेना भी बहुत अधिक नहीं रखत थे। सारीय यह कि मैलिक दृष्टिकोण में भारत अराजक था।

महमूद गजनवी के शरिफ का बिजय सेनापति बिद्या तथा कला के संरक्षक और साम्राज्य-निर्माता के रूप में कीजिये।

2. Write a brief account of the campaigns of Mamud of Ghazni (1210)

महमूद गजनवी के आक्रमणों का विवरण दीजिये।

3. Write a brief note on the effects of the invasions of Mahmud of Ghazni.

महमूद गजनवी के आक्रमणों के प्रभाव पर संक्षिप्त नोट लिखिये।

भारत में तुर्की राज्य की स्थापना

भाग १—मुहम्मद गोरी के आक्रमण

अफगानिस्तान के पूर्वी भाग की ऊँची पर्वतमालाओं में घोर या हजारा स्थित है। यामिनी बंध के डलते दिनों में यहाँ के ससबनिया बंध के तुर्क अपनी शक्ति का संवर्धन कर सुल्तान बहुराम से टक्कर लेन लगें। ससबनिया बंध में प्राप्त प्रेम तथा परिवार प्रेम एक आदर्श सा बन गया था। इसी कारणों से बहाउद्दीन साम के दो पुत्र मयासउद्दीन साम तथा सहाबुद्दीन साम बौ सक्तिवाली सुल्तान हुए हैं। दोनों में प्रेम होने के कारण सहाबुद्दीन ने अपने बड़े भाई मयासउद्दीन को सम्राट् मान गोर साम्राज्य की स्थापना की और मजनी को अपनी राजधानी बनाया। मयासउद्दीन गोर के पश्चिम में अपने राज्य का विस्तार करता रहा और सहाबुद्दीन मजनी से पूर्व की तरफ।

सहाबुद्दीन जिसे मुहज्जुद्दीन मुहम्मद बिन साम भी कहते हैं भारत की तरफ सन् ११८१ ई० में बघा और लाहौर के पासके कुछक मालिक से कर लेकर सीट गया। सन् ११८९ ई० में उसने दूसरी बार लाहौर पर आक्रमण कर कुछक मालिक को कैद कर लिया तथा लाहौर को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। सहाबुद्दीन को भारत में साधारणतः मुहम्मद गोरी कहते हैं। लाहौर पर आक्रमण करने के पूर्व भी मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया था परन्तु उसे कोई विजय प्राप्तता न मिल सकी थी।

मुहम्मद गोरी के भारतीय आक्रमण

समय—महमूद गजनवी के भाई मुहम्मद गोरी ने भारत पर लगातार कई आक्रमण किये। अपने आक्रमणों का समय मुहम्मद गोरी ने महमूद से कुछ-कुछ परिवर्तित रक्खा था। उसने भारत में गोर राज्य की स्थापना को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया था। विजयियों की वजह सेना थी उसने इसलिए अपना लक्ष्य प्रोत्थित किया था कि सेना में अदम्य उत्साह बना रहे।

भारत की बघा—जिस समय मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया उस समय समस्त उत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। बिस्मी में होमर अजमेर में चौहान, कन्नौज में राठीर, गुजरात में बघल बिहार में पाल और बंगाल में सेन बंध का शासन स्थापित था। हम ऐसा चुके हैं कि प्रमुखा के लिए इन राजबंशों में से अनक पारस्परिक संबंधों में सीन थे। इनमें ईर्ष्या और द्वेष इस भीमा तक था कि एक दूसरे का पतन देखकर प्रसन्न होते थे। बिलामयम जीवन व्यतीत करना और छोटी-छोटी बातों पर लसवार जयका देना इनकी प्रमुख बिधपता थी। राजपूत राजे स्वाधी सेना भी बहुत अधिक नहीं रखते थे। सारांश यह कि सैनिक बृत्तिकाय ने भारत अचकत था।

दिया। उसने बिहार के बौद्ध बिहारों को कूट कर गप्ट कर दिया और अपनी मूर्खता के कारण बहो की अमृत्य पुस्तकों को गप्ट करवा दिया। इसके पश्चात् धीरे-धीरे उसने विक्रमशिला तथा माक्रमदा पर भी अधिकार कर उदयपुर में एक किला बनवाया। इतनी सफलता पाने पर उसका साहस और भी बढ़ गया। जब उसने बंगाल पर आक्रमण करने का निश्चय किया। सन् १२०४-५ ई० में इक्षित्याहूीन अपनी सेना लेकर सादर लंब तथा दक्षिणी बिहार होता हुआ गहिया पहुँचा। गहिया राजा अजयमलसेन की पश्चिमी राजधानी थी और बिद्या का केन्द्र होने के कारण सेना इत्यादि का विधाय प्रबन्ध न था। इक्षित्याहूीन ने बड़ी सुबमता से गहिया पर अधिकार कर लिया। तबमय सन पूर्वी बंगाल में भाग गया और अपने पूर्वजों की राजधानी बिजमपुर में रहकर पूर्वी बंगाल पर राज्य करछा रहा। इक्षित्याहूीन गौड़ के पास असमौटी की अपनी राजधानी बना कर पश्चिमी बंगाल तथा बिहार पर लुट्टी साधन करने लगा।

मुहम्मद गौरी की मृत्यु—मदन बड़ मारई की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद गौरी मजनी का एकलव्य मुस्तान बन गया था। साधारण विस्तार के मिय उसने बवारिजम पर आक्रमण किया था किन्तु उसे अपनी पराजय देखनी पड़ी। उधर मजनी में उन्नति का द्वार उठा। इधर पंजाब में खोतरो ने विद्रोह किया। एक की सहायता से भागवतों का विद्रोह तो दबा दिया गया किन्तु उनका पर्यन्त चकटा रहा और १२०६ ई० में एक जीनर न मुहम्मद गौरी की हत्या कर दी।

मुहम्मद गौरी का पुष्पीराज चौहान के हाथों मारे जाने की कथा हम प्रायः सुनते हैं और उसमें हीर रम का स्वाद में पान का प्रयत्न करने हैं। परन्तु यह कथा चारणा की बनायी हुई है। ऐतिहासिक प्रमाण जो अब तक मिल गये हैं उनके आका पर हम यह मानन को बाध्य हैं कि पुष्पीराज तराइन के युद्ध में मारा गया था और मुहम्मद गौरी की हत्या जोगरी ने की थी।

मुहम्मद गौरी का चरित्र—मैनपूर का यह कबन कि मुहम्मद विद्वानों को प्रभव नहीं बता था सर्वथा अमृत्य है। विनहास-उस-विद्वान तथा किरिस्ता ने मुहम्मद की स्वापप्रियता उद्गता तथा विद्वानों के प्रति आदर भाव की मूर्ति मूर्ति प्रशंसा की है। किरिस्ता के ग्रन्थों में 'उमकी प्रकृति स्वापपरायण ज्ञानकों जैसी थी (कह) ईश्वर ने इतने ज्ञान तथा हृदय में तथा प्रज्ञा की मलाई का ध्यान स्तन वाला था। वह एक बौद्ध पंडित होने के साथ-साथ दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भी था। उसने ज्ञान बाहुबल में ही अपने पूर्वजों के छंटे में पड़ाई राज्य को एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया था। यह उसकी राजनीतिप्रज्ञा एवं दूरदर्शिता का ही परिणाम है कि वह भारत की राजनीतिक दशा को ठीक-ठीक समझ गया और इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि भारत में समन्वयनों का स्थायी राज्य स्थापित हो सकता है। वह न तो महमूद की तरह बर्बाद हो पा और न चतुर्लोक। धननिष्ठा ने महमूद की राजनीतिन महारानी की ओर से अंधा बना दिया था। वह भारत में एक चूकान की तरह भागा और उसकी अनुक मर्णाति कूट कर स्वदेश लौट गया। अब हम यह समझते हैं कि महमूद के भारतीय अधिपत्या का लक्ष्य बल बन और मूर्ति गण्डन था। परन्तु उसके विपरीत महमूद एक मर्णा विज्ञा था। उसने देश की अलक्ष्य स्वाधीनता स्थापित करने का प्रयत्न किया।

मुहम्मद की मर्णाता का सबसे बड़ा रहस्य यह था कि उसमें विनी भी परिनिधि का समस्तन की अपूर्व राजनीति था। उसने धर्म या उच्छेकलट का था। वह

अपने किसी भी पराजय को अन्तिम पराजय मानने के लिए नहीं तैयार था। एक बार किसी सैन्य की प्राप्ति में असफल होने पर वह उस सैन्य के लिए बूने उत्साह के साथ तैयारी करने लगता था और जब तक अपनी हार का दाँत में बस नहीं आसता था वह सुख की नीद नहीं सोता था। उसमें मानस-चरित्र की परखने की भी अपूर्व क्षमता थी। यही कारण है कि उसे ऐबक तथा बल्लिमासूदीन जैसे सेनापतियों की सहायता प्राप्त थी।

राजपूतों के पतन के कारण

राजपूतों की वीरता लोक-प्रसिद्ध है। वास्तव में उनकी ख्याति उनकी वीरता में ही निहित है। फिर भी इस वीर भाँति को मुसलमान आक्रमणकारियों ने सम्मुख हार जानी पड़ी। एक-दो बार नहीं कई बार और समय-दो-तीन सौ वर्षों में ही मुसलमानों ने इनसे राजसत्ता से असम कर दिया। आश्चर्य क्या? इसे समझने के लिए हमें तत्कालीन उन समस्त परिस्थितियों पर विचार करना होगा जिसका राजपूतों के पतन में हाथ था।

राजनैतिक कारण

राजपूतों की पराजय के राजनैतिक कारणों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है

(क) राजनैतिक एकता का अभाव (ख) कूटनीति का अभाव तथा (ग) सामान्य प्रदेशों की सुरक्षा का अभाव।

— **राजनैतिक एकता का अभाव**—उन दिनों बनेक राजाओं ने सम्पूर्ण देश में अपना छेत्र-छेत्र राज्य स्थापित कर लिया था। देश में कोई भी अस्तित्ववादी राजा नहीं पाया जा सकता। विदेशी आक्रमणकारियों का सामना कर सकें। इसके अतिरिक्त राजाओं में पारस्परिक ईर्ष्या तथा द्वेष की भावना पागुल हो चुकी थी। मुसलमान के समय एक दूसरे की सहायता करना वे विस्तृत भूक भुँके थे। इतना ही नहीं वे एक-का-सहयोग भी दिया करते थे। अतएव मुसलमान आक्रमणकारियों का इन छोटे-छोटे राज्यों की पराजित करना सरल हो गया।

(ख) **कूटनीति का अभाव**—मुसलमान आक्रमणकारियों का कूटनीति तथा छल-नपट का अच्छा ज्ञान था तथा वे इसका सदुपयोग करते थे किन्तु राजपूतों में कूटनीति तथा छल-नपट का अभाव था। राजपूत भी इस विद्या को जानते थे पर व्यावहारिक समझ कर जानकर भी अतमान बन जाते थे। यह कूटनीति राजपूतों का निम्नतर बीजा देशों गूँधी और जल में राजपूत पतनमुख हो गये। मुहम्मद ग़ाज़ी की तराइन के प्रथम युद्ध में पराजित किया गया था किन्तु अपनी कूटनीति तथा छल-नपट के द्वारा वह पुनः भारत पर आक्रमण करके विजय प्राप्त कर सका।

(ग) **सीमांत प्रदेशों की सुरक्षा का अभाव**—भारतवर्ष में जितने भी आक्रमण हुए वे प्रायः उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेशों से हुए थे किन्तु राजपूतों ने इसका कोई प्रयत्न नहीं किया था। यदि वहाँ पर भी किताबन्द करवाया गई होती या सम्भवतः राजपूत इन्हीं सीमांत पठानात्मक न हो गये होते।

सामाजिक तथा धार्मिक कारण

सामाजिक तथा धार्मिक कारण भी तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—

(क) जाति-व्यवस्था के कारण राष्ट्रीयता का अभाव (ख) निश्चित सैनिक जाति तथा (ग) आचार्य एवं कुलीन वर्ग के कारण दुर्बल हिन्दू समाज।

(क) जाति-व्यवस्था के कारण राष्ट्रीयता का अभाव—उत्कालीन हिन्दू समाज आचार्य अश्विज वैश्य तथा सूत्र चार जातियों तथा कई उपजातियों में विभक्त था। उनमें आपस में मेल न बनने के कारण को मानना था। इस प्रकार राष्ट्रीयता को मानना का अर्थ ही क्या था। बाह्य आक्रमणकारियों का आक्रमण अपने भाइयों पर देखने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुआ थी। इस प्रकार को आचार्यता को मानना मुसलमानों में नहीं थी बल्कि उनमें राष्ट्रीयता को मानना नहीं रही।

(ख) निश्चित सैनिक जाति—वर्च-विभाजन के अनुसार युद्ध-कार्य राजपूतों को दिया गया था। दूसरी हिन्दू जातियाँ युद्ध से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखती बाह्यो या जैसे दश के मात उनका कोई कर्तव्य ही नहीं था। क्षत्रियों का सम्बन्ध मूल्य ही था। इस प्रकार क्षत्रिय का छान कर हिन्दू जाति अनात्मिक बन गई थी। किन्तु प्रत्येक मुसलमान युद्ध करना अपना राष्ट्रीय तथा महान् धर्म मानता था।

(ग) आचार्य तथा कुलीन वर्ग के कारण दुर्बल हिन्दू समाज—हिन्दू समाज की दुर्बलता का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि विभिन्न जाति के लोग अपने को दूसरी जाति के व्यक्तिता में डूबा समझते थे। इन भावना न पारस्परिक प्रेम को समाप्त कर दिया गया था। जातिवाद को कौन कहे एक विशेष कुल के दूसरे कुल के हित समझते थे। इस प्रकार के भावना तथा कुलीन वर्ग ने हिन्दू समाज को बहुत दुर्बल कर दिया। मुसलमानों में जातीय अलगाप का नाम तक न था।

हिन्दुओं की पराजय के कई सैनिक कारण भी थे जिन में मुख्य निम्नलिखित हैं—

(क) निराहियों का दीवतुर्लभ नियुक्ति (ख) प्राचीन युद्ध प्रणाली (ग) मना पति पर निर्भरता तथा (घ) अनिश्चित एवं दीवतुर्लभ युद्ध-भाषना।

(क) निराहियों की दीवतुर्लभ नियुक्ति—हिन्दू समाज में सैनिकों को नहीं करने का एक विधि ही था। सैनिक गिला का पुत्र ही सैनिक नियुक्त किया जाता था। बाहे बत सैनिक बनने का मतलब है कि वह न ही था। उन युद्ध-कला अश्विज वैश्य न ही। दूसरा बात सैनिक की बुद्धिमान्ता का जाने पर भी यदि वह बुद्धिमान्ता में प्रविष्ट सैनिक नहीं है तो वह अपने युद्धमय पर ही राखी गया करता था। मुसलमानों मनावा में इन प्रकार का अलगापना नहीं को जाता थी और उह अल्पानिष्ठान को पराजित न युद्ध सैनिक प्राप्त हो जाता करने थे।

(ख) प्राचीन युद्ध प्रणाली—प्राचीन युद्ध प्रणाली का अनुकरण करने थे। वे आगे जातिवाद पर भरोसा होकर युद्ध करने थे जो बर्षों-बर्षों पाणि का जाता था न ही और अपने सैनिकों को ही जाति पढ़वाने थे।

(ग) मनापति पर निर्भरता—हिन्दू समाज में एक पढ़ने बड़ी बर्षों पर थी। मनापति के मरण केवला पापक ही ही मारा गया था पर उगाहने लगता था या मार सैनिक मरण पाई ही थे। बर्षों-बर्षों में पढ़ी मर उगाहने मिलता है कि हिन्दू समाज की विषय हान ही बर्षों थी कि मनापति के युद्ध-भाग में मृत्यु पर

सारी सेना जाग गई। सैनिक अपने पर निर्भर न हल्कर केवल सेनापति पर ही निर्भर थे। यह उनकी बहुत बड़ी दुर्बलता थी।

(ब) अनिश्चित तथा शीघ्रपूर्ण युद्ध योजना—हिन्दू राजाओं की युद्ध करने की कोई योजना नहीं रहती थी। वे कब कैसे और कहाँ-कहाँ युद्ध करेंगे इसका कोई नियम नहीं हुआ करता था। अतः उनकी सम्पूर्ण शक्ति का समुपयोग नहीं हो पाता था। विशेषकर उन युद्धों में जिनमें कई छोटे-छोटे राजे मिलकर युद्ध करते थे ऐसी अभ्यवस्था अधिक पाई जाती थी। इसका कारण यह था कि राजा अपनी-अपनी सेना को समय-समय रीति से विभिन्न स्थानों से मनमाने रूप में युद्ध करने का आदेश देते थे। परिणाम यह होता था कि मूलतः मान्य मित्रों होते थे। किन्तु मूलतः मान्य युद्ध के पूर्व ही अपना योगदान बनाये रखते थे तथा वे संमति होकर लड़ते थे।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि राजपूतों में बहुत अधिक शीघ्र तथा दुर्बलताएँ थी जिनके परिणामस्वरूप उनको अपना पतन देखना पड़ा।

भाग २ भारतीय तुर्की राज्य का गौर साम्राज्य स पृथक होना

क़ुतुबुद्दीन ऐबक

मुहम्मद घोरी की मृत्यु के पश्चात् उसके राज्य का उनके गुलामों ने आपस में बटवारा कर लिया। इस बटवारे का मुख्य कारण था इन गुलामों की शक्ति जिसके द्वारा मुहम्मद घोरी ने अपना साम्राज्य की स्थापना की थी। यह भी कहा जाता है कि उसके गुलामों को उसके हार्दिक इच्छा का पता था जिसको मुहम्मद ने एक बार प्रकाश में किया था कि उसके गुलाम उत्तान के समान हैं और उसके राज्य के उत्तराधिकारी हैं। अतः क़ुतुबुद्दीन इल्तुतमिश ने गजनी पर अधिकार कर लिया। नासिदुद्दीन कुजाबा ने सम्पूर्ण सिन्ध पर और शीघ्र भारतीय राज्य पर क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने अधिकार कर लिया।

ऐबक का प्रारम्भिक जीवन—मुहम्मद घोरी के सरदारों में ऐबक सर्वप्रथम नाम था। यह अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में गिणापुर के काजो द्वारा करीब गया था। काजो ने अपने दाम की शिक्षा-दीक्षा का सुन्दर प्रबन्ध किया। तत्पश्चात् वह मुहम्मद घोरी के हाथ आया गया। हम यह बूझें कि ११९२ और ११९७ के बीच अनेक छोटे-छोटे राजपूत राज्यों के भयकर विद्रोहों की वजह से और इस प्रकार नव स्थापित मुस्लिम राज्य की रक्षा में ऐबक ने प्रार्थनाय काम किया था। ११९७ से १२०५ ई तक ऐबक ने अनेकों और क्षेत्रों को पराजय में बहुत बड़ी सहायता दी थी। वास्तव में ऐबक ही ऐसा व्यक्ति था जिसने भारत में तुर्की साम्राज्य की नींव डाली थी। यही कारण था कि भारत के समस्त तुर्क अधिकारी ऐबक को अपना प्रधान समझते थे। ऐबक के लिए द्वार खुला था कि वह अपने को भारत में स्वतन्त्र सामक घोषित करे और गजनी से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखे।

क़ुतुबुद्दीन भारत का तख्तान—स्वार्थ का साहूकार साम्राज्य के पतन में तत्परीय था। उधर घोरी के उत्तराधिकार दुर्बल होता जा रहा था। यदि क़ुतुबुद्दीन ऐबक भारतीय तुर्की साम्राज्य को गौर राज्य में समुपलब्ध किया होता तो निश्चित ही स्वार्थ का साहूकार तब तक बढ़ जाता। अतः गौर राज्य के अधिकारियों ने महमूद के पास यह सूचना भेजी कि यदि उसे भारत का मुस्तान प्रिन्स कर दिया जाय तो वह स्वार्थ का

के बिना उसकी सहायता करेगा। अब उसने एबक के पास एक सिंहासन छन दूर बांस पहाक छपा लम्कारा भज दिया। य से स्वतन्त्रता के चिह्न। इस प्रकार एबक भारतीय तुर्की राज्य का अभिषेक स्वीकार किया गया। काहौर में उसका निममानुधार अभिषेक हुआ।

एबक की कठिनाइयाँ और उनका निराकरण

यद्यपि एबक को मुस्तान घोषित कर दिया गया था तथापि कोई भी बाघ मुस्तान नहीं हो सकता था और एबक अभी बाघता से मुक्त नहीं हो पाया था। यह एक समस्या थी। सीमापथक १२०८ ई. में यमासुद्दीन ने उसे स्वतन्त्र कर दिया और अब वह हर प्रकार से मुस्तान बनने के योग्य हो गया। एबक के सामने एक दूसरी कठिनाई यह थी कि आग्नेयस्थित तुर्की सरकारों में से कुछ अत्यधिक महत्वाकांक्षी थे। कुछ अन्य अर्बानस सरदार भी स्वतन्त्र राज्य-निर्माण का स्वप्न देख रहे थे। एबक के लिए यह एक समस्या बन हुए थे। मुस्तान और उज्ज का बांसक बुवाबा ऐसे ही सरदारों में से एक था। एबक ने कूटनीति से काम लिया और बुवाबा को अपना दामाद बनाकर उसे अपने अर्बानस कर लिया। अला मर्दान लिस्बा एक दूसरा सरदार था जिसने इस्लामावदीन का बंधन करके अपने की बंधन का नामक घोषित कर दिया था। वह भी तुर्की राज्य से अपने को स्वतन्त्र रखना चाहता था। इस्लामावदीन का इरादा समझ कर बंगाल के लिस्बी सरदार अलीमर्दान ने चुनौती दी और इमीलिए वह पहले बंधन से बड़ नहीं जमा सका था किन्तु बाद में कुतुबुद्दीन एबक से स्वयं उसके इन कार्य में सहायता की क्योंकि एबक जानता था कि अन्य सैन्यों में फँसे रहने के कारण वह बंधन में तुर्की राज्य का स्वाधिकार नहीं बनाय रह सकता था अलीमर्दान को सहायता देकर और उसे बंधन का नामक बनाकर एबक ने काम लिया। एबक को ठामरी कठिनाई थी पश्चिमात्तरनीमा की सुरक्षा। इस्वीन ने गजनी पर अधिकार कर लेने के बाद स्वयं का स्वदेश या विदेश के समस्त तुर्की साम्राज्य का मालिक समझना आरम्भ किया। कारण यह था कि प्रारम्भ में मजबूती ही तुर्की साम्राज्य का केन्द्र था। एबक की इनमें भी अधिक भय स्वाभिमान के छाह से था। एबक ने मुस्तान बुवाबा का मिलाकर पंजाब की सुरक्षा की व्यवस्था करना आरम्भ कर दिया। इस्वीन ने बुवाबा पर आक्रमण कर दिया किन्तु एबक ने न बचस बर्फ लट्ठ उसे पराजित कर दिया प्रभुत उमन गजनी पर भी अधिकार कर लिया। पर यहाँ उनका सामान स्थायी न बन सका और १२०८ ई. में लगभग ४० दिन तक गजनी पर राज्य करम से बाद एबक की साहोद माना पड़ा। माना कि एबक मजबूती में राज्य नहीं कर सका पर इनका ता हा गया कि अब इस्वीन का आह्वान भारत की ओर देखने का न रह गया। कुतुबुद्दीन के इन समस्त प्रयास का परिणाम यह भी हुआ कि मार्गीय तुर्की राज्य मजबूती या विरही इच्छा से अबन हाकर एक स्वतन्त्र राज्य की नींव बन गया।

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त आपत्ति के समय नवम बड़ी कठिनाई है आत्म रिक विरही। बनेन और परिहारों में समय नासिद्ध और स्वाधिकार के दुर्घट पर अपिहार स्थापित करने बर्षों के मुर्तों की मार जमाया था। इस प्रकार अन्तर्गत के जनक छाने-छाने रात्रे अथवा क. उत्तराधिकारी हरिद्वार और नव-भारतीय नामक तुर्की के सिद्ध गढ़ हा गये थे और उन्होंने बर्षों तुर्की हरिद्वारों का मार जमाया था। एबक ने एक-एक कर समस्त राजपूत विरहीतियों का दबा दिया। वेदम नासिद्ध और

शासित्व पर वह अधिकार न कर सका था क्योंकि बीजापुर के समेत १२१० ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

कुतुबुद्दीन ऐबक का चरित्र—कुतुबुद्दीन एक महान् सेना-नायक था जिसने अपार साहस धृति तथा निर्भयता कूट-कूट कर बरो हुई थी। अपने इन्हीं सब गुणों के कारण ही वह अपने स्वामी का निश्वास-नात्र बन सका था और बाबर के मृत्यु पर से उठकर सुल्तान बन सका था। जिसने मुहम्मद शेर ने उसे सुल्तान की उपाधि दी थी परन्तु उसे बखीफा से स्वतन्त्र राजसत्ता का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ था। जो भी हो ऐसा कि हुसैन निजामी ने लिखा है कि अपने अवश्य उत्साह तथा युद्ध विरवास के कारण वह राज्य तथा राजसिंहासन के योग्य था। मुहम्मद गुरी की योजनाओं को कार्यान्वित करने में परामर्श भावि द्वारा सफलतापूर्वक बनाने का योग्य ऐबक ही की है। उसमें संयोजन करने की भी अद्भुत क्षमता थी। गुरी के विजयी से प्राप्त साम्राज्य को समर्थित कर उसमें शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न उसने बराबर क साध किया। भारत की राजनीतिक परिस्थिति को समझने में उसने अपनी राजनीतिकता का परिचय दिया है।

कुतुबुद्दीन एक उदारदुःख तथा न्यायप्रिय शासक था। 'ताज-उल्-मासिर' के लेखक हुसैन निजामी ने उसकी न्यायप्रियता के सम्बन्ध में कहा है कि उसके राज्य में भेड़ और भेड़िया एक ही बाट पानी पीते थे। 'तक़्क़-ए-नसीरी' का लेखक उसके चरित्र पर वास्तविक रूप में प्रकाश डालता है। जब वह यह कहता है कि वह कालों का दान करता था और हत्याएँ भी इतनी ही विपुल संख्या में करता था। मुसलमान लेखकों ने उसको 'सात बन्ध' (छात्रों का दान देने वाला) की उपाधि से विभूषित किया है। लेखकों के कथनानुसार यद्यपि 'सुबा की राह पर लड़ने वाले धर्मि शाही मोठा को तख् मुझों में उलान हजाराँ हिन्दुओं को बास बनाया था तथापि जय अवसरों पर उनके प्रांत उसका व्यापार बसायूँ रखा। फिर भी हमें यह मानना पड़ेगा कि ऐबक धर्मसहिष्णु नहीं था। वह मूढ़ ही सहिष्णुता का न था। स्मिथ महोदय ने उसका वर्णन एशिया के क्रूर तथा निरक्षर राजाओं में किया है। वह कालों का दान करता था और कालों की हत्या भी—इस कथन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमानों के लिए वह बड़ा दानी तथा उदार था परन्तु हिन्दुओं के लिए बड़ा दुश्मन एवं निर्दयी था।

आराम शाह

काहीर के तुर्क सरकार ने अपने यहाँ आराम शाह का नियुक्त करवाया। इस पर दिल्ली ने तुर्क सरकार अग्रसन्न हुए। उनकी अग्रसन्नता का कारण सम्भवतः व्यक्तिगत स्वार्थ ही था। अत्यात्मता से यह ज्ञात जाता है कि आराम शाह ऐबक-पुत्र न था। 'मिर्जातुम्मिराज' से भी हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि तुर्क आराम शाह जैसे अकर्मण्य व्यक्ति का बाहिर मुल्तान बनाने के पीछे कौन सी बात थी? जो भी हो। इधर ऐबक की मृत्यु हुई उधर तुर्कों की पारस्परिक फूट का जन्म। मुल्तान में कुबाचा और बगाल में अकामर्श स्वतन्त्र हो गये। दिल्ली के तुर्क सरकार ने बराम के मन्त्रों-इस्तुतमिश को मुल्तान पर पर सुधीनित करने के लिए आमन्त्रित किया। इधर इस्तुतमिश बगाल में दिल्ली चला और उधर आराम शाह ने काहीर से प्रस्थान किया किन्तु इस्तुतमिश ने उम्र युद्ध में हराकर दिल्ली का राजसिंहासन हस्तगत कर दिया। इस्तुतमिश से इच्छा थी तुर्कों का शासन प्रारम्भ होता है।

के विरुद्ध उसकी सहायता करेगा। अब उसने ऐबक के पास एक सिंहासन छत्र दूर बास पताका तथा लकड़ा भेज दिया। ये थे स्वतन्त्रता के चिह्न। इस प्रकार ऐबक भारतीय तुर्की राज्य का अभिषेक स्वीकार किया गया। काहीर में उसका नियमानुसार अभिषेक हुआ।

20

ऐबक की कठिनाइयाँ और उनका निराकरण

यद्यपि ऐबक का मुस्तान घोषित कर दिया गया था तथापि कोई भी बास मुस्तान नहीं हो सकता था और ऐबक अभी शासता से मुक्त नहीं हो पाया था। यह एक समस्या थी। सीमाव्यवस्था १२८ ई० में गयाबुद्दीन ने उसे स्वतन्त्र कर दिया और अब वह हर प्रकार से मुस्तान बनने के योग्य हो गया। ऐबक के सामने एक दूसरी कठिनाई यह थी कि भारतस्थित तुर्की सरदारों में से कुछ अल्पसंख्यक महत्वाकांक्षी थे। कुछ अन्य अमीनस्य सरदार भी स्वतन्त्र राज्य-निर्माण का स्वप्न देख रहे थे। ऐबक के लिए यह एक समस्या बने हुए था। मुस्तान और जल्द का शासक चुनाव ऐसा ही सरदारा में से एक था। ऐबक ने कूटनीति से काम किया और चुनाव को अपना साम्राज्य बनाकर उसे अपने अमीनस्य कर दिया। अमीनस्य बिस्वी एक दूसरा सरदार था जिसने इस्तिमार्द्दीन का बंधन करके अपने को बंगाल का शासक घोषित कर दिया था। वह भी तुर्की राज्य से अपने को स्वतन्त्र रखना चाहता था। इस्तिमार्द्दीन का उत्पारा समझ कर बंगाल के बिस्वी सरदार अमीनस्य से युद्ध करते थे और इसीलिए वह पहले बंगाल में जाड़ नहीं जमा सका था किन्तु बाद में कुतुबुद्दीन ऐबक ने स्वयं उसके इस कार्य में सहायता की क्योंकि ऐबक जानता था कि अन्य समझ में कैसे रहने का काम वह बंगाल में तुर्की राज्य का स्थापित नहीं बनाये रह सकता पर अमीनस्य की सहायता देकर और उसे बंगाल का शासक बनाकर ऐबक ने काम किया। ऐबक को तीसरी कठिनाई थी पश्चिमोत्तरसीमा की सुरक्षा। इस्लाम ने यवनी पर अधिकार कर देने के बाद स्वयं को स्वदेश या विदेश के समस्त तुर्की साम्राज्य का मासिक समझना आरम्भ किया। कारण यह था कि प्रारम्भ में यवनी ही तुर्की साम्राज्य का कर्ण था। ऐबक को इससे भी अधिक भय स्मारिक के साहस था। ऐबक ने तुरन्त चुनाव को मिलाकर पंजाब की सुरक्षा की व्यवस्था करना आरम्भ कर दिया। इस्लाम ने चुनाव पर आक्रमण कर दिया किन्तु ऐबक ने न केवल बुरी तरह उस पराजित कर दिया प्रत्युत उसने यवनी पर भी अधिकार कर लिया। पर यही उसका शासन स्थायी न बन सका और १२०८ ई० में लगभग ४ दिन तक यवनी पर राज्य करने के बाद ऐबक को काहीर आना पड़ा। माना कि ऐबक यवनी में राज्य नहीं कर सका पर इतना तो हो गया कि अब इस्लाम का साहस भारत की ओर देखने का न रह गया। कुतुबुद्दीन के इस असफल प्रयास का परिणाम यह भी हुआ कि भारतीय तुर्की राज्य यवनी या विदेशी हस्तक्षेप से अल्प होकर एक स्वतन्त्र राज्य की नींव बन गया।

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त आपत्ति के समय सबसे बड़ी कठिनाई है आन्तरिक विद्रोह। बन्देश और परिहारों ने क्रमशः कालिंजर और ग्वाल्मीर के युवों पर अधिकार स्थापित करके वहाँ के तुर्कों को मार भगाया था। इसी प्रकार अन्तराल के अनेक छाने-छाने राज व्यवस्था के, उत्तराधिकारी विरिद्ध और यवन-बंसीय शासक तुर्कों के विरुद्ध गड़ हो पड़े थे और उन्होंने कई तुर्की हकिमों को मार भगाया था। ऐबक ने एक-एक कर समस्त राजपूत विद्रोहियों का बंधा दिया। कलकालिंजर और

खास्मिर पर बहु अधिकार न कर सका था क्योंकि बीगान सेछते समय १२१० ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

कुतुबुद्दीन ऐबक का चरित्र—कुतुबुद्दीन एक महान् सेना-नायक था जिसमें तार साहस, सूरता तथा निर्मयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। अपने इन्हीं सब गुणों कारण ही वह अपने स्वामी का विश्वास-आश बन सका था और बादशह के प्रति : से उठकर मुस्तान बन सका था। निःसन्देह मुहम्मद गौरी ने उसे मुस्तान की प्राप्ति से ही परन्तु उसे सलीफा से स्वतन्त्र राजसत्ता का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ। जो भी हो ऐसा कि इसन निजामी ने लिखा है कि अपने अहम्य उरसाह या शूद्र विश्वास के कारण वह 'राज्य तथा राजसिंहासन' के योग्य था। मुहम्मद गौरी की योजनाओं को कार्यान्वित करने में परामर्श आदि द्वारा सक्रिय भूमिका बनाने का ऐबक ही को है। उसमें संगठन करने की भी बहुमूल्य क्षमता थी। गौरी के विजयों प्राप्त साम्राज्य को संयुक्त कर उसमें शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न उसे बहादुर के साथ किया। भारत की राजनीतिक परिस्थिति का समझने में उसने गौरी राजनीतिज्ञता का परिचय दिया है।

कुतुबुद्दीन एक उदाररूप तथा न्यायप्रिय शासक था। 'ताज-उल-मासिर' लेखक इसन जिन निजामों ने उसकी न्यायप्रियता के सम्बन्ध में कहा है कि उसके 'जम' में भेड़ और भेड़िया एक ही घाट पानी पीते थे। 'उबकत-ए-नसीरी' का लेखक उसके चरित्र पर वास्तविक रूप में प्रकाश डालता है। जब वह यह कहता है कि वह 'जो' का शान करता था और हत्याएँ भी इतनी ही जितने दुस्मियों में करता था। इसमान लेखकों ने उसको 'साज बका' (साजा का शान बन बाधा) की उपाधि से नृपित किया है। लेखकों के कथनानुसार यद्यपि 'कुषा की राह पर लड़ने वाले शक्ति' 'जो' या 'बा' की तरह युद्धों में उसन हजारों हिन्दुओं का शान बनाया था तथापि 'य' अक्षरों पर उनके प्रति उसका व्यवहार क्यापुन रहा। फिर भी हमें यह मानना होगा कि ऐबक बर्मेसहिन्दु नहीं था। वह युग ही सहिन्दुता का न था। स्मिथ हादस ने उसका वर्णन एशिया के क्रूर तथा निरपी विजेताओं में किया है। वह साजों का शान करता था और साजों की हत्या भी—इस कथन से ही यह स्पष्ट हो जाता कि मुसलमानों के लिए वह बड़ा शानो तथा उदार था परन्तु हिन्दुओं के लिए बड़ा संघर्ष एवं निर्दयी था।

राज्य शाह

काहीर के तुर्क सरबारों ने अपने यहाँ आराम शाह का अभिषेक कराया। इस पर 'स्की' के तुर्क सरबार असमंजस हुए। उनकी असमंजसता का कारण सम्भवतः व्यक्तिगत शर्ष ही था। अन्याय्य साजों से यह शान होता है कि आराम शाह ऐबक-पुत्र न था। 'मैतहा-मुस्मिराज' से भी इस मत का समर्थन हो जाता है किन्तु आराम शाह जैसे कर्मव्य व्यक्ति की आतिर मुस्तान बनाने का पक्ष कीन सी बात थी? जो भी हो, वह ऐबक की मृत्यु हुई उधर तुर्कों की पारस्परिक कूट का काम। मुस्तान में कुषाशाहिर वगत में अन्तर्गत स्वतन्त्र हो गया। दिल्ली के तुर्क सरबारों ने बदायूँ के बर्मेर इस्लामिज को मुस्तान पर पर नृपतिमित करने के लिए आमन्त्रित किया। इस्लामिज बदायूँ से दिल्ली चला और उधर आराम शाह ने काहीर से प्रस्थान किया किन्तु इस्लामिज ने उसे युद्ध में हराकर दिल्ली का राज्यसिंहासन हस्तगत कर लिया। इस्लामिज से इसवरी तुर्कों का शासन प्रारम्भ होता है।

के विरुद्ध उसकी सहायता करेगा। अब उसने ऐबक के पास एक सिंहासन, छत्र, दूर बास पताका तथा मक्का का भेज दिया। ये थे स्वतन्त्रता के चिह्न। इस प्रकार ऐबक भारतीय तुर्की राज्य का अभिष्टाता स्वीकार किया गया। काहीर में उसका नियमानुसार अभिषेक हुआ।

ऐबक की कठिनाइयाँ और उनका निराकरण

यद्यपि ऐबक का सुल्तान घोषित कर दिया गया था तथापि कोई भी बास मुल्तान नहीं हो सकता था और ऐबक अभी बासता से मुक्त नहीं हो पाया था। यह एक समस्या थी। सीमाप्यवस्था १२०८ ई. में गयामुद्दीन ने उसे स्वतन्त्र कर दिया और अब वह हर प्रकार से सुल्तान बनने के योग्य हो गया। ऐबक के सामने एक दूसरी कठिनाई यह थी कि भारतस्थित तुर्की सरदारों में से कुछ अत्यधिक महत्वाकांक्षी थे। कुछ अन्य अबीनस्य सरदार भी स्वतन्त्र राज्य-निर्माण का स्वप्न देख रहे थे। ऐबक के लिए यह एक समस्या बन हुए थे। सुल्तान और उल्क का शासक कुत्बाचा ऐसे ही सरदारों में से एक था। ऐबक ने कूटनीति से काम लिया और कुत्बाचा को अपना बामाद बनाकर उसे अपने अधीनस्थ कर लिया। उसी मर्दान सिन्हा एक दूसरा सरदार था जिसने इस्तिमाददीन का बच करके अपने को बंगाल का शासक घोषित कर दिया था। वह भी तुर्की राज्य से अपने को स्वतन्त्र रखना चाहता था। इस्तिमाददीन का हथपाटा समझ कर बंगाल के सिन्ही सरदार अभीमर्दान से जुड़ा करते थे और इसीलिए वह पहले बंगाल में जाइ नहीं गया था किन्तु बाद में कुतुबुद्दीन ऐबक ने स्वयं उसके इस कार्य में सहायता की क्योंकि ऐबक जानता था कि अन्य हंसदों में ऐसे रहने के कारण वह बंगाल में तुर्की राज्य का स्थायित्व नहीं बनाये रह सकता, पर अभीमर्दान को सहायता देकर और उस बंगाल का शासक बनाकर ऐबक ने काम किया। ऐबक को तीसरी कठिनाई भी पश्चिमोत्तरसीमा की सुरक्षा। इन्दीज ने यजनी पर अधिकार कर देने के बाद स्वयं को स्वदेश या विदेश के समस्त तुर्की साम्राज्य का माफिक समझना आरम्भ किया। कारण यह था कि प्रारम्भ में यजनी ही तुर्की साम्राज्य का केन्द्र था। ऐबक को इससे भी अधिक भय क्वारिज्म के साह से था। ऐबक ने तुरन्त कुत्बाचा को मिलाकर पंजाब की सुरक्षा की व्यवस्था करना आरम्भ कर दिया। इन्दीज ने कुत्बाचा पर आक्रमण कर दिया किन्तु ऐबक ने न केवल दुरी तरह उसे पराजित कर दिया प्रत्युत उसने यजनी पर भी अधिकार कर लिया। पर यही उसका मासुन स्पायी न बन सका और १२०८ ई. में लगभग ४ दिन तक यजनी पर राज्य करने के बाद ऐबक की साहीर जाता पड़ा। माना कि ऐबक यजनी में राज्य नहीं कर सका पर इतना तो हो गया कि अब इस्लीज का साहस भारत की ओर देखने का न रह गया। कुतुबुद्दीन के इस अचफल प्रयास का परिणाम यह हो हुआ कि भारतीय तुर्की राज्य यजनी या बिदेर्सा हस्तक्षेप से अछूत होकर एक स्वतन्त्र राज्य की भाँव बन गया।

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त आपत्ति के समय सबसे बड़ी कठिनाई है आन्तरिक विरोध। जल्मेस और परिहारों ने क्रमशः कालिंजर और ग्वाल्दियर के दुर्गों पर अधिकार स्थापित करके वहाँ से तुर्कों को मार भगाया था। इसी प्रकार अन्तरजय के अनेक छोटे-छोटे राज अयचन्द के, उत्तराधिकारी हरिश्चन्द्र और उन-अधीन शासक तुर्कों के विरुद्ध लड़े हो चले थे और उन्होंने कई तुर्की हाकिमों को मार भगाया था। ऐबक न एक-एक कर नमस्त राजपूत विद्रोहियों का बचा दिया। केवल कालिंजर और

बाकिर पर वह अधिकार न कर सका था क्योंकि बीजान् शेरले समय १२१० ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

कुतुबुद्दीन ऐबक का चरित्र—कुतुबुद्दीन एक महान् सेना-नायक था जिसमें अपार साहस था तथा निर्भयता कूट-कूट कर बरी हुई थी। अपने इन्हीं सब गुणों के कारण ही वह अपने स्वामी का विश्वास-पात्र बन सका था और शासक के शासन में से उठकर मुस्तान बन सका था। जिसने वह मुहम्मद ग़ाज़ी ने उसे मुस्तान की उपाधि दी थी परन्तु उसे खोफा से स्वतन्त्र राजसत्ता का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ था। जो भी हो जैसा कि हुसैन निजामी ने लिखा है कि अपने अव्यय उत्साह तथा पुनः विश्वास के कारण वह राज्य तथा राजसिंहासन के योग्य था। मुहम्मद ग़ाज़ी की योजनाओं को कार्यान्वित करने में परामर्श आदि द्वारा सक्रिय भूमिका लेने का ऐबक ही की है। उसने समझन करने की भी बद्धुक्त समझ थी। ग़ाज़ी के विजयों से प्राप्त साम्राज्य को संयोजित कर उसमें शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न उसने क्षमता के साथ किया। भारत की राजनीतिक परिस्थिति को समझने में उसने अपनी राजनीतिज्ञता का परिचय दिया है।

कुतुबुद्दीन एक उदारदय तथा व्यापक शासक था। 'ताज-उल-मासिर' के लेखक हुसैन निजामी ने उसको व्यापकता के सम्बन्ध में कहा है कि उसके राज्य में भद्र और भेदभाव एक ही बाट पानी पीते थे। 'उबक-ए-नसीर' का लेखक उसके चरित्र पर वास्तविक रूप में प्रकाश डालता है। जब वह यह कहता है कि वह कानूनों का दान करता था और इत्यादि भी इतना ही विपुल संख्या में करता था। प्रसक्तमान लेखकों ने उसको 'कास बका' (कासों का दान बन वाला) की उपाधि से विभूषित किया है। लेखकों ने कमनानुसार यद्यपि 'बुबा की राह पर बढ़ने वाले व्यक्ति वाली योजना' की तरह मुसलमानों में उसने हजारों हिन्दुओं को दास बनाया था उपाधि अन्य अवसरों पर उनके प्रति उसका व्यवहार ब्यापक रहा। फिर भी हम यह मानना चाहते हैं कि ऐबक बर्बर हिन्दु नहीं था। वह युग ही सहिष्णुता का न था। सिन्धु महोदय ने उसका वर्णन एशिया के कुर तथा निरपी क्षेत्रों में किया है। वह कालों का दान करता था और कानूनों की इत्यादि—इस कथन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमानों के लिए वह बड़ा दानो तथा उदार था परन्तु हिन्दुओं के लिए बड़ा दुर्घटन एवं निर्दयी था।

आराम शाह

काहीर के तुर्क सरदारों ने अपना यहाँ आराम शाह का अभियोग करना। इस पर दिल्ली के तुर्क सरदार असहमत हुए। उनकी असहमता का कारण सम्भवतः व्यक्तिगत स्वार्थ ही था। अत्याम शाहों से यह बात बताई है कि आराम शाह ऐबक-पुत्र न था। 'मिर्जातुल्लिख' से भी इस बात का समर्थन हो जाता है किन्तु आराम शाह जैसे बर्बर व्यक्ति का आदि मुस्तान बनाने के पीछे कौन सी बात थी? जो भी हो अगर ऐबक की मृत्यु हुई तब तुर्कों की पारम्परिक कूट का काम। मुस्तान में बुबाबा और यगात में अनामदान स्वतन्त्र हो गए। दिल्ली के तुर्क सरदारों ने बराक के गवर्नर इस्तुतमिश को मुस्तान पर पर सुधीन करने के लिए आमंत्रित किया। अगर इस्तुतमिश बराक से दिल्ली गया और तब आराम शाह ने काहीर में प्रत्याग किया, किन्तु इस्तुतमिश ने उसे युद्ध में हराकर दिल्ली का राज्यसिंहासन हस्तगत कर लिया। इस्तुतमिश से इतनी तुर्कों का शासन प्रारम्भ हुआ है।

प्रश्न

1 What were the causes of Sultan Muizzuddin Muhammad bin Sam's success in establishing an Empire in North India (1943)

१ उत्तरी भारत में मुस्तान मुईजुद्दीन मुहम्मद बिन साम को राज्य स्थापित करने में सफलता क्यों मिली ? (१९४३)

2 Give a brief account of the campaigns of Shahabuddin Ghorl. How do you account for his success over the Rajput rulers ? (1946.)

२ शाहबुद्दीन गरी के आक्रमणों का वर्णन संक्षेप में कीजिए। राजपूत राजाओं पर उसे विजय क्यों प्राप्त हुई ? (१९४६)

3 Give a critical appreciation of the work and achievements of Shahabuddin Ghorl. (1953)

३ शहाबुद्दीन गरी के कार्यों एवं सफलताओं की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। (१९५३)

इल्बारी तुर्कों का राज्यकाल

सन्मन्त्रोन्मन्त्र इस्तुतमिश

तुर्कों के इल्बारी कबीले में इस्तुतमिश का जन्म हुआ था परन्तु इसके माइनों ने इसी के कारण इस बन्दाफराहों के हाथ बाप्पाबप्पा में हो बच दिया था। उस बन्दा में तुर्की युद्धाभ्यन्तरी कौमलों पर बिकते थे और बन्दाफराह इस बात को देख-रेख करते थे कि गलामों की पिछा बन्धी तरह हो। इस्तुतमिश ने भी उन्हीं के गिरोह में रहकर बिना प्राप्ति की और एक योग्य सैनिक बन गया। उसकी योग्यता से प्रभावित होकर छद्मावृत्ति गोपी ने कुतुबुद्दीन ऐबक को इसे खरीद लेन का कहा था। इसके व्यवहार तथा योग्यता से प्रभावित होकर कुतुबुद्दीन ने इसका बिदाह अपने पुत्र से कर दिया था और कमजोर उसे जैसे से ठीके पद पर नियुक्त करता गया। इस प्रकार कुतुबुद्दीन के मृत्यु के समय इस्तुतमिश बदायूँ का इल्बारी था। कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद साहीर के सैनिक सरदारों ने आरामगढ़ को मुस्तान बनाया था परन्तु उसकी अकर्मक्यता तथा अयोग्यता के कारण दिल्ली के अमीरों ने इस्तुतमिश को मुस्तान पद पर नियुक्त किया। युद्ध में आरामगढ़ के हारने पर इस्तुतमिश का अधिकार साहीर पर भी हो गया परन्तु इस्तुतमिश ने दिल्ली को ही अपनी राजधानी बनाई। इसी समय से दिल्ली सल्तनत का आरम्भ होता है।

इस्तुतमिश की समस्याएँ—केवल दिल्ली में मुस्तान बनन की घोषणा से ही इस्तुतमिश की कठिनाइयों का समाधान नहीं हुआ बल्कि समस्याओं का आरम्भ हुआ। ऐबक के समय भारत पर तुर्कों का केवल अधिकार मात्र हुआ था परन्तु इन अधिकारों का संगठन न हो पाया था। दिल्ली में सल्तनत के संगठन तथा स्थायी करने का भार इस्तुतमिश पर ही पड़ा और इस्तुतमिश की महानता का मुख्य कारण भी यही है कि उसने सारी समस्याओं का हल करते हुए दिल्ली के शासन को दृढ़ बनाया।

तुर्की सरदारों को बर्बात—इस्तुतमिश ने जिस प्रकार दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया था उसी प्रकार यमनी पर तानुद्दीन यल्दोज का भी अधिकार था। यल्दोज ने अपने का मर्याद हज की घोषणा की और इस्तुतमिश पर अपना अधिकार जमाते हुए उसका पान आज्ञा-पत्र भी भेजा। पहले तो इस्तुतमिश ने इसे स्वीकार कर लिया परन्तु यल्दोज के इस अपमान का बदला लेन का अवसर देखने लगा। मध्य गंगाया में मर्मालों के उत्थान के कारण एक बड़ी उपस-युद्ध हो रही थी। तानुद्दीन अकबरनी जो खारिज का चाहता था यमनी के दर से गौर को तरफ भाया और यल्दोज को हराकर उस देश पर अपना अधिकार कर लिया। यल्दोज भारत की तरफ भाया और सन् १२१४ ई० में साहीर पर अपना अधिकार कर लिया। इस्तुतमिश ने इस अवसर से लाभ उठाकर यल्दोज पर आक्रमण कर दिया और तानुद्दीन के स्थान पर उसे हरा कर बन्धी बना दिया। यल्दोज को बदायूँ के दिने में कैद किया गया तथा थोड़े समय के बाद बिना दण्ड मार दिया गया। इस प्रकार इस्तुतमिश को एक अक्षिप्तानी पक्ष ने छटकाया मिल गया।

उच्छ तथा मुस्तान में इस्तुतमिष का वृद्ध प्रतिद्वन्द्वी नासिरुद्दीन कुबाचा का उसने पंजाब के कुछ भागों पर अधिकार भी कर लिया था। यल्खोज की हाराने के बाद इस्तुतमिष ने कुबाचा को तो पंजाब से सन् १२१७ ई. में निकाल दिया परन्तु उसने दक्षिण की पूर्वतया गल्ट न कर सका। जलालुद्दीन मकजरी ने जो अब बगैजल क डर से भागता हुआ पंजाब में आ गया था अपनी दक्षिण स्थापित करने के प्रयत्न में कुबाचा के दक्षिण का नाश कर डाला। मकजरी के भारत से लौटते ही इस्तुतमिष ने कुबाचा पर सन् १२२७ ई० में आक्रमण कर दिया। मुस्तान पर आक्रमण कर क बाद उच्छ पर आक्रमण किया और उसे भी जीत लिया। कुबाचा मकजरी में भाग गया। इस्तुतमिष ने मकजरी पर भी पछ डाल दिया। कुबाचा अब भागने का प्रयत्न करने लगा और इसी प्रयत्न में वह सिन्धु नदी में डूब गया। इस प्रकार इस्तुतमिष को वृद्धे शत्रु से भी छटकारा मिल गया तथा उच्छ और मुस्तान पर अधिकार में आ गया।

मंगोल आक्रमण की सम्भावना—मध्य एशिया के विभिन्न-विभिन्न मंगोल कबीलों को संगठित करने के पश्चात् बगैजल ने अपने साम्राज्य-विस्तार पर ध्यान दिया उसने स्वार्थि पर आक्रमण करते वहाँ के शाह को परास्त किया। स्वार्थि शाह क पुत्र जलालुद्दीन मकजरी भारत की तरफ गमनी होता हुआ आया और उसका पीछ करता हुआ बगैजल भी भारत की तरफ बढ़ा। पंजाब में जाकर जलालुद्दीन ने इस्तुतमिष से दारुम माँगी। परन्तु इस्तुतमिष नहीं बुझिमानी से इस संसद से अपने को बचा लिया उस डर का कि यदि जलालुद्दीन का वह किसी भी प्रकार सहायता करता है तो बगैजल उस पर भी आक्रमण कर देगा और जिसके सिधे दिल्ली की नब स्थापित सुल्तान किसी भी प्रकार तैयार भी। बगैजल जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ सिन्ध नदी तक आया परन्तु भारत की गरमी उसके सिधे असह्य हो बनी और वह वहीं। वापस चला गया। बगैजल जान ही वापस चला गया परन्तु उसके कुछ मंगोल सैनिक सिन्धु नदी के पार रह गये और पंजाब में उपद्रव मचात रहे। बगैजल के वापस जाने के कुछ दिनों बाद जलालुद्दीन भी वापस चला गया और इस्तुतमिष इस मुसीबा से बच गया। इसमें संदिह नहीं कि इस्तुतमिष के दूरदृष्टिता ने ही कारण भारतवा बगैजल के हत्याकांड से बच गया।

बंगाल की समस्या—जलालुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद बंगाल का हाकिम अली मर्दान ने जलालुद्दीन की उपाधि धारण कर अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया जलालुद्दीन के बाद यमामुद्दीन बंगाल में राज्य करने लगा। जलालुद्दीन ने इस्तुतमिष से मुल्ह कर ली थी परन्तु यमामुद्दीन ने दिल्ली से अपना सम्बन्ध तोड़ कर राज्य विस्तार भी करना चाहा। इस पर इस्तुतमिष ने सन् १२२५ ई० में बंगाल पर आक्रमण कर दिया। यमामुद्दीन हारकर भाग गया परन्तु इस्तुतमिष के लौटते ही उसने पुन बंगाल तथा बिहार पर भी अधिकार कर लिया। इस समय इस्तुतमिष का बड़ा बेट नासिरुद्दीन महमूद जो अबक का हाकिम था बंगाल को पुन जीतने को भेजा गया। नासिरुद्दीन ने बंगाल पर अपना अधिकार तो कर लिया परन्तु पीछे समय के बाद ही उसका बेहान्न हो गया तथा बंगाल में फिर विद्रोह आरम्भ हो गया। इस्तुतमिष जब सन् १२० ई० में स्वर्ण फिर बंगाल गया और विद्रोहियों को समाप्त कर अपना सत्ता स्थापित कर लौट आया।

राजपूतों से संघर्ष—हम देख चुके हैं कि १२२५ ई. तक इस्तुतमिष पश्चिमोत्तर सीमा की समस्याओं को मुसलमान में बुरी तरह लपटा हुआ था। पूर्ण की और

भी बनी उसे तुर्की सरबारों को खाना घोष बा। अपनी परिस्थिति का पूर्ण ध्यान रखते हुए इस्तुतमिश ने किये भी स्वतन्त्र राजपूत राज्य से अन्तर्बेद को छोड़कर युद्ध नहीं किया। किन्तु समस्याओं पर सीधे विजय पाग ने पश्चात् उसने इनको शक्ति का दमन करना अत्यन्त आवश्यक समझा क्योंकि राजपूताने में बीहान आमीर ने राज्य सिंह तथा राजगम्भीर में बल्लभदेव ने अपनी शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली थी। इसी प्रकार चन्देकों और पछिहारों की शक्ति मध्य भारत और बुन्देलखण्ड में बहुत बढ़ गई थी।

इस्तुतमिश ने १२२९ ई. से इन राजपूत राज्यों की ओर अपना ध्यान दिया और बार वर्ष के भीतर ही उसने राजगम्भीर, मन्दावर, आमीर, बलभदेव बलाना ठहानमड तथा सावर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। १२३१ में उसने आम्बिर में जीत लिया और १२३२ ई० में उसने चन्देको तथा १२३४ ई० में उज्जैन और मिहिरा विजय के लिए सेनाएँ भेजा किन्तु इस्तुतमिश को विजय अस्वाभ्युक्ति हुई। इन राजपूत युद्धों के अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे-मोटे राजपूत राज्यों से भी इस्तुतमिश का संघर्ष हुआ था। इस्तुतमिश ने इन राजपूत राज्यों को सम्मिलित कर देने के लिए बाध्य किया था और वही तुर्की वस्तुओं बसाकर सर्वदा के लिए राजपूत विद्रोहों का अन्त कर दिया।

बोजाख की पुनर्विजय—गंगा-जमुना के बीच का मु-माग बोजाख कहलाता है। इस्तुतमिश जिस समय राजधानी में तुर्की सरबारों के विद्रोह का दमन कर रहा था ठीक उसी समय उसे अत्यन्त वेस कर उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी जिनमें बनारस कन्नौज तथा बदायू प्रमुख हैं। तुर्की सेना को लक्ष्य कर रहेखसण्ड भी पूर्ण स्वतन्त्र हो गया। क्योंकि इस्तुतमिश को राजधानी के विद्रोहों से अवसर मिला उसने तुरन्त इन विद्रोही भागों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें तुर्की सत्ता स्वीकार करने को बाध्य किया।

जमीका द्वारा मान्यता—भारतवर्ष में इस्तुतमिश की स्वाति का समाचार पाकर बमदाह के जमीका ने उसके पास अपने दूत भेजकर उसे जमीका के सहायक की उपाधि दी तथा उसे भारत का वास्तविक और नैतिक शासक मान लिया। जमीका के इस मान्यता प्रदान से इस्तुतमिश का मान और बढ़ गया तथा अब उसका स्थान नैतिक अधिकार पर आधारित हो गया।

इस्तुतमिश की मृत्यु—निरन्तर युद्ध करते रहने के कारण इस्तुतमिश का स्वास्थ्य गिरने लगा और अपने अन्तिम दिन समीप समझकर उसने तुर्की अमीरों को बुलवाया तथा उनसे अपनी बड़ी राज्या की अपना उत्तराधिकारी मानने को कहा। कहा जाता है कि उनकी आज्ञाकारी शक्ति पर मुस्तान न अपना आदेशों प्रत्यक्ष नहीं कहे कि नहीं होते हुए भी राज्या अपने भाइयों से अधिक योग्य मानित होगे और अपना मुह बीबार की तरफ कर कर २९ अपरैल सन् १२३६ को संसार छोड़ गया।

इस्तुतमिश के युद्धों का महत्व—यदि हम इस्तुतमिश के समय की राजनीतिक अवस्था पर ध्यान दें तो हमें ज्ञात होगा कि जिस समय वह सिहाननामीन हुआ उस समय की स्थिति इतनी बाबोडोल थी कि समस्त तुर्की साम्राज्य कई भागों में विभक्त हो जाता। आन्तरिक विद्रोहों और बाह्य आक्रमणों का समान भय बना हुआ था। और तो और राजधानी पर भी इस्तुतमिश का बड़ा अधिकार नहीं था। ऐसी स्थिति में बहुत दूरस्थता और धैर्य की आवश्यकता थी। इस्तुतमिश में यह दोनों गुण थे।

उसका नैतिक अभियान मन्द गति से चलस्य हुआ रहा किन्तु वे अग्रगण्य सयके शासक सफल सिद्ध हुए। बहुत अधिक राज्यों पर एक साथ बिना समझे-झूठे आक्रमण का देने पर अथवा कई स्थानों के बिद्रोहों का दमन काय एक साथ हाथ में ले लेने में निरक्षय ही असफलता की आशंका या किन्तु इस्तुतमिश ने बहुत धैर्य-समर्थ कर काम किया और उचित अवसर पर उसने उचित क्षण से आक्रमण किया। राजपूतों की बिद्रोहात्मक प्रवृत्ति उत्तराखण्ड बढ़ता चला गई होती यदि इस्तुतमिश ने अनुत्तरता से काम न लिया होता। इस्तुतमिश की सैनिक सफलताओं का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उसने विविध प्रदेशों में बिद्रोह की आशंका दूर करने के लिए तुर्की बस्तियाँ स्थापित करवा। पश्चात् और औत्तर प्रदेश में तुर्की बस्तियाँ स्थापित करके इस्तुतमिश ने बहुत बड़ा काम किया था।

इस्तुतमिश के कार्यों का मूल्यांकन

भारत के मुसलमान राजाओं में सबसे पहले सुल्तान की उपाधि इस्तुतमिश का ही जर्मीठा द्वारा प्रदान की गई थी। अतः उसे ही भारत का पहला मुसलमान सुल्तान माना जाता है। मुसलमन धर्म का वास्तविक संस्थापक इस्तुतमिश ही था। वह एक साहसी सैन्य एवं सफल सेनापति था। जिस राज्य का निर्माण ऐबक ने किया था वह उसकी मृत्यु के पश्चात् ही विघटित होन लगा था परन्तु इस्तुतमिश ने ही राज्य को विघटन से बचाया। इतना ही नहीं उसने उसकी उसने सुसंयोजित एवं सुव्यवस्थित भी किया। उसने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त किया राजपूतों को नष्ट-मस्तक किया बिद्रोहियों का दमन किया दोबारा में फिर से अपना प्रभुत्व स्थापित किया मराठों के आक्रमण में अपने राज्य की रक्षा की इन सब कार्यों के साथ राज्य में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखने का भी प्रयत्न करता रहा।

इस्तुतमिश कला तथा साहित्य-क्षेत्रों में भी था। इमारतों के बनवाने का भी वह शौकीन था। सुप्रसिद्ध कुतुबमीनार की उसी ने पूरा करवाया था। जजमेर में उसने एक मध्य मस्जिद का निर्माण करवाया था। यद्यपि उसका अभिलाष समय-प्रदेशों में व्यतीत होता था तथापि धार्मिक तथा विज्ञान पुस्तकों के संरक्षण के प्रति वह सदैव सतर्क रहता था। बड़ा करते समय भी उसे धार्मिक कृत्या तथा विज्ञान का ध्यान बना रहता था। उसने प्रसिद्ध इतिहासकार मिनाहान-उस्-सिराज की धार्मिक प्रवचन तथा उम्माह उल्लेख के अवसर पर 'कुतबा' पढ़ने के लिए खाकिमर हुसैन के सामने उत्तर की ओर के स्थान पर नियुक्त किया था। वह उम्माह लोगों का बड़ा आदर करता था और वे ही उसके धार्मिक अत्याचार के साधन थे। वह धार्मिक कृत्यों के पालन में बड़ा कट्टर था और इसी कारण मलाहियों ने उसकी हत्या करने का असफल प्रयास किया था। तुर्की मनुष्यों के प्रति उसके हृदय में अत्यधिक आदर-भाव रहता था। विपत्ति में पड़े हुए तथा शरणार्थी बंशों के बर्बर फज्र-उल्ल-मुल्क उसामी ने प्रति उसका आदर-भाव तथा विनम्रता का व्यवहार उसकी गुणग्राहकता का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस्तुतमिश ही सर्वप्रथम भारतीय शासक था जिसने कुछ अरबी मुद्राओं का प्रचलित किया। जंगल लोगों के बने टर्कों को प्रचलित किया था जो आधुनिक रुपया का पूर्वज कहा जा सकता है।

इस्तुतमिश के उत्तराधिकारी

यद्यपि इस्तुतमिश ने मरते समय अपनी बेटी रजिया की अपना उत्तराधिकारिणी नियुक्त किया था तथापि तुर्की अमीरों ने एक स्त्री के आधिपत्य में काम करना अपने न के विकास समर्थ कर इस्तुतमिश के दूसरे बेटे समुद्दीन फौरज की सुल्तान नियुक्त

क्रिया। परन्तु जैसा इस्तुतमिय ने कहा था दस्तुद्दीन निश्चया साबित हुआ। उसने राज्य कार्य को बजहें बना कर अपना समय सुरा और सुन्दरियों में बिताया। प्रारम्भिक काल में दस्तुद्दीन को माता साहलुनान ने योग्यता से काम सम्भाला परन्तु बहुत जल्द तुर्की अमीरों को मर्द करने का प्रयत्न करने लगी। अमीरों ने बिग्रीह कर दिया और उसे बन्दी बनाकर कत्ल करवा दिया। इस प्रकार दस्तुद्दीन का राज्य काल ६ महीने और ७ दिन के बाद समाप्त हो गया।

अब अमीरों ने रजिया जे, सुस्तान बनाया। रजिया ने सुरत अवतों योग्यता का परिचय दिया और बिग्रीह का समन किया। रजिया को योग्यता तथा नारिय ह। उसके दुःख के कारण बने। वास्तव में उस समय के तुर्की अमीर अपना एक पियरेह बनाय हुये थे जिसे "बहुलमाना" कहते थे और यह बहुलमानो शासन करना अपना अधिकार समझता था। रजिया का चकितसाफी शासन-नियमन इनके उद्देश्य के विरुद्ध रहा। उन्होंने बिग्रीह के सबे सबे कर दिये तथा अपने बिग्रीह का अधिकार प्रमाणित करने के लिये रजिया पर बाहुत गुलाम से बर्बर प्रेम का इलाज किया। दस्तुत साहौर मटिषा आदि के इस्पाही न बिग्रीह कर दिया। यद्यपि रजिया ने साहौर का बिग्रीह समन कर दिया परन्तु मटिषा के हाकिम दस्तुनिया से हार गई और बन्दी बना ली गई। अब रजिया ने कुटनाति से काम लिया और दस्तुनिया से बिग्रीह कर उसकी ही सहायता से दिल्ली पर अधिकार करने के लिये बड़ी। परन्तु उनकी हार हुई और दोनों ही कत्ल कर दिये गये।

रजिया का राज्यकाल

अब बहुल-गानी ने बहराम साह को सुस्तान बनाया परन्तु उसके भी शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न करने पर उस गद्दी से उतार कर इस्तुतमिय के पीन मसूदसाह (बनहोन का बेटा) को सुस्तान बनाया। मसूदसाह ने बड़ी योग्यता से कार्य आरम्भ किया और अपने चाचा नासिरुद्दीन को कैद से मुक्त कर बहराम का हाकिम नियुक्त किया। अमीरों को भी दबाया परन्तु बहुलगानी अब नियंत्रण मानन को तैयार न था। उन्हे मसूदसाह की योग्यता लज्जे लगी। परन्तु सुल्तानसुल्ताना बनावत करने के बजाय पहरान रचन लग।

बहुलमाना में भी एक मुबकों का गुट बन रहा था जिसका मूल्य बलबन कर रहा था। मसूदसाह ने बलबन को अमीर हाकिम के पद पर नियुक्त कर सम्मानित किया। परन्तु बलबन इससे भी अधिक चाहता था और मसूदसाह की योग्यता तथा अधिकार को मर्द करने के लिये नासिरुद्दीन महमूद को आ बहराम से आ उमाड़ना आरम्भ किया तथा नासिरुद्दीन को माता को अपनी तरफ मिला लिया। नासिरुद्दीन बहराम से पासक। ये औरत का भेष बनाकर दिल्ली भागा और अपनी माँ के पास जमानगान में छिपा रहा। अब बलबन ने मसूदसाह का कैद कर नासिरुद्दीन का सुस्तान घोषित किया।

मसूदसाह ने १२४१ से १२४६ ई० तक राज्य किया।

नासिरुद्दीन महमूद का राज्यकाल

नासिरुद्दीन को बिग्रीहसनामीन कराने कुछ शरदारों और अमीरों ने अपना महीना उन्नति के कल्पना की किन्तु नासिरुद्दीन ने प्रत्येक राजकार्य को बहुत साध समझ कर किया। न तो उमने सहसा क्रियो को परबुद्धि कर दी और न किसी का सहसा परबुद्धि हा कर दिया। बलबन जैसा सुयोग्य भर्त्ता पाकर नासिरुद्दीन को

अनेक कठिनाइयों सरक जात हुई। पहले हम नाहिरदीन की कठिनाइयों का ही उल्लेख करेंगे।

नाहिरदीन की समस्याएँ

साम्राज्य विस्तार अथवा राज्यसत्ता के स्थायित्व में बाधा-मन्त्रक्य उपस्थित होने बाधो निम्नलिखित समस्याएँ नाहिरदीन के सम्मुख विद्यमान थीं—

तुर्की अमीर—इस्लामिया की मुसु के पश्चात् से ही तुर्की अमीरों की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती थी। उनमें पारस्परिक द्वेष और ईर्ष्या की भावना थी अतः वे अनेक दशा में बिगड़त ही गए थे और प्रत्येक दस थपना राजनीतिक प्रमुखा स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था। इन्हीं अमीरों तथा सरदारों ने सिद्दासन के लिए पर्याप्त एवं हथ्याओं का ताँता बँधवा दिया था। इनकी कृतियाँ के कारण कोई न मुस्तान द्वा-चार वर्ष से अधिक टिक नहीं पाता था इसीलिए तुर्की साम्राज्य के विस्तार में बाधा उपस्थित होती थी।

२ राजपूत—विभिन्न राजपूत राज्य भी केन्द्र को दुर्बल देख कर स्वतन्त्रता की घोषणा कर बैठे थे। अक्सर पाकर वे सन्तनत पर आक्रमण करने का प्रयत्न करते थे। कर देना बन्द कर देना वी सामारण बात थी। साम्राज्य विस्तार में वे भी बहुत बड़ी समस्या सिद्ध हो रहे थे।

३ र्थवोस—इन दिनों मंगोलों के आक्रमणों ने सीवान्त प्रवेश का प्रयोजित कर दिया था। यदि इन आक्रमणों को न रोका जाता तो दिल्ली सन्तनत सतरे में पड़ जाती।

तुर्की सरदारों पर नियन्त्रण—बहुधा मुस्तान पक्षपात करते थे जिससे सरदारा में असन्तोष उत्पन्न हो जाता था। नाहिरदीन ने पक्षपातहीन होकर सरदारों के साथ उचित व्यवहार किया और उसने सरदारों को इस प्रकार पचासीत किया कि किसी दस बिस्व को शक्ति बढन न पावे। कालान्तर में उसने बल्लन की योग्यता से प्रभावित होकर उसे बिसेय प्रथम दिया और इस प्रकार बल्लन के दस का पूर्ण सहपता प्राप्त करके अन्य अमीरों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया। बल्लन की शय से ही उसने दोग सौ की भटिण्डा तथा काहीर का शासक नियुक्त कर दिया जिसने पश्चिमोत्तर घामा की रता का मार अपने ऊपर लिया। बल्लन ने अन्य क्षिपी सरदार भी सब नाहिरदीन के समर्पक हो गए।

बंझाव पर पुनः अधिकार—बंझाव पर पुन अधिकार स्थापित करने के लिए नाहिरदीन ने १२४० ई० में आक्रमण कर दिया। नमक की पहाड़ी के राजा अपपाक को पराजित करके मुस्तान दिल्ली लौट आया। उभी समय झेसम नहीं के उम पार मुयली को सता भी पड़ाव जास पड़ी थी। किन्तु मुस्तान की बिगास सना की बैनकर उमका माहम न हुआ कि वह आक्रमण करे।

उपरान्त बिबरण न स्पष्ट है कि झसम नहीं के पार र्थवोसों का अधिकार था तथा नाहिरदीन के राज्य-सीमा से बाहर था।

जनालदीन का बिद्रोह—बंझाव के उपरान्त क सम्बन्ध में हम पहले ही पढ़ चुके हैं। यहाँ कभी-कभी तुर्क सरदारा न भी बिद्रोह का शण्डा पड़ा किया था। नाहिरदीन

के भाई जसालद्दीन ने भी जो कमीज का हाकिम या बिरोह करने का निश्चय किया। उसने नासिरद्दीन को यह सूचित किया कि बलबन परमन्स द्वारा सिंहासन प्राप्त करना चाहता है। नासिरद्दीन ने उसकी सूचना को ठुकरा दिया। तब वह संघर्षित होकर तुर्किस्तान भाग गया और वहाँ मंगोलों से मिलकर दिल्ली का सुल्तान बनने की चेष्टा करने लगा। किन्तु वह सफल न हो सका। नासिरद्दीन ने उसे समाधान दिया और साहौर का शासक नियुक्त कर दिया। जसालद्दीन ने उसके नाम कोई बिरोह नहा किया। इस प्रकार बेल्खान में शान्ति स्थापित हो गई।

किस्लू खान का बिरोह—नागीर के सरदार किस्लू खान ने सुल्तान से यह प्रार्थना की कि सुल्तान तथा उल्छ की जागीर उसे दी जायें। यह जागीरें कुरैब के अधिकार में थीं अतः सुल्तान ने यह शर्त लगा दी कि यदि वह कुरैब की तामीर तथा अपनी अन्य जागीरों के बेठा है तः उसे उक्त दो जागीरें दे दी जायेंगी। सुल्तान की शर्तों की उपेक्षा करते हुए किस्लू खान ने सुल्तान तथा उल्छ पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। झगड़े का निपटारा करने के लिए सुल्तान को स्वयं वहाँ जा पड़ा।

बलबन का उत्थान—सुल्तान मसूबशाह को गद्दी से उतारने तथा नासिरद्दीन की सुल्तान बनाने में बलबन का सबसे अधिक हाथ था। सुल्तान बनने पर नासिरद्दीन ने बड़ी योग्यता से राज-कार्य सम्पादित तथा बिरोहों का दमन भी किया परन्तु बलबन का वह न दबा सका। बलबन को महत्वाकांक्षा की सीमा न थी और वह स्वयं सुल्तान बनना चाहता था। नासिरद्दीन ने बलबन को हटाने के लिये भारतीय मुसलमान इमादुद्दीन रैहान को मुख्य मंत्री बनाया तथा बलबन को हसी और नागीर भेज दिया। बलबन ने सुल्तान की आज्ञा का अवश्य मान लिया परन्तु पदच्यवहार करने लगा। नासिरद्दीन समझ गया कि बलबन को हटाना इतना आसान नहीं है और उसे पुनः बुलान में ही अपना भला समझा। बलबन अब राज्य-कार्य नामक की हैसियत से करने लगा तथा प्रति दिन अपनी शक्ति को बढ़ाने की नई योजना बनाने लगा। उसने रैहान कुतुबुद्दीन खान तथा किस्लू खान के बिरोहों का दमन भी किया। बलबन की कूटनीति तथा योग्यता के सामने नासिरद्दीन अपने को असहाय पाकर अब राज्य-कार्य पूर्ववत् बलबन पर सौंप कर स्वयं अन्तःपुर में वारिधिकाओं में अपना जीवन व्यतीत करने लगा। अतएव उसने बलबन की पुत्री से विवाह कर रक्का या तथापि बलबन नासिरद्दीन के विनाम का मार्ग तैयार करता रहा। यदि हम इसामी के कुतूह-उम्-सलावीन पर विश्वास कर तो मानना पड़ेगा उसने नासिरद्दीन के पुत्रों का विधवा द्वारा नाश करवाया तथा सुल्तान नासिरद्दीन को विधवा के सन् १२६९ में समाप्त कर दिया तथा स्वयं सुल्तान बन बैठा।

सुल्तान बलबन

बलबन की समस्याएँ

बलबन के सम्मुख निम्नलिखित समस्याएँ थी—

(१) संसन्त का सुबुद्धिकरण—मराठ पर तुर्की साम्राज्य स्थापित हुए लगभग १० वर्ष हो गये थे किन्तु राज्य के अब तक बिदाह और पड़ोसों का ठाँठ नहीं टूटा था। बिदेहा तथा बिमित का प्रतिष्ठ सम्बन्ध अब तक भी स्थापित नहीं हो पाया था। भारतीय राज तुर्कों की बुद्धि की दृष्टि से बेसन थे। प्रजा का भी यही भाव

था। केवल मार्शल और मय के द्वारा यह शासन चल रहा था। बिरोहियों को ऐसे बानाबराण म फलने-फूलने का अवसर मिल जाया करता था और उनसे राजसिंहासन घसट जान की बराबर आशंका बनी रहती थी। बल्लभ ने सम्मुख इस कमजोरी को भी दूर करने का पहला समस्या थी।

(२) चासीस बाँटों की समस्या—इस्तुतमिश ने सस्तनत के सुवृद्धीकरण के लिए चासीस बाँटों के बल का संगठन किया था। जिन्होंने उसके समय में तब कुछ राज-मन्त्रि दिखलाई किन्तु काफ़ान्तर से ये राजनीतिक बिरोहों के प्रमेता सिद्ध हुए। यह अत्यधिक महत्वाकांक्षी हो गये थे और राज्य हड़पने की चिन्ता में लीन थे। नासिस्तीन के मंत्री पक्ष से बल्लभ ने इनमें से कुछ का ठो हमल कर दिया था और कुछ ने पीढन से आँखें मूँच ली किन्तु अभी कुछ शेष रह गये थे जिनका हमल बहुत ही आवश्यक प्रतीत हो रहा था।

(३) आर्थिक समस्या—नासिस्तीन अपना उसके पूर्ववर्ती सुस्तानों के समय में जो राजनीतिक बिरोह हुए थे उन्हें दवाने में राजकोष का बहुत बड़ा भंड रिक्त हो गया था। इतना ही नहीं जनक सरदारों ने कर देना भी बन्द कर दिया था। बल्लभ ने सम्मुख इन आर्थिक समस्या म विकट रूप धारण कर लिया था जिसे सुलझाव बिना राज-कार्य असम्भव था।

(४) विभिन्नो का हमल—अभी ऐसे हिन्दू साहसी राजे विद्यमान थे जो कई बार कुचले जान पर भी बायल साँप की तरह फुटकार उठते थे और कुछ ता सुस्तान की प्रजा का मुट्ठे-बसोटते राजधानी तक चले जाते थे। इन्हें दवाने के लिए किये गए अब तक के सारे प्रयत्न पूर्ण सफल नहीं हो सके थे। अतः सस्तनत की प्रतिष्ठा और उसकी सुरक्षा के लिए आवश्यक था कि इन उपद्रवी हिन्दू सरदारों को पूर्णतया दबा दिया जाय।

(५) स्वतन्त्र राजपूत राज्यों का हमल—जब विभिन्न राजपूत राज्यों से सस्तनत को इतना बड़ा खतरा बना था तब मक्का सस्तनत को राजपूत राज्यों से कितनी बड़ी हानि की आशंका की जा सकती थी वह स्वतःसिद्ध है। बुन्देलखण्ड बनेसखण्ड तथा राजपूताना में स्वतन्त्र राजपूत राज्यों की स्थापना हो चुकी थी जिन्होंने भारत से तुर्कों का निष्कासन अपना ध्येय बना लिया था। इन राज्यों का हमल न केवल साम्राज्य विस्तार की दृष्टि में आवश्यक था प्रत्युत सुख्खा की भावना से भी इनका हमल आवश्यक हो गया था।

(६) मंगोल आक्रमण की समस्या—साम्राज्य पर आघात पहुँचाने वाली एक महत्वपूर्ण समस्या मंगोलों का आक्रमण कह सकते हैं। सिन्ध तथा पश्चिमी पंजाब में इन्होंने अपनी बड़ जमा की थी और मध्य के समस्त मुसलमान साम्राज्यों को इन्होंने रौख दिया था। मध्य एशिया के विज्ञान तथा जग्याम्य महापुस्त्य भाग कर दिल्ली में घरण ले रहे थे। इन दृष्टि से तथा अन्य दृष्टियों से भी मंगोलों का भारत को और बड़ खाना कभी भी सम्भव हुआ सकता था। देश का असुबुद्ध शासन और उस पर बाध्य आक्रमण भला कितना मयाबुद्ध सिद्ध होता।

उपयुक्त बहिनाइसी की ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि बल्लभ ने लिए दिल्ली का राजमुकुट बाध्य जगमगाहट के बाबज़ूर काँटी का ताज मर था किन्तु इन बूढ़ अनुभवी मूल्तान ने अपनी शक्ति मुबद्ध करने के साथ-साथ साम्राज्य को उपनि क पक्ष पर अग्रसर कर दिया जिससे उसकी मग-ध्वनि समस्त मध्य-एशिया

समस्याओं का निराकरण

प्रतिष्ठा वृद्धि—बलवन के सम्मुख बितर्क। समस्याएँ जो उन्हें सुसन्धान के लिए सबसे पहले यह आवश्यक था कि वह सुस्तान पर क। राज्य में सर्वोच्च वस्तु स्थापित कर दे। अब तक के सारे सुस्तान राज्य-पर प्रतिष्ठाहीन थे। सरकारी और निजी के हाथ की कठपुतली राज्य ने नाशते फिर और दरबार में किसी प्रकार का अनुशासन स्थापित करने में वे असफल सिद्ध होते रहे किन्तु बलवन ने यह समझ लिया था कि सुस्तान के पय की प्रतिष्ठा-वृद्धि बिना कर्मचारियों पर बाक जमाये नहीं कम सकती है और जब तक कर्मचारियों पर बाक नहीं जमेगी तब तक प्रजा सही प्रभावित हो सकती। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सुस्तान में अपने दरबार को इस प्रकार सुव्यवस्थित सुसंगठित एवं सुसज्जित किया कि वह मध्य एशिया के राजदरबारों का आवर्धन बन गया।

हिन्दू विद्रोहों का दमन—बलवन के शाही ठाट-बाट ने सम्मुख मुसलमान सरदारों को आकर्षित कर दिया किन्तु हिन्दुओं पर इसका कोई विषय प्रभाव नहीं पड़ा। हिन्दू विद्रोहों के दमनार्थ बलवन ने सेना को पूर्ण सुव्यवस्थित किया। राज्य में अत्यधिक उपद्रव मचाने वाले मेवातियों का दमन उसने बहुत ही उत्कर्षता से किया और १२६६ ई० में उसने न केवल उनका सर सदा के लिए कुच्छ दिया प्रत्युत गोपाल गिरि में एक मुद्दह यज्ञ बनवा कर वहाँ अफमान सैनिक नियुक्त कर दिये गये।

मेवातियों के दमन में सुस्तान जीत हो था कि अन्तर्बल और अवध में उपद्रवियों ने अत्याचार आरम्भ कर दिये। बलवन ने एक कुशल घासक की भाँति व्यवहार किया। उसने उपद्रवी क्षेत्रों को कई राजनीतिक भागों में विभक्त करके उन्हें एक-एक अधिकारी के अधीन कर दिया जो अपने क्षेत्र के जंगलों का काट कर और सबकों का निर्माण करके विद्रोहियों का दमन करते रहे। काफी रक्तपात के पश्चात् यहाँ शांति स्थापित हो गई। भोजपुर, पटियाळा और कम्पिल में सैनिक चौकियाँ स्थापित कर दी गईं क्योंकि ये उपद्रव के यज्ञ थे। अवध के विद्रोहियों के दमन में तत्कालीन सुस्तान को यह सूचना मिली कि कटेहर प्रान्त में भी हिन्दुओं ने विद्रोह कर दिया है जिसे असतोहा और बघाए के हाकिम दवान में अग्रकक्ष हुए हैं। इस पर बलवन के क्रोध की सीमा न रही और उसने तुरन्त राजधानी पहुँचकर वहाँ से एक विद्यास सेना संगठित करके दमनार्थ प्रस्थान कर दिया। विद्रोहियों का दमन जिस निर्विघातपूर्वक किया गया उसका उल्लेख न करना ही धार्मिक है। 'इस भाँति निर्धन हत्याया कर अत्याचारों एवं प्रबल सैनिक प्रदर्शन द्वारा मेवात अन्तर्बल अवध और कटेहर के विद्रोह नाश किए गए।

तुक अमीरों पर नियन्त्रण—साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक था कि उन समस्त सरदारों तथा अमीरों को पूर्ण नियन्त्रण में कर लिया जाय जिससे स्वामि भक्ति की तनिक भी आशंका हो। रामसी सरदार इनमें प्रमुख थे। सर सी मुत्तार इन सरदारों में सर्वोच्च अधिक प्रबल था। सर सी न केवल बलवन का सम्बन्ध था प्रत्युत तामिबदोन के शासन-काल में बलवन का विश्वासपात्र बनकर तत्कालीन राजनीति में उसने बहुत बड़ा भाग लिया था किन्तु सुस्तान बनने के पश्चात् सुस्तान की दृष्टि न केवल सर सी की आर से बरक गई प्रत्युत सम्पूर्ण रामसी दल में उसे नृपा हो गई थी। उसकी इस नीति को देखकर सर सी सुस्तान बलवन से मिलन नहीं मचा। बलवन उससे संबंधित हुआ और सोचने लगा वहाँ सर सी मंगोलों से मिलकर

मुससे हिस्सी न चीन के। जब खेर ली बार वर्ष तक हीका-हवाका करता रहा और बरबार में उपस्थित नहीं हुआ तो सुस्तान ने बिप बेकर उसकी हत्या करवा दी।

खेर ली की मृत्यु के पश्चात् सुस्तान न तातार ली तथा उसके बाद तुगरिक बेम को बंगाल का हाकिम नियुक्त किया। पहले बंगाल पर सुस्तान का अधिकार केवल नाम मात्र की था किन्तु अब बंगाल पूर्णतया उसके अधीन हो गया। सुस्तान ने यहाँ कठनीति से काम लिया। उसने अधिकारायण्य एवं अनुभवी व्यक्तियों को सीमांत पुर्षों में रख दिया। इनमें पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष था अतः इनकी फूट से मंगोखों ने काम चलाया। बलबन को भी अच्छा अवसर मिला और उसने इन पर दोपारोपन करके इन्हें बन्दी बनवा लिया अथवा बंध करवा दिया।

मुल्तान विभाग का पूर्ण संगठन करके बलबन अभीरों एवं सरदारों के दमन में संलग्न था। उसे राज्य की कड़ी से कड़ी सूचना मिल जाती थी। पक्षपातहीन कठोर चण्ड बिद्या ने बिद्रोहियों को साहसहीन कर दिया था। राज्य में पहले की अपेक्षा बहुत कुछ शांति स्थापित हो चुकी थी।

तुगरिक का बिद्रोह—बलबन के दास तुवरिक ने जो बंगाल का हाकिम था उसके विरुद्ध बिद्रोह कर दिया। बात यह थी १२७९ ई. में पश्चिमोत्तर सीमा पर मंगोखों के आक्रमण हुआ रहे न बिनके बहाने में बलबन के पुत्र संलग्न थे। बलबन अचानक बीमार पड़ गया। तुगरिक ने सत्ता अब बलबन की जीवन-सीखा समाप्त होने वाली है। तुगरिक ली के पास सैनिक शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई थी अतः उसने स्वयं को कठनीति का सुस्तान स्थापित कर दिया। तुगरिक ली को इबान में असफल र. सेनापतियों का बलबन न मीठ न बाट उतार दिया। अन्त में तुगरिक को इबान के लिए सुस्तान ने स्वयं प्रस्थान किया। तुगरिक बंगाल के जगहों में छिन्न गया। सुस्तान को तुगरिक का पता न लगा। अन्त में तुगरिक का पता लग गया और उसका बंध कर दिया गया। तुगरिक के साथी पकड़ गये सुस्तान उन्हें लेकर कठनीति जाया। बहुत इन बिद्रोहियों का कुत्से बाजार फाँसी दे गई। सारी जनता बर्बाद उठी। सुस्तान ने बुगरा ली को बंगाल का हाकिम नियुक्त किया।

हिस्सी लौट कर सुस्तान ने अपनी सेना के उन सैनिकों को बण्ड देने का निश्चय किया था। तुगरिक से मिल गया था किन्तु बहुत अनुरोध-विनय के पश्चात् साधारण विवादियों को मुक्त कर दिया और बड़े अधिकारियों की भी हल्की-फुल्की सजा देकर अपना उम्हू मैले पर बैठ कर सारे नगर की सैर करा कर अभिमान से दिया।

सीमांत प्रदेशों की सुरक्षा—जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि पंजाब तथा हिन्द में मंगोखों का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। इनसे साम्राज्य का बहुत अधिक पतन था अतः सबसे पहले सुस्तान ने अपनी सैनिक शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली। मेला सम्मन्ध समस्त कुम्भारस्थाओं का अन्त करके बलबन ने पहले स्वयं का सशक्त बना लिया तत्पश्चात् उसने लाहौर के दुर्ग की मरम्मत करवाई और उसे एक सुदृढ़ रक्षास्थल बना दिया। सीमांत प्रदेशों की रक्षा का भार उसने एक व्यक्ति के हाथ में न देकर तान अधिकारियों पर छाड़ा जिससे बिद्रोह की आशंका न रहे जाय। इस प्रकार सुस्तान ने सीमांत प्रदेशों को तीन जगहों में विभक्त करके एक क्षेत्र में तातार ली को दूसरे में साहजाना मुहम्मद ली की और तीसरे में बुगरा ली का नियुक्त कर दिया। इन क्षेत्रों में साहजाना और और सैनिकों का एक एक दिया गया। आवश्यकता पड़ने पर इनकी महाशक्ति के लिए राजधानी में भी एक बिद्याल मेला तदैव सुसज्जित

ली थी। बसबन के इन प्रयासों का फल अच्छा हुआ। यद्यपि मयोर्को ने म्याम ती पार करने के लिए कई बार प्रयास किये पर उन्हें बराबर मुह की लागी पड़ी। मोर्को के आक्रमणों को रोकने में ही शाहबादा मुहम्मद को प्राणों की आहुति देनी पड़ी। मुस्तान का यह उत्तराधिकारी उसका बहुत ही प्रिय था। इसकी मृत्यु का बहुत हा धक्का मुस्तान के दिल पर लगा। यद्यपि मयोर्को ने विस्ली की ओर से मुह ले लिया पर पुनः-शोक में बसबन को एक वर्ष बाद संसार से ही मुह फेर लेना पड़ा। बसबन ने मयोर्को को जाये बढ़ने में अवसर रोक दिया था किन्तु वह उनका समझ ही कर सका। हम आगे देखेंगे कि अवसर पाकर इन्होंने पुनः आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था।

बसबन के कार्यों का महत्व और उसका चरित्र—नासिरुद्दीन के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि वह धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाला एकान्तवासी मुस्तान था। कि उस बसबन जैसा योग्य व्यक्ति न मिला होता तो निश्चय ही पूर्व मुस्तानों द्वारा निर्मित साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया होता और तुर्की साम्राज्य की रपा गति हुई होती। उसकी क्षयना नहीं की जा सकती। नासिरुद्दीन के नायब की हैसियत से बसबन ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। दोबाब के बसमुष्ट हिन्दुओं के मित्रों को दवाने का प्रेम बसबन को हो दिया जा सकता है। बसबन ने ही तुर्की जमीनों और सरदारों की शारस्त्रिक ईर्ष्या का अन्त करके राज्य में शान्ति का वातावरण उत्पन्न किया। सीमा क्षेत्रों स्थानों पर सशक्त सेनाएँ नियुक्त करके मयोर्को को जाये बढ़ने से रोकने वाला बसबन ही था। उसके कार्यों को देखते हुए यह मिश्रधर्मपूर्वक कहा जा सकता है कि तुर्की साम्राज्य का यह मरतलक अपने पूर्ववर्ती शासकों से कहीं अधिक कुशल था।

शासक बंश में बसबन ही एक ऐसा मुस्तान हुआ जो उत्कामीन परिस्थितियों का अच्छी तरह समझ सका। १३ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध उत्तमता एवं विक्रम का काल था। उत्कामीन वातावरण के लिए वो शर्तें अत्यन्त आवश्यक थी—बनता की दृष्टि में राज-शक्ति का प्रभाव बढ़ाना और शासन-तन्त्र को सुव्यवस्थित करना। अतएव बसबन ने एक ऐसे राजत्व सिद्धान्त को अपनाया जो उत्कामीन वातावरण का अनुकूल था। उसने राजत्व के आदर्श तथा क्रियात्मक स्वरूप का निरूपण भर ही नहीं किया बरन् उन्हें क्रियात्मक रूप भी दिया। राज-शक्ति का प्रभाव बढ़ाने के लिए उसने राजमन्त्रा में प्रवर्धन का प्रवर्धन किया। सामाजिक अक्षरों पर तथा राजमन्त्रा में वह शाही वेद-भूषा में अलंकारों से सुसज्जित होकर उपस्थित होता था। अपने शीर्ष की शोभा को अत्यन्त बनाये रखने के लिए वह निजी अनुचरों के समूह की दाहा वेद-भूषा में सुसज्जित रहता था। अपनी उपस्थिति में व ता वह किसी को हँसने देता था और न मजाक हो करने देता था। वह कबल अभिजातों से ही उपहार स्वीकार करता था और मोक्ष से उस मन्त्र मफरत थी। मिहामनाकृ होते ही उसने बोवना बरपा के मुरापात भी उरसों में सम्मिलित होत तथा जुमा लखने की आदन वा सर्वजा परिपाय कर दिया। वह अपनी आज्ञा का उत्पन्न किसी हाथत में भी नहीं सहन करता था। किसी कर्मचारी अपना मरदार के विद्रोह करने पर वह उनके माय नुर्ममता वा ध्वंसन करता था।

बसबन की अजल से बहुत प्रेम था और दीत काल में वह बहुधा मादत पर आया करता था। बरेलू जीवन में उसका व्यवहार स्निग्ध तथा सहृदय था। उनका हृदय में पुनः के सिन्ने अगाध प्रेम तथा दुरियों के लिए कटका थी। उसकी राजमन्त्रा में अनेक एतिया के अनेक मरपाधियों का आशय मिला था। वह एक कट्टर मुनी मुसल-

मान या और धार्मिक कृत्यों का पालन नियमित रूप से करता था। मित्रावों एवं धार्मिक पुरुषों के संघर्ष में वह जोधन धारण करना श्रेष्ठ समझता था। अतएव वह उनके साथ ही भोजन एवं संभाषण करता था और संघर्ष के आशय में तथा धार्मिक स्थानों की यात्रा में बहुधा जाता करता था।

कैकुबाद

हम यह चुके हैं कि शाहजादा मुहम्मद की मृत्यु मर्गालों के साथ युद्ध करने में हो चुकी थी। अतः अल्तून ने अपने पौत्र कैकुसरो को अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित किया था किन्तु सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए अमीरों में तणाव आरम्भ हो गया। एक इस कैकुसरो को तो बुसर बुगल ली के पुत्र कैकुबाद की सुल्तान बनाना चाहता था। अन्त में कैकुबाद ही दिल्ली को गद्दी पर बैठाया गया।

कैकुबाद के शासन-काल में कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी। यद्यपि उसकी शिक्षा-दीक्षा बहुत उच्च कोटि की हुई थी किन्तु सुल्तान बनते ही उसने अपनी सारी योग्यता अपने गुस्से की मूर्खता तथा रूप में लीटा दी। धीरे-धीरे मान-रस में वह इतना डूब गया कि राज-काज से कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया। उसके दरबारियों ने भी उसका अनुसरण किया फलतः शासन की बागडोर कोरबास निजामुद्दीन के हाथ में आ गई।

निजामुद्दीन का पदग्रन्थ

निजामुद्दीन अत्यन्त महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने सुल्तान का मुखा और सुन्दरी में लग्न करके उसकी मृत्यु को बहुत पीछे धामनित करने का निश्चय किया और इतनी जबाब में अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों एवं शक्तिशाली सरदारों का अन्त करके मर्दम के लिए मार्ग निष्कण्टक बना देने की व्यवस्था की। निजामुद्दीन ने अपनी पत्नी को राजमहल में बंद किया जो सुल्तान पर पुरो तरह छा गई।

जब सुल्तान की मूर्खी में करके निजामुद्दीन अपने विरोधियों के हस्त में लगा। उसने कैकुसरो का बन्ध करवा दिया क्वाबा साठिर की गर्भ पर बड़ा कर अपना निव कटवा और बिसेही सरदारों पर पदग्रन्थ का अवयव कपाकर कत्त करवा दिया। रिशत स्वर्गा पर उसने अपन समर्थकों की नियुक्ति करवा दी। इतना ही नहीं निजामुद्दीन ने सुल्तान की उलटा-सीधा पड़ा कर यंत्रोक्त नी मुस्लिमों के बहाने शक्तिशाली तुर्क अमीरों का दिल्ली में बुरी तरह बन्ध करवा दिया। निजामुद्दीन ने अपना मार्ग काफ़ी साफ़ कर दिया था। अब केवल एक कार्य शेष रह गया था वह था कैकुबाद का बन्ध जिसने मिहसन हाथ में आ जाया।

पिता-पुत्र सम्बन्ध और निजामुद्दीन का बन्ध—बलवान की मृत्यु के पश्चात्, से ही बुगल ली (कैकुबाद का पिता) स्वतन्त्र शासक के रूप में उभर कर रहा था—कैकुबाद जब दिल्ली का सुल्तान बनाया गया तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उसने जब यह सुना कि उसका पुत्र निजामुद्दीन द्वारा अनुचित मार्ग पर तीव्र पथ से बढ़ाया जा रहा है तो उसे बड़ा दुःख हुआ। पुत्र की उपदेश देने के अतिशय से बुगल ली बल पड़ा। इधर निजामुद्दीन भी अपना कुर्माण नमन रहा था अतः उसने सुल्तान की पुत्र भड़काया और कहा कि निश्चय ही बुगल ली किसी स्वार्थ से बल-बल के साथ आ रहा है, अतः उसका प्रत्युत्तर देना चाहिए। किन्तु बात बिगड़न नहीं पाई और जब एक विधाक सेना लेकर कैकुबाद सरयू तट पर पहुँच गया तो निजामुद्दीन के साथ प्रयत्न करने पर भी बुगल ली और कैकुबाद की सेना में युद्ध की नीति नहीं

आई। निजामुद्दीन ने दूसरी बात कही। उसने सुल्तान को बताया कि बुगरा लौ पिठा होते हुए भी सुल्तान का अधीनस्थ है, अब उसे दरबार में सुल्तान का मुक़द़र अमि-
बारन करना चाहिये। बुगरा लौ ने सब कुछ स्वीकार कर लिया और अब पिठा-पुत्र
का सामना हुआ तो दोनों के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। कैकुबाद पिठा के
शेरनों पर गिर पड़ा। निजामुद्दीन बड़ा क्रुटिल था उसने पिठा-पुत्र को एकान्त में
मिलने का अवसर नहीं दिया। बिना हुंसे समय बुगरा लौ ने कैकुबाद के कान में कहा
‘अपना परिण सैमाओ और निजामुद्दीन से अपनी रक्षा करो। तभी से सुल्तान
का बंस नजामुद्दीन के बिटय हो गया। निजामुद्दीन के विरोधियों को अच्छा अवसर
मिला और उन्होंने निय होकर उसकी पीछन-भीला समाप्त कर दी।

बलबन के बंध का अन्त

निजामुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् सुल्तान ने तुर्की और बिस्वी सरदारों में
पारस्परिक मेक-मिलाप स्थापित करने का प्रयत्न किया क्योंकि यही तो दस उस समय
धर्मिचाही थे। तुर्की समीर बिस्वियों का बंध कराने की योजना में लीन थे।
नजामुद्दीन बिस्वी बिस्वियों का नतुल कर रहा था। हिन्दुस्तानी मुसलमान भी उसके
साथ थे। बिस्वियों का बंध कराने की योजना इसलिए कार्यान्वित न हो सकी कि
कैकुबाद रोपयस्त हो गया। तुर्की सरदारों ने अवसर पाकर कैमूर को मही पर बिठा
दिया और उससे बिस्वियों के बंध की आज्ञा ले ली। किन्तु नजामुद्दीन बिस्वी को
घारे पश्यन का पदा बल गया और उसने उचित व्यवस्था कर दी। कई राजनीतिक
अवसर-मुक़द़र के पश्चात् कैमूर कागवार में बस दिया गया। यहाँ शीघ्र ही उसकी
मृत्यु हो गयी और नजामुद्दीन बिस्वी बिस्वी के राजसिंहासन पर आसीन हुआ।
इस प्रकार तयकथित दस बंध का अन्त होया है और बिस्वी सिंहासन पर बिस्वी
बंध का आधिपत्य स्थापित हो गया।

इस्लामी सुल्तानों की वंशावली

(१) कुतुबुद्दीन ऐबक (काहीर १२०६-१२१०)

(२) आराम शाह (काहीर) पुत्री — बमशुद्दीन इस्तुतमिश (१२११-१२१० १२११ (१) १२१६)

नासिरुद्दीन महमूद
(मृ १२२९)(२) बक़्तुद्दीन फ़ीरोजशाह
(१२३६)(३) रजिया सुल्ताना
(१२३६-१२४०)(४) मुहम्मदुद्दीन बहराम
शाह
(१२४०-१२४१)(५) अलाउद्दीन मसूदशाह
(१२४२-१२४६)(६) नासिरुद्दीन महमूद
(१२४६-१२६६)पुत्री = (७) यमासुद्दीन बलबन
(१२६६-१२८७)महमूद
(मृ १२८६)

बुयद खाँ (बंगाल)

पुत्री

कैबूतक

(८) मुहम्मदुद्दीन कैबूतक
(१२८७-१२९०)

(९) कैमूर (१२९०)

प्रश्न

1 Carefully analyse the political and military problems which Iltutmish had to face. What measures of success did he achieve in establishing Turkish rule in India? (1957)

इस्तुतमिश को जिन राजनीतिक एवं सैनिक समस्याओं का सामना करना पड़ा उनका विश्लेषण सावधानी से कीजिए। भारत में तुर्की साम्राज्य स्थापित करने में उसे कहीं तक सफलता मिली? (१९५७)।

■ Give a brief account of the reign of Iltutmish. Why is he regarded as the real founder of the Sultanate of Delhi? (1947)

इल्तुतमिश के राज्य का संक्षिप्त विवरण दीजिए। उसे दिल्ली के सुल्तान राज्य का वास्तविक संस्थापक क्यों कहा जाता है? (१९४७)।

3. Estimate the works of Iltutmish. (1954)

इल्तुतमिश के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए। (१९५४)।

4. "Iltutmish was the greatest among Slave Kings of Delhi" Discuss. (1955)

इल्तुतमिश दिल्ली के दासकों में सबसे महान का" इस कथन की। मजबूती दीजिए। (१९५५)

5. Sketch the career of Ghiyasuddin Balban and estimate his works as a general and as a statesman. (1942, 1952)

ग़ियासुद्दीन बलबन का करियर विवरण दीजिए तथा सेनापति एवं राजनीतिज्ञ के रूप में उसके कार्यों का मूल्यांकन कीजिए। (१९४२ १९५२)

6. What were the means adopted by Balban to consolidate and strengthen the authority of the Sultan. (1944)

सुल्तान के अधिकार को सुदृढ़ एवं दृढ़ करने के लिए बलबन ने क्या उपाय किए?

खिल्जी तुर्क तथा साम्राज्य प्रसार

भाग १ जलालुद्दीन खिल्जी

हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि कैमूर को सिंहासनच्युत करके बलाम्बूरी खिल्जी स्वयं दिल्ली का सुल्तान बन बैठा था। बलाम्बूरीन बलबन के समय में सेना में प्रवेश हुआ था और सीमान्त प्रदेश के संस्कार सेनापतियों में से एक था। कैमूर बाघ के काष्ठ में बहू समाना का शाकिम था। इसी समय से उसकी उत्तरोत्तर बृद्धि होती गई और वह कैमूरबाद का युद्ध मन्गी हो गया। १२९ ई० में तो वह स्वयं दिल्ली का सुल्तान हो बन बैठा। सिंहासन प्राप्त कर देने के पश्चात् भी उसने प्राचीन राजधानी दिल्ली में प्रवेश नहीं किया क्योंकि दिल्ली बाहेर उसके असन्तुष्ट थे क्योंकि वे तुर्क न समझ कर अफगान समझते थे और राजपूत पर केवल तुर्कों की ही वर्णित हुई ऐसा दिल्ली वालों का विश्वास था। किन्तु बलाम्बूरीन बड़ा कुशल था उस समय स्वतन्त्रतावादी व्यक्तियों को ठेके-ठेके पर पर नियुक्त करके दिल्ली वालों को अपने ओर मिला दिया। इस प्रकार अपनी योग्यता का परिचय देने में बलाम्बूरीन सफल हुआ और वह शान्तिपूर्वक दिल्ली में प्रवेश कर सका।

बलाम्बूरीन के समय आपत्तियाँ और उनका अन्त

बलाम्बूरीन की चरित्रगत विषयताओं पर प्रकाश डालते हुए हम जाने बताने कि वह अपने अन्त पूर्ववर्ती शासकों से कितना भिन्न था और उसमें इम्तानियत कितनी अधिक थी। यहाँ केवल इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि उसके उदारता की नीतियों ने कार्यरता समझ किया और इस प्रकार अनेक महत्वाकांक्षी व्यक्तियों को सुल्तान के विश्व प्रह्वान करने की प्रेरणा मिली। यद्यपि कुछ इतिहासकारों ने बलाम्बूरीन की शान्तिपूर्ण नीति की कट आलोचना की है और यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह उसकी दुर्बल नीति का ही परिणाम था कि उसे अपने बर्तन द्वारा ही अपना अन्त देखना पड़ा किन्तु यदि हम बलाम्बूरीन के शासन की राजनीति बटनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि उसके समय में। तो कोई सफल विद्रोह ही हो सका न तो कोई बाह्य आक्रमण ही क्षति पहुँचा सका। तो किसी प्रह्वान से सुल्तान अभिन्न रह सका और न एक बार समा किये हुए व्यक्तियों ने दुःखी विद्रोह ही किया। हाँ उन्ने बोलना अपने सपने-सम्बन्धियों से अवगत हुआ।

यहाँ हम उसके शासनकाल की उन बटनाओं का उल्लेख करेंगे जिनका सीध-सम्बन्ध साम्राज्य के विस्तार अथवा संकोच से है।

मलिक छग्नू का विद्रोह—१२९० ई० में मलिक छग्नू न यह देख कर कि दिल्ली में तथा दिल्ली के बाहर भी कुछ लोग खिल्जीयों के विरुद्ध हैं विद्रोह कर दिया। मलिक छग्नू कड़ा और मानिकपुर का अधिकारी था और उसने बलाम्बूरीन के राज्यारोहण के समय उसकी अश्वीनता स्वीकार कर ली थी। मलिक छग्नू की अवस्था

के सुबेदार कुछ तुर्क सरदार तथा स्वामीय हिन्दू जमींदारों ने पूरी-पूरी सहायता देने का आश्वासन दिया। छम्बू का उत्साह बढ़ गया और उसने अपने को स्वतंत्र घोषित करके बिस्मिली-विजय के लिए प्रस्थान कर दिया। मुल्तान को जब यह सूचना मिली तब उसने स्वयं रण-अभियान किया और छम्बू अपने साथियों सहित पकड़ लिया गया। जल्द में मुल्तान को उस पर बना आई और उसने उनके साथ उदारता का व्यवहार किया। प्रधान बिद्रोहियों को स्वान्तास्तरित कर दिया गया और उनका नेता छम्बू नजरबन्द कर दिया गया। कड़ा और मानिकपुर का शासन अन्नाउद्दीन के हाथ में दे दिया गया।

अमीरों का पक्षपात—मुल्तान की उदारतापूर्व नीति को उसकी कार्यरत मानकर कुछ अमीरों ने पक्षपात करने का आयोजन किया। एक दिन तामुद्दीन कूची नामक सरदार ने जो बहुत बड़ा महत्वाकांक्षी था कुछ अमीरों को अपने यहाँ आमंत्रित किया। रात के नौ बजे में किसी ने यहाँ तक कह दिया कि तामुद्दीन को मुल्तान पर पराधीन करना अबिक उपयुक्त होगा। एक बीराने के मूँह से यह भी निकल गया कि तामुद्दीन मुल्तान को कच्छी की तरह काट कर फेंक देगा। इस पर तामुद्दीन का विमान और भी खराब हो गया किन्तु दूसरे दिन जब दरबार लगा तो अन्नाउद्दीन ने तलवार फेंक कर लखकारते हुए कहा कि तुममें से कौन ऐसा है जो मेरा सामना कर सके। मैं ऐसे और और साहसी को देखना चाहता हूँ। दरबार में बातक छा गया। मुल्तान के पुत्तखर विमान के कार्यों पर लोगों ने हाँतीं तले सँपड़ी बना ली। कुछ बादकारों ने मुल्तान की पापसूची की बह प्रसन्न हो गया और उसने पक्षपातकारियों को क्षमा कर दिया। हाँ इतना अवश्य किया कि उन्हें राजधानी से दूर स्वान्तास्तरित कर दिया जिससे फिर कभी बिद्रोह का अवसर न मिल सके।

सीधी मौला का पक्षपात—शारस का एक दरवेश सीधी मौला भारत आकर बिस्मिली के प्रमुख अमीरों और सरदारों को अपने प्रभाव में करने लगा था। इस राज नीतिक महत्त्व में उसे पक्षपात की प्रेरणा थी। जब उसने मुल्तान का जब करके सिंहासन प्राप्त करने की योजना बनाई। धीरे-धीरे उसने सहस्रों सिप्य बना लिये और राज कुमार ज्ञान-ए-खाना भी उसके प्रभाव में आ गया। रात के समय सीधी मौला अपने सिप्यों को लेकर पूर्ववत् अन्तरंग बैठक कर रहा था कि बेश बलक कर अन्नाउद्दीन भी वहाँ पहुँच गया। उसे सब रहस्य ज्ञात हो गया और उसने पक्षपातकारियों को पकड़वा लिया। इस्लाम धर्म के अविच्छादा एक मौलवी की इस प्रकार की कृति देख कर मुल्तान आगबबूझा हो उठा और उसने सीधी मौला को कड़ा से कड़ा बण्ड देने का निश्चय किया। सीधी मौला की हाथी के पैर के तले कुचलवा दिया गया।

पंगोख आक्रमण—१२९९ ई० में पंगोखों ने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया। वे एक बहुत बड़ी सेना लेकर सिन्ध नदी के पश्चिमी तट पर पहुँच गए किन्तु अन्नाउद्दीन की सेना ने उन्हें पराजित कर दिया। मुल्तान ने पंगोख नेता असुम से मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर ली जिसने निकट भविष्य के लिए पंगोखों का आक्रमण टल गया।

साम्राज्य बिस्तार के प्रयास

मुल्तान ने अपनी स्थिति पूरी तरह सुदृढ़ करके साम्राज्य-बिस्तार की ओर ध्यान दिया। उसके इस कार्य में उसके भतीजे अन्नाउद्दीन ने काफ़ी सहायता दी। उसने सर्वप्रथम राजपूत राज्यों को पराजित करने का निश्चय किया। उसकी विजया के सम्बन्ध में हम नीचे पुनः-पुनः प्रकाश डालेंगे।

रजपूतों पर आक्रमण—जिस दुर्ग को बल्लभ भी नहीं जीत सका था उस रजपूतों के दुर्ग पर १२९१ ई० में अलाउद्दीन ने आक्रमण करने का निश्चय किया। सुल्तान एक विशाल सेना लेकर चल पड़ा और साई तथा मालवा को कूटती-सोटी घेरी सना रजपूतों पर पहुँची। यहाँ जंगल पर सुल्तान को यह बात हुआ कि रजपूतों का राजा एक विशाल सेना के साथ दुर्ग की रक्षा के लिए उद्यत है। मगध सुल्तान ने कुछ दिन तक बराबर के बाहरी सेना को दिल्ली छोड़ जाने का आदेश दिया। बातें हो गई कि सुल्तान का दिल्ली में किसी प्रकार के उपद्रव की आशंका हो गई थी जिससे वह तुरन्त दिल्ली को प्रस्थान कर गया था।

मगध और साई की कूट—१२९२ ई० में मगध और साई पर एक बार फिर आक्रमण किया गया किन्तु सुल्तान उसपर स्थायी अधिकार स्थापित न कर सका। हाँ उसकी सेना ने वहाँ कूटपाट खसस की।

मिर्जा विजय—अलाउद्दीन सुल्तान का भतीजा और शत्रु था। सुल्तान पर अपना पूरा विश्वास जमा कर उससे सिंहासन छीन लेने की इच्छा अलाउद्दीन के मन में बहुत दिनों से थी। मगध उसने बहुत धैर्य के साथ साम्राज्य विस्तार में सुल्तान की सहायता दी। सुल्तान ने अलाउद्दीन की नियुक्ति कब में कर दी थी। उसने कूटनीति का निपटारा देकर और वहाँ शक्ति स्थापित करके मिर्जा पर आक्रमण कर दिया। मिर्जा के लोगों का तैयारी करने का अवसर तक न मिला। अलाउद्दीन ने मिर्जा का घेराव ठीक ठीक और सारा भाग सुल्तान के सम्मुख लाकर रख दिया।

देवगिरि विजय—अलाउद्दीन का सुहरा महाराष्ट्र आक्रमण देवगिरि पर होने वाला था क्योंकि वहाँ की विपुल सम्पत्ति के विषय में अनेक कबायें सुनने की मिली थी। मगध उसने सुल्तान के आज्ञा के बिना ही १२९४ ई० में देवगिरि को प्रस्थान कर दिया। इमामशहा देवगिरि नरेश रामचन्द्र का पुत्र शंकरदेव अपने पुत्र हुए सैनिकों के साथ इतिहास विजय की गया था। रामचन्द्र देव ने हवाच हाकर सम्मिलित की। किन्तु ज्योंही शंकरदेव बापस आया कि उसने अलाउद्दीन से लोहा लेने का निश्चय किया। पिता के बार-बार रोकने पर भी शंकरदेव न माना। दोनों सेनाएँ रणक्षेत्र में उगरी शंकरदेव की पराजय हुई। देवगिरि से अपार सम्पत्ति लेकर अलाउद्दीन बापस लौट आया।

देवगिरि विजय का महत्व दिल्ली सल्तनत के इतिहास में बहुत है क्योंकि दक्षिण भारत में विदेशी शासकों की यह पहली विजय थी। इस विजय ने अलाउद्दीन दिल्ली की मर्यादा और अधिक बढ़ा दी।

अलाउद्दीन का बुकाइ अग्त

देवगिरि-विजय के सम्बन्ध में पूछा हुआ अलाउद्दीन अपने मस्तिष्क में एक मुकाम भर कर बैठा था। यहाँ यह बात देना भी विचित्र न होगा कि अलाउद्दीन की पत्नी और उसकी सास दोनों अलाउद्दीन के विरुद्ध रामचाली में परस्पर रच रही थी। इन कौटुम्बिक कलह ने भी अलाउद्दीन को प्रोत्साहित किया और उसने अपने चाचा और स्वामुर का वध १९ जुलाई १२९६ ई० में कर दिया।

अलाउद्दीन का चरित्र—यद्यपि अलाउद्दीन ने अनेक बार अपनी सैनिक प्रतिभा का परिचय दिया बावचापि उसका स्वाभाविक चरित्र युद्ध में नहीं। वह रक्तपात ने दूर रहना चाहता था। वह कभी-कभी ऐसा कार्य कर बैठता था जिसके कारण वह भीरुता के लिए काष्ठित भी किया जा सकता है। रक्तपात से बचने के लिए वह

सत्तमश की मर्यादा को भी बलिदान कर देने के लिए तैयार हो जाता था। उसका हृदय आश्चर्यकृत से अधिक कोमल था। अपनी सरल हृदयता के कारण ही मुसलमानों में भी उसका असीमासी शौकीनी थी। वह ठीकी तथा डाकुओं को भी दण्डित करने में सक्षम करता था। उसके हृदय में किसी के प्रति भी दुर्भावना नहीं रहती थी। बिरोही अमीरों तक को भी दण्डित करने का अपेक्षा वह उनके साथ अच्छाई एवं मित्रता का व्यवहार करता था और उन्हें क्षमा प्रदान कर देता था। दण्ड की भाषा से उपस्थित अपराधी बहुधा पुरस्कार के साथ लौटते थे। कभी-कभी तो वह बच्चों का-सा व्यवहार कर बैठता था। यद्यपि वह मुस्तान बन गया था परन्तु उसमें अशमात्र को भी गर्व न था। वह बनोरो के साथ मित्रों का-सा व्यवहार करता था और मजा को अपनी सत्तान मानता था। अमात्रहीन अत्यन्त सज्जन उदार स्नेहशील तथा न्यायिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था और अपने ही जैसा सत्कार को भी समझता था। परन्तु दुर्भाग्यवश उस युग का वातावरण उसके अनुकूल नहीं था जिसके कारण वह सफल शासक नहीं बन सका। उसने अपने स्वभाव के अनुसार अपने मंत्रीवर्ग पर विश्वास किया जिसने उसकी निर्भय हत्या कर डाली।

भाग २ अलाउद्दीन खिलजी (१२९६-१३१३)

सोबे-सादे बाबा की हत्या कर देने पर दिल्ली की जनता अलाउद्दीन से असंतुष्ट हो गई किन्तु अलाउद्दीन ने कूटनीति से काम लिया। उसने अपने द्वितीय सरदारों को वा प्रसन्न कर ही लिया साथ ही उसने दिल्ली निवासियों तथा बिरोधी सरदारों को ऊँचे ऊँचे आहूते परबिसों जवाब बन देकर प्रसन्न कर लिया और सब उसने दिल्ली की ओर प्रयाण किया। उस समय दिल्ली की स्थिति बहुत बर्गीर थी। इब्राहीम ने सना लेकर अलाउद्दीन का सामना किया पर वह असफल रहा। इस प्रकार १२९६ ई. में उसने दिल्ली का सिंहासन हस्तगत कर लिया।

अलाउद्दीन की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और उन पर विजय

दिल्ली का सिंहासन प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी अलाउद्दीन निष्कण्टक नहीं था। उसके प्रमुख निम्नलिखित उल्लंघनों थीं —

(१) लोकप्रियता का अन्त (२) अलासी अमीरों का अन्त (३) अलाउद्दीन के उत्तराधिकारियों का अन्त (४) सीमान्त प्रांत्तों की सुरक्षा (५) शासन संगठन और स्वतन्त्र राज्यों का अन्त।

अलाउद्दीन ने एक-एक करके इन सभी समस्याओं को मुक्तमाने का यत्न किया। सबसे पहले उसने अपार धन राशि दोनों हाथों लटका कर जनता को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। सैनिकों को छ मास का वेतन पारिवारिक के रूप में देकर उसने सेना को पूर्णतया मिठा किया। इस अपार धन वितरण ने जनता की बाध्य किया की वह इन सैनिकों की जगमगाहट में अपने उदार सम्राट के रक्त को लासी भूल जाय।

अलाउद्दीन ने सरदारों और अमीरों को प्रमत्त करने के लिये पदों का वितरण बहुत ही लाभकर ढंग में किया। उसने अलाउद्दीन के कुछ ऊँचे पदाधिकारियों का ताँ पृथक् बना रहन दिया किन्तु खेप सभी महत्वपूर्ण पदों पर अपने अपने धुमेच्छुकों का नियुक्त कर दिया। इस प्रकार उनकी स्थिति सुबुद्ध हो गई।

अपनी स्थिति सुबुद्ध करने का सबसे महत्वपूर्ण उपाय अलाउद्दीन की सभस में अलाउद्दीन के उत्तराधिकारियों का अन्त था अतः उसने इब्राहीम तथा उसकी माँ

को ढँक करने के लिए एक सेना भेजी जो बी मास तक मुस्ताग नगर का घेराव करते पड़ी रहा। अन्त में मुस्ताग की सेना को विजय मिली और शाही खानदान वाले बन्दी बना लिए गए जिसमें दोनों राजकुमार भी सम्मिलित थे। राजकुमारों को निर्दयतापूर्वक मुस्ताग ने मरवा कर दिया।

अलाउद्दीन ने नमरुत खाँ को जमासी अमीरों के समन का कार्य सौंपा। उसने कुछ अमीरों को बुला कर दिया कुछ को कारागार में बंदि कर दिया और कुछ अमीरों को छत्रवार के बाट उतार दिया। जमासी अमीरों की सम्पत्ति छीन कर अलाउद्दीन ने लगभग १ करोड़ रुपया प्राप्त कर लिया।

सीमा प्रान्तों की सुरक्षा के लिए अलाउद्दीन बराबर उत्तर्क रहता था। उसने मंगोल आक्रमण का सामना करने के लिए बख्खन की नीति अपनाई। इस प्रकार दुर्गों की परम्पत और सुन्दर सैनिकों की नियुक्त द्वारा अलाउद्दीन ने अपनी शक्ति काफी मजबूत कर दी। अलाउद्दीन के समय में मंगोलों ने कई बार आक्रमण किए किन्तु वे केवल सीमांत जनता में आतंक एवं अस्थान्ति तक उत्पन्न कर पाते थे किसी एक पर्युषन का स्वर्ण अवसर उन्हें नहीं मिल पाता था।

साम्राज्य विस्तार के लिए अलाउद्दीन ने उत्तर तथा दक्षिण दोनों ओर अपनी सेनाएँ भेजी और उसकी सेना काफी सफल हुई। बहुत दिनों से सुम्बलस्थित शासन-प्रबन्ध का अनाद था अतः अलाउद्दीन बिस्वा ने सुन्दर शासन संगठन की योजना भी बनाई जिसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली।

अलाउद्दीन के विजय तथा राज्य प्रसार

अलाउद्दीन के पास विजय की अनेक वन राशि थी जिससे उसे सैनिक संगठन एवं रथ अभियान में काफी सहायता मिल सकती थी। वस्तु यह सिक्न्दर की भाँति विश्व विजय का स्वप्न देखने लगा किन्तु काजी अलाउद्दीन ने अलाउद्दीन का ध्यान आन्तरिक तथा वैदेशिक कठिनाइयों की ओर आकृष्ट करते हुए बतलाया कि तब के विश्व और अब के विश्व में महान् अन्तर है। विश्व-विजय की कल्पना करना एक भाटी भूल ही है। साम्राज्यवत् अलाउद्दीन के यत्तिष्क में यह बात बैठ गई और वह विश्व-विजय के स्थान पर भारत-विजय की योजना बनाने लगा।

अलाउद्दीन के यत्तिष्क में एक यह भी अवत उबार था कि वह एक नए वर्ग का प्रचार सारे संसार में करे। काजी अलाउद्दीन ने समझाया कि यह कार्य पैगम्बरों का है न कि राजाओं का। काजी की यह बात भी अलाउद्दीन के दिल में उतर गई। तब से उसने न केवल वर्ग-प्रचार की योजना स्थापन की बल्कि अग्य मुस्लिमों के विपरीत उसने वर्ग को राजनीति से बिल्कुल दूर कर दिया। यह काजी अलाउद्दीन को बातों का ही प्रतिफल था कि अलाउद्दीन जिसकी भारत में पहला मुसलमान शासक था जिसने लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत पर विजय प्राप्त की और दक्षिण भारत के अधिकांश भाग पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया साथ ही वर्गनिर्पक्ष राज्य का अभिनव वर्तन भारतीय जनता की कराया भी आयापी मुसलमान शासकों के लिए आदर्श बन गया।

अलाउद्दीन का मोति कपल इंग की अकेली थी। साम्राज्य विस्तार के लिए वन की आवश्यकता होती थी अतः वन संरक्षण को उसने महत्व दिया। पक्षियों से राज्य की नींव हिसती है अतः उगने पक्ष्यकारियों को कठोर दण्ड देना आरम्भ

किया। इस प्रकार अपनी स्थिति पूर्णरूपेण सुदृढ़ करके उसने साम्राज्य विस्तार की ओर ध्यान दिया।

गुजरात-विजय—(१२९९) अलाउद्दीन को अपने सेनापतियों में से बफर खाँ उलुग खाँ मसरत खाँ तथा अलफ खाँ पर विशेष विश्वास था। अलाउद्दीन ने एक विचार सेना से पार की ओर अपने दो सेनापतियों मसरत खाँ तथा उलुग खाँ को गुजरात-विजय के लिए रवाना किया। गुस्ताम के लोगों की सेनापतियों ने गुजरात और अहिल्लावाड़ा को जीत कर सम्मत्त के व्यापारियों से अनेक संपत्ति प्राप्त की। वहाँ का राजा कर्ब खानेका अलाउद्दीन की रण-योजना से विस्मृत अपरिचित था। वह छाही सेना से भयभीत होकर देवगिरि भाग गया और उसका राजकोष तथा निवास इस कामरुतापूर्ण पक्षामन में पीछे ही छूट गया। आक्रमणकारियों के लिए स्वर्ण जषसर हाथ लगा। उन्होंने सूरत अहिल्लावाड़ा सम्मत्त संयन्त्रण आदि नगरों को बूझ भुटा और इसानी के कमानुसार सैनिकों की इतनी सुविधा और फुर्सत प्राप्त की कि जब उन्हें पार के भीतर की संपत्ति से संतोष न हुआ तो उन्होंने नागरिकों को घोर धार्मिक यातनाएँ देकर उनसे उनके मृत्यु वन का पत्ता पूछा और उसे भी खोज निकाला। सैनिकों ने कटमार के सिक्कसि में अनेक मन्दिर तोड़े जिनमें सोमनाथ का मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध था। उलुग खाँ और मसरत खाँ कूट का मार्ग लेकर ब्रिटीश की ओर चल पड़े। मार्ग में निम्मा नुसार सैनिकों से कूट के मार्ग का विवरण मिला गया जिससे राज्य को उसका पञ्चमांश भोग दिया जा सके। कहा जाता है कि उसाधी केने में सैनिकों के साथ निर्दयता का व्यवहार किया गया जिससे नव मुस्लिम मंगोल सैनिक बिमड़ उठे और उन्होंने एक पड़यन्त्र द्वारा दोनों सेनापतियों का अन्त कर देन का निश्चय किया। सोमनाथपक्ष पक्षेय असफल हुआ। पड़यन्त्रकारी भाग निकले और उन्होंने राजपूत राजाओं के यहाँ शरण ली। मुहम्मद साहू भी इन्हीं धरणाधियों में से एक था जिसने राज बन्मीर के शासक इन्मीर के यहाँ धरण ली थी।

जिस समय अलाउद्दीन के सेनापतियों ने उसके सामने स्वर्ण और रत्न का पहाड़ लगा दिया उस समय उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। कर्ब की पानी कमठा देखी तथा हजार बीनारी हाथ बाफूर को पाकर तो उसके प्रसन्नता की सीमा न रही।

अलाउद्दीन ने बिजोही सैनिकों के बच्चे और स्त्रियों के साथ ऐसी निर्दयता ब्रिटीशाई की उससे सम्पूर्ण साम्राज्य में आर्तक छा गया।

राजबन्मीर विजय (१३०१)—गुजरात-विजय के पश्चात् अलाउद्दीन का साहस बढ़ गया। उसने ऐसा कि राजपूत राज्यों को पराजित करना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं है। कुछ कारणों ने अलाउद्दीन ब्रिटीश को राजबन्मीर-विजय के लिए प्रारंभ किया जिसमें सबसे प्रमुख कारण तो यह था कि राजबन्मीर के निकट स्वतंत्र राजपूत रियासतों का बना रहना सर्वथा अहितकर था। राजबन्मीर राजपूताने में सर्व घणितवाली राज्य था। यद्यपि कुतुबुद्दीन ऐबक और इल्तुतमिश के काल में राजबन्मीर का पुर्न तुर्कों के अधीन आ गया था किन्तु इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् ही चौहानों ने पुनः इस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था और तब से तुर्कों के किसी आक्रमण ने उनका कुछ नहीं बिगाड़ा। अलाउद्दीन को राजबन्मीर पर आक्रमण करना था किन्तु उसके लिए अभी समय आने वाला था। संतोषपक्ष राजबन्मीर के राजा ने मुहम्मद साहू तथा अन्य बिजोही मंगोल सैनिकों को धरण दे दी जिससे बाध्य होकर अलाउद्दीन को १३०० ई० में उस पर आक्रमण करना पड़ा। गुस्ताम ने राजा

मुस्तान से संजि करनी पड़ी। मुस्तान ने चीतलदेव का दुर्ग तो नहीं छीना किन्तु उसका राज्य हिस्सी के समीपों में बाँट दिया गया।

बालौर विजय—यद्यपि बालौर के शासक कान्हूर देव चौहान ने संभवतः १३०४ ई० में अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर ली थी तथापि उसने बीरे-बीरे आन्तरिक शासन में स्वतंत्रता प्राप्त कर ली और मुस्तान के प्रति बड़ा-बड़ा विद्रोह करना कम कर दिया। सन् १३११ ई० में अलाउद्दीन ने उसके विरुद्ध एक सेना भेजी। प्रारम्भ में तो कान्हूर देव ने कई स्वार्थों पर साहीसेना को पराजित किया किन्तु विद्रोहवात से काम लेकर उसने यहाँ भी सफलता प्राप्त की। कान्हूर देव के भाई मास्देव को बिछीड़ का शासक केवल इसलिए नियुक्त किया गया कि उसने बालौर विजय में मुस्तान की काफ़ी सहाय्य की थी।

सम्पूर्ण उत्तरी भारत को मुस्तान ने अपने अधीन अवश्य कर लिया किन्तु अलाउद्दीन के अन्तिम वर्षों में राजपूताने में विद्रोह की भाग घूमक उठी और अनेक राजपूत रियासतों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया।

दक्षिण भारत में राज्य प्रसार

अब तब किसी मुस्तान ने दक्षिण की ओर कोई महत्वपूर्ण सैनिक सफलता नहीं प्राप्त की थी किन्तु अलाउद्दीन प्रारम्भ से ही दक्षिण की जनराज्य से परिचित था और उस पर अपना अधिकार स्थापित करने की विन्ता में लीन था। अलाउद्दीन ने अपने मुल्क काफूर को राजकीय सेना का विशेषाधिकार देकर रवाना किया। काफूर मास्वा मुजरात होता हुआ बड़ा और उसने अपने शासक कर्ण को बुरी तरह पराजित कर दिया। मुस्तान के भाई उलुग खान ने कर्ण की पुत्री देवक देवी की बलपूर्वक पकड़ कर हिस्सी भेज दिया जहाँ उसका मुजरात धिया खाँ से ब्याह कर दिया गया। सम्पूर्ण मुजरात को दीव कर काफूर ने रामचन्द्र मास्व को अपनी प्रभुता स्वीकार करने को बाध्य किया। रामचन्द्र हिस्सी दरबार में भेजा गया जहाँ उसका स्थापित करके उसे पञ्चरायान की उपाधि प्रदान की गई।

बाराणस-विजय—देवगिरि के मास्वों की पराजय ने पश्चात् दक्षिण के अन्ध राज्या बिनास का द्वार खोल दिया। १३०९ ई० में काफूर ने कच्छकाकीर्ण मार्गों को पार करता हुआ बाराणस के दुर्ग के सामने अपनी सेना लड़ी कर दी। वह बहुत दिनों तक दुर्ग का घेरा डाले पड़ा रहा अन्त में राजा प्रताप राक्षस को विवश होकर संधि की प्रार्थना करनी पड़ी। उसने न केवल बायिक कर देना स्वीकार किया प्रत्युत अधीनता स्वीकार करने के प्रमाण स्वरूप स्वयं अपनी सोने की प्रतिमा काफूर के पाद में रखी किन्तु काफूर सहमत न हो सका। उसने यह कहता भेजा कि यदि राजा अपना सम्पूर्ण कोष उस दे दे तो सब बायिक कर देना भी स्वीकार करें तो सामान्य इत्या-आदि रोक दिया जायगा। प्रताप राक्षस विवश था अब उसे वह अपमानजनक शर्त स्वीकार करनी पड़ी। काफूर अपने एक सहज ऊँटों पर लजाना लाव कर हिस्सी लौट आया।

माबर विजय—दक्षिण की इन विजयों के फलस्वरूप अलाउद्दीन का उत्साह उत्त उत्तर बढ़ता गया और उसने सुदूर दक्षिण पर अपना अधिकार स्थापित करने का निश्चय किया। द्वारसमुद्र और माबर अभी तक उसकी साम्राज्य-सीमा के बाहर थे। मरमिह के पुत्र बोरबस्लाह तृतीय की अधीनता में पूर्वी-पश्चिमी भागों की पारने-भूमि पर हीयतल उपनिवेशों का एकीकरण हो चुका था। बस्लाह तृतीय का अधिकार सम्पूर्ण बाम्बू कोहन के कुछ भाग तथा सम्पूर्ण मैसूर प्रदेश पर स्थापित था। हीयतल तथा माबरों में पार देवतल्य बाजिसे उनमें पारस्परिक कलह उत्त उत्तर बढ़ता गया।

और इसी फूट न दोनों की शक्ति भीष कर दी थी। यदि इन दोनों में एकता की भावना बनी रहती तो यहूदी नरियों जैसे-जोषी जाटियों और अमर कन्दराबों को पार करके शाही सेना कदापि महुल हतिथ तक न पहुँच पाती। १३१० ई० में काफूर मालेर राज्य में पहुँच गया उसने बस्माक को पराजित कर दिया। काफूर ने राम को यह सूचना दी कि मा ती वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर से जजबा अपार बनराशि देकर प्रायदान प्राप्त करे। बिजय होकर राम ने अपने कोष का बहुत बड़ा अंश काफूर को दे दिया और उसने हिस्सी की अधीनता स्वीकार कर ली। मुसलमानों को कूट में बहुत अधिक धन मिला। बस्माक हिस्सी भेज दिया गया।

अब काफूर महुल के पाण्डवों की ओर बढ़े। बात यह थी कि पाण्डव राज्य में सुन्दर पाण्डव और बोर पाण्डव में पारस्परिक वैमनस्य चल रहा था। बोर पाण्डव ने सुन्दर पाण्डव को मार मचाया और वह स्वयं सिंहासमासीन हो गया। सुन्दर पाण्डव ने हिस्सी सुस्तान से सहायता माँगी थी। उसकी सहायता करने के लिए काफूर एक विशाल सेना के साथ भेजा गया था। बस्माक मार्ग प्रदर्शन कर रहा था। १३११ ई० में काफूर महुल पहुँच गया। बोर पाण्डव भाग बड़ा हुआ। काफूर ने उसका पीछा किया। किन्तु जबकि परिणाम के परचात् भी वह उसे न पकड़ सका। इस बीड़-भूष में काफूर को मन्दिरों की कूटने का अवसर अवश्य प्राप्त हो गया। महुल को पूरी तरह कूटने के परचात् काफूर हिस्सी छीट आया। अमीर कुसरो के कबजा मुघार काफूर ने महुल से ५१२ हाथी ७००० घोड़े ५०० मन विभिन्न रत्न तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त कीं। बस्माक भी काफूर के साथ हिस्सी आया और सुस्तान में उसका पूर्ण स्वागत किया।

संकर देव की पराजय—रामदेव की मृत्यु के परचात् उसके पुत्र संकरदेव ने हिस्सी को कर देना बन्द कर दिया था और अब कफूर ने होयसल नरेश के सिद्ध रत्न-अभियान किया था तब संकरदेव ने काफूर को कुछ भी सहायता नहीं की थी। असाहसी ने लिए यह अवसर वा अतः उसने १३१२ ई० में काफूर को चौबी बार एक विशाल सेना के साथ हतिथ की ओर भेजा। काफूर ने महाराष्ट्र में मयंकर कूट मचा दी यादव राजकुमार पराजित हुआ और उसे मार डाला गया। इस अभियान के फलस्वरूप सम्पूर्ण हतिथ भारत काफूर के अधिकार में आ गया। उसका इसी अभियान ने हतिथ के अनेकानेक प्राचीन राजवंशों—बोस बोर पाण्डव होयसल काफूरीय वादव आदि को पूर्णतः निर्मूल कर दिया और वे हिस्सी सत्तनत के अधीन हो गए।

१३१२ ई० के अन्त तक असाहसी का साम्राज्य उत्तर भारत में फैलकर हतिथ भारत तक फैल गया था।

असाहसी का शासन सम्बन्धी सुधार

सैनिक सुधार

असाहसी का नाम अधिकतर साम्राज्य के लिए ही सार्वजनिक विख्यात है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उसके शासनसम्बन्धी सुधार अधिक महत्वपूर्ण हैं। साम्राज्य विस्तार तथा उस पर अधिकार रखने के लिये असाहसी ने सैन्य शक्ति को प्रमुख समझा। असाहसी से पूर्व सुस्तानों का सैन्य संगठन इत्यादारी प्रथा पर प्रचलित था। इन प्रथा का अनुसार सैनिक सरदार तथा सैनिकों का बैठन की रूप में भूमि या भूमिकर बमुनी के अधिकार दे दिये जाते थे। सैनिक सरदार बमुना अपने पास ही साथी सम्पत्ति रख लेते थे और सैनिक कम रकते थे। सैनिक भी अपनी

अपनी भूमि का ही अधिक ध्यान रखते थे फलस्वरूप उनकी दौलतता कम होती जाती थी। अछावहीन ने इस प्रथा के बजाय अपने सैनिकों को नकद वेतन देने क्रिया तथा आरिष ए मुसाम्मिक के बफतर में सब सैनिकों का कुस्मिया सिक्का जाने लगा। उसने चौकों पर बाग खोलने की प्रथा भी आरम्भ कर दी। चौकों पर बाग लगा जाने से हजारी या जाँच के समय सैनिक एक ही चौड़े को कई बार उपस्थित करने में असमर्थ रहे। जब अछावहीन ने सैनिकों का वेतन भी २३४ टंका नियत किया तथा जिन छपारों के पास हो पाऊँ होज व यानी जिन्हे “हो अस्पाह” कहते थे ७८ टंका और देता था।

फिक्रों की व्यवस्था के लिए पुराने फिक्रों को सरम्मत करवाई तथा बिसय न्बानो पर नए फिके बनवाये। इन फिक्रों में योग्य व्यक्ति रखते गए और फिको के पास के भूमि की पैदावार इन फिक्रों में मरी जाग की आज्ञा थी।

भूमि कर व्यवस्था में सुधार

सैनिक सुधार के उपरान्त अछावहीन ने भूमिकर व्यवस्था में भी बड़े महत्वपूर्ण सुधार किए। उस समय तक तुर्की सामन्त तथा हिन्दू मुखिया जैसे बोट मुल्कदम तथा चौबरो भूमिकर बमूल कर छाहो खजाने में जमा करते थे। अछावहीन ने कादतनारों से बल्बेस्त करवाया तथा बीमान बबीर के कर्मचारियों की ही भूमिकर बसूल करने पर नियुक्त किया। भूमि कर पैमाइश पर रकदा गया तथा पैदावार का आधा भाग भूमिकर के रूप में लिया जाने लगा। उसने बीजान में यह भी नियम दिया कि कर का आधा भाग नकद तथा आधा जिम्स के रूप में दिया जाये। कर विभाग के कर्मचारियों पर नियंत्रण रखन के लिये बिबान-ये-बबारत में मई के पटचारियों के बही की जाँच की प्रथा लागू करवाया। कर वृद्धि के लिये उसने पशुओं पर भी कर लगावाये। छोटे बड़े पशुओं पर भिन्न-भिन्न कर लगात थे। अछावहीन के समय में यह कर समान रूप से कारतकार तथा बबीम्बार या गाँव के मुखियों पर लगाए जाते थे किसी को भी कर से छूट न थी।

आर्थिक सुधार नियंत्रण तथा नियम मुख्य

अछावहीन बिलखी सैनिकों का वेतन नियत करते समय कम से कम नियत किया करता था। उसने यह अनुभव किया कि यदि हर चीज की कीमत कम कर दी जाय तो इस छोड़े वेतन में भी सैनिकों का काम बल जायदा अतः उसने बागून द्वारा बाजार पर कम हर हर वस्तु का मुख्य जितना नियत कर दिया। बाजार में जाने पीन की चीजें छोटे-बड़े सभी पशुओं के यहाँ तक की दाम शान्धियों के मुख्य हर नियत कर दिया। मुख्य नियत करने समय उसे भय था कि बुकानवार या व्यापारी आप ठीक में बमी करके दम दरी की कमी को पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। अतः बाजार की दम रख तथा नियंत्रण करने के लिये उसने बाजारों या मंडियों पर एक नया पदाधिकारी नियुक्त किया जिसे “शाहनाएम्बी” कहते थे। कम तीक्ष्ण या मापन बाका पर कटो मजा लगा था। उनके नियम के अनुसार कम तीक्ष्ण बाकों के दरीर से जितना कम वह तीक्ष्ण था माँग काट दिया जाता था। बाजारों का तथा नियंत्रण की व्यवस्था के लिये बीबाने रिपामन नाम का एक नया विभाग भी खोला गया।

बाजार में चीजों की कमी न हो इसके लिए जमन सरकारी मोशमों में अनाज
 ———— उपजाया तथा यह नियम कर दिया कि बिमान या कोई भी व्यक्ति अपनी

आवश्यकता से अधिक बस्तु अपने यहाँ नहीं रख सकता। कानून मंग करने वालों को कठिन दंड देने की व्यवस्था की गई।

अलाउद्दीन का व्यक्तिगत अनुभव था कि सराव पीकर मशे की हानि में आदमी कुछ भी बचता है तथा सोचता है। राज्य के उच्च कमचारी यदि सराव पीकर आपस की बैठकों में बहते तो निर्रोह होने की संभावना हो सकती है। अतः उसने सरावबन्दी का कानून बख्शामा। सराव बमाता या पीना कानूनमूर्ख ठहराया गया।

अमीरों की आपस में अनिष्टता को रोकने के लिये उसने नियम बनाया कि अमार सुल्तान की आज्ञा के बिना एक दूसरे को भोज नहीं दे सकते तथा अपने संतानों का विवाह नहीं करा सकते। रात के समय अमीरों का एकत्रित होना बन्द करा दिया गया। कर भी काफी मात्रा में लगा कर उनसे अधिक से अधिक धन राज्य कोष में ले लिया गया।

यद्यपि अलाउद्दीन ने इन नियमों को अमीरों के पद को समन करन के लिये तथा उनके व्यक्तिगत वाहुल्य को नष्ट करने के उद्देश्य से लागू किया था परन्तु कुछ इतिहासकार इसे हिन्दुओं के विरुद्ध बतलाते हैं। वास्तव में गरीब चाहे वह हिन्दू ही या मुसलमान अलाउद्दीन के इन नियमों से मुक्त हुआ। वह अमीरों के अत्याचार से राष्ट्रीय भाव में बच गया। बाजार दरों में कमी होने से अपनी बोड़ी आमदनी में भी नर पेट जान लगा।

अलाउद्दीन न गुप्तचर विभाग का सुधार किया और सुरक्षारो की संख्या इतनी बढ़ा दी कि वे हर जगह रहन लग और अत्याचारियों पर आतंक छा गया।

यद्यपि अलाउद्दीन निरक्षर था फिर भी उसमें सामान्य बुद्धि का बाहुल्य था। वह अत्यंत अनुभवी एवं प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था। व्यक्तियों को परजन की उसमें अद्भुत समझ थी। अलाउद्दीन एक तथा कामी मयीसुद्दीन उसे परामर्शदाता और असल सौ नसरत सौ उद्यम सौ तथा बकर सौ जैसे सेनापतियों का सहयोग प्राप्त था परन्तु सुल्तान बहुत ही स्नेहभागी था। एक बार किसी कार्य को करने का निश्चय कर लेने पर वह सभी के परामर्श की अवहेलना करता था। उसके चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता यह थी कि वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह तिकन्बर महान की तरह विश्व-विजय की कामना किया करता था। विश्व विजयी होने के अतिरिक्त वह धर्म-संस्थापक बनने का भी स्वप्न देखा करता था। उसकी योजनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें अमरत्व प्राप्त करने की उत्कण्ठ अभिलाषा थी। अलाउद्दीन अपनी महत्वाकांक्षाओं के लिए केवल स्वयं ही नहीं देखन वाला व्यक्ति था बल्कि उन्हें वास्तविकरूप देने के लिए वह सर्वत्र प्रयत्नशील रहा। अपनी किसी भी योजना को पूर्ण करने के पहले वह पूरी तैयारी कर लेता था।

अलाउद्दीन अत्यंत शुष्क स्वभाव का व्यक्ति था। उस युग में जिसमें लोग नारी मद्य तथा संगीत में लीन रहते थे अलाउद्दीन इन चीजों से परे था। अपने प्रारम्भिक जीवन में यद्यपि वह सुरापान किया करता था परन्तु बाद में उसने उसका परि त्याग केवल स्वयं ही न किया बल्कि अपनी प्रजा की भी मना कर दिया। उसे आशंका तथा भय प्रकार की बीमारियों में विशेष अभिरुचि थी। कसूरों तथा बाजा की उड़ाव का वह बहुत शौकीन था। यद्यपि वह स्वयं बहुत बड़ा विद्वान् नहीं था तथापि वह विद्वानों का आश्रय करता था। उनके समय के मुख्य बड़े विद्वानों में अमीर सुमरो तथा हुसैन का नाम लिया जा सकता है। सुल्तान इनका बहुत आदर करता था।

उत्तेजनासे भी घम का और उसने कई दुर्गों का निर्माण कराया जिनमें अछाई का दुर्ग सबसे प्रसिद्ध है। उसने कई मस्जिदों का जीर्णोद्धार कराया था और कुतुब मस्जिद को विस्तृत करने और सहन में एक नये मीनार के निर्माण का कार्य आरम्भ किया था।

कुछ विद्वानों का कथन है कि अछाउद्दीन में सैनिक प्रतिभा उत्पन्न कोटि की नब्बो थी क्योंकि उसकी विजयों का सारा श्रेय उसके योग्य सेनापतियों को मिलना चाहिये। परन्तु ऐसा मानना मूल है क्योंकि अछाउद्दीन ने अपने जीवन के प्रारम्भ काल में ही सैनिक छद्म के बिना सफल युद्ध कर तथा भिक्षुता पर आक्रमण कर अपनी सैनिक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था। इसके अतिरिक्त भी उसने कई युद्ध किये थे जिनमें उस सर्वत्र सफलता मिलती रही। एक योग्य सेनापति के साथ-साथ वह एक सफल शासक भी था। अपनी मौलिकता के कारण उसने शासन में कई नवीन व्यवस्थाएँ प्रचलित की थी।

यद्यपि कुछ काल पूर्व छींग अछाउद्दीन के बाजार दर निर्बंधन की चीज आलोचना करते हुये उसे मूर्ख या बतलाते थे। परन्तु आज तो बाजार दर निर्बंधन तथा राजनिंग ऐसी सामान्य चीज हो गई है कि उस पर आधुनिक शासन व्यवस्था की सफलता निर्भर करने लगी है। अछाउद्दीन का राज्य-काल मध्य कालीन भारत युग का एक ऐसा भाग है जब बनवा सुनो की। अछाउद्दीन का राज्य प्रभावित पर निर्भर था तथा सामरिक साधन से उचित था। मुस्लिमों का स्थान उसके व्यवस्था में न था।

अछाउद्दीन का आदर्श हम करीब के तारीखें खीरोजसाही में इस प्रकार पाते हैं। “मुझे नहीं मालूम कि इस्लामी कानून के अनुसार क्या ग्यामसंघत है या क्या नहीं है। परन्तु मैं बही करता हूँ जिसे मैं राज्य तथा प्रजा के लिये हितकर समझता हूँ। मुझे नहीं मालूम कि ग्याम क दिन मेरा क्या विचार किया जायगा।”

अछाउद्दीन के उत्तराधिकारी

अछाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् विपक्षी बलों में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। मलिक काफूर न अब तक काफ़ी क्वालि प्राप्त कर चुकी थी। अतः उसकी महत्वाकांक्षा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी उसने एक-एक करके राजकुमारों को पराजित कर दिया और उमर एक जल्दी बमोयतनामा पेश किया जिसमें सुल्तान अछाउद्दीन ने उमर लौ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। उमर को आयु उस समय केवल छ वर्ष की इमतिह काफूर स्वयं शामक बन बैठा। काफूर ने सबसे पहले अछाउद्दीन के वास्तविक उत्तराधिकारियों अथवा उनके सहायकों का अन्त करके मार्ग निष्कटक करने का निश्चय किया। अतः मुबारक खाँ के अतिरिक्त छेप सभी राजकुमारों को बन्दी गृह में बंद दिया गया अथवा वे मार डाले गए। काफूर की इस नीति ने खिन्नी बंश के समर्थकों को अर्गन्तुष्ट कर दिया। उन्होंने पक्ष्यग्न रचना आरम्भ किया जिसमें वे संलग्न रहे। सेना में भी पक्ष्यग्नकारियों का साथ दिया। अछाउद्दीन के मुलामों में काफूर और उसके नाबियों की मार डाला। काफूर की मृत्यु के पश्चात् मुबारक लौ कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के नाम से १११९ ई. में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

कुतुबुद्दीन मुबारक

सिंहासन प्राप्त करने के पश्चात् कुतुबुद्दीन ने आवश्यक कार्यों की सभी नीति निभाया। उसने कैदियों की बन्दीगृह में मुक्त किया। जिनकी भूमि मलिक काफूर ने छीन ली थी उनको पुनः लौटा दी गई। मुबारक शाह ने इन कार्यों में राज्य में शांति

स्थापित कर दी। इतना ही नहीं मुबारक शाह ने अपने पूर्वजों की मूर्तों का भी मुबारक किया। विभिन्न करों को हटाकर मुबारक शाह ने व्यापार को फलने-फूलने का अवसर दिया।

मुबारक शाह के शासन-काल में राजनीतिक महत्त्व रखने वाली पहली घटना १११८ ई० में देवगिरि के राजा हरपासदेव का विद्रोह है, जिसका वमन सप्तमत्तापूर्वक कर दिया गया और हरपास देव की सजा सिखायी गई। दूसरी महत्वपूर्ण घटना जिसका सम्बन्ध साम्राज्य विस्तार से है, मुबारक की पुनः विजय है। मुबारक ने भी सप्तमत्ता में कुछ अभ्यवस्था देकर स्वयं की स्वतन्त्रता घोषित कर दिया था। मुबारक शाह ने इसके विद्रोह अपने दो कुशल सेनाध्यक्षों को एक विद्रोह सेना के साथ भेजा फलतः विद्रोहियों का वमन कर दिया गया। सुल्तान ने पहले बफर र्हा और फिर उसका वमन करवाने के बाद कमरा हिसामुद्दीन और बहीदुदीन को मुबारक का शासक नियुक्त किया।

एक अन्य महत्वपूर्ण घटना असदुद्दीन का विद्रोह है। असदुद्दीन अलाउद्दीन का भतीजा था। मुबारक शाह से असदुद्दीन अमीरों ने असदुद्दीन को मड़काया कि वह मुबारक शाह की हत्या करके सिंहासन हस्तगत करे। वह उसने इसके लिए पक्षपात रखा किन्तु उसका रहस्य मुबारकशाह को बात हो गया। सुल्तान ने असदुद्दीन तथा उसके साथियों का वमन करवा दिया।

देवगिरि में मलिक मकलसी ने सुल्तान के विद्रोह विद्रोह का सच्चा सड़ा किया था किन्तु सुल्तान ने एक सेना भेज कर विद्रोहियों का वमन कर दिया। मकलसी का माक-काल बिहीन कर दिया गया और उसके साथियों को कठोर दण्ड मिला।

साम्राज्य अभिवृद्धि की ओर—सुल्तान बंग से शासन आरम्भ करने वाले इस सुल्तान का मस्तिक बहुत बड़ा हो गया और वह ऐसे कुकरतो ने फँस गया कि बंग की प्रतिष्ठा और साम्राज्य की शक्ति को बरका पहुँचाने लगा। उसकी विचारधारा और उसके निर्मम वमन के सम्बन्ध में डा ईस्वी प्रसाद ने लिखा है—विचारक वमन ने मुबारक को मर्त कर दिया। वह अभिमान प्रविष्टोक्त तथा अत्याचारी हो गया और क्रूरित्त वासनाओं में लिप्त रहने लगा। शिष्टता और सहाचार को उसने विकारित कर दी। साधारणतया वह बेवसाओं के सहाय में रहने लगा। गाननेवाली लड़कियों को माँस बहुत बड़ा था। एक लड़के मगोहर हिजड़े अबबा सुल्तान कुमारी का वाम ५०० से लेकर १००० और २००० टंक तक हो गया। सुल्तान को उस समय शिष्टता का कुछ ध्यान न रहता था वह अपने मूर्ख साथियों के गन्दे चम्पों द्वारा बरबार के प्रतिष्ठित अमीरों को हँसी करता था। कुमारी का प्रभाव विम-मतिरिक्त बढ़ने लगा और अपने सजायियों की सहायता से उसने बाबसाह को मार डालने का पक्षपात रखा। सुल्तान की कुमारी के विचारों की सूचना मिल गई, किन्तु उसने अपने धर्मविचारों के उपदेश पर कुछ भी ध्यान न दिया। पक्षपातकारियों ने रात्रि के समय राजमहल में प्रवेश किया और सुल्तान को मार डाला। तत्काल ही एक सभा की गई और सुल्तान सहायों और अधिकारियों की सम्मति से ११२० ई० में नासिरुद्दीन की उपाधि वारण करके वह पर बठा।

नासिरुद्दीन सुल्तानशाह

यह मुबारक की एक मोक्ष यात्रिका व्यक्ति था। उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर दिया था इसका हृदय शिष्टता ही धुपित था मस्तिक उसना ही स्पष्ट और कुशाग्र

उसका जगह से भी प्रेम था और उसने कई युगों का निर्माण कराया जिनमें मझाई का दुर्ग सबसे प्रसिद्ध है। उसने कई मस्जिदों का जोर्जोडार कराया था और कुतुब मस्जिद को बिस्तृत करण और सहन में एक नये मोनार के निर्माण का कार्य आरम्भ किया था।

कुछ विद्वानों का कथन है कि अलाउद्दीन में सैनिक प्रतिभा उज्ज्व कोटि की नहीं थी क्योंकि उसकी बिजयों का सारा श्रेय उसके योग्य सेनापतियों को मिलना चाहिये। परन्तु ऐसा मानना भूल है क्योंकि अलाउद्दीन ने अपने जीवन के आरम्भ काल में ही सैनिक कर्मों के बिना सफल युद्ध कर तथा भिक्षा पर आक्रमण कर अपनी सैनिक प्रतिभा का पूरा परिचय दिया था। इसके अतिरिक्त तो उसने कई युद्ध किये थे जिनमें उस सबीब सफलता मिलती रही। एक योग्य सेनानी के साथ-साथ वह एक सफल शासक भी था। अपनी मौलिकता के कारण उसने शासन में कई नवीन व्यवस्थाएँ प्रचलित की थी।

यद्यपि कुछ काल पूर्व जोग अलाउद्दीन के बाजार दर नियंत्रण की चीज आलोचना करते हुये उस मुर्ख सा बतलाते थे। परन्तु आज तो बाजार दर नियंत्रण तथा राजस्व ऐसी साधारण ची बात हो गई है कि उस पर आधुनिक शासन व्यवस्था की सफलता निर्भर करने लगी है। अलाउद्दीन का राज्य-काल मध्य कालीन भारत युग का एक ऐसा मास है जब जनता सुखी थी। अलाउद्दीन का राज्य प्रभावित पर निर्भर था तथा धार्मिक आडम्बर से रहित था। मुस्लिमों का स्थान उसके व्यवस्था में न था।

अलाउद्दीन का आदर्श हम बरनी के तारीखे खीरोजशाही में इस प्रकार पाते हैं। "मुझे नहीं मालूम कि इस्लामी कानून के अनुसार क्या न्यायसमर्थ है या क्या नहीं है। परन्तु मैं बड़ी करता हूँ जिसे मैं राज्य तथा प्रजा के हितों के समझता हूँ। मुझे नहीं मालूम कि न्याय के दिन मेरा क्या विचार किया जायगा।

अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् बिपत्ती बलों में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। मलिक काफूर ने सब तक काफ़ी स्याति प्राप्त कर ली थी। अब उसकी महत्वाकांक्षा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी उसने एक-एक करके राजकुमारों को पराजित कर दिया और उनमें एक जानी बसीयतनामा पेश किया जिसमें सुल्तान अलाउद्दीन ने उमर खाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। उमर की आयु उस समय केवल छ वर्ष थी इसलिए काफूर स्वयं शासक बन बैठा। काफूर ने सबसे पहले अलाउद्दीन के वास्तविक उत्तराधिकारियों जबकि उनके सहायकों का अन्त करके मार्ग निष्कटक करने का निश्चय किया। अब मुबारक खाँ के अतिरिक्त सब सभी राजकुमारों को बन्दी पृष्ठ में बांध दिया गया जबकि वे मार डाले गए। काफूर की इस नीति में सिन्धु बंस के समर्थकों को अमंजुस्त कर दिया। उन्होंने पक्षान्तर रचना आरम्भ किया जिसमें वे सफल रहे। सना ने भी पक्षान्तरकारियों का साथ दिया। अलाउद्दीन के मुल्कानों ने काफूर और उसके साथियों को मार डाला। काफूर की मृत्यु के पश्चात् मुबारक खाँ कुतुबुद्दीन मुबारक खाँ के नाम से १३१६ ई. में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

कुतुबुद्दीन मुबारक

सिंहासन प्राप्त करने के पश्चात् कुतुबुद्दीन ने आवश्यक कार्यों को मही मीठि निभाया। उसने कैदियों की बन्दीपृष्ठ से मुक्त किया। जिनकी भूमि मलिक काफूर ने छीन ली थी उनको पुनः जीता भी गई। मुबारक खाँ के इन कार्यों ने राज्य में शान्ति

स्थापित कर दी। इतना ही नहीं मुबारक साह ने अपने पूर्वजों की भूलों का भी सुधार किया। विभिन्न करों को हटाकर मुबारक साह ने व्यापार को फलन-फूलने का अवसर दिया।

मुबारक साह के शासन-काल में राजनीतिक महत्व रखने वाली पहली घटना १३१८ ई. में देबगिरि के राजा हरपासदेव का विद्रोह है, जिसका दमन सफलतापूर्वक कर दिया गया और हरपास देव की लाश बिचवा ली गई। दूसरी महत्वपूर्ण घटना जिसका साम्राज्य साम्राज्य विस्तार से है मुबारक की पुन-विजय है। मुबारक ने भी स्वतन्त्र में कुछ सम्भवता देखकर स्वयं की स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। मुबारक साह ने इस विद्रोह अपने दो कुशल सेनाध्यक्षों को एक विद्याल सेना के साथ तैनात कर विद्रोहियों का दमन कर दिया गया। सुल्तान ने पहले जफर और और फिर उसका ब्रह्म करवाने के बाद कमल हिंदुस्तानी और नहीपुरीन को मुबारक का शासक नियुक्त किया।

एक अन्य महत्वपूर्ण घटना असदुद्दीन का विद्रोह है। असदुद्दीन अमाउरीन का भतीजा था। मुबारक साह से असदुद्दीन अभीरों ने असदुद्दीन को भड़काया कि वह मुबारक साह की हत्या करके सिंहासन हस्तगत कर ले। वह उसने इसके लिए पर्याप्त रक्षा किन्तु उसका राज्य मुबारकसाह को प्राप्त हो गया। सुल्तान ने असदुद्दीन तथा उसके साथियों का बर्ह करवा दिया।

देबगिरि में मलिक गक़्कसी ने सुल्तान के विद्रोह विद्रोह का सप्ता सड़ा किया था किन्तु सुल्तान ने एक सेना भेज कर विद्रोहियों का अन्त कर दिया। गक़्कसी को ग़ाक-कान गिरा कर दिया गया और उसके साथियों को कठोर दण्ड मिला।

साम्राज्य मर्यादा की ओर—मुबारक ई. ॥ शासन आरम्भ करने वाले इस सुल्तान का मस्तिष्क बहुत बड़ा हो गया और वह ऐसे कुटिलों में फँस गया कि बंध की मतिष्ठा और साम्राज्य की शक्ति को बर्ह पहुँचने लगा। उसकी विचारविधि और उसके निर्मम अन्त ने साम्राज्य में शा. ई. १३५० प्रभाव ने किया है—विद्याल बैभव ने मुबारक का ग़दर कर दिया। वह अहिमानी प्रतिधोक्क तथा अवाचापी हो गया और कुत्सित वासनाओं में लिप्त रहने लगा। चिपटता और सबाचार की उसने विकासि ई. ॥ साम्राज्य तथा वह बैव्याओं के सहवास में रहने लगा। नाचनेबाली व्यक्तियों की माँग बहुत बढ़ गई। एक जड़के मनोहर हिजड़े बघवा मुबारक कुमारी का दाम ५० से लेकर १० और २००० टंक तक हो गया। सुल्तान को उस समय चिपटता का कुछ ध्यान न रहता था जब वह अपने मूर्ख साथियों के गाने शब्दों द्वारा दरबार के प्रतिष्ठित मनोरं को हँसी करता था। कुसरो का प्रभाव दिन-मिदिन बढ़ने लगा और अपने समाचारों की सहायता से उसने आरसाह की मार डालने का प्रयत्न रखा। सुल्तान की कुसरो के विचारों की शुद्धता मिला गई किन्तु उसने अपने सुभारितकों के उपदेश पर कुछ भी ध्यान न दिया। पद्य-त्रकारियों ने राज के समय राजप्रवचन में प्रवेश किया और सुल्तान को मार डाला। तत्काल ही एक सम्राट की गई और कुसरो दरबारों और अधिकारियों की सम्मति से १३२ ई. में नासिरुद्दीन की उपाधि आरम्भ करके गई। पर बँठा।

नासिरुद्दीन कुसरोशाह

यह मुबारक की एक ग़ोष जाति का व्यक्तित्व था। उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था इसका हृदय जितना ही क्षुणित था मस्तिष्क उतना ही स्पष्ट और कुशाग्र

वा। अपनी प्रतिमा के हो बरब पर वह मुबारक का प्रिय एवं विश्वासपात्र बन गया था। उसमें बुद्धि के साथ शारीरिक शक्ति भी कम न थी। तिलंगाना के शासक के विरुद्ध कुसरो को जा सफलता मिली वह इसका प्रमाण है। मुस्तान ने कुसरो को तिलंगाना विजय के पश्चात् दिल्ली वापस बुला किया अथवा कुसरो की तो यह इच्छा थी कि दक्षिण में स्वतन्त्र राज्य स्थापित करे, किन्तु दिल्ली आकर भी उसकी धमिने में कोई कमी नहीं पड़ी और वैसे कि हम देख चुके हैं उसने वही सरलता से मुस्तान का बच कर दिया। कहा जाता है कि मुस्तान की हत्या करने के पश्चात् कुसरो ने सभी बमीरों का राजप्रासाद में बुलवाया जहाँ वे रात भर बन्द रहे गए और हजर कुसरो के अनुयायी हरम (उजमहल) में प्रवेश करके राजकुमारों तथा राक्षसों की हत्या में लीन थे। कुसरो ने साम्राज्य में आंतर्य व्याप्त कर दिया। यही कारण है कि मुसलमान इतिहासकारों ने कुसरो के शासन-काल को आतंक काळ कह कर पुकारा है।

कुसरो को चुनौती देने वाला फखरुद्दीन खाना (मुहम्मद तुघलक) नाम का एक व्यक्ति उठा हुआ। उसका पिता गाजी मलिक दिपावपुर का शासक था। खाना ॥ अपने पिता का साथी युध्दमा में था। इस बुद्धि शैलिक के श्रेष्ठ का ठिकाना न रहा उसने कुसरो के विरुद्ध साम्राज्य के सरदारों के पास सन्देश भेजे। मुस्तान ने शासक का छोड़ कर दोष सभी सरदारों ने गाजी मलिक का साथ दिया। गाजी मलिक एक अधिकारी सेना केन्द्र दिल्ली की ओर चल पड़ा। कुसरो की अशिक्षित असंगठित और अल्पव्यवस्थित सेना में मगबूज भय गई, कुसरो भी एतल्ल छोड़ कर भाग गया। किन्तु उसकी मौत ने उसे निरस्तार करवा दिया और उसका सिर काट लिया गया। तत्पश्चात् गाजी मलिक ने सरदारों को एकत्रित करके यह पता लगाया कि अलाउद्दीन का कोई बंधन शेष है अथवा नहीं। सरदारों ने एक स्वर से उत्तर दिया कि अलाउद्दीन खिलजी के बंध का नाम गिषाग मिट चुका है और गाजी मलिक को दिल्ली का सिंहासन सुसोमित करना चाहिए। अतः गाजी मलिक गयामुद्दीन तुघलक के नाम से ११२ ई में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

मदन

1 Briefly describe the Deccan campaigns of Alauddin Khilji. What were the objectives of these invasions? (1942, 1947)

१—अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिणी अभियान का संक्षेप में वर्णन करो। अभियान के अभिप्राय क्या थे? (१९४२ १९४७)

2 What were the military political and economic measures adopted by Sultan Alauddin Khilji to defend his empire from disintegration and foreign aggression? What were the causes of his success? (1943 1950)

२—अलाउद्दीन खिलजी ने साम्राज्य की विघटन और बाह्यमग से रक्षा करने के लिए कौन सी सैनिक राजनैतिक और आर्थिक कार्य प्रवृत्ति अपनायी और उसकी सफलता के क्या कारण थे? (१९४३ १९५०)

3 Explain the administrative, political and economic regulations of Alauddin Khilji? How far was he successful in giving them? (1940 1949)

१—अलाउद्दीन के शासकीय राजनैतिक और आर्थिक विधानों का वर्णन कीजिए। उसने उन्हें सफलतापूर्वक किस प्रकार चलाया? (१९४७-१९४९)

4 Write a short account of the economic reforms of Alauddin Khilji (1948-1950)

४—अलाउद्दीन खिल्जी के आर्थिक सुधारों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (१९४८-१९४९)

5 Amplify discuss and criticise the statement "Alauddin was the typical strong man of his age." (1954)

५—इस कथन की विस्तृत आलोचना कीजिए—'अलाउद्दीन अपने युग का प्रतिनिधि व्यक्तिगत रूप से था।'

अध्याय ३०

फराउना तुर्क तथा राज्य प्रसार

गयामुद्दीन तुगलक

सिंहासनारोहण

तासिफ्दीन तुसरा शाह की पराजय के पश्चात् १३२ ई० में गयामुद्दीन सिंहासन पर बैठा। यद्यपि सेना एवं सामन्तों में तुसरा का साथ नहीं दिया और अनक सामन्त बिद्रोह कर गाजी मलिक की सेना में चले गये व फिर भी गयामुद्दीन को एक भयानक युद्ध करना पड़ा था। गयामुद्दीन दिल्ली का प्रथम मुस्लान था जिसने अपने नाम के साथ गाजी शब्द का प्रयोग किया। वस्तुतः यह उपाधि तातार सेनाओं को लगभग १९ बार पराजित करने के उपरान्त में धारण की गई थी। अपनी विजय के कारण यह हिन्दुस्तान एवं बुरखान में एक कुशल युद्ध नेता के रूप में प्रसिद्ध था। गयामुद्दीन तुगलक के सिंहासनारोहण में हमें इस्लाम धर्म की प्रजातान्त्रिक भावनाओं का आभास होता है। तुर्की राज्य की स्थापना के समय से यह प्रथम अवसर था जब कि दिल्ली सिंहासन पर एक ऐसे व्यक्ति में पराजित किया जो सर्वसम्मति से मुल्तान घोषित किया गया था। यद्यपि यह सर्वसम्मति सामन्तों एवं अमीरों की ही थी तथापि भारत के मुस्लिम राज्य में यह एक नवीन एवं महत्वपूर्ण घटना थी। सिंहासनारोहण के समय गयामुद्दीन युद्ध हो चुका था परन्तु उसमें राजनैतिक कुशलता की कमी न थी। उसने असाहसी के सम्मेलनों के प्रति उदार व्यवहार दिखाकर अपना सम्मान बढ़ा लिया और पर एवं उपाधियों का वितरण कर अपने ह्मिदी बढ़ाये। प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और छन दर विजय

जिम समय गयामुद्दीन सिंहासन पर बैठा साम्राज्य को बड़ा विभ्रम भिन्न हो चुकी था। केन्द्रीय शासन की दुर्बलता के कारण साम्राज्य की सीमा संकुचित हो गई थी। तुसरा के शासन-काल के हिन्दू सत्ता की पुनर्स्थापना का प्रयत्न बताया गया है और वस्तुतः हिन्दू राजा एवं सरदार स्वतन्त्र होने की अपनी-अपनी योजनाएँ बना रहे थे। साम्राज्य के बाह्य प्रदेशों में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ और पकड़ रही थी और स्थानीय निरंकुश शासकों ने केन्द्रीय सत्ता का दुर्बल कर दिया था। मुगल लोग और अन्य जातिपों के पराजित चले रहे थे और पञ्जाब एवं सिन्ध में उनका बोलबाला था। राजपूताना में जैमलदेव इत्यादि हुए हुए चुका था परन्तु बुरखान में जो एक राजासी से दिल्ली साम्राज्य का एक अंग माना जाता था इस समय दुर्गबलता का बोलबाला था और राजपूत इस पर अधिकार करने की भरमक चपटा कर रहे थे। बंगाल तो प्रायः स्वतन्त्र हो था। वही पर दो शासकों के मितः चल रहे थे। दक्षिण में भी लगभग यही रवा थी और यही कारण था कि गयामुद्दीन दक्षिण की ओर आकर्षित हुआ।

प्रारम्भिक विजय—तैमगाना में जाकनीय बंग का राजा प्रताप रत्न जब द्वितीय कर रहा था। इन्द्रेव में कर देना बन्द कर दिया था क्योंकि मुबारक के

कमजोर शासन में उसने अपनी शक्ति पर्याप्त रूप में बढ़ा ली थी। उसके बख्शनाय मुल्तान में अपने पुत्र जुना खाँ को १३२१ ई० में एक विशाल सेना लेकर बाराणस भेजा। कुर्ष पर बरस डाल दिया गया। बमासान मूढ़ हुआ। ख़वेस न निराश होकर सन्धि का प्रस्ताव गव्वा परन्तु युबराज न उसे ठुकरा दिया। वह ख़वेस को बन्दी बनाता चाहता था व दक्षिण के राजपूतों को इस विषय में जातकिष्ठ भी करना चाहता था। परन्तु इसी बीच दिल्ली में मुल्तान की मृत्यु हो जाने का असह्य समाचार फैल गया और पड़ोस के राजाओं ने सन्धिको युबराज का साथ छोड़ देना क लिए मंजूर किया। अनेक सरदारों ने छाही सेना का साथ छोड़ दिया। ख़वेस न इस परिस्थिति से घाम उठाया और युबराज को अपने राज्य से अलग दिया परन्तु वह पराक्रम मुल्तान के हुकूम में काँटा बन गई। १३२३ ई० में पुनः उसने युबराज को नई सेना के साथ वापस भेजा। नरेश ख़वेस न आत्मसमर्पण कर दिया और बाराणस का नाम बदल कर मुल्तानपुर रख दिया गया। सारे प्रदेश को दिल्ली के अधीन कर लिया गया और इसके साथ ही काकतीय वंश का गौरव स्पी मृत्यु अस्तावस्त में डूब गया।

उड़ीसा का अधिपति—उक्त छौं को उड़ीसा के नरेश मानदेव द्वितीय पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। इस विषय में यद्यपि बहौं मुर्छों शासन स्थापित न हो सका परन्तु सट्ट का बहुत सा सामान दिल्ली आया।

मुयसों का आक्रमण—इसी समय मुयसों न आक्रमण कर दिया और वे समाना के निकट तक आ गए। मुल्तान न समाना के हाकिम बहाउद्दीन के सहायताएँ एक सेना में ली जिसने मुयसों को दो बार परास्त किया और वंस के बाहर लदेड़ दिया। बहुत से ममक सैनिक बन्दी बना लिए गए और वन्दित किए गए।

समानीय विजय—पहले बताया जा चुका है कि बंगाल में दो शासकों के सिक्के प्रचलित थे। दोनों में सत्ता हथियाव के लिए युद्ध हो रहा था और गहावहीन एवं नासिरुद्दीन की प्रार्थना पर मुल्तान की बंगाल की घटनाओं में हस्तक्षेप करने का सुअसर प्राप्त हुआ। वह दोनों राजकुमार अपने छोटे भाई बहादुर के सिद्ध सहायता चाहते थे। समानीय बंगाल पर अपनी सत्ता स्थापित करना चाहता था और इस प्रकार इस अवसर का लाभ उठाकर उसने बंगाल पर आक्रमण करने का विचार किया। दिल्ली का शासन-प्रमुख युबराज जुना खाँ को धोप दिया गया। एक विजाल सेना के साथ मुल्तान न बंगाल पर आक्रमण कर दिया। बहादुर खाँ परास्त हुआ और नासिरुद्दीन की समानीय का शासक बना दिया गया। दूरस्थ प्रदेश होने एवं बिगोही प्रवृत्ति के समनार्थ मुल्तान न बंगाल के शासक को अपने नाम के सिक्के बनवाने की अनुमति दे दी परन्तु इन सिक्कों पर दिल्ली मुल्तान का नाम भी उल्टा था जो दिल्ली की सर्वोच्च शक्ति का प्रतीक था।

बंगाल में लौटते समय मुल्तान का विधिका के करनार बंधी नरेश हरिमिह दब का सामना करना पड़ा। हरिमिह पराजित हुआ और बंगाल को ओर भाग गया और अहमद खाँ का निरुद्ध का राज्यपाल बना दिया गया।

समासहीन की मृत्यु

युबराज जुना खाँ न बंगाल न वापस आने हुए बिजयी मुल्तान के स्वायत्ताय राजधानी से कुछ मील दूर अकलापुर में एक महक का निर्माण करवाया। इतिहास के प्रसंग के समय वह महक धरापायी हो गया और इस जाने के कारण मुल्तान एवं उसके अल्पवयस्क पुत्र अहमद की मृत्यु हो गई। मुल्तान की मृत्यु व गम्बर

में इतिहासकारों में मतभेद है। कहा जाता है कि सुल्तान एवं युवराज बूना से सम्बन्ध अच्छे न थे और बूना की सिंहासन पर अधिकार करना चाहता था। मोहम्मद ऐतिहासिक तथ्यों से अब यह सिद्ध हो चुका है कि इस दुर्घटना में राजकुमार बूना की हत्या का और सुल्तान की मृत्यु आकस्मिक न होकर निश्चित एवं आपाधिक पद्धति के परिणाम-स्वरूप हुई थी।

गयासुद्दीन का चरित्र

सौमात्री का रक्षक गयासुद्दीन तुगलक कोमल एवं उदार प्रकृति का था और अपने व्यवहार में अत्यन्त सरल था उसे शक्ति का वमन न था। अहमियाँवियों के प्रति उसने सदा एक-सा व्यवहार किया था। उस सुल्तान के कर्तव्य का भली-भाँति ज्ञान था और वह सामरिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। अपने बर्न के निरपेक्ष रिवाजों का पालन करता था। वह अपने सामरिक व्यवहार में बड़े परम्परागत धर्मावलम्बियों के प्रति उसने कभी मो संकुचित विचारों को अपने मन में स्थापित नहीं किया। अन्य धर्मावलम्बियों के विरुद्ध कुछ असबा कठोर व्यवहार विधर्मावृत्त का परिणाम नहीं था परन्तु एक राजनैतिक आवश्यकता एवं कुशल शासक का प्रतीक था।

वह दूसरों के प्रति व्यवहार में ही सरल न था परन्तु उसका समस्त जीवन विचारिता एवं कुतूहल से दूर एक साधा एवं आत्म निर्भरता का जीवन था। निर्भर एवं विपत्तियों का सामना करते-करते उस विकासमय जीवन के अनुभव का भावनात्मक ज्ञान था। उसे विकासमय जीवन से प्रति बूना था और वह मध्याह्न से से कोशों दूर रहता था। वह अपने सिद्धान्त का पक्का और जनता का अनुभूति था। अज्ञानता को रक्तमय मोति एवं कठोरता के विपरीत उनमें कुछकता। बहिष्कार से साम्राज्य की प्रतिक्रियावादी शक्तियों का समन किया था। मुबारक। तुगलक के विकासमय एवं अष्ट शासन से अत्यन्त-वाचन को संयोजित करना के कम संभवता न थी।

मुहम्मद तुगलक (१३२५-१३५१)

सिंहासनारोहण—सुल्तान गयासुद्दीन की अकस्मात् मृत्यु के पश्चात् युवराज बूना की मुहम्मद तुगलक के नाम से दिल्ली में सन् १३२५ ई० में सिंहासनारोहण हुआ उसका सिंहासनारोहण शांत एवं रक्तपात रहित परिस्थिति में हुआ था। बाह्य अथ आन्तरिक किसी प्रकार का अंतरा न था। वह एक यौव्य सेना-नायक के रूप में प्रसिद्ध था और दिल्ली बस के समय में उस राजनैतिक एवं शासन सम्बन्धी अनुभव प्राप्त हो चुके थे। स्थिति को दृढ़ करने के लिए उसने सेना एवं सामन्तों को दिया और पर आदि के विचारण से सामन्तों एवं प्रजा की राजमक्ति निश्चित ही थी तुगलकाबाद से दिल्ली आते हुए सुल्तान का भव्य स्वागत किया गया। राज्या-को सुमंगल किया गया और राजधर्म पर पुनः बर्ण हो रही थी। चारों ओर सुल्तान की प्रतिष्ठा हुई और मुस्लिम जगत के कोर्न-कोर्न से निजाम् एवं सामि-ध्वनि उसके राज-दरबार में एकत्रित होने लगे। जनता भी ही मुहम्मद तुगलक के मूर्त कार्य को भूक गई। राजकीय पक्ष से पूर्ण था और वस्तुस्थिति मुहम्मद तुगलक की महत्वाकांक्षी दृष्टियों के अनुकूल थी।

ऐसा कि संकेत किया गया है मुहम्मद तुगलक महत्वाकांक्षी था और वह दूरस्थ स्थानों पर अधिकार कर साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था और

अपनी इच्छापूर्ति में उस अनेक युद्ध करण पड़े और इससे भी अधिक बिजोही स्थितियों का सामना करना पड़ा।

बुरासान का योजना—मुहम्मद तुगलक की सर्वप्रथम आक्रमण योजना बुरासान पर आक्रमण से सम्बन्धित थी। भारत के उत्तरी एवं दक्षिणी प्रदेश पर मुस्लिम का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। यद्यपि राजपूताना एवं देह के अन्य कुछ भाग उसके साम्राज्य में सम्मिलित नहीं थे फिर भी मुस्लिम को इस ओर से न तो प्रयत्न ही था और न भीयोगिक परिस्थितियाँ ही इस मार्ग पर अधिकार करने के अनुकूल थी। राजदरबार में घरनामत कुछ बुरासान, बमीरों ने मुस्लिम को बुरासान पर आक्रमण करने का सुझाव दिया और बुरासान की शोचनीय दशा की ओर उसका ध्यान आकषिप्त किया। बुरासान की आन्तरिक दशा वहाँ के अल्पवयस्क एवं बुराचारी मुस्लिम अम्बू सईन के कुशासन के कारण शोचनीय थी। बनता उससे असन्तुष्ट की ओर सामन्त एवं सेना-नायक पङ्कजकाटी न। बमीर बंयन मुस्लिम का संरक्षक था और राज्य पर निजी सत्ता बमाना चाहता था। बुराचारी मुस्लिम अपने संरक्षक की पुरी स बिबाह करना चाहता था परन्तु बंयन न इसे अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप उसे सदा के लिये निश्रा देही की गोद में सुका दिया गया। मुस्लिम तो अल्पवयस्क और बुराचारी था ही समस्त राज्य भर में अल्पवयस्क फैल गई। मुस्लिम मुहम्मद तुगलक इस बचसर से काम उठाना चाहता था और फारस की शोचनीय दशा के कारण उस अपने योजना की सफलता पर विश्वास था। यहाँ तक तो उसकी योजना ठीक थी परन्तु अन्य परिस्थितियों के कारण उस अपनी योजना को त्याग देना पड़ा। जगताई सरदार तर्माचिरोन और मित्र का घासक दोनों ही फारस पर अधिकार करना चाहते थे और मुहम्मद तुगलक न किसी सामक की सहायता न मरोसे बुरासान आक्रमण की योजना बनाई थी। ३७ •• व्यक्तियों की विचार सलाह तैयार की गई और उस एक वर्ष का बैठन भी दिया गया था। परन्तु परिस्थितियों परिवर्तित हो गई। तर्माचिरोन नहीं से हटा दिया गया था और मित्र के सामक न अम्बू सईन न मित्रता स्थापित कर ली थी और मुहम्मद तुगलक को सहायता करने में इनकार कर दिया। दूसरी ओर बमीरों ने बिजोह कर दिया और तर्माचिरोन को सिंहासन से उतार दिया। परिणामस्वरूप फारस की पूर्वी सीमा एक प्रकार से सुरक्षित हो और इस प्रकार अम्बू सईन की शक्ति बढ़ गई थी। ३८ •• व्यक्तियों की विचार सलाह से राज्य के बाहर के जाना सरल न था। हिन्दूकुश के सकीर्ण मार्ग में अनेक विपत्तियों की सम्भावना थी। यातायात का प्रबन्ध भी अच्छा न था। अतः इस विचार सेना की रसद आदि पहुँचाना कठिन था और सन् प्रदेश में आक्रमण करने प्राप्त करना असम्भव था। साथ ही साथ भारतीय मुस्लिम सेनाओं को बाह्य प्रदेश एवं युद्ध-टीति का अनुभव भी न था। मुस्लिम के सेनानायक कुछ न थे।

कराचल विजय की योजना—कहा जाता है कि मुहम्मद तुगलक न तीन विजय की योजना बनाई थी और करिबता के विजय के आधार पर उस बहुत समय तक सत्य स्वीकार कर लिया गया था परन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। मुस्लिम मुहम्मद भारत एवं चीन की सीमा पर स्थित कराचल नामक स्थान पर अधिकार करना चाहता था। आधुनिक इतिहासकारों का ऐसा मत है। इस योजना के लिए मित्र-भित्र कारण बताये जाते हैं। इतिहासकार बर्नी ने उसे बुरासान विजय की योजना का सहायक अंग बतलाया है और हजोउहोर ने कपली स्थियों की प्राप्ति का ही इस योजना का कारण बतलाया है। परन्तु अधिकतर इतिहासकारों का मत यह है

कि यह योजना पन्तीय प्रदेश के बिद्रोही सरकार के बिद्रोह-बमन के हेतु बनाई गयी थी। सम्भवतः इस सरकार ने दिल्ली की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। सुल्तान की सेनाओं ने कराचक पर आक्रमण किया परन्तु पहाड़ी प्रदेश में उन्हें पराजित होना पड़ा। सुल्तान को जम-धन की अपार क्षति उठानी पड़ी। कुछ सुल्तान ने पुनः आक्रमण करने की आज्ञा दी परन्तु इस आक्रमण के पूर्व ही योजना का उद्देश्य प्राप्त हो चुका था। पन्तीय सरकार ने सुल्तान की अमानता स्वीकार कर ली क्योंकि वह तराई में हथि करना चाहता था परन्तु सुल्तान से शत्रुता के कारण वह ऐसा नहीं कर सकता था क्योंकि तराई वाले माय दिल्ली साम्राज्य के अन्तर्गत थे।

राजपूताना विजय योजना—राजपूताने की गाथायाँ से प्रतीत होता है कि मुहम्मद तुगलक ने सिंहासनाब्ध होते ही बिर्तापुर के राजा हुम्नोर के साथ युद्ध किया। इस युद्ध में सुल्तान पराजित हुआ और बन्धो बना लिया गया। तीन मास उपरान्त जब हुम्नोर को पचास काख टंक सी हाथी तथा अजमेर, रणबन्धोर, मुहमपुर भापीर के प्रान्त का पचन दिया गया तब सुल्तान वन्धी गृह से छाड़ दिया गया। टाड एस्कॉटन योरी उकर होराचन्ध बोसा आदि इतिहासकारों ने इस कथन का सत्य माना है। डा ईन्दरोप्रसाद तथा आगा भहो हुसेन इसे यह कह कर अस्वीकार करते हैं कि फारसी के किसी ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं मिलता। द्वितीय मल ही अधिक सही जान पड़ता है क्योंकि दिल्ली सुल्तान का तीन मास तक कैद रहना और साथ ही साथ दिल्ली एवं सम्पूर्ण साम्राज्य में शान्ति स्थापित रहना यह दोनों बातें ऐसी हैं जिनमें परस्पर मेल नहीं है। समय को ध्यान में रखते हुए हमें यह कहना पड़ता है कि यह घटना असत्य है। सुल्तान की अनुपस्थिति में सबैव ही उपद्रव हो जाया करते थे। सिंहासन प्राप्ति के लिए युवराज अपने पिता बाबा एवं मग-सम्बन्धी की हत्या कर दिया करते ही क्या मुहम्मद तुगलक के समय उसके समे-सम्बन्धी अथवा सरकार इस भावना से मुक्त थे। नहाना ऐसा होना असांभविक प्रतीत होता है। बन्धन मुक्त होने एवं बिषयकर इतना हरजाना आदि देने के पश्चात् मुहम्मद तुगलक जैसे स्वाभिमानी सुल्तान के लिए शान्त रहना कठिन था। सुल्तान का गुप्त रहना ही इस बात का प्रमाण है कि उपरांत कथा असत्य है। इस तथाकथित बिर्तापुर अभियान के बाद बिर्तापुर पर पुनः आक्रमण न करने के निम्नलिखित कारण बताये जाते हैं

१ अन्य क्षेत्र में व्यस्त रहने के कारण सुल्तान का इतना अवसर ही नहीं मिला कि राजपूताना की ओर ध्यान देता।

२ सुल्तान कथित राजपूतों की क्षति से भयभीत हो गया था।

३ राजपूताना की भौगोलिक स्थिति जिसके कारण पूर्व सुल्तान राजपूताना को आक्रामक करने में सफल नहीं हो सके थे।

वास्तव में इन तीन कारणों में अन्तिम ही अधिक महत्व रखता है। एक और बिरोध कारण बाबा भहो हुसेन ने दिया है कि सुल्तान ने राजपूताना पर इसप्रकार आक्रमण नहीं किया कि सुल्तान हिन्दुओं के साथ उदारता का व्यवहार करना चाहता था। परन्तु हमें यह मत स्वीकार नहीं है। हम मानते हैं कि मुहम्मद बिन तुगलक उन सुल्तानों में था जिन्होंने राजनीति में धर्म के प्रमाण का स्वीकार करने से इनकार कर दिया था और इस प्रकार बहुधर्मात्मता के आदान से मुक्त था परन्तु हमें यह स्वीकार नहीं कि अनेक धार्मिक सहिष्णुता के प्रदर्शन-हेतु वह अपना अपमान भूल गया हो।

मुस्तान ने कई बार हिन्दुओं से युद्ध किया था परन्तु उसने उनके साथ हिन्दू होने के नाते कोई रियायत नहीं की। अब मेहरी तुसेन का मत अमान्य है।

भरकोट की विजय—१३३७ ई में मुस्तान ने भरकोट विजय की योजना बनाई। यह युग वर्तमान पूर्वी पंजाब के कांगड़ा जिले में स्थित था और अमरा समझा जाता था। मुस्तान ने एक बिसाक सेना के साथ युग पर आक्रमण किया और अपने प्रयास में सफल हुआ परन्तु मुस्तान ने वह युग राय के निजी अधिकार में ही छोड़ दिया और राय ने किसी मुस्तान की सर्वोच्च सेवा स्वीकार कर ली। मुस्तान दिल्ली छोड़ आया।

चीन से मित्रता एवं अन्य कूटनीति सम्बन्ध—मुस्तान मुहम्मद बिन तुगलक अपने पड़ोसी राज्यों से मित्रता स्थापित करना चाहता था। सर्वप्रथम उसने चीन से मित्रता स्थापित की। चीन का राजघराना दिल्ली आया और मुस्तान ने उसका अच्छा सम्मान किया। यही नहीं मुस्तान ने मंगोली यात्री इब्नबतूता को अपना राजघराना बना कर चीन भेजा और साथ ही साथ चीनी सम्राट के लिए बहुमूल्य उपहार भेजे। कहा जाता है कि मुस्तान ने अन्य कई देशों से भी कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किया था। उसने बगदाद के खलीफा की सेवा में अपना एक राजघराना भेजा था और जब खलीफा का दूत दिल्ली आया तो मुस्तान ने उसका स्वागतार्थ ऐसे बख्श प्रारम्भ किया कि बिना पर खलीफा का नाम उपा हुआ था। खलीफा के राजघराने सम्मान में मुस्तान ने उसे साष्टांग प्रणाम किया था। मुस्तान को खलीफा की ओर से सम्मान-सूचक बख्श प्राप्त हुआ था।

सिन्धु और उन पर विजय

साम्राज्य संयुक्त एवं दक्षिणावर्ती होते हुए भी मुहम्मद तुगलक को अनेक विद्रोहिया एवं पड़ोसकारियों एवं प्रतिस्पर्धावादीयों का सामना करना पड़ा जिनके कारण साम्राज्य क्षिप्त-भिन्न एवं पतन-गमन हो गया और उसका उत्तराधिकार स्वयं मुस्तान पर आया गया। वस्तुतः मुस्तान की योजनाओं तक पर आधारित थी और उसे जनता को माननाओं का ध्यान न था। परिणाम-स्वरूप जनता के असहयोग और अपने सामन्तों की अयत्नता के कारण मुस्तान की समस्त प्रत्यक्ष योजना असफल रही। जनकता से विद्रोह होकर मुस्तान का स्वयं विद्रोह हो गया। उसे न तो प्रजा पर ही विश्वास रहा और न अपने सामन्तों एवं सेना-नायकों पर ही। दूसरी ओर प्रजा एवं सरकार मुस्तान का रहस्यमय मन्त्रिणाओं के समक्ष में अमान्य थे। अन्त में मुस्तान के प्रति असहयोग एवं स्वायत्तता का अमान्य था। प्रजा मुस्तान को और मुस्तान प्रजा का दोषी समझते थे। दोनों को एक दूसरे के प्रति घृणा थी। ऐसी परिस्थिति में विद्रोही एवं प्रतिस्पर्धावादी शक्तियों का उत्पन्न प्रवृत्ति हो गई। यही मुस्तान ने अपने सामन्तों को अयोग्य एवं पड़ोसकारियों मानकर विदेशी साम्राज्य को सहायता की। इसका परिणाम मुस्तान एवं साम्राज्य दोनों के लिए बुरा हुआ। देशी सरकार मुस्तान के विद्रोह हो गए और विदेशी सरकार कबल अपनी स्वार्थ मित्रि के लिए ही मुस्तान को सहायता कर रहे थे। प्रजा के असहयोग और अपने स्वार्थमय माननाओं के कारण विदेशी सरकार दास-मन्त्रियों को सुधार रूप में जनता में जनक हो रहे। तत्परचात् मिन्त्रिणाओं व्यक्तियों का शासन का स्वयं भार सीप दिया गया। परिणाम-स्वरूप साम्राज्य को क्षय गमन हो गई और मुस्तान को विद्रोह दमन के लिए स्थान-स्थान पर भागना पड़ा।

सिन्ध के दो बिद्रोह—सिन्ध में पहला बिद्रोह १३२८ ई० में हुआ। बिद्रोही ब कमासपुर के काजी तथा खतोब। दोनों बिद्रोहियों को कैद कर उनकी साल खिचवा ली गई। दूसरा बिद्रोह सेहवान में १३३३ ई० में हुआ। सेहवान का शासक रतन (हिन्दू) या बिचकी बजीम-उस्सिन्ध की उपाधि प्राप्त हुई थी। कुछ मुसलमानों ने पड़ोस रच कर उनकी हत्या करवा दी। मुस्तान की जब माकूम हुआ तो उसने सिन्ध के हाकिम इमादुलमुल्क के बिद्रोहियों को कठोर वण्ड देने के लिए भेजा। प्रमुख बिद्रोहियों को बन्धो बना कर उनकी साल खिचवा ली गई ब उनमें मुसा भरबाबर कुर्ब के हार पर कटका दिया गया।

बहाउद्दीन का बिद्रोह—सन् १३२६ ई० में दक्षिण में सागर के बागीरदार बहाउद्दीन ने बिद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। वह बागीरदार अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता था और मुस्तान के विभिन्न योजनाओं की असफलता से नाराज हो कर उसने बिद्रोह करना उचित समझा। परन्तु मुस्तान की ब। विदाक सेनाओं ने बिद्रोहियों को बिद्रोही प्रवृत्ति का शीघ्र दमन किया। बहाउद्दीन पकड़ी बना लिया गया और दिल्ली भेजा गया। मुस्तान ने उसकी साल खिचवा ली और बिद्रोहियों में बाइक फैलाने के विचार से उसे प्रान्तों में भेजा गया। उसने मास की बाबत में मिला कर उसके संग सम्बन्धियों के खिला दिया गया।

बहराम खान का बिद्रोह हिजरी सन् ७२८—यह बिद्रोह राजधानी परिवर्तन के पश्चात् सबसे महत्वपूर्ण बिद्रोह था और बर्नी का विचार है कि हिन्दुस्तान में प्रथम महत्वपूर्ण बिद्रोह था। बहराम किमल खान के नाम से प्रसिद्ध था और मूलपूर्व मुस्तान गयामुद्दीन तुगलक का परम प्रिय मित्र था और यही कारण था कि मुहम्मद तुगलक उसका सम्मान करता था और उस अपना बाबा कहा करता था। बिद्रोह का कारण इन्जबतूता एवं तारीख-ए-मुबारकशाही के लेखक यहूदा के मतानुसार भिन्न-भिन्न हैं। इन्जबतूता का कथन है कि किमल खान बहाउद्दीन की साल के प्रदर्शन के बिद्रोह था और साल की मुस्तान साथ जान पर उसने इसे दफना दिया। यहूदा का कथन है और यही मत जान पड़ता है कि अपने समय की परिपाटी के अनुसार मुस्तान ने प्रत्येक गवर्नर एवं मुख्य सामन्त को मबीन राजधानी में अपना परिवार भेजने की आज्ञा दी। किमल खान के पास इस सूचना की खे जानें वाले दूत ने सम्भवतः कुछ अनुचित शर्तों का प्रयोग किया था। किमल खान के बाबा ने अपघटनों के प्रयोग के कारण राजकीय दूत को हत्या कर दी। बहराम को बिद्रोह के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय दिखाई नही दिया। मुस्तान ने तुरन्त ही दक्षिण से मुस्तान की ओर प्रस्थान किया। वह बड़ अम्बुहर के स्थान पर लड़ा गया था। दोनों पक्षों की अपार जन घन की हानि उठानी पड़ी। समामान युद्ध के बाद साम्राज्यवादी सेनाएँ बिजयी हुई और मुस्तान की सेना नष्ट कर दी गई। बहराम भी हत्या कर दी गई और नगर में कत्लेआम की आज्ञा दी गई परन्तु सख्त इकुनद्दीन ने हस्तक्षेप से कत्लेआम रोक कर दिया गया। किमल-उल-मलिक मन्बूख की मुस्तान का राज्यपाल नियुक्त किया गया और मुस्तान दिल्ली वापस लौट आया।

मयामुद्दीन बहादुर का बिद्रोह—मयामुद्दीन बहादुर की इस घर्ष पर सोमार-मांस का नामक बताया गया था कि वह अपनी स्वामि शक्ति की बगानत ने रूप में अपने पुत्र की दिल्ली दरबार में भेजेया परन्तु बहादुर में भीने-बीरे अपनी शक्ति बढा ली और पुत्र की दिल्ली दरबार में भजन से इनकार कर दिया। मुस्तान कोचित

हुआ और उसने एक विशाल मेला के साथ सोनारगाँव पर आक्रमण कर दिया। महापुर परास्त हुआ और मार खाया गया। उसकी लाश बिचवा ली गई और उस राज्य में घुमाया गया।

छाहू कोटी का बिद्रोह—मुल्तान में मलिक छाहू कोटी ने बिद्रोह का झंडा फड़ा कर दिया। मुल्तान के शासक को कारावास में डालकर मलिक छाहू ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। मुल्तान एक बड़ी सेना लेकर मुल्तान की ओर रवाना हुआ। बोधी ही दूर गया था कि उसे अपनी माता की मृत्यु का समाचार मिला। कुछ दिन शोक मगान के बाद मुल्तान फिर आगे बढ़ा परन्तु जब वह शिवासपुर पहुँचा तो उसे मलिक छाहू का पत्र मिला जिसमें क्षमा की प्रार्थना की गई थी। मलिक छाहू मुल्तान से भाग गया था। अब मुल्तान फिर आगे नहीं बढ़ा।

अहसान शाह का बिद्रोह—सन् १३३५ ई. में मयुरा के गवर्नर अहसान शाह ने बिद्रोह का झंडा फड़ा कर दिया। इसी काल में शेखाब में अकाल पड़ा था और प्रजा बड़ाया हुए कर से क्षुब्ध थी। अकाल बचकर बस कर अहसान शाह ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। चारों ओर अराजकता फैली हुई थी और दिल्ली की सत्ता शीघ्र ही टूटने लगी थी। मुल्तान में सर्वप्रथम अपने प्रधान मंत्री खानाजहाँ को भेजा परन्तु वह किसी पदमन्त्र से प्रयत्नशील होकर दिल्ली की ओर आया। कोय से उग्रमत्त मुल्तान में स्वयं प्रस्थान किया परन्तु वह ठेगाना तक ही पहुँचा था कि हँसा फँस गया और मुल्तान के अनेक अनुचरों की मृत्यु हो गई। इस दैवी आपत्ति को मुल्तान सहन न कर सका और बाध्य होकर वापस लौट आया। अहसान शाह स्वतन्त्र हो गया।

बंगाल में बिद्रोह—१३३७ ई. में पूर्वी बंगाल के राज्यपाल बहुरान शाह के कब्जावाह फखरुद्दीन ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं शासक बन बैठा। कन्नौजी के गवर्नर का लौ न फखरुद्दीन को बख्श देने के लिए उस पर आक्रमण किया पर युद्ध में काम आया। फखरुद्दीन ने अपने नाम की मुहम्मद बख्शवाई और अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली। मुल्तान अन्य समस्याओं और बिद्रोहों के समय में इतना उत्तमा हुआ था कि उसने इस बिद्रोही को बख्श देने के लिए प्रस्थान करना उचित न समझा। मुल्तान के मीन मारण से फखरुद्दीन ने आन्तरिक विरोधों को बड़ी योग्यता से दबा दिया। सीमा ही उसने समस्त प्रवेष्ट को अपने अधिकार में कर लिया।

फखरुद्दीन बड़ा और और योग्य शासक था। इल्जबुत्ता ने उसको बड़ा वार्षिक दानी एवं निरंकुश शासक अलगवाया है। उसके काल में बंगाल की आर्थिक सत्ता बहुत सुधर गई और चीजें बहुत सस्ती हो गईं। प्रजा बहुत सुखी थी।

दक्षिण के बिद्रोह—दक्षिणी भारत निवाहों का केन्द्र बना हुआ था। उस पर प्रभुत्व रखने के उद्देश्य से ही तो मुल्तान ने बीससाबार नई राजधानी बनाई थी परन्तु मुल्तान युद्धों में इतना व्यस्त रहा कि बीससाबार में भी अधिक दिन तक रह न सका। समय समय पर दक्षिण भारत मुल्तान के आधिपत्य में था। माबर, बार्पल, डारसमूर जैसे सुदूरवर्ती प्रांतों को भी मुल्तान अपने आधिपत्य में कर चुका था। १३३५ ई. में माबर स्वतंत्र हो गया तथा १३३६ ई. में हरिहर और उसके भाई बुल्का ने स्वतंत्र विजयनगर की नींव डाली। इस साधनाय की हम अग्यत्र बिद्रोह व्याख्या करेंगे। प्रताप रघुदेव कावर्तीय के पुत्र कल्याणायक ने सन् १३४४ ई. में दक्षिण के हिन्दुओं को संगठित किया। बर्हिदेव अनुत्तरशाह अकाल के बिद्रोहकाल में बार्पल के हिन्दुओं का एक बिद्रोह शुरू किया। इस क्षेत्र में कल्याणायक (कल्याणायक अथवा नयननायक भी) ने अपना प्रभाव

मुसलमन के इस कार्य का प्रमुख कारण उसका इशान पर अधिक प्रभुत्व करने की इच्छा ही मुख्य प्रतीत होती है। इशान में राजधानी के आने से राज्य के योग्य कर्मचारी भी वही उपस्थित होने तथा सुल्तान की देखरेख में इशान में वास्तव व्यवस्था भी सुचारु रूप से चल सकेंगी। इसमें संदेह नहीं कि योजना सुचारु होत हुए भी सुल्तान का असफलता प्राप्त होने का मुख्य कारण सुल्तान की आज्ञा ही रही। यदि वह देखती के समस्त निवासियों के न के आकर केवल सरकारी वपतर के आवासीय लोगों की जनक बंदिगाइयों से प्रेरित मिल जाती।

सुल्तान न दूसरी बार बेहली में अवास करने के कारण कसीज के समीप नया सहर मरदवारी बसा कर अपनी राजधानी बनाई। यह वही करीब छ वर्ष तक रहा। यहाँ से धान की सामग्री बेहली में आवाता रहा जिसके कारण वहाँ के निवासी अकाल की यातनाओं से बच गए।

शेजाह में कर बृद्धि

राजा की ममि अधिक उपजाऊ थी तथा बोई अन्न से ही वहाँ अधिक पैसावार होता था। मुहम्मद तुगलक ने सारे राज्य में एक-सा भूमि-कर राजन के विचार से इशान की भूमि पर कर बृद्धि की आज्ञा दे दी। परन्तु उसी वर्ष वर्षा के न होने से राज्या में फसल खराब हो गई। सरकारी कर्मचारी नए वर से कर सन लग तथा बड़ी सक्ती भी करन लगे। किसान बचका कर जयको में प्राप्त गए। सुल्तान को जब इन बटनाओं का पता चला तो उसने उस वर्ष का भूमि-कर माफ कर दिया और किसानों की अपने घर लौट आने की आज्ञा दी। परन्तु किसान इतना डरे हुए थे कि वे नीब, न कीट। इसकी सूचना पाकर सुल्तान काचित हुआ तथा सेना को आज्ञा दी की जयको से वे पकड़ कर गाँवों में लाये जायें। इस बटना को बढ़ाकर कुछ इतिहासकार मनुष्यों का सिकार बताते हैं। वास्तव में यह कार्य केवल सुल्तान की प्रजा के प्रति मनुष्यताओं का प्रतीक है।

संश्लिष्ट मुद्रा का चलाना

सुल्तान के विचार बर्चसास्त्र में भी कार्य करते थे। वह समझता था कि मुद्रा केवल विनिमय का माध्यम है। इसलिए उसने सोने के मुद्रा के बजाय ताँबे की मुद्रा चलावने। परन्तु उस समय लोग इसकी नहीं समझत थे। अतः उन्हें लगा कि सरकार का खजाना खाली हो गया है तथा इन विचारों पर सरकारी एकाधिकार के बचाव के अभाव के कारण बहुत से लोग अपने घरों में ताँबे की मुद्रा बनाने लगे। व्यापार पर इसका प्रभाव पड़ा और योजना असफल हो गई। सुल्तान ने विचार होकर ताँबे की मुद्रा को बन्द कर दिया तथा सरकारी खजाने से ताँबे की मुद्रा की जगह सोने की मुद्रा दी गई। योजना उत्तम होती हुए भी सरकारी एकाधिकार की रक्षा के अभाव के कारण ही असफल रहा।

मुहम्मद तुगलक का चरित्र तथा उसके कार्यों का मूल्यांकन

मुहम्मद तुगलक का व्यक्तित्व असाधारण था। मध्यकालीन मुस्लिमों में वह योग्यतम व्यक्ति था। उसकी स्मरण शक्ति विस्मयनीय थी और वह अनेक विचारों का पण्डित था। वह जरबी एवं फारसी भाषाओं का पण्डित था। वह ललित कलाओं का प्रेमी और नज्म तर्कशास्त्र ज्योतिष दर्शन धारण और घरीर विज्ञान का भी ज्ञाता था। गणित का कोई भंग एसा न था जो उसने असूझा रहा हो।

अर्न्त न सिद्धा है कि "बहु शाकपट्ट एवं मम्मीर विज्ञान तथा सृष्टि का यथार्थ ज्ञाता था।" वह जरस्तू के तर्कशास्त्र से पूर्ण रूप से परिचित था। वह किसी भी समस्या का सूक्ष्म अध्ययन कर सकता था और उसी समय उसे उस समस्या के मोल स्वरूप का ज्ञान भी रहता था। वह एक जादूबाजी या और सबैव एक वार्त्तिक शासक के रूप में विचार किया करता था। वह इसी विमिश्रण प्रकृति का मनुष्य था कि एक बार किसी समस्या के तर्क अथवा ढंग पर विचार हो जान पर वह तुरन्त ही उसे कार्यरूप में परिणत कर देता था और उसके परिणाम की विमता नहीं रहती थी। तर्क करने में वह इतना मोह्य था कि समकालीन तर्कशास्त्री उसका साथ तर्क करने से डरतथ। वह बड़ा धार्मिक व्यक्ति था और नित्य नियमानुसार गमाज पड़ता था। यही नहीं वह अपने सहजमियों न हाथ धार्मिक नियमों का पालन होत रहना चाहता था परन्तु उसकी धार्मिक कट्टरता न थी। उसे धर्मान्विता एवं असहिष्णुता से अपार घृणा थी। यद्यपि वह अकबर महान् की तरह विधियों से मित्र-भूक्त कर नहीं रह सकता था तथापि धार्मिक सम्बन्ध में उसके विचार स्पष्ट थे और वह धर्म को राजनीति से अलग रखता था।

मुहम्मद तुगलक के चरित्र में हमें कुछ विरोधात्मक प्रवृत्तियों का आभास भी मिलता है परन्तु इन बात का ध्यान रखना होया कि वह प्रवृत्तियाँ असाधारण नहीं हैं। बलबल एवं अठावहीन के चरित्र में भी इस प्रकार की प्रवृत्तियों का आभास मिलता है। मुहम्मद तुगलक जैसे तो धर्मान्विता से घृणा करता था परन्तु जैसा कि साया गया है अलीशान के इत के स्वामत का निराका ढंग उसकी निजी धर्मान्विता का रिचय होता है। फिर भी वह मानता पड़ेया कि वह साधारण व्यक्ति से ऊँचा है और उसमें मानवीय दुर्बलताओं का सामना करने की योग्यता थी। वह इन सम्बन्धी तमकों में स्वतंत्र था और कृते विलस मेंट दिया करता था और कभी-कभी वह जल्पक कर्त्त करता था। इन्त्यवृत्ता का कवन है कि विदेशी सामन्त उसकी बमालुता का अनुचित लाभ उठात थे और वह मुस्लान की मेंट देन और उससे मेंट प्राप्त करने में व्यापार करत थे परन्तु ब्याप्त होन के साथ-साथ वह निर्दयी भी था। यही नहीं वह उक्तमात्रों को भी कठोर दण्ड दिया करता था और इन्त्यवृत्ता का कवन है कि इनके द्वार पर एक मिखारी का कलपती होना और एक वनी का निर्बल होना अथवा तुरन्त को प्राप्त होता साधारण बातें थी।

एक शासक के रूप में वह प्रजा की भलाई करना चाहता था। वह सामन गमाजी में सुधार करना चाहता था और भारत के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऊँचा उठना चाहता था। उसे शासकीयता का पूर्ण ज्ञान था और किसी सीमा तक वह भारतीय (हिन्दू) जनता को कुछ अधिकार अथवा सुविधायें देना चाहता था। उसे राज्य की समस्याओं का अच्छा ज्ञान था और उसमें इन समस्याओं को मूलमाने की योग्यता थी। उसे अपनी योजनाओं में अमकमता प्राप्त हुई तो इसका उत्तरदायित्व केवल मुहम्मद तुगलक पर रहा था।

उसके चरित्र के आधार पर मुस्लान मोहम्मद बिन तुगलक की कड़ी आलोचना की गई है। एल्किन्टन हेबेल आदि कुछ इतिहासकारों ने उसे पायलत बताया है परन्तु यह निराधार है। डा ईन्दरो प्रसाद के शब्दों में 'पाश्चात्य क्रांती के लेखकों में उस पर जो रक्त विषाधुना एवं विविधता के दोष लगाये हैं वह धविकाश में निराधार हैं। किसी भी ममताशील लेखक ने उसे पायलत नहीं बताया। रक्त विषाधुना का दोष मुस्लावी शासक लगाया गया है जिनके प्रति मुस्लान का व्यवहार स्पष्टतया उज्जानुन

रहा। यह सत्य है कि मध्य युग के मध्य निरंकुश शासकों के समान वह भी प्रबल कोमावेश से भर उठा था और अपनी इच्छाओं के प्रतिकूल चलने वालों को उनके पक्ष एवं सम्मान का कुछ भी ध्यान न कर और दब देता था।

वर्नी एवं इब्नबतूता के वचन से भी यही सिद्ध होता है कि मुहम्मद तुगलक की निरंकुश रक्तबहात का शोक न था और वह अपने शत्रुओं के प्रति भी मागबोरी व्यवहार करता था। श्री शार्बेनर शाबन के अनुसार—“उसको निरंकुश कहना सत्य हो सकता है परन्तु मध्य युग में अन्य किसी प्रकार का शासन ठीक का विचार भी नहीं किया जा सकता था। इस व्यवस्था को ऐसे रूप में प्रयोग करना जैसे कि यह किसी दुष्ट तार जपका रोग का नाम हो इस सत्य को मुका देता है कि एक निरंकुश शासक जिस तरह नवीन विचारों की पहुँच हो सकती है या भी सुधार के कार्यों में प्रवृत्त होता है वह एक ऐसे समय में जब शिक्षा का प्रचार हो और कृषिबल बढ़मूढ हो अपनी प्रजा की अनिष्टि के लिए बहुत कुछ कर सकता है।

वास्तव में उसके सुधारों को योजनार्थ समय से जाने भी और उसके अनिष्टि मस्तिष्क के अनिष्टि उच्छा हृदय से सहयोग न देते थे और यही कारण था कि उसकी योजनार्थ असफल रही। परन्तु इस असफलता के लिए सुल्तान भी उत्तरदायी था क्योंकि वह अपने अनिष्टिों को अपने कठोर नियन्त्रण के अन्तर्गत करने में असफल रहा। यद्यपि ज्ञा ईश्वरों प्रसार एवं अन्य इतिहासकारों ने उसकी असफलता को औरतमय असफलता कोषित करने की चेष्टा की है तथापि सत्य तो यह है कि उसकी असफलता असफलता ही थी और इसे औरतमय बताने से सुल्तान का उत्तरदायित्व कम न हो जायेगा।

फिरोज तुगलक

सिद्दासनारोहण—मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हो जाने पर सेना एवं साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गई थी। प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के उत्पन्न हो जाने के कारण समस्त साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गई। सिन्धु प्रांत की स्थिति विशेष रूप से खोपनीय थी। बिरोही ठानी ने साहसपूर्वक सामना किया और मुहम्मद की बिरोही मंत्राली को सहायता सेना पड़ी। परन्तु सुल्तान की मृत्यु हो जाने पर सैनिक पड़ाव इन बिरोही मंत्राली के पक्षधरों का गढ़ बन गया। उत्तराधिकार के प्रश्न पर सम्भोर विचार विमर्ष हुआ। ध्यान रहे कि जिस समय मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली से बिरोही की ओर प्रस्थान किया तो उसने राजधानी में फिरोज के अन्तर्गत एक कौंसिल का निर्माण किया था और इस कौंसिल को सुल्तान की अनुपस्थिति में राजधानी के उचित प्रबन्ध का कार्य दिया गया था। सुल्तान की मृत्यु के समय फिरोज घट्टा में पहुँच चुका था। ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय परिवार से सम्बन्धित व्यक्तियों के फिरोज सर्वोच्च व्यक्ति था और परिणामस्वरूप एक गत सुल्तान चुना गया। परन्तु फिरोज के सिद्दासनारोहण के सम्बन्ध में मतभेद है। शम्स-ए-दिराज मफीज का कथन है कि मुहम्मद तुगलक के एक पुत्र था और वर्नी इस कथन को अस्वीकार करता है। वह फिरोज का सिद्दासनारोहण निम्नलिखित आधार पर उचित ठहराता है

(१) मृतपूर्व सुल्तान (मुहम्मद तुगलक) ने फिरोज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।

(२) मृतपूर्व सुल्तान ने फिरोज को अपने साम्राज्य के एक भाग का शासन प्रत्यक्ष सौंप कर उसे शासन कार्य में विद्यमान अनुभव प्राप्त करने की प्रत्येक सुविधा प्रदान की थी।

(३) सिन्ध के सैनिक पड़ाव में एक उच्च पदाधिकारी की उपस्थिति आवश्यक थी और इसलिए फिरोज को बुलाया गया था।

(४) समीक्षा को मेज गमे पत्र में फिरोज का नाम जिस हद तक उल्लेख किया गया था उससे फिरोज के उत्तराधिकारी नियुक्त किए जाने की बात सत्य सिद्ध होती है।

(५) मुहम्मद तुगलक के कोई पुत्र न था।

वास्तविकता यह थी कि मुहम्मद का कोई पुत्र न था। अतः बर्नी की एवं सिंहासन पर अपने पुत्र का दावा करने वाली मुहम्मद की बहन की इसका ज्ञान होना आवश्यक था। बर्नी का कथन है कि प्रधान मंत्री खानाजहाँ ने एक अल्पवयस्क बालक को गद्दी पर बिठा दिया। बर्नी ने प्रधान मंत्री के इस कार्य की चेष्टा बिरोध बतकाया है। परन्तु हमें शक नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रधान मंत्री के एक दूत ने उसे सूचना दी कि फिरोज एवं ताहार का मार डाले गए हैं। परिणामस्वरूप खानाजहाँ ने साम्राज्य की सुरक्षित रखने के विचार से एक अल्पवयस्क बालक को मुहम्मद का पुत्र घोषित कर सिंहासन पर बैठा दिया। इसी ओर परिस्थिति की सम्मोचन को ध्यान में रखते हुए बर्नी ने खानाजहाँ के पुत्र के स्थान पर फिरोज तुगलक को सुल्तान घोषित किया। फिरोज राजकीय क्षमता में नहीं परमात्रा चाहता था। परन्तु स्थिति की सम्मोचन के कारण उसे इस पर को स्वीकार करना ही पड़ा। वह २५ अगस्त १३५१ ई० में गद्दी पर बैठा। खानाजहाँ ने फिरोज से जमा माँग की। परन्तु फिरोज की इच्छा के विपरीत उसके अन्य सरदारों ने उसे विश्वासघाती कहा। प्रधान मंत्री को समाना की बापिर में बने जाने को कहा गया परन्तु मार्ग में ही उसका वध करवा दिया गया। इस प्रकार फिरोज के सिंहासनाभ्युदय ही उसकी दुर्बलता एवं सरदारों की स्वेच्छाचारिता का परिचय मिलता है।

बंगाल पर प्रथम आक्रमण—यहसे बताया जा चुका है कि मुहम्मद तुगलक के शासन-काल के अन्तिम वर्षों में बंगाल स्वतन्त्र हो चुका था। हाजी इल्तिपास नामक व्यक्ति सम्मुरीन की उपाधि धारण कर बंगाल का शासक बन गया था। फिरोज ने बंगाल को पुनः हिस्सी की शक्ति के अन्तर्गत लाने के विचार से एक विद्याल सेना के साथ बंगाल पर आक्रमण कर दिया। ध्यान रहे यह आक्रमण फिरोज तुगलक की दुर्बलता का परिचय देता है। बंगाल पहुँचकर सुल्तान ने एक घोषणा की जिसमें सम्मुरीन के कार्यों की निन्दा की गई और प्रजा को यह आश्वासन दिया गया कि यदि बंगाल हिस्सी साम्राज्य के अन्तर्गत आ जाय तो उससे (प्रजा को) बहुत सुविधा होगी और सम्मुरीन के अत्याचारों का अन्त हो जायगा। सुल्तान के आगमन के समय ही सम्मुरीन ने एकदम के दुर्ग में शरण ली। सुल्तान उसे दुर्ग से बाहर निकालना चाहता था। अतः उसने कूटनीति से काम किया। सुल्तान अपनी सेना की पीछे से मारा। ऐसा करने में उसका उद्देश्य अपने शत्रु को दुर्ग के बाहर से भगाना था। सुल्तान की कूटनीति सफल हुई और सम्मुरीन राजकीय सेना का पीछा करते दुर्ग से काफी दूर चला आया। राजकीय सेना वापस सीट पड़ी और शत्रु पर आक्रमण कर दिया। एक समाचार मूढ़ के परचाएँ सम्मुरीन परास्त हुआ और मूढ़ क्षेत्र से भाग पड़ा और पुनः इकरता ने दुर्ग में प्रविष्ट हो गया। उसी सेना ने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। परन्तु दुर्ग में स्थितों के कबल-कथन ने अन्तर्गत से सुल्तान द्रवित हो

गया। इस्मिट के अनुसार राज इतिहासकार के धर्मों में सुस्तान ने घोषा—'दुर्ग को आक्रान्त करना अधिक मुसलमानों को लक्ष्य के बाट उतारना और प्रतिष्ठित महिलाओं को अपमान का पात्र बनाना एक ऐसा अपराध होगा जिसके लिए वह सुस्तान कयामत के दिन कोई उत्तर न दे सकेगा और जिससे उसमें तथा मुगलों में कोई अंतर न रह जायगा। शाही सेनामध्य छातराई ने परामर्श की उपेक्षा करते हुए सुस्तान न यह कह कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया कि बंवाल इस्लामों का देश है उस पर अधिकार कायम करने से दिल्ली की कोई विशेष काम नहीं। अन्य इतिहासकारों का मत है कि बर्पा आरम्भ हो जाने के कारण सुस्तान इस कल्पना से भयभीत हो गया कि कहीं उसी से नष्ट भ्रष्ट न हो जाये। इतन परिश्रम और धन-बल के ह्रास के उपरांत साही हवा वापस लौट आया।

बयाक पर दूसरा आक्रमण—परन्तु रामपुरी के अत्याचारों की कहानें पुनः सुस्तान के कानों तक पहुँचाई गई।

पूर्वी बंगाल के प्रथम स्वतन्त्र शासक फककूत के दामाद जठर साँ ने सुस्तान से अपना पक्ष लेने की याचना की। जठर साँ का सुस्तान ने बहुत स्वागत किया और बंगाल पर दूसरी बार आक्रमण करने की तैयारी होने लगी। जनता ने भी उत्साह की उत्पत्ति दिखलाई। एक विद्याल सेना एवं एक नाविक बेड़ा लेकर सुस्तान न बंवाल की ओर प्रस्थान किया। इसी बीच बम्बुरी का बेहोषान हो गया और और पु सिकन्दर मही पर प्रतिष्ठित हो गया था। सिकन्दर भी इकदमा ने दुर्ग में डट गया शाही सेना ने दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया और अनेक स्थान से बीमारों को तो डाला। परन्तु बगावटियों ने अपनी जान पर खेल कर बीमारों की मरम्मत कर दी। यि की अनिश्चित काल तक इसके रहना सुस्तान ने उचित न समझा। बर्पा पुनः आ गयी। बंवाली जानते थे कि यदि सुस्तान की सेना डटी रहती तो उनकी पछाज्य अवस्था म्मावी है। अतः सन्धि की बातें करने लगी। सिकन्दर के दूत हेबल साँ ने बर्पा अनुरोध किया एवं दूता का परिचय दिया। सिकन्दर ने अनुरोध जठर साँ के लौटा दिया न सुस्तान को ४० हाथी तथा अन्य बहुमूल्य उपहारों में बिले गये। इस प्रकार दूसरी बार भी सम्राट् साही हवा वापस लौट आया।

आजमपुर पर आक्रमण—बंगाल से लौटते हुए सुस्तान बीनपुर में ठहर वहीं से वह आजमपुर (वर्तमान जहीदा) की ओर चला। उस समय आजमपुर बहुत समृद्ध था एवं वहाँ काव सामग्री की बहुलता थी। शाही सेना को बाधा दे कर आजमपुर का राय भाम बड़ा हुआ। बहुतायु में भाग कर छिप गया वहीं शाही सेना ने उसका पीछा किया। सुस्तान ने पुरी में जगन्नाथ के मन्दिर को तीर्थ के समुद्र में फेंकवा दिया। गिराव होकर राय ने सन्धि के दूत भेज। राय ने प्रतिज्ञा कुछ हाथी देना स्वीकार कर लिया। सुस्तान मार्ग में अन्य अनेक हिन्दू सरदारों के जमींदारों को आक्रान्त करता हुआ दिल्ली लौट आया।

नगरकोट पर आक्रमण—नगरकोट में प्वालामुखी मन्दिर जिसमें प्रतिज्ञा अक्षय्य तीर्थ यात्री आकर भेंट चढ़ाते थे अति प्राचीन एवं प्रचुर सम्पत्ति न आमार था। नगरकोट की मुहम्मद तुगलक ने १३३७ ई० में विजय किया था परन्तु अपने जीवन में वह जमे खाँ भी बैठा। उपर्युक्त मन्दिर के ऐश्वर्य को किराने की कट्टर समर्थक कैसे सहन कर सता था। सुस्तान न नगरकोट का दुर्ग पर लिया ६ मास तक घेरा पड़ा रहा और दोनों पक्षों का बल कम हो गया। राय ने किसे

बाहर निकल कर सुल्तान से क्षमा माँग की और सुल्तान ने उसे क्षमा प्रदान करते हुए दुर्ग छोटा दिया। नगरकोट के पञ्चात्मसी मन्दिर में सुल्तान को ११०० संस्कृत क प्रश्न उपलब्ध हुए जिनमें से कुछ का अनुवाद जसन फारसी में कराया।

घट्टा पर आक्रमण—जैसा हम पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं मुहम्मद तुगलक ने मृत्यु घट्टा के निकट हुई थी। घट्टा के छापी से बरखा कम की भावना से फिरोज ने जल की ओर प्रस्थान किया। एक विशाल सेना एकत्रित हुई, परन्तु इसी समय हमारी एवं हुमिज का प्रकोप हो गया और लगभग बीबाई सेना रघर न मिल्ने के कारण समाप्त हो गई। परन्तु जब बचो हुई सेना से सुल्तान ने आक्रमण किया तो सने नाम बाबानिया को परास्त कर दुर्ग में सदेड़ दिया। इसी बीच सैन्य बल बढ़ाने के लिए सुल्तान ने मुजरात को प्रस्थान किया परन्तु मार्ग में बर्सातों ने विस्थापित किया। ता रास्ता बूझ गई और बरछ के रन में फँस गई। इसी समय घोर बकाब पड़ा। की कठिनाई से सुल्तान मुजरात पहुँचा और लगभग दो करोड़ मुद्राओं व्यय कर उसने ब्रह्म सामग्री जुटाई। सेना न बढ़ा की ओर प्रयाण किया और सिन्ध नदी के तट पर इरा नामा परन्तु सिन्धियों ने उन्हें नदी पार न करने दिया। पुनः नदी के ऊपर की ओर आकर भबकर के नीचे से नदी को पार किया गया। भीषण संघाम छिड़ गया। परन्तु ठीक ऐसे समय पर जब कि विषय की सम्भावना हो गई थी सुल्तान ने सेना को वापस बुला लिया क्योंकि निर्दोष मूलकमार्गों का रक्तपात सुल्तान कुछ देख सकता था। सिन्धियों का प्रतिरोध इस पर समाप्त नहीं हुआ। अतः सुल्तान की युद्ध समिति ने विस्फी न और सैनिक बुलवाये। घाई सेना का बल बहुत बढ़ गया। नीति-कुशल नेम ने सन्धि कर ली और आत्मसमर्पण करने की इच्छा प्रकट की। 'जाम' के बाई की 'जाम' पद पर प्रतिष्ठित कर सुल्तान जाम का विस्फी से आया और उस पैदान दे दी गई। इस आक्रमण में जो सफलता प्राप्त हुई वह मन्त्री जाम-ए-जहाँ 'मकबूळ' की समन्वित सहायता के कारण प्राप्त हुई। इस युद्ध में सुल्तान के बाई वर्ष का समय व अपार धन-जन का ह्रास हुआ।

ऊपर फिर/ज सैनिक कार्यों का वर्णन किया गया है। दुर्भाग्यवश जममें कोई भी युद्ध निर्व्यात्मक नहीं रहा। अफ्रीक का जवन है कि फिरोज तुगलक मूलिक जनता का रक्तपात करने से डरता था। परन्तु इन युद्धों के अनियमित होने का कारण अन्य है। फिरोज की सेना अलाउद्दीन खिलजी एवं मुहम्मद तुगलक की सेनाओं की नीति साम्राज्यवादी संस्था बनना आक्रमण एवं सुरक्षा को संस्था न थी। सेना की संस्था अवश्य बढ़ गई थी। परन्तु साथ ही साथ उसकी अनुपलब्धता में भी कमिबुद्धि हुई और इसका कारण वासेना में सामन्तवादी प्रजा की पुनरावृत्ति। इसके साथ भ्रष्टाचार भी फैल गया और अफ्रीक एक सैनिक का वर्णन करते हुए कहता है कि सैनिक के पास प्रियतम हेतु स्पष्ट न होने पर सुल्तान ने उसकी जन दिया। यह उदाहरण इस बात का प्रतिनिधित्व करता है कि फिरोज दया की नीमा पार कर आया करता था और उसकी दया का अनुचित लाभ उठाया जाता था। सेना की अनुपलब्धता के सम्बन्ध में एक अन्य बात की भी ध्यान में रखना चाहिए। वह थी बधानुगत उत्तराधिकार की रीति या उस समय प्रचलित थी। इसी कारणों से सेना की कार्यक्षमता धीरे धीरे थी और सुल्तान की योजनाओं की सफलता में बाधक थी।

न्याय—अपम जीवन के अन्तिम दिनों में बूढ़ावस्था एवं अग्रम दुबल स्वभाव के कारण राज कार्य जाम-ए-जहाँ पर छोड़ दिया जा बमंदी और उर्दब स्वभाव

का मनुष्य था। इससे अभीर घबरा हो गये। मुबराक मुहम्मद एवं आन-ए-जहाँ के बीच समझौता हो गया जिसके कारण और अकबरशाह छा गई। मुबराक के बीच कुरबानों के कारण गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्त में मुहम्मद पर्वतीय प्रदेश की ओर सरेई दिया गया। अपने पाँच तुगलक साहबियन लॉ की राजकीय जिम्मे प्रदान कर मकदूर १३८८ ई० में ८० वर्ष की आयु में फिराज का देहावसान हो गया।

फिरोज तुगलक का शासन प्रयत्न

फिरोज तुगलक के समय देहली सल्तनत की राज्य सीमा संकुचित हो गई थी। उसने इस संकुचित सीमा में अपने को शासन सुधार कार्यों में सीम रक्खा। उसने उस्मानों की सलाह से राज्य को इस्लाम धर्म पर आधारित करने का प्रयत्न किया तथा प्रजाहित का भी ध्यान रक्खा। प्रजाहित के किय किय यही परीक्षा ही उसने प्रजा पर जो मुहम्मद तुगलक के समय के कर्म से उन्हें माफ कर दिया।

राजस्व विभाग में सुधार

फिरोज तुगलक न नियम बनाया कि भूमि कर निर्धारित करके भूमि की पाँच करवाई आय तथा इस्लाम धर्म के विरुद्ध जो कर थे उन्हें हटा दिया आय। खिराज खाम बजिया तथा बकात को छोड़ सभी कर हटा दिए गये। व्यापार में भी बहुत सी छोटी-छोटी चीजों पर से कर हटा दिए गये। नहरे के पानी से सिंचाई करने वालों को पंखावार का पूरा हिस्सा अधिक देना पड़ता था। कर बसूक कराने वाले पदाधिकारियों को बेतन जागीर कम में दिया जाना क्या तथा उन्हें सरकारी कुछ छूट भी मिली जिससे कि वे कुपकों को नष्ट न हों। राजस्व विभाग की देख-रेख स्वामि हिस्साम उद्दीन बुन्द की निहा।

कृषि की उन्नति के किय उसने यमुना सरकज तथा बाबरत नदियों से नहरें बनवायी और करीब १५० कुएँ भी बनवाये।

सौकरहित कार्य

फिरोज तुगलक न सौकरहित के किय कस्बे तथा सहरों की स्थापना की। उसके बसाय सहरों में मुख्य फिरोजाबाद फतेहाबाद हिसार, तथा जीनपुर हैं। उसने प्राचीन स्मारकों का जीर्णोद्धार भी किया। गरीबों के किय एक शरणालय स्थापित की गई तथा बार उसछफ से उन्हें मुक्त रखा भी जाने का बन्दोबस्त किया। उसने महरसे तथा महरतों की भी स्थापना की।

धार्मिक कार्य

फिरोज कट्टर मुसलमान था तथा इस्लाम धर्म का प्रचार करना चाहता था। इस्लाम धर्म के प्रचार के किय एक तरफ तो उसने मन्त्रियों को छोड़बाया दूसरी तरफ इस्लाम धर्म की अपनाने वालों को जागीर इनाम में तथा पदवियाँ थी। कट्टर सुन्नी होने के नाते उसने दिया तथा मुसलमानों के अन्य सम्प्रदायों का भी दमन किया।

बात प्रजा

यद्यपि बात प्रजा कोई नहीं थी न थी। परन्तु फिरोज तुगलक न इस प्रजा की पुनर्जागृ किया। बातों की मिठा का अच्छा प्रभाव किया गया। उन्हें मिम-मिम कारखानों में रक्खा गया जहाँ न राज्य के किय आवश्यक वस्तु प्रस्तुत करने लगे।

मुहा सुमार

फिरोज तुगलक ने कई छोटे मूल्य के मुहा जसबाये तथा घासगानी आबा
और बीच बीचों बीच भी जसबाये।

फिरोज तुगलक ने राज्य कर्मचारियों के सभी पय पैतुक कर दिये।

फिरोज तुगलक के कार्यों का मूल्यांकन

फिरोज तुगलक एक साधारण योग्यता का व्यक्ति था। उसमें न तो महत्वा
कांक्षा ही थी और न महत्वाकांक्षी कार्यों की करम की योग्यता। उसमें बड़ा संकल्प का
भी अभाव था। वह एक धर्मपरामर्श व्यक्ति था और सदैव धार्मिक ऐतिरिक्त का
पावन किया करता था। यद्यपि मुहम्मद तुगलक ने उसे शासन कार्य में अनुमति प्राप्त
की प्रत्येक सुविधा प्रदान की थी और उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था फिर
भी वह धार्मिक सादमी में एक साधारण साधक के स्तर से ऊपर नहीं उठ सका।
कई इतिहासकारों ने उसे उसे आदर्श मुस्लिम शासक बताया है। नहीं स्मिता है कि
मुईजुद्दीन मुहम्मद बिन साम के पश्चात् बिस्वी का कोई मुस्तान इतना बिनय ब्यास,
सत्यप्रमी विश्वसनीय एवं धर्मपरामर्श न था। सम्प्र-ए-सिदाज मदीक ने उसकी
अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की है और उसने धर्मार्थ में तारीख-मुबारकशाही के
सेसक का कथन है कि नौधरबा के बाब बिस्वी का कोई भी मुस्तान इतना न्यायपूर्ण
ब्यास, धर्मपरामर्श एवं सुन्दर प्रशंसा का प्रेमी न था। इस प्रकार फिरोज को एक
आदर्श साधक बताया गया है। इस कारण को स्वीकार करना कठिन है। कट्टरपंथी
मुस्लिम इतिहासकारों जबवा बर्माज मुस्लिम प्रजा के लिए वह आदर्श बन सकता है।
परन्तु एक मुस्तान की आवश्यकता उसक निजी धर्म एवं चरित्र के साथ-साथ साधक के
रूप में सामान्य प्रजा के हित को देखते हुए उसके शासकीय चरित्र का मूल्यांकन
द्वारा निश्चित की जाती है। उसे अकबर महान् जबवा औरंगजेब के समान बतलाना
अनुचित होगा। उसमें अकबर महान् के चारित्रिक गुणों का वर्णन भी न था और
यद्यपि धार्मिक कट्टरता में वह औरंगजेब का पूर्वज था परन्तु उसमें उस महान् साधक
के अन्य गुणों का कुछ भाग भी न था।

उसने चरित्र की ओर साज ही साम उसके शासन की मुख्य विशेषता की उसकी
धर्मनिरपेक्षता। औरंगजेब के पूर्व सिकन्दर जीरी के शासन को छोड़ कर खग्य किसी
भी शासन काज में धर्म की इतनी प्रधानता नहीं दी गई थी। आश्चर्य तो यह है कि
राजपूत माता के गर्भ से उत्पन्न मुस्तान में कट्टर पंथी भावनाओं का उदय कैसे
हुआ। वह कट्टर सुन्नी धर्म का अनुयायी था और अपने कट्टर सल्लेगीयों के प्रभाव में
उन्ने के कारण उसने अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के धर्म की आज्ञा की। धार्मिक स्थानों
एवं मकबरों पर स्त्रियों को जान से रोष दिया और इस नियम का उल्लंघन करने वालों
के लिए कटोरे रक्त की व्यवस्था की गई। इतिहास में सर्वप्रथम बाह्यजों पर जजिया
कर लगाया गया। हिन्दुओं के मस्जिदों को ध्वंस किया गया और मस्जिदों को तोड़
फोड़ कर समूह में फेंका दिया। मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण किया।
हिन्दू ही नहीं उबार मुस्लिम सम्प्रदाय भी उसके कोप-भाजन बन।

उसके शासन-काज में राज्य द्वारा धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहित किया गया और
इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाले व्यक्ति को जजिया से मुक्त कर दिया जाता
था। तारीख-फिरोजशाही के अनुसार उसका एक बाह्यज को बिसन मुखमान

बताने से इनकार कर दिया था यह धोप लगाकर राजमासाद के सामने भीमित जकड़ा दिया था।

बर्न का प्रभाव उसकी सैनिक योग्यता पर भी हुआ। बाघ-बात में कुरान का अनुयायी सुल्तान अपने सहचरियों का बल बहाना पाप समझता था और इसी प्रवृत्ति के कारण उसमें एक क्रूरक सेना-नायक के गुणों का अभाव था। एक सैनिक नेता के रूप में वह पूर्णतया असफल रहा है। युद्ध स्थल पर होते हुए भी उसे अपनी नीच भावनाओं का ध्यान रहता था और अपने स्रोतों में अर्थ गलत व्यवस्था में पड़ा रहता था। छातार की के डौटने पर सुल्तान ने उसे जख्म भेज दिया था। परन्तु फिरोज ने कुछ मुन भी थे। अपने सहचरियों के प्रति दयालु था। उसने मुस्लिम कम्पार्सों के बिनाह हेतु धन दिया था। म्याम में कठोर वषड़ों का अन्त करवा दिया और गुप्तचर प्रजासी की भी समाप्त कर दिया। मुस्लिम संस्थाओं को बान दिया गया और प्रजा की भलाई हेतु सिबाई को सुविचार्य प्रधान को बिक्रिस्ताक्य पुनर्भावे और निधुस्क बकिस्ता का प्रबन्ध किया गया। इस प्रकार उसने प्रजा की भलाई के हेतु पूरा प्रयत्न किया।

परन्तु धन पर आधारित राज्य कर्मचारियों के पद पैतृक होन के कारण राज्य फिरोज के समय से ही अप्रगति को और बरसर हाश रहता जिस उसके अप्रग्य उत्तराधिकारी रोकने में सबका असमर्थ रह।

प्रश्न

1 "Muhammad Tughlaq was one of the greatest wonders of Creation." How far do you agree with this verdict? (1954)

१—'मुहम्मद तुगलक विश्व-रचना के सब स बड़ आश्चर्यों में एक था। आप इस मत से कहीं एक सहमत हैं। (१९५४)

2 Give a short character sketch of Muhammad Tughlaq and discuss his measures. (1954-1958)

२—मुहम्मद तुगलक के चरित्र का वर्णन संक्षेप में दीजिए और उसके नियमों की व्याख्या कीजिए। (१९४४-१९४८)

3 What measures did Firuzshah adopt to restore order and promote the prosperity of his subjects. (1947-1949)

३—फिरोज तुगलक ने अपनी प्रजा में शांति स्थापित करन और उसकी समृद्धि बढ़ाने के लिए कौन नियम तथा मार्ग अपनाए?

4 What measures did Firuzshah introduce for the benefit of the peasantry in particular and for the good of the subjects in general (1949)

४—फिरोज ने खासकर किसानों और साधारणतया प्रजा के लाभ के लिए कौन नियम लागू किए?

तैमूर का आक्रमण तथा सल्तनत का विघटन

भाग १ तैमूर का आक्रमण

तैमूर का जन्म ट्रान्सऑक्सीयाना के केश नामक नगर में हुआ था। केश उमरकन्द से ५० मील दक्षिण की ओर स्थित है। उसके पिता का नाम अमर तुरग था। अमीर तुरग तुर्कों की एक उच्च जाति बरखास की, तुरकन साम्राज्य का सामन्त था। तैमूर की शिक्षा-दीक्षा में से निकल चिखा कः प्रारम्भ से ही महारथ विद्या गया था। तैमूर ने ३३ वर्ष की आयु में अपनाई तुर्कों के प्रधान की हैसियत से अपने राजनीतिक जीवन का आगमन किया और इसके बाद ही उस साम्राज्यवादी की अभिकापा प्रबल हो गये और शीघ्र ही तैमूर का विजय चक्र घटित हो उठा। प्यारिजम फारस मेसोपोटामिया आदि अनेक प्रदेशों का एक तुकान की भाँति आक्रमण करते हुए तैमूर की सम्प्री-सम्प्री, फीरे हिन्दुस्तान के मुहान पर आ बटो।

हिन्दुस्तान को फतह कर अमर एतिहासिक गोरख को प्राप्त करने की इच्छा मारण की अभाव सम्पत्ति को हस्तगत करने की कामना तथा मूर्तिपूजा और मूर्तिया का विनष्ट कर पाओ एत मुनाहिर पद प्राप्त करने की उत्कण् अभिकापा तथा अपनी अरवन्त नामरिक प्रभुति यहाँ कुछ कारण से जितने प्रसिद्ध होकर तैमूर के एक संकेत पर उसकी सेनाओं की गति हिन्दुस्तान की ओर मुड़ गयी थी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार तैमूर का आक्रमण का मूल ध्येय मूर्तिपूजकों का विनाश करना था न कि मुहम्मद करना। तैमूर ने अपने अभियान से पूर्व 'उलना' एवं 'योझाबों' की एक परिषद का आह्वान कर उसमें अपना विचार प्रस्तुत किया था। इस पर बड़ा विवाद हुआ। जहाँ एक ओर पाहू ने यह संकेत करते हुए कि किसी समय भारत फारस साम्राज्य का एक अंग था भारत विजय के अनेक कामों की ओर संकेत किया और पाहूबादा मुहम्मद मुस्तान ने 'एक पन्थ या कार्य' की बात पर बार-बार बोले हुये भारत विजय को धार्मिक दृष्टि से विधिविधों के विनाश और आर्थिक दृष्टि से राशि राशि स्वर्ण रजत और हारा आदि रत्नों की प्राप्ति की ओर संकेत करते हुए भारत अभियान पर बल दिया यहो कुछ लोगों ने आक्रमण के कार्य की कठिनाइयों और विजय कर बड़ी स्थायी रूप से सब जान की सम्भावना प्रकट करते हुये उसके बुद्धिमानों का उत्तेजक किया कि भारत में सब जान न वही की जतनायु के कारण उनका नैतिक स्तर गिर जायगा और कुछ ही दिनों में उनके अन्त अन्त परम्परागत सभित और सौम्य सो बैठेंगे। इस पर तैमूर ने स्वयं कहा था—“हिन्दुस्तान पर अभियान करने में मर ध्येय विधिविधों के विनाश अभियान करना है जिससे मुहम्मद के आदेशानुसार हम वहाँ के निवासियों का इस्लाम में दीक्षित करें। उस देश को कुछ एवं अनन्तरवार से मजबूत कर सके और उनसे देशवासियों तथा प्रतिमाओं को ध्वज कर जया की गहरों में 'गाथा' एवं मुनाहिर बन सकें।” अर्थात् तैमूर की इस बात की अस्वीकार न कर सके और तैमूर की सेनायें क्रम से लिए तैयार होन लगीं।

अप्रैल १३९८ ई० में तैमूर एक-एक हजार के नामसे एक सेकर हिन्दुस्तान पर चढ़ आया। हिन्दुकुश पर्वत की पार कर २४ सितम्बर को सिन्ध नदी पार की। नावीर सेना का एक हल वीरमुहम्मद के नेतृत्व में भारत पहुँचे ही पहुँचे चुका था जिससे उन्हा को अधिकृत कर मुल्तान की भी जीत लिया था। सिन्ध नदी पार करने के बाद तैमूर साहीर की और बड़ा और वहाँ के परमेश्वर मुबारक खाँ की परास्त किया। बिनाब के पास तैमूर की सेनामें और वीरमुहम्मद की सेनामें मिश्र पड़ी। बिनाब को पार कर तैमूर तुलम्बा नगर पहुँचा और वहाँ के शासक बखरख से जो सौन्दरों का शरदार था मुरदा के मृत्यु में दो फास रुपये की माँग की। सेना को आदेश दिया कि वहाँ भी अमान बिनामी पड़ नष्ट हो क्योंकि बखरख कमजोर होता जा रहा है। इस प्रकार पटी हुई सामग्री की पूर्ति कर तैमूर आये बड़ा—उसके तुर्कस अत्याचारों और कर कर्मों की काशी कहाँगिया नाम के जेय से उसके भावे-भाय पहुँच कर जहाँ में मय और जासका के भाव उत्पन्न कर रही थी। परिसामान्य रूप से वह हीपाक-पुर पहुँचा तो नगर निवासियों ने समीप होकर नगर छोड़ कर मटनर के दुर्ग में भाग कर शरण ली। तैमूर ने मटनर को पर लिया। वहाँ से राका डूनीचन्द न अपनी सामर्थ्य भर इन विद्वसियों का दुर्ग में प्रवेश करने से रोका लेकिन वह निष्फल रहा। राजा ने न या माचना की और अर्चनाता स्वीकार कर को। तैमूर की कर प्रवृत्ति सबसे हुई और भाव की बात में समय १० हजार निरपराध व्यक्ति मीठ के बाद उतर गये। इसके बाद मटनर की माँगी लगी। मल्लूजात-य-तैमूरी के अनुसार 'इस्लाम की तलवार काफ़िरों के रक्त से चोमी पड़ी और वह समस्त सामग्री एवं सबूत, कोप एवं अन्न जो अन्न कर्षों से दुर्ग में उपहोत किये गये थे मेरे सैनिकों की बूट का भाग बन गया। उन्होंने मरानों में आग लगा दी तथा मरानों एवं दुर्गों का पराधामी कर दिया। इसके पश्चात् मटनर, रक्तपात और अत्याचारों का शहर जमाइती तथा अपन पीछे अत्यन्तता दुर्गिस्त तथा महाभारती छोड़ी हुई तैमूर की फौजें सरस्वती परोहाबाव तथा कैपल को लूटलूट करती तथा उजाड़ती हुई पानीपत के मार्ग से दिल्ली के लिए आने लगी। दिल्ली से बीड़ी दूर पर ही तैमूर की टिहरी सेनाओं न पड़ाव डाला और सैनिक शिविरों से मीलों की दूरी पर पड़ी। यहाँ तैमूर ने अपने सेनापतिया एवं सेना नापकों को एक कर युद्ध की मन्त्रणा की और दिल्ली विजय के लिए युद्ध की योजनाएँ बनायीं गयीं। इसी समय आक्रमण काल के आरम्भ से पहले हुये बन्दियों का प्रश्न उठा। बन्दियों की अत्यधिक संख्या सबूत में इस बिदेसी आक्रमण के लिए एक समस्या बन गयी थी लेकिन इस समस्या का हल खीझ ही प्रस्तुत कर दिया गया। "हिन्दुस्तान में प्रवेश करने के समय से लेकर अब तक हमने ? ०० काफ़िरों तथा हिन्दुओं को कैद कर लिया था और इस समय के मेरे शिविरों में से मैंने अमीरों से मन्त्रणा की और उन्होंने कहा कि युद्ध के दिन एक एक छात्र बन्दियों को सामान के साथ पीछ नहीं छोड़ा जा सकता और इन्हें मुक्त करना युद्ध के नियमों के सर्वथा विरुद्ध होगा—वास्तव में इन्हें तलवार के बाद उतार देने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं रह गया था अब यह आज्ञा इस्लाम के मीराजों के पास पहुँची तो उन्होंने अपनी तलवारें लीच को और अपने-अपने बन्दियों को फलक कर दिया।" इसके पश्चात् दिल्ली पर आक्रमण शीघ्र किया गया।

इस समय दिल्ली को क्या अवस्था थी पाठक उससे अपरिचित नहीं होंगे। एक बाण में यदि हम यह कहें तो कह सकते हैं कि दिल्ली का राजनैतिक समस्त पट परिवर्तन के लिए प्रस्तुत था। परन्तु तैमूर का आक्रमण मुनकर मुल्तान

महमूद तथा मल्लू इकट्ठा न बिना किसी मयबपना परेधानो का विश्व प्रकट विमो
पनी सेनार्यो भी युद्ध के मकान में उतार द्यो। युद्ध भयंकर रूपा परन्तु जैसा सफरमाना
के सेलक ने सिखा है कि "यहाँ के (भारत) सैनिकों न अपने जीवन को सुरक्षा न
लिए बीरतापूर्वक युद्ध किया परन्तु एक दुर्बल सकोड़ा जीवन क सामने नहीं टिक सकता
या बीर असक्त मय सिंह के सामने इसलिये वे भी भाग लड़ होन को लाचार हो
गये। इस घमासान सन्धाम के पश्चात् मल्लू बरान की ओर तथा महमूद गुजरात की
ओर माय गया।" तैमूर की विजय हुकुमो गरज उठी और दिल्ली पर तैमूर
का झण्डा फहरा उठा।

दुर्ग पर आधिपत्य हो जाने के बाद तैमूर १५ दिनों तक दिल्ली में रूपा और
जाग नास मौत से अपना निजयोत्सव मनाता रूपा। असहाय दिल्ली न इससे बड़ा
धर्मात्म्य और संकष्ट का सामना इससे पूर्ण नभी नहीं किया। दिल्ली का शृंगार लूट
किया गया और उसके धर्म की वस्तुजा से जाग की होली लकी गई। सफ़ुर्द्दीन न
इस महालाप की विभाषिका का निशाना कसप और बीमलस बिच बाधर है

नगर को लूट करना तथा उसके निवासियों को दण्ड देना ईश्वरी इच्छा
थी उस शुक्रवार की रात की लगभग १५, ० सत्रिक नगर में थे जो साम से
सुबह तक लूटमार तथा मकानों की बर्बादी में व्यस्त रहे। प्रातःकाळ बाहर के सैनिक न
अपने को न रोक सके और फाटक टोड़कर अन्तर घुस गये और कोलाहल ध्वनि
से भी अधिक बढ़ गया।

सारे नगर को लूट कर दिया गया और बर्बादी तथा सीरों क अनन
प्राप्ताद प्रवृत्त कर दिव गये। प्रत्येक सैनिक को २० से अधिक आदमी दान के रूप
प्राप्त हुय लूट को बुरी वस्तुएं अपार थी हिन्दुओं के सिरों के डेर लगा दिव गये
और उनके सन्ध मांसाहारी पशु-पक्षियों का आहार बन गये जो निवानी किमी
प्रकार बच गये वे बन्धी बना लिये गये। कई हजार दिल्ली पकड़ कर काये गये और
तैमूर की आज्ञा से उन्हें सरदारों तथा उच्च पदाधिकारियों में बाँट दिया गया। इस
प्रकार दिल्ली को समरकन्द में 'मस्जिद-ए-जामी' के निर्माण के लिए रत्न दिया
गया।"

इस प्रकार दिल्ली क ऊपर बीमूओं केदना और अभावों का सीपकर विनाश
का पहाड़ डकेलता हुआ कूर आक्रान्ता दिल्ली से भाग बड़ा। फिर मेरठ और हरिद्वार
को बुरी तरह रीक्षता और लूटता हुआ स्वाग-स्वाग पर बल्लेबाज का हुजूम देता हुआ
सिवासिक प्रदेश पर बढ़ बैठा और विजय के उपराण्त उर्हु। कुकर्मों की पुनरावृत्ति
की गई जों अनो तक प्रत्येक के बाद होते चले आ रहे थे। सिवासिक प्रदेश को
हुजूम कर तैमूर न अम्नू की ओर कृष्टि उठाई और राजा की अन्ध प्रयास में ही पण्डित
कर ममकमान बनाने के लिए बाध्य कर दिया गया।

अब तैमूर का कार्य पूरा हो चुका था। अब उसने लाहौर तथा दीपालपुर
की जागीरें जिम्मा सों के शासन में सीपकर समरकन्द की ओर प्रस्थान कर दिया।
तैमूर ने भारत छोड़ा मार्गों एक ईश्वरीय प्रकाश भारतीय इतिहास के पार अन्तर्ध्यापि
हो गया और भारत न रैन की सौत ली।

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव

तैमूर के आक्रमण का जो प्रचण्ड प्रभावत भारत के ऊपर आया था उसके
शास्य पड़ जाने पर भारत का बातावरण क्यों तक अन्वन्त दण्ड रूपा और उसके
अनक परिणाम हुय।

राजनैतिक परिवर्तन—तैमूर के आक्रमण का जो प्रभाव हिन्दुस्तान की राजनीति पर पड़ा वह केवल शास्त्रीय ही नहीं था। उसका प्रभाव सदा ही वहाँ बाहर तक फैलने में आया जब तैमूर के आक्रमण काबुल से भारत विजय के लिए प्रारम्भ हुये कार्य को १५२६ ई० में बाबर ने पूरा कर दिया। जिस समय तैमूर ने भारत छोड़ा था उस समय पंजाब का प्रान्त बिजयना के हाथों में था जो तैमूर साम्राज्य के एक प्रतिनिधि के रूप में वही नियुक्त किया था। उसने जीवन भर अपनी स्वामित्व का निर्वाह किया और समरकन्द की सत्ता का आधिपत्य स्वीकार किये रहा। तैमूर की मृत्यु से उसके साम्राज्य का नक्का बरत गया और वह छिन्न-भिन्न हो गया। इसी अवसर का लाभ उठाकर बिजयना के उत्तराधिकारी समरकन्द से अपने वैधानिक सम्बन्ध बिच्छेद कर पंजाब में स्वतंत्र रूप से शासन करना लगे। पंजाब की जीत कर तैमूर ने अपने पंखों और पंजाब के शासकों में एक अविच्छिन्न युद्ध परम्परा का सूत्रपात कर दिया था। उसके बंधन इस बात की कमी बिस्मृत नहीं कर सके कि पंजाब उनके साम्राज्य का एक प्रान्त था जब सैयद बंसबानों से प्रायः टक्कर होती रहती थी। इस स्थिति ने पंजाब में बिरोह को बड़ा प्रोत्साहन दिया था जिसमें जतरत और तुर्क बन्ना के बिरोह उल्लेखनीय हैं।

प्रायः के अल्पकाल में ही एक-एक करके स्वतन्त्र होते जाग के मूल में की दिस्ली मुस्तान की अव्यवस्था तथा अराजकतापूर्ण काराबोल स्थिति शासन-राज्य के इस प्रकार आघाती रूप से बिन्दोहित हो उठने में तैमूर का आक्रमण की कुछ दान उत्तरदायी नहीं था। स्वाभाविकी ने जीतपुर दिसावर की व मासबा मुज फरर ने पंजाब में अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली। वही नहीं भारत के अन्य सरदारों के भी अधिकार में थी प्रवेश व वे भी छोटे-छोटे राज्यों के रूप में ही व जिससे एकटा और किसी सर्वोच्च सत्ता के स्थापन की सम्भावनाओं भी नष्ट हो गयीं। तैमूर के भारत छोड़ने हो मुहम्मद तुगलक का प्रतिद्वन्द्वी नसरत शाह दिस्ली का शासक बन गया। परन्तु सीधे मस्कु इकबाल बरान से पराजित हुआ और उसने १६०१ ई० में अल्प प्रयास से दिस्ली की अपने अधिकार में लेकर मुस्तान महमूद की जो मासबा भाग गया था आमंत्रित किया और दिस्ली की पारी पर बिठाया। अब राज्य की शक्ति और शासन की बागडोर मस्कु इकबाल के हाथों में थी और महमूद नाम-मात्र का मुस्तान। मुस्तान जबकुल सवेत हुआ थी उसने मन्वी के इस जाल से मुक्त होन की चेष्टा की और मुस्तान तथा बमीर में अवधान हो जान के कारण ही महमूद कद्रीय बना गया और इसर १४०५ ई० में मस्कु इकबाल ने गिरा ली पर आक्रमण कर दिया। गिरा के बिजय यह अभियान उसे बहुत महुँसा पड़ा जिसने विषाखपुर के निकट प्रायों से हाथ की बँटा। अब महमूद शाह फिर दिस्ली आया और गरी पर बँटा। गरी पर महमूद मस्कु ही बँठ गया हो लेकिन राज्यस्था बिपक्षी ही था रही थी और इस समय गिरा ली दिस्ली पर इस प्रकार बैठा माना वह वहाँ में इसी अवसर को लाभ में था। इस प्रकार दो सतावियों तक राज्य करने के परभाव दिस्ली साम्राज्य तुर्क शासकों के हाथ से निकल गया। दिस्ली साम्राज्य पर ही तुगलकों के अधिकार की इसनी जस्ती समाप्ति हो जान का प्रभाव कारण तैमूर का आक्रमण या बन्ना सम्भव था कि दिस्ली साम्राज्य पर तुगलक का राज्य-बंध कुछ दिन और चलता।

सांस्कृतिक परिवर्तन—जैसा कि ऊपर हम कह चुके हैं कि तैमूर के आक्रमण के दिस्ली का साम्राज्य अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बँट गया। जहाँ एक और साम्राज्य

के इस प्रकार लब्ध-लण्ड हो जान के परिणामस्वरूप देश की एकता और शक्ति को अवरुद्ध पकड़ा लगा वहीं दूसरी ओर इन छोटे-छोटे राज्यों में अपने-अपने ढंग से कला और संस्कृति का विकास हुआ तथा साहित्यिक तथा सामिक क्षेत्र में जौनपुर अत्याधिक उत्सेहनीय है। जौनपुर के कामियों का फतवा हिन्दुस्तान भर में सम्मान का पात्र था। यहीं नहीं भारत की मध्य और अनुपम चिस्म-सौन्दर्य ने क्रूर-हृदय विदेशी आक्रान्ता को आकर्षित किया था और इसी कारण 'मस्जिद-ए-जामी' के निर्माण के लिए वह हजारों कुशुभ प्रस्तर चिस्मियों को अपने साथ समरकन्द के गया था। एक बात ध्यान में रखन योग्य है। ये आक्रमणकारी जो कला अपने साथ मध्य एशिया से ले गये उसे वहाँ की कला से मिश्रित कर सका ही वर्ष बाद भारत माय तो अपने साथ लेते भी जावे और वही कला युगक कहलायी।

आर्थिक परिणाम—आर्थिक परिणाम की दृष्टि से सैमूर का आक्रमण भारत के लिए महान् अभिघाता सिद्ध हुआ जिसने भारत को आर्थिक व्यवस्था की जड़ों को डूरी तरह सकजोर दिया। सैमूर बिछ-बिछ मार्ग से गया डाला गया। जो भी नगर या गाँव उसके मार्ग में पड़ गया वह लूट किया गया उसके निवासी कत्ल कर दिये गए। उनके निवासियों को मरम कर दिया गया और उनके सूट और बसे गावों को पीछे छोड़ा हुआ वह आये बहता गया। दिल्ली में उसने जो क्षमामय बरपा की थी उसके बारे में कहा जाता है कि वो महीने तक वहाँ कोई परिवार भी पर नहीं मार पाया। सैमूर ने हिन्दुस्तान भेरे ही छोड़ दिया था लेकिन बुर्माय ने पीछा नहीं छोड़ा था और परिणामस्वरूप सैमूर के प्रत्यावर्तन के पश्चात् बुर्मा और और महामारी ने जो ठाण्डा मूल्य किया जनता हाहाकार कर उठी। हजारों पशु और मनुष्य काल-कबधित हो गये। इति की तो अवर्णनीय क्षति पहुँची इन सब का परिणाम यह हुआ कि आर्थिक व्यवस्था तो अस्त-व्यस्त हो ही गई और उसके कारण लोगों का सामाजिक जीवन भी जो आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित रहता है आन्वेषित हो उठा। सुख, शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने में असमर्थ सुल्तानों के प्रति जनता में एक तीव्र असन्तोष की लहर व्याप्त हो गयी जो लहर बड़ती ही गयी। बिजोहों का बोल-आवाज हो गया और लोगों की स्वतन्त्र राज्य स्थापन के अवसर प्राप्त होने लगे।

भाग २ सल्तनत का विघटन सल्तनत के पतन के कारण

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में साम्राज्य को जो आर्थिक एवं राजनैतिक आघात सहन करन पड़े वे साम्राज्य के भारी पतन की अप्रगामी सूचनाएँ थीं। साम्राज्य विघटन की जिन प्रवृत्तियों ने मुहम्मद तुगलक के अन्तिम वर्षों में जन्म लिया था उन्होंने शीघ्र ही अपना रंग भी खिलाना प्रारम्भ कर दिया था और मुहम्मद तुगलक के कार्य तथा सत्तासीन परिस्थिति ने भारी बिनाश को जो भूमिका प्रस्तुत की उसके विरोध में छिदीय चाह तुगलक ने कोई महत्वपूर्ण चरण नहीं उठाया। परिणामस्वरूप विरोध के राजत्व काल में ही दिल्ली राज्य की सीमाएँ तभी से अन्तमुत्ती हो चली और दिल्ली का राज्य अत्यन्त संकुचित हो गया। उनकी अराकट मोति राज्य को शक्ति और बृद्धता नहीं प्रदान कर सकी। परिणामस्वरूप उत्तराधिकार राज्य के पतन की किमी भी शक्ति नहीं रोक सके और कालक्रम के यथाह चाल में वर्षों में बृद्धता उत्तरावा साम्राज्य का अर्धर पात सैमूर जैसे क्रूर आक्रमणकारियों के प्रचण्ड ठूकाई का मारी आघात नहीं सह सका और छिन्न-भिन्न होकर ऐतिहासिक बिस्मरण

के मर्त में समा गया। पाठकों की सुविधा के लिए साम्राज्य के पतन के कारणों पर कुछ विस्तार से प्रकाश डालना अपेक्षणीय होगा।

तुगलक साम्राज्य के पतन के बनेक कारणों में कुछ प्रमुख इस प्रकार थे —

- १ साम्राज्य की विघातता और आबागमन के इतनामी साधनों का अभाव
- २ स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासन
- ३ संगठन और बुद्धि शासन व्यवस्था का अभाव
- ४ तुर्क और विदेशी अमीरों का संघर्ष
- ५ महत्त्वमाना का नैतिक पतन
- ६ सेना का पतन
- ७ भारतीयों का शासनाधिकार से बहिष्कार
- ८ हिन्दुओं के विद्रोह
- ९ उत्तराधिकार के सुनिश्चित नियम का अभाव
- १० साम्राज्य के विघटन में मुहम्मद तुगलक का उत्तराधिकार
- ११ साम्राज्य के विघटन में विद्रोह तुगलक का उत्तराधिकार
- १२ विद्रोह के अयोग्य उत्तराधिकारी तथा
- १३ विदेशी आक्रमण।

अब इन कारणों पर संक्षेप में विचार कर केना विपद के स्पष्टीकरण के लिए जानकारी सिद्ध होगा।

साम्राज्य की विघातता और आबागमन के इतनामी साधनों का अभाव—
महाउद्दीन के काल में दिल्ली का बाबरसाह एक अत्यन्त विस्तृत साम्राज्य का स्वामी था। भारतीय इतिहास में अलोक के बाद यह इतना विघात साम्राज्य का जिसमें सुदूर दक्षिण और दूरस्थ बंगाल के प्रदेश भी अन्तर्निहित थे। सल्तनत के विस्तार की यह परकाष्ठा थी और यही साम्राज्य तुगलक वंश के प्रारम्भिक सुल्तानों के काल में समस्त साम्राज्य के सुम्बलस्थित शासन में आबागमन के साधनों और इतनामी साधनों तथा सुरक्षित राजधानी में निरन्तर अभाव एक महान् बाधा थी। ऐसी अवस्था में दूरस्थ प्रांतों का केन्द्र से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता था। दूरस्थ प्रांतों के प्राम्ताभ्यस अपने-अपने प्रांतों में विस्तृत स्वतन्त्र शासकों की नीति का प्रयोग करते थे और इस अवसर की ताक में चले कि कम मीका मिले और स्वतन्त्रता की घोषणा कर दें। इसी वजह से अब उत्तर-पश्चिम में मुल्तान से लेकर पूर्व में बंगाल तक और दक्षिण में माबर तक जब विद्रोह की आवाज प्रबल उठी तो सुल्तान के लिए एक दुखद भिन्ना का कारण बन गई। कम सुदूर दक्षिण और उत्तर में और कम सुदूर पश्चिम और पूर्व में उठते उपद्रवों के बन्दर घात करने के लिए दिल्ली के केंद्र में स्थित न होने के कारण साम्राज्य की सेना धीरे-धीरे पैदावाजी से परेशान हो गई। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आबागमन के सुन्दर साधनों के अभाव में इतना विघात साम्राज्य की स्वपना करना पहले से साम्राज्य की नींव में चुन लगा देना है। बाग यही हाक दिल्ली सल्तनत का हुआ।

स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासन—मध्ययुग के प्रायः सभी शासक निरंकुश थे। लेकिन उनकी निरंकुशता के सफल निर्वाह के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है वे तुगलक सुल्तानों में नहीं थी। सम्यक रूप से शासनतन्त्र में संश्लेषण में प्रतिभाशाली तथा सैनिक योग्यता में सम्पन्न शासक द्वितीय मुहम्मद और राजमर्त

कर्मचारी और तृतीय प्रजा का सहयोग तथा सम्मान इन तीन बातों की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। शासक के निरंकुश होने की स्थिति में तो उसका प्रतिमाधारी और सैनिक योग्यता से सम्पन्न होना अनिवार्य था हा उठता है और तुल्यक मुस्तानों में इस गुण का अभाव था। द्वितीय राजमन्त्र कर्मचारी तथा जनता का भक्ति पर स्थापित साम्राज्य ही कुछ अधिक स्थायी हो सकता है। ये दोनों बातें भी तुल्यक मुस्तानों को नहीं प्राप्त थीं अतः साम्राज्य का पतन होना निश्चित था। फिरोज के बाद जो उत्तराधिकारी हुए उनकी अयोग्यता ने तो साम्राज्य के पतन की ओर ही इकेला। अतः तुल्यकों का निरंकुश शासन भी तुल्यक साम्राज्य के पतन के लिए कम उत्तरदायी नहीं है।

संयुक्त और बड़े शासन व्यवस्था का अभाव—ऊपर हम कह चुके हैं कि आमतौर पर के तुल्यकामी शासकों के अभाव में किसी साम्राज्य के सम्मिलित शासन में किसी अनुविधान का पड़ती है। एक बार तो संयुक्त का विचार आकर सम्मिलित रूप से समर्थन न था और दूसरी ओर साम्राज्य अपने शासित भूभाग में स्वतन्त्र शासक की शक्ति का प्रयोग करते थे। इन स्वतन्त्र प्रभुओं और महत्वाकांक्षी अमीरों ने राजमन्त्र का उपेक्षणीय बना कर अपने स्वार्थसाधन की ओर ही प्रवास किये। अलग-अलग अमीरों की शक्ति संघर्ष का कारण ही है साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होना। साम्राज्य के समस्त विस्तृत भूभाग पर छा जान वाली किसी केन्द्रीय बड़े शासन-व्यवस्था का अभाव भी इन अमीरों के उत्कर्ष में सहायक था। ये अमीर सब इस सीढ़ी की ठाक में पड़ते थे कि कम अवसर मिले और कम से कम राज्य में अपने नाम का सुतवा डालें। आन्तरिक शासन में तो प्रायः एक प्रकार से स्वतन्त्र हो जाते। हाँ बाह्य रूप में केन्द्र से इनका वैधानिक सम्बन्ध अवश्य रहता था। इस प्रकार साम्राज्य वास्तव में बर्ष स्वतन्त्र राज्यों का एक असम्बद्ध संग्रह था और केन्द्रीय सरकार का शक्ति और शक्तिहीन शासनतन्त्र साम्राज्य के विभिन्न भागों विशेषकर ईरान प्रदेसों में नियन्त्रण स्थापित करने में सफल नहीं हो सकता था।

तुर्क और विदेशी अमीरों की स्वार्थपरता—साम्राज्य के शासन-संचालन का बहुत बड़ा अधिकार तुर्की ईरानी और मध्य एशियाई विदेशी अमीरों के हाथ में था। इन अमीरों की बढ़ती हुई शक्ति साम्राज्य के लिए विनाश का कारण बन रही थी। ये अमीर भारतीय इस्लाम और विजेता से बहुकार की अपने हृदय में स्थान देकर शासितों के साथ पराजितों का सा व्यवहार करते थे और जनता में असन्तोष तथा विद्रोह के बीज बोध करते थे। दूसरी ओर राजमन्त्र की ओर से भी उन्हें मूढ़ कर अपनी ही स्वार्थपरता में संलग्न रहे। यही नहीं कालान्तर में परस्पर ईर्ष्या असन्तोष और प्रतिद्वन्द्विता के कारण भी हो गये और अपनी इस राष्ट्रीय विरोधी मनोवृत्ति से साम्राज्य को पतन की ओर घसीट के चले।

मुसलमानों का नैतिक पतन—हरबार के अन्दर बढ़ती हुई विद्रोहिता और आमोद-अमोदप्रियता ने मुसलमानों की नैतिकता की रक्षा पहुँचाया। ऐशोमाराम में उन्होंने अपने पूर्वजों की शक्ति उनके गौरव तथा साहस की विस्मृत कर दिया था। फिरोज के अन्तर्गत मुस्लिमों से इसी बात का संकेत मिलता है।

सेना का पतन—निरन्तर होने वाले विद्रोहों के समय के लिए इतना विद्याल साम्राज्य की इबार से उबार और उबार से इबार बीड़-भूष करते-करते साम्राज्य की सेना निर्बल पड़ने लगी थी और उसने बलवान अकाउंटीन और प्रारम्भिक तुल्यक

१ इस प्रकार अमीरों की सहायता से सिंहासन पर बैठा हुआ सुल्तान अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व खो देता था और अपने सहयोगी अमीरों के हाथों की कठपुतली बन जाता करता था।

२ सुल्तान को इस प्रकार अपने पजों में फँसा कर ये अमीर मनमानी करते और सुल्तान को अपने संकेतों पर नचावा करते। शासन व्यवस्था बनता-कटता हितों में था और उनकी रक्षा की ओर से मौलिक कार्य कर अपने स्वार्थों की सिद्धि में लग रहते थे और प्रजा में असन्तोष बढ़ता जाता था।

३ अमीरों का पराजित इक सहीब हम दूसरे अमीरों और गाँव पर बैठे सुल्तानों की जड़ें जोड़ने में व्यस्त रहते थे।

४ इन सबका परिणाम था साम्राज्य की क्षति का हाव और साम्राज्य के भावी तान की प्रवृत्तियों का क्रियाशील हो उठना।

साम्राज्य के विघटन में मुहम्मद तुगलक का उत्तरदायित्व—मुहम्मद तुगलक की असफलता ने जो स्वतः पराजित उत्तर भावनाओं के पुला परिणामस्वरूप थी साम्राज्य के पतन की भूमिका प्रस्तुत की जिसमें भविष्य में साम्राज्य को छिन्न भिन्न करने वाली प्रवृत्तियों की बीज सांग्रहित थे। मुहम्मद तुगलक न बिन-बिन योजनाओं की कार्यान्वित करना चाहता था सभी योजनाएँ रीजकोप कर एक बड़ा काम कर रहा कर असफल हो गईं। कहानी यही नहीं समाप्त होती—इस वर्ष के कठोर हिमालय रातम की बुरी तरह असफल रहा था। व्यवस्था और शान्ति स्थापना की योजनाओं की पूर्ति के लिए जिस समूह राज्य की आवश्यकता होती है वह असफल योजनाओं की वजहों के समन और दुर्घटना के कारण काफी रिक्त हो जाता था। दुबारे की क्षति मारी गयी थी। इन सब का परिणाम अत्यन्त प्रयत्नक हुआ। इन असफल योजनाओं और बनता की विगड़ती बसा में शासक और शासित के बीच जो गहरी खाई बस दी थी वह आसानी से भरने वाली नहीं थी। बनता सुल्तान के हठी स्वभाव से बिड़ गई थी और सुल्तान ने अपनी योजनाओं की असफलता में प्रजा की उत्तमीनता को खान बैकर जो सर अस्तिमार किया वह भी राज्य के लिए अमयक कारी हो जा।

मुहम्मद तुगलक ने शासनतंत्र में जिस निर्दुष्ट नीति और कठोर दण्ड विधान को स्थापन दिया उसने लोगों में असन्तोष की भागभरका थी। सामारण जनता की बात तो दूर रही उनके बड़-बड़ अमीर सरकार भी आर्गनरिस्त हो उठ और सुल्तान के बिरोधी बन बैठे। दक्षिण के अमीरों के समन में जिस नीति का प्रयोग किया गया उसने दक्षिण के अमीरों की एक होकर संगठित हो जाने पर विवश कर दिया और इस प्रकार सुल्तान ने अपने पैरों पर ही कुम्हाड़ी मार ली जब कुछ ही दिनों बाद स्वतन्त्र बहुमनी साम्राज्य की स्थापना हो गयी और सुल्तान दक्षिण के प्रदेस में हाथ खी बैठा।

न सब के अनिश्चित मुहम्मद तुगलक ने एक अन्य कार्य में भी साम्राज्य के पतन में काफी हाथ बैठाया और वह था पुगल तुर्क अमीरों की उपशा करके नये भावे विदेशी अमीरों के प्रत्याह्वन और ऊँचे-ऊँचे पद प्रदान करना जिससे दक्षिण एक ही तो साम्राज्य पुराने अनुभवों और गुणवत्ता अमीरों की प्रतिभाओं के उपयोग में बचिग रह गया और दूसरी ओर ये सर्व-सर्व अमीर राज्य व्यवस्था को भलीभाँति भोगा नहीं रहे और तीसरे पुराने प्रभावनाओं अथवा हम नये अमीरों में ईर्ष्या करन लग और सुल्तान के विरुद्ध हा गए और साम्राज्य का विनश्यत हुआ।

का अनुकरण करते हुए सेना कुछ ही दिनों में अयोग्य बूढ़ों और रोमियों का जम बट बन गई। इसके अतिरिक्त बागीरदारों को भी सेना रखने की आज्ञा भी और यही सेना बाद में महान् नाटक सिद्ध हुई।

४ धर्म प्रभावित राज्य—फिरोज ने राजनीति में धर्म को बड़ा स्थान दिया था वह उचित नहीं था। क्योंकि मुस्लिमों और मुन्तियों की कट्टरता को मानते हुए उसने जो हिन्दू विरोध की नीति अपनायी उसने हिन्दू जनता में असन्तोष भर दिया। यही नहीं कट्टर मुत्ती होने के कारण उसने शिया विरोधी नीति भी अपनायी और अनेक मुसलमानों को अपना शत्रु बना लिया।

५ शासक का प्रोत्साहन—फिरोज के शासनकाल में राज्यों की संख्या अत्यधिक हो गई थी और राज्य के लिए एक दुर्बल मार के समान दुर्बलता का कारण बन पड़े। बलात् बान बनाये जाने के कारण ये असन्तोष और विद्रोह की भावना से भरे रहते थे और जब तक विद्रोह कर देते थे। इनमें राजमर्दि का अभाव था अतः उत्तराधिकारपूर्ण कार्य इन्हें दिया नहीं जा सका था और राज्य की ओर से इनके निर्बाह का प्रबन्ध होने के कारण राजकीय कौश को अति पतुंशती जा रही थी।

इस प्रकार फिरोज की अशक्त नीति के परिणामस्वरूप साम्राज्य पतन की ओर तेजी से बढ़ चला। अमीर सरदारों ने बगहू-बगहू पर अपनी सामर्थ्य से विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिये। अधिकार-भोलुप तथा राजमर्दिहीन इन सरदारों ने सभी स्वतन्त्र होने का अवसर देखा तभी स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने लगे। शासन के प्रत्येक कार्य में धर्म की प्रधानता तथा मुत्ती और मुस्लिमों के अत्यधिक प्रभावों ने न केवल हिन्दू जनता में प्रतिहिंसा की सृष्टि की बल्कि अन्य धर्मावलम्बी मुसलमानों की प्रतिक्रिया का भी विरोध में ही सृजन किया। वहाँ एक ओर राज्य के उच्च पदाधिकारियों ने विद्रोह और भोग के पथ में इसे राज्य की हितचिन्तना का परित्याग कर दिया वहीं दूसरी ओर बागीरदारों के मर्जों में स्वतन्त्र राज्य स्थापना के स्वप्न भी साकार होने लगे। राज के ऊपर भार बन हुए असंख्य अयोग्य और स्वामिनिस्तरहित राज्यों ने जब तक हुल्का करना प्रारम्भ कर दिया था।

अयोग्य उत्तराधिकारी—फिरोज के अयोग्य उत्तराधिकारियों ने तो साम्राज्य विघटन की प्रवृत्तियों को रोकने के स्थान पर धनित और सति ही प्रगल की अतः फिरोज की मृत्यु के "पश्चात् अवधर्ममावी भाष का महासागर उमड़ पड़ा और अनेक पन्नीस वर्षों के भीतर (१३२८-१४१२ ई०) मुस्लिम समाज का पूर्ण "कलावार क्षीय होकर दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश तक सीमित अर्धजन्म भाष रह गया। मृतन कलापर की अर्ध सी निगा में (मुगलक संघ) के पतन के समय में भारत का राजनैतिक पतन गल हिन्दू तथा मुस्लिम राज्यों की आकारों के अवनित चहुँ तथा उपचहुँ में भर गया।"

फिरोज की मृत्यु से केन्द्र पानीपत के प्रथम युद्ध तक के भारत का राजनैतिक रंग-मंच उसी प्रकार ही अव्यवस्थाओं तथा अराजकतापूर्ण स्थितियों का क्रीड़ास्थल बना रहा जिस प्रकार हर्ष की मृत्यु से लेकर ११९२ में तराइन के युद्ध तक भारतीय ऐतिहासिक विषय अनेक प्रकार की राजनैतिक अव्यवस्था के चित्रों से चित्रित था।

किरोज की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली के स्वतंत्रित राजसिंहासन पर छ उत्तराधिकारियों ने सासन किया—

- १ तुघलक शाह 'गयामुद्दीन तुगलक प्रितीय'—१९ फरवरी १३८९ तक
- २ अबूबकर—अगस्त १३९० तक
- ३ मुहम्मद प्रितीय—१३९०-९४ तक
- ४ निकमर प्रथम—१३९४
- ५ सत्तल शाह
- ६ मुहम्मद शाह—१३९०-१४१२ ई० तक

य सब के सब खोयाय दुर्बल और प्रभावहीन सुल्तान थे। इनके सासन काल में राज्य किसी प्रकार की शक्ति का संभव नहीं कर सका और जिस समय दिल्ली का सुल्तान मुहम्मद तुगलक का उसी समय तुलुक साधारण के ऊपर तैमूर के आक्रमण का समाचार के काले बादक बिर आये।

तैमूर का आक्रमण—तैमूर का कबामत सा बरपा कर देन बाका हमला तुलुक सत्तल को सहस-सहस और बिनाश का संदेश लेकर आया था। मृत्यु और महानाश के पश्चात्तों पर बमकर तैमूर ने सत्तल को बड़े उकाड़ की जिसके भाटी आबात न सह सकने के कारण सत्तल ने अन्तिम सांस लेते हुए १४१२ ई० में अपना बम टाड़ दिया। मुहम्मद की मृत्यु के बाद ९९ वर्ष तक सासन करने के पश्चात् तुलुक राज्य बंध की इति हो गई। इस अवधि में उत्तरी भारत अनेक स्वतन्त्र राज्यों में बँट गया था—

- १ दिल्ली
- २ मिथ
- ३ गुजरात
- ४ मालवा
- ५ बीजपुर
- ६ बंगाल

इसने अनिश्चित कालीन तथा राजपूताना का राज्य भी था। नैपाल आनाम तथा उड़ीसा का उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि देश की राजनीति में उनका कभी कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहा।
जब हम मुघिया के लिए इन प्रांतीय राज्यों के विषय में स्वतन्त्र रूप से संक्षेप में विचार करेंगे।

मालवा

मालवा के राजपूतों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए मुसलमानों के साथ घोर संघर्ष किया था परन्तु १३१० ई० में जब अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा पर आक्रमण किया तो राजपूतों ने हट कर भागना किया। सर्वप्रथम मुघ के पञ्चान विजयवी भगवतमानों के हाथ कर्मी और राजपूतों की स्वतन्त्रता मर्याद हो गई तथा मालवा की एक प्रतिनिधि नामक नियुक्त कर दिया गया। उस समय से लेकर किरोज तुलुक की मृत्यु के पश्चात्त मालवा के विनष्ट होने तक मालवा दिल्ली साम्राज्य का ही एक अंग बना रहा और साम्राज्य के प्रतिनिधि ही उस पर सासन करते रहे। किरोज शाह तुलुक के शासन काल में मालवा पर दिल्ली का प्रतिनिधि दाहाबद्दीन मोदी का बंगाल विजयवी का एक जागीरदार के रूप में भाग्य करना रहा। तैमूर के आक्रमण के

पश्चात् जब वह मृत्यु बिनाश-विध्वंस और अव्यवस्था बिखेरता हुआ आया और बला गया तो दिल्लीवर लौं न अच्छा भवसर बैठ कर १४०१ में मालवा में अपनी स्वतन्त्र सत्ता घोषित कर दी।

गुजरात

गुजरात अपने प्रसिद्ध व्यापारिक बन्दरगाहों के व्यापार केन्द्र होने के कारण अपनी भूमि के लिए सर्वत्र विख्यात रहा है। गुजरात के समुद्र प्रान्त में आबुतिन काठिमाबाड़ बड़ीदा तथा बम्बई के अनेक जिके सम्मिलित थे। पूरव सम्मात तथा मझीन प्राचीन काल से ही व्यापारों के प्रधान केन्द्र तथा विदेशों की राशि वन सम्पत्ति के भारत में आने के प्रमुख द्वार रहे हैं। ११२५ ई० में महमूद गजनी ने सोमनाथ के विध्वंस के पश्चात् जिम अपार अकूत धन की प्राप्ति की थी उसने बाद के प्रायः सभी शासकों के हृदय में सोमनाथ विजय का सपना भर दिया था। सोमनाथ को सूटकर महमूद बख्त ने उस प्रदेश की समृद्धि का बंका पोट दिया था अतः सभी सुल्तानों की बलबारी दृष्टियाँ गुजरात पर लगी रहती थीं। उस पर अनेक बार आक्रमण भी हुए लेकिन गुजरात की स्वतन्त्रता अशुभ्य रही। मस्कि १२९७ ई० में वह प्रान्त बसाउद्दीन की साम्राज्यवादी शक्तियों की अधि में अगम हो गया। अब गुजरात हिस्नी का एक अर्ध-नस्ब प्रान्त था और गुस्तान का प्रतिनिधि वहाँ का शासक। यह १४०१ ई० तक चलता रहा। अग्रेकर उत्पात मचाता हुआ प्रसन्न कर्मीन तुफान की मति जब तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया तो हिस्नी राज्य की लड़बडाती नीचे बजर होकर बिखर गयी और साम्राज्य में अव्यवस्था तथा अराजकता का मृत्यु होत गया तो गुजरात के प्रान्ताध्यक्ष अकर लौं ने १४०१ ई० में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और हिस्नी से वैधानिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

बंगाल

११९९ के लगभग बिहार पर बिजय-मल्लाका पहरान के पश्चात् कुतुबुद्दीन की सेनाएँ वहीं नहीं। मुहम्मद जिन बल्लिमार के नवापतित्व में कुतुबुद्दीन की सेनाओं ने आगे की कूच किया और लक्ष्मीन शासक लक्ष्मणसेन उनके आक्रमण को मुन कर भाग लड़ा हुआ। बल्लिमार ने उसकी राजधानी नरिया को जी भर कुटा और बंधास पर मुस्लिम सत्ता का स्वापना हो गई। बल्लिमार ने नरिया के स्थान पर बरीड़ को राजधानी बनाया और हिस्नी के गुस्तान के प्रतिनिधि रूप में शासन करने लगा। आबायमम के सावनों के अभाव में बंगाल हिस्नी के अति दूरस्थ प्रान्तों में एक था इस कारण यों कहने की तो हिस्नी का आधीन प्रान्त बना रहा लेकिन वहाँ के प्रति निधि शासक अपन प्रान्त में सर्वत्र स्वतन्त्र गुस्तान थे। लौं नीति का प्रयोग करते रहे। गुमरिन लौं को दण्ड डकर अलखन ने बंगाल पर अपनी पूर्ण सत्ता स्वापित करने का प्रयास किया था और इनीलिए उसने अपन पुत्र बखरा लौं को बंधास का प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था। ११३८ ई. तक बंगाल का शासन बुरत लौं ने उत्तरा बिकारिया के अधीन रहा। परन्तु दीर्घ ही बंगाल में गृहयुद्ध की प्रवृत्तियाँ सक्रिय हो उठी। नागिद्दीन तथा बहादुरसाह के पारम्परिक भष में नागिद्दीन से पराजित होकर गयापुरीन तुफसक से मरय मीदने के लिये विद्यमान होना पड़ा। गुस्तान ने उसकी महायत्ता की और बहादुरसाह को पराजित कर नागिद्दीन का बंगाल का शासक बना दिया। अग्रे मय पुछा जाय तो बंगाल का स्वतन्त्र शासन मुहम्मद तुगलक के काल में प्रारम्भ होता है। १२९७ ई. के लगभग पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल में दो

पूनाक राज्य बन गये। एक ओर फरगनीन नामक एक बिजोही व्यक्ति ने बंगाल के तत्कालीन गवर्नर की हत्या कर एतद्विषय हाबों से पूर्वी बंगाल में स्वतन्त्र शासन की प्रतिष्ठा की तथा दूसरी ओर जलाउद्दीन न पश्चिमी बंगाल में अपनी प्रभुता स्थापित की। एक की राजधानी सोनारगंज की तथा दूसरे की बलनोदी। सन् १३४० के लगभग इस्लामाबाद की पश्चिमी बंगाल का शासक हुआ। उसने पुनः दोनों को संयुक्त कर एक कर दिया। कुछ इस्लामाबाद की सहाय्य और मोम्यता तथा कुछ फिरोज तुगलक की कमजोर नीति के कारण बंगाल ने दिल्ली साम्राज्य से फिर काम के लिए सम्मान विच्छेद कर लिये और इस्लामाबाद ने पड़ुबा में नई राजधानी बनाई।

जौनपुर

इस नगर की स्थापना का श्रेय फिरोजशाह तुगलक को है। सन् १३५९ ई० में जब बंगाल के सिफन्दशाह के विरुद्ध अभियान किया गया था तो बरसात के दिन न अतः विराम हुकर फौजों को जङ्गलबाद के निकट पड़ाव काम देना पड़ा था। इसी समय अपने अपने भाई मुहम्मद जुना खाँ की स्मृति की स्थायी बनाये रखने का विचार से तथा बंगाल के समीप एक सैनिक सम्भाव्यता की आवश्यकता के अनुसार गोमटी के तट पर उसन एक नगर का सिलाम्बाद किया। इस नय नगर का नाम जौनपुर रखा गया और इसे हर तरह से अर्द्धकृत करण का प्रयत्न किया गया। परिणामस्वरूप सीध ही बहु प्रसिद्ध और समृद्धि के सिद्ध पर पहुँचा। जौनपुर की महत्ता का श्रेय उसके दो शासकों को अधिक है, प्रथम बख्तखान और द्वितीय इब्राहिमशाह। बख्तखान का वास्तविक नाम सरवर था और वह एक हिजरा था। वह एक योग्य व्यक्ति था इसी कारण सीध ही बहु बजीर बनाया गया और बख्तखान की पदवी दी गई। कुछ समय उपरांत जब हिन्दू बाबीरदारों ने फिर उठाना प्रारम्भ किया तो मुहम्मद तुगलक ने बख्तखान की 'मस्कि-उस-खर्क' की उपाधि प्रदान कर पूर्वी प्रदेशों का अधिपति बना दिया और एतदन्वीर से बिहार तक का शासन उसके हाबों में दीप दिया। इस नर अधिकार ने सम्मान होकर बख्तखान न शोमाद के अन्तर्गत में प्रवेश किया और कमीज कहा। अथवा सहीला अलमक तथा बहराइन के बागीरदारों को कुचमत्ता हुआ बिहार और तिरहुत तक पहुँच गया। तैमूर के लूफान ने तत्कालीन उत्तर भारतीय राजनीतिक गवन की दिन अराजकता और अस्थिरता के कड़े-करकट से भर दिया था उसके काम उठाने का काम बख्तखान ही संवरण नहीं कर सका और सीध ही उसन स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। बख्तखान की मृत्यु के उपरांत उसका बलक पुत्र मुबारकशाह खर्की के नाम से शासक हुआ। उसके बाद उनका छोटा भाई इब्राहिमशाह खर्की के नाम से यही पर बैठा।

काश्मीर

भारत के एक कोन में पश्चिमी हिमालय पर स्थित हीन के कारण काश्मीर की भित्ति अत्यन्त सुरक्षित है और इसी कारण यहाँ तक काश्मीर मुस्लिम आक्रमणों से बचा रहा। दिल्ली की सल्तनत हिन्दुस्तान के ऊपर अपने वंश फैलावे आ रही थी लेकिन काश्मीर में स्वतन्त्र हिन्दू राज्य था। बीरहरी गंगाधरी के उत्तरार्ध में काश्मीर के नाम ने पलटा लावा और १३९९ ई० में हिन्दू राजा के मुस्लिम मन्त्री न राजा को

सिंहासन च्युत करके काश्मीर में नये राजवंश की स्थापना की। साहू मिर्जा ने काश्मीर के सिंहासन पर आसीन होते ही समसुद्रीन की उपाधि धारण की थी। काश्मीर का राज्य १५८६ तक, जब अकबर ने काश्मीर अपने विस्तृत साम्राज्य में आत्मसात् कर लिया, अपनी स्वतन्त्रता बचाये रखा। जैसे आक्रमण उसके ऊपर होते रहे यथा १०१५ में महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ था और १३९९ में तैमूर का। लेकिन इन सब कठिनाइयों का सामना करते हुए भी काश्मीर ने अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखी।

मेवाड़

राजपूत राज्यों में मेवाड़ अपने अनन्त वीरों और योद्धाओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस राज्य की स्थापना बप्पारावक ने बाठवी सत्ताधी के प्रथम चरण में की थी। मेवाड़ का इतिहास मुसलमानों के साथ निरन्तर संघर्ष की रक्तस्त्रित कहानी है। अलाउद्दीन ने मेवाड़ पर मुस्लिम सत्ता का आधिपत्य स्थापित कर राजपूतों की बीरता और उनके स्वतन्त्र प्रेम को एक अवरजस्त बूझी थी थी। परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता के ये अमम्य प्रेमी वीर्य काल तक मुस्लिम सत्ता का शोध अपन कंधों पर नहीं उठा सके और मुल्तान के जीवन काल में ही मेवाड़ ने राजा हुस्मौर के नेतृत्व में अपन कंधों पर से मुस्लिम सत्ता की गुलामी का बोझ उतार फेंका। राजा हुस्मौर ने मेवाड़ को स्वतन्त्रता की ज्योति प्रदान की और उसके उत्तराधिकारियों ने समस्त मेवाड़ में इस ज्योति पुष्प की रस्मियाँ बिखीर कर बीरव में बार बार लगा दिये। राजा ज़िमा मेवाड़ के प्रतापी शासकों में से थे। उसने १४३३ से १४६८ तक राज्य किया।

महान

1 Describe carefully the Indian invasion of Timur and examine its political and economic consequences. (1948 1949)

१ तैमूर के भारतीय आक्रमण का वर्णन कीजिये और उसके राजनैतिक और आर्थिक परिणामों का निरीक्षण कीजिए।

2 Discuss the various causes that led to the disintegration of the Sultanate of Delhi

२ दिल्ली सल्तनत के विघटन के कारणों की आलोचना कीजिये।

3 Write a brief note on the various independent Kingdoms that grew up on the ruins of the Sultanate of Delhi

३ दिल्ली सल्तनत के अवशेषों पर जो विभिन्न राज्य उठ उठ पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अध्याय ३२

सैयद तथा खोदी वंश

६

भाग १ सयद वंश

सैयद राजवंश की स्थापना—१४१९ ई० में मुस्तान महमूद की मृत्यु के उपरान्त ९९ वर्ष शासन करने के बाद दिल्ली सुल्तानत की गद्दी से गयामुद्दीन तुगलक का राज्यवंश समाप्त हो गया। मुस्तान की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली नगर संघर्षों एवं युद्धों तथा पारस्परिक झगड़ों का केन्द्र बन गया। बड़ी उपस-मुपस मचती रही और दो वर्ष तक दिल्ली में कोई मुस्तान नहीं हो सका। किसी तरह दोस्त खान खोदी नामक अमीर ने राज्यसत्ता को अभिभूत करने के लिए, बर्गों के मध्य होने वाले संघर्षों में सफलता प्राप्त की और दिल्ली की शासन-सत्ता का सूत्र हस्तगत कर लिया। दोस्त खान की शासन के मूल संभार बनीं कुछ ही दिनों में वे कि भारत में तैमूर के बाग्य एवं खिन्न खान ने जो मुस्तान की बागीर और पंजाब आदि प्रदेशों का घासक या दिल्ली पर आक्रमण कर दोस्त खान से शासन की बागडोर छीन ली। खिन्न खान से दिल्ली के राज्य पर एक नवीन राज्यव्यवस्था की स्थापना होती है। इतिहास में यह राज्य सैयद वंश के नाम से अभिहित किया जाता है। खिन्न खान ने जिस तथाकथित सैयद वंश की नींव डाली उसका सम्बन्ध पैयम्बर से बड़ा जाता है। 'तारीख-ए-मुबारकशाही' में खिन्न खान के सैयद होने के विषय में दो बातें प्राप्त होती हैं—प्रथम तो यह कि एक समय सैयदों के प्रधान जलालुद्दीन बुलारी मलिक मरदान के यहाँ पंजारे या माजने के समय जब मलिक मरदान ने खिन्न खान के भाई बुलेमान को सैयद साहब के हाथ बुलाने का आदेश दिया तो सैयद साहब ने इसका निषेध करते हुए कहा यह सैयद है और यह काम उसकी मान-मर्यादा के स्तर से निम्न कोटि का है। द्वितीय यह कि खिन्न खान में के सभी गुण हैं जो सैयदों में पाये जाते हैं। वह उदार, और, आतिथ्यकारी तथा बचनों का निर्वाह करने वाला था।

खिन्न खान—खिन्न खान एक सैयद था। मुस्तान के गवर्नर मलिक नसीरुद्दीन मरदान खान के यहाँ उसका बचपन बीता था और अपने संरक्षक की मृत्यु पर वह मुस्तान का गवर्नर हुआ। १४२५ ई० में जब मलिक इकबाल के भाई सारंग खान ने मुस्तान पर बरा बाल दिया तो खिन्न खान किसी भीति भाग निकला और तैमूर से जा मिला और जब तैमूर भारत की अपनी पुरैशा पर आसू बहान के लिए छाड़ कर समरकन्द लौटा तो खिन्न खान की मुस्तान की जानीर तथा उसके अधीनस्थ प्रदेशों का शासक बनाता गया। खिन्न खान एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह बर्गों दिल्ली की हमलक और उपस-मुपसपूर्ण राजनीति पर दृष्टि गड़ाये रहा और जब महमूद की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली आसानीत रूप से विभक्त हो उठी तो अवसर देखकर दिल्ली पर आक्रमण कर दिल्ली का घासक बन बैठा।

खिन्न खान दिल्ली की गद्दी पर बैठ अवश्य गया लेकिन स्वतन्त्र शासकों की भाँति शासन करता हुए भी उसने मुस्तान की उपाधि नहीं धारण की। उसने कभी भी

अपने को एक तात्पर अमीर से अधिक ऊँचा नहीं समझा और जीवनपर्यन्त तैमूर बंध के प्रति अपनी राजभक्ति का निर्वाह किया। उसने तैमूर के प्रतिनिधि की हैसियत से शासन किया और तैमूर के नाम से उनके इलाक़ों तथा तैमूर के उत्तराधिकारी बाहस्र के नाम का ही ख़ुतबा पढ़ा गया। दिल्ली पर अपनी सत्ता के स्थापित हो जाने के बाद उसने राज्य-व्यवस्था की ओर ध्यान केन्द्रित किया।

इसके पूर्व की हम शिखर काँटा राज्य की व्यवस्था के किये किये यम कामों का वर्जन करे उत्कालीन परिस्थितियों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

इस समय तक दिल्ली का राज्य छिन्न-भिन्न होकर एक जीर्णोद्धार कांकाश माना था। दिल्ली में यिन राज पड़गणों का जाल बिछाया जा रहा था और बड़े-बड़े अमीर अपने-अपने स्वानों की सिद्धि में भी जान से सचेत हुए थे। अराजकता और व्यवस्था का नष्ट तात्पर हो रहा था और पवित्रात्मक विरोधों की बाढ़ आ गई थी। दोमाव बलवन के काल से विद्रोह की अग्नि संचित करवा रहा था और जब इटावा में राजाओं की जमावा बसक उठी थी। कन्नूर, कन्नौर तथा बदायूँ के भूमि पठियों ने केन्द्रीय सरकार की उपेक्षा कर वेना स्थापित कर दिया था। मालवा और पुर और मुजरात आदि में स्वतन्त्र राज्य की नामें पड़ चुकी थी और राज्य-विस्तार तथा राज्य सुरक्षा की दृष्टि से इनके स्वार्थ परस्पर टकरा जाते थे जिनसे मात्र दिन इन स्वतन्त्र राज्यों में राज्य के बाधे बस उठा करते थे। उत्तरी सीमा पर खेल्ख रों न बसावत का नारा बुलन्द किया था और सरहिन्द में तुर्क बलों के उपद्रव भी बसहा होते जा रहे थे। इसी परिस्थितियों में शिखर काँटे दिल्ली राज्य का शासन-सुख संभाला और प्रायः २० वर्षों से राज्य की व्यवस्था में लग गया।

शिखर के सामन जो सबसे पहला प्रश्न आया वह था शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने का और इसके लिए आवश्यक था विद्रोहों का दमन। अतः उसने पञ्चाधिकारियों की नय निदे से नियुक्तियाँ कर पहले विद्रोहों के बड़े दोमाव की ओर दृष्टि करी और बख्तर ताम-उल-मुल्क की अध्यक्षता में छाही सेना ने कन्नूर की ओर प्रस्थान किया और समस्त प्रवेश आगन्त कर दिया। कन्नूर का विद्रोह शांतिमान नहीं था। उसके दमन के लिए शिखर काँटे की बार-बार सेनायें भजनी पड़ी थी। छाही सेना ने जिस कठोरता से विद्रोहों का दमन करना प्रारम्भ किया उससे भयभीत होकर खोर, कम्पिल, शांति तथा ग्वाल्मीर के जमीन्दारों ने छाही सत्ता के शासन बुटने टक दिया। केवल बख्तर पाकर बार-बार ये विद्रोह कर बैठते और छाही सेना के जाते ही शान्त हो जाते। ५ वर्ष बाद फिर कन्नूर में विद्रोह हुआ। इस बार बदायूँ का शासक महान्त बतनी भी विद्रोह बन बैठा था। शिखर काँटे स्वयं आकर विद्रोहियों का दमन किया। इटावा में भी राम सरवर ने विद्रोह किया लेकिन वह दाम दिया गया।

जिन प्रकार दोमाव में विद्रोहों की अग्नि निरन्तर सुलपती रही उन्हीं प्रकार उत्तरी सीमा पर भी विद्रोहों का सिलसिला बना रहा। सन् १४१७ ई० में तुपान रईम ने सरहिन्द कबुल पर अधिकार कर लिया था। परन्तु उसका दमन कर दिया गया था। १४ वर्ष बाद पुनः इनके उपद्रव बड़े बल से मलिक कालीन ने उसको बुलन्द किया। सन् १४२१ में शिखर काँटे स्वयं मवात गया और बदायूँ के दुर्ग को मष्ट कर विद्रोहियों की छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके बाद शिखर काँटे ग्वाल्मीर की ओर गया और इटावा तथा ग्वाल्मीर के विद्रोहों का दमन कर जब दिल्ली लौटा तो बीमार हो गया और २० मई सन् १४२१ ई० में वह इस दुनियाँ से कूच कर गया।

बिजय खाँ के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए डा० ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि—

“बिजय खाँ ने एक सच्चे सैन्यका-सा जीवन व्यतीत किया था। उसने कभी अबाधव्यक्त रूप से रक्तपात नहीं किया और न अपनी शक्ति बूझ करने तथा शत्रुओं का दमन करने के लिए किसी नृपक्ष कार्य का आदेश दिया। वह शासन प्रबंध में सुधार न कर सका तो वह उसका पोष नहीं था। उस समय अतुलित पैसी हुई असाधिता और उपद्रवों में उसे क्षम्य मर के लिए भी बेम न होने दिया और मृत्युपर्यन्त वह उन मातों में बिरोहों का दमन करने में व्यस्त रहा जो अब भी साम्राज्य में थे।

फरिस्ता ने उसकी उचित प्रशंसा करते हुए लिखा है कि —

“बिजय खाँ एक महान तथा बुद्धिमान शासक था। वह ब्याकुल तथा बचनों का निर्बाह करने वाला था। उसका प्रभाव उससे प्रेय करती थी। उसके मृत्यु पर छोटे-बड़े स्वामी और मृत्यु सभी ने तीन दिन काते वस्त्र धारण कर उसकी मृत्यु का शोक मनाया और इसके अनन्तर उन मातृमी वस्त्रों को त्याग कर उसके पुत्र मुबारक साह की नही पर बैठाया।

मुबारक साह (१४२१-१४३४ ई.)—बिजय खाँ न जीवन के अन्तिम क्षणों में शाहवादा मुबारक साह की अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। सिंहासन पर आसीन होते ही मुबारक के बंसजों से जो समरकन्द साम्राज्य के सातक व अपने सम्बन्ध विच्छेद कर लिये और स्वतन्त्र मुल्तान के स्वरूप में उसने अपने नाम से खुदवा पड़ाया और मुबारकों पर अपना नाम अक्षिप्त कराया। मुबारक का बंध का तर्जाविक प्रमुखताकी शासक था। अपने पिता की यांति मुबारक का जीवन भी पंजाब और दोआब के बिरोहों को दमन करने में बीता। उत्क्रांतिन इतिहास केन्द्रक बहिया-बिन-अहमद की रचना ‘तारीख-ए-मुबारकशाही’ से ज्ञात होता है कि उसरी सीमा प्रान्त पर होल वाले उपद्रव में बसरक लोहार का बिरोह सर्वप्रथम भयानक था। उसने अपने उपद्रवों से प्रायः सन्तप्त सीमा प्रान्त को बुरी तरह आक्रमण कर दिया था। तारीख-ए-मुबारकशाही के अनुसार—

‘जसग्व लोहार एक अविश्वेकी देहाती था। बिजयोगमत होकर तथा अपनी सैन्य शक्ति पर पराजय होकर वह दिल्ली अधिकृत करने का स्वप्न देखने लगा। बिजय खाँ की मृत्यु की सुचना प्राप्त करके उसने कुछ अस्वारोहियों तथा पैदल सैनिकों की लेकर ब्यास और सतलज पार किया और तालमन्दा में राय कमासइलीन पर चढ़ाई कर दी। राय किरोज देविस्तान की और राय गया और सतलजाय अमरक ने मुघियाला नगर से लेकर अमरक (कपा) तक के प्रदेश को लूटा।

“यही नहीं उसने सरहिन्द पर भी घरा डाल दिया बिजिनशाही सेना का पहुँचने ही सोपर नाम गये और मुल्तान लाहौर में शान्ति स्थापित कर दिल्ली सीट गया परन्तु दीर्घ ही उसे बसरक के पुन बिरोह करने की सुचना मिली और यह भी पता लगा कि उसने लाहौर पर भी आक्रमण कर दिया है। लाहौर के प्रान्तपति ने १५ दिन बिरोहियों का बीरता से सामना किया और इसी बीच में शाही सेना भी महायया के लिए पहुँच गई और सम्मिलित सेना ने राशी पार करके काकापीर तथा मोहम्मद के बीच जने बरी तरह से बरास्त किया।

यह तो हुई सीमाप्रान्त की बात। जब बिरोहों के उप-केन्द्रों की ओर आइये। अल्प काल में ही कटेहर सम्मिल तथा इटावा में भी रज रहकर बिरोह ही रहे

ने। सुल्तान ने अपने प्रयास से एक-एक करके इनका दमन कर दिया। ग्वासियर का विद्रोह भी कुचल दिया गया। इसी बीच में कटेहर में पुनः बयाबत का सन्ना उठाया गया लेकिन सुल्तान के वहाँ पहुँचते ही राय हरिदिह ने उसकी सत्ता स्वीकार कर ली। विद्रोहियों को भी दबा दिया गया।

बिमाना के प्रान्तपति मुहम्मद खान के विद्रोह का दमन किया ही गया था कि इब्राहिम खान के एक विश्वास सेना के साथ कास्मी की ओर बढ़ने की सूचना मिली। इसे सुन कर सुल्तान ने महमूद हुसैन की अध्यक्षता में एक छाही सेना इनकी पीछे हटाने के लिए भरी। हटाया के निकट दोनों की सेनाओं का सामना हुआ जिसमें पराजित होकर खान स्वदेश लौट पड़ा।

खोहरों को दबाने के लिए बिमाना के एक सैनिक का समूह उठाया गया था लेकिन उनकी शक्ति का समूह उठाने में नहीं हो सका था। वर्ष १४२८ के लगभग बसरन ने पुनः विद्रोह कर दिया और मलिक सिकन्दर को परास्त कर कासानोर का दुर्ग अधिकार में कर लिया था। लेकिन सिकन्दर ने सीधे ही अपनी पराजय का बदला ले लिया और खोहरों को भाग कर पहाड़ों में छिप जाना पड़ा।

१४२९-३० ई० में सीमाप्रान्त पर पीलाव तुर्क बन्ना ने अत्यन्त सक्तिशाली विद्रोह किया। जब छाही सेना उसके दमन के लिए वहाँ पहुँची तो उसने काबुल के प्रान्ताध्यक्ष से सहायता माँग कर छाही सेना को पराजित कर दिया। इसके पश्चात् खोहरों की सेनाओं ने पंजाब को भी मर कर लूटा और लाहौर में खोहर सिकन्दर से मर कर का कर वसूल किया और फिर बीपासपुर वा पहुँचा। इस प्रदेश को छाता ९० दिन लूट करके इसमें एकदम उखाड़ दिया। बीपासपुर लूट करने के उपरान्त विद्रोहियों ने सुल्तान पहुँच उनके चतुरिक चार मील का प्रदेश बुरी तरह से लूट-मार करके लूट कर दिया। लेकिन सीधे ही एक सशक्त सेना लेकर इमादुल मुल्क ने खोहरों को लूटी पराजय दी और उसकी सेना छिन्न भिन्न हो गयी। इसी समय दिल्ली दरबार में अमीरों में परस्पर कलह और ईर्ष्या की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो उठी और मन्त्री सरवर मुल्क ने जिस पद्धति की रचना की उसके अनुसार २० फरवरी १४३४ को सुल्तान का बस कर दिया गया।

मुहम्मद साह—(१४३४ १४३५ ई.) मुबारक की मृत्यु के पश्चात् सुल्तान का पौर किया हुआ मुहम्मद साह सुल्तान हुआ। महत्वाकांक्षी मन्त्री सरवर ने राज्य की समस्त सक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करने की पूरी चेष्टा की और स्वयं नाम-ए-जहाँ की उपाधि धारण की तथा सुल्तान की हत्या में भाग लेने वाले पद्धतकारियों को बिमाना अमरोहा नारलीस आदि जगहों पर बंदी करवा दी। परन्तु सीमा प्रान्तप्रमुख की अध्यक्षता में बमीरों का एक दल सरवर के विरोध में किशोरील हो उठा। इसने आतंकित होकर सरवर न सीरी के दुर्ग में आश्रय लिया परन्तु कमालउलमुल्क ने सीरी पर घेरा डाल दिया। सुल्तान की सहाय्युक्ति कमालउलमुल्क के साथ थी। इसमें असन्तुष्ट होकर सरवर के साथियों ने सुल्तान के वध का निश्चय किया लेकिन सुल्तान को इसकी सूचना मिल गयी। उसने पद्धतकारियों को सार्वजनिक रूप से दण्ड की आज्ञा दी और कमालउलमुल्क को गया मन्त्रिमंडल स्थापित करने का आदेश दिया।

कमाल-उल-मुल्क के प्रधान मन्त्रित्व में जो मन्त्रिमण्डल स्थापित था उसके द्वारा राज्य किमी दूर घासन-व्यवस्था को प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ और परिणाम

स्वल्प देश के विभिन्न प्रांतों से असांख्य और विद्रोह के समाचार प्राप्त होने लगे। इब्राहिम खान ने दिल्ली के कुछ प्रांतों पर अपना अधिकार जमा लिया और ग्वाल्मीर के रायत कर देना बन्द कर दिया। मालवा का शासक महमूद खिलजी भी दिल्ली हुजियान की आज्ञा से दिल्ली की ओर बढ़ा लेकिन इसी समय गुजरात के शासक ने माण्डू पर आक्रमण कर दिया और महमूद को जीतने के लिए विवश होना पड़ा। अमरक ने बहुलोक खोबी को दिल्ली पर अधिकार करने के लिए उत्साहा और उसके प्रोत्साहन से बहुलोक ने दिल्ली की ओर प्रयास किया मगर उसका यह अभियान निष्फल रहा और दिल्ली का राजसिंहासन सुरक्षित रह गया। लेकिन इतना आभास अवश्य मिला गया कि सैम्यद बंस के दिन पूरे हो गए हैं।

अलाउद्दीन आलम खाह (१२४५-१२५१ ई.)—१२४५ में मुहम्मद खाह की मृत्यु के उपरांत अमीरों ने उसके पुत्र आलम खाह का गद्दी का अधिकारी बनाया। तब सुल्तान ने अपनी अयोग्यता और राज्य की ओर से जवाहीरता का भाव प्रदर्शित कर राज्य के सभ्यों की संख्या में अत्यधिक कटि कर दी। १२४७ ई. से सुल्तान बहामू मल्तावी रूप से निवास करने लगा। दरबारियों के बार बिरोध करने पर भी उसने बहामू नहीं छोड़ा बल्कि अपने बहीर हामिद खान का बंध कराने का असफल प्रयत्न किया। हामिद खान न छट होकर बहुलोक खोबी को दिल्ली में आमंत्रित किया। बहुलोक तो यही चाहता हो था। उसने एक हमले में दिल्ली का सिंहासन हस्तगत कर लिया। अलाउद्दीन ने भी निबिकार रूप से बहामू छोड़ कर छेप राज्य बहाल के लिए छोड़ दिया। दिल्ली में बहुलोक के नाम का खुला पड़ा गया और १७ वर्षों तक राज्य करने के पश्चात् दिल्ली के सिंहासन पर से सैम्यद बंस का नाम भी मिट गया। आलम खाह अपनी मृत्यु सं १२७८ ई. तक बहामू में होशान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करता रहा।

भाग २ छोटी बंस

सैम्यद बंस में केवल चार ही सुल्तान हुए जिस की मुबारकखाह मुहम्मद-खाह और आलमखाह। इन्होंने मिलकर करीब १७ वर्षों तक दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठ कर शासन किया। इस युग में दिल्ली का राज्य कितना निर्बल हो गया था और उसकी सीमाएं कितनी संकुचित हुईं यही भी इसका अनुमान सेनपूक के कवन से लगाया जा सकता है कि दिल्ली के उत्तर-पूर्व में स्थित कटेहर के हिन्दू राजा बखिब में मेघात तथा बंजाब में बटावा से राजकर वसूल करने के लिए लगभग प्रति वर्ष सुल्तान को सेनार्थ भेजना पड़ती थी। इसके अतिरिक्त सरहिन्द तथा सीमा प्रांत के प्रदेशों में स्थान-स्थान पर बिरोहों का बाजार परम हो रहा था। अन्तिम सुल्तान आलमखाह के काल तक तो राज्य की दमनीय स्थिति बही तक पहुँच गयी कि "राज कार्य दिन प्र तदिन पहुँचें थे भी अधिक अस्तव्यस्त होता गया और स्थिति यही तक हो गयी कि दिल्ली में बंदा कींग की दूरी पर ही ऐसे व्यर्थ से जिम्हों सुल्तान की सत्ता का निरस्कार कर दिया और अतिरीय की तैयारियों में व्यस्त हो गये। सस्तमन की ऐसी ही नाजक हालत में बहुलोक ने एक हमले प्रयास में उत्तरी भारत के प्रधान राजनीतिक नियम पर से सैम्यद बंस की समाधि तैयार कर दी और वह दिल्ली का सुल्तान बन बैठा।

बाही कीय अकमान या पठान जाति के थे। पूर्व में सुल्तान तथा पठावर में लेकर पश्चिम में यवन। तक विस्तृत भू प्रदेश के निवासी और बल सम्पी

काया तथा बृष्ट-मुष्ट शरीर, सम्पत्ति से सम्पन्न ये अफगान अपनी बीरता साहस और दृढ़ प्रकृति के साथ-साथ कटमार में विभेय इधर रहने के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं। तुमसकों के शासन काल में भारत में अफगानों की अच्छी संख्या थी और कुछ अफगानों की तो अमीर का पद भी प्राप्त हो गया था क्योंकि तैमिक दृष्टि से अफगानों की विशेष उपादेयता थी।

सहराम बहुलोल छोटी का सर्वप्रथम पूर्वज है जो मुस्तान के शासक मलिक मर्दान का सेवक था। बहुलोल इसी के पुत्र मलिक काका का पुत्र था और बादशाह में ही बहुलोल ने अपने माता-पिता को लो दिया था। अतः उनकी मृत्यु के उपरान्त बहुलोल का शासन-पालन सिद्ध था के प्रतिनिधि सरहिन के पासक मुस्तान साह की करना पड़ा था जो उसका चाचा था। बहुलोल के मृत्यु होने पर मुस्तानसाह ने उनकी प्रतिमा और योग्यता पर प्रशंस्य हुकर अपनी कन्या धम्म सातून का निकाह उसके साथ कर लिया और उसकी अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया। मुस्तान साह की मृत्यु के पश्चात् बहुलोल सरहिन का शासक हुआ और उसने अपनी सक्ति बढ़ानी प्रारम्भ कर दी। इसके बाद उसने दिल्ली की सत्ता का आधिपत्य स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और दिल्ली सल्तनत हुजिया लेने की फिराक में पड़ गया। इस समय में उसके द्वारा किए गये प्रयत्नों के विषय में हम पिछले अध्याय में प्रकाशित कर चुके हैं। अब हम दिल्ली पर आधिपत्य हो जाने के बाद से उसके कार्यों पर विचार करेंगे।

३)

बहुलोल छोटी

उसका शक्ति संघटन और उसके कार्य—सन् १४५१ ई० में बहुलोल अब दिल्ली की नहीं पर बीठा तो उसने देखा कि कई समस्याएँ उसकी शक्ति के लिए प्रत्यक्षचक बिन्दु की भाँति उसके सामने उपस्थित थीं। राज्य के पूर्व और पश्चिम दोनों सीमाओं पर विद्रोहों की आशंका चल रही थी और किसी भी समय राज्य पर आक्रमण हो जाने की आशंका थी। पूर्व में बंसाज और शीतपुर, पश्चिम में खिन्ड गुजरात और मालवा तथा दक्षिण के प्रदेश माग्याय की सत्ता से मजबूत हो चुके थे। मोदी मुस्तान के अधिकार में कबल उत्तर में काहीर में बीतालपुर तक और दक्षिण में हीरों, हिसार और पानीपत तक का प्रदेश था। दिल्ली से १४१५ साल की दूरी तक का नू-माग अहमद साह मेकानी के हाथों में था। दिल्ली की आहरी मोना सऊ बिस्तृत संभव के प्रदेश पर इरिया लो गोरी शासन कर रहा था और योश्राव जनक हिन्दू-मुस्लिम शासकों के मध्य छोट छान स्वतन्त्र प्रदेशों में भरा हुआ था। इस प्रकार पहले तो साम्राज्य की वृद्धता और उमक अस्तित्व पर ही प्रत्यक्षचक बिन्दु लगा हुआ था। सैयद वंश का शासक अमीर जीवित था और उसका भूतपूर्व मंत्री हमारा लो जो अब उसका स्वयं का मन्त्री था मुस्तान का ईप्सा का पात्र बना जा रहा था क्योंकि मुस्तान के अनुसार जो एक स्वामी के साथ बिनागपात कर सकता है उसका क्या बिस्वास कि वह हमारे स्वामी के साथ नहीं करेगा। अतः उसके अधिकार में मुक्त होना ही मुस्तान के लिए एक समस्या थी। तीसरी समस्या यह थी कि सैयद वंश के अन्तिम मुस्तान आलमसाह की पुत्री का विवाह महमूद साह शरीफ के साथ हुआ था और वह अपने स्वसुर का राज्य छिन जान के कारण बहुलोल पर पार साये बीठा था और किसी भी समय आक्रमण कर सकता था। इसके अनिश्चित भी कुछ बड़ी अनेक समस्याएँ थी जिनका सामना बहुलोल को

करना था। बहुशोक एक नीतिनिष्ठ और कुशल कूटनीतिज्ञ था। उसने अत्यन्त धैर्य से अपनी महत्वाकांक्षा के मार्ग पर चरण उठाये और धर्म-धर्म इन पक्ष-कष्टकों को शांति करवा गया।

सब से पहले उसने हमीर खाँ को अपने रास्ते से हटाना चाहा और इसके लिए उसने एक कूटनीतिक चाल चली और उसने सफल होकर हमीर खाँ को कारागार का निवासी बना दिया। इसके पश्चात् उसने अपनी स्थिति को दृढ़ और उसे स्वास्थ प्रदान करने के लिए पदाधिकारियों को बहुमूल्य उपहार भित्तित किये और उन्हें पक्षोन्नति का प्रलोभन दिया और राज्य की सुरक्षा के निमित्त नये सिरे से व्यवस्था का संगठन कर नए पदाधिकारियों की नियुक्तिवाँ की। इतना करने के बाद उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति के अनुसार राज्य विस्तार और जिद्दोहबमन की ओर ध्यान दिया।

जीनपुर से प्रथम युद्ध—उत्तरी-पश्चिमी सीमांत का प्रदेश इन दिनों मयानक जिद्दोहों से आक्रान्त था। अब वहाँ शांति और सुव्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से मुस्तान ने सर्वप्रथम उसी ओर प्रयाण किया। इसी बीच में मुस्तान को दिल्ली से दूर जान कर राजधानी के कुछ विरोधी जमीनों व जीनपुर के मुस्तान महमूद खाह को दिल्ली पर आक्रमण कर देने का आमन्त्रण दिया। महमूदखाह स्वयं दिल्ली की राजसत्ता की हस्तगत कर केन का आकांक्षी था दूसरी ओर उसकी पत्नी भी संव्यस बघ की राजकुमारी थी उसको दिल्ली पर आक्रमण कर देने के लिए निरन्तर उत्तेजित कर रही थी और इसी समय दिल्ली के मुस्तान-विरोधी जमीनों का आमन्त्रण पाकर मुस्तान अपना सोम संवरण न कर सका और एक विप्लव सेना लेकर दिल्ली पर चढ़ बैठा। इस महान् विपत्ति की सूचना पाकर बहुशोक दिल्ली की ओर सीटा। मार्ग में ही फतह खाँ के नेतृत्व में शर्की सेना ने उसका सामना किया। बहुशोक ने वहाँ भी एक चाल चली और जातीय भावना के आधार पर बहुत कर शर्की सेना के अफगान सरदारों ने शर्की पक्ष का भाग छोड़ दिया। परिणामस्वरूप फतह खाँ की पहरी पराजय मिली और मुस्तान महमूद जीनपुर भाग गया और मुस्तान बहुशोक न अन्य प्रयत्नों की ओर ध्यान दिया।

प्राप्ति पर अधिकार—शर्की जैत प्रबल शत्रु की पराजित करने के पश्चात् बहुशोक छोटी की शक्ति का अन्धाबा सया कर उसके भित और शत्रु सभी आर्तकिय हो गए। शर्की सेना के विरुद्ध प्राप्त की गई विजय से नयनीत होकर कितने ही जिद्दोही सरदारों ने दांति चारण कर ली। मुस्तान ने येशात की ओर कृष्ण किया। वहाँ महमूद खाँ न उसका स्वागत करते हुए उनकी असीमता स्वीकार कर ली। मुस्तान ने उसके साथ परगन छीन कर अपन अधिकार में ले लिये। सम्मेलन के धामक हरिया खाँ के पिछले जिद्दोह पर ध्यान न देकर उसके साथ सीम्य व्यवहार किया और केवल सात परगन लेकर सन्ताप कर लिया। इस खाँ को उसका अधिकृत प्रदेश छोटा दिया गया। सफीट क मुबारक खाँ के साथ भी सीम्यपूर्ण नीति अपनायी गयी। राजा प्रताप सिंह की मैनपुरी तथा मीर्जाब का शासन पुनः प्रदान किया गया। देवाड़ी चम्बरार हटाना तथा योगाब के अग्य जिद्दोही प्रदेश भी दिल्ली राज्य का प्रमुख स्वीकार करन के लिए बाध्य किय गये।

जीनपुर से पुनः युद्ध—बहुशोक के ३७ वय के राज्यकाल में दिल्ली और जीनपुर में निरन्तर संघर्ष होते रहे। जीनपुर के उत्तरोत्तर तीन मुस्तानों—महमूदखाह, मुहम्मद तथा हुसेन खाँ ने दिल्ली से बहुशोक की सत्ता उखाड़ फेंकने के लिए अवि-

पाल्प कम से प्रकाश किये। जौनपुर और दिल्ली में जमातार मुठों की एक परम्परा लपो रही जिसके अनेक कारण थे जिनमें कुछ इस प्रकार हैं

१. यहाँ सुल्तानों को बहुलकांता—यहाँ सुल्तान मल्लुकाकांजी और राज्य विस्तार के अभिलाषी थे। वे निरन्तर दिल्ली की कमजोर और अस्थिर स्थिति से लाभ उठाने की कोशिश में लग रहते थे।

२. सैयब राजकुमारियाँ—सैयब राजकुमारियों का निकाह यहाँ सुल्तानों से हुआ था। पितृकुल का राज्याधिकार छिनवाने से वे अपमान का अनुभव करती थीं और सर्वत्र यहाँ सुल्तानों की दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित करने के सिद्धे उत्तमिष्ठ किया करता थीं।

३. यहाँ सुल्तान सैयब बंध के दामाद थे जिन बहलोल की अपेक्षा अपने को दिल्ली राज्य का उचित उत्तराधिकारी समझते थे।

४. निश्चित सीमा का अभाव—दोनों राज्यों के बीच कोई निश्चित सीमा नहीं थी और सीमा प्रदेश पर आस दिन उपद्रव हुआ करते थे।

५. मुठों के द्वारा पारस्परिक अमानस्य बढ़ता ही जाता था। जब कभी मुठ में कोई पक्ष पराजित होता तो वह अपमान का अनुभव करता हुआ दुबारा और अधिक संगठित कर मुठ प्रारम्भ कर देता था।

यही कुछ प्रधान कारण थे जिनके कारण बहलोल की जीवन भर परेशान रहना पड़ा और समय-समय पर मुठ करने पड़े। महमूदशाह पहले एक बार पराजित हो चुका था लेकिन कुछ ही वर्षों में उसने पुनः शक्ति संचित की और दिल्ली की ओर चले पड़ा। परन्तु कुतुब खाँ और राजा प्रताप सिंह ने मध्यस्थता कर दोनों में सन्धि करा दी। परन्तु यह सन्धि धार्मिक थी। महमूद शाह की मृत्यु के बाद मुहम्मद जौनपुर का सुल्तान हुआ और फिर लड़ाई ठग गई। मुठ समाप्त नहीं हुआ था कि जौनपुर में हुसैन खाँ गद्दी पर बैठा। वह एक योग्य शासक और कुशल सेनानी था। उसने धीरे-धीरे पूर्व दिल्ली के विरुद्ध मुठ परम्परा अविच्छिन्न रखी। कई बार सन्धियाँ हुईं और टूट गईं। मुठ कुछ काल के लिए बन्दे ही रह जाते परन्तु अन्तिम रूप से समाप्त नहीं हो पा रहा था। एक बार हुसैन खाँ की सेनाओं ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और बमुना पार कर पाही सेना को करारी भात दी लेकिन सन्धि हो गई और हुसैन खाँ जौनपुर लौट गया। लेकिन बहलोल ने सन्धि की शर्तों को मिलाकर कोटली हुई सही सेना पर हमला बोध दिया। इनसे पुनः मुठ छिड़ पया। हुसैन ने कई बार पूरी ताकत से बहलोल का सामना किया लेकिन उसका भाग्य उमसे कड़ा हुआ था हर बार उस पराजय मढ़नी पड़ी और अन्त में कासी नदी के अन्तिम मुठ में दिल्ली जौनपुर की अविच्छिन्न मुठ परम्परा समाप्त हो गई और जौनपुर के भाग्य का फैसला हो गया। हुसैन खाँ बुरी तरह पराजित हुआ। उसका राज्य पल्लु द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया। बहलोल ने अपने पुत्र बाराकशाह को जौनपुर का सूबदार नियुक्त किया।

जौनपुर पर अधिकार हो जाने के बाद बहलोल ने बालूची भीतपुर बारी तथा बालापुर पर भी अपना प्रभुत्व जमाया। बहलोल के जीवन के अन्तिम दिनों में आधिपत्य के राजा ने बिरोह कर दिया और कर देने से इन्कार कर दिया। सुल्तान ने स्वयं छाही सेना के साथ जाकर बिरोह को बर्धन किया और राजा को भात काट

टंके कर रूप में देने के लिए बाध्य किया। ग्वाल्दियर से लौटने पर मुल्तान का स्वास्थ्य बिगड़ गया और सन् १४८८ ई. में बहुलोक छोड़ने न ३७ वर्ष घासने के बाद गुनिया छोड़ दी।

बहुलोक लोही का चरित्र—बहुलोक लोही न दिल्ली में एक मय राज्यपाल की स्थापना में साब बर्षों बाद दिल्ली को प्राचीन गौरव और उसकी प्रभुता लौटाने का सफल प्रयास किया था। भले ही उसकी सफलता आंशिक रही हो लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि बहुलोक को पाकर दिल्ली ने बहुत बर्षों बाद ऐसा सुल्तान पाया था जिसने उसकी लीजोभूत प्रतिष्ठा और गौरव को संहारा दिया था। उसने राज्य में एकता और सुव्यवस्था स्थापित करने में अपना सारा जीवन लगा दिया।

अपने व्यक्तिगत जीवन में बहुलोक एक उदार, दयालु तथा विनम्र होने के साथ-साथ कुशल प्रशासक और योग्य सेनानी था। उसकी जनकी विषये उसकी बीरता और सैनिक योग्यता की परिचायिका हैं। बहुलोक एक बर्मेनिष्ट सुल्तान था। न तो उसने कभी ऐश्वर्य प्रदर्शन ही किया और न किसी को अकारण सष्ट करने का प्रयत्न ही। 'तारीख-ए-बाहरी' के अनुसार 'आम दरबार में वह सिंहासन पर न बैठ कर एक पक्षी के पर बैठता था। जब कभी वह किसी जमीर की आदेश पत्र लिखता तो उसको 'मसनब बख्शी' सम्बन्ध से सम्बोधित करता था और यदि कभी वे उससे सष्ट हो जाते तो उनकी क्षान्त करने के लिए वह इतना प्रयत्न करता कि स्वयं उनके दर जाता था। वह अपने सरदारों के साथ भाईचारा निभाता था और यदि कोई अस्वस्थ हो जाता तो स्वयं जाकर उसकी पूछताछ करता था।

इस प्रकार बहुलोक लोही एक सीधा और सरल स्वभाव का व्यक्ति था। वह विद्वानों का आदर करता और उन्हें आश्रय प्रदान करता था। उसमें उच्च कोटि की न्यायप्रियता थी। उसका कोई व्यक्तिगत कोप नहीं था। युद्धों में प्राप्त वन को वह निस्स्कोच रूप से सैनिकों में बाँट देता था।

सिकन्दर का सिंहासनारोहण

बहुलोक की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा पुत्र मिर्जाम खाँ सिकन्दरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। बहुलोक के दो पुत्र थे जिनमें बालकन्दशाह खीतपुर का गवर्नर तथा आलम खाँ कन्नौज-मथुरापुर का शासक था। छोटे पुत्र मिर्जाम की उमर अपने अर्धशतक की थी। मरम्मत बहुलोक की इच्छा थी कि उसके बाद मिर्जाम खाँ ही दिल्ली का सुल्तान हो। बहुलोक की मृत्यु के पश्चात् राज्याधिकार प्राप्त करने के लिए बहुलोक के अन्य पुत्रों के पत्नों को लेकर जमीनों के कई दस जन मय और एक प्रकार से गद्द मर्त्य का शक पड़ा। अन्ततोगत्वा मिर्जाम खाँ के दल की विजय हुई और बालकन्द आलम खाँ तथा आलम तुमायू आ बहुलोक का पीछा था के पश्चात्ता जमीन हली को खनना पड़ा। १७ जुलाई १४८८ ई० को मिर्जाम खाँ मुल्तान निर्वासित किया गया और गद्दी पर बैठ कर उसने सिकन्दरशाह की उपाधि धारण की।

सिकन्दर के कार्य—सिकन्दर एक योग्य मैनिश कुशल सामक और शासनेतानी था। उसमें उच्चकाटि की महानकार्यता थी।

मिहताम जहिरून करने के बाद ही उसने मयमन बुद्धिमत्ता में अपनी परेगा-निर्वाह का हल करने हुए अपने व्यय की जोर धरणा उठाये। वह जानता था कि दरबार में चित्तन ही अपनी उमके पिगपी हैं आ किसी समदगगतिन होकर उसके लिए पर

मानियों की शोकाव सजी कर सकते हैं अतएव उनको सम्पुष्ट और प्रसन्न करने के लिए उसने जमीनों को राजमारोहण के उपरान्त में एक सामान्य बाण्ड की और अपने समर्पण जमीनों को पुरस्कृत कर तथा पत्र प्रतिष्ठा में वृद्धि कर उनको सम्मानित किया। इसका प्रभाव अन्य जमीनों पर भी पड़ा और वे मुस्ताम के पक्षपाती होने लगे। अपनी स्थिति कुछ बूढ़ कर मुस्ताम अपने पिता की भाँति साम्राज्य की सत्ता के विस्तार और उसके प्रमुख प्रसार में संलग्न हो गया। साम्राज्य विस्तार की विधा में प्रयत्न करने पर उसने अनेक साधकों और सामन्तों से युद्ध करना पड़ा।

सबसे पहले उसने रेवाड़ी के सुदूर आत्मन की के विरुद्ध अभियान किया और उसको परास्त कर उसे इटावा का शासक बनाया तथा उसका शासित प्रदेश ज्ञान ज्ञानागोहानी को सौंप दिया। इससे पश्चात् उसने ईसाई के विरुद्ध प्रयास किया। ईसाई मूल में पराजित हुआ और बन्दी बनाकर मुस्ताम के सामने उपस्थित किया गया। लेकिन मूल में इतना बाहुल्य हो गया था कि शीघ्र ही उसकी मूर्ख हो गयी। उसकी मूर्ख के पश्चात् सम्साबाब का प्रदेश राजा मण्ड को दे दिया गया।

जौनपुर से सम्बंध—जौनपुर में इन दिनों उसका भाई बाराबकसाह शासन कर रहा था। दिल्ली का राज्य प्राप्त करने के लिए वह भी सिकन्दरसाह का एक प्रति हुन्दी था और इस समय जौनपुर में स्वतन्त्र शासक की हस्तगत से शासन कर रहा था। साम्राज्य विस्तार के लिए प्रयत्नशील सिकन्दरसाह ने जब बाराबकसाह को दिल्ली का भाविपत्य स्वीकार करने का संदेश भेजा तो बाराबक ने उसकी उपेक्षा कर दी और नहीं नहीं उसमें क्रोधित होकर उससे दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। इधर से शाही सेना जौनपुर पर आक्रमण के लिए आ रही थी। कर्जीब के निकट दोनों सेनाओं का सामना हुआ। परन्तु युद्धकाल के मध्य में ही बाराबकसाह का एक सेना नायक कामा पहाड़ सिकन्दरसाह से मिल गया और परिणामस्वरूप बाराबकसाह को पराजित होकर बखामू की ओर भागना पड़ा लेकिन उसने शीघ्र ही क्षमा माँग ली। मुस्ताम ने उसे क्षमा कर दिया और जौनपुर का प्रदेश पुनः उसके शासन में दे दिया लेकिन बाराबक की गतिविधियों पर ध्यान रखने के लिए उसने अपने कतिपय विरहस्त अफगान सरदारों को भी वहाँ नियुक्त कर दिया।

जौनपुर से आक्रामक पाने पर उसने कासपी पर आक्रमण किया और अपने मर्जीज बाजम हुमायूँ को पराजित कर उससे कासपी का प्रदेश छीन लिया और महमूद खाँ को सौंप दिया। इसी प्रकार विजयान के मुस्ताम शर्फ को हटाकर उसके स्वाम पर आलखाना कर्मसी को नियुक्त किया गया। इस प्रकार ३ वर्ष के अन्तर ही मुस्ताम ने अपने विराजिनों को कुछ दे दिया और अपनी शक्ति संगठित कर ली।

जौनपुर में अशांति—मद्यपि जौनपुर पर सिकन्दरसाह का अधिकार था परन्तु जमींदारों एवं अन्य सरदारों में विरोध की भावना तेजी से बढ़ करती जा रही थी। बाहिर जिनमाग्रे पर से राजा हटी और बिशाह की अग्नि जल उठी। इस विद्रोह को बाराबक नियंत्रण में नहीं कर सका और उसे भागना पड़ा। शाही सेना के आने पर जमींदारों पर निष्पक्ष किया गया और बाराबकसाह को पुनः शासक बनाया गया। परन्तु शाही सेना के जौनपुर में हटने ही पुनः विद्रोह कर दिया गया और इस बार भी बाराबकसाह विद्रोह को नहीं दबा सका। इस पर मुस्ताम ने क्रोधित होकर उसे बन्दी बनाकर कारागार में डालवा दिया।

हुतेनागाह शर्फी से संबंध—बहुमीन माओ द्वारा पराजित होकर शर्फी मुस्ताम हुमेनगाह बिहार भाग गया था और आजकल वहाँ निवास कर रहा था।

बिहार में बैठा-बैठा वह जौनपुर का राज्य पुन प्राप्त करने के लिए विक्रम में मित्राणा करता था तथा पद्मन रक्षा करता था। इसर कुछ दिनों से जौनपुर के कुछ जमीन्दारों ने हुसैनसाह को अपन खोय हुए राज्य को पुन हस्तगत करने के लिए प्रस्तावना सेना प्रारम्भ कर दिया था। इससे प्रोत्साहित होकर सन्मन्त्र ही वह जौनपुर की प का स्वाय देवन लगा और वही तैयारी करके उसन एक विद्याल सेना के साथ जौनपुर की ओर प्रयाण किया। अमर हिन्दू जमींदार भी उसके साथ थे। सगरे पाकर साह सेना भी आगे बढ़ी। बगारम के निकट दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई जिसमें हुसैन साह की सेना बुरी तरह पराजित हुई और उसकी शक्ति अन्तिम रूप से क्षिप्त भिन्न होकर बिखर गयी। हुसैनसाह सन्नती भाग गया जहाँ उसने अपना सप जीवन बिताया।

बिहार और बंगाल—१४९५ ई तक बिहार प्रायतः सरस्वती से अधिकार में रखा गया। बिहार की व्यवस्था कर चुकने के बाद तिलन्वर की सेनाएँ बंगाल की ओर बढ़ी। लेकिन छोछ हो बंगाल से सम्बन्ध हो गये जिसमें वह तब किया गया कि दोनों राज्य न तो एक दूसरे की सीमा पर आक्रमण करने और न एक दूसरे के समुपल को आशय इन न उसकी किसी प्रकार की सहायता करे। मुल्तान न आक्रमण को तिरहुत का तथा बरिया जाऊ बिहार का सासक नियुक्त किया।

अक्रमान अमीर और जमींदारों के विरुद्ध—बिहार के पश्चात् तिलन्वर पाइ न बड़े-बड़े अक्रमान सरदारों तथा भूमिपतियों की ओर ध्यान दिया—मुल्तान। कुछ प्रमुख अक्रमान सरदारों को शासन का हिसाब-किताब देने को आदेश दिया और स्वयं जीव-यष्टास करने लगा। इसके फलस्वरूप अनेक रक्षसमय भरी का उद्घाटन हुआ और इन में से कुछने से अक्रमान सरदारों में मुल्तान के प्रति गहरा विरोध पैदा हो गया। मुल्तान में अक्रमान कठोरता के साथ इनका दमन किया। इन जमींदारों के दमन में मुल्तान ने जिस क्रूर और निर्मम नीति का प्रयोग किया उससे क्रूर होकर ईशत खाँ भाव सरदार तो मुल्तान की हत्या कर देने के लिए कटिबद्ध हो गए। अब एक पद्मन रक्षा गया और उसने मुल्तान के भाई फाहू पाँ की भी शामिल किया गया। लेकिन गाहजाबा फाहू पाँ ने मुल्तान के सामने इस पद्मन का पर्चा काग कर दिया। इसके बाद मुल्तान ने पद्मनकारियों को कठोर से कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की। इन प्रकार मुल्तान की हत्या का प्रयास अमफल हो गया और पद्मन कारी प्राणों में हाथ भी बँधे। १५ के अन्तर्गत बसगर ने दिल्ली में शिर उठाने का प्रयास किया लेकिन वह रक्षा दिया गया।

आगरा नगर की स्थापना—इटावा बियाना कीम तथा ग्वाल्दियर और बोलपुर में बिहाह की आतमबाजियाँ रह-रहकर छूटा करती थीं। मुल्तान की इन दमन में कटिनाई नहीं तो परेशानी अवश्य होती थी अब उसने स्थायी रूप पराजि स्थापित करने के लिए उपरीक्षण बिहाहियों के समीप एक नैतिक स्थापना कर दी। आबस्यकता का अनुभव किया। सन् १५४ ई में मुल्तान ने आगरा नगर की नीव डाली और कुछ बगैर मुल्तान स्वयं वहाँ स्थायी रूप में निवास करने लगा। आगरा में मुकाम—सन् १५५ की ६ जुलाई का दिन आगरा के सर्वप्रथम की बसा की। उस दिन एक प्रसन्न भूकम्प आया और इतिहासकार के तथ्यों में उस महानगर की बौद्ध का चित्र गाकार हो उठता है—

“आमन में यह (भूकम्प) इतना भयंकर था कि पहाड़ उलट गए और पानीमान ऊँची-ऊँची इमारतें बह कर जमीनदाज हो गईं। जातिन लोगों ने सोचा

कि अन्तिम ध्याय की बेला आ गयो और मृतकों ने सोचा कि अब मुक्ति की घड़ी आ पहुँची है।

सिक्खों के अन्तिम दिवस भी राजपूतों तथा मगध सरदारों को हमन करने में ही बीत गया। मुल्तान में अत्यन्त बर्ष से इन छोटे-मोटे बिरोहों का हमन किया और उनके प्रसंगा की व्यवस्था की। इसके साथ ही मोलपुर ग्वाल्मिर तथा मरवर को भी हिस्सी का प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए बुला टक देम पड़ा। जन्वेरी का शासक भी हतयप किया गया। जन्वेरी पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् एक वर्ष बाद ही १५१ ई० में नाभीर के मूकवार में भी हिस्सी की सस्तनत के सामने सिर मुका दिया और वहाँ भी सुल्तान के नाम का खतवा पड़ा गया। सिक्खों का अन्तिम सैनिक अभिमान राजमन्नीर के बिरुद्ध हुआ जिसमें वह विजयी हुआ और आपरा छोड़ दिया।

ग्वाल्मिर जीतने का सिक्खों ने अनेक बार प्रयत्न किया लेकिन जिस प्रकार मुगल काठ में दक्षिण की शक्ति और राजपूतों की शक्ति से कम नहीं थी उसी प्रकार ग्वाल्मिर का राजा भी सिक्खों से कुछ कमजोर नहीं था। सिक्खों ने ग्वाल्मिर में सैनिकों का गैर कर्तव्य करने के अनेक प्रयत्न किये लेकिन वे निष्परिणाम रहे। मुल्तान सिक्खों द्वारा अपने अन्तिम दिनों में जब ग्वाल्मिर विजय के लिए तैयारियाँ में सम्मिलित थे तभी १५१७ ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

शासन-व्यवस्था—सिक्खों हिस्सी सस्तनत का अन्तिम महान् शासक था। वे न केवल एक कुशल और और सेनागी ही था बल्कि वह एक कुशल और योग्य शासक भी था। यह बात इससे ही कि वह बीसवर्षों तक बिरोही सरदारों और उपद्रवी पड़ोसियों के हमन में उलझा रहा और सस्तनत की सम्पूर्ण क्षय व्यवस्था करने का सुयोग उसे नहीं प्राप्त हो सका। फिर भी उसने अपने राज्य की शक्ति को वृद्धि प्रदान करने के लिए अनेक सराहीनीय सुधार और शान्ति स्थापित करने के सफल प्रयास किये। उसने एक स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासन की स्थापना की और एक केन्द्रीय मूल शासन-व्यवस्था को अंग्र दिया। इसमें सम्यक् नहीं वह अमीरों को साम्राज्य का सम्पूर्ण समझता था परन्तु वह इसे भी समझ नहीं सका कि वे अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हुए स्वामी के साथ विनयासभाव करें और हिस्सी के भाग्य विधाता होने के स्वप्न देखें। अमीरों की यह राजभक्त स्वाभिमानी तथा शासन-व्यवस्था के प्रति ईमानदार दैवता बाधता था। इसीलिए उसने अध्यात्म सरदारों पर कठोर प्रतिष्ठा रखी और उनके हिसाब-किताब की जाँच करवाई तथा राजस्व में कटौत करने वालों को कठोर दण्ड दिया। मुल्तान के भाइयों को भी मुल्तान के पञ्चाधिकारियों तथा अफगनों के साथ भिन्न कर कार्य करना पड़ता था जिससे वे अभी भी निरुत्थान हो प्रयत्न न कर सकें।

साम्राज्य की समस्त मुश्किलों को मुल्तान और उसके उच्च पञ्चाधिकारियों तक पहुँचाने के लिए एक दक्षिणाली मुल्तान विभाग का संगठन किया गया था। राज्य भर में इन मुल्तानियों का नाम फैला हुआ था। छोटी से छोटी बातें मुल्तान के राजा में पहुँच करती थी। मुल्तान को अपने अमीरों की स्वाभिमानी में मन्त्रेष्ट या इसलिए मुल्तान स्वयं अमीरों के मजबूती की नियमित करता था। शासन-व्यवस्था के विषय में इतना अधिकार हाथ में वह प्रजा के हितों का अत्यधिक ध्यान रखता था। उसने इति की उन्नति के प्रयत्न किये और व्यापार को प्रोत्साहन दिया। राजमाँची तथा व्यापार

रिफ मायों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया। अपनी व्यापप्रियता के कारण तो सिकन्दरशाह कितने ही तत्कालीन अफगान इतिहासकारों की प्रशंसा का पात्र बना है। मुस्तान स्वयं प्रधान व्यापारीका था। उसने निम्न और उच्च व्याप की व्यवस्था पर जोर दिया था। ईप अमुरा जैसे पूर्व दिनों पर बन्धी मुक्त किसे पाते थे। हिन्दू जमीन दारों का कठोरतापूर्वक दमन किया गया। भूमि की व्यवस्था के सम्बन्ध में भूमि नापने के लिए उसने प्रामाणिक गज का प्रबन्ध किया था। वह बाद में काफी दिनों तक सिकन्दरी गज के नाम से व्यवहृत होता रहा। सिकन्दर की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में 'तारीख-ए-बाखरो' का केवलक सिद्धता है—

'मुस्तान की प्रतिदिन साम्राज्य के विभिन्न जिलों की बटनाओं की सूचनाएँ तथा वस्तुओं के मूल्य के विवरण प्राप्त होते थे। यदि उसे जरा भी गड़बड़ की सूचना मिलती तो वह उसके व्यत्यय की तत्काल आज्ञा देता था। उसके शासन में व्यवसाय ईमानदारी तथा स्वतन्त्रता के साथ होता था। साक्षर्य के अध्ययन को भी विस्मृत नहीं किया गया था। कारखानों को प्रोत्साहन दिया गया था। सब सामान्य एवं सैनिक सम्पुष्ट थे यही नहीं प्रजा का वह इतना हितचिन्तक था कि प्रति वर्ष मुस्तान निर्बनों और अभावग्रस्त लोगों की सूची तैयार करवाता और उनकी आवश्यकताओं के अनुसार उनको छ मास की भोजन सामग्री प्रदान करता था। प्रत्येक कार्य का निश्चित समय था और एक बार स्थापित की गयी प्रथाओं में परिवर्तन नहीं किया जाता था।

इतना सब कुछ होने पर भी सिकन्दर के उज्ज्वल चरित्र पर और उसकी शासन व्यवस्था पर उसका दाम्निक आग्रह एक भारी कड़क बिन्दु है। विरोध तुल्यक तथा औरंगजेब की भाँति ही सिकन्दर को भी दाम्निक कट्टरता का धिक्कार था। हिन्दुओं से उसको घृणा थी। उसने अनक स्त्रियों पर हिन्दुओं के देवालयों को ध्वस्त कर उनके मन्त्रालयों पर इस्लाम की प्रतिष्ठा की थी और मस्जिदों का निर्माण करवाया था। कितने ही हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनने पर बाध्य किया गया और हिन्दुओं के धर्मपरिवर्तन से इन्कार करने पर कितनों की प्राणों से हाव घोना पड़ा। बौद्ध नामक शास्त्र का आम्बान इसका दुष्टान्त है। जिसको केवल इतना कहने पर कि उसका धर्म भी इस्लाम के समान ही श्रेष्ठ है प्रानरब्ध है विना गया था। यही नहीं मुस्तान ने आज्ञा निकाली कि कोई भी हिन्दू मन्दिर के बाटों पर स्नान नहीं कर सकता। इतिहासकारों का मत है कि सिकन्दर की इस दाम्निक कट्टरता को दाम्निक माप रब्धों की तुल्य पर नहीं ठीका जा सकता है क्योंकि वह धर्म ही दाम्निक असहिष्णुता का था और योरप तक में दाम्निक असहिष्णुता का बीजबाला था।

सिकन्दर के चरित्र एवं कार्यों का मूल्यांकन—ऊपर हम कह चुके हैं कि सिकन्दर एक वीर सेनानी और कुशल धातक था। अपनी शक्ति के आधार पर उसने पूर्व में चीनपुर तथा बिहार और दक्षिण में बेलपुर, नागीर आदि की साम्राज्य की सत्ता के अधीन किया था। पञ्जाब का प्रान्त भी उसके हाक में बहुतेक लोरी के काष्ठ की अपेक्षा धान्य रहा। वह एक स्नेहकारी निरंकुश धातक था तथा साम्राज्य की ममस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित करने का अभिलाषी था। इसीलिए उसने उन अफगान अमीरों तथा सरदारों को नियन्त्रण में रखा जिनको बहुतेक ने अपनी उधार नीति के द्वारा अपनी बराबरी का पद प्रदान कर काफी उत्पन्न बना दिया था।

अपने व्यक्तिगत जीवन में सिकन्दरशाह अतिथय स्वरूपवान आर्सेट्येमी तथा मुस्तानोपिठ सभी पुर्णों से समन्वित व्यक्ति था। उसकी दाम्निक कट्टरता का

सभी लक्ष्मीन इतिहासकार एक स्वर से समर्पन करते हैं कि धर्म में उसकी बूढ़ मास्था मो। मुस्ताजों और मौलवियों की संघति में उसकी रूचि थी। हिन्दुओं से घोर घृणा करता था। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया और मूर्तियों की कड़ाह्मा में बाँट बनाने के लिए विदारित करा दिया था बाहि-बाहि।

सिकन्दर अपने युग की प्रकृति के अनुसार बर्माग्न अवस्था था लेकिन उसमें उष्ण कोटि की प्रतिभा और योग्यता का अभाव नहीं था। वह प्रजा का हितचिन्तक और धार्मिक का प्रेमी था। हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि निर्भयों तथा असहायों के लिए उसने राजकीय से व्यवस्था की थी। व्याघ्र का वह प्रेमी था। सिकन्दर साहित्यकारों का आदर करता और उन्हें आश्रय देता था। वह स्वयं भी फारसी की अच्छी कविता कर लेता था। उसने औपनि विज्ञान पर संस्मृत के एक ग्रन्थ का फारसी में अनुवाद करवाया था। अरिभूत व्यक्तिमों से वह घृणा करता था। उसका स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र थी। इन सब गुणों के अतिरिक्त मुस्ताज सिकन्दर बड़ी प्रमी था और प्राचीन प्रजाओं तथा परम्पराओं का आदर करता और उनका अनुकरण करता था। इस प्रकार सिकन्दर ने अपने शासन काल में साम्राज्य की स्थिति को बूढ़ बनाने और उसे स्थायित्व प्रदान करने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रहीं। लेकिन उसने बाद भी धार्मिक साम्राज्य का माध्य-विचारवा हुवा वह परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर सका और इस कारण साम्राज्य की नींव पुनः ढाँढोल हो उठी।

इब्राहिम छोरी

१५१७-१५२९ ई० में सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त इब्राहिम छोरी ने दिल्ली साम्राज्य की बागडोर संभाली। इब्राहिम एक छोटी एवं छटी स्वभाव का सुल्तान था और अपने स्वभाव के कारण ही उसने अल्प काल में ही अपने हितैषियों तथा छद्मयोगी अमीरों को असन्तुष्ट कर दिया। इब्राहिम में सिकन्दर जैसी प्रतिभा और प्रभावशाली बूढ़ व्यक्तित्व नहीं था था वह अफगान सरदारों को अपने पिता की नीति निर्माण में कर सकता। इसलिये जब उसने अपने पिता की नीति निरंकुश और स्वेच्छाकारी शासन बनाने के प्रयास में असन्तुष्ट अमीरों पर कठोर दमन चक्र की नीति अपनायी तो वे उसके विरोध में उठ खड़े हुए। इन अमीरों को अपनी शक्ति का भरोसा था जैसा एस्कंधन ने लिखा है कि ये अमीर अपनी बागीर की शासन की अनुकम्पा स्वयं प्राप्त न समझ कर अपने अधिकार और अपनी लक्ष्यार की शक्ति से कथ्य की हुई समझते थे। इस प्रकार अन्तर अमीरों में असन्तुष्ट फैलता जा रहा था तो दूसरी ओर हिन्दू जनता सिकन्दर की धार्मिक नीति के कारण पहले से ही विरोधी बन बैठे थे। इब्राहिम के सामने बिकट परिस्थितियाँ थी। वह जितना उसे सुलझाने का प्रयास करता था वह उतना ही असमर्थी जाती थी। लेकिन इतना सब होने पर भी इब्राहिम को अपनी जनता का बड़ा ध्यान रहता था। उनके शासन-काल में राज्य में समृद्धि थी। अभाव सस्ता था और यथार्थ माना में था। अपने इन्हीं सब गुणों के कारण इब्राहिम अपने राजनैतिक जीवन में पूर्ण सफल न होना हुआ भी जनता का प्रिय था। वह जनता का हित चिन्तना करता और जनता उस पर आस्था रखती थी।

जलाल का विद्रोह—इब्राहिम के गिहागनाक होने के कुछ ही समय बाद इब्राहिम की अमीर दमन नीति से असन्तुष्ट सरदारों की परझलनकारी प्रवृत्तियाँ चिन्ना पीक हो उठी। कुछ अमीरों के परामर्श देने पर इब्राहिम ने जलाल को कालपी न हटाकर जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया। कोदजही छोरी एक स्वाभिमन

अमीर का। उसने पश्चिम की प्रवृत्तियों को पहचाना और मुस्ताम से इस बात का आग्रह किया कि जलाल को जौनपुर से वापस बुला लिया जाय नहीं तो छाही सक्ति के बिना जित हो जाने की आशंका है। मुस्ताम ने उसके परामर्श को स्वीकार करते हुए कुछ अमीरों को जौनपुर से जलाल की लौटा लाने का आदेश दिया। लेकिन जलाल ने मुस्ताम की इच्छा का विरुद्ध कर दिया क्योंकि एक तो उसका जौनपुर के सासन का आस्वादन हो चुका था और इससे अमीरों का एक बल पृष्ठभूमि में उसकी सहायता कर रहा था। इब्राहिम अत्यन्त बीर्य से काम ले रहा था लेकिन इसी समय आक्रमण हुआ। आ मुस्ताम का एक बिरात्री अमीर का जलाल से मित्र मया। जब दोनों की सम्मुख सेनाओं में जबर्जस्त आक्रमण कर दिया और वहाँ के सुबहार समय काँ को अत्यन्त भागना पड़ा। इस आक्रमण की सूचना मिलते ही मुस्ताम के बीर्य का बौद्ध टूट गया और उसने स्वयं जलाल के विरुद्ध अभियान किया। इस बीच में आक्रमण हुआ। ने जलाल का साथ छाड़ दिया और छाही सेना ने कामपीका दुर्ग घेर लिया और जलाल आगरे की ओर भागा। छाही सेना ने वहाँ भी उसका पीछा किया। तब वह ग्वाल्दियर पलायन कर गया फिर वहाँ से साँकवा गड़ कटक हाता हुआ साँकवाना पहुँचा जहाँ के जमीन्दारों ने उसे पकड़ लिया और कत्ल कर दिया।

ग्वाल्दियर पर विजय—सिकन्दर कोरी के ग्वाल्दियर पर विजय की अपूर्ण योजना पूर्ण करने के लिए इब्राहिम ने एक सेना १५१७ ई. में ही ग्वाल्दियर की ओर रवाना की लेकिन जलाल के विद्रोह के कारण उसे वापस बुला लेना पड़ा। जलाल का इमन कर जब इब्राहिम आगरा आया तो उसने किसी कारण इष्ट होकर सिकन्दर के मन्त्रिण मिस्री मुन्शी का मृत्युपर्यन्त के लिए कारागार में डाल दिया। इनके बाद जब स्वतः ही जान के पदार्थ उसने आक्रमण हुआ की व्यर्थता में एक सेना ग्वाल्दियर की ओर भेजी। ग्वाल्दियर के प्रतापी नरेश मारासिह की मृत्यु हो चुकी थी उत्कालीन भासक राजा विक्रमादित्य ने सहज मुस्ताम की अवीनता स्वीकार कर ली।

मेवाड़ के साथ संबंध—मेवाड़ और प्रसविनी राजस्थान की आत्मा है और इब्राहिम के समय मेवाड़ पर भारतीय इतिहास का दुर्घट योद्धा तसबार का धनी रचा मर्याद सिद्ध सासन कर रहा था। मारे राजपूताने में उसकी दृष्टि बोक रही थी और राजपूताने के बाहर मासला का भी कुछ भाग उसके अधिकार में था। मेवाड़ और दिल्ली में प्रायः युद्ध हुआ करते थे लेकिन उनके परिणामों के विषय में प्रमायिकता पूर्वक कुछ कहा जा सकता क्योंकि दोनों ओर ने इतिहास लेखकों ने अपने पक्ष के प्रति भारी आग्रह का और वे अपने पक्ष की पराजित नहीं लिख सकते थे। इब्राहिम जब जलाल के विद्रोह और ग्वाल्दियर विजय से निवृत्त हुआ तो उसने अपने पुत्र हुए अनुमरी और योग्य सेनाध्यक्षों की व्यर्थता में एक विद्याय सेना मेवाड़ की ओर रवाना की। सता में बहुत बड़े उद्ग सेनाध्यक्ष सम्मिलित रूप से आगे बढ़ रहे थे लेकिन इसी बीच में उनमें पारस्परिक ईमनस्व हो गया और कुछ सेनापति अमीर राजा के पक्ष में मिल गये। राजा की सेना ने प्रचण्ड औरी के समान धाँहो मना पर आक्रमण किया और छाही सेना की बगियाँ उड़ा दी। परन्तु इसी बीच में वे विरवास पायी अमीर जो राजा ने आ मिले थे पुनः छाही सेना के साथ हो गये। राजपूतों को इसकी खबर न थी। जब राति में आक्रमण हुआ। अफगानों ने पिल्ली हार का पा भर के प्रतिगोच से किया और मसकमान इतिहासकारों के अनुसार यद्ध में राजा की वही तरह पराजय हुई और पायक हँकर वह साथ निकला। इनके विराप में गजस्थान के प्रसिद्ध इतिहास लेखक टाग का बयान है “राजा ने अपना मैना की तैयार किया

बिस्के साथ वह सदैव रजमूमि में रहता था। तैमूर के बंसज के साथ युद्ध का अवसर आने के पूर्व वह १८ युद्धों में विजय प्राप्त कर चुका था जो बिस्की तथा मालवा के शासकों के साथ किये गये थे। इनमें से बाकराक तथा बटौली के युद्धों में इब्राहिम ने स्वयं उसका मामला किया था बटौली के युद्ध में शाही सेना बुरी तरह परास्त हुई और वह छिन्न-भिन्न हो गयी।

इब्राहिम तथा अफगान सरदार—सिकन्दर सोरी ने अपने अमीरों को दबा कर उनकी स्वामिसक्ति और राजभक्ति को ही थी। यह बात दूसरी है कि उसको अपने जीवन काष्ठ में अमीरों की कलह और उनके शक्तिसाली विरोध का सिकार नहीं होना पड़ा मन्निन इब्राहिम के लिए तो वह एक महान समस्या थी। उसने उनको प्रथमता दबाना चाहा तो उनका सन्धित असन्तोष फूट पड़ा जिसका परिणाम हुआ कि मुस्तान को पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और इसीलिए अमीरों पर से उसका विश्वास उठ गया और वह उन्हें अत्यन्त घन्देह की दृष्टि से देखने लगा। इब्राहिम ने दृष्ट होकर कठोर दण्ड नीति का अनुकरण किया। उसने अपने पिता के सन्धि बूझ मियाँ मुझों के कारागार में बन्द कर कर मार डाला। इसी प्रकार खासियर के विजय के समय उसने सन्धेह के कारण आज़म हुमायूँ को जो खासियर पर अभिमान करने वाली सेना का एक सेनापति था आगरा बुला लिया और पुन फतह गौ के साथ बन्दी गृह में डाल दिया। पिता-पुत्र को कारागार की हवा शिखार के बाद ही मुस्तान समुष्ट नहीं हुआ बल्कि उसने उसके दुसरे पुत्र इस्काम पाँ को भी जो कड़ा मानिकपुर का सूबेदार था अपवस्थ कर दिया। मुस्तान के इस कार्य का बड़ा सराब प्रभाव पड़ा। प्रायः सभी अफगान अमीर चौक उठे और उनके हृदय में एक घोर आशंका भय तथा बिभ्रह की मिश्रित भावना व्याप्त हो गई। धीरे धीरे अफगान अमीरों ने संगठित होकर इस कार्य के प्रति अपना असन्तोष और विरोध व्यक्त किया। मुस्तान की ओर से समझौते का आस्तासन मिलने पर इन विरोधी अमीरों ने आज़म हुमायूँ तथा फतह गौ की मुक्ति की माँग की। विरोधियों की इस दल को सुन कर मुस्तान अपने जीवन की राह में सदा और उसने शाही सेना की विरोधियों के हथियारों के लिए कूच करने की आज्ञा दे दी। भयकर युद्ध हुआ जिसमें विरोधी-पक्ष बुरी तरह पराजित हुआ और कुरता के साथ उनकी शक्ति को कुचक दिया गया और आज़म हुमायूँ का कारागार में ही बन्द कर दिया गया।

मेवाड़ युद्ध के बाद तो मुस्तान अपने अमीर हमल में अत्यधिक कठोर हो गया। अफगान अमीर पहले से ही जब मुने बैठ थे उनके जब फिर कठोरता में छड़ा गया तो उनकी राजभक्ति उनका एकदम साथ छोड़ बैठ और परित्यागस्वरूप बिभ्रहों की भाव जल उठी। दण्डिया गौ दाग-ए-जहाँ कदी तथा हुनैन गौ फरूखी ने सारे आम बिभ्रह का नारा बुलन्द किया और मुस्तान भी अपनी पूर्ण कठोरता और क्रूरता के साथ उनके हमल में जट गया। हुनैन गौ फरूखी अपनी शैमा पर ही बल्ल बर दिया गया। अमीरों का रहा सहा संघर्ष और धैर्य भी जाता रहा। दरिया गौ नुहामी विहार का स्वतन्त्र शासन बन बैठा और उसके बाद उनका पुत्र बहादुर गौ महम्मद शाह को उपाधि कारण कर बिहार का शासक हुआ। नय शासक महम्मद शाह ने अपने नाम के निकले इसबाव और एक विजाल सेना का संगठन कर इब्राहिम का सामना करने का उत्तर दे दिया।

साय्याम्य पननकी रास्ता तेजोमै जाग बह रहा था। मुस्तानकी जानि साय्याम्य को भया न भयानक बिप बन कर घसी आ रही थी। अफगान साय्याम्य न दिन भी भय

पूर हो चुके थे। आखिर मुस्तान न मुस्तान के शासक शीखत खान कादी के पुत्र के साथ जा सका किया उसने साम्राज्य के विनाश की आवश्यकता की भूमिका प्रस्तुत कर दी। वर्षों वर्षों में ही बाबर के आक्रमण से भविष्यता पूरी हो गई और अफगान साम्राज्य का शासन समय में ही अस्त हो गया। बात कुछ यूँ हुई कि इब्राहिम ने किसी कारण से शीखत खान कादी को राजधानी मान का आरोप लगा। खोदी उसने काफ़ी से पहले से ही आशंकित था अतएव उसने स्वयं राजधानी न जाकर अपने पुत्र बिलाल खान को राजधानी भेज दिया। मुस्तान इब्राहिम खोदी ने बिलाल खान को राजकीय कारवायों में से बाहर बीषाखों में कटकते हुए बिहाही जमीनों को दिखाया और कहा कि मेरी आज्ञा का उत्तर करने वालों की यही रक्षा है। बिलाल खान फिर से पैर ठक सिहर उठा। अत्यन्त ममगीत होकर बिलाल खानरा से भाग खड़ा हुआ और अपने पिता के पास आकर उससे सारा वृत्तान्त कहा। शीखत खान खोदी भी मुस्तान का इस प्रकार की नियत से अत्यन्त नाराज़ था और अपनी भूरजा की खतरे में जानकर उसने बाबर को हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने का मार्गदर्श भेज दिया।

पानीपत के निर्णायक युद्ध के पूर्व

बाबर की लक्ष्मीय दृष्टि भारत पर लगी हुई थी। शीखत खान का संदेश पाकर वह अपना नाम सुधारण न कर सका। जन-शासन सन् १५२४ में बाबर ने भारत विजय के लिए काबुल छोड़ दिया। लाहौर के रास्ते में शाहा सेना से उसकी मुठभट्ट हुई जिसमें शाही सेना के पैर उखड़ गये और लाहौर सरसता से बाबर के अधिकार में आ गया। बाबर को बर्हि-बर्हि शीखत खान का मनोबल नहीं समझा क्योंकि उसका उद्देश्य तो पंजाब में अपनी सत्ता बनाये रखना था और इब्राहिम का हटकर आक्रमण खान को मुस्तान बनाना था लेकिन वह उसने देखा कि बाबर मनमानी कर रहा है तो वह मन ही मन बाबर से द्वेष रखने लगा। बाबर ने उसे जल्दबाज़ी तथा मुस्तानपुर का शासन बनाया था। लेकिन उसने बाबर के विरोध में पददत्त रचना प्रारम्भ किया तो बाबर ने उसे अपहर्ष कर दिया और उसके प्रदेश उसके पुत्र बिलाल खान को शासनाधीन छोड़ दिया। इससे बाब बाबर काबुल लौट गया। बाबर ने हिन्दुस्तान की पीठ दिखात ही शीखत खान ने बिलाल खान से मुस्तानपुर तथा आक्रमण से शोपालपुर छीन लिया। आक्रमण भी काबुल भाग गया। काबुल पहुँचकर उसने बाबर के सामने सहायताार्थ याचना की और बरसे में बाबर की लाहौर तथा पश्चिमी पंजाब का स्वामित्व भीषण का वचन दिया। बाबर तैयार हो गया। आक्रमण खान भारत सीट बाया और अर्धवृत्त के कारण शीखत खान से मिल गया। दोनों की संयुक्त सेना न दिल्ली पर आक्रमण कर सका परन्तु शाही सेना ने इस संयुक्त सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया।

पानीपत का युद्ध—वर्ष में व्यवस्था और शान्ति स्थापित करने के पश्चात् मई १५२६ ई. में बाबर एक मूर्धन्य सेना के साथ भारत की ओर बढ़ा। विजयनगर के महान में उगत पंजाब में प्रवेश किया। अपने सैनिकों के साथ शीखत खान ने उसका सामना किया लेकिन वह पराजित हुआ। इसके पश्चात् वह दिल्ली की ओर गला हुआ।

२१ अप्रैल १५२६ की इतिहास प्रसिद्ध पानीपत का युद्ध हुआ। एक ओर बाबर के पुत्र हुमायूँ हुए मंगलिन सैनिक थे और दूसरी ओर इब्राहिम की विनाशकारी सेना। बाबर ने 'तुलना' नामक सामरिक सूत्र की रचना की थी। भीषण

युद्ध हुआ और इब्राहिम की विघात सेना अस्त-व्यस्त हो गई। बाबर के सैनिकों का उत्साह बढ़ गया और २१ तारीख की रात-रंजित रात को कासदेव न बाबर की विजय से मनीन जय्याम का प्रथम पृष्ठ लिख दिया। बाबर के तोपखाने में शत्रुपक्ष में कलबत्ती मचा दी। निरस्त-हस्त काही सेना के पीर उखाड़ गये। इब्राहिम अपने बूने हुए सरदारों के साथ रणभूमि में खड़े रहा और बाबर का शासन सुन बाबर के हाथों में आ गया। इब्राहिम की पराजय का सबसे बड़ा कारण था कि एक ओर निराशा से प्रादुर्भूत साहस और वैज्ञानिक युद्ध प्रयासी के कुछ सामान्य व तो वृद्धों और मध्यकालीन ढंग के सैनिकों की भीड़ थी जो भागों और धनुषों से सज्जित थी और जो कुशलतापूर्वक तथा अव्यवस्थित ढंग से एकत्र हो गई थी।

प्रश्न

1 What was the nature of Lodi Empire? Discuss the circumstances of its establishment and downfall (1945)

१ लोदी साम्राज्य को क्या प्रकृति थी? उसके उत्थप तथा पतन के कारण क्या थे?

2 Write a brief account of the reign of Sikandar Lodi (1946)

२ सिकंदर लोदी के राज्य का संक्षिप्त विवरण दीजिये (१९४६)

3 Give a brief account of the Lodis. (1953)

३ लोदियों का संक्षिप्त विवरण दीजिये। (१९५३)

अध्याय ३३

बहमनी तथा विजयनगर राज्य

भाग १ बहमनी राज्य

तुगलक के शासन-काल में शासन-तन्त्र कुछ ढीला पड़ गया था जिसके परिणाम स्वरूप साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में विद्रोह हुए। प्रादेशिक राज्यों में स्वतन्त्रता प्राप्ति का आकांक्षित हुआ और कुछ प्रांतीय शासकों ने तो इसके की जोड़ पर अपनी स्वतन्त्रता घोषित भी कर दी। इसी अवस्थिति और अव्यवस्था की नाजक स्थिति में दक्षिण के अमीरों ने इस्माइल सरन की अव्यवस्था में बिहीह का मारा दुस्मन किया और बीसठाबाह में अपने स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली। दक्षिण का यह प्रसिद्ध राज्य इतिहास में बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण का यह इतिहास-प्रसिद्ध राज्य अपनी स्थापना से लेकर लम्ब-लम्ब होत तक लगभग १८० वर्षों तक स्थित रहा। इस अवधि में बीसह सुल्तानों ने राज्य किया। यही तक राज्य के विस्तार का प्रदन है यह राज्य उत्तर में बेनवसा से लेकर दक्षिण में कुप्पा और पश्चिम में कोनकन से पूर्व में मोंगिर तक के विस्तृत भू-भाग में फैला हुआ था। बहमनी सुल्तानत यवार्च में एक मुस्लिम राज्य था जिसका इतिहास ही अमियानों अत्याचारों उत्पीड़न तथा पारिवारिक कुर्बतनाओं तथा स्तर-विषि घटनाओं से भरा पड़ा है क्योंकि गुजरात मालवा तैलमना और यही तक कि उड़ीसा आदि सभी निष्कटवर्ती राज्यों ने विरुद्ध अमियान होते रहे और मयंकर मड़ भी हुए किन्तु विजयनगर के साथ चलन आका संपर्क दीर्घकालीन और मयंकर संपर्क था। शासन सम्बन्धी सफलताओं और कला तथा स्थापत्य के पोषण में बहमनी राज्य का कोई महत्वपूर्ण यत्न नहीं है ही यम-तन कुछ उदाहरण अवश्य मिल जाते हैं जो अत्यन्त हैं। राज्य स्थापना के कुछ काल बाद ही इस्माइल ने स्वयं ही और और मुहम्मद हुसैन की अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर उसके सिध् राज्य का मिहामन रिक्त कर दिया।

हम ऊपर कह आये हैं कि इस्माइल ने स्वयं ही अलाउद्दीन हुसैन को मिहा मनासीन होने के लिए आह्वान किया था और १३ अगस्त १३४७ ई. की अमीरों ने उसके शासक होने की स्वीकृति दी थी। अधिकार-हाथ में आते ही हुसैन ने जो पहला कार्य किया वह था मुहम्मद की राजधानी बनाना। राज्य का आसन मूत्र गुलबर्गा में कैम्पिन कर सैन के परचातु उसन राज्य की सीमाप्रमाण तथा मक्ति मयधन के अगोरस प्रमाण किन। द्विज याथा के लिए कच करन स पहल उसन शासन-व्यवस्था को संगठित कर देना आवश्यक समझा और इससे सिध् उसन अपने राज्य को 'सरको' में विभाजित कर दिया और इन प्रांतीयों का धामन उन अमीरों की सीपा विग्रान मुह में उसकी सहायता पहुँचायी थी। इन अमीर आमीरदारों की साम्राज्य के सहायताएँ एक निश्चिन मय्या में मयिक अनचरी की रखना पड़ता था और मासग जारी का एक निश्चिन अंग भी राजकीय मरनमा पड़ता था। धामन प्रमय के विषय में डा० ईदगोत्रगाय के अनुसार उसन महम्मद तुगलक के दरबार में प्रचलित

प्राप्त विधियों का अनुकरण किया। हुसन के द्वारा विभिन्न पदों की स्थापना का ज्ञान हमें 'सुरजान-ए-मासिर' से होता है जिसमें कुछ पद इस प्रकार हैं

- १ साहिब-ए-अज—ममा का निरीक्षक
- २ नायब बरबक—उपचार रखक
- ३ कुरबेय-ए-अंसरा—नाम अंग का नायक
- ४ कुरबेय-ए-अमना—हाहिल अंग का नायक
- ५ दयार—सचिव
- ६ बीवान—मन्त्री
- ७ दाहना-ए-फौज—गजाध्यक्ष
- ८ दावात-दार—बाबात रखन वाला
- ९ सैमद उस हुज्जाब—राज प्रासाद का अध्यक्ष
- १ हाबिब उस कन्वा—नगर अधिरक्षक
- ११ शहना-ए-बारगाह—बरबार निरीक्षक
- १२ चास्तागार—भोजन बखान वाला
- १३ अस्तागार—अन्त पुर हुसम का रखक

शासन को व्यवस्थित कर उसन राज्य विस्तार की ओर ध्यान दिया और काफ़ियों के प्रदेशों पर हुसन के आक्रमणों की जो बाढ़ आयी उसमें एक के बाद एक राज्य अधिस्त होना चला गया। माही सना द्वारा विजित काश्मीर पुनः अधिकार में ले लिया गया और बीबर तथा मालखण्ड पर भी विजय पताका फहरा उठी। मुहम्मद तुमसक की मृत्यु न अनेक चिन्ताओं का एक प्रमुख कर दिया और निर्दुन्दु होकर स्वेच्छान्तर कोई भी काम करने की स्वतन्त्र हो गया। उपरोक्त प्रदेशों के अतिरिक्त गोवा वसोल कोल्हापुर तथा देसमाना तक के प्रदेश बहुमनी साधारण की छत्रछाया में ले लिए गए। अपने अन्तिम दिनों तक में बहुमन दाह बीरताबाद के पूव में बेगौर तक तथा उत्तर में बनर्गा से दक्षिण में कृष्णा नदी की मोखा रक्षाभी के मध्य में विस्तृत विराट् मू-भाम का स्वामी था। सन् १३५९ ई० में बहुमन दाह का देहांत हुआ गया।

प्रथम मुहम्मद शाह—मुल्तान अलाउद्दीन दाह की मृत्यु के उपरान्त यह सब शाह प्रथम यही पर बैठा। मुहम्मद शाह बहुमनी राज्य की तबारीत में एक योग्य शासक की अपेक्षा एक योद्धा के रूप में अपन युद्धों के लिए ही प्रसिद्ध है। मर्वा में पुरहीन पीरी के द्वारों में आग्निक पातन-व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी वह मुल्तान स्वयं अपन पिता की विजय परम्परा की अनुषंग राजन के लिए अधिकृत मण्ड परम्परा में संभाल ले गया। उसका शासन-काल में ही मल्लाना और विजयनगर के बिछड़ उन मण्ड परम्परा का भी गणगुमा जो उसकी मृत्यु के बाद हो रहा प्रसूत बहुमना साधारण के पतन के पश्चात् भी अटूट रहो। उसने उत्तराधिकारियों में एक युद्ध युक्तता की अपन पैतृक अधिकार के रूप में ग्रहण किया और ज्यों तब मयकर मण्ड के य पनपार बाबर हानों राज्यों के ऊपर छाया रहे। मुहम्मद शाह जब कैसमाना और विजय नगर की ओर सर्वेय उद्योग हुआ तो हिन्दुओं में डट कर सामना किया और अपने प्राचीन का आश्रित चङ्गा ना सिवन विजयभी मुहम्मद के पक्ष में रही और परिणाम स्वल्प विजित प्रदेश वसुमावधियों में परिवर्तित कर लिया गया। मुहम्मद शाह एगिन् मेईटने वाला व्यक्ति यही था। २० वर्ष बाद उसन पुनः कैसमाना और विजयनगर

मुठमेड़ की। दो बपों के यमासाम मुठ के पश्चात् सेछंगामा के भाग्य ने पल्टा जाय और उसे हार स्वीकार कर सोलकुम्हा का दुर्ग तथा हरजामे के तीर पर ३३ लाख मुद्राये देने को बिबध होना पड़ा। बिजयनगर के सम्बन्ध में भी कुछ इसी प्रकार की घटना बटी। मुठ के प्रारम्भिक दिवसों में बिजयनगर के राम ने ३००० अश्वारोहियों और १००० पैदल तथा ३० हाथियों की सेना की सहायता से मुस्ताम की सेना के पाँठ छद्दे कर दिये। उसके राज्य में घुसकर रायचूर दोआब का प्रदेश बोरान कर दिया। पाठकों को स्मरण रहे कि कुम्हा तथा तुगमरा के मध्य का प्रदेश ई रायचूर दोआब कहलाता था। इसके उत्तर में मुस्ताम ने कोषित होकर पूर्ण क्षति से बिजयनगर पर बढ़ायी की केजि हिन्दू सेनिकों ने भी रणस्थल में अपने पय जन दिये परन्तु एकाएक बिजयनगर के भाग्य मल्लभ कुछ भूमि हो उठे और मुस्ताम के समान नयी मैथ्य सहायता या पहुँचन के कारण हिन्दू सेनिकों को पराजित होने पड़ा और मुस्ताम की सेनाएँ कोबान्ध होकर सूटमार नर-संहार, सत्तीस अपहरण और जनता की बर्बनाक कत्ल करवाहों को पैरों ठके रखती हुई बिजयनगर के दुर्ग में टकरायी। राम की अपने दुर्ग की मुदबता पर भरोसा था लेकिन भाग्य साम नहीं दे रहा था। मुस्ताम ने एक पक्षयन्त्र बला और राम उसे समझ नहीं सका। तुगमरा के पा उत्तरही मुस्लिम सेनाओं को भागता हुआ समझ कर हिन्दू सेनिकों ने दुर्ग के द्वार उन्मुख कर दिये और उनका पीछा किया। मुस्ताम यही चाहता ही था। एकाएक उसकी सेना लौट पड़ी और बिजयनगर की क्रिमल का फैसला हो गया। निम्रमतापूर्वक कलेमा जारी किया गया और बहिर की चाराम प्रवाहित कर दी गई। बिबध होकर राम के मणि करती पड़ी। बिजता मुस्ताम गुबर्णा बापस लौट आया लेकिन हबय ३ ऊपर एक मार लेकर। बिजयनगर के अत्यधिक रक्तपात ने बिजता के मर्म में ठस पहुँचायी थी जिसके कारण उसने मक्षिप्य में कभी भी निर्बोध व्यक्तिमों की हत्य न करन की घोषणा की।

मुहम्मद शाह ने शासन-काल में सिटपुर् बिबाह की बघ्ताएँ भी की परन्तु उनमें कोई हम न था। फरिस्ता ने मुहम्मद शाह को अपनी प्रसंसा का पा बनाया है क्योंकि वह 'बोन' का कद्दर अनुगामी था परन्तु ईबरीप्रभाव के राज्य में शान्तीय अश्वारो में मानन्द का अनुभव करने वाला तथा महित बिना कीड़ाओं में मान रहन वाला मुहम्मद शाह वास्तव में उस प्रसंसा के योग्य नहीं है बल्कि फरिस्ता ने उस पर बरसायी है।

मुठ नीति की भाँति गृहनीति में भी मुहम्मदशाह निबधता और क्रूरता का हामी था। उसके आदेश से सांख्यिक मबिराछयों का निपय कर दिया गया और राज कीय नियमों के उल्कापन के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था की गयी। अस्त में १७ व ७ महीनों तक शासन करने के पश्चात् १३७३ में उसकी मृत्यु हो गयी।

मुजाहिद शाह—मुहम्मद शाह की मृत्यु के पश्चात् मुजाहिद शाह यही पर बैठा। अपने शासन काल में मुजाहिद शाह ने जिस नीति का अनुसरण किया वह राज्य के लिए मासकारी नहीं सिद्ध हुई। उसने स्थानीय सरदारों के स्थान पर फारसी और तुर्की जनोरी का पक्षपात किया जिससे कलह और आन्तरिक फूट के बीज अंकुरित हो उठे। बिजयनगर के विरुद्ध मुठ और उसके वैमनस्य मुजाहिद शाह को बिरासत में मिला था। बहुमनी और बिजयनगर के मध्य शत्रुता और यद्धों की बीभक्षसीन शृंखला का उपाय कारण था रायचूर दोआब का प्रदेश। जिस प्रकार राइनसण्ड के लिए फौज

और जर्मनी के मध्य जमीनी अवधि तक युद्ध होत रहे उसी प्रकार इस प्रदेश को अधिकृत करने के लिए भी उपरोक्त दोनों राज्यों की सशक्तता निरन्तर बूझती रही। बिजयनगर इन दोनों अपनी प्रगति के पक्ष पर जा और यह काल उसके मौरवसूर्य का मध्याह्न था। मुजाहिद ने दो बार बिजयनगर पर आक्रमण किया। पहली बार उसे असफलता मिली लेकिन दूसरी बार उसने नगर को घेर लिया परन्तु हिन्दुओं ने भी जिस सक्ति और धैर्य का प्रदर्शन किया उससे मुस्लिम सेना की जानें कुछ मयीं और उन्हें भारी पराजय मिली। घाही सेना की यह पराजय और सुस्तान की असंताप जनक नीति दोनों ही सुस्तान के लिए काफी महँगी पड़ी। सुस्तान करक कर दिया गया और शाह ने जो उसका जेबेरा माई का सिंहासन अभिहित कर लिया लेकिन इस घटना के कुछ दिन बाद ही मुजाहिद की बहिन के नमाज के पक्षपत्र से सतमस्तक शाह का सिर भी जमीन पर छोट गया।

मुहम्मद साह द्वितीय—शाह के करक के पश्चात् १३७८ में मुहम्मद साह द्वितीय गुलबर्गा के सिंहासन का स्वामी हुआ। इस सुस्तान ने अपनी युद्ध से विमुक्त धान्तिप्रिय नीति से जमीनों और सरकारों में राज भक्ति उत्पन्न की। इस काल में बिजयनगर और बहमनी राज्य में पूर्व काल से जगजगत रूप से चली आने वाली युद्ध परम्परा को कुछ काल के लिये विधायन मिला। मुहम्मद साह धार्मिक प्रवृत्ति का साहित्य प्रेमी और विज्ञान में अभिरुचि रखने वाला सुस्तान था। उसने अनेक मस्जिदों तथा विद्या सस्त्राओं का निर्माण किया और बहुत से कलाकारों को प्रत्यय दिया। एक बार राज्य में दुमिध पड़ने पर मासवा और मुजरात से अनाज भंगाने के लिए बस हजार जैसपाड़ियाँ नियुक्त की गयीं। धान्तिप्रिय सुस्तान मुहम्मदसाह अपने अन्तिम दिनों में धान्ति और चैन नहीं पा सका क्योंकि उसके पुत्र मयासुदीन और सम्मुदीन राज्य प्राप्ति के लिए अघोर हो उठे थे। १३९७ ई. में सुस्तान की मृत्यु के पश्चात् उसके उपरोक्त पुत्रों में केवल ६ महीनों तक राज्य किया। इसके उपरान्त सुस्तान हुसैन साह का पौत्र फिरोज साह पट्टे पर बैठा।

फिरोजसाह—इस सुस्तान के विषय में इतिहासकारों में काफी मतभेद है। 'अबुल्लाह-उ-भासिर' के अनुसार यह एक न्यायप्रिय उदार और दयालु शासक था। यह कुरान की प्रतिनिधियाँ बना कर तथा उसके हुरम की स्त्रियाँ बस्ती पर बेल-बूटे काढ़ कर तथा उनकी बेचकर जोखनयापन करती थी। यह एक अद्वितीय शासक था और उसकी न्यायप्रियता के अनेक आख्यायन इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित हैं। फरिस्ता का कथन इसके विपरीत है। उसके अनुसार फिरोजसाह एक मय ध्वंसनी तथा संघोत का प्रेमी सुस्तान था। उसके हुरम में मिला ८० स्त्रियाँ काई जाती थी। उपरोक्त दोनों मतों पर विचार करने से स्पष्ट पता चलता है कि दोनों ही कथन अतिप्रयोजितियों से अतिरंजित हैं। इनसे इतना निष्कर्ष अवश्य निकलता है कि यह एक सरल और विनोदप्रिय प्रवृत्ति का सुस्तान था। आमीद-मयोह उसके जीवन का अंग था।

फिरोज साह ने कुछ काल के लिए वही युद्ध परम्परा को पुनः आने बढ़ाया और बिजयनगर के विरुद्ध के जाने फिर एक बार जगजगत गर्जन कर उठ। उसके शासन काल में अधिक मारत लगभग १० वर्षों तक भबंकर दुमिध से ग्रस्त रहा लेकिन बारंगल और बिजयनगर के विरुद्ध युद्धों की गति भी सीधे रही। परिणामस्वरूप बारंगल का दुर्ग अभिहित कर लिया गया इससे एक और बहमनी राज्य की सीमायें गोदावरी के महान पर स्थित राजमहेश्वरी तक पहुँच गयीं और अन्ध और बिजयनगर के

राजकुमार बुक्का का पक्ष्यपन्न द्वारा बच कर बिया गया और पिता हरिहर द्वितीय को ४० पा० युद्ध क्षति पूति के रूप में देना पड़ा। लेकिन बिजयनगर के साथ युद्धों का निरसिद्धा मही समाप्त नहीं हो जाता। १४०६ में बिजयनगर के साथ इस भी अधिक भयानक युद्ध छिड़ा। इतिहास में यह युद्ध सुनार-पुत्री के युद्ध के नाम प्रसिद्ध है। बिजयनगर के राम ने बहमनी राज्य में स्थित मन्नस के एक सुनार न पुत्री पर आसक्त होकर उस स्थान पर आक्रमण किया। फिरोज शाह ने इसका जवाब दस्त उत्तर दिया और बिजयनगर रणवाहिनी लेकर बिजयनगर पर दूट पड़ा और बकापुर दुर्ग पर अधिकार तथा ६ हजार हिन्दुओं को बन्धो कर लिया। राम की स्त्रियाँ आर्वाबाँध हा उठी और उन्हें बिजय होकर बिजयता द्वारा प्रस्तुत की गयी अपमानजनक शर्तों को स्वीकार कर धानि का क्रय करना पड़ा। सुस्तान ने राजा की कन्या बिबाह किया और सुनार कन्या का बिबाह शाहजादा हुसैन खाँ से कर दिया गया।

इतना सब होने के बाद भी सुस्तान शान्ति से नहीं रह सका। १४२ ई. १ फिरोज ने पगल दुर्ग पर आकारण हो आक्रमण कर दिया जिससे बिजयनगर के साथ पुन युद्ध आरम्भ हो गया लेकिन इस बार सुस्तान का मनचाहा नहीं हो सका। बिजय की हिन्दुओं के पक्ष में रहो। परिणामस्वरूप मुस्लिम प्रदेशों में बरबादी और बिना मृत्यु कर उठ। हिन्दुओं ने मुसलमानों से अपना बचका कैम में किसी प्रकार की कस नहीं छोड़ रखनी चाही।

बहमद शाह—१४२२ ई. में सुस्तान फिरोज शाह की मृत्यु के पश्चात् बहमद शाह सिंहासन का स्वामी हुआ। युवराज हुसैन खाँ को केवल अनुपम सुन्दर सुनार-पुत्री ने ही संतोष करना पड़ा। बहमद शाह ने १३ वर्ष राज्य किया और बारांगल तथा बिजयनगर के बिचड़ नयी बिजयों का सेहरा भी उसके माने बैठा। बिजयनगर के प्रदेशों को लूट तथा उखाड़ करके और मर-सहार के द्वारा फिरोज शाह की पराजय का प्रतिषेध किया गया। १४२५ ई. में बारांगल के ऊपर अनिवार्य हुआ बारांगल का हिन्दू राजा युद्ध में लठ रहा और बारांगल का राज्य बहमनी सुस्तान के बिगाळ उबर में बिलीन हो गया। बहमदशाह न कौकष मालवा और गुजरात में बिचड़ भी अनिर्णीत युद्ध छोड़े। कूरकर्मा यह सुस्तान अपने बिजयोल्लेख को प्रीय न सहार के द्वारा सम्पन्न किया करता था। बहमद शाह न बीबर नमर की नीज डाल और उसे राजधानी का गौरव प्रदान किया। शासन के अन्तिम काल में सेलंगाना में हिन्दुओं ने बिद्रोह करने की असफल चेष्टा की थी। अन्त में १४३५ में इस कूर और निर्ममहृदय सुस्तान की मौत हो गयी।

अन्तःशून द्वितीय—बहमद शाह के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र अन्तःशून न २२ वर्षों तक राज्य किया। आन्तरिक युद्ध कलह पुत्री मलिकहाँ तथा भाई मुहम्मद खाँ के बिद्रोह में काफी उलझन हुई। आन्तरिक व्यथनस्था के निमित्त जब उनमें कुछ बिद्विषियों का प्रोत्साहन और राजकीय सम्मान प्रदान किया तो कलह और असन्तोष बढ़ने के स्थान पर बढ़ते ही गए। एक समय बल्लिभ के अमीरों ने अपने बिद्विषी प्रतिद्वन्द्वियों को सहमोद में आमन्त्रित किया और भोजन के स्थान पर अत्याचार की तलवार तथा बिनाश के घबत न उनका स्वागत किया जिसके परिणामस्वरूप १२०० अभिजात मयद तथा ७ वर्ष के १७ वर्ष तक के जय्य १०० बिद्विषियों की तलवार के घाट उतार दिया गया।

अन्तःशून का जीवन भी खतपात मर-महार की कूर घटनाओं से भरा है।

यद्यपि बारम्भ में उसका अत्यन्त शास्त्र और उदार दृष्टिकोण अपनाया था परन्तु कभी-कभी वह अपने पूजार्थों की नीति का अनुयायी बन गया। भाई मुहम्मद शाह के विजयनगर को सहायता से विद्रोह करके रायचूर, पोभाव, बोबापुर तथा निकटवर्ती प्रदेशों पर अधिकार कर केन्द्र के बाहरी अलाउद्दीन ने मुहम्मद को पराजित कर अमा ही नहीं प्रत्युत रायचूर का प्रदेश जागीर में दे दिया था। कुछ काल बाद ही तय मिरे से सैन्य संगठन और शक्ति सम्बर्धन कर विजयनगरेय देवराय द्वितीय रायचूर प्रदेश पर चढ़ बैठा। अलाउद्दीन ने भी डट कर सामना किया। यमासान मुँह होन के बाद कोई निर्णय नहीं निकल सका। परिक्रान्त तथा 'खुर्रान-ए-मासिर' के लेखक दोनों ने किसी निष्पातमक मुँह का उल्लेख नहीं किया है। हाँ कुछ मास के घरे के बाद दोनों में सन्धि हो गयी और देवराय ने कर देना स्वीकार कर लिया। १४३६ ई. में सुल्तान ने कोंकण प्रदेश को भी हस्तगत कर लिया और वहाँ के हिन्दू राजा की पुत्री से विवाह कर निकट सम्बन्ध की स्थापना की।

अलाउद्दीन के शासन के विषय में फरिस्ता लिखता है कि "उसने अपने राज्य के सभी भागों में सच्चे न्यायाधीश तथा जनता के नैतिक जीवन की रक्षा करने के लिए पदाधिकारी नियुक्त किए। यद्यपि वह स्वयं मसपान करता था परन्तु दूसरों के लिए मसपान तथा आलस्य का नियम कर दिया। उसने प्रमादों तथा आचारा लोगों की घरानों में बजोर बँचबाजी और उनसे सक्कें साफ करने के लिए मजदूरों तथा मेहतारों का काम लिया जिससे वे सुभर कर जोबिका कमान योग्य हो जायें मसबा देश छोड़ कर चले जाय। यदि कोई व्यक्ति चाहे वह भिमा भी स्वर्णि का हो सुभार तथा वितावनी के बावजूद मसिदा पान करता हुआ पकड़ा जाता तो पिचला हुआ चीसा उसके गले में डाल दिया जाता था।

हुमायूँ — सन् १५५७ ई० में अलाउद्दीन का देहान्त हो गया और उसके बाद उसका अप्यष्ट पुत्र हुमायूँ सिंहासन पर बैठा। वह एक अत्यन्त कूर और निरय शासक था। फरिस्ता लिखता है

हुमायूँ शाह ने अपने को कूर प्रवृत्तियों में डूब कर दिया। लोगों को यातनाएँ देने के लिए उसने जीव में लुत्कार हाथियों तथा हिरण पशुओं का प्रचलन कर उबलते हुए तेल तथा पानी के कड़ाहों की व्यवस्था की। उसने अपने भाई हसन को एक भयंकर बीते के सामने फिक्का दिया। बाता उसे निगत गया और स्वयं छत्र पर बैठा बर्तक बना रहा। सुल्तान ने यातनाएँ देने के लिए नय-नय डँग निकाले और मुबकों बूझों पुण्डों तथा स्त्रियों को पीड़ित किया वह छोट से छोट अपराधों के लिए महसूकी परिचारिकाओं को मृत्यु दण्ड को आना देता था। यदि कमी किसी मनीर को उसके नामन उपस्थित होना पन्ता तो वह अपने परिवार से अन्तिम बिदा लेकर जाता था।

डा० ईबरो प्रसाद के शब्दों में "परन्तु इस हृदयहीन शासक का भीमाय था कि उसका लग्न होन महमूद बिन मुहम्मद नाबाग जामिलागो के रूप में जो इतिहास में महमूद गाबा के नाम से प्रसिद्ध है एक ऐसा मन्त्री मिळ गया था जो जीवन के अन्तिम दिनों तक अनन्य भक्ति भाव से राज्य की सेवा करता रहा। उसकी नीतिनिष्ठता का ही परिणाम था कि बहमनी राज्य को बिद्रोही राजाओं से मुक्त करने के लिए सहयोग प्राप्त हो सका और आन्तरिक उपद्रवों का समन-समन किया जा सका। हुमायूँ के शासन-काल को ध्यान आकषित करने वाला बटनामै न तो उसने बिदेसी मुँह है और न शासन

मुघार ही प्रत्युत ग्रासता के वह अथम क्रय हे जिन्हें उसने बर्बरों से निरपरा के साथ सम्पन्न किया था।

प्रायः सभी इतिहासकारों ने उसकी इस अमानवीय क्रूरता की निन्दा की है। 'मुल्तान की क्रूरता सीमा के बाहर तक पहुँच गई थी। सतर्क हुए हथियों की उसी से बासमान के विगर में हजारों छेद ही बाते ने और पीड़ितों के हृदय से निकल चुके थे दिन का प्रकाश धाम के बुलबुले जैसा मीठा समता था। अन्त में अन्त में सन् १५९१ में उसकी मृत्यु से लगातार चार वर्षों से ह्यम-ह्यम करती जनता। शांति की सौंठ थी।

निजामशाह—हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् आठ वर्षों तक निजाम शाह को शासक कोषित किया गया और बयस्क होने तक शासनाधिकार राजमाता महमूद को सौंपा गया। राजमाता ने अपनी उदारता और सीधेपत्ता से अपने पति द्वारा पीड़ित लोगों के मन के बाँधों पर महमूद लगा दिया। उसने निरपराध बन्धियों को कारागार से मुक्त कर दिया और पूर्ववत् पर्वों पर उनकी नियुक्ति की। इससे राजमन्त्रि बड़ बघी। इसी काल में उड़ीसा और टेल्माला के राज बिद्याल सेना केकर महमूद पर चढ़ गये। राजमाता ने अविचलित रूप से सामना किया और सेना के पैर उखाड़ दिये परन्तु युद्ध की असी इति नहीं हुई थी। कुछ दिन बाद ही मासवा का शासक महमूद सिन्धी अपनी सन्धि के कारण बीदर तक पहुँच गया। महमूद की सेना सामना करने नहीं लेकिन 'वह हार जाय बिना गड़रिवा से रहित नहीं के लुब्ध के समान रेगिस्तान की ओर भाग बड़ी हुई। निजाम होकर राजमाता को मुजरात के शासक से सहायता की वर्षना करनी पड़ी तब कहीं मुहम्मद शाह के आक्रमण की विषा परिचित हुई। राजकुमार के विवाह की तैयारियाँ हो ही रही थी कि अकस्मात् राजकुमार निजाम शाह का देहान्त हो गया।

मुहम्मद शाह तुर्की—निजाम शाह के देहान्त के पश्चात् बगीरों तथा अन्य पशाधिकारियों ने उसके भाई मुहम्मद शाह को शासक मनोनीत किया। कुछ दिनों बाद राजाजहाँ पर मनियोग लगा कर उसकी हत्या कर दी गयी और शासन की बागडोर महमूद शाह के हाथों में आ गयी। उसने अत्यन्त योग्यता और दूरसततापूर्वक राज्य संशासन किया। उसने समित संघर्ष और व्यवस्था स्थापित करने के प्रयास किये तथा राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। उसने कोंकण के राजा से मिलकर राज्य लिया और उड़ीसा गोरों को कर देने पर विवश किया। निजामशाह का दुर्ग सीन के नवाबों बख और कजीवरम् पर अधिकार हो गया जिसके फलस्वरूप अपार भराभि उसके हाथ लगी। इसी समय महमूद ने एक सर्वकर दुमिल पड़ा जिसने राज्य को गहरी छवि पहुँचायी।

१५७० में कस्ती सीबागार एकनसियस निकितिंग बीदर जाया और जमन महमूद राज्य के विषय में अनेक जासब्य बातें धिखी।

महमूद शाह ने राज्य विस्तार के साथ-साथ शासन-व्यवस्था की ओर भी समुचित ध्यान दिया। उसने राज्य के शासन सम्बन्धी प्रत्येक विभाग में अमलपूर्ण सुधार किये और उनका तत्पक्ष प्रवर्धन किया। अष्टाचार की कठोरतापूर्वक समाप्त करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार महमूद ने राज्य की स्थिति बृद्ध करके में विषी प्रचार की कोई कोरसर नहीं उठा रची।

महमूद गाबी—इसके पूर्व कि बहमनी राज्य के परवर्ती शासकों का वर्धन क्या जाय हम अपन पाठकों को महमूद गाबी के विषय में कुछ बता देना चाहते हैं।

मध्य क्रास के राजनीतियों और प्रशासकों में महमूद गाबी एक उच्च और विविष्ट स्थान का अधिकारी है। बहमनी राज्य में १८० वर्षों के जीवन काल में मैकलीन गोरी और महमूद गाबी ही दो नृपति और प्रतिभाशाली प्रशासक हुए जिनमें महमूद निर्विवाद रूप से महान ठहरता है।

गाबी के पूर्वज क्रास में गाबी नामक स्थान के निवासी और गिन्न के गाह के मन्त्री थे। युवावस्था में महमूद गाबी व्यापार के निमित्त भारत आया और अमन करता हुआ दक्षिण पहुँचा। मुस्तान हुमायूँ से उसका परिचय हुआ और मुस्तान ने उससे प्रभावित होकर उसे उच्च पदाधिकारी बना दिया।

महमूद गाबी ने लगभग २५ वर्षों तक बहमनी मुस्तानों की सेवा की। इस अवधि में उसने अपनी पूरी सामर्थ्य पूरी कुशलता और पूरी प्रतिभा बहमनी राज्य को सुदृढ़ करने में लगा दी। राजनैतिक दलों को कीचड़वासी से मुक्त रह कर उसने दिन-रात राज्य के मयस की विमता की। उसने राज्य की सीमाओं का प्रसार किया। बैलगाँव का दुर्ग गोशा तथा कोडपल्हा पर अधिकार किया और कांजीवरम् पर भी विजय पताका फहरायी। कोंकण को राज्य में आत्मसात करने से बहमनी राज्य के घासित भू-भाग में बाकी बूटि हो गयो। एक ओर यदि महमूद गाबी ने अपन अभिमार्गों द्वारा राज्य की पश्चिम विस्तृत की तो दूसरी ओर उचित शासन-व्यवस्था के द्वारा विद्यान राज्य के शासन में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों की सम्भावना का भी निराकरण कर दिया।

महमूद गाबी ने प्राण्ठों का महीन संगठन किया। प्राण्ठों के अधिकारि मन्त्रियों के अधिकार सीमित कर दिये। दलितों का बेलन बड़ा दिया गया और राजकीय कोष से मदद देने की व्यवस्था हुई। उच्च पदाधिकारियों को जागीर देने की प्रथा बन्द कर दी गई। भूमिकर की सुगुनित व्यवस्था के लिए गाँवों की भूमि को मय सिरे से नाप जोल करायी। इसके अतिरिक्त महमूद गाबी ने प्रायः प्रत्येक विभाग में महत्वपूर्ण सुधार किए।

महमूद गाबी एक असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्तित्ववाला व्यक्ति था। राजकीय अनुसंधान-स्वीकार करने के पश्चात् उसने निःस्वार्थ रूप से अपना जीवन राज्य के हितों की रक्षा में समर्पण कर दिया। इतने बड़े पद और अधिकार का स्वामी होत पर भी प्रतिदिन १२ 'लड़ियाँ' व्यय करने वाले चट्टाई पर शयन करने वाले मिट्टी के पात्रों में आहार ग्रहण करने वाला और सारा जीवन उच्च विचार के निद्रान्त की कार्यात्मक स्वरूप प्रदान करने और सामान कार्य से निवृत्त सर्गों में औरर में अपने प्रामाद में १०० पुस्तकों के मध्य जीवन व्यपन करने वाले महमूद गाबी का स्मरण करते हृदय में उनसे प्रति भडा हो जाती है।

दुश्मनर की राति की वह नगर के उपनगरों का छापेप में चकर लगाता निर्पत्नी और अगहायों पर दया और सहायता के फूस बिगलता तथा दीप समय राज कीय कार्य की विमता में लगता हुआ भी बलाकारों विद्वानों और साहित्यिकों की प्रोत्साहन देता तथा पुस्तकें संग्रहीत करता। वह स्वयं भी रचनाकार था। फरिदा के रूपना नुसार उसने 'दीवान उम्-इगा तथा 'दीवाने अम नामक दो ग्रन्थों की रचना की थी। इनमें उनके बुद्धिबल का अनुमान लगाया जा सकता है।

बीर की राजसभा में होने वाले क्रूर कर्मों पर संहारों तथा विनाशिताओं से क्रूर जगत् के हित के सम्मुख किसी सुखों की अपेक्षा करने वाले इस मन्त्री का पवित्र एवं संयमित जीवन सम्पूर्ण प्रशंसनीय है।

लेकिन जिस बहुमनी राज्य की उत्पत्ति के लिये महमूद गाना में अपनी बैठन। की समुची ताकत सभा की और अपने जीवन के सभी सुखों को राजकीय सेवा की नशि बेरो पर समर्पित कर दिया उस राज्य के सुल्तान ने उसकी इन सेवाओं और अटप राजसक्ति का जो पुरस्कार उसे दिया वह महमूद गाना के लिए स्वयं सुल्तान के लिए और यही महमनी राज्य के लिए बहुत महंगा पड़ा। महमूद गाना के अधिकार, उसके प्रभाव और उसकी लोकप्रियता ने दक्षिणी अमीरों के हृदय में ईर्ष्या और जलन की भावनाएँ पैदा की। परिचायस्वरूप एक पदचक्र रख कर एक मिथ्या एवं छद्मकार कर उसको राजद्रोह का अभिवोदी ठहराया गया। महमूद गाना ने अपने को निर्दोष सिद्ध करने की मरसका बैट्टा की और यही तक संकेत किया कि एक निरपराध व्यक्ति को पण्डित बना भविष्य में राज्य के लिए अमंजसफाई सिद्ध हो सकता है लेकिन उसका कहना व्यर्थ रहा। सुल्तान ने संकेत किया और अत्यन्त राज्य मरस महमूद गाना का दोष मूलच्छित हो गया। महमूद के इस क्रूर वध के उपरान्त सुल्तान की इस पदचक्र का पता लगा लेकिन अब क्या हो सकता था। वह ठिग पीन कर रहा गया।

महमूद की मृत्यु के पश्चात् ही राज्य के ऊपर विनाश के काले बादलों। उमड़-बुझ से आकार परिलक्षित होने लगे और चीख ही महानाश का आघार उम पड़ा। वर्ष भर बाद ही पश्चात् जगति से संवत्स सुल्तान ने मारमहत्वा कर ली की राज्य में अव्यवस्था तथा अराजकता के अङ्कुर पल्लवित हो उठे।

महमूद गाना की शोकर बहुमनी ने अपना भविष्य छो दिया था। शीघ्र ही टकर ने उचित ही धिक्का है कि उसके उठ जाने से बहुमनी राज्य की एकता भी पण्डित टिरोहित हो गई और वह दिन दूर नहीं रहा जब बहुमनी राज्य का पतन हो गया।

महमूद गाना—१४८२ ई. में सुल्तान की मृत्यु के उपरान्त उसका राज्य बर्फीय पुत्र विहायनाशीन हुआ। वह एक बिलामी और दुराचारी साधक था। शासन व्यवस्था का मार मर्का करीब के हाथों में लीप कर वह अपनी विनाशिता दुराचरन और ऐय्याधी में डूबा रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि अपने सामक का अनुकरण कर प्रजा भी विनाशनीन हो गई। "सम्मानित शासक दुराचारी में अपने बर्फी को डूबाने लगे और समीपवर्ष विनाशकों की स्थान कर दुराचारी में जो पक्षी और पाल भीटिनी का समीपवर्ष स्विकार करने लगे। राज्य की इस स्थिति का सम भी चीख ही सामने आया। राज्य पण्डित में बुल लगा तथा उसकी निर्बल दैवकर मान्तीय साधक की बन मायी और से एक के बाद एक करके अपनी स्वयंजता की चोरमा करन लगे। स्वयंजता के इस मान्तीय का उद्घाटन किया बरार के पवनर कीइ उसका इनाम पाद ने जिसने सर्वप्रथम अपनी भावार्थ का ऐलान किया। समुद्र बाधित गाना ने बीजापुर में स्वयंज राज्य की स्थापना की। उसने पश्चात् अहमद नगर के मान्तीय साधक मलिक अहमद ने अहमदनगर में स्वयंज राज्य की नींव डाली। इसी प्रकार बीजपुर में स्वयंज राज्य बाधन हुआ। १५१८ ई. में बहुमनी साम्राज्य के साधक महमूद गाना के पश्चात् साधकों का नाम विनाश के लिए हो लीन

बीर शासक बहमन हुये लेकिन वे नाम मात्र की ही शासक थे। अन्तिम शासक कबीर उस्ता की मृत्यु के पश्चात् भारतीय इतिहास के रंगमंच से बहमनी राज्य-वंश की हथि हो गयी।

बहमनी राज्य का विस्तृत प्रदेश निम्न पाँच स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया —

- १—बेरार में इमादशाही राज्य-वंश का राज्य
- २—बोम्बेपुर में आदिलशाही वंश का राज्य
- ३—बहमनगर में निजामशाही वंश का राज्य
- ४—गोवर्गुडा में कुतुबशाही वंश का राज्य
- ५—बीरार में बरीदशाही वंश का राज्य

बहमनी राज्य के शासन पर एक विह्वल दृष्टि

आयोगित हत्याओं, भीषण नर संहारों विभिन्न प्रदेशों की कुरतापूर्वक छूट मार धार्मिक दृष्टि से अत्याचारों समय-समय पर होना बाँके अमीरों के पक्षधरों राजसभा में विभाजित के मन्त्र मूर्तों तथा अनन्त रक्तपात से युक्त बीरकालीनमरम्भरा बड़ मुठों से रचित बहमनी राज्य में १८० वर्षों के इतिहास में १४ सुल्तानों ने राज्य किया। इनमें अधिकांश शासक सामरिक प्रवृत्ति के थे और रक्तपात करने धार्मिक असहिष्णुता के सिद्धांत होकर बेबाकियों को ध्वंस कर देने और विभिन्न प्रदेशों में बर्बाद मृष्टिक सामर प्रवाहित कर देने में आनन्द का अनुभव करते थे। शासन व्यवस्था में 'मुहम्मद नबी के पूर्व कोई भी महत्त्वपूर्ण प्रयोग नहीं किया गये। हिन्दुओं के प्रति कभी भी उदार नीति का प्रयोग न कर सकने के कारण उन्हें केवल छोटे-छोटे ही पद दिये गये। कबीर सौदागर निकटिन ने उल्काहीन स्थिति का अच्छा चित्रण किया है। उसके वर्णनानुसार देश बना बना था। कृषि की व्यवस्था संतोषजनक थी। शहर देश में शांति तथा सुख्यवस्था थी। राजमार्ग बाहुओं और बोरों के भय से मुक्त थे। निकटिन को वहाँ एक और वंश सम्पन्न राज्य बरजार के ऐश्वर्य तथा अमीरों की अपार जन सम्पत्ति ने आकर्षित किया था वहीं निर्धन और असहाय प्रजा की विपत्तावस्था पर भी उसका ध्यान गया था और उसने इन दोनों की ही अपनी पुस्तक में स्थान दिया।

इन यह जानकर आश्चर्य होता है कि बहमनी और विजयनगर में बीर काल तक पीढ़ी पर पीढ़ी मुठ चलने के बावजूद भी पीढ़ों का स्वायत्त शासन पूर्ववत् चलता रहा और शमीन क्षेत्र मुठों के प्रभाव से अछूता रहा। विजयों में ही अपार जन राशि की प्राप्ति हो गया करने के कारण किसानों के ऊपर कभी भी मुठ कर नहीं लगाया। यह नहीं कि बहमनी राज्य के किसानों के प्रति ही यह धान्त व्यवहार किया जाता ही बल्कि विभिन्न प्रदेशों के किसानों से भी अनृष्टित छेड़छाड़ नहीं की जाती थी। मुहम्मद नबी की नयी सगान व्यवस्था के अनुसार किसानों की स्वेच्छानुसार नगद या अनाज के रूप में कमान देने का अधिकार था। बहमनी राज्य के शासक क्रूर और निर्दय अक्षय थे लेकिन प्रजा की हित-चिन्तन की ओर से उन्होंने विस्तृत नाल बन्द कर सी ही यह बात नहीं थी। उन्होंने साहित्यकारों तथा कलाकारों को आश्रय दिया किसानों के लिए सिंचाई की सुविधायें प्रस्तुत की कुमिल काल में सहायता का प्रयत्न किया तथा धार्मिक जीवन के लिए प्रत्येक गाँव तथा नगरों में मस्जिदों का निर्माण कर कर शिष्टोपदेश के निमित्त मुस्लिमों की नियुक्ति की गयी। बहमनी वंश के

भारतीय इतिहास

सासक यद्यपि बस्तुकला के बहुत बड़े संरक्षक न थे फिर भी बीबर के मध्य प्रान्तों तथा खासीपड़ तथा नएस्सा जैसे कुछ जगों की इतिहासकारों ने प्रशंसा की है। सारांश में यही कहा जा सकता है बहमनी बंध के सुस्तान न तो महान मीरान के बराबर हैं न उन्हें सर्वथा मीरान से बंथित ही किया जा सकता है। जैसा कि डा० ईश्व प्रसाद ने लिखा है, 'मीरान टैलर ने बहमनी सुल्तानों की जो मुक्त कण्ठ से प्रशंसा है उसका समर्थन करना कठिन है। परन्तु प्रसिद्ध विद्वान् विसेष्ट स्मिथ के भी प्रशंसीय भारतवर्ष के इतिहास में उनकी जैसी निम्ना की गई है उसकी मान लेना भी जल्गना ही कठिन है।

बहमनी राज्य के इतिहास पर ध्यान देने पर पतन के प्रमाण हमारे सामने आते हैं।

बहमनी राज्य के इतिहास पर ध्यानपूर्वक दृष्टिपाठ करने से पाठकों को उसके पतन के प्रथम कारणों का स्पष्ट पता लग जायेगा। यूँ तो किसी भी साम्राज्य के उदय-पतन के अनेक कारण हुआ करते हैं। लेकिन बहमनी साम्राज्य के पतन के प्रथम कारणों में प्रथम तो विवेदी और इतिासी अमीरों का पारस्परिक वैमनस्य था जो कभी-कभी आपत्त भयंकर रूप धारण कर लेता था। इस पारस्परिक वैमनस्य परिणाम यह हुआ कि बगीचों की राजस्थिति में गहरा बन्का पहुँचा और अपने हितों के सम्मुख राज्य के हित पीछे हो गये। आन्तरिक कलह और संघर्षों में नरे हुये बहमनी साम्राज्य के लिए महमूद शाही के वध न सवार पर बहुत हुये व्यर्थ के लिए जबरजस्त बन्के का सा काम किया। महमूद शाही की मृत्यु के पश्चात् राज्य की स्थिति बाधा दीव रूप से डार्डीभक्त हो उठी और मुल्क में फिर कभी भी वह वैभव नहीं सकी। राज्य में प्राणियों के व्यापक करके जाने लगे। अनेक का शिल्पिका सा वैभव पड़े हुए चारों ओर लगे निवासियों के घरों में हुये हुये महमूद शाह ने ही अपने आगरा राज्य की वास्तव-अवस्था की ओर से एकत्र भाँटें बन्द कर देना राज्य के पतन को आगमन देता है जिसका परिणाम सीधे ही सामने आया और निराश बहमनी राज्य के लक्ष्म-वन्द हो गये। अब आते हम इसी राज्यों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

बराद

इस ऊपर बताया जाये है कि
बागदाद के बाद

बराबर

इस ऊपर बताया जाये है कि बहुमती राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना करने में बरार ही प्रथम था। १४८४ ई० में बर्नर फतेहगढ़वा न बहुमती से सम्बन्ध विच्छेद कर जयन की घोषित कर दिया था। इस बीच का पालन १५७५ ई० तक चलता रहा। इसके बाद यह निजामशाही राज्य में पिना सिमा गया।

बरार के स्वतन्त्रता की नींव बीजापुर

बीजापुर

बीजापुर
मराठे स्वराज्य की नींव डालने के बाद वर्षों बाद ही बीजापुर भी महाराष्ट्र राज्य के अन्तर्गत आ गया। मुगल आधिपत्य के दौरान बीजापुर भी मुगल आधिपत्य के अधीन आ गया। मुगल आधिपत्य के दौरान बीजापुर में मुगल शासकों का शासन था। मुगल आधिपत्य के दौरान बीजापुर में मुगल शासकों का शासन था। मुगल आधिपत्य के दौरान बीजापुर में मुगल शासकों का शासन था।

किन् बिजयनगर के विरुद्ध लड़े गये मुठों में उसकी घातघार विजय हुई। रामपुर न प्रवेश बिजयनगर से छीन लिया गया। १५३४ ई० में प्रथम इब्राहिम आदिल-शाह शासक हुआ। उसने अहमदनगर, बीदर, तथा बरार से टपकर भी और उन्हे पराजित किया। १५५७ ई० में इसकी मृत्यु हो गयी और अलीआदिल शाह शासक बना। १५५८ ई० के उसने बिजयनगर की सहायता से अहमदनगर पर आक्रमण किया और उसके अनेक प्रदेशों को ज्वाड़ फेंका। इसके पश्चात् बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीदर के चारों राजाओं ने संघ बद्ध होकर बिजयनगर पर चढ़ाई की और २३ जनवरी १५६५ ई० को ताळीकोट के मैदान में बिजयनगर की किस्मत का प्राविष्ट फैसला सिद्ध किया गया। बिजयनगर बुरी तरह पराजित हुआ और भस्म हो गया। अली आदिल शाह ने अहमदनगर की राजकुमारों चार बीबी के साथ विवाह किया था जो १५०९ में पति के वध कर दिये जाने के पश्चात् शासक इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय की संरक्षिता नियुक्त हुई। १५८०-१६२७ ई० तक की बोर्ष अवधि का शासक इब्राहिम आदिल शाह बीजापुर का सर्वाधिक प्रतिभाशाली शासक था। इसके उपरान्त मुहम्मद आदिलशाह ने जो १६२७-१६५९ ई तक अत्यन्त सफलता पूर्वक शासन किया। इसके समय में बीजापुर राज्य की सीमायें काफी दूर तक विस्तृत थीं। १६३५ ई० में शाहजहाँ ने बीजापुर पर आक्रमण किया और काफी क्षति पहुँचाई थी। १६५५ में सिवाजी ने बीजापुर के मुस्तान को गहरी हार दी और १६८५ ई० में औरंगजेब ने उसको समाप्त कर दिया।

अहमदनगर

१४९८ ई० में अहमदनगर में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना मलिक अहमद ने की। उसकी मृत्यु के बाद १५९९ ई० में बुरखान निजाम शाह यहाँ पर बैठा और उसने १५५३ ई० तक राज्य किया। यहाँ पर बैठने के समय वह अस्वास्थ्य का एक क्रिदोर था। बड़े होने पर उसका विवाह बीजापुर की शाहजाबी से हुआ था। उसने बिजयनगर के राज से मिलकर बीजापुर पर आक्रमण किया था। उसके पश्चात् हुसैन शाह शासक हुआ जिनने बिजयनगर के विरुद्ध बने संघ में भाग लिया था। इतिहास-प्रसिद्ध नायिका चौद बीबी इसी हुसैन शाह की कन्या थी जिसका विवाह बीजापुर के मुस्तान अली आदिल शाह के साथ हुआ था। पति की मृत्यु के पश्चात् वह पुन अहमदनगर चली गई। १६०० ई० में राजकुमार मुराद ने एक विद्रोह उठा लेकर अहमदनगर पर आक्रमण किया तो चौद बीबी की बोरता उसके साहस और रण-कीपक में मुरादों की बाँटी तक पहुँची, यहाँ पर विरत कर दिया। राजकुमार को घाँव करनी पड़ी लेकिन १६०० ई० में चौद बीबी की मृत्यु हो गयी और शाही सेना ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया।

गोलकुण्डा

कुतुब शाह इसका संस्थापक था। कुतुब शाह पहले तेलंगाना का गवर्नर था। वह राजभक्त गवर्नर था लेकिन बहमनी मुस्तान के मन्त्री कासिम बरिद ने बयनस्य हो जाने के कारण १५१८ ई० में स्वतन्त्र हो गया। ९० वर्ष की अवस्था में उसके पुत्र जमशेद ने उसका वध कर दिया। १६१९ ई० तक चलने वाले इस राज्य बंधन औरंगजेब ने अंत कर दिया।

बीदर

बहमनी राज्य के पतन काल में शही-छाने राज्य की समस्त शक्ति मन्त्री कासिम,

कापटीय इतिहास

बायीर के हाथों में केन्द्रित हो गयी थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र जमीर बायीर के मन्त्रित्व का भार संभाला। वह जबसर की तरफ में रहा और जब बहमनी बंस का अन्तिम सुल्तान कबीमउल्ला बीजापुर भाग गया तो १५२९ ई० में जमीर ने अपने ही बीबर का शासन स्थापित कर लिया। इस बंस का शासन अन्य राज्यों की अपेक्षा कम-कम तक रहा। १६०९ ई० में बीजापुर राज्य में मिना किया गया।

खानदेश

खानदेश

राणी नदी की घाटी में स्थित खानदेश एक छोटा-सा राज्य था जिसके उत्तर में
 सिन्धुपाषाण की ईंध यंत्रियाँ दक्षिण में इलिज के पठार और बहुमती का राज्य पश्चिम
 में गुजरात और पूर्व में बरार राज्य था। इतिहास के विद्वानों को हमेशा होता कि
 असाधारण ग इधर अपनी विजय ईज्जती उठावी की और उधे से खिरो मुपतक
 मानदेश का शासन जपन मिजी सेवक गतिर रजा की सीपा और उधे काश्मीर जर्दि
 भायपासी की उपाधि थी। खिरो की मृत्यु के बाद दिल्ली राज्य में बलवस्था आप
 बरतार और बिरोही की जो मर्बतर बाधियाँ बनीं उनकी पुनरुपति करना बल होपा।
 मसिर रजा ने दिल्ली की इस मुकुरत बाधियाँ बनीं उनकी पुनरुपति करना बल होपा।
 रजा का बलकरन करते हुए जपन की खानदेश का स्वतंत्र शासन कोयित कर दिया
 और दिल्ली से जपन ईज्जतिक सम्मान पाठे किए।

[illegible]

सालवेस युग का शक्ति का एक अंग बन गया।
 के कारण आपसिक प्रतिष्ठा का। गुप्तकाल के शासन-काल में सालवेस ने पर्याप्त
 व्यापारिक उन्नति की। उर्ध्व बभ्रुयुक्त और बुद्धांतपुर का सोने की पाखी का काम
 बना मयमल का शरीर सालवेस में उन विशेष कला की बर्ण कर रहा था। इस प्रकार
 सामान के पूरे रत्न राज्यों से मिले रहने पर भी सालवेस अपने पड़ोसी राज्यों के
 सामान में भी एक शक्ति से पर्याप्त समृद्धिवादी था। उसका विविधता के बिना भी
 सालवेस इस शक्ति का अर्थ उदाहरण है कि राजनीतिक कला के प्रयोग के बिना भी
 किस प्रकार किनी राज्यों में सुनो और समृद्ध जीवन सम्भव हो सकता है।

भाग २ बिजयनगर साम्राज्य

बिजयनगर साम्राज्य की स्थापना—पाठकों को स्मरण होना कि भारत में इस्लाम के आगमन के बाद काफी समय तक सुरक्षित पश्चिम के हिन्दू राज्यों को खिस्ती सुल्तान अछावहीन के सेनापति मुस्लिम काफूर ने अपने सशक्त अभियानों के द्वारा छिन्न मित्र कर दिया था। यादों काफ़ीयों होयसकों तथा पाण्ड्यों ने एक के बाद एक मुस्लिम सत्ता के सम्मुख खिर झुका कर उसको अपना अधिपति स्वीकार कर लिया था। पश्चिमी तट पर स्थित केरल राज्य भले ही इस विधा में एक अपवाद बना रहा। परन्तु मुस्लिम सेनाओं के पश्चिम अभियानों ने रक्तपात कूट-मार मौत और बरबादी का ताण्डव नृत्य कराते इन विविध प्रदेशों की स्वतन्त्रता का अपहरण अवश्य किया और इन प्रदेशों के नरेशों ने हिस्सी सुल्तान का स्वागित्त भले ही स्वीकार किया परन्तु बनार वन राखि की उपलब्धि करन और बिजेया होने का गौरव अनुभव करने के लिये हिस्सी के सुल्तानों ने इन राज्यों की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था करन की विधा में कोई महत्वपूर्ण चरण नहीं उठाया। वे हिस्सी से बुरख इन प्रदेशों को शासन की दृष्टि से बर्नरों के हाथों में सौंप कर और समय-समय पर सैनिक सहायता तथा वार्षिक कर माग प्राप्त करके समुष्ट से रहने लगे। हिस्सी सुल्तान के प्रतिनिधि शासकों ने अपने-अपने प्रदेशों में जिस मनचाही नीति का प्रयोग किया उससे वे लौक-प्रिय नहीं हो सके। “काफ़ीय तथा होयसक राज्यों के अन्तिम समुद्रम से पहले उनके राजाओं प्रतापकर द्वितीय तथा और बल्लास तृतीय ने एक ऐसी व्योधि जगा दी थी जो बिजयनगर के पतन से पहले कभी नहीं कुछ सकी।

मुहम्मद तुगलक के अन्तिम दिवसों से ही हिस्सी राज्य ने अराजकता अव्यवस्था तथा बिद्रोहों की स्थिति का सामना करना प्रारम्भ कर दिया था। राज्य को इसी अराजक स्थिति से नाम उठाकर १३३५ ई. में बल्लानुदीन बहल्लानशाह ने बिद्रोह करके मद्रास में स्वतन्त्र राज्य बंध की स्थापना की जिसका अनुकरण करते हुए अगले वर्ष ही वादबन्धीय संघम के पुत्र ने इतिहास-प्रसिद्ध बिजयनगर साम्राज्य की नींव डाल दी। इस महान राज्य की उत्पत्ति के विषय में ‘ए फारगटन एम्पायर’ नामक ग्रन्थ में लीवेल ने जिन सात अनुधृतियों का उल्लेख किया है उसमें सर्वाधिक विद्वत्त सनीय अनुधृति के अनुसार हरौहर तथा बुक्का नामक दो भाइयों को इस साम्राज्य की स्थापना का श्रेय है। बार्दगल भरेख प्रतापकर के कोषाचार में नियुक्त ये दोनों भाई १३२३ ई. में बार्दगल के पतन के पश्चात् रायचूर प्रदेश के अनाबोडी के शासक की सेवा में गये। परन्तु दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा और पीछे ही अनाबोडी के दो मुसलमानों द्वारा आक्रमण किये जाने पर वे दोनों भाई बन्दी करके हिस्सी भेज दिये गए। लेकिन रायचूर में मुस्लिम शासकों द्वारा धान्ति और मुख्यतया स्थापित नहीं हो सकी। परिणाम-स्वरूप तुगलक सुल्तान ने उनको अपना प्रतिनिधि बना कर अनाबोडी का शासक बना कर इन्हें सौंप दिया। इन्हीं दोनों भाइयों ने प्रसिद्ध विशाल विद्यारण्य की सहायता से १३३६ ई० में तुंगभद्रा के तट पर बिजयनगर की स्थापना की। नगर की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए एक गुरुद्व द्वय का निर्माण भी किया गया। “तुंगभद्रा के किनारे पर, अनाबोडी के सामने सात मार्गों से रक्षित जिन कुणों का निर्माण किया गया था उसका प्रयोजन अथवा की उभ घनितियों का अवरोधन करना था जिन्हें म्पच्छों ने सारे देश में बिगेर दिया था।” हरिहर हम नय राज्य का प्रथम शासक था जिसने १३५३ ई० तक शासन किया।

भारतीय इतिहास

हर्षिहर—शासक पद प्राप्ति के बाद हर्षिहर ने विद्य कार्य की ओर प्रमुख रूप से ध्यान दिया। वह पा राज्य की सीमाओं का विस्तार। उसने साहस के साथ इस विद्या में बरत बड़ाया और परिस्थितियों ने उसका साथ दिया। ११४० ई० तक उसने कोकन का कुछ प्रदेश और माकावार का समूह छत्र किया। ११४० ई० में मूलभूतानों का बहिष्कार से उन्नाह फौज के लिए बार्देस के शासक पूर कृष्णनाथक ने ज्ञा सच बनाया था हर्षिहर ने उसमें भी साथ किया था। ११४६ ई० में होयसल का राजा विष्णुनाथ बल्लास मयूर के सुल्तान से मूक करते हुये भारत गया और बहिष्कार में दिल्ली सुल्तान का प्रमाण साधनाम बा इस स्थिति में हर्षिहर को होयसल सहित मिला। उसमें भी साथ किया था। ११४६ ई० में बहिष्कार करके भारत और बिजय पर विजय प्राप्त करते हुए हर्षिहर ने अपने मृत्यु काट ११५१ ई० तक बिजयनगर राज्य की सीमाएँ उत्तर में कृष्ण नदी से लेकर बहिष्कार में जावेरी तक तथा पूर्व पश्चिम में समुद्र से समुद्र तक पहुँचा था। उत्तर में बहुमती का विस्तृत साम्राज्य था। दोनों राज्यों की सीमाएँ अत्यन्त निकट होने के कारण साम्राज्यवाद को शीघ्र से दोनों एक दूसरे की कट्टर प्रतिद्वन्द्वी समझते थे जिसके परिणामस्वरूप २०० वर्षों से या बहिष्कार का एक बहिष्कार मूक परम्परा स्थापित हुई गयी। दोनों राज्यों की ओर से टकराव था जिस रक्तपात मृत्यु, विप्लव, मरणहार तथा प्रदेश उन्नाह कर देने वाली जिस विधिकी को जय देती थी उसकी पुनरावृत्ति यहाँ बाध स्पष्ट है। पाठक उसे बहुमती राज्य के वर्तन में एक चुनौती है। एक कुशल शासक की स्थिति से हर्षिहर ने प्राचीन का नियोजन कर उन्हें कुशल और अनुमती व्यक्तियों को साथ दिया।

बुक्का—हर्षिहर की मृत्यु के पश्चात् बुक्का बिजयनगर का शासक हुआ। हर्षिहर की नीति वह भी एक कुशल सेनानायक तथा शासक था। वह एक उत्तम हथक तथा बर्त-सहित शासक था। उसने जंगों तथा वैभवों के पारस्परिक संपर्क को बढ़ाया था। एक योद्धा की हैसियत से उसने बुद्धिमत् साह तथा बुद्धिपूर्वक शास सौदा भी किया था। अभिलेखों के अनुसार वह तीन समूहों का अधिपति था। बीज के सम्राट् ताड-रु के दरबार में अपना हुन मंत्र कर बीज के सम्मेलन स्थापित किए थे। शासकियों में बुक्का की आधिकारिक प्रशंसा की गयी है। ११७७ ई० में बुक्का की मृत्यु हो गयी।

हर्षिहर द्वितीय—बुक्का की मृत्यु के पश्चात् हर्षिहर द्वितीय सिंहासनाब्ध हुआ और उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। इसके पूर्व के हर्षिहर प्रथम और बुक्का दोनों ने राज्यभूत नहीं धारण किया था। इस के पूर्व के हर्षिहर प्रथम शासक मूहम्मद साह द्वितीय था जो एक छात्रिय शासक था। हर्षिहर द्वितीय एक शालिग्रामी और बर्त-सहित शासक था। बिजयनगर साम्राज्य की सुदृढ़ बनाने तथा सीमा विस्तार के पूर्ववर्ती शासकों की नीति को जारी रखा। उसने केवल लक्ष्य शासक तथा कट्टर के राज्यों को जीतकर राज्य की सीमाओं की काफी दूर तक पहुँचा दिया। बुक्का सेनापति पुन एक रक्तपात और पराक्रमी व्यक्ति था। हर्षिहर की अपनी प्रजा के हितों का आधिकारिक ध्यान रखा था। मन्त्रियों तथा सेनाकर्मी के नियंत्रण के लिए विषय बत से हुये उसकी समुद्रपथ और उत्तरात्ता का परिचय मिला है। १४४६ ई० में हर्षिहर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र राजा हुआ लेकिन वह भी ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

देवराय प्रथम—इसके अगलर देवराय प्रथम सिंहासन पर बैठा। देवराय को बहमनी शासकों से कई बार युद्ध करना पड़ा था। इन युद्धों में फिराज शाह ने उसे करारी भाव से बितसे विषा होकर देवराय को आत्मसमर्पण बचकर शान्ति और व्यवस्था कल्प करनी पड़ी। १४१० ई० में देवराय की मृत्यु हो गयी।

विजय राय—देवराय प्रथम के परसोकगामी होने के बाद उसका पुत्र विजयराय का राज्याभिषेक हुआ। इसमें केवल ९ वर्षों तक राज्य किया। इसके शासन काल में कोई उत्सेयनीय घटना नहीं घटी।

देवराय द्वितीय—विजय राय की मृत्यु के पश्चात् १४१९ ई० में देवराय द्वितीय राजसिंहासन पर बैठा। इस नरेश का जीवन ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण था कि ग्राम' सारा जीवन उसे बहमनी से युद्ध करते और लालि उठाते बीता। शासन के प्रारम्भिक काल में फिरोज शाह ने अकारण उसे युद्ध करने पर लाचार कर दिया परन्तु देवराय ने भी उसे कड़ा उत्तर दिया और बुरी तरह परास्त किया। परन्तु २४ वर्ष बाद फिरोज शाह ने उत्तराधिकारी महमद शाह ने विजयनगर पर आक्रमण कर फिरोज शाह की पराजय का पूरी तरह बदला ले लिया और कई दिनों तक उसने स्त्री-मुर्खों सिपाहियों-बूढ़ों के बन्धू बेटमार और विनाश का जो भयंकर नाटक खेला उससे उसकी क्रूरता निर्ममता तथा अमानवीयता का सहज ही पता लगाया जा सकता है। उसके शासन-काल में दो विदेशी इटाली काउन्ट निकोलो कोन्टी तथा फारसका राजदूत अयूरज्जाक विजय नगर आये थे। इन विदेशी यात्रियों ने विजयनगर की राजधानी राजधानी तथा राज्य बीज का आकर्षक वर्णन किया है।

निकोलो कोन्टी ने लिखा है—

“विजयनगर का अति विद्यालय नगर बालू पहाड़ियों के निकट स्थित है। इसकी परिधि ६ मील है। इस नगर में प्रायः ९० हजार व्यक्ति घर-बागन में मर्ब हैं। इस देश के निवासी स्वेच्छानुसार कई विवाह करते हैं। स्त्रियाँ मृत पति के तब तक ही बसती हैं। यहाँ का राजा सर्वाधिक धनियशाली है।

“यहाँ के राजा के अगल पुर में १२ हजार स्त्रियाँ हैं जिनमें ४००० तो उसके तब प्रत्येक स्थान पर जाती हैं। इनसे रसोई का काम किया जाता है। इतनी ही भीड़ों १२ हजार होकर उसके पीछे बसती हैं जिनमें दो-तीन हजार इस सभ्य पर उसकी पत्नियाँ भी जाती हैं कि उससे मरने पर वे छठी हो जायेंगी।

“वर्ष में एक बार वे अपने देवता की ‘रमयात्रा’ नगर में अत्यन्त समारोह के साथ निकालते हैं जिसमें बहुमुख्य वस्त्रालंकारों से सुश्रित मुर्तियाँ देवता की प्रशंसा करने के लिए स्तुतिवाक्य करती हैं। बहुत से लोग जादिक उरसाह के जर्म में बाफर रसकों के लोके फिर कर प्राण दे देते हैं। इसे वे देवता की प्रशंसा करने वाली विधि मानते हैं।

विजय महारथुर्ष उसका वर्ष में तीन बार मनाये जाते हैं। इनमें एक अगल पर वे सुश्रित वस्त्रों में तीन दिन मृत्यु-जीत तथा गहनोत्सव में बिताते हैं। प्रायः अगल पर वे मन्दिरों तथा अपने गृहा की छतों पर गरमों के तेल के दीपक जलाते हैं। तीसरे उत्सव पर परापर एक दूसरे पर कमर का रंग छोड़ते हैं।

निकोलो कोन्टी के ममान ही अयूरज्जाक ने भी विजयनगर का बड़ा ही ममान तथा विस्तृत वर्णन किया है।

भाष्यीय इतिहास

बैठता है। उसके पले में छाने मोतिमर्ी की एक माछा है जिसका मुख जाँझा कठिन है।" राजा ने राजा की सरीर सम्पत्ति तथा उसने दरबार में पहुँचने राजा के स्वागत करने तथा भोजन्यादि के प्रबन्ध के विषय का क्रम से बरतते दीक्षक वर्ग किया है। मगर का वर्णन करते हुए वह लिखता है

१०० अक्ष बभरवाहू है। रैवाकार १००० हाथी तथा ११ लाख पचाति की सेना है। इस राज्य में सभ्यय हिन्दुस्थान में वह धर्माधिक धर्माधिकार सम्पन्न राज्य है। नगर इस प्रकार का है कि विषम में न कभी बैसा और न भुना है। उसके बहुतिक छाव माधोर है। बाहरी हीवान से ५० यन जाने तक बाध्य कर पत्थर गड़े हुए हैं जिससे कोई भी पैदल तथा मसवारोही बाहरी प्राचीर तक नहीं पहुँच सकता था। राजप्रासाद के समीप पार बाजार सामने-सामने स्थित है। इस मगर में मयूर सुगन्ध युक्त वन छोड़े हुये दून किसी भी समय मिळ सकते हैं। सम्राट है यह पौवन की मावश्यक सामग्री है। शलोक विभिन्न व्यापारी मण्डक अपना कारीघरी की दुकान एक दूसरे से समीप है। बाहरी बगने काष्ठ और मोड़ी काकि रत्न बाजार में बुने कपड़े बेचते हैं। इस हैम में ३ प्रकार की स्वयं मूद्रायें, एक राजत मूद्रा और एक चाँदी के मूद्रा का प्रचसन है।

१४५ ई० में देवराय की पुत्नी ही यही और उसके बाद उसके ही पुत्रों मन्त्रिपार्जन और विक्रमाज ने कमछ कुछ विनी राज्य किया। ये दोनों ही अत्यन्त-अयोग्य थे जिससे राज्य में अन्धबन्ध और कुचकों के बिगड़ प्रवृत्त होन लगे थे। इसी तय से देवराय के शासितप्राणी सामन्त सुलभ नरसिंह ने विक्रमाज से विहासन छीन लिया और अपन की विजयनगर का शासन स्थापित कर दिया। नरसिंह ने राज्य के कुछ बगने तथा मुख्यबन्धा उत्पन्न करने के लिए मरसक प्रवर्तन किये। परन्तु यह बंध अधिक विनी तक राज्य गद्दी पर कायम नहीं रह सका क्योंकि उसके उत्तराधिकारी को उसके सेनापति नरेश नायक ने १५०५ ई० में बन् करके राज्य की शासन सत्ता अपने हाथों में ले ली। नरेश नायक ने इस प्रकार विजयनगर के एक नये शासक बंध की स्थापना की।

कुल्ल देव राय—कुल्ल देव राय इस नवीन शासक बंध का सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रतिभाशाली शासक था।

कुल्ल देव राय के शासन काल से विजयनगर के साम्राज्य के इतिहास का एक नया अध्याय आरम्भ होता है जिसमें यह साम्राज्य अपने विकास की परिकल्पित करता हुआ समुद्रि और उत्कर्ष के चरम सीमा तक पहुँच गया। एक दुर्लभ शिखा के रूप में उसने साम्राज्य विस्तार की नीति अपनायी और सर्व प्रथम मयूर के दरबार में शासक का सर्व पर्व कर उसके समस्त प्रदेय की विजयनगर साम्राज्य का एक अंग बना दिया। १५११ ई० में कुल्ल राय सर्वस्य उद्दीक्षा की और अवसर हुआ और दीर्घ ही उस पुत्र बना की जल में उद्दीक्षा तरेय को अपनी कन्या का विवाह अपने करके शासित मीय कर दी। उत्तर में इस समय बहुमनी साम्राज्य के पठन के पश्चात् उसके भगवान्पर्वों पर ही स्थापित हुए स्वतन्त्र राज्यों में परस्पर और द्विपू शासकों के मध्य राज्य विस्तार के मतनों की हैकर गहरी प्रतिप्रतिष्ठा चल रही थी। इसी सुभवसर पर कुल्ल देव राय ने इस और दृष्टि से ही और बीजापुर के मुल्तान आदिग माह में जिद्ध गया। १९

मई सन् १५२० ई० को भयंकर युद्ध के पश्चात् विजेता कृष्ण देव राय की उन्मत्त सेनाओं ने भयंकर कूट-भार प्रारम्भ कर बी और बीजापुर तहस-माहस कर दिया गया। इस युद्ध ने बीजापुर सुल्तान के शाहस का दम तोड़ दिया जिससे वह कभी भी विजय नगर की ओर दृष्टि नहीं उठा सका।

कृष्ण देव राय के शासनकाल में ही समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में स्थित पुर्तगा कियों के सबर्नर अल्फुर्क ने भटकन में पुर्ब बनाने की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल विजयनगर की राजधानी में प्रेषित कर पुर्तगाल सरकार की ओर से विजयनगर के लिए मैत्री हस्त बढ़ाया। मुसलमानों का सामना करने तथा व्यापारिक दृष्टि से यह मैत्री सम्बन्ध अत्यन्त लाभदायक था। इस प्रकार कृष्ण देव राय ने अपने छोटे और पराक्रम से साम्राज्य की सीमाओं का अत्यधिक विस्तार किया और आधुनिक मद्रास प्रेसीडन्सी मैसूर तथा दक्षिण कुछ रियासतों के प्रदेश को आरम्भवात करता हुआ विजयनगर साम्राज्य पूर्व में कटक पश्चिम में सससिट तथा दक्षिण में सुदूरतम प्रदेशों तक विस्तृत हो गया।

कृष्णदेव राय एक योग्य स्वभाव और उदारहृदय तथा धर्मसहिष्णु शासक था। 'शाहस' नामक विदेशी यात्री ने राय का भाषों देखा जो वर्णन प्रस्तुत किया है उसमें उसकी सुन्दरता अम्यता और आकर्षक व्यक्तित्व का स्पष्ट आभास हो जाता है। डा० ईस्वर प्रसाद के शब्दों में इस काक का इतिहास प्रतिपक्षी चक्षियों में प्रधानता के लिए रक्त-रहित शब्दों का इतिहास है और ऐसे काल में इतिहास के मध्य कृष्ण देव राय जैसे और एवं सुव्यक्त शासक के चरित्र-विषय की ओर मुकते हुए निस्सन्देह अत्यन्त विमानि का अनुभव होता है। दक्षिण का कोई भी ऐसा हिन्दू अथवा मुसलमान शासक नहीं हुआ जे कृष्ण देव राय की तुलना में ठहर सके। सीवेक महीरम ने लिखा है कृष्ण देव राय नाममात्र का शासक न था वह व्यावहारिक दृष्टि से अपरिमित शक्तिशाली एवं व्यक्तिगत दृष्टि से आकर्षक व्यक्तित्व सम्पन्न निरंकुश अधिपति था। वह अपनी सेनाओं का स्वयं संचालन करता था। वह विनीत तथा उदार प्रकृति का शासक था जो अत्यन्त लोक-प्रिय था। उसके आचरण पर यही एक कलंक बिन्दु है कि वह मुसलमानों को पराजित करने के पश्चात् वह अपनी माँओं में गर्बीला और शीलरहित हो उठा। कुछ ऐसा समता है कि इस कलंक बिन्दु का वर्णन करते हुए सीवेक शाहस ने पत्र-हवीं छताष्टी की 'जैसा को तैसा' की नीति और बहुमनी शासकों के क्रूरकृतियों की मुखा दिया था अथवा वह ऐसा न समिते। बी० ए० स्मिथ के अनसार वह दक्षिण का महानतम सम्राट था तथा दक्षिण के मध्य युगों राज्यों के रक्त-रहित इतिहास के काल पृष्ठों की कान्ति प्रदान करता है।

अभ्युत राय—कृष्ण देव की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई अभ्युत राय सिंहासन पर बैठा। वह एक अयोग्य शासक था। उसने अपनी अयोग्यता तथा कायरता से विजयनगर के साम्राज्य के पतन का प्रथम अध्याय लिखा। इसके बाद ही विजयनगर का प्रतिष्ठ और बृह-साम्राज्य पतन की ओर तेजी से बढ़ पला। बीजापुर के सुल्तान ने रायचूर तथा मुद्गल के प्रदेश जीन लिये अभ्युत राय कुछ नहीं कर सका। १५४२ में उमरो मृत्यु हो गयी।

सरासिह राय—अभ्युत राय के पश्चात् सारासिह गद्दी पर बैठा और राज्य के पतन का क्रम ताने लगा। सरासिह केवल नाम मात्र का शासक था। शासन का आगदौर मन्त्री राय राय के हाथों में थी जो स्वयं एक अयोग्य व्यक्ति था तथा जिसने

भग्न बन्धिवेकपूर्वक कायों तथा मिथ्या बहुमन्यता से सहयोगियों तक को अपसृत कर दिया। १५४३ ई० में राम राया योसकुम्हा तथा बहुमन्य नगर की सम्मिश्र सेनाओं ने बीजापुर पर आक्रमण किया। परन्तु बीजापुर के योग्य तथा कुशल मन्त्री मधव जी ने अपनी चाखों से इस सभ्य की छिन्न-भिन्न कर दिया और बीजापुर को पराजय से बचा लिया। इसके बाद पुन एक सभ्य बना और इस बार वह बहुमन्यनगर के विरोध में था। १५५७ ई० में विजयनगर की सेनाओं ने बीजापुर को पराजय से बचा लिया। परन्तु बहुमन्यनगर के विरोध में नहीं टिक सका। परिणामस्वरूप बहुमन्यनगर पराजित हुआ और बहुमन्य नगर में तबूज-तबूज विनाश और भयानकीय क्रूर अत्याचारों का नाटक खेला गया। राणा देव बीरान कर दिया गया मुसलमान स्त्रियों के सम्मानों से खेला गया। मस्जिदों को ध्वस्त कर कुरान का अपमान किया गया।

बहुमन्यनगर पर कहाये गए अत्याचारों ने मुसलमानों की भाँति बोल ही और उनमें पारस्परिक सहयोग की भावना का जन्म हुआ। हिन्दू साम्राज्य विजयनगर की बुद्ध स्थिति और उसकी समृद्धि मुसलमान राजाओं की भाँति में करने लगी। छ हा मुस्लिम राज्यों के एक संघ का संघटन किया गया जिसमें बरार को छोड़ कर ६ चारों राज्यों ने भाग लिया और विजयनगर साम्राज्य के विनाश के लिए प्रस्तुत ५ योजनाओं की कार्यान्वित किया जाने लगा।

तालीकोट का भिषयसमक मुख—संघ की सम्मिश्र सेनाओं ने ५ विष म्बर १५६४ ई० को बसिप की ओर कूच कर दिया और कुछ ही दिनों में वह कृष्णा नदी के किनारे तालीकोट के समीप जा पहुँची। साम्राज्य के ऊपर इतना बड़ा मकट उपस्थित था परन्तु राम राया ने किसी भी प्रकार की बिम्बा के भाव नहीं प्रकट किया। वह निज राज्या के बूतों से उपेक्षणीय भाषा का प्रयोग करता रहा और इस संघठित सन्तुष्ट को महत्वहीन समझता रहा। अन्त में उसने ही विनाश सेनाओं अपने माइया को छोड़ कर कृष्णा के तटों की रक्षा के लिए भेजा और स्वयं भी संघ संघ्य संघित के साथ उनका अनुगमन किया। एक ओर विजयनगर साम्राज्य की सेनाओं सपर की भाँति कहरा रही तो ही मुस्लिम सेनाओं की दुष्टी और टिड्डीरान की भाँति फैली हुई थी। अनुजरी और बपीबुद्ध हवीन निजाम शाह निज राज्यों की सेनाओं का संघालन कर रहा था। केन्द्र का भाग अपने अवीन रख कर उसने काम और दमिष पावशों के संघालन का बार कुतुबशाह तथा बारिह लाह को छोड़ा। १० वर्ष ११ रामराजा हिन्दू सेना का स्वयं संघालन कर रहा था। बसिप के इतिहास में घायर ही कमी इतनी विनाश सेनाओं की भिन्न हुई हो। तबिप के इतिहास में हिन्दुओं ने मुसलमानों पर विजय की भाँति मयानक रूप से आक्रमण किया और मुस्लिम सेनाओं के काम तथा पश्चिम पक्ष छिन्न भिन्न हो गया। दोनों पक्षों में अंतर्घ मन्त्रासंघट रहे। रामराजा कीराय्यश की बट करमुख करने वाले को बहुमुख्य पुरस्कार विधिरित करते रहन का मादेश दिया। इसने जसाहिन होकर हिन्दुओं ने फिर प्राणों का माह त्याग कर रणभूमत की भाँति मुसलमानों पर प्रवण आक्रमण किया। मुसलमानों पर विजय कर दिया और एक प्रकार से विजयनगर की जीव निक्षिप्त कर दी। निज होने वाला कुछ द्रनप ही था। विजयनगर का सीमाग्न कटा हुआ था। विजय के निश्चित समय वाले रातों में ही मुस्लिम सीमाग्नियों ने पानी पकड़कर री की विस्मय का कँपना कर दिया। हिन्दू सेना बस्त-अस्त हो उठी और

विजयनगर के मन्त्री और सेनानायक रामराजा बम्बी की स्थिति में हुसैन निजाम साह के सामने था। निजाम साह ने अपने हाथों से तलवार के एक झटके में उसका सिर चढ़ा दिया था।

विजयनगर की विद्याल सेना पराजित हो गई। राम राजा क्रोध कर दिया गया लेकिन विनाश किए हुए दुर्भाग्यपूर्ण नाटक का प्रदर्शन पूरा नहीं हुआ था। विनाश बरबर नर संहार और विध्वंस की विभीषिका अपने में छिपाये इस नाटक के दोष जंक भी घीघ पुरे हो गए—विजयनगर की ईंट से ईंट बचा भी नहीं और शीघ्र ही वह ऐश्वर्यवाली वैभव सम्पन्न तथा मध्य प्रासादों पगलभूम्बी बहुसिद्धियों और विद्याल बेध मन्दिरों वाला विजयनगर ध्वस्तान्धेयों में परिवर्तित कर दिया गया। एक साथ से जबकि हिन्दू तलवार के पाट उतार दिये गये और मासपास की बग रामि कूट भी गई। सीपस ने अत्यन्त कठम छन्दों में इस नगर के दुर्भाग्य का चित्र साकार कर दिया है—

“पाँच महीने तक विजयनगर को घासित नहीं मिली। समु विनाश के ध्वय से घाये से और अधिघात रूप से अपने ध्वय की पूति में लग गए। बरबरतापूर्वक नर संहार किया गया और मन्दिर तथा प्रासादों को ऐसा ध्वस्त कर दिया गया कि जोड़ से पत्थर के बने विद्याल मन्दिरों और बीवालों को छोड़ कर उस समुद्र नगर का कोई चिन्ह नहीं रह गया। उनसे कोई भी बस्तु बचती नहीं दिखाई देती थी। वे अग्नि और तलवार से छोड़ दण्डों और फरसों से दिन प्रति दिन विनाश का काम करते रहे। इतने समय-समय में अकस्मात रूप से दुनिया के इतिहास में ऐसे मध्य और समुद्र नगर का ऐसा विनाश घायद कभी नहीं हुआ।

इस प्रकार तासीकोट के निर्वाणायक युद्ध ने विजयनगर साम्राज्य का विनाश प्रस्तुत किया। तासीकोट का युद्ध भारत के कुछ छोटे से निर्वाणायक युद्धों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। एक ही युद्ध के द्वारा विजयनगर ऐसे बड़ और समुद्र साम्राज्य का मिट्टी में मिल जाना दुनिया के इतिहास में अपने ढंग की अनोखी घटना है।

तासीकोट के युद्ध के बाद रामराजा का भाई तिकमल सदाविष के नाम पर शासन करने लगा। १५०० ई० में उसने सिंहासन बपहरण कर नये शासक बंध की स्थापना की। इस बंध में सबसे प्रसिद्ध राजा बैकट प्रथम था। उसने राज्य को बूढ़ बनाने के कुछ प्रयास किए थे। परन्तु अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण वह व्यर्थ रहा। उत्तर का काफी भाग मुसलमानों ने अपने अधिकार में कर ही लिया था। मदुरा तथा तंजौर के नायकों ने भी साम्राज्य के सन्धों में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना कर ली। इस प्रकार विजयनगर का प्रसिद्ध साम्राज्य ऐतिहासिक विस्मरण के मत में समा गया।

विजयनगर के पतन के कारण—विजयनगर का पतन इतिहास की एक ऐसी घटना है कि इतिहास का प्रत्येक विद्वान् कुछ बरसे के लिए बकित्र सा रह जाता है। लेकिन तासीकोट के निष्कर्षायक युद्ध के अतिरिक्त भी कुछ कारण थे जो साम्राज्य के समग्र निर्माण की तयारियाँ पहले से ही करने लगे थे। यदि ध्यानपूर्वक दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट पता चल जायेगा कि विजयनगर के साम्राज्य को अन्त जीवन भर अधिघात रूप से मुसलमानों से युद्ध करना पड़ा और युद्धों की इस ध्वि छिन्न परम्परा में विजयनगर प्रायः घाटे ही में रहा। बार-बार इस शक्ति को उठान का कारण या संघर्ष संघटन का अभाव। साम्राज्य की सेना विघात होते हुए भी संनिष्ठ विद्या से भूम्य थी थी। सेना का अन्वाराही अंग भी अकिञ्चीन ही था। हाथियों की

महावीर इतिहास

सेना अपन विरवासपात के कारण इतिहास-प्रसिद्ध हो है। मुसलमानों का तोपघात हिन्दुओं की पराजय का कारण बन बाठा था जिसकी योग्य मार से कल्पित हुआ-हृष्ट होकर अजनबिध और भिखारिणी ही बैठता था।

इच्छदेव राम के पश्चात् अयोग्य उत्तराधिकारियों का भी ताँता बँधा वह बरसा गयी। अष्टमराय न अपनी अयोग्यता और कामरता के कारण राज्य में होने वाले क्रोधों और पक्षपातों को नष्ट करने के लिए राज्य के शत्रु भाविकाह की सहायता का मुह देलना ही राज्य हावीमुख पवित्र का विद्रोह पीट देना था। अश्वमेध राम के पश्चात् धर्माधिकार तथा उसका भग्वी रामराजा दोनों ही न राज्य के हिता की रक्षा उनकी उन्नति तथा सुरक्षा की ओर से बाँध बन्द करके अपन को दक्षिण की राजनीति में पेश किया। दक्षिण के युक्तानों के पारस्परिक संघर्षों में हाथ डाल कर विजयनगर ने एक नयी दमरा पैदा कर दिया था। पहले बीजापुर के बिहड़ संघ बना तात्पश्चात् अहमदनगर के विराट में सब का निर्माण हुआ और अहमदनगर की सृष्टि कर दिया गया। इस संयुक्त सेनाओं व विघटनकार हिन्दुओं ने अहमदनगर को बलवान करने में विश्वस्यता का परिचय दिया वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के बिना ही पलायन कर गयी। इस छटपुट कारणों से देश की व्यापक समृद्धि और दोजनाओं के संघर्ष में सब घरे और तासीरों के मुख में डके की शक्ति विजयनगर के पतन की घोषणा कर दी। कुछ छटपुट कारणों से देश की व्यापक समृद्धि और ऐश्वर्यशोकता की उत्तरदायी थी। जिसके कारण लोगों का ध्यान देश के हित विस्तार में न लपकर विकास और नैतिक न्यायचरम की ओर आकर्षित हो गया। देश को जरा की दुष्टि से देखा गया जिसके कारण उसका पतन स्वाभाविक हो गया था।

विजयनगर की शासन-व्यवस्था

नैतिक पुनरुत्थान का इतिहास है। एक पक्ष से यह भी कहा जा सकता है कि विजयनगर साम्राज्य की स्थापना सामाजिक परिस्थितियों की योग्य थी। ऐतिहासिक विचारों में हमें एकमात्र स्थिति का कुछ ज्ञान हो जाता है। प्रत्यक्ष वस्तु का एक ही अभिप्राय परिकल्पित होता है—हिन्दू प्राणों का सत्तामात्र उनके प्राणीय राजवंशों का अस्तित्व किताब उनके धर्म नगरों तथा भित्तों का निर्माण। दक्षिण के निवासियों को जो कुछ विषय था वह सब कुछ लड़कियों की जड़ में हुआ था और इन्हीं परिस्थितियों ने विजयनगर की शासन नीति का भी निर्धारण किया था। मुसलमानों से विजयनगर साम्राज्य का जन्म इन्हीं स्थितियों की जड़ में हुआ था और इन्हीं परिस्थितियों ने विजयनगर की शासन नीति का भी निर्धारण किया था। मुसलमानों से अपने राज्य अपन धर्म अलग देवालयों की सुरक्षा के हेतु ही विजयनगर का शासन अपने अस्तित्व बाल तक एक हीनिक शासन ही था जिसके मुख में भी धर्म की सुरक्षा की जायता। इस विनाश साम्राज्य के अविनाश शासक कुशल और योग्य शासनीयता से इसके अतिरिक्त हीमाग्य से शासन निजाम में कुशल अमर बाहुओं का नदमाग्य इन्हीं समय-समय पर मिलता रहा। परिकल्पित विजयनगर में शासित और व्यवस्था के लिए उस संगठित शासन-प्रणाली का प्रयोग हुआ जिसके द्वारा साम्राज्य में स्वायत्त भाषा।

देशीय शासन—संघाट राज्य का सर्वोच्च सत्ताधीन था। उसके अधिका

नियंत्रित और बलीय था। उसकी सहायता के लिए मन्त्रियों प्रांतीय शासकों सेना-पतियों कुशल और योग्य शाहूनों और कवियों की एक परिषद की जिसके सदस्य सम्राट द्वारा मनोनीत किये जाते थे। सम्राट परिषद का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं था। उसे स्वेच्छानुसार किसी भी कार्य के करने का अधिकार था। वह अपने न्याया-लय में न्यायाधीश के आसन से न्याय करता था। उसने व्यवस्था का निरीक्षण करता और मुठों में अपनी विद्यालय सेवा का संचालन करता था। राज्य के प्रमुख अधिकारियों में प्रधान मंत्री कोषाध्यक्ष रत्नमण्डार का रखक तथा सुरक्षा विभाग के प्रधान थे। सुरक्षा विभाग का प्रधान बहुत कुछ गुणकारीन कोतवाल की भाँति होता था। उसके और उसके विभाग के ऊपर राज्य की शान्ति और सुरक्षा एवं श्रद्धाचार हमन का उत्तरदायित्व होता था।

प्रांतीय शासन—विज्ञान साम्राज्य को सम्यक शासन की सुविधा की दृष्टि से कमसे २०० प्रांताँ में विभक्त कर दिया गया था और राजकीय प्रतिनिधियों के हाथों में इनका शासन सौंपा गया था। इन प्रतिनिधियों की नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था। प्रत्येक प्रांत साम्राज्य की प्रतिरक्षित था। सर्वाधिकार सम्पन्न थे प्रांतपति अपने प्रांत में अपनी सेनायें रखते तथा अपना व्यवहार किया करते थे। लेकिन होता यह था कि साम्राज्य के नियन्त्रण में। वे अपने प्रांत के प्रत्येक कार्य के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे। प्रांत की आय का ३ भाग राजकीय कोषागार में प्रेषित कर देना पड़ता था और भाग से प्रांत का शासन चलता था। महानवमी के समारोह के दिनों में सम्राट इन प्रांतपतियों से कर प्राप्त करता था तथा उन्हें उपहार भेंटता था। कर न देने वाला राजाहोह आदि का बोधो प्रांतपति कठोर दण्ड का भागी होता था।

ग्राम शासन—प्रांत 'नाडुओं' में विभक्त थे तथा 'नाडु' नगरों तथा ग्रामों में विभाजित था इस प्रकार गाँव शासक की कृतुम इकाई था। पंचायतों के असीन गाँवों का प्रबन्ध था और इन ३ ग्रामों का प्रधान कार्यकर कहलाता था। इस अधिकारी को वेतन के रूप में या तो कुछ भूमि या उपज का कुछ अंश प्राप्त होता था। इनका पर बंधानुगत होता था। यह गाँवों के साधारण कैसकों का निर्णय करता राज कर वसूल करता तथा शान्ति स्थापन के प्रयत्न करता था।

न्याय-व्यवस्था—बिजयनगर की न्याय-व्यवस्था का ठीक ज्ञान नहीं है। फिर भी इतना निश्चित है कि दण्ड विभाग अत्यन्त कठोर था। सम्राट स्वयं सर्वोच्च न्यायाधीश था। न्यायालयों में हिन्दू न्याय-विभाग का प्रचलन था। साधारण अपराधों के लिए भी कभी-कभी रोमांचित कर देने वाले दण्डों का विधान किया जाता था। शाहूनों को प्रायः दण्ड नहीं दिया जाता था।

ध्याय-व्यवस्था—बिजयनगर साम्राज्य अपने राज्य में मुठों की एक अधिक्यान्त परम्परा लेकर विकसित हुआ था। अठपन्न सेना की ओर ध्यान देना अत्यावश्यक था। ध्यान दिया भी गया लेकिन उसका दृष्टिकोण कुछ गलत सा रहा। सेना के संयोजन दृढ़ता तथा उचित सैन्य-शिक्षा की अपेक्षा साम्राज्य के नगरवासी में सैन्य संख्या की विद्या-लय पर अधिक ध्यान दिया। गुनीन और अशुर्जनाक ने बिजयनगर की सेनाओं से सम्बन्धित जो संख्या दी है वह सही ही अतिरिक्ता पूर्ण हो लेकिन उससे साम्राज्य सेना की विद्याभ्युत्था का आभास तो हो ही जाता है। सेना को प्रकार की भी प्रथम तो

सेना अपने विवाहवात के कारण इतिहास-असिद्ध हो है। मूलसमानों का तोपकाना हिन्दुओं की पराजय का कारण बन जाता था जिसकी ओपन मार से शत्रुपक्ष हटा-हूट होकर अन्धमस्तिष्क और निरुत्साह हो बैठता था।

हज्जुदेव राय के परबात् अयोग्य उत्तराधिकारियों का जो ठोठा बंधा वह बरसा नहीं। अज्जुतराय ने अपनी अयोग्यता और कामरता के कारण राज्य में होने वाले कुछों और परिवर्तनों को नष्ट करने के लिए राज्य के मन्त्रि-मंडल की सहायता का सह लेना ही राज्य का सोचमूक धर्म का विशेष पीट देना था। अज्जुतराय के परबात् सदाशिवराय तथा उसका मन्त्री रामराजा दोनों ही ने राज्य के हितों की रक्षा उनकी उन्नति तथा सुरक्षा की ओर से सीधे बन्द करके अपने को दक्षिण की राजनीति में जोड़ा दिया। दक्षिण के सुल्तानों के पारस्परिक संघर्षों में हाथ डाल कर विजयनगर ने एक भागी बनना पड़ा कर लिया था। पहले बीजापुर के विरुद्ध संघ बना उत्तरबात् अहमदनगर के विरोध में संघ का निर्माण हुआ और अहमदनगर पराजित कर दिया गया। इन संयुक्त सेनाओं ने विजयनगर हिन्दुओं ने अहमदनगर को छुटकारा, मस्तिष्कों को ध्वंस करने स्थितियों को अपमानित करने तथा कुरान का असम्मान करने में जिस मूलसमानों का परिचय दिया उससे मूलसमानों की भारतीय भावना को भावना पहुँचा और सीधे ही परस्पर संघर्षित होकर विजयनगर के विनाश की योजनाओं के सोचन में लग गये और शाहीकोट के युद्ध ने उनके की बोट विजयनगर के पतन की ओपना कर दी। कुछ छुटपुट कारणों से देश की व्यापक समृद्धि और ऐश्वर्यशीलता भी उत्तरवासी थी। जिसके कारण लोगों का ध्यान देश के हित चिन्तन में न लगाकर विकास और नैतिक अनाचरण की ओर आकर्षित हो गया। देश को उनेसा की दृष्टि से देखा गया जिसके कारण उसका पतन स्वाभाविक हो गया था।

विजयनगर की नासन-अवस्था

विजयनगर साम्राज्य का इतिहास दक्षिण में मध्य युग के हिन्दुओं के राज-नैतिक पुनरुत्थान का इतिहास है। एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि विजयनगर साम्राज्य की स्थापना तत्कालीन परिस्थितियों की माँग थी। वैश्व की निम्न परिस्थितियों में हमें तत्कालीन स्थिति का कुछ आभास हो जाता है। 'प्रत्येक वस्तु का एक ही अनिवार्य परिणाम परिलक्षित होता था—हिन्दु प्रान्तों का स्वतन्त्रता उनके प्राचीन राजवंशों का अस्तित्व विनाश उनके बर्तन नगरों तथा मस्तिष्कों का ध्वंस। दक्षिण के निवासियों को जो कुछ थिय था वह तब कुछ छड़छड़ा कर गिर जान वाला था—विजयनगर साम्राज्य का जन्म इन्हीं स्थितियों की जड़ में हुआ था और इन्हीं परिस्थितियों ने विजयनगर की नासन नीति का भी निर्धारण किया था। मूलसमानों से अपने राज्य अपने धर्म अपने देवालयों की सुरक्षा के हेतु ही विजयनगर का शासन अपने अन्तिम काम तक एक सैनिक शासन ही था जिसके मूल में भी बल की सुरक्षा की भावना। इस विनाश साम्राज्य के अधिकांश शासक क्रूरता और योग्य राजनीतिज्ञ थे इसके अतिरिक्त साम्राज्य के शासन विज्ञान में कुछ असल बाह्यकों का महत्त्व इन्हीं समय-समय पर मिलता रहा। परिणामस्वरूप विजयनगर में धार्मिक और अर्थव्यवस्था के लिए उस संघर्षित शासन प्रणाली का प्रयोग हुआ जिसके द्वारा साम्राज्य में स्थायित्व आया।

केन्द्रीय शासन—प्रभाट राज्य का सर्वोच्च सत्ताधीन था। उसके अधिकार

निर्भरित और बसीम थे। उसकी सहायता के लिए मन्त्रियों प्रांतीय शासकों सेना-पतियों कुसुम और योग्य ब्राह्मणों और कवियों की एक परिषद थी जिसके सदस्य साम्राट द्वारा मनोनीत किये जाते थे। सम्राट परिषद का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं था। उसे स्वेच्छानुसार किसी भी कार्य के करने का अधिकार था। वह अपने स्थाया-लय में स्थायी विषाख सेना का संचालन करता था। राज्य के प्रमुख अधिकारियों में प्रधान मंत्री कोषाध्यक्ष रत्नभण्डार का रक्षक तथा सुरक्षा विभाग के प्रधान थे। सुरक्षा विभाग का प्रधान बहुत कुछ मुगलकालीन कोतवाल की भाँति होता था। उसके और उसके विभाग के ऊपर राज्य की शान्ति और सुरक्षा एवं अष्टाचार इमन का उत्तरदायित्व होता था।

प्रांतीय शासन—विज्ञान साम्राज्य को सम्यक शासन की सुविधा की दृष्टि से समय २०० प्रांतों में विभक्त कर दिया गया था और राजकीय प्रतिनिधियों के हाथों में इनका शासन सौंपा गया था। इन प्रतिनिधियों की नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था। प्रत्येक प्रांत साम्राज्य की प्रतिकृति था। सर्वाधिकार सम्यक् ये प्रांतपति अपने प्रांत में अपनी सेनाओं रखते तथा अपना दरबार किया करते थे। लेकिन होता यह सब था साम्राज्य के नियन्त्रण में। वे अपने प्रांत के प्रत्येक कार्य के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे। प्रांत की आय का १/३ भाग राजकीय कोषागार में प्रेषित कर देना पड़ता था और भाग २ प्रांत का शासन चलाता था। महानवमी के समारोह के दिनों में सम्राट इन प्रांतपतियों से कर प्राप्त करता था तथा उन्हें उपहार भेंटता था। फिर न देने वाला राजा को नाराज का बोवो प्रांतपति कठोर दण्ड का भागी होता था।

ग्राम शासन—ग्राम 'नाडुओं' में विभक्त थे तथा 'नाडु' नगरों तथा ग्रामों में विभाजित था इस प्रकार गाँव शासकी कबुलत इकाई था। पंचायतों के अचीन गाँवों का प्रबंध था और इन पंचायतों का प्रधान कार्यरत कहलाता था। इस अधिकारी को बैठन के रूप में या तो कुछ भूमि वा उपज का कुछ अंश प्राप्त होता था। इनका पर बंधानुसृत होता था। यह गाँवों के साधारण फसलों का निर्णय करता राज कर वसूल करता तथा शान्ति स्थापन के प्रयत्न करता था।

ध्याय-व्यवस्था—बिजयनगर की ध्याय-व्यवस्था का ठीक ज्ञान नहीं है। फिर भी इतना निश्चित है कि दण्ड विधान अत्यन्त कठोर था। सम्राट स्वयं सर्वोच्च न्यायाधीश था। न्यायालयों में हिन्दू ध्याय-विधान का प्रचलन था। साधारण अपराधों के लिए भी कभी-कभी रोमान्तिष्ठ कर देने वाले दण्डों का विधान किया जाता था। बाह्यणों को प्रायः दण्ड नहीं दिया जाता था।

व्यवस्था—बिजयनगर साम्राज्य अपने माध्य में युद्धों की एक अविभाज्य परम्परा लेकर विकसित हुआ था। अतएव सेना की ओर ध्यान देना अत्यावश्यक था। ध्यान दिया भी गया लेकिन उसका दृष्टिकोण कुछ गलत था रहा। सेना के संगठन बड़ता तथा उचित सैन्य-विज्ञान की अपेक्षा साम्राज्य के कणधारों में सैन्य संस्था की विद्या-मत्ता पर अधिक ध्यान दिया। मूनीज और अश्वरुजवाक ने बिजयनगर की सेनाओं से सम्बन्धित जो सूझा भी है वह मजे ही अतिरंजना पूर्ण है। लेकिन उससे साम्राज्य सेना की विद्यामत्ता का आभास तो हो ही जाता है। सेना की प्रकार की भी प्रथम छे

साम्राज्य की केन्द्रीय सेना तथा द्वितीय प्रांत-पतियों की सेना को मुद्रादि अवसर पर सम्राट की सहायता करती थी। समस्त सेना गज सेना अस्वारोही तथा पदाति इन भागों में विभक्त थी।

जयं व्यवस्था—भूमि कर राज्य की आय का प्रधान स्रोत था। साम्राज्य को समस्त भूमि पर सम्राट का अधिकार माना जाता था। इस भूमि को वह अपने सामन्तों में विभाजित कर देता था और सामन्त उसे किसानों में बाँट कर वसूले में किसानों से उपज का कुछ भाग वसूल करते थे जिसमें आधा उन्हें राजकीय कायम से देना पड़ता था। आवश्यक है कि राज्य कुछ भाग में प्रजा किस प्रकार निर्वाह करती होगी जब कि भूमि कर के अतिरिक्त भी कुछ कई प्रकार के कर लग पड़ते थे। इनके अतिरिक्त करो में शरागाह तथा बिबाह कर भी थे। यही नहीं प्रायः पसलों से लेकर सभी आवश्यक वस्तुओं के ऊपर भी देनी पड़ती थी। करों का यह विषय बाळ इतना विस्तृत था कि बेशक्यों भी इससे मुक्त न थीं। वैष्णवों के १२०० फनम की प्राप्ति होती थी जो पुष्किल के ऊपर वर्ण किया जाता था। जनेक जमाव के करों तथा बांगी के विषय भार से प्रस्त साम्राज्य की कस्त-कल बनता थी जो कुछ अवस्था रही हों लेकिन साम्राज्य की राजधानी राज सभा राज्यप्रासाद भव्य मकान और विशाल देव मन्दिर आदि अपनी समृद्धि वैभव सम्पन्नता तथा ऐश्वर्यशालिना में निर्निवार रूप से अन्य सभी राज्यों की ईर्ष्या के विषय बन हुये थे।

इस प्रकार यदि साम्राज्य के मूक में भी विशाल सैन्य शक्ति और सैन्य शक्ति की नींव या सम्पन्न राजकोष तो देश की समृद्धि और सम्पन्नता उस कोष की गमिदाई थी।

विजयनगर का ऐश्वर्य

विजयनगर के ऐश्वर्य तथा उसकी समृद्धि ने विदेशी यात्रियों के ऊपर कुछ ऐसा प्रभाव छोड़ा कि वे विजयनगर की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं सकते। कोट्टी तथा जम्पुरज्जाक के कुछ उद्धरण हम पहले से लाये हैं। इन्होंने बड़े डेय से क्रमानुसार विजयनगर का आकषक वर्णन प्रस्तुत किया है। नगर और दुर्ग राजा और राज सभा बाजार, और देव मन्दिरों और घरघरों के साव-साव सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर भी काफी प्रकाश डाला है।

सामाजिक व्यवस्था—विदेशी यात्रियों ने राजधानी में होने वाला जिन समा रोहों का वर्णन किया है उससे स्पष्ट पता चलता है कि सामाजिक जीवन अत्यन्त मूल शांतिमय था। समाज में ब्राह्मण वर्ग अत्यधिक सम्मान का पात्र माना जाता था। सातवें व्ययस्था में इस वर्ग का महत्त्वपूर्ण पाय होता था। ब्राह्मण धर्म निषिद्ध था। राज्य में शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के व्यक्ति थे। ब्राह्मण भाग नहीं खाते थे। मुनिज के अनुसार—

विजयनगर के राजा लोग शैव तथा वाय के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार का भाग खाते हैं। वह भेड़ मुजर हिरन सीतर खरपोख फागता बटर, और नव प्रकार के पतियों का भांस खाते हैं। गौरव्या वह विरिष्ठमौ तथा छिपकलियाँ तक बाजार में बिजली हैं जो खाई जाती हैं। विजयनगर में रक्तपूष बलि चढ़ाने की प्रथा थी। पायस में महानवमी तथा अन्य उत्सव पर सैकड़ों बलियों का उद्दिष्ट किया गया है। पलि-गधुओं में भैंसों तथा बैलों की प्रधानता थी। नयी प्रथा प्रचलित थी। संपर्कों के

निपटाने की सामान्य विधि के रूप में इन्द्र युद्ध का प्रचलन था लेकिन इसके लिए मन्त्री की आज्ञा आवश्यक होती थी। विजयी समाज में सम्मान पूर्ण स्थान रखती थी। मृत्तिका के वर्णनानुसार उनके विजयी कैलाश का काय करती थी। विजयी की उचित व्यवस्था थी थी। वेदपार्थ भी सार्वजनिक उत्सवों और समारोहों में भाग लेती थी। प्रजा में सुख और शान्ति थी।

साहित्य और कला—विजयनगर के नरेशों तथा मंत्रियों ने साहित्यकारों तथा कलाकारों को प्रोत्साहन और प्रथम प्रदान कर हिन्दू संस्कृति की रक्षानि में महत्वपूर्ण हाथ बढ़ाया। संस्कृत तथा तेलगु का अच्छा विकास इस साम्राज्य-काल में हुआ। अष्टादश संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण तथा भारव्यस पर टीकाएँ मिलने वाला सामान्य एका प्रसिद्ध पुरुषोत्तम विद्यान तथा भाषवाचार्य जैसे दण्ड के विद्वान इस साम्राज्य की विमूर्ति हैं। वासकों में भी नरसिंह और इप्पदेव राय कुमर कवि और विद्वानों के आभयदाता थे। तेलगु का महान कवि बल्लसनी इप्प राय कामोन राष्ट्रकवि था। विदेगा यात्रियों द्वारा प्रसन्न वर्णनों में राजधानी के विचार एक नम्य प्रसारों देवमन्दिरों और मन्त्रों का जो संकेत है तथा सरोवरों और सीलों का भी वर्णन है उसने इस बात का स्पष्ट पता चलता है कि विजयनगर के वासकों में वास्तु कला के प्रति पुरा प्रेम का और उच्च पर्याप्त प्रसन्नविष्ट किया था परन्तु दुर्भाग्य है कि वास्तु कला के व सुन्दर नमूने और प्रसार शिक्षा के वे बहुमूल्य प्रयोग मूलकमानों की प्रतिहिना की अग्नि में स्वाहा हो गये।

प्रश्न

1 Trace the rise of Bahmani Kingdom to the death of Mohammad Gawan. What lead to the subsequent dismembering of the Bahmani Kingdom? (1942 1953)

१ बहमनी राज्य के उत्थान का महमूद गाना की मृत्यु तक वर्णन कीजिए। (१९४२, १९५२)

2 Briefly describe the struggle of the Bahmani and Vijayanagar Kingdoms and account for the disappearance of the latter (1954)

२ बहमनी और विजयनगर राज्यों के संघर्ष का संक्षेप में वर्णन कीजिए और विजयनगर की विनष्टि का कारण बताइए। (१९५४)

3 Give a brief account of the rise, the glory and the fall of the Kingdom of Vijayanagar (1940 1933)

३ विजयनगर के उत्थान, वैभव और पतन का वर्णन संक्षेप में कीजिए। (१९४९, १९३३)

4 Give an account of the economic and cultural conditions of the Vijayanagar Kingdom (1931)

४ विजयनगर की आर्थिक और सांस्कृतिक अवस्था का एक वर्णन कीजिए। (१९३१)

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं बीरान विहारत का अध्यक्ष बजीर बनना ब्याबाबही होता था। बीराने रिहासत का प्रमाण 'सुदूर-उच्च-सुदूर' होता था। यह विमान बामिन मामलों साहित्यकारों एवं छात्र-महारमाओं की व्यवस्था करता था। बीराने अर्थ आर्थिक 'ममासिक की व्यवस्था में कार्य करता था। इसका प्रमुख कर्तव्य सैन्य संगठन की देख-रेख तथा उसकी समुचित व्यवस्था करनी थी। बीरान इन्हा 'बबीरे कास' की देखरेख में अपना कार्य करता था। इस विभाग का कर्तव्य था पत्र व्यवहार की समुचित व्यवस्था करना। इन विभागों के अतिरिक्त भी कई विभाग होत थे जिनकी अध्यक्षता अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा की जाती थी। परन्तु इन सब पर बजीर का नियन्त्रण सर्वत्र स्था रहा था। सूचना विभाग का अध्यक्ष रोहे मूमासिन् भी कास महत्व का अधिकारी होता था। इन मन्त्रियों का उत्तरदायित्व प्रजा के प्रति नहीं बरन केवल मुस्तान के प्रति होता था। अतएव इनका महत्व विभागाध्यक्ष के रूप में ही था।

राज्य परिवार—राज्य परिवार के लिए अनक कमचारी नियुक्त किय जाते थे जिनका अध्यक्ष 'बकीसेदार' कहा जाता था। बकीसेदार मुस्तान के अस्तबस धराबखाना रसोईघर, राज परिवार के बच्चों की देखभाल और नीकतों के बैठन वितरण का व्यवस्था करता था। इसकी जमीनता में बमीर हाजिब बारजक मकीब 'बानदार' या बंग रक्षक बरगीगीर, कास हूबर, फिताबदार बगीची बबीरे छत्र खजीन हूबर मनीकुछ हुकुम छाफी कास फरास मखानदार इत्यादि कई अन्य कर्मचारी होते थे। इसके अतिरिक्त राज परिवार के साथ एक बहुत बड़ी संख्या में दास भी सम्बन्धित रहते थे। मुहम्मद तुगलक के समय में इनकी संख्या काबों तक में पहुँच गई थी।

मुस्तान की सबसे बड़ी स्त्री 'मकिन्-ए-जहाँ' और वह 'बुबाबन्देजहाँ' तथा 'मलकुम-ए-जहाँ' के नाम से पुकारी जाती थी। राजकुमार में मामा का पर्वान्त आदर किया जाता था परन्तु उनका प्रमाण राजनीति में नहीं के बराबर ही था।

मुस्तान के परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक विभाग 'रसब' विभाग था जिनके उपविभाग कारखाना कहे जाते थे। इन कारखानों में से जो मनुष्यों तथा पशुओं के भोजनार्थ का प्रयत्न करते थे वे 'रासिबी' कह जाते थे और जो कपड़े इत्यादि का प्रयत्न करते थे वे 'बीर रासिबी' कहाते थे। इन कारखानों का प्रयत्न अलग-अलग एक मलिक अथवा धाँ के जिम्मे सौंपा जाता था।

आय के साधन—हिन्दी के मुस्तानों के आय के प्रमुख साधन निम्नलिखित थे —

- (१) भूमिकर
- (२) रसम
- (३) अकात
- (४) जूनी
- (५) जजिया
- (६) अन्य कर

धरात भूमि कर होता था जो हिन्दू सामन्तों तथा भूमि माधिकों से नगूक किया जाता था। यह सामान्यतः उज्ज का ही भाग हुआ करता था। असादगीन के समय में ईरानी से नगूक उज्ज का ही भाग बिना किसी छूट के नगूक किया जाता था। गया

मुस्लिम तुलक के समय में जी सम्मिलित कर के दर में कमी नहीं की गई थी। मुस्लिम तुलक के समय में यदि बहि नहीं हुई थी तो कमी भी नहीं की गई इतना निश्चित है। उसने दोमाब में भूमि कर बढ़ा दिया था जिसके कारण वहाँ के रूपकों को बहुत कष्ट पहुँच पड़े और कितनी ही ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिये थे। बाद में वहाँ की हाकत बानन के बाद उसने छपि की हाकत सुधारने के उपाय किये थे। जो भूमि मुसलमानों के पास होती थी वह उसी कही जाती थी। इस पर उपर का दूध भाग कर के रूप में बसूल किया जाता था। इसके अतिरिक्त राजकीय भूमि से भी भाग होता था। वे भूमि जो कर्मचारियों तथा फौजी अफसरों को प्रदान की गई थी 'इस्ताफ' कहलाती थी। यह कुछ निश्चित अवधि या जीवन भर के लिए प्रदान की जाती थी और इनके प्राप्तकर्ता 'मुक्त' कहे जाते थे। इससे भी राज्य को लाभकारी होता था।

युद्ध में प्राप्त कर का भाग खय कहा जाता था। इसका दूँ हिस्सा राज्य को मिलता था और सेन सैनिकों में बाँट दिया जाता था। परन्तु बाघ बसकर दूँ भाग राज्य-दोर में बसा होने लगा और दूँ भाग ही सैनिकों में बाँटन लगा। फिरोज शाह जब मुल्तान बना तो उसने पुनः पुराने व्यवस्था को स्थापित किया।

बकात केवल मुसलमानों से लिया जाता था। यह कर आपदा का दूँ भाग हुआ करता था।

बाहर से आ मात बचन व लिए आता था उस पर बुया बसूल की जाती थी। बुया को दर २३ होती थी। परन्तु हिन्दू व्यापारियों को इसका दूना देना पड़ता था। यह बुया बोझ पर उसका मूल्य के ५% के हिसाब से थी।

जमिया मूल्य केवल उन्हीं व्यक्तियों पर लगाया जाता था जो मुसलमान नहीं होते थे। इस कर के बदले में उन्हें जल-मात की सुरक्षा और सैनिक सेवा से मुक्ति मिलती थी। परन्तु बाद में बसकर इस कर के साथ एक जामिन् मानना बुट गई और यह कर मुसलमानों को छोड़कर गैर जमीनों पर केवल इसलिए लगाया जाने लगा जिसमें वे इस कर से छुटकारा पान के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें। बाह्य इस कर से मुक्त थे परन्तु फिरोज शाह के समय से बाह्यों पर भी यह कर लगाया जाने लगा जो उनकी वापिस के अनुसार क्रमशः ४०, २०, १० टंका नियत किया गया था। बाद में बाह्यों की प्राप्ति पर १० टंकों के स्थान पर ५० कबिरी नियत की गई थी।

खमिज वधाय पर भी दूँ भाग के हिसाब से राज्य द्वारा कर बसूल किया जाता और साथ उस व्यक्ति का हो जाता था जिसकी भूमि में यह पाया जाता था। साधारण सम्पत्ति में राज्य द्वारा ले ली जाती थी। यह कर बरापाहों की भूमि से प्राप्त कर तथा विभाई कर भी राज्य को भाग के साधन थे।

मुल्तकरप्रदातो—निर्दुश राजतन्त्र में एक मुख्यवस्तुतः मुल्तकर प्रदातो का होना अत्यन्त आवश्यक है। दिल्ली के मुल्तानों द्वारा सम्पूर्ण साम्राज्य में मुल्तकर निष्कृत किये जाते थे। मुल्तकरों द्वारा मुल्तान को हर एक तरह की जानकारी रहती थी। राज्य के प्रभावशाली व्यक्तियों की गतिविधि पर मुल्तान अपने मुल्तकरों द्वारा दृष्टि रखता था यहाँ तक कि कुराना गैर जैसे व्यक्ति पर भी मुल्तकर लगाये जाते थे। इन मुल्तकरों के कारण निरपराध निम्न श्रेणी के मनुष्यों की रक्षा दक्षिणायनी एवं प्रभावशाली व्यक्ति में होती थी।

ग्याम—राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश स्वयं मुस्ताफ हुमा करते थे। उनमें ग्याम के प्रति पवित्र भावनाएँ होती थीं। निकट से भी निकट अथवा उच्च से भी उच्च पद-बिफारी को अपराधी प्रमाणित हो जाने पर दण्ड दिया जाता था। कुतुबुद्दीन एबक की ग्यामप्रियता के विषय में तो यहाँ तक कहा जाता है कि उसके समय में छोर और बकरी एक ही बाट पानी पीते थे। इसलिये अपने छत्र-छायाविषों के साथ भी पाल का व्यवहार नहीं करता था। उसके समय में कोई अपने अनुचरों के साथ भी अनुचित व्यवहार नहीं कर सकता था। ४००० बोगों की जागीर रखने वाले मलिक बदनक ने उसके समय में अपने एक अनुचर की कोड़े लगा कर मरवा दिया था। उसकी बिबबा के सिकायत करने पर उसने उस व्यक्ति का भी उसी प्रकार कोड़े लगाने की आज्ञा दे दी थी। मुहम्मद बिन तुगलक की ग्यामप्रियता तथा निष्पक्षता के सम्बन्ध में स्वयं इब्नेबतुता ने शान्य प्रस्तुत किया है।

मुस्ताफ के बाद मुस्ताफ का प्रधान न्यायाधीश काबिले मुमासिक होता था। ग्याम करने के छिन्ने दो प्रकार के न्यायालय होते थे (१) बीबाने कहा और (२) बीबाने मजालिम। मुहम्मद बिन तुगलक के समय में बिहोशियों को सजा देने के लिए एक नवीन न्यायालय का स्थापन किया गया था जो बीबाने सिमासत कहा जाता था। इन न्यायालयों में दो प्रकार के कमराएँ होती थी (१) मुफ्ती (२) मुफ्तही मुफ्ती का कर्तव्य कानूना सजाह देना था और मुफ्तही का कर्तव्य की जांच करना। बीबाने मजालिम का प्रधान न्यायाधीश 'अमीर दाह' कहा जाता था। आधुनिक काल के देखकार की तरह हजीब हुमा करते थे। इन्हीं के पास सर्वप्रथम मुकदमा पेश जाता था। उनमें द्वारा संजीवहर फैसला नहीं किये जाने पर मुकदमा काबी-ए मुमासिक के सामने पेश किया जाता था। ऐसा मान्य पड़ता है कि सामान्यतः कानूनी कार्यवाही निश्चित रूप से नहीं होती थी। मुफ्ती कुरान के अनुसार कानून की व्याख्या करते थे जिसके आधार पर मुकदमों के फैसले किये जाते थे। उस के कानून बहुत सरल थे। महाजन अवसर अपने कम की बगली के लिए राजकीय सहायता प्राप्त करते थे।

दण्ड विभाग—अपराधियों के लिए अत्यन्त कठोर दण्ड दिया जाता था। सामान्यतः अंग-अंग या प्राण-दण्ड दिया जाता था। अपराध स्वीकार कराने के लिए जबरदस्ती की जाती थी और पीड़ा भी पहुँचाई जाती थी। अफाठगीन शिखी के समय में बूकानदारों को कम लौलने या ठगन पर मजबूर कराएँ दी जाती थी। कम लौलने पर उनका ही मोरन बूकानदार के घरीर से काट लिया जाता। राजबिदाहियों को किन्ती हाकल में समा नहीं किया जाता था और उन्हें प्राण-दण्ड ही दिया जाता था। फिरोज तुगलक ने अपराधियों की याचना बना तथा निम्न दण्डों को समाप्त कर दिया। यह इतना दयावान था कि कर्म-कर्म और अपराधी भी बिना दण्ड पाये ही मुक्त कर दिये जाते थे।

श्राव विभाग—राजधानी से १ घांसी में निकट सफ्फर कायम रखने के लिए श्राव विभाग था जो पर्वत शृङ्खला के साथ कार्य करता था। प्रत्येक एक कोय या दो कोय पर १ से ३ बुझाबार या पैदल नियुक्त कर दिये जाते थे। इस व्यवस्था का वर्णन करते हुए डा० ईबरी प्रभाव लिखते हैं "प्रत्येक बोगो पर दन तेज खीड़ने वाले हुकदार नियुक्त किये जाते थे। वे रात्रि के लिए मुगलिस्त रहते थे और अपने अपने गादियाँ लाते थे। उनके निरों पर पनियाँ बँबी रहती थी। पर्वत तथा छन्दों की

एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया ही उनका काम था। हरफारा एक हाथ में पत्र केटा था और दूसरे में काठी जिसकी सम्भाई वो गज होती थी। वह पूरी रफ्तार से बीड़ कर दूसरे हरफारे को जो पहले से तैयार रहता था पत्र दे देता था। इस प्रकार काफी दूर-दूर तक एक स्थान से दूसरे स्थान पर पत्र बड़ी सरसता तथा तेजी से पहुँचा दिया जाते थे। कभी-कभी इस डाक द्वारा मुस्लिमों के सिम फल तथा काच पवाबे भी काले जाते थे। प्रत्येक डाक चौकी पर राज्य की ओर से यात्रियों की सुविधा के लिए मस्जिदें पीन के पानी की बाग़िकियाँ और बाजार बनवा दिये गये थे जहाँ लोग आवश्यकता की वस्तुएँ खरीद सकते थे। कभी-कभी इस डाक द्वारा और अपराधियों को तुरन्त दण्ड देने के लिए कन्द्रीय सरकार अथवा प्रांतों की राजधानियों में पहुँचाया जाता था। दिल्ली तथा दील्लताबाद के बीच प्रत्येक चौकी पर डोल रक्त दिये गये थे। जब कभी उनमें से किसी नगर में कोई असाधारण घटना घटती तो उन्हें बजा दिया जाता था और इस प्रकार मुस्लिमों को अपने अनुपस्थिति में होने वाली दूसरे नगर की घटनाओं का ज्ञान हो जाता था।

प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकार—जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं सम्पूर्ण साम्राज्य प्रान्तों में बँटा हुआ था। जिस समय साम्राज्य का सबसे अधिक विस्तार था उस समय उसका वर्गीकरण निम्नलिखित प्रान्तों में किया गया था

(१) बंगाल	(११) काशीर
(२) बिहार	(१४) लखनौ
(३) दिल्ली	(१५) मालवा
(४) देवगिरि	(१६) मालर
(५) मुजरात	(१७) मुस्तान
(६) डारसमुद्र	(१८) अजमेर
(७) हमीर	(१९) समन
(८) कन्नौज	(२०) सीहवान
(९) बाजनगर	(२१) शिरमुनी
(१०) कभीर	(२२) ह्माप
(११) कङ्का	(२३) उज
(१२) कुहरन	

मैं तो मुस्लिम शासकों के अनुसार प्रांतों की दो श्रेणियाँ थी (१) इमारतों वाला (२) इमारतों का। परन्तु दिल्ली साम्राज्य के प्रान्त अधिकतर इमारतों वाले की श्रेणी में ही थे। इन प्रांतों के प्रशासक मुस्लिमों की ओर से नियुक्त किये जाते थे उनके अधिकार सीमित होते थे। वे प्रशासक मुस्लिमों के प्रतिनिधि होने के कारण नाथक मुस्लिमों के होते थे। प्रांतों का शासन संगठन भी बहुत कुछ केन्द्रिय शासन संगठन से मिलता-जुलता था। इन प्रांतों में कुछ छोटे-छोटे क्षेत्र और छोटे-छोटे पक्षी सामान्यतः शिकार के बराबर या उनसे बड़े होते थे। सम्पूर्ण प्रांत शिकारों में विभक्त किये गये थे जो एक शिकार की देख रेक में रहते थे। छोटे-छोटे प्रांतों तथा शिकारों को सरकार में विभक्त किया गया था। सरकार परगनों में और परगने गांवों में बँटे हुए थे।

परगनों के प्रमुख कर्मचारी मुख्तारिफ़ मुख्तारिफ़, मुख्तारिफ़, मुख्तारिफ़, मुख्तारिफ़ सरहज इत्यादि थे। इनकी सहायता से चौकटी परगनों का प्रबंध करता था। सरकार के प्रमुख

पदाधिकारी विक्रयारे विक्रयाराम तथा मुम्सिफ मुम्सिफान होते थे। यीशों ने प्रबन्ध के लिए मुकद्दम जब्बा मुखिया होते थे। पटवारी मासमुबारी का ब्यौरा रखता था। मज्दूर का काम करने वाला करदून कहा जाता था जिनके हाथ में हिसाब-किताब रहता था।

प्रान्तों के प्रशासक नायब सुम्तान बड़े-बड़े सामन्त हुक्मा करते थे। मर्यापि केन्द्र की ओर से इनके अधिकारों की सीमित रखने के लिए भरसक प्रयत्न किये जाते तथापि व्यावहारिक रूप में वे निरंकुश शासन करते थे और केन्द्र का नियन्त्रण नाम मात्र के लिए था। इनका घर प्रायः संलग्न हुआ करता था। इनका कर्तव्य सरहद की रक्षा करना तथा अपना भीतरी शासन ठीक रखना था। आवश्यकतानुसार वे केन्द्र के सिधे सेना की सेवाएँ भी प्रस्तुत करते थे।

पुलिस तथा नगर का शासन—जामि एवं सुरता कायम रखन के लिए प्रत्येक नगर में कोतवाल हुआ करते थे। वह सभी नागरिकों का एक रजिस्टर रखता था। नगर में आन वाले तथा नगर के बाहर जाने वालों के सम्बन्ध में भी कोतवाल जानकारो रखता था। नगर सम्बन्धी प्रत्येक सूचना कोतवाल ने पास रखती थी। मृतकमातों और हिन्दुओं दोनों ही के जाग-माल की रक्षा के लिए समान रूप से प्रबन्ध किया जाता था। इसके लिए कोतवाल के सैनिक रात में गश्त लगाया करते थे।

राजबंशों के धीमे परिवर्तन के कारणों की समीक्षा

१. दुर्बल उत्तराधिकारी—गुलाम तिस्रो तुगलक संघ तथा लोही सभी बंधों के संस्थापक धर्मिशाही एवं और थे किन्तु उनके उत्तराधिकारी दुर्बल निपटे। उदाहरणार्थ कुतुबुद्दीन तो बहुत धर्मिशाही था किन्तु युमान बंध का अन्तिम शासक कईकुबार निदान्त दुर्बल था। तिस्रो बंध के प्रथम दो शासक बिचपतया अलाउद्दीन जिनगी जिसने वास्तव में तिस्रो राज्य को महार प्रदान किया धर्मिशाही था किन्तु सुवारक और नासिद्दीन बीगों दुर्बल शासक निकले। तुगलक बंध का संस्थापक गयासुद्दीन काफी समान शासक था। किन्तु फिरोज तुगलक के पश्चात् अन्तिम पाँचों शासक दुर्बल रहे और वे राज्य को नहीं संभाल सके। संघ और नादियों के सम्बन्ध में भी वह कारण ठीक उतरता है। दुर्बल उत्तराधिकारियों के राज्य को बनाने खान की आशा करना नहीं तक सम्भव है। यही कारण है कि एक बंध के दुर्बल उत्तराधिकारी को दुम्ने बंध का मजबूत व्यक्ति छल या बल से पराजित कर देता था और इस प्रकार नए राजबंश की नींव पड़ती थी और इस बंध की भी इसी प्रकार अपना पतन देवता पड़ता था। दुर्बल उत्तराधिकारियों पर मंगोलों का आक्रमण उनके लिए बिप ना काम करता था और राज्य की सैनिक धर्मि शाही हो जाती थी।

२. नैतिक पतन—पिछले पृष्ठों में हमने देखा था कि लगभग सभी राज बंधों में एम शासक हुए जो मुरा-मुबारी पर सब कुछ झुटा देने को प्रस्तुत थे। इन धर्मिशाहों कामूनों और मूर्खों से अपना बंध की मर्यादा बनाये रखन की आशा करना मूर्ख हीनता है। उन्हीं पतन में काफ़ी योग दिया। मुस्तामों के नैतिक पतन से राज-बंशधारियों का भी आर्थिक पतन हो जाना था।

३. आन्तरिक विद्रोह—सभी राजबंशों के शासन-काल में आन्तरिक विद्रोह व्यापक था। समय राजमन्त्र में ही पक्ष्य और विद्रोह का शाना लगा रहता था। (१) पुन की हत्या कर है मर्तीजा बाबा की हत्या कर है आदि विद्रोह कार्य इस युग

के लिए साधारण सी बात थी। वहाँ राजमहल से निकर सम्पूर्ण राज्यों में ही बिद्रोह हो बिद्रोह होता हो मचा वहाँ कोई राजवंश कहे स्थायी हो सकता है। जनता सरबारों और अन्य राजकर्मचारियों को इन पक्ष्यों और बिद्रोहों से उन्नति करने की प्रेरणा मिलती थी। साम्राज्य हड़पने की सामंसा मन में और मारती थी।

मान्तरिक बिद्रोहों के भी कुछ प्रमुख कारण थे। उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम का न होना तथा शासकों को स्वेच्छाचारिता। शासन की कुम्बवस्मा भी बिगोप अक्षेयनीय है। कुछ ही सुस्तानों में शासन-प्रबन्ध में सुधार की ओर ध्यान दिया या अभ्यास अधिकारि इस ओर से उदासीन रहे। उनकी दृष्टि ही विधान और व्यवस्था थी।

४ उत्तराधिकार के नियमों का अभाव—विभिन्न वंशों का छोटा परिवर्तन बहुत कुछ उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों पर आधारित था। तुर्की राज्य में जिसकी माठी उनकी भैरु बानो कदाचित्त लागू थी। तुर्की साम्राज्य ही नहीं इस्लाम धर्म भी इसी सिद्धान्त का पालन करता था। एक ओर या मुस्लान और दूसरी ओर उसके सामन्त प्रतिद्वन्द्वी के रूप में थे। एक का शक्तिशाली होना दूसरे की दुर्बलता का प्रतीक था। यही कारण था कि मुस्लान को मृत्यु के पश्चात् मान्तरिक बिद्रोह मचवा पक्ष्य-त्र हुआ करते थे। दुर्बल सुस्तान सामन्तों के अधिकृत थे। स्वभावतः शक्तिशाली सामन्त अपना स्वार्थ सिद्ध करते तथा अधिक अवसर पाकर अपनी राजसत्ता स्थापित करना अपना परम धर्म समझते थे। सिन्धी वंश के प्रवर्तक जलालुद्दीन ने कैंकुबार की ओर गया मुहौन तुलकन ने नासिबुद्दीन डिस्ली को हरा करवा दी। नासिबुद्दीन एवं गयामुहौन दोनों ही सामन्त थे। बिन्धु जी नासिबुद्दीन, मुहम्मद तुगलक की मृत्यु पर मुस्लान का सामक था। मुस्लान की मृत्यु ही जान पर उठने अपने बाहुबल पर सदा वंश की स्थापना की। बहलील लोदी आलमशाह सीधे के समय पंजाब का शासन था। इसने भी अवसर से लाभ उठाया था। इन सारे रक्त-पात के मूल में था—उत्तराधिकार के नियम का अभाव।

५. कर्तव्य के प्रति उदासीनता—कुछ बिधेय सुस्तानों को छोड़कर लगभग सभी मुस्लान राज-कार्य के प्रति उदासीन थे। राज-कार्य बस्तुतः सरबारियों पर छोड़ दिया जाता था जिनमें शासन संगठन शक्ति का अभाव था। मुस्लान के कड़े निर्दोश का समाज उनकी मनमानी करने में सह्यता देता था।

६ सामन्तों की हसबन्दी—दिल्ली सत्तमण के समय तुर्क अफगान एवं भारतीय मुसलमानों में परस्पर वैमनस्य था। सर्व प्रथम तुर्की सामन्त राज्यसत्ता के अधिकारी थे परन्तु क्योंकि तुर्कों ने भारत की अपना देश बना दिया था एवं मध्य एशिया से तुर्कों का भारत आने का रास्ता भी बन्द था। अतः अफगान एवं भारतीय मुसलमान शक्तिशाली हो गए। तुर्कों के बिद्रोह इन दोनों का संगठन था। परन्तु संगठन-कर्ता से अधिक में अवसरवादी थे। जो एक शक्ति प्राप्त करता दूसरा दस उसकी सहायता की हामी भर देता था। इनका पारस्परिक वैमनस्य राज्य सत्ता के लिए हानि-कारक था। निर्बल सुस्तान की निरक्षय रूप से शक्तिशाली दल का सामना करना पड़ता था। वह इन दल की अपना पक्षप्रवर्तक मान के अपना नहीं छोड़ दे बस यही दा माँगे थे।

मगोल और दिल्ली के तुर्क सुस्तान

संश्लेष कीन थे—मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक अन्य विषयता थी

उत्तरी भारत एवं मध्य एशिया की राजनीतिक उन्नत-पुष्क का पारस्परिक सम्बन्ध। उत्तरी भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना उन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप भी जो उसी समय मध्य एशिया में घट रही थी। इस मध्य प्रवेश की उन्नत-पुष्क का इबाक आखिरी राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ता रहा है। कुतुबुद्दीन ऐबक के शासन काल से भारत में मुस्लिम राज्य एक प्रकार से स्वतन्त्र राज्य था। मध्य एशिया के राज्यों से अलग एक मध्य मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी। परन्तु उसी समय मध्य एशिया में दो महान् शक्तियों का उदय हुआ जिनके परिणामस्वरूप भारत को एक एही समस्या का सामना करना पड़ा जो अद्वितीय रूप से बिनाशकारी थी। एक शक्ति थी स्वार्थिज्य के साम्राज्य की और दूसरी थी बिनाशकारी एवं निर्मम मंगोल सैनिकों की।

मंगोल राज्य की उत्पत्ति मध्य एशिया से हुई है और इसका अभिप्राय है 'बीर माहुरी एवं बुद्धि'। प्रारम्भ में मंगोल एक विशाल समूह की एक शाखा मात्र थे जो मध्य एशिया में बिखरन किया करते थे। कालान्तर में उन्हें एक एक साम्राज्य के रूप में ढाल दिया गया था जो विश्व-इतिहास के केवल एक बिजवा द्वारा स्थापित किया गया था। यह मध्य एशिया का विशाल साम्राज्य था। बुद्धिमान्त जंगल की के मैद्व में उस प्राप्ति ने छातर एवं चीन प्रवेश और कस्तिपन छातर पर अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित कर ली थी।

इस समय दिल्ली के सिंहासन पर समुद्दीन इस्तुतमिश बिराजमान था और मध्य काशीन भारत उस दूरदर्शी शासक का इत्तज है क्योंकि इस्तुतमिश ने जंगल की शक्ति का आभास वा किया था। उस इस बात का भी जान था कि यदि स्वार्थिज्य के बीर मुस्तान अलामुद्दीन की दिल्ली साम्राज्य में जाने की स्वीकृति दे दी गई तो समस्त दिल्ली साम्राज्य तुर्की से छिन जाएगा। अलामुद्दीन न दिल्ली जाने की इच्छा प्रकट की थी और वह दिल्ली मुस्तान की सहायता चाहता था। परन्तु इस्तुतमिश ने दिनगुत्तापूर्वक उसकी प्रार्थना को ठुकरा दिया और उसके बूत का मरवा डाला। फिर भी अलामुद्दीन ने बंगेज छाँ का बीरतापूर्वक सामना किया और पराजय होते देख सिन्ध नदी में कूद पड़ा। बीर का सामना बीर ही कर सकता है। अलामुद्दीन के उस साहसपूर्ण कार्य को देखकर बंगेज छाँ ने अपने सैनिकों को आवाज दी कि उसकी हत्या न करें। अलामुद्दीन सुरक्षित निकल गया। मंगोलों ने जाने बढ़ कर मुस्तान पर अधिकार कर लिया। परन्तु इस स्वाम की असहाय मर्मी को सहन न कर सकने के कारण वह वापस लौट बस और भारत से एक महान् विपत्ति टल गई।

इस प्रकार मध्य एशिया की घटनाओं का भारतीय राजनीति पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। भारत के तुर्की साम्राज्य को अपने जीवन काल के प्रारम्भिक वर्षों में मंगोलों की अग्रसरता परन्तु अपूर्व सहायता प्राप्त हुई और दिल्ली मुस्तानों का अपने राज्य संगठन का मुजबुतर प्राप्त हुआ। एक सफल शासक एवं सेना-नायक होते हुए भी इस्तुतमिश को राज्य वगडन के कार्य में महान् कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। गजनी का यामदूज और सिन्ध का कुर्बेचा साम्राज्य संगठन के मार्ग में कौटा बने हुए थे। परन्तु मंगोलों के आक्रमण से दोनों की शक्ति क्षीण हो गई और इस्तुतमिश के लिए उन्हें पराजित करना सरल हो गया। स्वार्थिज्य राज्य के पतन के बाद यामदूज के एक गोड़ा भाग रह गया और गन् १२१५ में इस्तुतमिश द्वारा पराजित हुआ।

मध्य कुर्बेचा को छोड़िए। उसे भी बंगेज छाँ द्वारा मचाए हुए अलामुद्दीन ने सामना करना पड़ा। यामदूज की तरह कुर्बेचा भी पराजित और मचाए तक कि दिल्ली

पर अपना अधिकार करना चाहता था। पंजाब में जलालुद्दीन के भाग्यमान ने कुबचा एवं इस्तुतमिश दोनों को सतर्क कर दिया। इस्तुतमिश द्वारा सहायता की ओर से निराश होकर जलालुद्दीन सिन्ध की ओर बढ़ा और कुबचा की शक्ति को दबा दिया। परिणाम यह हुआ कि इस्तुतमिश ने रास्तिहीन कुबचा को १२२७ ई. में पराजित किया और इस प्रकार न केवल उसके प्रतिद्वन्द्वियों का अन्त हुआ बल्कि उसकी साम्राज्य सीमा विस्तृत हो पड़ी और भारत में तुर्की साम्राज्य को संगठित करने का सुवर्णसर प्राप्त हुआ। यही नहीं बल्कि उसी से भारतीय मुस्लिम साम्राज्य को सुरक्षित रखने के उपरान्त में उसे सन् १२२७ ई. में खलौफा की ओर से सम्मानसूचक पत्र प्राप्त हुआ। इस प्रकार दिल्ली मुल्तान की स्थिति राजनैतिक एवं आर्थिक रूप से सुदृढ़ हो गई।

संक्षेप में मध्य एशिया में मंगोलों के सरगान की प्रथम प्रतिक्रिया दिल्ली मुल्तान के पक्ष में हुई थी। परन्तु यह प्रतिक्रिया सर्वत्र एक सी नहीं रही। सन् १२२४ ई. में ही चंगेज खाँ ने अपना सम्पूर्ण राज्य अपने पुत्रों में विभाजित कर दिया था। चंगेज की दो साकसियाला कुरासान एवं यमनो प्राप्त हुए थे। चंगेज की मृत्यु के पश्चात् सन् १२४० ई. में कैयूक खान बना। अपने राज्य को संगठित एवं विस्तृत करने के विचार से कैयूक ने केन्द्रीय एवं प्रांतीय शासन नीति का अनुसरण किया। मंगूटा नामक एक सामन्त की तृत्वारिस्तान सन्धी सत्तन्त्र के विरोध का शासनाधिकार दिया गया था। कैयूक ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने भारत के मार्ग गजनी में अपने अङ्गसर की नियुक्ति की थी। मंगूटा बहुर व्यक्ति था और दिल्ली राज्य की बटमाओं पर निरन्तर ध्यान रखता था। अपनी सम्पूर्ण शक्ति रक्षाने पर ही इस्तुतमिश भारतीय सीमा की इसकी प्राकृतिक सीमा सिन्धु नदी तक ले जाने में असफल रहा। मंगूटा ने इस बात का पूरा-पूरा खान उठाया। राजधानी दिल्ली में इस्तुतमिश की मृत्यु के उपरान्त सामन्तों के पारस्परिक बैमनस्य एवं कलह ने दिल्ली मुल्तान को काफी हद तक अक्षतिहीन बना दिया था। १२४० ई. में मंगोलों ने भारत पर आक्रमण कर लिया और लाहौर पर अधिकार कर लिया। तब परान्त मुल्तान पर लूकरील जलौका का अधिकार स्थापित हो गया। मंगूटा न उस पर आक्रमण किया। मंगोलों के यह प्रयत्न स्पष्टतया इस बात की ओर संकेत कर रहे थे कि वह अपने प्रभाव सीमा को पार नहीं करके जाना चाहते हैं। यह स्थिति भारत में तुर्की साम्राज्य के लिए हितकर न थी।

भारत में मंगोल समस्या का एक और पक्ष भी है। वह यह कि इन आक्रमणों से इस्तुतमिश के उत्तराधिकारियों की निर्बलता एवं अयोग्यता का पूर्ण परिचय प्राप्त हुआ और इसी दुर्बलता के कारण ही उन्हें घटरज के योहरों की तरह पन्थ्युत कर दिया जाता था। ध्यान रहे कि मंगोलों के आक्रमणकाल दिल्ली के निर्बल मुल्तानों ने बाध्य होकर पंजाब के सामन्तों को अधिक से अधिक भुविबाएँ एवं शक्ति प्रदान की क्योंकि यह सामन्त दिल्ली मुल्तान के लिए सिर दर्द थे।

बाद में के सम्पूर्ण इतिहास में मंगोल समस्या जोरों पर रही। प्राग्निमक काल में इसका दबाव अधिक नहीं था क्योंकि मंगोल नेताओं का ध्यान मार्ग में न था। पर किसी समय स्थान पर था तथापि मंगोल आक्रमण के पक्षस्वरूप अनेक परिवर्तन हुए। बाग बंग के संस्थापक की स्थिति सुदृढ़ हो गई। यही समय था जिस के कारण इस्तुतमिश न अपने साम्राज्य विस्तार एवं प्रभाव क्षेत्र की बङ्गाल में अपना सम्पूर्ण शक्ति रखा तो भी। यही नहीं बल्कि इस विस्तृत साम्राज्य का शासन ध्याम,

सामन्तबाह के संघटन और प्रतिद्वन्द्वियों के बमन द्वारा सुदृढ़ बनाया। एक अन्य आन्तरिक प्रभाव यह हुआ कि बर्बर मंगोल सेनाओं के प्रकोप से भागने वाले मध्य एशिया वाले साहित्यकारों कवियों एवं वाणिजिकों ने हिस्सी साम्राज्य में शरण ली। उनकी आर्थिक दृष्टा सोचनीय थी और मूल से पीड़ित थे। इस प्रकार मंगोलों के आक्रमण स्वल्प मात्र में विदेशी मुसलमानों का आगमन हुआ और साहित्यिक शिक्षा में काफी उत्पत्ति हुई।

पुनः राजनैतिक इतिहास की ओर लौटें। इस्लामियों की मृत्यु के उपरान्त मंगोलों ने हिस्सी सामन्तों के पड़ोसियों सुल्तान की दुर्बलता एवं उत्तर-पश्चिमी सीमा की ओर से हिस्सी सुल्तान की उबासीन नीति का पूरा-पूरा फायदा उठाया। उन्होंने पंजाब पर आक्रमण किया और व्याप्त लूट की सीमा तक अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ा लिया।

सन् १२२८ में बर्बेक खाँ की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी उत्तवाई ने १२२८ से १२४१ तक बर्बेक खाँ १२२८ से १२४० तक शासन किया। पहल बताया जा चुका है कि कौटुक बगदाई का उत्तराधिकारी था। उसकी मृत्यु के उपरान्त मंगूता न १२५४ तक शासन किया। उसके बाद हुलाकू खाँ सिंहासनासक्त हुआ बर्बेक के उत्तराधिकारियों में हुलाकू खाँ का स्थान सर्वोच्च है। उसका प्रभाव बगदाई से लेकर मक्का तक था।

सन् १२६९ ई. में बल्बन हिस्सी का सुल्तान बन गया। उस समय छेर खाँ उत्तर-पश्चिमी सीमा में था। उसने जोखों का बमन किया गये बुखों का निर्माण कराया और मंगोलों को रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया। परन्तु बल्बन उसके प्रति संश्रित हो गया और छेर खाँ पुनः मंगोलों से जा मिला। बल्बन ने उत्तर-पश्चिमी सीमा का तीन भागों में विभाजित किया।

- (१) मुल्तान
- (२) सुनाम
- (३) समाना

मुल्तान एवं समाना में बल्बन ने अपने पुत्रों मुहम्मद एवं बुयान खाँ को नियुक्त किया था। वह योजना सम्पन्न करने सिद्ध हुई। एका प्रतीत होता है कि मंगोलों की पीछे लड़े दिया गया था और लाहौर एवं मुल्तान पर पुनः अधिकार कर लिया गया। यह समस्या की पुनरावृत्ति थी। मंगोलों ने इसे अपना अपना समझा और आक्रमण कर दिया। राजकुमार मुहम्मद उस समय वहाँ पर नहीं था। लाहौर पर अधिकार कर लिया गया और वह मुल्तान की ओर भागकर हुआ। परन्तु राजकुमार मुहम्मद उसे पराजित किया और वह स्वयं मारा गया। इस प्रकार भारत एवं मंगोलों के पारस्परिक सम्बन्ध का अन्त हुआ।

चिन्नी बंश और मंगोल—१२९० ई. में जलालुद्दीन खिरोज चिन्नी की उपाधि धारण कर हिस्सी के राजसिंहासन पर मुल्तान के रूप में सिंहासनासक्त हुआ। वा ही वर्ष परवान १२९२ ई. में हुलाकू खाँ के तीन अनुसूतों ने १५००० सैनिकों के साथ भारत पर आक्रमण कर दिया और सुनाम तक पहुँच गया। आक्रमण की सूचना मिलने ही खिरोज चिन्नी ३०००० सैनिकों की एक विभाजित सेना लेकर सिन्ध नदी के पूर्वी तट की ओर बढ़ा। दोनों पक्षों में बमामान युद्ध हुआ जो बर्बेक पराजित हुए। परन्तु चिन्नी मुल्तान में मंगोलों के साथ सन्धि कर ली। मुल्तान में बर्बेक का रिवाज बर्बेक खाँ के तीन उत्तराधिकारियों से कर दिया। मंगोलों

का सरकार अनुत्सा वापस लौट गया। परन्तु उसका लौ भारत में ही रहा। बलुवायु अनुत्स न होने के कारण अधिकांश मंगोल लौट गये। जो बचे वे उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और गये मुसलमान कहलाये जाने लगे। वैवाहिक सम्बन्ध के कारण मंग लो के आक्रमण रुक गये। भारत स्थित मुगलों ने मुघलपुरा नामक नगर का निर्माण किया। मुसलमान प्रजा और मंगोलों में पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ते गये और दोनों ने एक दूसरे की रीति-रिवाजों का अनुसरण किया।

यह सर्वे राजनैतिक दृष्टिकोण से विवेकपूर्ण नहीं था सचची है क्योंकि भारत के दोर सन्ध में लोगों को अपनी राग्य सीमा में स्थान देने का कार्य था उन्हें राजनैतिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान करना। ये नये मुसलमान विश्वास पात्र नहीं थे। वे पश्यान् आदि में भी भाग लेते थे और यही कारण था कि अलाउद्दीन ने सिंहासनाब्ध होत ही मंगोलों की ओर ध्यान दिया। ५

अलाउद्दीन के शासन काल में मंगोलों के आक्रमण शुरू हो गये थे। सिंहासना रोहण के एक ही वर्ष पश्चात् ट्रांसाक्सियाना के शासक अमीर बाबर ने एक सार सैनिकों के साथ भारत पर आक्रमण कर दिया। उसका उद्देश्य मुल्तान पंजाब तथा सिन्ध पर अधिकार करना था। परन्तु अलाउद्दीन उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त की सुरक्षा के प्रति उदासीन न था। उसके योग्य सेनानायक, जफर खान तथा उलुग खान वही उप स्थित थे और मुल्तान स्वयं भी इस विद्या में सतर्कतापूर्व काम कर रहा था। उसका खान मंगोलों की मार मचाया और उत्तर-पश्चिमी सीमा में शांति स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया।

परन्तु मंगोल कब हार मानने वाले थे। दूसरे ही वर्ष अर्थात् १२९८ ई० में उन्होंने एक अन्य नेता खान्सा के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण कर दिया। खान्सा के आक्रामक आक्रमणस्वरूप मुल्तान मंगोलों के अधिकार में चला गया। मंगोलों का वीनी ही प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ा। अलाउद्दीन ने जफर खान को आक्रामक आक्रमण करने की आज्ञा दी। जफर खान ने मंगोलों का परास्त किया। भीषण युद्ध के उपरान्त खान्सा की और उसके दो हजार खानों को बन्दी बना लिया गया और इस प्रकार आक्रमण का अन्त हुआ। १२९९ ई० में कुतुब खान्सा ने एक विशाल सेना के साथ आक्रमण किया। कुतुब खान्सा अमीर बाबर का पुत्र था और उसने आक्रमण की अलाउद्दीन के शासन काल में होत बाल मंगोल आक्रमणों में सबसे भयानक बताया गया है। दिल्ली सेना के मुखियत वह इस सेना का रोकने में असफल थे और मंगोल सेना आगे बढ़ते-बढ़ते दिल्ली के समीप पहुँच गई। अलाउद्दीन चिन्तित हुआ और उसने अपनी युद्ध समिति को समा बुलाई। मुल्तान ने सेनानायकों ने उन मुख्यात्मक नीति अपनाय का सुझाव दिया। परन्तु मुल्तान उसे अपना अपना समझता था। उसने आक्रमणकारी नीति का अनुसरण किया और उलुग खान तथा जफर खान को मंगोलों के विरुद्ध आक्रमण करने की आज्ञा दी। स्वयं मुल्तान ने १२०० सैनिकों के साथ युद्ध में भाग लिया। भीषण युद्धापरान्त मंगोल सेना पराजित हुई और उसके अनेक सैनिक मार डाले गए। परन्तु मुल्तान का योग्य एवं सकल सेनानायक जफर खान भी मारा गया। मंगोलों से युद्ध करते समय वह सन्ध द्वारा चिर गया था। मुल्तान इस परिस्थिति को देख रहा था परन्तु उसने जफर खान की सहायता नहीं की और उस मर जाने दिया। सम्भवतः अलाउद्दीन उसकी बरकी हुई खनिष्ठ भयभीत हो गया था। जफर खान की सेनाली या और मंगोल गैरिका एवं स्थितियों पर उसका मार्तक

नये-नये मन्त्रों का निर्माण हुआ। समाना तथा होपालपुर की चौकियों पर सेना नियुक्त की गई थी किन्ती भी बाह्य आक्रमण का सामना करने की तयार थी। सात ही सात अलाउद्दीन ने मंगोलों के साथ कठोरतापूर्ण व्यवहार किया। युद्ध में पराजित मंगोल सैनिकों को मर्दानस पण्ड दिये गये। परिणामस्वरूप मंगोलों ने उसके पासग-कास में भारत की ओर आन का विचार त्याग दिया।

भाग २ धार्मिक

देहली सल्तनत के कास में भारतवर्ष के धार्मिक क्षेत्र में महान परिवर्तन उत्पन्नित हुआ। इस्लाम तथा हिन्दू दो प्रतिरोधी धर्म आपस के सम्पर्क से अपन न परिवर्तन काम बिना न रहे। दोनों ही धर्मों ने कुछ ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम की ही धर्म का आधार बतलाया। मुसलमानों में सूफी सन्तों ने आश्चर्य तथा अन्वेषिभाव का निरोध किया। धर्म सुधारक जब भारतीय धर्मों को मूट कर अनैक्यव्यवस्था से मुक्त होकर परम ब्रह्म से विद्युत् प्रभ स्थापित करने की सिखा देने लगे। उनका कहना था कि प्रेम मात्र एक ओर तो समुच्च ब्रह्म के प्रति होता चाहिए और दूसरी ओर साधारण प्रजा एवं अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति।

इस भावना के फलस्वरूप जो सुधार आन्दोलन उठा उसे भक्ति आन्दोलन कहते हैं।

भक्ति आन्दोलन के कारण—कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि भक्ति आन्दोलन या सुधार आन्दोलन कोई बहुत दिनों से चला आने वाली और विस्मय सन्तान के कास में पूर्ण विकास पाने वाली बटमा न थी बल्कि यह एक आकस्मिक घटना थी जो हिन्दू-मुसलमान सम्पर्क के कारण कुछ क्षिप्त परिस्थितियों सहसा प्रकट हुई थी। ऐसी दशा में निम्न-निम्न प्रकार के लोग भिन्न भिन्न बातें करते हैं और इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के अनेक कारण बतलाते हैं। यहाँ हम इन्हीं कारणों पर विचार करेंगे।

(१) पहला कारण तो यह बतलाया जाता है कि हिन्दू जनता बिलकुल ही निरास हो चुकी थी। ऐसी दशा में हिन्दुओं का समस्त धर्म की ओर झुकना स्वाभाविक था। पर सब लोग उससे सहमत नहीं हैं।

(२) सूफी सन्तों के प्रथम प्रयासों को नाकाम प्रभावित किया और वे मुसलमानों के सम्पर्क में आने लगे। सूफी संत धर्मात्मता में दूर रहना चाहते थे और धर्मात्मता दूर कर देने के बाद तो किसी भी धर्म में मौनिक भ्रम नहीं रह जाता है। हिन्दू सन्तों में पहले स ही धर्म के आश्चर्य और धर्मात्मता के प्रति मूढा लपट हो चुकी थी। वे चाहते थे कि धर्म अपने विद्युत् रूप में ही हो और इस पर किसी प्रकार का बाहरी प्रभाव न डाला जाये। सन्तों की इन बातों का प्रभाव काफी हुआ क्योंकि ममान भी अब बहुदेववाद से कुछ-कुछ ऊब रहा था।

उपरोक्त कारणों न भक्ति-सुधार आन्दोलन को जन्म देने में योग दिया। अब हम उस सन्तों के विषय में जोही जानकारी प्राप्त करेंगे जिन्होंने भक्ति सुधार आन्दोलन को गामे बढ़ान में अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया था।

कुछ प्रमुख घटनाएँ

इतिहासों में स्वामी रामानुजाचार्य, स्वामी निम्बकाचार्य माधवाचार्य रामानन्द सत्त कबीर, पुरु तातक, बल्कमाचार्य नामदेव चैतन्य महाप्रभु के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्वामी रामानुज—वर्ष १२ वीं शताब्दी के महान उपदेशक और भक्ति आन्दोलन संस्थापक स्वामी रामानन्द का आधिपत्य १२ वीं शताब्दी में हुआ था। इन्होंने कदाचार्य के मादवाच का सम्मान किया। उनके अतिथिवाद के स्थान पर विधिपटा उधार का प्रचार किया। सन्त ब्रह्म ही इनका एक मात्र वैयक्तिक या और भक्ति के ज्ञान की मूर्ति रामानुज का सन्त ब्रह्म भी कल्याणकारी था। यही नहीं उसे ज्ञान के एक मात्र उपाय भी भक्तिमार्ग द्वारा कल्याणकारी युक्तों को प्राप्त करना था। आप न लोको को कर्मयोग करने का उपदेश दिया। अनूप्य को आह्वय कि वह संन्यास वाचना से कार्य में उत्तर रहे और एक ही इच्छा न करे। सर्व प्रथम स्वामी रामानुजाचार्य ने ही ब्रह्म एवं आत्मा की भिन्न भिन्न बतलाया था। इनका कथन था कि प्रथमवीं पूजा एवं निष्काम साधना द्वारा ही आत्मा एवं ब्रह्म का परस्पर मिलन होता है। अपन कोष का काल में ही इन्होंने ७०० वैष्णव मठों का निर्माण किया था। इनके अनुयायियों में सभी जातियों के लोग थे।

स्वामी निम्बकाचार्य—ये रामानुजाचार्य के समकालीन थे और वैष्णव धर्म की हृदयस्थली वाङ्मा के जन्मदाता थे। आपका जन्म वाङ्मा नगर में ही हुआ था और आप की प्रारम्भिक शिक्षा वैदिक धर्म के आधार पर हुई थी। रामानुज की मूर्ति आपन भी मकराचार्य के अतिथिवाद का सम्मान किया परन्तु दोनों में कुछ अन्तर भी था। बहुत रामानुजाचार्य ने ईश्वर के स्थान पर अतिथिवाद बतला विधिपटाईतवाद का प्रचार किया था यहाँ स्वामी निम्बकाचार्य ने दोनों के पारस्परिक मेल-जोल के लिए प्रयत्न किया। स्वामी रामानुज राम को भगवान् विष्णु का अवतार मानते थे। निम्बकाचार्य के मत में कृष्ण ही समस्त जगत के भगवान् एवं आत्मदाता हैं। भगवान् कृष्ण के चरणों में तल्लीन रहन से ही वास्तविक आत्म प्राप्त हो सकता है। मोक्ष प्राप्ति का यही एक मात्र उपाय है। आपके मत का प्रचार मकुरा एवं वास-वास के अनुयाय पर अधिक हुआ और तब स्वाभाविक ही था। निम्बकाचार्य के अनुयायी आज भी काफी संख्या में मिलते हैं।

माधवाचार्य—श्रीकृष्ण से थोड़ी दूर पर इस महात्मा का जन्म हुआ था। आप भी भगवान् विष्णु के उपायक थे और भक्ति द्वारा भगवान् की प्राप्ति को महत्त्व देते थे। आपको वास्तविकता से ही संन्यास की ओर रुचि थी। कई नवों के सम्मेलन और भक्त प्रवास के बाद आपन अपने चारों ओर फैले हुए आत्मिक विरोधियों को पछाड़ने का निश्चय किया और अपने कार्य में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। आप का मुख्य प्रचार केन्द्र हरिद्वार था और यही वर ही वेदांत युक्तों पर अपना भाष्य प्रकाशित किया। आप भी मोक्ष प्राप्ति को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानते थे। आपके विचार में भक्ति मात्र ही मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र उपाय था।

रामानन्दाचार्य—राधानन्द का जन्म १४ वीं शताब्दी में उत्तरी भारत में हुआ था। इन्होंने वैष्णव धर्म का सूत्र प्रचार किया और राम तथा सीता की आराधना का उपदेश दिया। राधानन्द के सिद्धांतों में आधि भगवत् मूर्ति था। इन्होंने सभी प्रकार के लोगों को अपना विध्य बताया। सम्पूर्ण वेद का प्रयत्नकर इन्होंने काशी में अपना स्थान बनाया। यही कबीर इनके विध्य हुए जो इनके सिद्धों में सर्वप्रथम रहे। राम

मन्वाचार्य की सर्वश्रेष्ठ विधिपता यह थी कि इन्होंने सामारण बोलचाल की भाषा में ही अपने विचारों का प्रचार किया।

महत्माचार्य—इसका जन्म १४७१ ई. में हुआ। इन्होंने रामानन्द की रास भक्ति के स्वाम पर कृष्ण भक्ति का उपदेश दिया। इसका इच्छा से बहुत प्रेम का वस्तुतः आपका स्थान वैष्णव धर्म की एक अन्य शाखा कृष्ण पन्थि शाखा के प्रचार पीपलों में बताया जाता है। आप तैत्तिरीय ब्राह्मण व। वास्यकाष्ठ से ही अपनी योग्यता ए। कृष्ण भक्ति के लिये प्रसिद्ध हो गये थे। आप की योग्यता के कारण अनेक व्यक्तियों ने इनका अनुयायी बनना स्वीकार किया। शिक्षा समाप्त करने के बाद आपने तोष्य स्वाम की यात्रा की और अन्त में बनारस की अपना प्रचार केंद्र बनाया। मार्ग में आप विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय की रास श्रमा में अपने विरोधियों से वार्मानकर्म प्रबानराचार्यों की धारकाय में परास्त किया। बनारस में आप ने १७ पुस्तकों का निर्माण किया। आपने मुन्दाईतबाब की स्थापना की। आप भक्ति मार्गी थे और भक्ति मार्ग के सर्वश्रेष्ठ मार्ग बताया है। आपने माया को बहुत द्वारा उत्पादित और जीव एवं जगत् को सम्बन्धकारियों बताया है। परन्तु आप के भक्ति मार्ग को बहुत समझ कर आप ने अनुयायियों ने ओष धिक्कास और मायामुक्त जीवन आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप वा समुदाय पतन के पक्ष में गिर गया। बाद में कुछ व्यक्तियों ने इस समुदाय को ऊँच उठाने की चेष्टा की थी परन्तु उन्हें विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई।

चैतन्य महाप्रभु—चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् १४८५ ई. में ब्राह्मण बंश में हुआ। इन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार २५ वर्ष की ही अवस्था से करना आरम्भ किया यह वास्तव के प्रकाश विद्वान व। वातीय बन्धन और कृतकृत का इन्होंने अष्टम किम और सीद्धार दिया तथा भावभाव का उपदेश दिया। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ तथा कृष्ण भक्ति की शिक्षा इन्होंने बूम-बूम कर दी। इन्होंने कृष्ण की प्रममयी भक्ति और संकीर्तन का उपदेश दिया। प्रेम ही उनके जीवन का आधार था और प्रेम ए। लोका उनके मत की विशेषतायें। उनके विचार में श्री कृष्ण ही निमूजनपति हैं। जीवात्म का सर्वोच्च स्वरूप कृष्ण की भक्ति में तत्त्वज्ञान रहता है। जीवात्मा ही कृष्ण की राधा है प्राणी माध का कतव्य है कि वह अपनी प्रत्येक वस्तु की कृष्ण का समर्पित कर दे चैतन्य का प्रेम इतना प्रमाद था कि श्री कृष्ण की लोका बंधी बजाता जादि कावों के स्मृति माध ही उन्हें आनन्दविभोर कर देती थी। डा ईश्वरी प्रसाद के गर्भी में उनके प्रेम की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

प्रत्येक जीव धर्तीर एवं आत्मा को उसको समर्पित कर दे और व्यक्तिगत सुख के पीछे स विरक्त हो जाये। उसको अपने प्रभु की इच्छा का पालन करने के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये और ऐसा करने में किसी त्याग से विमुक्त न होना चाहिये। उसके इच्छा की मूर्ति की पूजा बली चाहिये उसकी चर्चा करनी चाहिये उसके लिये माल पूजन चाहिये उसके लिये रूप जलानी चाहिये और मन्दिर में बैकर दसना चाहिये तथा रात-दिन प्रभु तथा जगत् की सेवा में उत्पन्न रहना चाहिये। यह पुनः कह देम आवश्यक है कि वैष्णव धर्म एकान्तवासी का धर्म नहीं है और न ही पूर्णतया आत्म समर्पण करने वालों का ही।

चैतन्य महाप्रभु प्रत्येक व्यक्ति को कृष्ण भक्ति में तत्त्वज्ञान देना चाहते थे। माधव माध के प्रति भी उनका प्रेम कम न था और यह आनन्द दुर्गों को दूर करने के लिये निरन्तर अपने धाराध्यदेव श्री कृष्ण से प्रार्थना किया करते थे।

मस्जिदों के प्रसिद्ध सन्तों के बाद हम उन महान् जिम्मेदारियों का उत्प्रेषण करेंगे जिन्होंने हिन्दू मुसलमानों को एक बताया और दोनों धर्मों के पारस्परिक मेल-जोड़ के लिए प्रयत्न किये। इनमें नामदेव, कबीर तथा भाग्य के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सन्तों ने मूर्ति पूजा को और निम्न की ओर जोर देने की शुरुआत पर जोर दिया। उनके विचारानुसार किसी भी धर्म में निष्ठा नहीं है। समस्त मानव जाति का ईश्वर एक ही है चाहे उसे राम कहें या करीम इसमें भिन्नता नहीं है।

नामदेव—दक्षिण भारत में ही महाराष्ट्र में ११वीं शताब्दी के अन्त में नामदेव का जन्म हुआ था। भक्ति द्वारा ये भी भगवत् प्राप्ति बताते थे। जाति पंथ पर इन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यही कारण था कि हिन्दू-मुसलमान दोनों ही इन्हें अपना गुरु मानते थे। नामदेव ने ईश्वर की एकता का उपदेश दिया और बताया कि ईश्वर के प्रति श्रद्धा प्रेम स्तन से ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

सत्य कबीर—कबीर के सामने हिन्दू-मुसलमान में कोई अन्तर नहीं था। इन्होंने धर्म प्रचार के साथ-साथ अन्य धर्मों को आलोचना भी की है। कबीर ने दोनों हिन्दू और इस्लाम धर्मों के आदर्शों का और पाठशालों का जोरदार खण्डन किया। हृदय की पवित्रता और भजन से ईश्वर प्राप्ति हो सकती है। ऐसा उनका विश्वास था। उन्होंने बताया कि मूर्ति पूजा और बंग स्नान कपटी हृदय से करने पर कोई लाभ नहीं और ब्रह्मा और काका को यात्रा अपवित्र हृदय से करना मूर्खता है। कट्टर हिन्दुओं को आलोचना के साथ-साथ उन्होंने मुसलमानों को धर्माभ्युत्थान का नारा दिला। कंकड़ पत्थर और ईंटों के मस्जिदों की बुनावट तो बिल्कुल सही है क्या महाराष्ट्र का कुराना और बर का बकिना बजो नहीं पूज जिसका पोसा 'खाय' यदि उक्तिओं को रचना कर इन्होंने अपना उपदेश जनता तक पहुँचाया।

जाति भेद का खण्डन करते हुए कबीर लिखते हैं

महि बुदा मस्जिद में खड़ा है तो यह संसार किसका है? यदि राम मूर्ति में निवास करते हैं तो बाहर जो कुछ हो रहा है उसे जानने वाला कौन है? हरि पूर्व में है। मस्जिद पश्चिम में। भजन हृदय में हुआ। वही तुम्हें राम और करीम दोनों मिलवाये। संसार के सभी स्त्री-पुरुष उन्हीं के अधिकार में हैं। कबीर मस्जिद और राम का पुत्र है। वही मेरा गुरु है और वही मेरा पार। जाति-पाति के भेद भी निरर्थक हैं। जिसने जो रंग है वह सब एक ही प्रकार से उत्पन्न होते हैं। मानव स्वभाव के बिना रूप है वह सब एक ही मानवता के अंग है। केवल बाह्यों को ही ईश्वर तक ईश्वर प्राप्ति का अधिकार नहीं है, सभी लोग जिनके हृदय में भक्ति और सच्चाई है उसे प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु नामदेव—सिध-धर्म के प्रवर्तक गुरु नामदेव का जन्म १४६९ में ताजगढ़ी नामक गाँव में हुआ था। संभाव्यतः वह इनकी प्रवृत्ति संन्यास की ओर था। कहा जाता है कि एक बार पिता ने इन्हें व्यापार हेतु कुछ रुपया दिया परन्तु इन्होंने वह रकमा निर्धनों में विभाजित कर दिया। पारिवारिक व्ययों के आलम में निरत कर इन्होंने देश विदेश का भ्रमण किया। यह कबीर के अनन्य भजन थे। गुरु नामदेव ने ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया और सच्चरित्रता पर जोर दिया। वह मस्जिद और राम की एक ही शक्ति के दो नाम बताते थे। मुसलमानों और ब्राह्मणों के आदर्शों और अभिमान से इन्हें विरुद्ध थी। ईश्वर की प्राप्ति के लिए संसार का त्याग करना इनकी दृष्टि में अनुचित था।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों के सम्मेलन के

पीछे बनेक सामु-सम्पत्तों का हाथ रहा। कुछ मुस्लिमों की सहिष्णुता ने भी इस समन्वय में सहयोग दिया। यहाँ हम उन्हीं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालने जिनके फलस्वरूप सांस्कृतिक समन्वय उपस्थित हुआ। मुसलमानों का भारत में स्थायी निवास इस समन्वय के मूल में विद्यमान है। वे भारत में केवल आक्रमणकारी के रूप में नहीं आये थे बरन भारतीय भूमि में जोने मरने का मिश्रण लेकर ही उनका पयाग हुआ। प्रारम्भ में तो हिन्दुओं को मुसलमान रीति रिवाज और धर्म विष्कृष्ट अभी सा लगा किन्तु जैसे-जैसे यह अस्पष्ट होते गये परिचय बढ़ता गया जैसे-जैसे उन उनकी अच्छाईयों भी मान्य पड़ने लगी। इसी प्रकार मुसलमानों को भी हिन्दू रीति रिवाज और धर्म पालम्ब्य प्रतीत हुआ परन्तु कामान्तर में उन्हें उसकी विषया ज्ञात हुई। इस क्षेत्र में सुप्रसिद्ध इतिहासकार बल्लभजी और प्रसिद्ध कवि जमी खसरो के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने मुसलमान समाज में हिन्दू धर्म या यूँ कहें कि भारतीय सम्प्रदाय और संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न किया। भारतीय समाज और संस्कृति को पुनर्स्थापन करने के अभिप्राय से काश्मीर गुरुद्वारा जंगल आश्वीन जी बंसा के घासक हुसेन शाह ने हिन्दू धर्म-ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया। इस प्रकार बीरे-बीरे देश में जो विभिन्न जातियों ने एक दूसरे को पूरी तरह समझना प्रारम्भ किया और इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप दो विपरीत सम्प्रदायों का भी मिश्रण हुआ।

समन्वय का रूप

हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों का जो समन्वय हुआ उसका रूप हमें भाग कला धर्म आदि में स्पष्टता देखने को मिलता है।

भाषा—उर्दू का विकास हिन्दू-मुसलमान संस्कृतियों के समन्वय का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। संस्कृत काव्यियों से प्रारम्भ होने वाली यह भाषा बहुत ही प्रहिन्दू मुसलमान समाज के समय धर्म में प्रचलित हो गई। उर्दू का शब्द कोष बरबी फारसी तुर्की और हिन्दी शब्दों से मिलकर बना है परन्तु इसकी व्याकरण पर हिन्दी की छाप है।

भाषा के साथ-साथ साहित्य का उत्थेव कर देना भी आवश्यक है। हिस्की ने मुस्लिमों ने मराठी बंगाली आदि भाषाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। मुसलमान और हिन्दू लेखकों ने एक दूसरे के विषयों पर लेखनी चलाई।

संगीत—संगीत के क्षेत्र में तो बहुत बड़ा समन्वय हुआ। हिन्दू और मुसलमान संगीतज्ञों ने एक दूसरे को धीरे धीरे अपना कर संगीत की जिस पद्धति का निर्माण किया वह पुनर्स्थापन भारतीय बन गई।

वास्तुकला—वास्तुकला के क्षेत्र में भी हमें हिन्दू मुसलमान कला के समन्वय देखने को मिलने हैं। बहुत निर्माताओं ने एक दूसरे की अच्छाईयों को ग्रहण किया और उन्होंने दोनों शक्तियों से मिश्रित एक नई शैली को जन्म दिया।

धर्म—धर्म के क्षेत्र में भी पर्याप्त समन्वय हुआ। हिन्दू और मुसलमानों ने एक दूसरे के सम्पत्तों को आकर से देखना प्रारम्भ किया। धार्मिक सहिष्णुता इतनी अधिक बढ़ गई कि बंसा में हमें सत्यपोर की सामूहिक पूजा देखने को मिलती है। बुलाहा कबीर के भक्त हिन्दू और मुसलमान दोनों हुए।

भाग ३ सामाजिक अवस्था तथा कला

सामाजिक स्थिति

समन्वय का ज्ञान पर भी भारतीय समाज का भावों में निमग्नित रहा। एक और राज्य की अनुकूलता प्राप्त करने वाले मुस्लिम वर्माजसम्बन्धी व और दूसरी भाग हिन्दू समाज का। यह विभिन्नता राजनैतिकता धार्मिक एवं सामाजिक कारणों से

यो। हिन्दुओं को मुस्लिम राज्य का शत्रु समझा जाता था। मुस्लिम धर्मावलम्बी मयन बर्ग की उन्नता पर विश्वास करते थे और दोनों वर्गों का सम्बन्ध सम्बन्ध नहीं हो कठिन अवस्था था। फिर दोनों वर्गों के सामाजिक रीति रिवाज भी भिन्न भिन्न थे। मुसलमानों में मद्यपान सबब व्याप्त था। परन्तु हिन्दुओं में अप्रत्याशित दृष्ट्य था। मसूफमानों में भी सामाजिक स्तर के अनुसार भद्र-भाष या और राजनैतिक क्षेत्र में अन्य बर्गों की व्यक्तिगतों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था।

एक वर्ग वर्गीकरण के अनुसार मुस्लिम समाज निम्नलिखित दो भागों में विभाजित था

- (१) एहल-ए-सैयद अथवा धार्मिक वर्ग
- (२) एहल-ए-कलम अथवा सांस्कृतिक वर्ग

प्रथम वर्ग में राज्य के छोटे कर्मचारी सम्मिलित थे जिन्हें धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने की अनुमति न थी। यह वर्ग मायाग्य की व्यक्ति का मुख्य आधार था। यासन प्रवर्ग एवं मायाग्य सुरक्षा का उत्तरदायित्व इन्हीं लोगों पर था।

द्वितीय वर्ग अथवा एहल-ए-कलम में मुस्लिमों के साध-नाथ धार्मिक मन्तों में से लोगों मिष्टकों एवं कवियों का समावेश था। प्रायः इस वर्ग के सभी सदस्यों को धार्मिक अधिकार प्राप्त रहते थे। अन्य वर्गों में यह धार्मिक समुदाय से सम्बन्धित था। मन्त्र में इनका प्रभाव अधिक था और राज्य की इनकी सुविधाओं का ध्यान रखना पड़ता था। इस वर्ग में भी मुस्लिमों एवं धार्मिक मन्तों में कुछ भद्र-भाष था। धार्मिक नीति का वर्णन करते समय हम बना चुके हैं कि मुस्लिमों का सुकाश राजनीति की ओर भी था परन्तु धार्मिक मन्तों को राजनीति से कोई सम्बन्ध न था। उसका सौग अक्षम था। मुस्लिम का विरोध भी करते थे और समयानुसार उसकी क्षमाभद्र भी करते थे। इनके विपरीत धार्मिक मन्तों का मुस्लिम की प्रशंसा अथवा क्रोध की कोई विन्ता न थी। वास्तविकता ही यह थी कि उनकी लोकप्रियता मुस्लिम एवं राज्य के लिये हानिकारक थी।

समाज में शांति देने की प्रथा थी। समय समय पर राज्य की धार्मिक समुदाय की धार्मिक नीतियों को पूरा करना पड़ता था। मरीजों के शिष्ट का ध्यान रखा जाता था। नाशारथ से नाशरथ ध्येति भी धाम दिया करता था। उनो प्रवृत्ति के कारण जनक मुस्लिमों न सावधानिक कार्यों को प्रोत्साहन दिया था। विरोध सुपक्ष न विचारों की सुविधाओं प्रदान की थी। इसे राजनैतिक नष्टम्य कहा जा सकता है। परन्तु वास्तविकता यही थी कि धार्मिक व्यक्ति होने के कारण वह जन नाशारथ के कष्ट को नहीं देख सकता था। गवामुद्दाल सुगमक न अपने भूतपूष स्वामियों अथवा विस्त्रीयों की कहानियों के बिना का प्रवर्ग दिया था।

धार्मिक दृष्टिकोण से मुस्लिम समाज आदेश सुमात्र न था। उसमें जनक भूरीतिमो केनो हुई थी। मरिदा-भाष एवं धून-भोद्दा उन समय की मुख्य बुराईयों थी। यही प्रकार शक्तियों को रणन की प्रथा भी प्रचलित थी। बलबन एवं अन्तर्द्वेष के मयाप कठोर तामकों न धरित के बिनाय की ओर ध्यान दिया। दोनों न ही मरिदायान का विरोध करा दिया और नियम रण करन जाने की कठोर दंड दिया। बलबन के धरित में अहंकार एवं उन्नता के भाष न। यह किसी भी विस्मयपूर्ण व्यक्ति में बात नहीं करता था। कहा जाता है कि फलकनाथक एक एम ही व्यक्ति न उसे भद्र देवी पाही परन्तु मुस्लिम न उसे धनकोधार कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि बलबन ने मुस्लिम के रूप में जैसा उठाए के लिए अपनी भीमरी मानवता को सम्मान एवं गौरव की

बसिनेहो पर चढ़ा दिया था। मुस्तान अलाउद्दीन ने भी मदिरापान बन्द करा दिया और शासक वर्ग के पारिवर्गिक विकास की ओर ध्यान दिया। उनसे बिहोही एवं प्रतिक्रिया वाली प्रकृति के समान उठने उनके पारस्परिक मेक-अप पर पाबन्दो लगा दी। परन्तु अलाउद्दीन के मृत्योपरांत मुस्लिम उच्चतम जनैतिकता के गर्त में पड़ गया। और यह स्थिति तुलक बंध के साधनारम्भ तक चलती रही। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में सामाजिक चरित्र में कुछ सुधार हुआ परन्तु फिरोज तुगलक ने सेनिकों में फेर के प्रवृत्तार एवं रिबबल जाति की रोकने की चेष्टा नहीं की। फलस्वरूप सेनिक वर्ग का नैतिक स्तर धुप बर्गों के नैतिक स्तर से नीचा था।

यहाँ स्त्री समाज का बचन करना उचित होगा। समाज में स्त्रियों का सम्मान था और उनकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध भी था। इन्वैयुता का कवन है कि उसने अनेक ऐसे विद्यालयों की सेवा या जहाँ स्त्रियों की शिक्षा हो जाती थी। परन्तु कम्पा का जन्म अप्रम समझा जाता था। स्त्रियों में परा प्रथा प्रचलित थी और उनकी स्वतन्त्रता सीमित थी। फिरोज तुगलक ने उनकी सीमित स्वतन्त्रता का हुरण कर दिया। उसके सम्मुख आर्थिक संघर्षों की समाधिपर जान वाली स्त्रियों ने आचरण सन्वेहा स्पष्ट की।

हिन्दू समाज—भारतीय मुस्लिम राज्य के एक अंग के सामाजिक स्तर का बचन किया जा चुका है। जब इसके दूसरे अंग मजबूत हिन्दू समाज का वर्णन करना आवश्यक है। विद्वान् इतिहासकारों ने हिन्दू समाज की अन्वेषणों की प्रशंसा की है और साथ ही साथ उसमें फैली कुपेधियों को गिन्या भी की है। अन्वेषणों का कथन है कि हिन्दुओं में अङ्कार अधिक था। वह अपने ही समाज की मुद्रा एवं विरिक्त समझते थे। भारतीय विद्वान् विदेशियों को अपने ज्ञान का परिचय नहीं देना चाहते थे। इन प्रकार मुस्लिम आक्रमण के समय हिन्दू समाज अच्छी स्थिति में था परन्तु राजनैतिक दमन के छिन हो जाने पर उनकी वसा धीमनीय हो गई। मुसलमानों ने अधिक से अधिक कर भार द्वारा हिन्दुओं का दमन किया। वर्गों के कवनानुसार अलाउद्दीन के शासन काल में हिन्दुओं को अपनी उपज का ५० प्रतिशत कर के रूप में देना पड़ता था। इससे अति रिक्त अन्य प्रकार के कर एवं कठोर बातनाओं के फलस्वरूप हिन्दू समाज अचहाय एवं दुर्बलस्था में था। मुसलमान उनका अपमान किया करते तो सुन्दर का चहारा बना पड़ता था। मुस्लिम के सम्मुख बचन आगि जान के नय से अमीर लोग कथन चुका देते थे।

वर्षिभ भारत में मुसलमानों का बचन कम था। हिन्दुओं में ब्राह्मणों का सम्मान अधिक था। वर्णव्यवस्था एवं सती प्रथा जैसी पर थी। बलि देने की भी प्रथा थी। ब्राह्मण स्त्रियों में परा प्रथा थी परन्तु अन्य वर्गीय स्त्री समाज में स्वतन्त्रता का आभाव मिलता है।

आर्थिक दशा

मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन के पुर मारु की आर्थिक दशा अच्छी थी। परन्तु इनका यह जय नहीं कि आक्रमणोपरांत काल में भारत की आर्थिक दशा बाबोडीठ हो गई थी। आरम्भ में मुस्लिम आक्रमणकारियों एवं शासकों का मुख्य ध्येय लूट-मार ही बना रहा। फलस्वरूप मन-ब्याय भारतवासियों की सम्पत्ति नष्ट कर विनिर्गमों की स्थापति बन गया था। लूट-मार एवं राज्य विस्तार में व्यस्त रहने के कारण उन्हें देश के आर्थिक जीवन की सुन्दरस्थिति बनाना का बचन नहीं मिला। राज्य में बेगनीय सत्ता के दुर्बल होने के कारण बेसी म्हुरों ने जयसर्ज एवं मास-मान

के म-माय में कू-माय का राज्य स्थापित कर रक्खा था। एसी दना में आर्थिक विकास बचका मुख्यवस्था सम्भव न थी। सब प्रथम बहजन में आन्तरिक मुख्यवस्था को मोह ध्यात दिया और उसके मुबारों का अनुसरण करते हुए सुम्नान बसाउहोन ने आर्थिक लक्ष में अपनी प्रशंसनीय योग्यता का परिचय दिया। इस समय राज्य की आय का मुख्य माधन इति कार्य था। इसके अनिश्चित व्यापार भी मुख्यवस्था था। बहजन एवं अपना हान दोनों का समुचित प्रयत्न किया। बहजन में जपनों को साक करवा दिया और इस प्रकार लुटों के मुक्त स्थानों को लुट भ्रष्ट कर जनको सम्पूर्ण योजनाओं का जन्म कर दिया। व्यापारियों की सुविधा के लिए प्रत्येक मार्ग को लुटों से साक करवा दिया गया। इन प्रकार व्यापार को प्रोत्साहन मिला और मास के आयमन निम्न में सुविधा हो गई।

बसाउहोन ने आर्थिकवस्था की प्रत्येक वस्तु का मूल्य निर्धारित कर दिया। ठीक मास पर निश्चय रक्का और नियम को बसाउहोन करने वालों को फटोर दण्ड दिया। फलस्वरूप प्रत्येक वस्तु के मूल्य गिर गये और निर्धन से निम्न व्यक्ति भी बहुत कम कागज पर अपनी दिन-प्रति-दिन की आवश्यकताएँ समुष्ट कर लिया करता था। राज्य में सब कार्ये माया में था। आर्थिक जीवन मुख्यवस्थित था। राज्य की आय बड़ गई थी और जन साधारण का जीवन सुखी था। बसाउहोन के आर्थिक मुबार-मूल्य निर्धारण के "आर्थिक नियम मान एवं पुति के नियम पर आधारित न था यही कारण था कि सुम्नान की मूल्य होने हो उसके सभी मुबार हुआ हो गये। परन्तु इतना होना पर भी राज की आर्थिक दण्ड बचती रही। बाजारों में सब फाँटी माया में था और राजकोष में "मना जन का कि मुबारक एवं लुटों द्वारा जन कूटाये जाने पर भा फाँटी जन एम बच गया था। मुख्यवस्था के मासक मास में आर्थिक जीवन को बहुत बढ़ा बाजार पहुँचा और न केवल सुम्नान की योजनाएँ हो बसकत हुईं परन्तु आर्थिक जन में भी उने पून बसकतना प्राप्त हुई। नवीन विचारों का आचार इतना सरल था कि कोई ना व्यक्ति उन्हीं दना सकता था और यद्यपि समकालीन इतिहासकारों का कथन अतिनियमितरूप है कि भी इतना तो मानना हो पड़ता कि सुम्नान की नवीन योजना से राजकोष को बहार लाने उठाती पड़ी। इनके अनिश्चित प्रोत्साह आदि के कारण ना आर्थिक धन में आनक ईक गया था। सुम्नान ने सुविधाविधियों की सहायता से सुविचार प्रधान की परन्तु उने सकलता न मिला और हुनारी व्यक्ति मास का धान बन गये। इतक कहा छाड़ कर भाव गये और व्यापार की प्रति नो रुक गई। फिरोज मुसमल ने विचारों का प्रयत्न एवं अन्य सुविचारों देकर आर्थिक दना को मुबारने का प्रयत्न किया परन्तु संसार के आक्रमण में रही-उही दना को भी धोचनान बना दिया।

मुबारज मास एवं वसिध के अन्य प्रदेशों में व्यापार अधिक उन्नति पर था। इसीलिए जहाँ जहाँ विदेश से मास भोगाया जाता था। विदेशी व्यापार का प्रोत्साहन दिया गया था और चौक मोना चौकी एवं ठाँवा के बन्दे जड़ी-बूटियों का भी निर्यात एवं वसिध के जाला करने थे। कनाम एवं मोस ग्राहों की प्रतिष्ठ फलक थी। मगराज जन-साध्य से परिपुन था और "जमें साठ हजार मगर एवं चौक था। स्वाधीन बाटीपर रपीन व्यापारी बनाने थे और इन पर पना-जिपों के निर्यात करित रहते थे। मास पाहों के व्यापार के लिए प्रयत्न था। यही हूर बचती मदक के चौक जन पाय जाने थे और अधिकतर चौक विदेशों से भोगाया जाते थे।

बंगाल के सम्बन्ध में पार्शीनीना न लिखा है कि देव जन-साध्यपूर्ण था और प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुएँ सस्ते भाव पर मिल जाती थी। प्रजा का जीवन सुखी

वा। इसी प्रकार माहुसाम ने सिखा है कि बंगाल में चावल की खेती अधिक होती थी। इसने अतिरिक्त यहाँ जनक प्रकार की खास एक सज्जिया बहुलता से प्राप्त हो जाती थी। सुपारी का प्रयोग किया जाता था। चावल और मारियस से नशीले पद पदार्थ तैयार किये जाते थे। यहाँ जंगी का काम भी किया जाता था और चाबू, छुरी आदि जनक वस्तुएँ तैयार की जाती थी।

कला

यद्यपि मुस्लिम विजयानों ने सर्वप्रथम कार्य किये थे फिर भी यह कहना उचित न होगा कि वे नितीत सर्वरथ। साम्रिय एवं कला के प्रति उनका अग्रिम प्रेम था। यह सत्य है कि अरबवासी मध्य निर्माण कला में बहुत पिछड़े हुए थे और उन्होंने बिदेसी कलाओं के आधार पर अपनी कला का विकास किया था परन्तु भारत में आने वाले मुस्लिम आक्रमणकारियों में अरब ही एक मात्र बिदेसी न थे। उनमें तुर्क आदि अन्य जातिवा भी सम्मिलित थी। मध्य निर्माण कला में तुर्कों का दृष्टिकोण सर्वोच्च कलात्मक अस्वास्थ्य के अनुकूल था। स्थापत्य की दृष्टि से वह प्रतिभाशाली थे। कला एवं संस्कृति में उनके अपने आदर्श थे उनमें नवीनता थी और समय एवं स्थानानुक्रम से ही परिवर्तन करने की समता भी थी। फर्ग्युसन आदि जनक योरोपीय इतिहासकारों ने भारतीय एक मुस्लिम धर्मियों के सम्मुख पर विचार करते हुए यह मत प्रगट किया है कि भारतीय मुस्लिम राज्य के मध्य एवं अन्य कलात्मक कार्यों में मुस्लिम कला की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। हम बात का निचय जाये किया जायगा। यहाँ इतना बताना आवश्यक है कि तुर्क जाति की कलात्मक अभिवृद्धि का वर्णन करते हुये फर्ग्युसन का कथन है कि भारत में इन जातियों के प्रारम्भिक कार्यों में स्थापत्य कला सम्बन्धित कार्य ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। वास्तविकता तो यह थी कि उन्होंने नैतिक जाति के रूप में ही भारतवर्ष में प्रवेश किया था और उनका मध्य उद्देश्य भारत की अपार सम्पत्ति पर अधिकार करना और साम्राज्य की स्थापना करना था। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि उनकी सेना में कलाकारों का अभाव हो। परन्तु अपने उच्च कलात्मक आदर्शों एवं प्रवृत्तियों के कारण उन्होंने भारतीय कलाकारों को तुर्क सेना पर आधारीत कला का भूजन करने के लिए विवश किया।

कलात्मक विकास में भारतवासियों की अपने कार्य के प्रति निष्ठा एवं शान शौचता की प्रवृत्तियों ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया था। मन्दिरों में ही उनकी विनाश सम्पत्ति था और मुस्लिम आक्रमणकारियों ने सर्वप्रथम इसी ओर ध्यान दिया था। इन मन्दिरों में हिन्दू मन्दिर ही नहीं परन्तु जैन एवं बौद्ध मन्दिर और मठ भी सम्मिलित थे। इन मन्दिरों का शीर्षक इतना आकर्षक था कि महमूद मजदबी जैसे बर्बर एवं ध्वंसकारी कट्टर मुसलमान न भी इनके शीर्षक की सराहना की थी। उसने इन विनाश मन्दिरों को भूमिगत कर दिया तो वह धार्मिक अर्थ-निष्ठास एवं राजनीतिक विचारों पर किया गया था। वास्तविकता तो यह थी कि महमूद मजदबी ने लेकर समूह एक दिन भी आक्रमणकारियों ने भारत में प्रवेश किया और राज्य स्थापित किया था उन्होंने बड़ी साधनानी से मुकियात हिन्दू धर्मियों की रक्षा की थी। महमूद मजदबी जनक भारतीय धर्मियों की मजदबी से गया जिन्होंने मजदबी में एक भव्य मन्दिर का निर्माण किया। यह मन्दिर हिन्दू कलाकारों की कला का उज्ज्वल उदाहरण है। मुस्लिम आक्रमणकारियों के नृपति जायों से भव्यताय भारतीय कलाकारों ने अपने भारत को अपने नय स्वाधिनियों की धार्मिक इति के अनुकूल बनाने का सफल प्रयत्न किया और यही कारण है कि दिल्ली मुल्कानों द्वारा इनायत गय मजदबी में "बठोर

जनसाधनपूर्वक धार्मिक विचारों के सादृश्य रखने वाली सरलता के दायन होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुस्लिम आक्रमणकारियों के पास स्वायत्त कला सम्बन्धित स्वतन्त्र विचार न था। परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने के लिए उनके निजी कलाकारों का आश्रय था। दूसरी ओर भारतीय चित्रियों में भी स्वतन्त्र विचार एवं उच्च कलात्मक प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने के लिये वह स्वतन्त्र न थे। फस-स्वरूप दोनों ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए और दोनों कलाओं का सुन्दर सम्मेलन हुआ।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस नवीन दौरा में जिसका जन्म परिस्थितियों को देन स्वयं हुआ या हिन्दू कला की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ता है, जबकि मुस्लिम कला की अपेक्षा यह दोनों ही एक दूसरे से प्रभावित हुईं और एक नवीन दौरा का जन्म हुआ। इन विषय पर योरपीय इतिहासकारों में मतभेद है। फर्ग्युसन का कथन है कि भारतीय मुस्लिम राज्य की कला में मुसलमान कला के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। इनके विपरीत ह्यूबेक यहोदय का कथन है कि मुसलमान कला की भारतीय कला एक नाम के अतिरिक्त अन्य सभी गुणों में हिन्दू कला की प्रशंसा करता है। उनका यह विचार सही हो माय्य न हो परन्तु इतना अवश्य है कि भारतीय कला का प्रभाव अधिक था। इसका कारण यह था कि भारतीय कलाकारों में समय एवं परिस्थितानुसार आवश्यक परिवर्तन करने की क्षमता थी। यहाँ कारण था कि उन्होंने एक ऐसी रीति को अपना लिया जो उनके नये स्वामियों की धार्मिक रीति एवं महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप थी। इतने कम समय में और बिनापट्ट ऐसी परिस्थितियों में—जब विभिन्न एवं विचित्रताओं के बीच एक गहरी खाई बन गई थी—मुस्लिम कला में भारतीय रीति का प्रभाव उसकी महानता एवं अष्टता प्रतिपादन करता है। ह्यूबेक के कथनानुसार भारतीय चित्रियों में कभी भी विदेशी विचारों को नहीं अपनाया। इसका विपरीत इस काल की कला के समस्त मूल-मूल विचार विमुख भारतीय हैं। हमारे पास अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिन से यह सिद्ध हो जायगा कि हिन्दू कला में अब भी इतनी शक्ति थी जिसके आश्रय पर वह मुस्लिम कला की आत्मसात कर सकती थी। सर जान माघन न यह मन प्रकट किया है कि हिन्दू कला में मुसलमान आक्रमणकारियों की अत्यधिक प्रभावित किया था। उन्होंने अपनी कला को ऐसी रूप देने का सकल प्रयत्न किया था जो हिन्दू कला के अन्तर्गत विहित मन्त्रियों की मन्त्रिण के रूप में परिणत कर सकत था। उनके आश्रय में दोनों कलाओं में कुछ समानता भी थी। हिन्दू मन्त्रियों में और मन्त्रिण के रूप में परिणत कर लिया गया था। इसी प्रकार दोनों कलाओं में अर्थात् एवं पवित्रता का प्रतिपादन करना है परन्तु कला के क्षेत्र में और विभक्तता का अभाव दोनों के मन में था न कि मुस्लिम कला में अन्तर्गत प्रवृत्तियों का समावेश हो गया था। इनका कलात्मक अन्तर्गत भारतीय कला के अन्तर्गत रूप से अपनाइया निम्न थी की था और वही कारण था कि भारतीय कला के सम्मुख उन्होंने स्वेच्छापूर्वक अज्ञानातिरिक्त किया। कला प्रयोग के रूप में यह एक महान आदर्श था। कट्टर अपना लिया था।

इन प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू कला का प्रभाव काफ़ी था और हिन्दू एवं मुस्लिम कलाओं के पारस्परिक सम्मेलन से उत्पन्न कला-कविता सारसामो रीति में हिन्दू

ऐसी के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखाई देता है। यहाँ पर दोनों कक्षाओं के समम के कुछ उदाहरण देना अनुचित न होगा। एक अन्य लेखक के शब्दों में "इस्लाम एकेयरबावी कट्टरता की अभिव्यक्ति तथा गुम्बजों की सरलता मस्जिदों में गुम्बज की सरलता प्रतिफलमयता और मीनारों के पतलेपन में हुई इसके विपरीत हिन्दु की बहुदेवतावादी मान्यताओं ने कप को विभिन्नता तथा अटिक्का उभरे हुए काम का प्रत्यक्ष भाव को सजावट और मानव प्रतिमाओं द्वारा अपन को अभिव्यक्त किया।

विजता उन कला परम्पराओं के प्रभाव से न बन सके जो उनके चारों ओर प्रचलित थी। सरस इस्लामी पूर्व हिन्दू बहुरूपण से प्रभावित होन लगा। गुम्बज। सरस कर्कशता का स्थान कठम ने ले लिया और उनके सिरे पर बाहु के जो फू पतियों के मुन्के वन रहते थे उसकी जगह पत्थर में बूरे चित्रों का प्रयोग होने लग इसके अतिरिक्त मस्जिदों ने हिन्दुओं से भवनों तथा उनके भागों की उचित बनप न बनान की कला सीख ली। मुस्लिम कला में सुवैसपन (Symmetry) का प्रभाव का यह भी दूर हो गया और ईसा की तथा हुमायू के मकबरे में हमें मुस्लि कला मान्यता तथा हिन्दू प्रतिपादन पद्धति का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का प्रथम मुल्तान था। उसका राज्य चारों ओर से घेरा चिरा हुआ था। स्वयं मुल्तान का जीवनकाल भी सीमित हो था। कुछ ही व म उसे मृत्यु ने आ घेरा था। फिर भी हम देखते हैं कि कुतुबुद्दीन ऐबक कला-प्रमी। और राजनीतिक समस्याओं में उसका दृष्टि पर भी यह कलात्मक विकास के प्र जागरूक था। कुतुबुद्दीन ने दिल्ली में विजय स्तम्भ कुतुबमीनार आरम्भ करवाया। उत उत्तराधिकारी इस्तुतमिश न इस पूरा किया और कुतुबमीनार को अंतिम रूप दे दिया समय के पड़े लाती हुई यह मीनार आज भी गुलाम बंगाली मीनार है। गुमसक बंध के समय में इसका ऊपरी भाग टूट गया था। परन्तु फिरोज गुमसक न पुन इसकी मरम्मत करा दी। इसी प्रकार सिकन्दर लोरो ने भी इसकी मरम्मत कराई थी।

कुतुबुद्दीन ग अजमेर में एक मस्जिद का निर्माण कराया जिसे अड़ाई दिन का मौपड़ा कहा जाता है। इसी प्रकार दिल्ली में एक मस्जिद बनवाई गई थी। उसके बाद धम्तुद्दीन इस्तुतमिश न भी अनेक इमारतें बनवाई थी जिनमें धम्ती ईवाहा तथा होत्रिय धम्ती आदि उत्कृष्टनीय हैं। इस्तुतमिश के मृत्योपरांत काल में कला का विकास रुक गया था। इस्तुतमिश के उत्तराधिकारी विकासमय जीवन व्यतीत करत रहे। कलमन को निर्णय यकोत आक्रमणों का सामना करना पड़ा था फिर भी उसने कुछ एक बुवों का निर्माण कराया था परन्तु यह कलात्मक दृष्टिकोण से महत्व पूर्ण न थे।

बाद बंध की कला सरस एवं धार्मिक मान्यताओं से ओतप्रोत थी। हिन्दू मस्जिद कलात्मक समन्वय का यह प्रथम चरण था और इसमें सुसलमानी विचारों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। कुछ लोगों ने इसे हिन्दू कला का परिवर्तित रूप बताने का प्रयत्न किया है परन्तु यह सत्य नहीं है। इस समय की कला को मध्य विद्यापता थी बर्मे प्रभावता एवं सरल गीर्णर्ष जिसके कारण वास बंध के मुल्तानों विषयन कुतुबुद्दीन ऐबक को कलात्मक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

उत्तराधिकारी विजय बंध का पथार्थक हुआ और अलाउद्दीन खिल्जी के समान कठोर मुल्तान भी कला के विकास में रुचि रखते थे। अलाउद्दीन की बनवाई हुई प्रसिद्ध इमारतें इस प्रकार थी—अलाई बर्रिजा जिसे मुल्तान को अजय्य कृति माना यहाँ तक कि "इस्लामी स्थापत्य का सर्वश्रेष्ठ मूर्तिरित रत्न" बताया गया है। हजारा

महान् महक जिस का उल्लेख करते हुए वही ने कहा था कि इसको नीब में एक हजार
नौबों के तिर बफनाय गय थे। हीज अलाई और हीज रास उसकी अय इमारत थी।

उत्तरपूर्व भारत में इस्लामी कला का दूसरा वर्ण आरम्भ होता है जिसमें
मुसलमानों ने तुगलकाबाद तथा हिसार फिरोजा का निर्माण कराया था। तुगलक सुल्तानों
एक मानव कास में जिस पत नयामुहोम और फिरोज तुगलक के समय में कला के अज
करता था मई थी। यहा कारण है कि हमें इस काल की कला में सरलता बर्कसता
निरामा का आभास होता है। मुहम्मद तुगलक उबार एवं संहिष्ण प्रकृति का
निर्माण था परन्तु कुर्मागयन से आगस्टिक बिब्रोही एवं रहस्यमय योजनाओं के कारण
नमक नहीं निजा। इस समय की शौलो का सर्वश्रेष्ठ नमूना तुगलक शाह का मकबरा है।
तुगलकाबाद का नगर अपनी सुदृढ़ एवं विधासता के लिए प्रसिद्ध है। आज भी इन
नगर के लकड़हरों में हमें इस बात का आभास होता है। फिरोज तुगलक कलाप्रमी
एवं म्हात् निर्माता था। उसने हिसार फिरोजा फतेहाबाद एवं जौनपुर आदि कई नगरों
का निर्माण कराया था। इसके अतिरिक्त उसने अनेक महान् मस्जिदों एवं उद्यानों का
निर्माण कराया। उसकी कलाप्रियता का आभास इस बात से मिलता है कि उसने
शौल-ए बिजारित नामक एक विभाग जोला जिसमें मकन एवं नगर निर्माण की
कौशलों पर बिचार विमर्श किया जाता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि फिरोज
तुगलक की कला योजनाये तक एवं समुचित प्रबन्ध पर आधारित थी।

तुगलक बंद के पतन के कारण विस्को साम्राज्य में अराजकता का बीजबाला था।
अनेक स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हो चुकी थी। कैथोन सत्ता का प्रभाव शून्य था।
आयवस कला के क्षेत्र में इसका प्रभाव अच्छा हुआ। प्रादेशिक राज्यों के पासको न
कलात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया। परन्तु स्थान-स्थान पर कलात्मक प्रवृत्तियों
में निष्पत्ता थी। मुस्लिम बिजलाओं में कुछ राज्यों में अपनी ही कला का अनुसरण किया
और अन्य राज्यों में स्थानीय शैली को प्रोत्साहन दिया। प्रादेशिक राज्यों में मुजरात
ब्यास और कारमार में स्थानीय शक्तियों का प्रभाव अधिक था। इसके विपरीत बिजद
नगर के हिन्दू राज्य को छोड़ कर बहिन के सम्पूर्ण मुस्लिम राज्य में विस्को की इस्लामी
शैली का अनुसरण किया गया। उत्तर भारत में जौनपुर राज्य में भी इसी शैली
का अनुसरण किया गया था। बीबर आदि कुछ एक राज्यों में बिदेसी शैली का
अपना किया गया। प्रादेशिक राज्यों की स्थापना बलों में हिन्दू कला के आर्यों का
गुट अधिक दिखाई पड़ता है। बिजयनगर के साथ साथ इन राज्यों में हिन्दू कला का
मुन्यरतम आर्यों को प्रोत्साहन दिया और उसे गौरवमय बनान का अनेक परिश्रम
कला के इतिहास में गौरवपूर्ण कहा जा सकता है।

बहमनी राज्य में भी कला की बहुत प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। यहाँ के
शासक कलाप्रमी थे और उन्होंने नगरी महलों एवं मस्जिदों का निर्माण कराया
था। बाजापुर की स्थापत्य शैली सुन्दरतम थी। बहमननगर तथा बीबर नगरों का
निर्माण इसी बात में हुआ था। गुलबर्गा तथा बीबर की मस्जिदें दक्षिण की दिव्य कला
का गौरवशाली नमूना है। गुलबर्गा की जामे मस्जिदें बीलगाबाद का शौव मीमार
की दर्शनीय उदाहरण है। उन्होंने ग्वालिगढ़ बरलासा पोरन्दा माहुर एवं नाग द्य
का निर्माण कराया था। बाजापुर की शैली में तुर्की प्रभाव अधिक है और जैसा कि
पहले बताया जा चुका है बीबर में ईरानी शैली का अनुकरण किया था। गुलबर्गा के
नगरों की दो भागों में बाँटा गया है। एक भाग में अलाउद्दीन हुसैन बहमन
महमूद गाह द्वितीय आदि के मकबरे हैं और दूसरे भाग में मुजाहिर गाह

घाह गयासुद्दीन और क़िरोज घाह खाँ के मकबरे आते हैं जो हफ़्त गुम्बज के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार बीजापुर का गोल गुम्बज बीवर की मोछा मस्जिद तथा अहमद शाह बरौ का मकबरा दृश्यानीय है।

गुजरात में हिन्दू एवं जैन दोनों की व्यत्ययिक प्रोत्साहन मिला। यहाँ के मुसलमान शासकान हिन्दू विधियों को निजो शैली का प्रयोग करने की स्वतन्त्रता देता था। मुहम्मिद खान की मस्जिद अत्यन्त सुन्दर इमारत थी। अहमदाबाद सम्मान तथा सम्मान की मस्जिद एवं मकबरे अपने सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कुर्छे आदि सिचाई के साबनों का निर्माण कराया गया था। गुजरात की सम्पूर्ण कला हिन्दू मुस्लिम कलाओं के पारस्परिक सम्बन्ध का सुन्दर उदाहरण है। यद्यपि यहाँ के शासक मुस्लिम बर्गवर्गियों व पण्डित कला के क्षेत्र में अपनी उदारता एवं सहिष्णुता प्रदर्शनीय हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है उन्होंने अपने राज्य के हिन्दू विधियों को कला के क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी।

दूसरी ओर हिन्दू विधियों ने अपने आपको परिस्थितियों परिवर्तित रूप दे दिया और अपने नये स्वामियों की अभिवृद्धि का ध्यान रखते हुए मुस्लिम कला के कुछ आदसों को अपना लिया। इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम शैली का सुन्दरतम सम्बन्ध सिचाई देता है।

मालवा में मुस्लिम शैली का अनुसरण किया गया था। जामा-ए-मस्जिद इटोला महल बहाज महल दुधन घाह का मकबरा और बान बहादुर एवं कपनी के महल यहाँ की सुन्दरतम कला कृतियाँ हैं।

मरन

1 Describe the salient features of the Bhakti Movement. How did it influence the social and political life of the country during our period. (1952-1954)

१—भक्ति आन्दोलन की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। हमारे काल के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को इसने कैसे प्रभावित किया?

2 Briefly describe the general features of the administrative system of the Sultanat of Delhi (1955)

२—दिल्ली के सुल्तानों के शासन प्रबंध की सामान्य विशेषताओं पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

3 How would you account for the failure of the Delhi Sultanat to establish itself permanently as a great power (1947)

३—दिल्ली का सुल्तान बंध अपनी स्थायी शक्ति स्थापित करने में क्यों असफल रहा?

4 Account for quick changes in the dynasties of the Sultanat of Delhi.

४—दिल्ली के सुल्तानों में बंध परिवर्तन शीघ्रता से क्यों होता रहा?

5 Give a brief review of the social and economic condition of India during the 13th, 14th and 15th centuries.

५—तेरहवीं चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दियों में भारत की सामाजिक तथा आर्थिक तथा क संस्थाओं में निहायनीयता कीजिए।

